CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

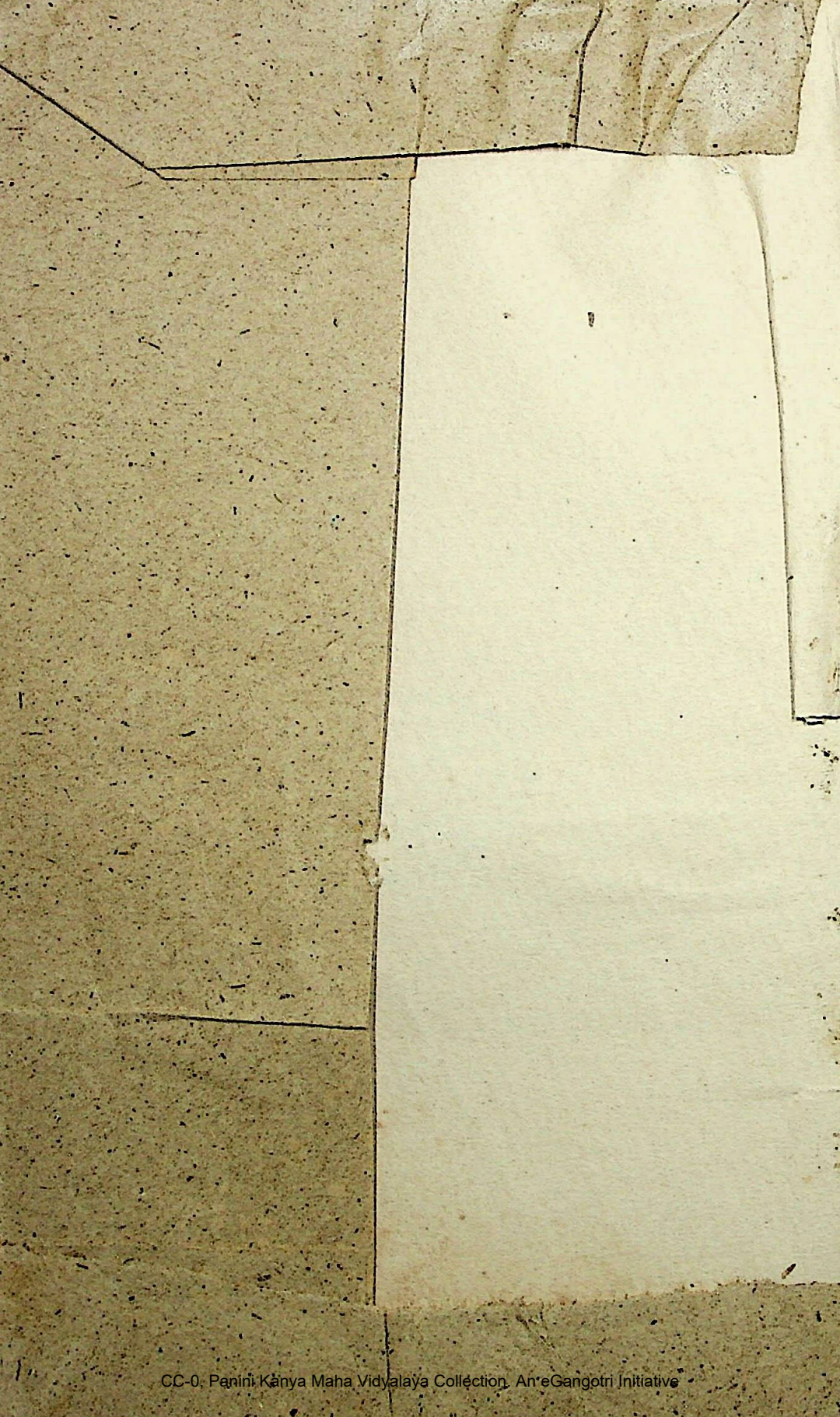
CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी.....१९
पु०सं०.....

(७) यद्यपि अर्थ देना व्याकरण का विषय नहीं है तो भी लोग पढ़कर इनको प्रयोग में लावें, इस विचार से अर्थ दिये हैं। इसमें हमें अत्यधिक परिश्रम अनुवृत्ति तथा उदाहरणों के अर्थ में पड़ा है।

(८) हमने अपनी बात महाभाष्य के आधार पर दिखाने का यत्न किया है। खण्डन मण्डन में जानकर नहीं पड़े। क्योंकि यह एक अलग विवाद का विषय है। द्वितीयावृत्ति में इस पर विचार होना उपयुक्त होगा। विशेष व्याख्या का अंश संस्कृत में चाहते हुये भी विस्तार भय से नहीं लिखा। किसी बात को अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से हमने टिप्पणियाँ भी दी हैं।

प्रथमावृत्ति कौमुदी प्रक्रियावालों के लिए भी परमसहायक

हम लिख चुके हैं कि काशी में (अन्यत्र भी ऐसा होना सम्भव है) पुराने प्रसिद्ध विद्वान् श्री. पण्डित बालशास्त्री जी, तथा पूज्य पं० हरनारायण त्रिपाठी जी (तिवारी जी) आदि अष्टाध्यायी का पाठ करने के पश्चात् ही गद्दी पर बैठकर पढ़ाते थे, कभी २ भूल जाते थे तो कहते थे कि ठहरो, "आज हमने अष्टाध्यायी का पाठ नहीं किया है" समादरणीय पाठ कर लेंतो पढ़ाते हैं, यह बात देखने में छोटी-सी प्रतीत होती है, पर इसका परिणाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हमारा निवेदन है कि अष्टाध्यायी का पाठ व्याकरण पढ़ने वाले सभी अध्यापक एवं छात्र करें। कृदन्त-तद्धितान्त-आत्मनेपद-परस्मैपद-कारक-विभक्ति-समास-सेट्-अनिट् आदि प्रकरण पढ़ाते समय कौमुदी पढ़ाने वाले महानुभाव भी अनुवृत्ति क्रम से दूसरे शब्दों में प्रथमावृत्ति के ढंग से उन प्रकरणों को पढ़ावें, तो छात्रों को ठीक समझ में आवेगा और अध्यापकों को भी कम परिश्रम पड़ेगा। हमारी यह प्रथमावृत्ति उसमें परम सहायक हो सकती है। जो लोग इसमें हठधर्मी करते हैं कि, 'यह अमुक ने कहा है जो हमारे मत का नहीं इसलिये इसको छूना भी नहीं चाहिये' यह हठधर्मी अब नहीं चल सकती। जब लोग देखेंगे तब विद्यार्थियों को स्वयं बिना किसी दूसरे के कहे स्वानुभूत अनुभव हो जायेगा कि यह विधि (अष्टाध्यायी की अनुवृत्ति का क्रमादि) बहुत ही सरल एवं सुबोध है, तो वे स्वयं उसको ग्रहण करने लगेंगे। लोग संस्कृत को कठिन एवं केवल रटने की विद्या समझ कर छोड़ ही दें यह भी तो हमें रोकना ही होगा। इसके रोकने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

का उपाय अष्टाध्यायी पद्धति से व्याकरण पढ़ाने का क्रम फिर से आरम्भ किया जावे यही है। इसमें लज्जा-भय-सङ्कीर्णता आदि की कुछ भी आवश्यकता नहीं। तभी संस्कृत जीवित रह सकती है। कौमुदी पद्धति के विद्वानों की सेवा में हमारा यह नम्र-निवेदन है। वे समय पर जाग्रित हों, नहीं तो 'फिर पछताये क्या होत जब चिड़ियाँ चुग गई खेत' संस्कृत ही नष्ट हो जायेगी, विदेशों में चली जायेगी, तब भारतीय हाथ मलते रह जायेंगे फिर पछताने से भी कुछ न होगा।

कृतज्ञता प्रकाश

(१) सबसे प्रथम परम पिता परमात्मा का अति धन्यवाद है कि, एक अनपढ़ माता-पिता के यहाँ जन्म लेकर भी इस ओर प्रवृत्ति हुई। अपने पूज्य श्रद्धेय आर्ष ग्रन्थों और ऋषि दयानन्द में पूर्ण निष्ठावान् श्री. स्व० पू० गुरुवर स्वामी पूर्णानन्द जी महाराज का आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे प्रेरणा दी एवं अष्टाध्यायी और (कुछ) महाभाष्य का अध्ययन बड़े परिश्रम से कराया। मैं उनके ऋण से उऋण कभी नहीं हो सकता। मेरे में यदि कुछ गुण हैं, वा समझे जाते हैं, वह सब उनकी कृपा हैं, दोष मेरे अपने हैं। श्री. पं. अखिलानन्द जी झरिया मेरे उसी समय के सहपाठी हैं, वह भी कई वर्ष तक उनकी सेवा में रहे, और घोर कष्ट उठाये। उसके पश्चात् जिन विद्वानों के चरणों में बैठकर शास्त्र का ज्ञान प्राप्त हुआ, उन स्व पूज्य पं. हरनारायण तिवारी जी महाराज, श्री. पूज्य चिन्न स्वामी जी शास्त्री अद्वितीय मीमांसक, पूज्य गोस्वामी दामोदरलाल जी, पूज्य पं. दुण्ढिराज जी शास्त्री एवं श्री. पूज्य पं. रामभट्ट राटाटे जी वेदज्ञ आदि महानुभावों का मैं ऋणी हूँ। उन सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। संस्कृत वाङ्मय के प्रौढ़ विद्वान् कर्मनिष्ठ-ईश्वर भक्त-माननीय डा० मङ्गल देव जी शास्त्री एम० ए० (आक्सन), वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रथम प्रारूप निर्धारक-भूतपूर्व वाइस चांसलर संस्कृत विश्वविद्यालय, से समय पर बड़ी प्रेरणा मिलती रही, तथा काशी के प्रमुख विद्वान् श्री० पं० गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी ने अष्टाध्यायीपद्धति के प्रति अपनी, निष्ठा-उत्साह-उदारता प्रदान की। इनका भी मैं आभारी हूँ। तथा अन्य महानुभावों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता निवेदन करता हूँ जिन्होंने मुझे इस पद्धति में उत्साहित एवं प्रेरित किया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
२१

(२) आरम्भ से अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि के पठन-पाठन तथा वेदभाष्य आदि के कार्य में लगभग ४० वर्षों से श्री. रामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर के सञ्चालकों, सर्वश्री स्वर्गीय धर्मनिष्ठ बाबू रूपलाल जी कपूर, स्व. बाबू हंसराज जी कपूर, स्व. बाबू ज्ञानचन्द जी कपूर तथा वर्त्तमान सञ्चालक श्री. बाबू प्यारेलाल जी कपूर, बाबू सुरेन्द्र कुमार जी कपूर (सब भाइयों सहित) एवं पूरे परिवार की सद्भावना सेवा आदि के कारण ही ये सब कार्य आज तक चलते रहे, तथा इस अष्टाध्यायी का कार्य भी उसी का एक अङ्गरूप बराबर चलता रहा, और मैं इन कार्यों को यथेष्ट रीति से करने में सफल होता रहा, अतः इस प्रथमावृत्ति के विषय में भी इन सबको नहीं भुलाया जा सकता। वे सब धन्यवाद के पात्र हैं, यह सब कार्य उनकी सद्भावना का ही फल है।

(३) आर्थिक सहयोग

सन् १९६० में जब प्रथमावृत्ति निर्माण का विचार उठा तो वह कैसे हो ? यह समस्या सामने आने पर मैंने झरिया निवासी 'श्री बाबू मदनलाल जी अग्रवाल' से परामर्श किया, उन्होंने १ सहायक का व्यय १००) रु० मासिक देना स्वीकार किया, जिसे वह प्रति वर्ष २॥ मास छोड़कर शेष समय के लिये देते रहे। वास्तव में यह सहायता मेरे इस कार्य में परम सहायक सिद्ध हुई, इसके बिना मेरा कार्य चल नहीं सकता था। आगे सहायक की निष्ठा, तीव्र भावना, उत्साह, सहनशीलता एवं घोर परिश्रम से यह कार्य आंशिक पूरा हुआ। और जब छपने का विचार आया तो हमारे इस श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट के अधिवेशन में ट्रस्ट की ओर से प्रथमावृत्ति छापने का निश्चय हुआ, पर मैंने यह देख कर कि ट्रस्ट का बहुत सा धन पुस्तकादि छपने में रामलाल कपूर एण्ड सन्स अमृतसर (दुकान) का अनेक पुस्तकों में लगा हुआ है, यह यत्न किया कि यह पुस्तक अन्य सहयोग से छपे, और ट्रस्ट पर अधिक भार न पड़े तो अधिक अच्छा हो। तब मैंने झरिया निवासी श्री बाबू मदनलाल जी अग्रवाल से इस विषय में बात की। वे जहाँ पुस्तक तैयार कराने में लगभग ४०००) रु० लगा चुके थे। वहाँ उन्होंने एवं उनके भाइयों ने अपने पूज्य पिता स्व० श्री बाबू शंकरलाल अग्रवाल जी की स्मृति में १००००) रु० की सहायता इस पुस्तक के छापने में भी दी, जिसे उन्होंने स्वाधीन रखा, कि चाहें तो वह रुपया पुस्तक बिक्री होने पर वापस भी ले सकते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

मैं समझता हूँ पुस्तक के प्रकाशन में यह बड़ी भारी सहायता हुई, जिसके लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। उनके सहयोग एवं उदारता से यह प्रथम भाग छप कर तैयार हुआ है। आशा है अगले भाग भी इसी प्रकार तैयार हो जायेंगे। इस सबमें माननीय श्री पं० अखिलानन्द जी झरिया के सहयोग सद्भावना के लिये भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

(४) प्रथमावृत्ति में सहायक कार्य

अब आन्तरिक कार्य का कुछ विवरण देना भी आवश्यक प्रतीत होता है। गत ४० वर्ष से प्रथमावृत्ति बन नहीं पा रही थी। कार्यों की अधिकता इसमें मुख्य कारण रही। गत सन् १९६० के अन्त में यही विचार तीव्र हुआ कि कोई सहायक मिले तो यह कार्य भले ही हो सकता है, वैसे तो नहीं हो पा रहा। इस प्रकार सन् १९६० के अन्त में प्रिय पुत्री (कल्पा) कुमारी प्रज्ञा देवी से बात हुई, तो वह मेरी विचारधारा में पूर्ण सहमत थी।

सहायक का संक्षिप्त परिचय

यह देवी पहिले महिला कन्या हाई स्कूल सतना (मध्य प्रदेश) में अध्यापिका थी, एफ० ए० तक पढ़ी थी। इसके पिता स्वर्गीय मास्टर श्री कमलाप्रसाद आर्य ने अपनी सभी पुत्रियों तथा पुत्र को घर पर ही अष्टाध्यायी कण्ठस्थ करा रखी थी। कई वर्ष तक वे ग्रीष्मावकाश में मेरे पास आकर अष्टाध्यायी पढ़ते थे। प्रज्ञा देवी ने भी अष्टाध्यायी याद कर रखी थी, और कहती थी, कि मेरे पिता ने मुझसे जबरदस्ती अष्टाध्यायी कण्ठ कराई थी। पिता की मृत्यु के पश्चात् इसकी माता हरदेवी जी पुत्र एवं पुत्रियों के साथ काशी पहुँच गईं, और आश्रम से कुछ दूरी पर सब रहने लगे। आर्ष ग्रन्थों के प्रति सारे परिवार में भावना तो थी ही, उसी में लगने का निश्चय किया। प्रज्ञा देवी ने सरलतम विधि पढ़ी तो अष्टाध्यायी कण्ठस्थ कराई काम आ गई। उत्साह यहाँ तक बढ़ा कि इसने स्कूल अध्यापन कार्य छोड़ अपनी माता के सहयोग से, एवं अपनी सद्भावना से पूर्णतया आर्ष ग्रन्थों के पठन में लग गई। इस प्रकार सरलतमविधि अष्टाध्यायी प्रथमावृत्ति, द्वितीयावृत्ति, सम्पूर्ण महाभाष्य, निरुक्त, श्रौत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसंधान

मीमांसा का मुख्य भाग एवं वैदिक विषय के अनेक ग्रन्थ इसने अध्ययन किये। इस समय अपनी छोटी बहिन 'मेधा' को आरम्भ से महाभाष्य का ६वां अध्याय पढ़ा रही है। इसने महाभाष्य करने के पश्चात् प्राचीन व्याकरण में मध्यमा, शास्त्री आचार्य प्रथम खण्ड तक प्रायः प्रथम श्रेणी में किया है। सरलतमविधि प्रथमावृत्ति द्वितीयावृत्ति तथा महाभाष्य बड़ी श्रद्धा एवं उत्साह, परिश्रम से पढ़ाती है। ८ वर्ष में इसने बड़ी योग्यता प्राप्त कर ली। जब मेरा विचार प्रथमावृत्ति लिखने का सामने आया तो यह योग्य तो थी ही, इसकी विचारधारा भी प्रथमावृत्ति के साथ मिल गई। तब योग्यता एवं भावना देख कर मैं भी प्रथमावृत्ति तैयार करने के लिये पूरी तरह सन्नद्ध हो गया, सब योजना इसको नोट करा दी, और अष्टाध्यायी प्रथमावृत्ति लिखनी आरम्भ हुई। बीच में बड़ी २ कठिनाइयां भी आईं, पर इसके धैर्य-सहनशीलता-पुरुषार्थ से सब ठीक हो जाता रहा। यह सहायक मेरे लिये बहुत ही सन्तोषप्रद रहा, और यह कार्य इस रूप में सामने आया, जिसकी आशा मुझे बहुत कम थी।

इस प्रकार १९६० के अन्त में प्रथमावृत्ति लिखनी आरम्भ हुई। मैंने एक दो दिन में इसका प्रारूप लिखा दिया, जो कि आश्चर्य का ही विषय है, कि हमने कितना दूर तक सोच कर एवं पूर्ण लिखा। प्रथमावृत्ति लिखनी आरम्भ हुई मैं साथ २ बीच में जो कुछ पूछा जाता था, वही बताने लगा। आगे चल कर इसके लिये भी समय नहीं मिल पाता था। अन्त में १९६३ के आरम्भ तक ५। अध्याय तक रफ कापी लिखी गई। इसमें कई एक परिवर्त्तन हमने पीछे किये जो कि सारे रफ कापी में परिवर्धित करने पड़े। जहाँ तक मुझसे पूछने का प्रश्न था, मैं पूरा समय नहीं दे पाता था। हाँ! बीच २ में समय देता रहता था। इस स्थिति को देख कर निराशा होती थी, कि यह ग्रन्थ पूरा कैसे होगा। ५। अध्याय तक रफ कापी लिखा जाना भी पुत्री प्रज्ञा के तप-त्याग एवं निरन्तर परिश्रम तथा निष्ठा का ही परिणाम है, जो लिखा गया। वह समय २ पर मुझे प्रेरित एवं बाधित करती रही, कि 'मैं उसमें समय लगाऊ'। वास्तविक आरम्भ मेरे द्वारा १९६४ जनवरी में ही हुआ जब मैंने रफ को सुनकर पढ़कर संशोधन करना आरम्भ किया। तब से मेरा समय निरन्तर इस कार्य में लगा, और परिणाम-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

स्वरूप अष्टाध्यायी प्रथमावृत्ति का प्रथम भाग तैयार है। आगे भी छपने को प्रेस कापी तैयार हो रही है।

मैं तो यही कह सकता हूँ कि पुत्री प्रज्ञा के निरन्तर उत्साह, परिश्रम एवं निष्ठा ने ही यह कार्य पूरा किया। मैं तो वर्त्तमान स्थिति में करने में समर्थ नहीं था। इसके पूरा होने में सबसे अधिक निष्ठापूर्ण परिश्रम इसीका है, जो यह कार्य पूरा हो गया। सबसे अधिक कष्ट इसीने उठाया, मुख्य तपस्या इसी की है। इसी ने मुझसे भी समय लगवा लिया नहीं तो यह कार्य पूरा कभी न होता। सन् १९६० के अन्त से १९६४ के अन्त तक चार वर्ष का समय (चार वर्ष कुछ मास छोड़ कर) लगा कर तैयार करने का यह सब श्रेय इसी का है। साथ में पुत्री प्रज्ञा के छोटे भाई प्रिय सुद्युम्न (जो कि महाभाष्य पढ़ाता है) की पूरी शक्ति निष्ठा एवं तत्परता का उपयोग इस कार्य में प्राप्त हुआ एवं इसी की सगी छोटी बहिन मेधा (जो कि अपनी बड़ी बहिन प्रज्ञा देवी से महाभाष्य का ६वां अध्याय पढ़ रही है) से भी प्रेस कापी लिखने, प्रूफ देखने, पते पूरे मिलाने आदि आवश्यक कार्य में पूरा सहयोग मिला। यह सब प्रत्यक्षदर्शी के ही सोचने का विषय है। प्रज्ञा देवी को ही इस सबका श्रेय है। यह प्रथमावृत्ति इसी की गम्भीर तपस्या का फल है। इसे मेरा हार्दिक आशीर्वाद है। मैं समझता हूँ इन सबने अपने पर किये मेरे परिश्रम को सफल बना दिया, अतः मेरा हार्दिक आशीर्वाद एवं भविष्य के लिये, जीवन की सफलता के लिये आशीर्वाद निकलना स्वाभाविक ही है। आर्ष ग्रन्थों में इनकी निष्ठा-उत्साह, एवं परिश्रम बढ़े यही कामना है।

आर्ष पाठविधि में पूर्ण निष्ठावान्, आर्य समाज के सुयोग्य विद्वान् आर्ष गुरुकुल एटा के आचार्य, हमारे शिष्य प्रिय पं० ज्योतिस्वरूप जी ने प्रेसकापी पूरी बड़े परिश्रम से देखी, एवं संशोधन किया आगे भी देख रहे हैं। काशी के प्रौढ़ विद्वान् श्री. पं. गोपाल शास्त्री दर्शन केसरी (काशी) वर्त्तमान आचार्य श्री. बदरीनाथ संस्कृत महाविद्यालय जोशीमठ (गढ़वाल) की प्रथमावृत्ति छापने की निरन्तर प्रेरणा को मैं नहीं भुला सकता। वह यहाँ काशी में रहते तो उनसे बड़ी सहायता मिलती। पं. इन्द्रदेवजी आचार्य घनश्यामदास वैदिक विद्यालय देवरिया, वैदिक वाङ्मय के प्रौढ़ विद्वान् पं. युधिष्ठिर मीमांसक अजमेर,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तथा विद्वद्वर्य पं. शङ्करदेव जी आचार्य नौनेर आदि महानुभावों ने जितनी भी सहायता की उसके लिये सबका आभारी हूँ।

प्रूफ देखने तथा कुछ उपयोगी सूत्रों पर आवश्यक विचार देने वाले, महाभाष्यादि पढ़ाने, तथा वेदभाष्य के कार्य में पूरे सहायक, वेदवाणी के कार्यों में व्यस्त, योग्य विद्वान् प्रिय पं. विजयपाल जी आयुर्वेदाचार्य B.S.C., द्वारा पूरा सहयोग देने, तथा प्रिय सुद्युम्न, मेधा, धर्मानन्द द्वारा निष्ठा और परिश्रम से प्रूफ देखने के लिये मैं हार्दिक आशीर्वाद एवं प्रेम प्रदर्शित करता हूँ। जीवन में ये आर्ष ग्रन्थों में निष्ठावान् बनकर आर्य समाज की सेवा करें, और जनता को लाभ पहुँचावें, यही मङ्गल कामना करता हूँ।

प्रिय रणवीर कपूर (सुपुत्र स्वर्गीय बाबू हंसराज जी कपूर) अध्यक्ष रामलाल कपूर एण्ड सन्स प्रा. लिमिटेड कानपुर को भी मैं भुला नहीं सकता, जिसने अपनी बहिनों के पश्चात् इस सरलतम विधि, अष्टाध्यायी प्रथमावृत्ति एवं कुछ द्वितीयावृत्ति को पढ़ा, तथा मेरे द्वारा अष्टाध्यायी क्रम के परिमार्जित होने में कारण बना। काशी के अनेक विद्वानों तथा गुरुकुल कांगड़ी में अष्टाध्यायी के इस क्रम के प्रकाशन में सहायक हुआ। पुस्तक छपने का विचार चल ही रहा था कि सुश्री डा. प्रेमलता शर्मा एम. ए. साहित्याचार्य वाइस प्रिंसिपल सङ्गीत विश्वविद्यालय वाराणसी की प्रेरणा एवं पुत्री प्रज्ञा के सहयोग से तारा प्रिंटिंग प्रेस वाराणसी में छापने का निश्चय हो गया। मैंने स्वीकृति दे दी, अन्यथा यह पुस्तक कुछ विलम्ब से पाठकों तक पहुंचती। इस विषय में उनका भी धन्यवाद है। उनका इस कार्य में आरम्भ से ही अत्यधिक प्रेम रहा।

अन्त में मैं तारा प्रिंटिंग प्रेस के मालिक श्री. आनन्द शंकर पाण्डेय, श्री. रमा शंकर पाण्डेय, एवं श्री. विनय शंकर पाण्डेय के प्रेम-उदारता एवं सद्व्यवहार के लिये अनुगृहीत हूँ। साथ ही कम्पोजिङ्ग विभाग में श्री रामचन्द्र सिंह, बाबा सदानन्द, रामनरेश तथा प्रेसमैन शिवप्रसाद सिंह इन सबको भी मैं धन्यवाद देता हूँ, कि उन्होंने बड़ी श्रद्धा प्रेम एवं लगन से यह कार्य किया और आगे भी करने को तैयार हैं।

ब्रह्मदत्त जिज्ञासु
आचार्य पाणिनि महाविद्यालय,
मोतीझील, वाराणसी नं. ६

३० मार्गशीर्ष, सं. २०२१
१५-१२-१९६४ ई०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्राक्कथनम्

अष्टाध्यायीपठनपाठनस्य क्रमोऽतिप्राचीनः

अद्यत्वे सर्वत्रैव भारतवर्षे प्रायेण संस्कृतविद्यालयेषु प्रारम्भिकशिक्षणे लघुकौमुदीमध्यकौमुदीसिद्धान्तकौमुद्येवोपलभ्यते। केवलमाङ्गलविद्यालयेषु संस्कृतस्याध्ययनाध्यापनमाङ्गलभाषाविद्बुद्धिरेव निर्मितग्रंथैः प्रचलति। संस्कृतविद्यालयेषु सर्वत्र कौमुदीरीत्यैव व्याकरणशास्त्रस्य समस्तमपि पठनपाठनं चतुश्शताब्दीभ्य एतावद् व्यापकं जातमस्ति, यदष्टाध्याय्याऽपि व्याकरणस्याध्ययनं सम्भवतीति ज्ञानं विश्वासो वा प्रायेण नोत्पद्यते केषाञ्चित् साम्प्रतम्। साधनिका (प्रयोगसिद्धिः) कथं सम्भविष्यतीत्याद्याशङ्कमाना उच्चकोटिकविद्वांसोऽपि दृश्यन्ते, अन्येषां तु का कथा? कालक्रमेणाष्टाध्याय्या लोप एव जात इति मन्तव्यम्। हा हन्त! काश्यामन्यत्रापि वैदिकानामृग्वेदिनां गृहेष्वष्टाध्यायीमतिशुद्धां धाराप्रवाहरूपां कण्ठस्थीकृत्यापि, ते बालाः पुनः सवृत्तीनि लघुकौमुदीसूत्राणि (तेषां सूत्राणामर्थानप्यनवबुध्यैव) घोषन्तः सर्वत्र दरीदृश्यन्ते। अहो! कीदृश्येषाऽनर्थपरम्परा प्रचलिता!! अष्टाध्यायीं कण्ठस्थीकृतवतोऽपि बालान् साम्प्रतिकवैयाकरणैर्व्याकरणस्याध्ययनं लघुकौमुदीमन्तरा कारयितुं न पार्य्यत, इत्यनिर्वचनीयानर्थपरम्परा, दौर्भाग्यमेवैतद्देशस्य किमन्यत्?

भट्टोजिदीक्षितमहोदयस्य कालः सं० १५१०-१५७५ वर्त्तते। ततः पूर्वं त्वष्टाध्याय्या एव पठनपाठनस्य प्रचार आसीत्, नात्र शङ्कालेशस्याप्यवसरः। तद्यथा चीनदेशस्य यात्री इत्सिङ्गनामा भारते कतिपयवर्षेभ्यः (सन् ६८१-६९१ ईस्वी) अस्थात्। अष्टाध्याय्युपज्ञमेव संस्कृताध्ययनं तेनात्र कृतमिति स्वयं तेन स्वयात्राविवरणे विवृतं वर्त्तते। तद्यथा—

(१) "इस (अष्टाध्यायी) में १००० श्लोक (४००० सूत्रों का १००० श्लोक बनता है—लेखक) हैं। यह पाणिनि की रचना है जो प्राचीनकाल में बहुत भारी विद्वान् था.....आज कल के भारतवासियों का प्रायः इसमें विश्वास है। बच्चे आठ वर्ष की आयु में इस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(पाणिनि) सूत्रपाठ को सीखना आरम्भ करते हैं और ८ मास में इसे कण्ठस्थ करते हैं" ॥ (इत्सिङ्ग की भारत यात्रा पृ० २६४)।

(२) "यदि चीन के मनुष्य भारत में अध्ययन के लिए जायें, तो उन्हें सबसे पहले (व्याकरण के) इस (अष्टाध्यायी) ग्रन्थ का अध्ययन करना पड़ता है, फिर दूसरे विषय। यदि ऐसा न होगा तो उनका परिश्रम व्यर्थ जायेगा·····" (इत्सिंग की भारत यात्रा पृ० २६८)।

(३) "प्रौढ़ विद्यार्थी उसे (चूर्णि अर्थात् महाभाष्य को) ३ वर्ष में सीख लेते हैं।"

(४) "सन् ९११ई० में इन्द्र वर्मा तृतीय राजा बना। यह इस (भृगु) वंश का अन्तिम राजा था। इसके ८ लेख मिलते हैं, इनसे पता चलता है कि इन्द्रवर्मा षड्दर्शन का पण्डित था। काशिका सहित व्याकरण में पारंगत था और बौद्धदर्शन का भी अच्छा ज्ञाता था। यह अपने समय का भारी विद्वान् था" ॥

(चन्द्रगुप्त वेदालङ्कार कृत बृहत्तरभारत पृ० ३४२)

अयं चम्पादेशस्य ('अनाम' इति वर्तमाना संज्ञा) राजासीत्, देशोऽयं हिन्दचीनद्वीपेषु वर्तते ऽनेनैतत् सिद्ध्यति यद्बौद्धा अप्यष्टाध्यायीपद्धत्यैव व्याकरणमधीयते स्म ॥

पूर्वोद्धरणैरेतत्स्पष्टं यद् इत्सिङ्ग (६८१–६९१ ई०) समये (सन् ९११ ई०) इन्द्रवर्मराज्यसमयेऽप्यष्टाध्याय्या अध्ययनं न केवलं भारतवर्ष एवासीत्, अपितु भारताद् बहिः चम्पादेशे (अनामदेशे) अपि विस्तृतमासीत्। कालक्रमेणैवास्या अष्टाध्याय्या एतावान् लोपोऽभूत्, यदष्टाध्याय्याऽपि व्याकरणस्य ज्ञानं सम्भवतीत्यत्र विद्वांसोऽपि सन्दिहाना दरीदृश्यन्ते किमुत छात्रा इति।

प्रक्रियानुसारिक्रमस्यारम्भः

इत्सिङ्गसमये (सन् ६८१–६९१ ई०) अष्टाध्यायीपठनपाठनस्य क्रम आसीदिति सप्रमाणमुक्तं पूर्वमस्माभिः, स क्रमः कथं लुप्तः, तत्रारुचौ किं बीजं, प्रक्रियाक्रमे च जनानां प्रवृत्तौ किं निदानमित्यभिलक्ष्येदानीं किंचिदुच्यते—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, धातुपाठः, उणादिपाठः, गणपाठः, लिङ्गानुशासनं समुदितमेतत् 'पञ्चपाठी' इत्युच्यते सर्वविदितमेतत्। *समुदितमेतत् पठित्वैव 'अधीताष्टाध्यायी' इति मन्तव्यम्*। 'वृद्धिरादैच्' इति सूत्रमधीयानश्छात्रोऽस्य सूत्रस्य पदच्छेद-विभक्ति--समास-अर्थ-उदाहरणादि सर्वं पठन् तत्र चोदाहरणानां (शालीयः, भागः, नायकः, अचैषीत्, अलावीत्, मार्ष्टि, इत्यादीनां) सिद्धिं सर्वैस्सुत्रैरष्टाध्यायीपद्धत्या सम्पादयति। एवमष्टाध्यायीं धातुपाठञ्च सम्यगभ्यस्य प्रथमावृत्तावेव (उदाहरणानां सिद्धिं कुर्वन्नेवेत्यर्थः) छात्राः सर्वा तिङन्तप्रक्रियां सुबन्तप्रक्रियां कृदन्तप्रक्रियां तद्धितसमासप्रक्रियाञ्च विनापि प्रक्रियाग्रन्थाश्रयेणावबुद्ध्यन्ते स्म। तत्र च सर्वधातूनां सर्वलकारेषु सर्वप्रक्रियासु चैकैकशो रूपाणि सूत्रपुरस्सरं संसाधयन्तः प्रक्रियाग्रन्थानामभावेऽपि ते छात्रा न कीदृशीमपि न्यूनतां तत्रानुभवन्ति स्म। अयं क्रमस्तदानीं सर्वसाधारणेषु प्रचलित आसीत्। प्रक्रियाग्रन्थनिर्माणस्य प्रश्न एव नोदतिष्ठत। कालप्रभावाद्यदा ह्यध्यापकास्तद्रीत्या छात्राणामध्यापने प्रमादाद् भूयासं क्लेशमनुभवन्तः शैथिल्यमाजह्रुस्तदा ते तामेव *प्रयोगसाधनसमये छात्रैर्लिपिकृतां प्रयोगसाधनप्रक्रियां ग्रंथरूपेण निर्मापयाञ्चक्रुः*। शनैः शनैरष्टाध्यायीक्रमेण प्रयोगसाधनप्रक्रिया तु शिथिलतामगात्। प्रक्रियाग्रन्थानामाश्रयग्रहणमेवोत्तरोत्तरमवर्द्धत॥

तदानीमप्येतत्त्वासीदेव यदष्टाध्यायीमभ्यस्य तत्क्रमानुरूपं सूत्रार्थं विज्ञायैव प्रक्रियाग्रन्थरूपेण परिणतानां सिद्धान्तकौमुदीपूर्ववर्तिनां रूपावतार-प्रक्रियारत्न-रूपमाला-प्रक्रियाकौमुद्यादीनां, प्रक्रियासर्वस्वप्रभृतीनाञ्चाष्टाध्यायीकालिकच्छात्रकर्तृकप्रयोगसाधनलिपिरूपाणामाश्रयमध्येतारो गृह्णन्ति स्म। अष्टाध्याय्याश्रयणन्तु तदानीमनिवार्यमेवासीद्, यथा काशीस्था महाविद्वांसः "तात्या" शास्त्रिप्रभृतयोऽपि 'न मया समयाभावादद्याष्टाध्यायीसूत्राणामावृत्तिः कृता' इति स्वच्छात्रेषूदघोषयन्।

प्रक्रियाग्रन्थानां निर्मित्यनन्तरमपि यद्यष्टाध्यायीसूत्रपाठस्य त्यागो नाभविष्यत्, तदाप्यष्टाध्याय्या उपस्थित्या प्रक्रियाग्रन्थेभ्योऽपि साधारणबुद्धिभ्यश्छात्रेभ्यस्तत्र किञ्चित्सौकर्य्यमभविष्यत्—(यदि मूलं त्यक्त्वा शाखासु गमनं नाभविष्यत्)। एवमष्टाध्यायीसूत्रक्रमपाठाश्रयेण प्रक्रियाग्रन्थानामभ्यासो बहुकालाय प्राचलत्। अग्रे बहुतिथे काले गतेऽष्टाध्यायीसूत्रक्रमपाठः प्रमादात् सर्वथाऽपि विलुप्तः, केवलं प्रक्रियाग्रन्थानां पठन-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पाठनक्रम एव सर्वत्र प्रचलितोऽभूत्। तदारभ्यैवैतेषां प्रक्रियाकौमुदी-सिद्धान्तकौमुदीप्रभृतीनामुत्पत्तिपरम्परा तेषां व्यापकता च समजनि। एतत्कालमध्य एवैकैकस्योपर्यपरस्य प्रक्रियाग्रन्थस्य निर्माणप्रवाहः प्रवृत्तः॥ प्रक्रिया ग्रन्थानामुत्पत्तिक्रमविषय इदानीं किञ्चिदत्र विमृशामः—

प्रक्रियाग्रन्थानामितिहासः

(१) *रूपावतारः*—(*सं० ११४० विक्रमीयः*)

अष्टाध्यायीग्रहणेऽसमर्थेभ्योऽल्पबुद्धिभ्यश्च व्यावहारिकज्ञानमात्रधिया *बौद्धभिक्षुणा धर्मकीर्तिना* प्रक्रियाक्रमस्य सर्वप्रथमो ग्रन्थः 'रूपावतार' नामकोऽष्टाध्यायीसूत्रे—व्यरचि। अस्मिन् *ग्रन्थेऽष्टाध्यायीक्रमं परित्यज्य* केवलं प्रयोगसाधनमभिलक्ष्य संज्ञा—संहिता—सुबन्त—अव्यय—स्त्रीप्रत्यय—कारक—समास—तद्धितप्रकरणानि प्रथमभागे सङ्ग्रथितानि। दशलकार—दशप्रक्रिया—कृदन्तञ्चापरभागे। (स्वरवैदिकप्रकरणं विहाय) २६६४ सूत्राणि प्रक्रियाक्रमेण व्याख्यातानि। प्रक्रियाग्रन्थानामुत्पत्तिर्बौद्धकाल एवाभूत् इत्यपि ध्येयम्।

(२) *प्रक्रियाकौमुदी*—(*सं० १४८० वि०*)—

यद्यपि 'प्रक्रियारत्नम्' 'रूपमाला' इमौ प्रक्रियाग्रन्थौ रूपावतारानन्तरं निर्मिताविति ज्ञायते तथापि तयोरनुपलम्भात् प्रक्रियाकौमुदीविषय एवोच्यते। प्रक्रियाकौमुदीनामकोऽयं ग्रन्थो *रामचन्द्राचार्येण*, सूत्राणां व्याख्यानं किञ्चिद्विस्तरेण विधाय, स्वरवैदिकप्रकरणे च संयोज्य २४७० सूत्राणि व्याचक्षाणेन रूपावतारानन्तरं निरमायि। तेन च प्रक्रियाक्रमस्य विस्तारः प्रचारश्च प्राचुर्येणाभूत्। ग्रन्थोऽयं सिद्धान्तकौमुद्या आधार इति मन्तव्यम्।

(३) *सिद्धान्तकौमुदी*—(*सं० १५१०—१५७५ वि०*)

भट्टोजिदीक्षितमहोदयेनाष्टाध्यायीक्रमं परित्यज्यैव पूर्वप्रचलितप्रक्रिया-कौमुदीक्रममेवाश्रित्य सिद्धान्तकौमुदीनामकस्स्वग्रन्थो व्यरचि। तत्र च प्रायः सर्वाण्यपि सूत्राणि (३९७८) व्याख्यातानि। तेन चायं यत्नः कृतो यन्मद्रचितोऽयं ग्रन्थः "सिद्धान्तकौमुदी" एव सर्वत्र प्रचलेत्। व्याकरणविषये *सिद्धान्तकौमुदीं विहाय कस्याप्यन्यग्रन्थस्याध्ययनाध्यापनं न तिष्ठेत्*। अनेन कियन्महत्काठिन्यं छात्रेभ्यो भविष्यतीति तु न विचारि-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तम्। तस्यैवैतत् फलं यत्संस्कृतस्याध्येतारो द्वादशवर्षाण्यधीत्य व्याकरणार्णवस्यापि पारं न यान्ति, अन्यशास्त्राणां तु का कथा? तदपि "द्वादशभिर्वर्षैर्व्याकरणं श्रूयते" इति श्रवणमात्रं, ज्ञानं पुनरपि सन्दिग्धमेव॥

(४) *मध्यकौमुदी*—

शिखरमध्यारूढेयं सिद्धान्तकौमुदी यदा छात्रेभ्योऽतीव दुःखावहा-दुरूढा-अतीव-परिश्रमसाध्या-अतिकालसाध्या चेत्यनुभूतवान् वरदराजस्तदैव सं० २११७ सूत्राणि व्याख्याय मध्यकौमुद्या निर्माणं कृतवान्। मध्यकौमुदीनिर्माणमेव सिद्धान्तकौमुद्यसाफल्यस्य प्रत्यक्षं प्रमाणम्। अन्यथा काऽऽसीदावश्यकता मध्यकौमुदीनिर्माणस्य? एवं शिखरान्मध्यमार्गे समागता संस्कृताध्ययनपद्धतिरिति सुव्यक्तम्॥

(५) *लघुकौमुदी*—

मध्यमार्गेणापि यदा सन्तोषो नाभूत् तदानीमन्यमपि लघुतरमार्गमन्विच्छता तेनैव वरदराजेन स्वपूर्वनिर्मित्या मध्यकौमुद्या असन्तुष्य ११८८ सूत्राणि व्याख्याय लघुकौमुदी विरचिता। *शिखरान्मध्ये, मध्यान्नीचैरागतोऽयं व्याकरणस्य पठनपाठनक्रमः*। यदि सिद्धान्तकौमुद्यां काठिन्यं नाभविष्यत्तर्हि मध्यकौमुदीलघुकौमुदीग्रन्थयोर्निर्माणं कदापि नाभविष्यदिति सुव्यक्तम्। तयोर्निर्माणं प्रत्यक्षं प्रमाणं यत् सिद्धान्तकौमुदीक्रमेण न सर्वेषामध्ययनं सुकरं समभवत्, नात्र सन्देहावसरः॥

अष्टाध्यायीक्रम एव पुनः समुपस्थितः

"वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता"—(अथर्व)

यथा चायं भूगोलो वर्त्तुलाकारः, तत्र 'यतश्चलितुमारब्धस्य तत्रैव पुनः प्रत्यावृत्तिर्भवतीति' जनश्रवस्तथ्यञ्च, तथैवायमष्टाध्यायीक्रमोऽद्य स्वतन्त्रभारते पुनरपि यथाक्रमं समाप्तः।

मूलतोऽतिदूरङ्गता व्याकरणस्याध्येतार इति पूर्वमस्माभिः प्रतिपादितम्, *यस्य वृक्षस्य मूलात् सम्बन्धो विच्छिद्यते, कालक्रमेण स्वयमेव तस्य वृक्षस्य पत्राणां पुष्पाणाञ्च नाशो दुर्निवारः*, अतः पुनर्मूलस्यैवाश्रये कल्याणसम्भव इति सुधिय एव प्रमाणम्। अतोऽधुनाऽष्टाध्यायीपद्धत्याश्रयणं संस्कृताध्यायिनां भारतस्य च कृते कल्याणकरं स्वश्रेयस्साधकञ्च भवेदित्याशास्यते॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सूत्राणि *विभिन्नप्रकरणेषु* विकीर्णानि वर्त्तन्ते, तेषां विभिन्नप्रकरणपठित-सूत्राणां परस्परं ज्ञानं कथङ्कारं सम्भवेत् ?"

(५) अष्टाध्याय्यां *'विप्रतिषेधे परं कार्यम्'* *'असिद्धवदत्राभात्'* *'पूर्वत्रासिद्धम्'* इत्याद्यधिकारसूत्राणां कार्येषु सूत्रक्रमज्ञानस्य महत्यावश्यकतैव न विद्यते, अपि तु तेषां क्रमज्ञानस्यानिवार्यताऽप्यपेक्षिता भवति। सूत्रपाठ-क्रमज्ञानमन्तरा 'पूर्वम्' 'परम्' 'आभात्' 'त्रिपादी' 'सपादसप्ताध्यायी' बाध्यबाधकभावश्चेत्यादिज्ञानं न कदापि सम्भवत्यध्येतॄणामध्यापकाना-ञ्चापि। सिद्धान्तकौमुदीप्रक्रियाक्रमेणाधीतवतां छात्राणां सूत्रपाठक्रम-ज्ञानस्याभावान्महाभाष्यं पूर्णतया बुद्धौ नाधिरोहति। प्रतिपदं प्रतिसूत्रं वा तत्र महत् कष्टमनुभूयते, स्वाभाविकञ्चैतत्। स्वप्रत्यक्षीकृतमेतत् सर्वं, यदत्रास्माभिः प्रतिपाद्यते॥

(६) सिद्धान्तकौमुदीक्रमेणाधीतं व्याकरणं छात्राणां *स्मृतिपथाच्छीघ्रं विलुप्यते*। पुनः पुनर्घोषणेनापि सत्वरमेव विस्मृतं भवति। सर्वेषामेव *व्युत्क्रमेणाधीतवतां* छात्राणां स्वानुभूतिरेवात्र प्रमाणम्। नास्त्यत्र कस्य-चिदन्यस्य कथनावसरः।

(७) अष्टाध्यायीक्रमे सूत्राणां प्राप्तिः सामान्येनावबोध्यते सिद्धान्त-कौमुदीक्रमे *तु यत् सूत्रं यत्रोल्लिखितं विद्यते तत्रैव तस्य* प्राप्तिश्छात्रस्य मस्तिष्कमारोहति, न चान्यत्रापि तस्य प्राप्तिश्छात्रस्य मस्तिष्के सौकर्य्ये-णोपतिष्ठते। एकस्मिन्नुदाहरणे प्रयुक्तसूत्रस्य तत्सदृश उदाहरणान्तरे प्रयोक्तुमाधुनिकप्रक्रियानुसारेणाधीतवन्तश्छात्राः सर्वथैव बिभ्यति। 'उपेन्द्रः' इति प्रयोग उदाहरणे वा प्रयुक्तं *'आद् गुणः'* इति सूत्रं 'दिनेशः' इत्युदाहरणे प्रयोगे वा प्रयोक्तुं ते छात्रा बहुधा बिभ्यन्तो दृश्यन्ते।

(८) *लेटि रूपाणि*, स्वरवैदिकसूत्राणामर्थोदाहरणानि, तेषां सिद्धिर्वा-ऽष्टाध्यायीक्रम आरम्भादेव 'वृद्धिरादैच्' इति सूत्रस्योदाहरणसिद्धावेवा-वबोध्यन्ते। सिद्धान्तकौमुदीक्रमे तु ग्रन्थस्यान्ते संस्थापितत्वादाजीवनमपि तत्र यत्नो न क्रियते। यतो ह्युपेक्षिते तत्प्रकरणे, अतस्तत्र कथं गतिः स्यादिति सर्वजनीनोऽयमनुभवः॥ अन्येऽपि बहवो दोषाः सिद्धान्त-कौमुदीप्रक्रियया व्याकरणाध्ययनाध्यापने च सन्ति, विस्तरभिया विरम्यते॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अष्टाध्यायीक्रमेणाध्ययने ये गुणाः सन्ति, ते ये सम्पूर्णमष्टाध्यायी कण्ठस्थीकृत्याधीयते, तेभ्य एवोपकारिणो भवन्ति, तत्र महाभाष्याध्ययन पर्यन्तमष्टाध्यायीसूत्राणां पारायणस्यावश्यकता भवति। येषामष्टाध्या कण्ठस्था न भवति, अष्टाध्याय्याः पठनञ्चारभन्ते, ते तु तेभ्यो गुणेभ वञ्चितास्तिष्ठन्ति। सति तत्रैवं अष्टाध्यायीक्रमज्ञानाभावे तैर्महाभाष्याद्य पठने महत् कष्टमनुभूयते अतो महाभाष्यस्याद्यन्ताध्ययनकर्तृणां सर्व प्रथममष्टाध्याय्याः कण्ठस्थीकरणमनिवार्यमेवेति दिक्॥

ये तु प्रौढाः पठनार्थिनो लघुकौमुदीं मध्यकौमुदीं वाऽधीयते (यत्र तेषां घोषणस्य महान् परिश्रमः *कालश्चापि सुमहान् वृथैव जायते*) तेभ्योऽप्य ष्टाध्यायीसूत्रपाठस्य कण्ठस्थीकरणेन विनापि तावज्ज्ञानमष्टाध्यायीक्रमा त्रेण (केवलं सूत्रार्थप्रयोगसिद्धिमात्रेणेत्यर्थः) षट्स्वेव *मासेषु* सम्पद्यते, याव ताभ्यां लघुकौमुदीमध्यकौमुदीभ्यां द्वित्रेषु वर्षेष्वपि न सम्भवति। समयस परिश्रमस्य च महान् लाभोऽष्टाध्यायीक्रमस्य महद् वैशिष्ट्यम्।

अत एव "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" अष्टाध्याय्यैवैतत् स सम्भवति नान्यथेत्यस्माभिर्मुहुर्मुरुच्यते॥

—:o:—

आचार्य पाणिनि का महत्व

आचार्य पाणिनि केवल शब्द शास्त्र के ही ऋषि (साक्षात् कृतधर्मा) नहीं थे, अपितु सम्पूर्ण लौकिक वैदिक वाङ्मय में अव्याहतगति थे ऐसा सभी का मत है। वैदिक वाङ्मय सम्बन्धी विद्वत्ता का निर्देश उनकी बनाई अष्टाध्यायी के सूत्रों में जहाँ तहाँ मिलता ही है, किन्तु भूगोल-इतिहास-मुद्राशास्त्र तथा लोकव्यवहार के भी महाविद्वान् थे ऐसा पाणिनि शास्त्र के अवगाहन से प्रतीत होता है। उनका शब्दशास्त्र न केवल व्याकरण का ही प्रतिपादन करता है, अपितु भूगोल इतिहास आदि विषयों के ज्ञान के लिए भी इनके शास्त्र की अद्भुत महिमा एवं महान् उपयोगिता है, ऐसा विद्वान् लोग अनुभव करते हैं।

पाणिनीय अष्टाध्यायी का गौरव न केवल हम ही घोषित करते हैं अपितु भगवान् पतञ्जलि भी आचार्य पाणिनि का महान् गौरव आदर के साथ मुक्त कण्ठ से प्रदर्शित करते हैं। जैसे कि—

(१) "प्रमाणभूत आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः शुचाववकाशे प्राङ्मुख

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

रूप में अवरोधक बन गया है। जब तक इसकी रुकावट नहीं हटायी
ेगी, अर्थात् सरल नहीं किया जायेगा तब तक इस देववाणी का पुन-
ार सम्भव नहीं, यह भी निश्चित है। जो कोई अपने आप या अन्यों
प्रेरणा के द्वारा धर्म, देश भक्ति की भावना से संस्कृत का अध्ययन
म्भ करते हैं, वे भी पूर्वोक्त अर्थ रहित घोखन की दुरूहता को
कर संस्कृत में अध्ययन से हताश हो कर जहाँ-तहाँ सब जगह
ाते हुए देखे जाते हैं। इस प्रकार के संस्कृत के अध्ययन से पराङ्मुख
एवं भागे हुए भुक्तभोगियों की संख्या न जाने भारत में कितने
व होगी। न केवल उनके द्वारा (स्कूल, कॉलेज आदि में
ने वाले बी. ए., एम. ए. उपाधिधारियों एवं आर्य भाषा के विशे-
ों द्वारा) संस्कृत का अध्ययन छोड़ दिया जाता है, अपितु
ो उनकी सन्तानों का भी संस्कृत के अध्ययन का मार्ग रुक जाता
। इस प्रकार के लोग अपनी सन्तानों को ऐसा उपदेश देते हुए देखे
ते हैं—"पुत्र, मैंने बाल्यकाल में संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया
किन्तु संस्कृत अध्ययन अति क्लिष्ट, महा कष्टसाध्य, दुरूह एवं बिना
जाने घोखने की विद्या है, ऐसा समझकर चाहते हुए भी मैंने
छोड़ दिया। तुम भी इसमें समय एवं शक्ति का नाश मत करो"।
प्रकार के प्रवाद से संस्कृत का अध्ययन देश से लुप्तप्राय ही हो
। जो कोई उत्कृष्ट मेधा वाले हैं, उन्हें अंगरेज पहले मक्खन के
समान इकट्ठा करके इङ्गलैण्ड आदि देशों में उपाधि का लोभ प्रदर्शन
के बड़ी बड़ी छात्रवृत्तियाँ देकर, विदेशी वेश-भूषा एवं भावना से
करके अन्त में बड़े बड़े वेतन देकर राजकीय कार्य में लगा देते
और दुर्भाग्य से अभी तक वही प्रक्रिया चल रही है जिससे वे
भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं संस्कृत-साहित्य से पराङ्मुख हो
हैं। जो भिक्षु-वृत्ति के साधारण बुद्धि वाले देश एवं संसार के
भविष्यत्, वर्त्तमान विषय से सर्वथा अनभिज्ञ हैं, वह प्रायः करके
बचे हुए फोक के समान देखे जाते हैं। वे संस्कृत के अध्ययन में
ी कर्तव्य-बुद्धि से नहीं प्रवृत्त होते, वरन् धनाभाव ही उनकी
त्ति का हेतु है। इस प्रकार की विषम समस्या में किस प्रकार संस्कृत
अभ्युदय हो, यह बात विद्वानों के द्वारा विचारणीय है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

व्याकरण के अध्ययन का अतीव सरल उपाय

व्याकरण का अध्ययन जब अनिवार्य था तथा बिना इसके साहित्य में प्रवेश संभव नहीं, यह हम पहले कह चुके हैं। अवस्था में "व्याकरण के अध्ययन का कोई सरल उपाय हो" विचार उत्पन्न होने पर हम एक ही मूल तत्त्व बताते हैं—

'अष्टाध्यायी-क्रम से अध्ययन ही इसके पुनरुद्धार का सबसे औषध है'।

बहुत काल के पश्चात् इस बीसवीं शताब्दी में अष्टाध्यायी क्र पुनरुद्धार में पहला प्रयास श्रीमत् परमहंस परिव्राजक आचार्य विद्वान् विरजानन्द सरस्वती स्वामी ने किया। इसके पश्चात् उनके श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमद् दयानन्द सरस्वती स्वामी कृपा है कि हम इस समय अष्टाध्यायी पठन-पाठन के क्रम के विष कुछ कहने में समर्थ हो रहे हैं।

अष्टाध्यायी-क्रम का वैशिष्ट्य

(१) इसमें क्या रहस्य है, ऐसी आकांक्षा होने पर कहते हैं :-

मूल अष्टाध्यायी ग्रन्थ का अभ्यास ही इसमें रहस्य है और नहीं। *"आदगुणः"* (६।१।८४) यह सूत्र हम इस प्रकार पढ़ाते हैं

'आत्' ५।१ (पंचमी का एक वचन), 'गुणः' १।१ (प्रथमा एकवचन)। ऊपर से *'एकः पूर्वपरयोः'* (६।१।८१), 'इको य (६।१।७४), *'संहितायाम्'* (६।१।७०) इन सूत्रों से 'एकः', 'पूर्वपर 'अचि', 'संहितायाम्' इन पदों की अनुवृत्ति आ रही है। यहाँ शब्द के अध्याहार के बिना भी सूत्र का अर्थ इस प्रकार हो जाता है

'आत् अचि संहितायां पूर्वपरयोः गुणः एकः'। आगे 'स्या 'भवेत्' 'भविष्यति', 'भवति', 'वर्त्तते', 'संपद्यते', 'जा इनमें से किसी भी क्रिया पद का अध्याहार कर सकते हैं, इसमें विवाद नहीं। सूत्र में ही सूत्र का अर्थ है, यह रहस्य है। बहु छात्रों को (चाहे वे बालक हों या प्रौढ़) सूत्र से ही जनाना चा मूल अष्टाध्यायी की पुस्तक ही छात्र के लिए यह सब कुछ प्रदर्शित है, एवं जनाती है। सूत्रों के धोखे बिना भी छात्र इस प्रकार प्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ओ३म्

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव ॥ यजु० ३०।३ ॥

अथ शब्दानुशासनम् ॥

अथ अव्ययपदम् ॥. शब्दानुशासनम् १।१ ॥ *समास* :—शब्दानाम् अनुशासनम् शब्दानुशासनम्, षष्ठीतत्पुरुषसमासः ॥ अत्र कर्मणि षष्ठी ॥ *अर्थ* :—अथ इत्ययमधिकारार्थः प्रयुज्यते। शब्दानुशासनम् = व्याकरणशास्त्रम् आरभ्यत इत्यर्थः ॥

भाषार्थ :—इस सूत्र में 'अथ' शब्द अधिकार के लिये है। यहाँ से लेकर लौकिक (लोक में प्रयुक्त) तथा वैदिक (वेद में प्रयुक्त) शब्दों का अनुशासन, उपदेश, (अर्थात् व्याकरण का) आरम्भ करते हैं ॥ यहाँ से व्याकरण शास्त्र का अधिकार चलता है, ऐसा समझना चाहिये ॥

[अथ प्रत्याहारसूत्राणि]

अइउण् ॥१॥

अ, इ, उ इत्येतान् वर्णानुपदिश्यान्ते णकारमितं करोति (पाणिनिराचार्यः) प्रत्याहारार्थम्। तेन अण् प्रत्याहारो गृह्यते, *उरण्रपरः* (१।१।५०) इति सूत्रे ॥

भाषार्थ :—'अ, इ, उ' इन तीन वर्णों का उपदेश करके, अन्त में (आचार्य पाणिनि ने) इत्संज्ञक (१।३।३) णकार रखा है। इससे एक 'अण्' प्रत्याहार सिद्ध होता है, जिसका ग्रहण उरण्रपरः (१।१।५०) सूत्र में ही होता है ॥

विशेष :—प्रत्याहार = संक्षेप करने को कहते हैं, जैसे अण् कहने से अ, इ, उ तीन वर्णों का ग्रहण होता है, अच् कहने से अ से च् तक सब स्वरों का। हल् कहने से सारे व्यञ्जनों का ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ऋलृक् ॥२॥

ऋ, ऌ इत्येतौ वर्णावुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते ककारमितं करोति प्रत्या
हारार्थम् । तस्य त्रिषु ग्रहणं भवति । अक्—*अकः सवर्णे दीर्घ*
(६।१।९७) । इक्—*इको गुणवृद्धी* (१।१।३) । उक्—*उगितश्च* (४।१।६)

भाषार्थः—ऋ, ऌ इन वर्णों का उपदेश करके, अन्त में कका
इत्संज्ञक रखा है, प्रत्याहार बनाने के लिये । इससे ३ प्रत्याहार बनं
हैं । अक्, इक्, उक् कहाँ २ बनते हैं सो ऊपर संस्कृत में दिख
दिये हैं ।

एओङ् ॥३॥

ए, ओ इत्येतौ वर्णावुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते ङकारमितं करो
प्रत्याहारार्थम् । तस्य ग्रहणं भवति एङ् इत्येकेन *एङि पररूप*
(६।१।९१) ।

भाषार्थ :—ए, ओ इन दो वर्णों का उपदेश करके अन्त में ङ
इत्संज्ञक रखा है, इससे एक एङ् प्रत्याहार बनता है ॥

ऐऔच् ॥४॥

'ऐ, औ' इत्येतौ वर्णावुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते चकारमितं करो
प्रत्याहारार्थम् । तस्य ग्रहणं भवति चतुर्षु । अच्—*अचोन्त्यादि*
(१।१।६३) । इच्—*इच एकाचोम्प्रत्ययवच्च* (६।३।६६) । एच्—*एचोय*
वायावः (६।१।७५) । ऐच्—*वृद्धिरादैच्* (१।१।१) ।

भाषार्थ :—ऐ, औ इन वर्णों का उपदेश करके अन्त में इत्संज्ञ
'च्' रखा है । इससे ४ प्रत्याहार बनते हैं । अच्, इच्, एच्, ऐच्

हयवरट् ॥५॥

ह, य, व, र इत्येतान् वर्णानुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते टकारमितं करो
प्रत्याहारार्थम् । तेन *शश्छोऽटि* (८।४।६२) इत्यत्र 'अट्' गृह्यते ॥

भाषार्थ :—ह, य, व, र इन वर्णों का उपदेश करके अन्त में
इत्संज्ञक रखा है । इससे एक अट् प्रत्याहार ही बनता है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

विदित रहे कि *हयवरट्* से लेकर *हल्* सूत्र तक जितने व्यञ्जनों का उपदेश किया है, उन सब में अकार उच्चारणार्थ है। वस्तुतः ये ह् य् इस प्रकार हैं।

लण् ॥६॥

ल इत्येकं वर्णमुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते णकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम्। तेन प्रत्याहारत्रयसिद्धिः। *अण्*—*अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः* (१।१।६८)। *इण्*—*इरकोः* (८।३।५७)। *यण्*—*इको यणचि* (६।१।७४)॥

भाषार्थ :—ल इस वर्ण का उपदेश करके अन्त में इत्संज्ञक ण् रखा है, प्रत्याहार बनाने के लिये। इससे तीन प्रत्याहार बनते हैं। अण्, इण्, यण्॥

अमङणनम् ॥७॥

ञ; म, ङ, ण, न इत्येतान् वर्णानुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते मकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम्। तस्य चतुर्षु ग्रहणं भवति। *अम*—*पुमः खय्यम्परे* (८।३।६)। *यम्*—*हलो यमां यमि लोपः* (८।४।६३)। *ङम्*—*ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्* (८।३।३२)। *जम्*-*जमन्ताड्डः* (उणा० १।११४)॥

भाषार्थ :—ञ, म, ङ, ण, न इन वर्णों का उपदेश करके अन्त में म् इत्सञ्ज्ञक रखा है, प्रत्याहार सिद्धि के लिये। इससे चार प्रत्याहार बनते हैं। अम्, यम्, ङम्, ञम्॥

झभञ् ॥८॥

झ, भ इति द्वौ वर्णावुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते ञकारमितं करोति प्रत्याहारसिद्ध्यर्थम्। तेन *अतो दीर्घो यञि* (७।३।१०१) इत्यत्र यञ् प्रत्याहारो गृह्यते॥

भाषार्थ :—झ, भ इन दो वर्णों का उपदेश करके अन्त में ञ् इत्संज्ञक लगाया है, प्रत्याहार बनाने के लिये। इससे एक प्रत्याहार बनता है—यञ्॥

घढधष् ॥९॥

घ, ढ, ध इत्येतान् वर्णानुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते षकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम्। तेन प्रत्याहारद्वयसिद्धिः॥ *झष्*, *भष्*—*एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः*, (८।२।३७)॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—घ, ढ, ध इन वर्णों का उपदेश करके अन्त में ष् इत्संज्ञक रखा है, प्रत्याहार बनाने के लिये। इससे दो प्रत्याहार बनते हैं—झष्, भष्॥

जबगडदश् ॥१०॥

ज, ब, ग, ड, द इत्येतान् वर्णानुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते शकारमितं करोति, षट्प्रत्याहारसिद्ध्यर्थम्। अश्—*भोभगोऽघो अपूर्वस्य योऽशि* (८।३।१७)। हश्—*हशि च* (६।१।११०)। वश्—*नेड्वशि कृति* (७।२।८)। झश्, जश्—*झलां जश् झशि* (८।४।५२)। बश—*एकाचो बशो भष् झषन्तस्य०* (८।२।३७)॥

भाषार्थ :—ज, ब, ग, ड, द इन वर्णों का उपदेश करके अन्त में श् इत्संज्ञक लगाया है, प्रत्याहार बनाने के लिये। इससे ६ प्रत्याहार बनते हैं—अश्, हश्, वश्, झश्, जश्, बश्॥

खफछठथचटतव् ॥११॥

ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त इत्येतान् वर्णानुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते वकारमितं करोति, प्रत्याहारार्थम्। तेन *नश्छव्यप्रशान्* (८।३।७) इत्यत्र छव् प्रत्याहार एव गृह्यते॥

भाषार्थ :—ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त इन वर्णों का उपदेश करके अन्त में व् इत्संज्ञक रखा है, एक प्रत्याहार बनाने के लिये—छव्॥

कपय् ॥१२॥

क, प इत्येतौ वर्णावुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते यकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम्। तस्य ग्रहणं भवति पञ्चसु। यय्—*अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः* (८।४।५७)। मय्—*मय उञो वो वा* (८।३।३३)। झय्—*झयो होऽन्यतरस्याम्* (८।४।६१) खय्—*पुमः खय्यम्परे* (८।३।६)। चय्—*चयो द्वितीयः शरि पौष्करसादेः* (वार्त्तिक ८।४।४७)॥

भाषार्थ :—क, प इन दो वर्णों का उपदेश करके अन्त में य् इत्संज्ञक रखा है, प्रत्याहार बनाने के लिये, इससे पाँच प्रत्याहार बनते हैं—यय्, मय्, झय्, खय्, चय्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शषसर् ॥१३॥

श, ष, स इत्येतान् वर्णानुपदिश्य पूर्वाश्चान्ते रेफमितं करोति प्रत्याहारार्थम्। तस्य ग्रहणं भवति पञ्चसु। *यर्—यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (८।४।४४)*। *झर्-झरो झरि सवर्णे (८।४।६४)*। *खर्—खरि च (८।४।५४)*। *चर्—अभ्यासे चर्च (८।४।५३)*। *शर्—वा शरि (८।३।३६)* ॥

भाषार्थ :—श, ष, स इन वर्णों का उपदेश करके अन्त में र् इत्संज्ञक लगाया है, प्रत्याहार बनाने के लिये। इससे पाँच प्रत्याहार बनते हैं—यर्, झर्, खर्, चर्, शर्॥

हल् ॥१४॥

ह इत्येकं वर्णमुपदिश्य पूर्वाश्चान्ते लकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम्। तस्य ग्रहणं भवति षट्सु। *अल्—अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा (१।१।६४)* *हल्—हलोऽनन्तराः संयोगः (१।१।७)*। *वल्—लोपो व्योर्वलि (६।१।६४)*। *रल्—रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च (१।२।२६)*। *झल्—झलो झलि (८।२।२६)*। *शल्—शल इगुपधादनिटः क्सः (३।१।४५)* ॥

भाषार्थ :—ह इस एक वर्ण का उपदेश करके अन्त में ल् इत्संज्ञक लगाया है, प्रत्याहार बनाने के लिये। जिससे छः प्रत्याहार बनते हैं—अल्, हल्, वल्, रल्, झल्, शल्॥

विशेष :—इन सूत्रों से प्रत्याहार तो सैंकड़ों बन सकते हैं पर पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में ४१ प्रत्याहारों का ही व्यवहार किया है, इसके अतिरिक्त एक उणादिसूत्र में *अमन्ताड्डः* (उणा० १।११४) से अम् प्रत्याहार तथा एक चय् प्रत्याहार *चयो द्वितीयः शरि पौष्करसादेः* (वा० ८।४।४७) इस वार्त्तिक से बनेगा, सो इन दो को मिलाकर कुल ४३ प्रत्याहार हुये॥

यह सारे प्रत्याहार अन्त अक्षरों से लेकर बनाये हैं, यह दूसरे प्रकार अर्थात् आदि से लेकर भी बनाये जा सकते हैं, जिनको हम यहीं दिखाते हैं, यद्यपि अन्त से दिखाना अधिक अच्छा है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अकार से ८ प्रत्याहार—अण्, अक्, अच्, अट्, अण्, अम्, अश्, अल्।

इकार से तीन प्रत्याहार—इक्, इच्, इण्।

उकार " एक " —उक्।

एकार " दो " —एङ्, एच्।

ऐकार " एक " —ऐच्।

हकार " दो " —हश्, हल्।

यकार " पाँच " —यण्, यम्, यञ्, यय्, यर्।

वकार " दो " —वश्, वल्।

रेफ " एक " —रल्।

मकार " " " —मय्।

ङकार " " " —ङम्।

झकार " पाँच " —झष्, झश्, झय्, झर्, झल्।

भकार " एक " —भष्।

जकार " " " —जश्।

बकार " " " —बश्।

छकार " " " —छव्।

खकार " दो " —खय्, खर्।

चकार " एक " —चर्।

शकार " दो " —शर्, शल्।

ये प्रत्याहार अष्टाध्यायी में कुल ४१ हुये, तथा ऊपर के दो, उणादि सूत्र और वार्त्तिक को मिला कर ४३ हुये॥

॥ इति प्रत्याहारसूत्राणि ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

वृद्धिरादैच् ॥१।१।१॥

पदच्छेदः, *विभक्तिः*—वृद्धिः १।१॥ आदैच् १।१॥ *समासः*—आत् च = आच्च, ऐत् च = ऐच्च, आदैच् समाहारद्वन्द्वसमासः॥ संज्ञासूत्रमिदम्॥

अर्थः—आ ऐ औ इत्येतेषां वर्णानां वृद्धिसंज्ञा भवति ॥

उदाहरणानि—भागः, त्यागः, यागः ॥ नायकः, चायकः, पावकः, स्तावकः, कारकः, हारकः, पाठकः पाचकः ॥ शालायां भवः = शालीयः मालीयः ॥ उपगोरपत्यम् = औपगवः औपमन्यवः। ऐतिकायनः, आश्वलायनः, आरण्यः ॥ अचैषीत् अनैषीत्, अलावीत् अपावीत्, अकार्षीत् अहार्षीत्, अपाठीत्[1] ॥

भाषार्थः—[*आदैच्*] आत् = आ, ऐच् = ऐ, औ (तद्भावित = सूत्रों द्वारा वृद्धि होकर बने, अतद्भावित = जो सूत्रों द्वारा वृद्धि होकर नहीं बनते) की [*वृद्धिः*] वृद्धि संज्ञा होती है ॥ यह संज्ञा सूत्र है ॥ यहाँ से 'वृद्धिः' की अनुवृत्ति १।१।३ में जाती है, १।१।२ में अनावश्यक होने से इसका सम्बन्ध नहीं बैठता है ॥

अदेङ्गुणः ॥१।१।२॥

पद० वि०—अदेङ् १।१॥ गुणः १।१॥ *स०*—अत् च = अच्च, एङ् च = अदेङ् समाहारद्वन्द्वसमासः ॥

अर्थः—अ ए ओ इत्येतेषां वर्णानां गुणसंज्ञा भवति ॥

---

१. उदाहरणों की सिद्धि, तथा इनके अर्थ परिशिष्ट में देखें। जिनका परिशिष्ट न हो उनका अर्थ वा सिद्धि भाषार्थ में देखें। जिनके अर्थ विग्रह में ही स्पष्ट हैं, उनका अर्थ प्रायः छोड़ दिया गया है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—चेता, नेता, स्तोता, कर्ता, हर्ता, तरिता, भविता। जयति नयति। पचन्ति, पठन्ति। पचे, यजे, देवेन्द्रः, सूर्योदयः, महर्षिः॥

भाषार्थ :—[अदेङ्] अत् = अ, एङ् = ए, ओ की [गुणः] गुण संज्ञा होती है।

यहाँ से 'गुणः' की अनुवृत्ति १।१।३ तक जाती है।

इको गुणवृद्धी ॥१।१।३॥

पद० वि०—इकः ६।१॥ गुणवृद्धी १।२॥ स०—गुणश्च वृद्धिश्च = गुणवृद्धी, इतरेतरद्वन्द्वसमासः॥ अनुवृत्ति :—वृद्धिः, गुणः॥ अर्थ :—वृद्धिः स्यात्, गुणः स्यात् इति गुणवृद्धिशब्दाभ्यां यत्र गुणवृद्धी विधीयेते, तत्र 'इकः' इति षष्ठ्यन्तं पदमुपस्थितं द्रष्टव्यम् = तत्रेकः स्थाने भवत इत्यर्थः॥

उदा०—मेद्यति, चेता कर्ता, जयति। मार्ष्टि। अलावीत्॥

भाषार्थ :—यह परिभाषा सूत्र है॥ गुण हो जाये, वृद्धि हो जाये, ऐसा नाम लेकर जहाँ [गुणवृद्धी] गुण, वृद्धि का विधान किया जाये, वहाँ [इकः] इक् (= इ उ ऋ ऌ) के स्थान में ही हों। यहाँ 'इकः' में स्थान षष्ठी है, अर्थात् इक् के स्थान में गुण वृद्धि हों॥

इस सारे सूत्र की अनुवृत्ति १।१।६ तक जाती है॥

न धातुलोप आर्द्धधातुके ॥१।१।४॥

पद० वि०—न अव्ययपदम्॥ धातुलोपे ७।१॥ आर्द्धधातुके ७।१॥ स०—धात्ववयवो धातुः, धातोर्लोपो यस्मिन् तदिदं धातुलोपम्, तस्मिन् धातुलोपे, उत्तरपदलोपी बहुव्रीहिसमासः॥ अनु०—इको गुणवृद्धी॥ अर्थ :—आर्द्धधातुकनिमित्ते धातुलोपे इकः स्थाने ये गुणवृद्धी प्राप्नुतस्ते न भवतः॥ उदा०—लोलुवः पोपुवः। मरीमृजः सरीसृपः॥

भाषार्थ :—यह निषेध सूत्र है॥ [आर्द्धधातुके] जिस आर्द्धधातुक को मानकर [धातुलोपे] धातु के अवयव का लोप हुआ हो, उसी आर्द्धधातुक को मानकर इक् के स्थान में जो गुण वृद्धि प्राप्त होते हैं, वे [न] नहीं होते॥

यहाँ से 'न' इस पद की अनुवृत्ति १।१।६ तक जाती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

क्ङिति च ॥१।१।५॥

पद० वि०—क्ङिति ७।१॥ च अ०॥ *स०*—गश्च कश्च ङश्च=क्ङः, क्ङ इतो यस्य स क्ङित्, तस्मिन् क्ङिति, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—इको गुणवृद्धी, न॥ *अर्थ*:—गित् कित् ङित् निमित्तके इकः स्थाने ये गुणवृद्धी प्राप्नुतस्ते न भवतः। *उदा०*—*गित्*-जिष्णुः भूष्णुः। *कित्*-चितः चितवान्, स्तुतः स्तुतवान्, कृतः कृतवान्। मृष्टः मृष्टवान्। *ङित्*-चिनुतः सुनुतः, चिन्वन्ति सुन्वन्ति, मृजन्ति॥

भाषार्थ:—यहां क्ङिति में निमित्त सप्तमी[1] है॥ [*क्ङिति*] कित् गित् ङित् को मानकर [च] भी इक् के स्थान में जो गुण और वृद्धि प्राप्त होते हैं, वे न हों॥

दीधीवेवीटाम् ॥१।१।६॥

दीधीवेवीटाम् ६।३॥ *स०*—दीधी च वेवी च, इट् च=दीधीवेवीटः, तेषां दीधीवेवीटाम्, इतरेतरद्वन्द्वसमासः॥ *अनु०*—इको गुणवृद्धी, न॥

अर्थ:—दीधीङ् (दीप्तिदेवनयोः), वेवीङ् (वेतिना तुल्ये) छान्दसौ धातू अदादिगणे पठितौ स्तः। दीधीवेव्योः इटश्च इकः स्थाने ये गुणवृद्धी प्राप्नुतस्ते न भवतः॥ *उदा०*—आदीध्यनम् आदीध्यकः, आवेव्यनम् आवेव्यकः॥ पठिता कणिता॥

भाषार्थ;—[*दीधीवेवीटाम्*] दीधी वेवी धातुओं, तथा इट् के इक् के स्थान में जो गुण वृद्धि प्राप्त हों, वे नहीं होते॥ इट् की वृद्धि का उदाहरण नहीं हो सकता, अतः नहीं दिखाया है॥

---

१. सप्तमी तीन प्रकार की होती है (i) पर सप्तमी—परे होने पर (ii) विषय सप्तमी—विषय में (iii) निमित्त सप्तमी—निमित्त मानकर। सो यहां निमित्त सप्तमी है। अर्थात् गित्, कित्, ङित् को निमित्त मानकर, ऐसा अर्थ समझना चाहिये॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

हलोऽनन्तराः संयोगः ॥१।१।७॥

हलः १।३॥ अनन्तराः १।३॥ संयोगः १।१॥ *स०*—न विद्यतेऽन्तरं येषाम् = ते अनन्तराः, बहुव्रीहिः ॥ *अर्थः*—अनन्तराः = व्यवधानरहिता हलः संयोगसंज्ञका भवन्ति ॥ *उदा०*—अग्निः, अत्र ग् न्। अश्वः = श् व्। इन्द्रः = न् द् र्। गोमान्, यवमान्, चितवान् ॥

भाषार्थः—[*अनन्तराः*] व्यवधान रहित (जिनके बीच में अच् न हों ऐसे) [*हलः*] हलों (दो या दो से अधिक) की [*संयोगः*] संयोग संज्ञा होती है ॥

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः ॥१।१।८॥

मुखनासिकावचनः १।१ ॥ अनुनासिकः १।१ ॥ *स०*—मुखञ्च नासिका च = मुखनासिकम्, ईषद्वचनम् आवचनम्, मुखनासिकम् आवचनं यस्य, स मुखनासिकावचनः, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ *अर्थः*—मुखनासिकमावचनं यस्य वर्णस्य सोऽनुनासिकसंज्ञको भवति ॥ *उदा०*—अभ्र आँ अपः (ऋ० ५।४८।१ ॥ निरु० ५।५), चन आँ इन्द्रः। सुँ, पठँ, एधँ, गाधृँ, ञिमिदाँ ॥

भाषार्थ :—यह संज्ञा सूत्र है ॥ [*मुखनासिकावचनः*] कुछ मुख से, कुछ नासिका से (अर्थात् दोनों की सहायता से) बोले जाने वाले वर्ण की [*अनुनासिकः*] अनुनासिक संज्ञा होती है ॥ अभ्र आँ अपः, चन आँ इन्द्रः यहाँ इन उदाहरणों में 'आङ्' के आ का *आङोऽनुनासिकश्छन्दसि* (६।१।१२२) से अनुनासिक विधान होने पर, प्रकृत सूत्र ने बताया, कि अनुनासिक किसे कहते हैं ॥ सुँ के अनुनासिक अच् का *उपदेशेऽजनुनासिक इत्* (१।३।२) से इत् संज्ञा होकर लोप होता है ॥ उपदेश क्या है, वा अनुनासिक चिह्न कहाँ वा कब थे ? यह हमने परिशिष्ट १।१।१ में लिखा है, और १।३।२ सूत्र पर भी लिखा है, पाठक वहीं देखें ॥

तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् ॥ १।१।९ ॥

तुल्यास्यप्रयत्नं १।१ ॥ सवर्णम् १।१ ॥ *स०*—आस्ये प्रयत्नः, आस्यप्रयत्नः, सप्तमीतत्पुरुषः। तुल्य आस्यप्रयत्नो यस्य, (येन सह)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तत् तुल्यास्यप्रयत्नं, बहुव्रीहिः। आस्ये भवं आस्यम्॥ अर्थः—तुल्य आस्ये प्रयत्नो येषां, ते वर्णाः परस्परं सवर्णसंज्ञका भवन्ति॥ उदा०—दण्डाग्रम्, खट्वाग्रम्। यदीदम् कुमारीशः भानूदयः मधूदकम् कर्त्तृकारः॥

भाषार्थ :—यह संज्ञासूत्र है॥ [*तुल्यास्यप्रयत्नं*] आस्य अर्थात् मुख में होने वाला स्थान और प्रयत्न तुल्य हो जिनका, ऐसे वर्णों की परस्पर [*सवर्णम्*] सवर्ण संज्ञा होती है॥

उदा०—दण्डस्य अग्रम्=दण्डाग्रम् (दण्ड का अगला भाग), खट्वा+अग्रम्=खट्वाग्रम् (खाट का अगला भाग), यदि+इदम्=यदीदम् (यदि यह) कुमारी+ईशः=कुमारीशः (कुमारी का स्वामी) भानु+उदयः=भानूदयः (सूर्य का उदय) मधु+उदकम्=मधूदकम् (मीठा जल) कर्तृ ऋकारः=कर्तृकारः (कर्तृ शब्द का ऋकार)॥

इन सब उदाहरणों में सवर्ण संज्ञा होने से, सवर्णीय अच् परे रहते *अकः सवर्णे दीर्घः* (६।१।९७) से दीर्घ हो जायेगा, यही प्रयोजन है॥ इस सारे सूत्र की अनुवृत्ति १।१।१० तक जाती है॥

नाज्झलौ॥ १।१।१०॥

न अ०॥ अज्झलौ १।२॥ स०—अच् च हल् च=अज्झलौ इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्॥ अर्थः—तुल्यास्यप्रयत्नावपि अच्-हलौ परस्परं सवर्णसंज्ञकौ न भवतः॥ उदा०—दण्डहस्तः, कुमारी शेते। वैपाशो मत्स्यः, आनडुहं चर्म॥

भाषार्थ :—स्थान और प्रयत्न तुल्य होने पर भी [*अज्झलौ*] अच् और हल् की परस्पर सवर्ण संज्ञा [*न*] नहीं होती है॥

[अथ प्रगृह्यसंज्ञाप्रकरणम्]

ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्॥ १।१।११॥

ईदूदेद्द्विवचनम् १।१॥ प्रगृह्यम् १।१॥ स०—ईच्च ऊच्च एच्च=ईदूदेतः, द्वन्द्वः। ईदूदेतोऽन्ते यस्य तद् ईदूदेदन्तम्, बहुव्रीहिः ईदूदेदन्तं च तद् द्विवचनं च ईदूदेद्द्विवचनं, कर्मधारयस्तत्पुरुषः॥ अर्थः—ईदाद्यन्तं द्विवचनं शब्दरूपं प्रगृह्यसंज्ञं भवति॥ उदा०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अग्नी इति, वायू इति, माले इति। पचेते इति, पचेथे इति। इन्द्राग्नी इमौ, इन्द्रवायू इमे सुताः (ऋ० १।२।४)॥

भाषार्थ :—[ईदूदेद्द्विवचनम्] ईत्=ई, ऊत्=ऊ, एत्=ए जिनके अन्त में हों, ऐसे जो द्विवचन शब्द हैं, उनकी [*प्रगृह्यम्*] प्रगृह्य संज्ञा होती है॥

यहाँ से '*प्रगृह्यम्*' की अनुवृत्ति १।१।१८ तक, तथा ईदूदेत् की १।१।१२ तक जाती है॥

अदसो मात्॥ १।१।१२॥

अदसः ६।१॥ मात् ५।१॥ अनु०—ईदूदेत्, प्रगृह्यम्॥ अर्थ :—अदसः सम्बन्धी यो मकारः, तस्मात् परे ये ईदूदेतः तेषां प्रगृह्यसंज्ञा भवति॥ उदा०—अमी अत्र, अमी आसते। अमू अत्र, अमू आसाते॥ एकारस्योदाहरणं नास्ति॥

भाषार्थ :—[अदसः] अदस् शब्द के [मात्] मकार से परे ई, ऊ, ए की प्रगृह्य संज्ञा होती है॥

शे॥ १।१।१३॥

'शे' इति लुप्तप्रथमान्तो निर्देशः सुपां सुलुक्० (७।१।३९) इत्यनेन छान्दस आदेशो गृह्यते॥ अनु०—'प्रगृह्यम्'॥ अर्थ :—शे इत्यस्य प्रगृह्यसंज्ञा भवति॥ उदा०—अस्मे इन्द्राबृहस्पती (ऋ० ४।४९।४), युष्मे इति, अस्मे इति॥

भाषार्थ :—सुपों के स्थान में जो [शे] शे आदेश (७।१।३९) होता है, उसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है॥

निपात एकाजनाङ्॥१।१।१४॥

निपातः १।१॥ एकाच् १।१॥ अनाङ् १।१॥ स०—एकश्च असौ अच् = एकाच् कर्मधारयसमासः। न आङ् = अनाङ् नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—प्रगृह्यम्॥ अर्थ :—एकाच् यो निपातः, तस्य प्रगृह्यसंज्ञा भवति, आङं वर्जयित्वा॥ उदा०—अ अपेहि, अ अपक्राम। इ इन्द्रं पश्य। त्तिष्ठ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ :—[*एकाच्*] केवल जो एक ही अच् [*निपातः*] निपात है, उसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है, [*अनाङ्*] आङ् को छोड़कर ॥

उदा०—अ अपेहि (अरे हट) 'अ' निपात निषेध तथा तिरस्कार अर्थ में होता है। इ इन्द्रं पश्य (ओहो ! इन्द्र को देखो) यहाँ 'इ' विस्मयार्थक निपात है। उ उत्तिष्ठ (अरे ! उठ जा) 'उ' निपात निन्दा, संताप तथा वितर्क अर्थ में होता है।

यहाँ सर्वत्र *अकः सवर्णे दीर्घः* (६।१।९७) से दीर्घ की प्राप्ति है, पर अ, इ, उ इन तीनों के चादिगण में पाठ होने से *चादयोऽसत्त्वे* (१।४।५७) से निपात संज्ञा होकर *निपात एकाजनाङ्* प्रकृत सूत्र से एक अच् रूप निपात होने के कारण प्रगृह्य संज्ञा होकर सन्धि का ६।१।१२१ से निषेध हो जाता है ॥ यहाँ से *'निपातः'* की अनुवृत्ति १।१।१५ तक जाती है ॥

ओत् ॥१।१।१५॥

ओत् १।१॥ अनु०—निपातः, प्रगृह्यम् ॥ अर्थः—ओदन्तो निपातः प्रगृह्यसंज्ञको भवति ॥

उदा०—आहो इति, उताहो इति। नो इदानीम्। अथो इति। अहो अधुना ॥

भाषार्थ :—[*ओत्*] ओकारान्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है ॥ यहाँ *येन विधिस्तदन्तस्य* (१।१।७१) से तदन्त का ग्रहण होता है ॥

उदा०—आहो+इति, उताहो+इति, (अथवा ऐसा) नो इदानीम् (इस समय नहीं), अथो इति, (अनन्तर) अहो+अधुना (ओहो अब) ॥

यहाँ इन उदाहरणों में सर्वत्र *एचोऽयवायावः* (६।१।७५) की प्राप्ति थी, पर ओदन्त निपात होने से प्रगृह्य संज्ञा होकर सन्धि का निषेध ६।१।१२१ से हो गया है ॥

यहाँ से *'ओत्'* की अनुवृत्ति १।१।१६ तक जाती है ॥

सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे ॥१।१।१६॥

सम्बुद्धौ ७।१॥ शाकल्यस्य ६।१॥ इतौ ७।१॥ अनार्षे ७।१॥ स०—न आर्षः, अनार्षः, तस्मिन् अनार्षे, नञ्तत्पुरुषसमासः ॥ अनु०—ओत्,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रगृह्यम् ॥ *अर्थ* :—सम्बुद्धिनिमित्तको य ओकारः, तस्य प्रगृह्यसंज्ञा भवति, शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन, अनार्षे (अवैदिके) इतौ परतः ॥

शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन प्रगृह्यसंज्ञा भविष्यति, अन्येषामाचार्याणां मतेन न भविष्यति। तेन शाकल्यग्रहणेन विकल्पोऽपि सिध्यति ॥ उदा०—(शाकल्यमते), वायो इति (अन्येषां मते) वायविति। भानो इति, भानविति। अध्वर्यो इति, अध्वर्यविति ॥

भाषार्थ :—[*सम्बुद्धौ*] सम्बुद्धिनिमित्तक जो ओकारान्त शब्द उसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है, [*शाकल्यस्य*] शाकल्य आचार्य के मत में, [*अनार्षे*] अनार्ष=अवैदिक (पदपाठ से अन्यत्र जो इतिकरण है वह अनार्ष पद से यहाँ विवक्षित है) [*इतौ*] इति परे रहते ॥

यहाँ पाणिनि मुनि ने शाकल्य का मत प्रगृह्य संज्ञा का दिखाया है, सो अन्यों के मत में तो प्रगृह्य संज्ञा नहीं होगी, अतः विकल्प से दो उदाहरण बनेंगे ॥ यहाँ से '*शाकल्यस्य*' '*इतौ*' '*अनार्षे*' की अनुवृत्ति १।१।१७ तक जायगी ॥

उञः ऊँ ॥१।१।१७॥

उञः ६।१॥ ऊँ १।१ ॥ अनु०—शाकल्यस्य, इतौ, अनार्षे, प्रगृह्यम् ॥ *अर्थ* :—उञः प्रगृह्यसंज्ञा भवति, तस्य स्थाने 'ऊँ' आदेशश्च प्रगृह्यसंज्ञको भवति, शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन, अनार्षे इतौ परतः ॥ उदा०—उ इति। विति। ऊँ इति ॥

भाषार्थ :— [*उञः*] उञ् की प्रगृह्य संज्ञा होती है शाकल्य आचार्य के मत में, तथा उस के स्थान में प्रगृह्य संज्ञक [ऊँ] ऊँ आदेश शाकल्य आचार्य के मत में होता है, अनार्ष 'इति' परे रहने पर ॥

यहाँ शाकल्य आचार्य के मत में 'उ इति' में *इको यणचि* (६।१।७४) से प्राप्त सन्धि का निषेध प्रगृह्य संज्ञा होने से पूर्ववत् हो गया। अन्यों के मत में सन्धि होकर 'विति' बना। अब 'उ' के स्थान में ऊँ, आदेश शाकल्याचार्य के मत में होकर 'ऊँ इति' तथा दूसरों के मत में 'विति' भी बना ॥ इस प्रकार कुल तीन रूप बनते हैं। शाकल्य आचार्य के मत में ऊँ आदेश बिना किये 'उ इति' एवं आदेश करके 'ऊँ इति', ये दो रूप महाभाष्यकार के योगविभाग करने से सुस्पष्ट सिद्ध होते हैं, जो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कि शङ्कासमाधान का विषय होने से यहाँ नहीं बताया जा सकता ॥ उञ् में ञकार अनुबन्ध है, सो उसका *हलन्त्यम्* (१।३।३) से इत् संज्ञा एवं लोप हो जायगा ॥

ईदूतौ च सप्तम्यर्थे ॥ १।१।१८ ॥

ईदूतौ १।२ ॥ च अ० ॥ सप्तम्यर्थे ७।१ ॥ *स०*—ईच्च ऊच्च = ईदूतौ, इतरेतरद्वन्द्वः। सप्तम्या अर्थः = सप्तम्यर्थः, तस्मिन् सप्तम्यर्थे, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—प्रगृह्यम् ॥ *अर्थ*:—सप्तम्यर्थे वर्त्तमानौ, ईकारान्त-ऊकारान्तौ शब्दौ प्रगृह्यसंज्ञकौ भवतः ॥ *उदा०*—सोमो गौरी अधिश्रितः। अध्यस्यां मामकी तनू इति ॥

भाषार्थ:—[*सप्तम्यर्थे*] सप्तमी के अर्थ में वर्त्तमान [*ईदूतौ*] ईकारान्त, ऊकारान्त शब्दों की प्रगृह्य संज्ञा होती है ॥

दाधाघ्वदाप् ॥ १।१।१९ ॥

दाधाः १।३ ॥ घु १।१ ॥ अदाप् १।१ ॥ *स०*—दाश्च धाश्चेति दाधाः, इतरेतरद्वन्द्वः। दाप् च दैप् च = दाप्, न दाप् अदाप्, नञ्तत्पुरुषः ॥ *अर्थ*:—दारूपाः, धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञका भवन्ति, दाप्दैपौ वर्जयित्वा ॥ दारूपाश्चत्वारो धातवः—डुदाञ् दाने, दाण् दाने, दो ऽवखण्डने, दॅड् रक्षणे इति। धारूपावपि द्वौ धातू—डुधाञ् धारणपोषणयोः, धेट् पाने इति ॥ *उदा०*—प्रणिददाति, प्रणिदीयते, प्रणिदाता। प्रणियच्छति। प्रणिद्यति। प्रणिदयते। प्रणिदधाति, प्रणिधीयते, प्रणिधाता। प्रणिधयति। देहि। धेहि ॥

भाषार्थ:—[*दाधाः*] दा रूप वाले = जिनका 'दा' रूप बन जाता है (अनुबन्धादि लोप होकर), तथा 'धा' रूप वाले = जिनका 'धा' रूप बन जाता है, उन धातुओं की [*घु*] घु संज्ञा हो जाती है, [*अदाप्*] दाप् (लवने) और दैप् (शोधने) इन दो धातुओं को छोड़ कर ॥

आद्यन्तवदेकस्मिन् ॥ १।१।२० ॥

आद्यन्तवत् अ० ॥ एकस्मिन् ७।१ ॥ *स०*—आदिश्च अन्तश्च = आद्यन्तौ, इतरेतरद्वन्द्वः, आद्यन्तयोरिव आद्यन्तवत्, षष्ठ्यर्थे वति-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रत्ययः (५।१।११५) ॥ अतिदेशसूत्रमिदम् ॥ अर्थः—एकस्मिन्नपि आदाविव, अन्त इव कार्यं भवति ॥ उदा०—औपगवः, आभ्याम् ॥

भाषार्थः—यह अतिदेश सूत्र है ॥ [एकस्मिन्] एक में भी [आद्यन्तवत्] आदि और अन्त के समान कार्य हो जाते हैं ॥

जिससे पहिले कोई वर्ण न हो, वह 'आदि' कहलाता है। जिसके पीछे कोई वर्ण न हो वह 'अन्त' कहलाता है। इस प्रकार आदि और अन्त का व्यवहार दो या दो से अधिक वर्ण के होने पर ही सम्भव है, पर यदि कोई वर्ण एक ही हो, वहाँ पर यदि कोई कार्य आदि को कहें या अन्त को कहें तो वह कैसे हो क्योंकि वह अकेला है, न आदि का है, न अन्त का, सो अकेले में भी आदि और अन्त का व्यवहार मानकर कार्य हो जाये, इसलिये यह सूत्र बनाया है। लोक में भी यदि किसी का एक ही पुत्र हो तो वही उसका छोटा एवं वही उसका बड़ा मान लिया जाता है, इसी प्रकार शास्त्र में भी एक में ही आदि और अन्त का अतिदेश कर दिया ॥

तरप्तमपौ घः ॥ १।१।२१ ॥

तरप्तमपौ १।२ ॥ घः १।१ ॥ स०—तरप् च तमप् च=तरप्तमपौ इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अर्थः—तरप्तमपौ प्रत्ययौ घसंज्ञकौ भवतः। उदा०—कुमारितरा, कुमारितमा। ब्राह्मणितरा, ब्राह्मणितमा ॥

भाषार्थः—[तरप्तमपौ] तरप् और तमप् प्रत्ययों की [घः] संज्ञा होती है ॥

बहुगणवतुडति संख्या ॥ १।१।२२ ॥

बहुगणवतुडति १।१॥ संख्या १।१॥ स०—बहुश्च गणश्च वतुश्च डतिश्च=बहुगणवतुडति समाहारद्वन्द्वः ॥ अर्थः—बहुगणवतुडतिप्रत्ययान्तौ च शब्दौ, संख्यासंज्ञका भवन्ति ॥ उदा०—बहुधा, बहुकः, बहुशः। गणकृत्वः, गणधा, गणकः, गणशः। तावत्कृत्वः, तावद्धा, तावत्कः, तावच्छः। कतिकृत्वः, कतिधा, कतिकः, कतिशः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*बहुगणवतुडति*] बहु गण शब्दों की, तथा वतुप् और डति प्रत्ययान्त शब्दों की [*संख्या*] संख्या संज्ञा होती है ॥

यहाँ से '*संख्या*' की अनुवृत्ति १।१।२४ तक जाती है ॥

ष्णान्ता षट् ॥ १।१।२३ ॥

ष्णान्ता १।१॥ षट् १।१॥ *स०*—षश्च नश्च = ष्णौ, ष्णौ अन्ते यस्याः सा ष्णान्ता, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—संख्या ॥ *अर्थः*—षकारान्ता नकारान्ता च या संख्या सा षट्संज्ञिका भवति ॥ *उदा०*—षकारान्ता—षट् तिष्ठन्ति, षट् पश्य। नकारान्ता—पञ्च सप्त नव दश ॥

भाषार्थ :—[*ष्णान्ता*] षकारान्त तथा नकारान्त जो संख्यावाची शब्द हैं, उनकी [षट्] षट् संज्ञा होती है ॥

यहाँ से 'षट्' की अनुवृत्ति १।१।२४ तक जाती है ॥

डति च ॥ १।१।२४ ॥

डति १।१ ॥ च अ० ॥ *अनु०*—षट्, संख्या ॥ *अर्थ* :—डति प्रत्ययान्ता संख्या षट्संज्ञिका भवति ॥ *उदा०*—कति तिष्ठन्ति, कति पश्य ॥

भाषार्थ :—[*डति*] डति प्रत्ययान्त संख्यावाची शब्द की [च] भी षट् संज्ञा होती है ॥ कति की सिद्धि परि० १।१।२२ में देखें। यहाँ कति के आगे पूर्ववत् जस् या शस् आया, तो प्रकृत सूत्र से षट्संज्ञा होने से षड्भ्यो लुक् (७।१।२२) से लुक् हो गया, यही षट् संज्ञा का प्रयोजन है ॥

क्तक्तवतू निष्ठा ॥ १।१।२५ ॥

क्तक्तवतू १।२ ॥ निष्ठा १।१ ॥ *स०*—क्तश्च क्तवतुश्च = क्तक्तवतू इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अर्थ* :—क्तक्तवतू प्रत्ययौ निष्ठासंज्ञकौ भवतः ॥ *उदा०*—पठितः, पठितवान्। चितः चितवान्। स्तुतः स्तुतवान्। भिन्नः भिन्नवान्। पक्वः पक्ववान् ॥

भाषार्थ :—[क्तक्तवतू] क्त और क्तवतु प्रत्ययों की [*निष्ठा*] निष्ठा संज्ञा होती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सर्वादीनि सर्वनामानि ॥ १।१।२७ ॥

सर्वादीनि १।३ ॥ सर्वनामानि १।३ ॥ स०—सर्व आदिर्येषां तानी मानि, सर्वादीनि, बहुव्रीहिसमासः । सर्वेषां नामानि सर्वनामानि, षष्ठी तत्पुरुषः ॥ अर्थः—सर्वादिशब्दानां सर्वनामसंज्ञा भवति ॥ उदा०— सर्वे, सर्वस्मै, सर्वस्मात्, सर्वस्मिन्, सर्वेषाम्, सर्वकः । विश्वे विश्वस्मै, विश्वस्मात्, विश्वस्मिन्, विश्वेषाम्, विश्वकः ॥

भाषार्थ :—[*सर्वादीनि*] सर्वादिगण[1] में पढ़े शब्दों की [सर्वनामानि] सर्वनामसंज्ञा होती है ॥

यहाँ से *'सर्वनामानि'* की अनुवृत्ति १।१।३५ तक जाती है, तथा *'सर्वादीनि'* की अनुवृत्ति १।१।३१ तक जाती है ॥

विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ ॥ १।१।२७ ॥

विभाषा १।१ ॥ दिक्समासे ७।१ ॥ बहुव्रीहौ ७।१ ॥ स०- दिशां समासः, दिक्समासः, तस्मिन् दिक्समासे, षष्ठीतत्पुरुषः अनु०—सर्वादीनि सर्वनामानि ॥ अर्थः—दिक्समासे बहुव्रीहौ सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञकानि विभाषा भवन्ति ॥ उदा०—उत्तरपूर्वस्मै उत्तरपूर्वायै । दक्षिणपूर्वस्यै, दक्षिणपूर्वायै । उत्तरपूर्वस्याः, उत्तरपूर्वायाः दक्षिणपूर्वस्याः, दक्षिणपूर्वायाः ॥

भाषार्थ :—[*दिक्समासे*] दिशावाची [*बहुव्रीहौ*] बहुव्रीहि समास में सर्वादियों की सर्वनाम संज्ञा [*विभाषा*] विकल्प से होती है ।

न बहुव्रीहौ (१।१।२८) से आगे बहुव्रीहि समास में सर्वनाम संज्ञा का नित्य ही प्रतिषेध करेंगे, पर यहाँ दिगुपदिष्ट (२।२।२) बहुव्रीहि समास में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा हो, इसके लिये सूत्र है ॥

न बहुव्रीहौ ॥ १।१।२८ ॥

न अ० ॥ बहुव्रीहौ ७।१ ॥ अनु०—सर्वादीनि, सर्वनामानि अर्थ :—बहुव्रीहौ समासे सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञकानि न भवन्ति उदा०—प्रियविश्वाय, प्रियोभयाय, द्व्यन्याय, त्र्यन्याय ॥

---

१. सब गण शब्द गणपाठ में देखें, जो काशिका में भी तत्तत् सूत्र में दिखाये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ :—[*बहुव्रीहौ*] बहुव्रीहि समास में सर्वादियों की सर्वनाम संज्ञा [*न*] नहीं होती। यहाँ से '*न*' की अनुवृत्ति १।१।३१ तक जाती है॥

तृतीयासमासे ॥ १।१।२९ ॥

तृतीयासमासे ७।१ ॥ *स०*—तृतीयया समासः=तृतीयासमासः, तस्मिन् तृतीयासमासे, तृतीयातत्पुरुषः॥ *अनु०*—न, सर्वादीनि, सर्वनामानि॥ *अर्थ* :—तृतीयासमासे सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञकानि न भवन्ति॥ *उदा०*—मासपूर्वाय, संवत्सरपूर्वाय। द्व्यहःपूर्वाय, त्र्यहःपूर्वाय॥

भाषार्थ :—[*तृतीयासमासे*] तृतीया तत्पुरुष समास में सर्वादियों की सर्वनाम संज्ञा नहीं होती॥

द्वन्द्वे च ॥ १।१।३० ॥

द्वन्द्वे ७।१ ॥ च अ०॥ *अनु०*—न, सर्वादीनि सर्वनामानि॥ *अर्थ* :—द्वन्द्वे समासे सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञकानि न भवन्ति॥ *उदा०*—पूर्वापराणाम्। दक्षिणोत्तरपूर्वाणाम्। कतरकतमानाम्॥

भाषार्थ :—[*द्वन्द्वे*] द्वन्द्व समास में [च] भी सर्वादियों की सर्वनाम संज्ञा नहीं होती॥ यहाँ से '*द्वन्द्वे*' की अनुवृत्ति १।१।३१ तक जायगी॥

विभाषा जसि ॥ १।१।३१ ॥

विभाषा १।१॥ जसि ७।१॥ *अनु०*—द्वन्द्वे, न, सर्वादीनि सर्वनामानि॥ *अर्थ* :—द्वन्द्वे समासे जसि सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञकानि विभाषा न भवन्ति॥ *उदा०*—कतरकतमे कतरकतमाः। दक्षिणपूर्वे, दक्षिणपूर्वाः॥

भाषार्थ :—द्वन्द्व समास में सर्वादियों की सर्वनामसंज्ञा [*जसि*] जस् सम्बन्धी कार्य में [*विभाषा*] विकल्प से नहीं होती॥

यहाँ से '*विभाषा जसि*' की अनुवृत्ति १।१।३५ तक जाती है॥

प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च ॥ १।१।३२ ॥

प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाः १।३। च अ०॥ *स०*—प्रथमश्च चरमश्च तयश्च अल्पश्च अर्धश्च कतिपयश्च नेमश्च=प्रथम...नेमाः,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—विभाषा जसि, सर्वनामानि ॥ अर्थः प्रथम, चरम, तयप्प्रत्ययान्तश्च, अल्प, अर्ध, कतिपय, नेम इत्येते श जसि विभाषा सर्वनामसंज्ञका भवन्ति ॥ उदा०—प्रथमे प्रथमा चरमे चरमाः । द्वितये द्वितयाः । अल्पे अल्पाः । अर्धे अर्धा कतिपये कतिपयाः । नेमे नेमाः ॥

भाषार्थः—[*प्रथमने.....माश्च*] प्रथम, चरम, तयप्प्रत्यय शब्द, अल्प, अर्ध, कतिपय तथा नेम इन शब्दों की जस् सम्ब कार्य में विकल्प करके सर्वनाम संज्ञा होती है ॥

उदा०—प्रथमे प्रथमाः (पहिले वाले) । चरमे चरमाः (वाले) । द्वितये द्वितयाः (दो के अवयव) । अल्पे, अल्पाः (न्यू अर्धे अर्धाः (आधे)। कतिपये कतिपयाः (कई एक)। नेमे नेमाः (आ यहाँ सर्वनाम संज्ञा पक्ष में सर्वत्र पूर्ववत् *जसःशी* (७।१ से 'शी' होकर 'प्रथमे, आदि बनता है, तथा जब सर्वनाम संज्ञा प न हुई तो प्रथमाः आदि बना । परिशिष्ट १।१।३१ के समान ही सि जानें ॥ 'द्वितये' इस उदाहरण में *संख्याया अवयवे तयप्* (५।२।४ तयप् हो जाता है ॥

पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ॥१।१।३३॥

पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि १।३॥ व्यवस्थायाम् ७।१॥ याम् ७।१॥ स०—पूर्वश्च, परश्च, अवरश्च, दक्षिणश्च, उत्त अपरश्च, अधरश्च पूर्वपरावर.....धराणि, इतरेतरद्वन्द्वः । न असंज्ञा, तस्यां, असंज्ञायाम्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—विभाषा, सर्वनामानि ॥ अर्थः—पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अधर इत्येतानि जसि विभाषा सर्वनामसंज्ञकानि भवन्ति संज्ञाभिन्न स्थायाम् ॥ उदा०—पूर्वे पूर्वाः, परे पराः, अवरे अवराः, दक्षिणाः, उत्तरे उत्तराः, अपरे अपराः, अधरे अधराः ॥

भाषार्थः—[*पूर्व...धराणि*] पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अधर इन शब्दों की जस् सम्बन्धी कार्य में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा है, [*व्यवस्थायामसंज्ञायाम्*] संज्ञा से भिन्न व्यवस्था हो तो ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—पूर्वे पूर्वाः (पूर्व वाले)। परे पराः (बाद वाले)। अवरे अवराः (पहिले वाले)। दक्षिणे दक्षिणाः (दक्षिण वाले)। उत्तरे उत्तराः (उत्तर वाले)। अपरे अपराः (दूसरे)। अधरे अधराः (नीचे वाले)। सिद्धियाँ सब पूर्ववत् जानें। सर्वनाम संज्ञा पक्ष में जसःशी (७।१।१७) से जस् को शी हो जाता है॥

स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ॥१।१।३५॥

स्वम् १।१॥ अज्ञातिधनाख्यायाम् ७।१॥ स०—ज्ञातिश्च धनं च ज्ञातिधने ज्ञातिधनयोः आख्या ज्ञातिधनाख्या, द्वन्द्वगर्भषष्ठीतत्पुरुषः। न ज्ञातिधनाख्या अज्ञातिधनाख्या, तस्यां अज्ञातिधनाख्यायाम् नञ्-तत्पुरुषः॥ अनु०—विभाषा जसि, सर्वनामानि॥ अर्थः—अनेकार्थोऽयं 'स्व' शब्दः, ज्ञाति—धन—आत्मीयवाची च, तत्र ज्ञाति-धनाभिधायकं स्वशब्दं वर्जयित्वाऽन्यत्र स्वशब्दस्य जसि विभाषा सर्वनामसंज्ञा भवति॥ उदा०—स्वे पुत्राः, स्वाः पुत्राः। स्वे गावः, स्वा गावः। आत्मीया इत्यर्थः॥

भाषार्थः— [स्वम्] स्व शब्द की जस् सम्बन्धी कार्य में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है, [अज्ञातिधनाख्यायाम्] ज्ञाति तथा धन की आख्या (कहने) को छोड़कर॥ 'स्व' शब्द के अनेकार्थवाची होने से सब अर्थों में सर्वनाम संज्ञा ही प्राप्त थी, अतः ज्ञाति और धन को छोड़कर कहा, अर्थात् ज्ञाति और धन को कहने में सर्वनाम संज्ञा न हो, अन्य अर्थों में हो॥

उदा०—स्वे पुत्राः, स्वाः पुत्राः (अपने पुत्र)। स्वे गावः, स्वा गावः (अपनी गौयें)। सिद्धि पूर्ववत् ही जानें॥

अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः ॥१।१।३५॥

अन्तरम् १।१॥ बहिर्योगोपसंव्यानयोः ७।२॥ बहिरित्यनेन योगः, बहिर्योगः, संव्यानस्य समीपमुपसंव्यानम्॥ स०—बहिर्योगश्च उपसंव्यानं च, बहिर्योगोपसंव्याने तयोः बहिर्योगोपसंव्यानयोः, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—विभाषा जसि, सर्वनामानि॥ अर्थः—बहिर्योगे, उपसंव्याने च गम्यमाने ऽन्तरशब्दस्य जसि विभाषा सर्वनाम-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

संज्ञा भवति ॥ उदा०—बहिर्योगे—अन्तरे गृहाः, अन्तरा गृहाः उपसंव्याने—अन्तरे शाटकाः, अन्तराः शाटकाः ॥

भाषार्थः—[*बहिर्योगोपसंव्यानयोः*] बहिर्योग तथा उपसंव्यान गम्यमान होने पर [*अन्तरम्*] अन्तर शब्द की जस् सम्बन्धी कार्य विकल्प करके सर्वनाम संज्ञा होती है ॥

उदा०—अन्तरे गृहाः, अन्तरा गृहाः (नगर या ग्राम के बाहर चाण्डालादिकों के गृह)। अन्तरे शाटकाः, अन्तराः शाटकाः (धोती अन्दर पहिनने का वस्त्र, इसमें चादर नहीं ली जायगी)। सि पूर्ववत् ही जानें ॥

स्वरादिनिपातमव्ययम् ॥१।१।३६॥

स्वरादिनिपातम् १।१॥ अव्ययम् १।१॥ स०—स्वर् आदिर्येषां स्वरादयः, स्वरादयश्च निपाताश्च स्वरादिनिपातम् बहुव्रीहिगर्भ समाहारद्वन्द्वसमासः ॥ *अर्थः*—स्वरादिशब्दरूपाणि निपाताश्चाव्यय संज्ञकानि भवन्ति ॥ उदा०—स्वरादिः—स्वर् प्रातर्। निपाताः—च वा, ह ॥ *प्राग्रीश्वरान्निपाताः* (१।४।५६) इत्यतः *अधिरीश्वरे* (१।४।९६) इ यावत् निपातसंज्ञां वक्ष्यति, तेषां निपातानामत्राव्ययसंज्ञा वेदितव्या ॥

भाषार्थः—[*स्वरादिनिपातम्*] स्वरादि गण पठित शब्दों की, त निपातों की [*अव्ययम्*] अव्यय संज्ञा होती है। *प्राग्रीश्वरान्निपा* से लेकर *अधिरीश्वरे* तक निपात संज्ञा कही है। उन निपातों की अव्यय संज्ञा भी कहते हैं ॥

उदा०—स्वर् (सुख)। प्रातर् (प्रातः)। च (और)। (अथवा)। ह (निश्चय से) ॥ यहाँ सर्वत्र अव्यय संज्ञा होने जो स्वादि विभक्तियाँ आती हैं, उनका *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२) लुक् (अदर्शन) हो जाता है, यही अव्यय संज्ञा का प्रयोजन है यहाँ से '*अव्ययम्*' की अनुवृत्ति १।१।४० तक जाती है ॥

तद्धितश्चासर्वविभक्तिः ॥ १।१।३७ ॥

तद्धितः १।१ ॥ च अ०॥ असर्वविभक्तिः १।१ ॥ स०—नोत्पन्न सर्वा विभक्तिर्यस्मात् सोऽसर्वविभक्तिस्तद्धितः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अव्ययम् ॥ अर्थः—असर्वविभक्तिस्तद्धितप्रत्ययान्तः शब्दोऽव्यय-संज्ञको भवति ॥ उदा०—ततः। यतः। तत्र। यत्र। तदा। यदा। सर्वदा। सदा। विना। नाना ॥

भाषार्थः—[असर्वविभक्तिः] जिससे सारी विभक्ति उत्पन्न न हों, ऐसे [तद्धितः] तद्धितप्रत्ययान्त शब्द की [च] भी अव्यय संज्ञा होती है ॥

यहाँ महाभाष्यकार ने किन किन की अव्यय संज्ञा होती है इसका परिगणन किया है, जो इस प्रकार है—*तसिलादयः प्राक् पाशपः* (*पञ्चम्यास्तसिल्* (५।३।७) से लेकर *याप्ये पाशप्* (५।३।४७) तक।) *शस्प्रभृतिभ्यः प्राक् समासान्तेभ्यः* (*बहुल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्* (५।४।४२) से लेकर *समासान्ताः* (५।४।६८) तक)। मान्तः—अम्, आम् (*अमु च च्छन्दसि* ५।४।१२) (*किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे* ५।४।११), तसिवती (*तसिश्च* ४।३।११३, *तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः* ५।१।११४) कृत्वोऽर्थः (*संख्यायाः क्रियाऽभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्* ५।४।१७, *द्वित्रिचतुर्भ्यः च्* ५।४।१५, *विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले* ५।४।२०) नानाञौ—न-नाञ् (*विनञ्भ्यां नानाञौ न सह* ५।२।२७) ॥

कृन्मेजन्तः ॥ १।१।३८ ॥

कृत् १।१ ॥ मेजन्तः १।१ ॥ स०—मश्च एच् च मेचौ, मेचावन्तावस्य स मेजन्तः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अव्ययम् ॥ अर्थः—कृद् यो मकारान्त एजन्तश्च, तदन्तं शब्दरूपमव्ययसंज्ञकं भवति ॥ उदा०—अस्वाद्वीं स्वाद्वीं कृत्वा भुङ्क्ते=स्वादुंकारं भुङ्क्ते। सम्पन्नंकारं भुङ्क्ते। लवणंकारं भुङ्क्ते। उदरपूरं भुङ्क्ते। एजन्तः—वक्षे रायः। ता वामेषे रथानाम्। क्रत्वे दक्षाय जीवसे। ज्योक् च सूर्यं दृशे। म्लेच्छितवै ॥

भाषार्थः—[कृत्] कृत् जो [मेजन्तः] मकारान्त तथा एजन्त, तदन्त शब्द रूप की, अव्यय संज्ञा होती है ॥

क्त्वातोसुन्कसुनः ॥ १।१।३९ ॥

क्त्वातोसुन्कसुनः १।३ ॥ स०—क्त्वा च तोसुंश्च कसुंश्च क्त्वातोसुन्कसुनः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अव्ययम् ॥ अर्थः—क्त्वा-तोसुन्-कसुन्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इत्येवमन्ताः शब्दा अव्ययसंज्ञका भवन्ति ॥ उदा०—क्त्वा—पठित्वा, चित्वा, जित्वा, कृत्वा, हृत्वा। तोसुन्-पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः (का० सं० ८।३)। कसुन्—पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् (य० १।२८)॥

भाषार्थः—[क्त्वातोसुन्कसुनः] क्त्वा, तोसुन्, कसुन् प्रत्ययान्त जो शब्द, उनकी अव्यय संज्ञा होती है ॥

अव्ययीभावश्च ॥ १।१।४० ॥

अव्ययीभावः १।१ ॥ च अ० ॥ अनु०—अव्ययम् ॥ अर्थः—अव्ययीभावसमासोऽव्ययसंज्ञको भवति ॥ उदा०—उपाग्नि, प्रत्यग्नि, अधिस्त्रि ॥

भाषार्थः—[अव्ययीभावः] अव्ययीभाव समास की [च] भी अव्यय संज्ञा होती है ॥

शि सर्वनामस्थानम् ॥ १।१।४१ ॥

शि १।१ ॥ सर्वनामस्थानम् १।१ ॥ अर्थः—शि = जश्शसोः शि (७।१।२०) इत्यनेन यः 'शि' आदेशः, तस्य सर्वनामस्थानसंज्ञा भवति ॥ उदा०—कुण्डानि, वनानि। दधीनि, मधूनि। त्रपूणि, जतूनि ॥

भाषार्थः—[शि] 'शि' की [सर्वनामस्थानम्] सर्वनामस्थान संज्ञा होती है ॥ जश्शसोः शि (७।१।२०) से जो जस् और शस् के स्थान में 'शि' आदेश होता है, उसका यहाँ ग्रहण है ॥

यहाँ से 'सर्वनामस्थानम्' की अनुवृत्ति १।१।४२ तक जाती है ॥

सुडनपुंसकस्य ॥ १।१।४२ ॥

सुट् १।१ ॥ अनपुंसकस्य ६।१ ॥ स०—न नपुंसकम् = अनपुंसकम्, तस्यानपुंसकस्य, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—सर्वनामस्थानम् ॥ अर्थः—नपुंसकभिन्नो यः सुट् तस्य सर्वनामस्थानसंज्ञा भवति ॥ 'सुट्' इत्यनेन सु इत्यारभ्य औट्पर्यन्तं प्रत्याहारो गृह्यते। तत्र च, सु औ जस् अम् औट् इति पञ्च प्रत्ययाः समाविष्टाः सन्ति ॥ उदा०—राजा राजानौ राजानः राजानम् राजानौ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*अनपुंसकस्य*] नपुंसक लिङ्ग से भिन्न जो [सुट्] सुट् उसकी सर्वनामस्थान संज्ञा होती है ॥ सुट् से यहाँ सु से लेकर औट् पर्यन्त पाँच प्रत्ययों का प्रत्याहार से ग्रहण है ॥

न वेति विभाषा ॥ १।१।४३ ॥

न अ० ॥ वा अ० ॥ इति अ० ॥ विभाषा १।१ ॥ *अर्थः*—'न' इति निषेधार्थः, 'वा' इति विकल्पार्थः, अनयोर्निषेधविकल्पार्थयोर्विभाषासंज्ञा भवति ॥ *उदा०*—शुशाव, शिश्राय । शुशुवतुः, शिश्रियतुः । दक्षिणपूर्वस्यै दक्षिणपूर्वायै ॥

भाषार्थः—[*न वेति*] न=निषेध, वा=विकल्प इन अर्थों की [*विभाषा*] विभाषा संज्ञा होती है ॥

विशेषः—यहाँ 'न' और 'वा' इन शब्दों की विभाषा संज्ञा नहीं होती अपितु 'न' का अर्थ जो निषेध, 'वा' का अर्थ जो विकल्प, इन अर्थों की विभाषा संज्ञा होती है । 'इति' पद जहाँ लगता है, वहाँ उस शब्द के अर्थ का बोध कराता है स्वरूप का नहीं, अतः यहाँ नवेति में 'इति' शब्द अर्थ का बोधक है ॥

इग्यणः सम्प्रसारणम् ॥ १।१।४४ ॥

इक् १।१ ॥ यणः ६।१ ॥ सम्प्रसारणम् १।१ ॥ *अर्थः*—यणः (=य् व् र् ल्) स्थाने य इक् (=इ उ ऋ ऌ) (भूतो भावी वा) तस्य सम्प्रसारणसंज्ञा भवति ॥ *उदा०*—उक्तः, उक्तवान् । सुप्तः, सुप्तवान् ॥ इष्टः, इष्टवान् । गृहीतः, गृहीतवान् ॥

भाषार्थः—[*यणः*] यण् के स्थान में जो [इक्] इक् वह [*सम्प्रसारणम्*] सम्प्रसारण संज्ञक होता है ॥ यहाँ यण् के स्थान में जो इक् वर्ण उसकी, तथा 'यण्' के स्थान में इक् करना इस वाक्यार्थ की भी सम्प्रसारण संज्ञा होती है ॥

[*परिभाषाप्रकरणम्*]

आद्यन्तौ टकितौ ॥ १।१।४५ ॥

आद्यन्तौ १।२ ॥ टकितौ १।२ ॥ *स०*—आदिश्च अन्तश्च आद्यन्तौ, इतरेतरद्वन्द्वः । टश्च कश्च टकौ, टकौ इतौ ययोरिति टकितौ, द्वन्द्वगर्भो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

बहुव्रीहिः ॥ *अर्थ* :—षष्ठीनिर्दिष्टस्य 'टित्' आगम आदौ भवति, 'कित्' आगमोऽन्ते भवति ॥ *उदा०*—टित्—पठिता, भविता। कित्—त्रापुषम्, जातुषम्। जटिलो भीषयते, मुण्डो भीषयते ॥

भाषार्थ :—षष्ठीनिर्दिष्ट के स्थान में [*टकितौ*] टित् आगम, तथा कित् आगम जहाँ कहा गया हो, वह क्रम से उसके [*आद्यन्तौ*] आदि और अन्त के स्थान में हो ॥ यहाँ भविता में तास् आर्धधातुक को *आर्धधातुकस्येड्वलादेः* (७।२।३५) से कहा हुआ 'इट्' उसके आदि में होता है, और भीषयते में षुक् 'भी' के अन्त में होता है ॥ यह सूत्र षष्ठी *स्थानेयोगा* (१।१।४८) का पूर्व अपवाद है ॥

मिदचोऽन्त्यात्परः ॥ १।१।४६ ॥

मित् १।१ ॥ अचः ६।१ ॥ अन्त्यात् ५।१ ॥ परः १।१ ॥ *सं०*—म् इत् यस्य स मित् बहुव्रीहिः ॥ अन्ते भवं अन्त्यम्, तस्मात् अन्त्यात् ॥ *अर्थ* :—अचां सन्निविष्टानां योऽन्त्योऽच् तस्मात् परो मित् भवति ॥ *उदा०*—भिनत्ति, छिनत्ति। रुणद्धि। मुञ्चन्ति। वन्दे मातरम्। कुण्डानि, वनानि। यशांसि, पयांसि ॥

भाषार्थ :—[*अचः*] अचों के बीच में जो [*अन्त्यात्*] अन्तिम अच् उससे [*परः*] परे [*मित्*] मित् (मकार जिसका इत् हो) होता है ॥ यह सूत्र आगे आने वाले १।१।४८ तथा *प्रत्ययः परश्च* (३।१।१,२) सूत्रों का अपवाद है। प्रत्यय होने के कारण 'श्नम्' आदियों को परे होना चाहिये था, पर इस सूत्र से मित् होने से अन्त्य अच् से परे हो जाता है ॥

एच इग्घ्रस्वादेशे ॥ १।१।४७ ॥

एचः ६।१ ॥ इक् १।१ ॥ ह्रस्वादेशे ७।१ ॥ *सं०*—ह्रस्वस्य आदेशः ह्रस्वादेशः, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अर्थः*—एचः स्थाने ह्रस्वादेशे कर्त्तव्ये इक् एव भवति नान्यः ॥ *उदा०*—अतिरि कुलम्। अतिलु कुलम्। उपगु ॥

भाषार्थः—[*एचः*] एच् के स्थान में [*ह्रस्वादेशे*] ह्रस्वादेश करने में [*इक्*] इक् ही ह्रस्व हो, अन्य नहीं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

षष्ठी स्थानेयोगा ॥ १।१।४८ ॥

षष्ठी १।१ ॥ स्थानेयोगा १।१ ॥ स०—स्थाने योगोऽस्याः सेयं स्थानेयोगा, बहुव्रीहिः । अत्र निपातनात् सप्तम्या अलुग् भवति ॥ अर्थः—अनियतयोगा अनियतसम्बन्धा षष्ठी स्थानेयोगा मन्तव्या ॥ उदा०—भविता, भवितुम्, भवितव्यम् । वक्ता, वक्तुम्, वक्तव्यम् । दध्यत्र, मध्वत्र, पित्रर्थम्, लाकृतिः ॥

भाषार्थः—अनियतयोगा (जिस षष्ठी का सम्बन्ध कहीं न जुड़ता हो वह) [*षष्ठी*] षष्ठी [*स्थानेयोगा*] स्थानेयोगा=स्थान के साथ सम्बन्ध वाली होती है ॥

षष्ठी के अनेक अर्थ होते हैं, जैसे—समीप, विकार, अवयव, स्व स्वाम्यादि सो इनमें से जिस षष्ठी का कहीं कोई सम्बन्ध न जुड़ता हो, वह अनियतयोगा षष्ठी कहलाती है, उसका 'स्थाने' शब्द के साथ सम्बन्ध होता है ॥

यहाँ से '*स्थाने*' की अनुवृत्ति १।१।५० तक जाती है, तथा '*षष्ठी*' पद की अनुवृत्ति १।१।५४ तक जाती है ॥

स्थानेऽन्तरतमः ॥ १।१।४९ ॥

स्थाने ७।१ ॥ अन्तरतमः १।१ ॥ सर्व इमेऽन्तराः, अयमेषामतिशयेनान्तरः=अन्तरतमः, सदृशतमः, *अतिशायने तमबिष्ठनौ* (५।३।५५) इति तमप् प्रत्ययः ॥ अनु०—स्थाने ॥ अर्थः—स्थाने प्राप्यमाणानामन्तरतमः=सदृशतम आदेशो भवति ॥ आन्तर्यं चतुर्विधं भवति—स्थानकृतम्, अर्थकृतम्, प्रमाणकृतम्, गुणकृतञ्चेति ॥ उदा०—स्थानकृतम्—दण्डाग्रम् दधीदम् भानूदयः । अर्थकृतम्—अभवताम्, वातण्ड्ययुवतिः । प्रमाणकृतम्—अमुष्मै, अमूभ्याम् । गुणकृतम्—भागः यागः त्यागः ॥

भाषार्थः—[*स्थाने*] स्थान में प्राप्त होने वाले आदेशों में जो [*अन्तरतमः*] सदृशतम=जो सबसे अधिक मिलता हो, वह आदेश हो ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उरण्रपरः ॥१।१।५०॥

उः ६।१॥ अण् १।१॥ रपरः १।१॥ स०—र परो यस्मात् स रपरः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—स्थाने ॥ अर्थः—ऋवर्णस्य स्थाने अण् (अ इ उ) प्रसज्यमान एव रपरो भवति ॥

उदा०:—कर्ता हर्ता कारकः हारकः। किरति गिरति। द्वैमातुरः त्रैमातुरः ॥

भाषार्थः—[उः]ऋवर्ण के स्थान में [अण्] अण् (अ-इ-उ में से कोई अक्षर) प्राप्त हो तो वह होते होते ही [रपरः] रपरे वाला हो जाता है ॥

यहाँ जब ऋ के स्थान में गुण वृद्धि प्राप्त होते हैं, तब ऋ का अन्तरतम सदृशतम इनमें से कोई है नहीं, तो प्रकृत सूत्र से अ आ (अण्) होते होते रपर होकर अर् आर् बन जाते हैं, सो स्थानेऽन्तरतमः (१।१।४९) सूत्र लगकर अर् आर् गुण और वृद्धि होते हैं। यह बात समझ लेने की है कि गुण या वृद्धि होते होते अ आ रपर होते हैं, होने के पश्चात् नहीं ॥

अलोऽन्त्यस्य ॥१।१।५१॥

अलः ६।१॥ अन्त्यस्य ६।१॥ अनु०—षष्ठी ॥ अर्थः—षष्ठीनिर्दिष्ट आदेशोऽन्त्यस्यालः स्थाने भवति ॥ उदा०—द्यौः। सः। पञ्चगोणिः ॥

भाषार्थः—षष्ठी विभक्ति से निर्दिष्ट जो आदेश, वह [अन्त्यस्य] अन्त्य [अलः] अल् के स्थान में होता है ॥ यह सूत्र षष्ठी स्थानेयोगा का अपवाद है ॥

यहाँ से 'अलः' की अनुवृत्ति १।१।५३ तथा 'अन्त्यस्य' की अनुवृत्ति १।१।५२ तक जाती है ॥

ङिच्च ॥१।१।५२॥

ङित् १।१॥ च अ०॥ स०—ङ् इत् यस्य, स ङित्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अलोऽन्त्यस्य, षष्ठी ॥ अर्थः—षष्ठी निर्दिष्टो यो ङिदादेशः, सोऽन्त्यस्यालः स्थाने भवति ॥ अनेकाल् शित् सर्वस्य (१।१।५४) इति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वक्ष्यति, तस्यायं पुरस्तादपवादः, अर्थादनेकालपि सन् ङिदादेशोऽन्त्यस्यालः स्थाने भवति, न तु सर्वस्य ॥ उदा०—चेता, नेता। मातापितरौ। होतापोतारौ ॥

भाषार्थः—[*ङित्*] ङित् आदेश [च] भी अन्त्य अल् के स्थान में होता है ॥ *अनेकाल्शित् सर्वस्य* (१।१।५४) की प्राप्ति में यह पूर्व अपवाद सूत्र है, अर्थात् अनेकाल् होने पर भी ङित् आदेश सबके स्थान में न होकर अन्त्य अल् के स्थान में ही होता है ॥

आदेः परस्य ॥१।१।५३॥

आदेः ६।१॥ परस्य ६।१॥ *अनु०*—अलः, षष्ठी ॥ *अर्थः*—परस्योच्यमानं कार्यमादेरलः स्थाने भवति। *तस्मादित्युत्तरस्य* (१।१।६६) इति वक्ष्यति, तस्येदं शेषसूत्रम् ॥ *उदा०*—आसीनः। द्वीपम्, अन्तरीपम्, समीपम् ॥

भाषार्थः—[*परस्य*] पर को कहा हुआ कार्य, उसके [*आदेः*] आदि अल् के स्थान में हो ॥ *तस्मादित्युत्तरस्य* (१।१।६६) सूत्र का यह शेष है, अर्थात् उस सूत्र से पञ्चमी निर्दिष्ट कार्य पर (उत्तर) को प्राप्त था। अब उस पर को कहा कार्य, सब के स्थान में हो या किस के स्थान में हो, तब इस सूत्र ने बताया कि वह कार्य पर के आदि अक्षर को हो ॥

अनेकाल्शित् सर्वस्य ॥१।१।५४॥

अनेकाल्शित् १।१॥ सर्वस्य ६।१॥ *स०*—एकश्चासौ अल् च, एकाल् कर्मधारयतत्पुरुषः। न एकाल्, अनेकाल्, नञ्तत्पुरुषः। श् इत् यस्य स शित्, अनेकाल् च शित् च अनेकाल्शित् बहुव्रीहिगर्भः समाहारद्वन्द्वः॥ *अनु०*—षष्ठी ॥ *अर्थः*—अनेकाल् शित् च य आदेशः सः सर्वस्य षष्ठीनिर्दिष्टस्य स्थाने भवति ॥ *अलोऽन्त्यस्य* (१।१।५१) इति सूत्रस्यापवादसूत्रमिदम् ॥ *उदा०*—अनेकाल्—भविता भवितुम् भवितव्यम्। पुरुषैः। शित्—कुण्डानि, वनानि ॥

भाषार्थः—[*अनेकाल्शित्*] अनेक अल् वाला तथा शित् जो षष्ठी निर्दिष्ट आदेश वह [*सर्वस्य*] सारे के स्थान में होता है ॥ यह सूत्र *अलोऽन्त्यस्य* (१।१।५१) का अपवाद है, अर्थात् षष्ठी निर्दिष्ट सब

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

आदेश अन्त्य अल् के स्थान में उस सूत्र से प्राप्त थे, इसने अनेकाल् तथा शित् आदेशों को सबके स्थान में हों, ऐसा कह दिया ॥

[अतिदेशप्रकरणम्]

स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ ॥१।१।५५॥

स्थानिवत् अ० ॥ आदेशः १।१॥ अनल्विधौ ७।१॥ स०—'अल्विधौ' इत्यत्रार्थानुरोधात् चतुर्विधः समासः, अलः (५।१) परस्य विधिः = अल्विधिः, पञ्चमीतत्पुरुषः। अलः (६।१) स्थाने विधिः = अल् विधिः षष्ठीतत्पुरुषः। अलि विधिः = अल्विधिः, सप्तमीतत्पुरुषः। अला विधिः अल्विधिः, तृतीयातत्पुरुषः॥ न अल्विधिः अनल्विधिः, तस्मिन् अनल्विधौ, नञ्तत्पुरुषः॥ स्थानमस्यास्तीति स्थानी (५।२।११५) इत्यनेन 'इनिः' प्रत्ययः, स्थानिना तुल्यं स्थानिवत् (५।१।११४) इत्यनेन वतिप्रत्ययः॥ अर्थः—आदेशः स्थानिवद् भवति, अल्विधिं वर्जयित्वा॥ तत्रादेशा अष्टविधा भवन्ति—धातु-अङ्ग-कृत्-तद्धित-अव्यय-सुप्-तिङ्-पदादेशाः॥ उदा०-धात्वादेश :—भविता, भवितुम्, भवितव्यम्। वक्ता, वक्तुम्, वक्तव्यम्॥ अङ्गादेश :— केन, काभ्याम्, कैः। कृदादेश :—प्रकृत्य प्रहृत्य। तद्धितादेश :— दध्नि संस्कृतम् दाधिकम्, अद्यतनम्। अव्ययादेश :—प्रकृत्य प्रहृत्य। सुबादेश :—पुरुषाय वृक्षाय। तिङादेश :—अकुरुताम् अकुरुतम्॥ पदादेश :—ग्रामो नः स्वम्, ग्रामो वः स्वम्। अल्विधौ स्थानिवत् न भवति, तद्यथा—अलः (५।१) विधिः—द्यौः, पन्थाः सः। अलः (६।१) विधिः—द्युकामः। अलि (७।१) विधिः—क इष्टः। अला (३।१) विधिः—महोरस्केन, व्यूढोरस्केन॥

भाषार्थ :—जिसके स्थान में हो वह स्थानी, जो किया जाये वह आदेश कहाता है॥ [*आदेशः*] आदेश [*स्थानिवत्*] स्थानी के तुल्य माना जाता है, [*अनल्विधौ*] अल् विधि को छोड़कर॥

आदेश आठ प्रकार के होते हैं (१) *धातु* = धातु का आदेश धातुवत् होता है (२) *अङ्ग*=अङ्ग का आदेश अङ्गवत् होता है (३) *कृत्* = कृत् का आदेश कृत्वत् होता है (४) *तद्धित* = तद्धित का आदेश तद्धितवत् होता है (५) *अव्यय*=अव्यय का आदेश अव्ययवत् होता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

है (६) *सुप्*=सुप् का आदेश सुप्वत् होता है (७) *तिङ्*=तिङ् का आदेश तिङ्वत् होता है (८) *पद*=पद का आदेश पदवत् होता है ॥

अल्विधि में चार प्रकार का समास है—

पञ्चमी तत्पुरुष—अल् से परे विधि। षष्ठीतत्पुरुष—अल् के स्थान में विधि। सप्तमीतत्पुरुष—अल् परे रहते विधि। तृतीया-तत्पुरुष—अल् के द्वारा विधि। इन सब उदाहरणों में आदेश स्थानिवत् नहीं होता ॥

इस प्रकार का व्यवहार लोक में भी देखा जाता है, जैसे एक कलेक्टर के स्थान में जो दूसरा कलेक्टर (जिलाधीश) बदल कर आता है, उस नये कलेक्टर को भी पुराने कलेक्टर के समान सारे अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। यहाँ पुराना कलेक्टर स्थानी था, नया उसका आदेश, सो स्थानिवत् व्यवहार हो गया। जिस प्रकार नये कलेक्टर को यदि खरबूजा पसन्द होता है पर पुराने कलेक्टर को नहीं होता, अर्थात् व्यक्तिगत रुचि में वह स्थानी के तुल्य नहीं होता, उसी प्रकार यहाँ भी अल्विधि में स्थानिवत् नहीं होता, ऐसा समझें। आगे के अतिदेश सूत्रों में भी अतिदेश सम्बन्धी यह बात घटा लेनी चाहिये ॥

विशेष:—अल्विधि में स्थानिवत् नहीं होता, इसके उदाहरण देन यद्यपि द्वितीयावृत्ति (शंका समाधान) का विषय है, तथापि उसके भी यहाँ समझाना इसलिये अनिवार्य हो गया है कि अगला *अचः परस्मिन् पूर्वविधौ* १।१।५६ सूत्र अनल् विधि का अपवाद है, अतः यहाँ अल्विधि में स्थानिवत् किस प्रकार नहीं होता, यह बता देना आवश्यक है। यह बात अध्यापक धीरे से समझा दें। हम तो समझा ही देते हैं। छात्र समझ लेता है और प्रसन्न हो उठता है। कोई न समझे तो जाने दें ॥

यहाँ से '*स्थानिवदादेशः*' की अनुवृत्ति १।१।५८ तक जाती है।

अचः परस्मिन् पूर्वविधौ ॥ १।१।५६ ॥

अचः ६।१ ॥ परस्मिन् ७।१ [निमित्त सप्तमी] ॥ पूर्वविधौ ७।१ [विषय सप्तमी] ॥ स०—पूर्वस्य विधिः पूर्वविधिः, तस्मिन् पूर्वविधौ षष्ठीतत्पुरुषः ॥ विधानं विधिः ॥ अनु०—स्थानिवद् आदेशः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अर्थः—परनिमित्तकोऽजादेशः पूर्वविधौ कर्त्तव्ये स्थानिवद् भवति ॥ पूर्वेण सूत्रेणाल्विधौ स्थानिवद्भावस्य निषेधः प्राप्नोति, अनेन सूत्रेण पुनः प्रतिप्रसूयते ॥

भाषार्थः—[परस्मिन्] परनिमित्तक=पर को निमित्त या कारण मानकर [अचः] अच् के स्थान में हुआ जो आदेश, वह [पूर्वविधौ] पूर्व को विधि करने में स्थानिवत् हो जाता है ॥ पूर्व सूत्र से यहाँ अल्विधि में स्थानिवद्भाव का निषेध प्राप्त था। इस सूत्र से पुनः अल्विधि में स्थानिवद्भाव प्राप्त कराया गया है ॥

यहाँ से 'अचः' की अनुवृत्ति १।१।५८ तक तथा 'परस्मिन्' 'पूर्वविधौ' की १।१।५७ तक जाती है ॥

न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु ॥ १।१।५७ ॥

न अ० ॥ पदान्त...विधिषु ७।३ ॥ स०—पदे अन्तः पदान्तः सप्तमीतत्पुरुषः। पदान्तश्च द्विर्वचनं च, वरे च, यलोपश्च, स्वरश्च, सवर्णश्च, अनुस्वारश्च, दीर्घश्च, जश् च, चर् च=पदान्तद्विर्वचन····चरः, एतेषां विषयः तेषु पदान्तद्विर्वचन···विधिषु, द्वन्द्वगर्भः षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—अचः परस्मिन् पूर्वविधौ, स्थानिवद् आदेशः ॥ अर्थः—पदान्त-द्विर्वचन-वरे-यलोप-स्वर-सवर्ण-अनुस्वार-दीर्घ-जश्-चर् इत्येतेषु विधिषु परनिमित्तकोऽजादेशः पूर्वविधौ कर्त्तव्ये स्थानिवत् न भवति ॥ उदा०—*पदान्तविधौ*—कौ स्तः, यौ स्तः। तानि सन्ति यानि सन्ति ॥ *द्विर्वचनविधौ*—दद्धयत्र मद्ध्वत्र ॥ *वरेविधौ*—अप्सु यायावरः प्रवपेत पिण्डान्। *यलोपविधौ*—कण्डूतिः। *स्वरविधौ*—चिकीर्षकः जिहीर्षकः। *सवर्णविधौ*—शिण्ढि पिण्ढि। *अनुस्वारविधौ*—शिंषन्ति पिंषन्ति। *दीर्घविधौ*—प्रतिदीव्ना प्रतिदीव्ने। *जश्विधौ*—सद्धिश्च मे सपीतिश्च मे, बब्धां ते हरी धानाः। *चर्विधौ*—जक्षतुः जक्षुः अक्षन्नमीमदन्त पितरः ॥

भाषार्थः—[पदान्तद्विर्वचन···विधिषु] पदान्त-द्विर्वचन-वरे-यलोप-स्वर-सवर्ण-अनुस्वार-दीर्घ-जश्-चर्-इन विधियों में परनिमित्तक अजादेश

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पूर्व को विधि करने में स्थानिवत् [न] नहीं होता॥ पूर्व सूत्र से स्थानिवत् प्राप्त था, उसका यह अपवाद है॥

द्विर्वचनेऽचि ॥१।१।५८॥

द्विर्वचने ७।१॥ अचि ७।१॥ अनु०—अचः, स्थानिवदादेशः॥ द्विर्वचनं च द्विर्वचनं च इति द्विर्वचनं तस्मिन् द्विर्वचने। *सरूपाणाम्* (१।२।६४) इत्येकशेषः॥ *अर्थः*-द्विर्वचननिमित्तेऽचि परतोऽजादेशः स्थानिरूपो भवति, द्विर्वचन एव कर्त्तव्ये। रूपातिदेशोऽयम्॥ उदा०—पपतुः पपुः। जग्मतुः जग्मुः। चक्रतुः चक्रुः। निनय निनाय। लुलव लुलाव। आटिटत्॥

भाषार्थः—[*द्विर्वचने*] द्विर्वचन का निमित्त [*अचि*] अजादि प्रत्यय परे हो, तो अजादेश स्थानिवत् हो जाता है, द्विर्वचन करने मात्र में॥

यह रूपातिदेश सूत्र है॥ अतिदेश दो प्रकार का होता है, कार्यातिदेश तथा रूपातिदेश। कार्यातिदेश उसे कहते हैं कि जो आदेश को स्थानी के तुल्य मान कर स्थानी के समान आदेश में कार्य कर दे। रूपातिदेश उसे कहते हैं कि जिसमें स्थानी का जैसा रूप हो, वैसा ही आदेश का रूप भी हो जावे। यह अतिदेश सूत्रों का प्रकरण समाप्त हुआ॥

अदर्शनं लोपः ॥१।१।५९॥

अदर्शनम् १।१॥ लोपः १।१॥ स०—न दर्शनम् अदर्शनम्, नञ्-तत्पुरुषः॥ अनु०—'इति' इत्येतत् पदं *न वेति विभाषा* (१।१।४३) इत्यतो मण्डूकप्लुतगत्यानुवर्त्तते॥ *अर्थः*—यद् भूत्वा न भवति, तद् अदर्शनम्=अनुपलब्धिः वर्णविनाशस्तस्य लोप इति संज्ञा भवति, अर्थात् प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञकं भवति॥ उदा०—शालीयः। गौधेरः। पचेरन्। जीरदानुः। आस्तेमाणम्॥

भाषार्थः—जो कोई वस्तु होकर न रहे, न दिखाई पड़े, उसे अदर्शन कहते हैं अर्थात् विद्यमान के [*अदर्शनम्*] अदर्शन की [*लोपः*] लोप संज्ञा होती है॥ उसको अदर्शन नहीं कह सकते जो कभी विद्यमान ही न रहा हो॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ अदर्शन के अर्थ की लोप संज्ञा होती है, न कि 'अदर्श' शब्द की, यह बात *न वेति विभाषा* (१।१।४३) से मण्डूकप्लुतगति[1] 'इति' शब्द की अनुवृत्ति लाकर होती है॥ यहाँ से 'अदर्शनम्' अनुवृत्ति १।१।६० तक जाती है॥

प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः ॥१।१।६०॥

प्रत्ययस्य ६।१॥ लुक्श्लुलुपः १।३॥ स०—लुक् च श्लु च लुप् च लुक्श्लुलुपः, इतरेतरद्वन्द्वः। अनु०—अदर्शनम्, 'इति' इत्येतत् पदमत्रा सम्बध्यते॥ अर्थः—प्रत्ययस्य अदर्शनस्य लुक्-श्लु-लुप् इत्येताः सं भवन्ति॥ उदा०—लुक्—विशाखः स्तौति। श्लु-जुहोति। लुप्-वरण पञ्चालाः॥

भाषार्थः—[*प्रत्ययस्य*] प्रत्यय के अदर्शन की [लुक्श्लुलुपः] लुक् श्लुतथा लुप् संज्ञा भी होती है॥ यदि "लुक् हो जाये" ऐसा कह के प्रत्यय का अदर्शन किया जाये तो उस अदर्शन हुये प्रत्यय की लु संज्ञा होती है। इसी प्रकार यदि श्लु द्वारा अदर्शन हो तो उस अदर्शन हुये प्रत्यय की 'श्लु' संज्ञा होगी, तथा लुप् के द्वारा अदर्शन की लुप् संज्ञा हो जायगी। इस प्रकार लुक्-श्लु-लुप् इन तीनों संज्ञाओं का पृथक् २ विषयविभाग हो जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकार से किये गये प्रत्यय के अदर्शन होने से यह भिन्न २ संज्ञायें होंगी॥

प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् ॥१।१।६१॥

प्रत्ययलोपे ७।१॥ प्रत्ययलक्षणम् १।१॥ स०—प्रत्ययस्य लोप प्रत्ययलोपः, तस्मिन् प्रत्ययलोपे षष्ठीतत्पुरुषः। प्रत्ययो लक्षणं यस कार्यस्य, तत् प्रत्ययलक्षणम्, बहुव्रीहिः॥ अर्थः—प्रत्ययस्य लोपे सति प्रत्ययनिमित्तं (प्रत्ययहेतुकं) कार्यं भवति॥ उदा०—अग्निचित् सोमसुत्। अधोक्॥

---

१. मण्डूकप्लुत न्याय यह है कि जैसे मण्डूक=मेंढक कूद कूद कर ही चलते हैं, सरक कर नहीं। इसी प्रकार इस सूत्र का 'इति' पद भी बीच के सूत्रों में न बैठकर यहां उपस्थित हुआ है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*प्रत्ययलोपे*] प्रत्यय के लोप हो जाने पर [*प्रत्ययलक्षणम्*] प्रत्ययलक्षण कार्य हो जाता है अर्थात् उस प्रत्यय को मान कर जो कार्य पाता था, वह उसके लोप हो जाने पर (हट जाने पर) भी हो जावे ॥

यहाँ से '*प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्*' की अनुवृत्ति १।१।६२ तक जाती है ॥

न लुमताङ्गस्य ॥१।१।६२॥

न अ० ॥ लुमता ३।१॥ अङ्गस्य ६।१॥ अनु०—प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् ॥ लु अस्मिन्नस्तीति लुमान् तेन लुमता, *तदस्यास्त्यस्मिन्निति* मतुप् (५।२।९४) इत्यनेन मतुप् प्रत्ययः ॥ *अर्थः*—लुमता शब्देन प्रत्ययस्य लोपे (अदर्शने) सति, तस्मिन् परतो यदङ्गं तस्य यत् प्रत्ययलक्षणं कार्यं तन्न भवति ॥ उदा०—गर्गाः, मृष्टः, जुहुतः, वरणाः ॥

भाषार्थ:—[लुमता] लुक्-श्लु और लुप् इन शब्दों के द्वारा जहाँ प्रत्यय का अदर्शन किया गया हो, उसके परे रहते जो [*अङ्गस्य*] अङ्ग उस अङ्ग को जो प्रत्ययलक्षण कार्य प्राप्त हों वे [न] नहीं होते। पूर्व सूत्र से प्रत्ययलक्षण कार्य प्राप्त था, सो नहीं हुआ ॥

अचोऽन्त्यादि टि ॥१।१।६३॥

अचः ६।१। निर्धारणे षष्ठी ॥ अन्त्यादि १।१॥ टि १।१॥ अन्ते भवं अन्त्यम्, *दिगादिभ्यो यत्* (४।३।५४) इत्यनेन यत् प्रत्ययः ॥ स०—अन्त्य आदिर्यस्य तद् अन्त्यादि, बहुव्रीहिः ॥ *अर्थः*—अचां मध्ये योऽन्त्योऽच् स आदिर्यस्य समुदायस्य, स टिसंज्ञको भवति ॥ उदा०—'अग्निचित्, सोमसुत्, इत्यत्र इत् उत् शब्दः। पचेते, पचेथे ॥

भाषार्थ:—[अचः] अचों के मध्य में जो [*अन्त्यादि*] अन्त्य अच्, वह अन्त्य अच् आदि में है जिस (समुदाय) के उस (समुदाय) की [टि] टि संज्ञा होती है ॥

अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा ॥१।१।६४॥

अलः ५।१॥ अन्त्यात् ५।१॥ पूर्वः १।१॥ उपधा १।१॥ अत्रापि पूर्ववत् अन्ते भवम्, अन्त्यम् इति बोध्यम् ॥ *अर्थः*—अन्त्यात् अलः पूर्वो योऽल्, स उपधासंज्ञको भवति ॥ उदा०—भेत्ता छेत्ता ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ :—[अन्त्यात्] अन्त्य [अलः] अल् से [पूर्वः] पूर्व अल्, उसकी [उपधा] उपधा संज्ञा होती है ॥

[परिभाषाप्रकरणम्]

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य ॥१।१।६५॥

तस्मिन् ७।१॥ इति अ० ॥ निर्दिष्टे ७।१॥ पूर्वस्य ६।१॥ अर्थ :—तस्मिन्निति=सप्तम्या विभक्त्या निर्दिष्टे सति पूर्वस्य इ भवति, अर्थात् सप्तम्यर्थनिर्देशाद् यः पूर्वो वर्णः तस्य कार्यं भवति इहापि इतिकरणोऽर्थनिर्देशार्थः, तेन 'तस्मिन्' इति पदेन सप्तम्य गृह्यते, न तु तस्मिन् इति शब्दः ॥ उदा०—दध्युदकम्, मध्विदम् पचत्योदनम् ॥

भाषार्थ :—[तस्मिन् इति] सप्तमी विभक्ति से [निर्दिष्टे] निर्दि किया हुआ जो शब्द हो, उससे (अव्यवहित) [पूर्वस्य] पूर्व को का होता है ॥

यहाँ भी 'इति' शब्द अर्थनिर्देश के लिये है, सो 'तस्मिन्' इस पद से 'सप्तमी विभक्ति' का अर्थ लिया जायेगा, न कि 'तस्मिन्' यह शब्द। उदा०—दध्युदकम्, मध्विदम्, पचत्योदनम्। यहाँ सर्वत्र इको यणचि (६।१।७४) से यणादेश होता है। इस सूत्र में 'अचि' पद सप्तमी विभक्ति से निर्दिष्ट है, सो उदकम्, इदम् तथा ओदनम् अच् के परे रहते, उससे (अव्यवहित) पूर्व जो क्रमशः इ, उ, इ इनको ही यण् आदेश हुआ है ॥

यहाँ से 'निर्दिष्टे' की अनुवृत्ति १।१।६६ तक जायगी ॥

तस्मादित्युत्तरस्य ॥१।१।६६॥

तस्मात् ५।१॥ इति अ० ॥ उत्तरस्य ६।१॥ अनु०—निर्दिष्टे ॥ अर्थ :—पञ्चम्या विभक्त्या निर्दिष्टे सत्युत्तरस्य कार्यं भवति ॥ आदेः परस्य (१।१।५३) इत्यस्य शेषसूत्रम्, तथा च तस्य सङ्गतिरत्र कर्त्तव्या। उदा०—आसीनः, द्वीपम्, अन्तरीपम्, समीपम्। ओदनं पचति ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ :—[*तस्मात् इति*] पञ्चमी विभक्ति से निर्दिष्ट जो शब्द, उससे [*उत्तरस्य*] उत्तर को कार्य होता है ॥ *आदेः परस्य* (१।१।५३) का यह शेष सूत्र है, सो यहाँ पर उसकी सङ्गति कर लेनी चाहिये ॥ 'आसीनः' 'द्वीपम्' आदि की सिद्धि परिशिष्ट १।१।५३ में दिखा ही चुके हैं। ओदनं पचति (चावल पकाता है) यहाँ पर *तिङ्ङतिङः* (८।१।२८) से 'ओदनं' अतिङ् से उत्तर 'पचति' तिङ् को सर्वानुदात्त=निघात हो जाता है। यहाँ 'अतिङः' में पञ्चमी विभक्ति है, अतः 'अतिङ्' से उत्तर पचति को स्वर कार्य हुआ ॥

स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा ॥१।१।६७॥

स्वम् १।१॥ रूपम् १।१॥ शब्दस्य ६।१॥ अशब्दसंज्ञा १।१॥ *स०*—शब्दस्य संज्ञा=शब्दसंज्ञा, षष्ठीतत्पुरुषः, न शब्दसंज्ञा अशब्दसंज्ञा नञ्तत्पुरुषः ॥ *अर्थ* :—इह व्याकरणे यस्य शब्दस्य कार्यमुच्यते, तस्य स्वं रूपं ग्राह्यं, न तु शब्दार्थः, न च पर्यायवाची शब्दः, शब्दसंज्ञां वर्जयित्वा ॥ *उदा०*—आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत् ॥

भाषार्थ :—इस व्याकरण शास्त्र में [*शब्दस्य*] शब्द के [*स्वं रूपं*] अपने स्वरूप का ग्रहण होता है, उस शब्द के अर्थ का नहीं, न ही पर्यायवाची शब्दों का ग्रहण होगा, [*अशब्दसंज्ञा*] शब्दसंज्ञा को छोड़ कर। शब्द तथा अर्थ पृथक् पृथक् दो वस्तु हैं ॥ यह लौकिक रीति है कि यदि हम किसी से कहें कि "अग्निमानय=अग्नि को लाओ" तो वह "आग" ऐसा शब्द नहीं लाता, "आग" का अर्थ जो अङ्गारा है, वह लाता है, अर्थात् अर्थ से काम लेता है न कि शब्द से, सो यही बात कहीं व्याकरण शास्त्र में न ले ली जाये, इसलिये यह सूत्र है ॥

उदाहरण में *अग्नेर्ढक्* (४।२।३२) से अग्नि शब्द से ढक् प्रत्यय कहा है न कि अग्नि अर्थ अंगारे=कोयले आदि से ॥ यहाँ पर यदि अग्नि के अर्थ से ढक् करने लगेंगे तो सारी अष्टाध्यायी ही भस्म हो जायगी ॥ इस सूत्र में स्वरूप ग्रहण हो, ऐसा कहने के कारण ही यहाँ अग्नि के पर्यायवाची जो वह्नि-ज्वलन-धूमकेतु आदि शब्द हैं, उनसे भी ढक् प्रत्यय नहीं होगा ॥

यहाँ से 'स्वं रूपम्' की अनुवृत्ति १।१।७१ तक जाती है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः ॥१।१।६८॥

अणुदित् १।१ ॥ सवर्णस्य ६।१ ॥ च अ०॥ अप्रत्ययः १।१ ॥ स०—उत् इत् यस्य=उदित् अण् च उदित् च=अणुदित् बहुव्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः। न प्रत्ययः, अप्रत्ययः नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—स्वं रूपम्। अर्थ :—अण्प्रत्याहारः, उदित् च सवर्णस्य ग्राहको भवति, स्वस्य रूपस्य, प्रत्ययं वर्जयित्वा। अत्र 'अण्' प्रत्याहारः परेण णकारेण गृह्यते॥ उदा०—*अस्य च्वौ* (७।४।३२) अत्र 'अकारेण' सवर्णो दीर्घाकारोऽपि गृह्यते, तेन 'मालीयति' इत्यत्रापि 'ईत्वं' सिध्यति। *यस्येति च* (६।४।१४८), अत्रापि 'अकारेण' सवर्णो 'आकार' ग्रहणम्। 'मालीयः' अत्रापि लोपो भवति। *आद्गुणः* (६।१।८४) अत्रापि दीर्घप्लुतस्यापि ग्रहणं भवति, तेन रमा + ईश्वरः = रमेश्वरः, अत्रापि गुणो भवति॥ उदित्—कु (क़वर्गः), चु (चवर्गः) टु (टवर्गः) तु (तवर्गः) पु (पवर्गः)॥

भाषार्थ :—[*अणुदित्*] अण् प्रत्याहार (यहाँ पर अण् से उ ण णकार का ग्रहण होता है), तथा उदित् (उकार इत् वाले जो वर्ण) वह अपने स्वरूप तथा अपने [*सवर्णस्य*] सवर्णी का [च] भी ग्रहण कराने वाले होते हैं, [*अप्रत्ययः*] प्रत्यय को छोड़ कर॥

पूर्व सूत्र १।१।६७ से शब्द के स्वरूप का ही ग्रहण प्राप्त था, उसके सवर्णी नहीं लिया जा सकता था, सो इस सूत्र से विधान कर दिया। *अस्य च्वौ* (७।४।३२), *यस्येति च* (६।४।१४८), *आद्गुणः* (६।१।८४ इन सब में ह्रस्व अकार सूत्र में निर्देश होने पर भी ह्रस्व अकार तथा उसके सवर्णी दीर्घ और प्लुत 'आ अ३' का भी ग्रहण हो जाता है। उदित्—इसी प्रकार कु से कवर्ग (क ख ग घ ङ), चु से चवर्ग (च छ ज झ ञ), टु से टवर्ग (ट ठ ड ढ ण), तु से तवर्ग (त थ द ध न), पु से पवर्ग (प फ ब भ म) का ग्रहण होता है। क्योंकि *वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः* (वर्णो० ७७) से अपने २ वर्गों में होने वाले वर्ण परस्पर सवर्णी होते हैं। यहाँ से *'सवर्णस्य'* की अनुवृत्ति १।१।६९ तक जाती है॥

तपरस्तत्कालस्य ॥१।१।६९॥

तपरः १।१ ॥ तत्कालस्य ६।१ ॥ स०—तः परो यस्मात् सोऽयं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तपरः, बहुव्रीहिः। अथवा तादपि परस्तपरः, पञ्चमीतत्पुरुषः। तस्य कालः तत्कालः, षष्ठीतत्पुरुषः। तत्कालः कालो यस्य, स तत्कालः, उत्तरपदलोपी बहुव्रीहिसमासः॥ अनु०—सवर्णस्य, स्वं रूपम्॥ अर्थः—तपरो वर्णः तत्कालस्य सवर्णस्य (गुणान्तरयुक्तस्य च), स्वस्य रूपस्य च ग्राहको भवति॥ उदा०—अतो भिस ऐस् (७।१।९) वृक्षैः प्लक्षैः। आत औ णलः (७।१।३४) पपौ ददौ॥

भाषार्थः—[तपरः] तपर (त् परे वाला तथा जो त् से परे) वर्ण वह [तत्कालस्य] अपने काल वाले सवर्णियों का तथा अपना भी ग्रहण कराता है, भिन्न काल वाले सवर्णी का नहीं॥

अपने काल वाले तपर चाहे भिन्न गुण वाला (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, सानुनासिक तथा निरनुनासिक आदि) ही हो, उन सवर्णियों का तो ग्रहण करा ही देगा, पर भिन्न काल वाले सवर्णी का नहीं॥

अतो भिस ऐस् (७।१।९) यहाँ पर 'अतः' से ह्रस्व अ ही लिया जायगा सो वृक्ष प्लक्ष जो अकारान्त शब्द हैं, उनके भिस् को ऐस् होगा। माला शब्द से परे भिस् को ऐस् नहीं होगा। इसी प्रकार आत औ णलः (७।१।३४) में दीर्घ 'आ' को तपर किया है, तो आकारान्त जो पा दा आदि धातु हैं, इनसे परे ही णल् को औकारादेश होगा॥

आदिरन्त्येन सहेता ॥१।१।७०॥

आदिः १।१॥ अन्त्येन ३।१॥ सह अ०॥ इता ३।१॥ अनु०—स्वं रूपम्॥ अर्थः—आदिः अन्त्येन इता=इत्संज्ञकेन वर्णेन सह तयोर्मध्यस्थानां, स्वस्य च रूपस्य ग्राहको भवति॥ उदा०—अण्=अ इ उ। अक्=अ इ उ ऋ ऌ। अच्=अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ॥

भाषार्थः—[आदिः] आदि का जो वर्ण वह अपने [अन्त्येन] अन्त्य [इता सह] इत् संज्ञक वर्ण के साथ मिलकर अपने बीच के वर्णों का, तथा अपने स्वरूप का भी ग्रहण कराता है॥

येन विधिस्तदन्तस्य ॥१।१।७१॥

येन ३।१॥ विधिः १।१॥ तदन्तस्य ६।१॥ स०—सोऽन्ते यस्य स तदन्तः, तस्य तदन्तस्य बहुव्रीहिः॥ अनु०—स्वं रूपम्॥ अर्थः—येन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(विशेषणेन) विधिर्विधीयते, स तदन्तस्य समुदायस्य, स्वस्य च रूपस्य ग्राहको भवति ॥ उदा०—अचो यत् (३।१।९७) चेयम्, जेयम्। एरच् (३।३।५६) चयः, जयः, अयः ॥

भाषार्थ :—[येन] जिस विशेषण से [विधिः] विधि की जावे, व विशेषण [तदन्तस्य] अन्त में है जिसके, उस विशेषणान्त समुदाय व ग्राहक होता है, अपने स्वरूप का भी ॥

यहाँ प्रक्रिया इस प्रकार समझनी चाहिए—अचो यत् (३।१।९७) धातु का अधिकार आ रहा है, 'अचः' तथा 'धातोः' दोनों पञ्चम्यन्त कैसे धातु से ? अचः, अच् धातु से, यह अर्थ स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसं (१।१।६७) से, स्वरूप का ग्रहण होकर होगा, सो अच् नाम की धा से यत् प्रत्यय आवेगा। उसका अपवाद है अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्य (१।१।६८), सो यहाँ आदिरन्त्येन सहेता लगकर अणुदित्सवर्णस्य ने अच् के सवर्णी आ ई ऊ आदि का ग्रहण कराया। तब प्रकृ सूत्र ने कहा 'अचः धातोः' अच् विशेषणयुक्त धातु से यत् प्रत्य हो, सो प्रकृत सूत्र से तदन्त=अच् अन्त में है जिसके (चि जि ऐसे धातु से यत् प्रत्यय हो गया। ऐसे ही अतो दीर्घो यञि (७।३।१०१ में भी ऊपर से अङ्गस्य (६।४।१) अधिकार आता है, स्वरूप बना—अतः अङ्गस्य=सूत्र से अर्थ बना अतः=अदन्तस्य अङ्गस्य दीर्घो भवति यञि परतः। ऐसा ही सर्वत्र समझ लेना चाहिए ॥

[वृद्धसंज्ञाप्रकरणम्]

वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम् ॥१।१।७२॥

वृद्धिः १।१॥ यस्य ६।१॥ अचाम् ६।३ निर्धारणे षष्ठी ॥ आदिः १।१॥ तत् १।१॥ वृद्धम् १।१॥ अर्थः—यस्य समुदायस्य अचां मध्ये आदि अच् वृद्धिर्भवति, तत् समुदायरूपं वृद्धसंज्ञकं भवति ॥ उदा०—शालीय मालीयः। औपगवीयः, कापटवीयः ॥

भाषार्थः—[यस्य] जिस समुदाय के [अचाम्] अचों में [आदि] आदि अच् [वृद्धिः] वृद्धि संज्ञक हो [तत्] उस समुदाय की [वृद्ध] वृद्ध संज्ञा होती है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शालीयः, मालीयः की सिद्धि परिशिष्ट १।१।१ में दिखा चुके हैं। इसी प्रकार 'औपगवः, कापटवः' शब्दों का आदि अच् वृद्धि संज्ञक है, अतः वृद्ध संज्ञा होकर पूर्ववत् छ प्रत्यय हो गया॥ यहाँ से 'वृद्धम्' की अनुवृत्ति १।१।७४ तक तथा *यस्याचामादिः* की १।१।७४ में ही जाती है, १।१।७३ में नहीं जाती॥

त्यदादीनि च ॥१।१।७३॥

त्यदादीनि १।३॥ च अ०॥ *स०*—त्यद् आदिर्येषाम्, तानीमानि त्यदादीनि, बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—वृद्धम्॥ *अर्थः*—त्यदादीनि शब्दरूपाणि वृद्धसंज्ञकानि भवन्ति॥ *उदा०*—त्यदीयम्। तदीयम्। एतदीयम्॥

भाषार्थः—*[त्यदादीनि]* त्यदादि गण में पढ़े शब्दों की [च] भी वृद्ध संज्ञा होती है॥ वृद्ध संज्ञा का प्रयोजन पूर्ववत् समझें॥

उदा०—त्यदीयम् (उसका), तदीयम् (उसका), एतदीयम् (इसका)॥

एङ् प्राचां देशे ॥१।१।७४॥

एङ् १।१॥ प्राचाम् ६।३॥ देशे ७।१॥ *अनु०*—यस्याचामादिः, वृद्धम्॥ *अर्थः*—यस्य समुदायस्य अचाम् आदिः 'एङ्' तस्य प्राचां देशाभिधाने वृद्धसंज्ञा भवति॥ *उदा०*—एणीपचने भवः, एणीपचनीयः। गोनर्दे भवः, गोनर्दीयः। भोजकटे भवः, भोजकटीयः॥

भाषार्थः—जिस समुदाय के अचों का आदि अच् [एङ्] एङ् हो, उसकी *[प्राचां देशे]* पूर्वदेश को कहने में वृद्ध संज्ञा होती है॥

उदा०—एणीपचनीयः (एणीपचन देश में होनेवाला) गोनर्दीयः (आजकल का गोण्डा प्रदेश यह महाभाष्यकार पतञ्जलि का नाम है, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है)। भोजकटीयः (भोजकट नगर प्राचीन विदर्भ की राजधानी थी, उसमें होने वाला)। यहाँ भी पूर्ववत् ही वृद्ध संज्ञा का प्रयोजन है॥

इति प्रथमः पादः

——:o:——

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

द्वितीयः पादः

[ङित्कित्प्रकरणम्]

गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् ॥१।२।१॥

गाङ्कुटादिभ्यः ५।३॥ अञ्णित् १।१॥ ङित् १।१॥ स०—कु आदिर्येषां ते कुटादयः, गाङ् च कुटादयश्च गाङ्कुटादयस्तेभ्यः..... बहुव्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः। ञश्च णश्च ञ्णौ, इतरेतरद्वन्द्वः। ञ्णौ इतौ यस्य स ञ्णित्, न ञ्णित् अञ्णित्, बहुव्रीहिगर्भो नञ् तत्पुरुषः॥ अर्थ :—गाङ्धातोः, कुटादिभ्यश्च धातुभ्यः परे, ञित्णित्भिन्नप्रत्ययास्ते ङिद्वद् भवन्ति। गाङ् इत्यनेन इङादेः गाङ् गृह्यते, यो *विभाषा लुङ्लृङोः* (२।४।५०) इत्यनेन सम्पद्यते कुटादयोऽपि (तुदा०) कुट कौटिल्ये इत्यारभ्य कुङ् शब्दे इति यावत् गृह्यन्ते॥ उदा०—गाङ्-अध्यगीष्ट, अध्यगीषाताम्, अध्यगीषत कुटादिभ्यः—कुटिता, कुटितुम्, कुटितव्यम्। उत्पुटिता, उत्पुटितुम् उत्पुटितव्यम्॥

भाषार्थ :—[*गाङ्कुटादिभ्यः*] गाङ् तथा कुटादि धातुओं से परे जो [*अञ्णित्*] ञित् णित् भिन्न प्रत्यय वह [*ङित्*] ङित् (ङित् के समान) होते हैं॥

गाङ् से यहाँ इङ् धातु का आदेश जो 'गाङ्' वह लिया गया है। कुटादि गण भी कुट कौटिल्ये धातु से लेकर कुङ् शब्दे तक जानना चाहिये। यहाँ से '*ङित्*' की अनुवृत्ति १।२।४ तक जायगी॥

विज इट् ॥१।२।२॥

विजः ५।१॥ इट् १।१॥ अनु०—ङित्॥ अर्थ :—ओविजी भयचलनयोः, (तुदा० आ०) इत्येतस्मात् पर इडादिः प्रत्ययो ङिद्वद् भवति। उदा०—उद्विजिता उद्विजितुम् उद्विजितव्यम्॥

भाषार्थ :—[*विजः*] ओविजी धातु से परे [*इट्*] इडादि प्रत्यय ङित्वत् होते हैं। उद्विजिता (कंपाने वाला) आदि की सिद्धियाँ पूर्व

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

१।१।४८ के समान ही हैं। सर्वत्र *पुगन्तलघू०* (७।३।८६) से गुण की प्राप्ति का *क्ङिति च* (१।१।५) से निषेध हो जाये, यही ङित् करने का प्रयोजन है। यहाँ से 'इट्' की अनुवृत्ति १।२।३ तक जायगी॥

विभाषोर्णोः ॥१।२।३॥

विभाषा १।१॥ ऊर्णोः ५।१॥ अनु०—इट् ङित्॥ *अर्थ* :—'ऊर्णुञ् आच्छादने', (अदा० उ०) अस्मात् पर इडादिः प्रत्ययो विभाषा ङिद्वद् भवति॥ उदा०—ऊर्णुविता ऊर्णविता॥

भाषार्थ :—*[ऊर्णोः]* ऊर्णुञ् धातु से परे इडादि प्रत्यय *[विभाषा]* विकल्प करके ङित्वत् होता है। ङित् पक्ष में *सार्वधातु०* (७।३।८४) से प्राप्त गुण का पूर्ववत् निषेध होकर 'ऊर्णु इट् तृच् सु' रहा। *अचि श्नुधातु०* (६।४।७७), और ङिच्च (१।१।५२) लगकर उकार के स्थान में उवङ् हुआ, सो ऊर्णुवङ् इ तृ सु = ऊर्णुव् इ तृ सु रहा शेष परि० १।१।२ के 'चेता' के समान होकर ऊर्णुविता बना। अङित् पक्ष में ७।३।८४ से गुण होकर 'ऊर्णो इ तृ सु' रहा। सो एचोयवायावः (६।१।७५) से अवादेश होकर 'ऊर्णविता' बन गया॥

उदा०—ऊर्णुविता (आच्छादन करने वाला) ऊर्णविता॥

सार्वधातुकमपित् ॥१।२।४॥

सार्वधातुकम् १।१॥ अपित् १।१॥ *स०*—पृ इत् यस्य स पित्, बहुव्रीहिः। न पित् अपित्, नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—ङित्॥ *अर्थ* :—अपित् सार्वधातुकं ङिद्वद् भवति॥ उदा०—कुरुतः, कुर्वन्ति। चिनुतः, चिन्वन्ति॥

भाषार्थ :—*[अपित्]* पित् भिन्न (जो पकार इत् वाला नहीं) *[सार्वधातुकम्]* सार्वधातुक ङित्वत् होता है॥

यहाँ से *'अपित्'* की अनुवृत्ति १।२।५ तक जायगी॥

असंयोगाल्लिट् कित् ॥१।२।५॥

असंयोगात् ५।१॥ लिट् १।१॥ कित् १।१॥ *स०*—न संयोगः, असंयोगस्तस्मादसंयोगात्, नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—अपित्॥ *अर्थ* :—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

असंयोगान्ताद्धातोः परोऽपिल्लिट् प्रत्ययः किद्वद् भवति ॥ उदा०—बिभिदतुः बिभिदुः । चिच्छिदतुः चिच्छिदुः । ईजतुः ईजुः ॥

भाषार्थ :—[*असंयोगात्*] संयोग जिसके अन्त में न हो ऐसी धातु से परे अपित् [*लिट्*] लिट् प्रत्यय [*कित्*] कित्वत् होता है ॥

यहाँ से 'लिट्' की अनुवृत्ति १।२।६ तक, तथा 'कित्' की १।२।५ तक जायेगी ॥

इन्धिभवतिभ्यां च ॥१।२।६॥

इन्धिभवतिभ्याम् ५।२ ॥ च अ० ॥ स०—इन्धिश्च भवतिश्च इन्धिभवती, ताभ्याम् इन्धिभवतिभ्याम् . इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—लिट् कित् ॥ अर्थ :—इन्धि, भवति इत्येताभ्यां परो लिट् प्रत्यय किद्वद् भवति ॥ उदा०—पुत्र ईधे अथर्वणः (ऋ० ६।१६।१४) समीधे दस्युहन्तमम् (ऋ० ६।१६।१५), बभूव बभूविथ ॥

भाषार्थ :—[*इन्धिभवतिभ्याम्*] इन्धि तथा भू धातु से [च] भी परे लिट् प्रत्यय कित्वत् होता है ॥

इन्ध से उत्तर लिट् को कित्वत् करने का प्रयोजन इन्ध के अ नासिक का ६।४।२४ से लोप करना है, तथा अपित् स्थानों में तो भू उत्तर लिट् १।२।५ से कित्वत् हो ही जायेगा । पित् (—णल् थ णल् जो पित् स्थानी होने से कित्वत् नहीं हो सकते) स्था में भी कित्वत् हो कर वृद्धि का निषेध हो जाये, इसलिये यह सूत्र है।

मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा ॥१।२।७॥

मृडमृ··वसः ५।१॥ क्त्वा १।१॥ स०—मृडश्च मृदश्च गुध कुषश्च क्लिशश्च वदश्च वस् च मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवस्, तस्मा मृड··वसः समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—कित् ॥ अर्थ :—'मृड सुख (तुदा० प०), 'मृद क्षोदे' (क्रया० प०), 'गुध रोषे' (क्रया० प०), निष्कर्षे (क्रया० प०) 'क्लिशू विबाधने' (क्रया० प०) वद व्यक्त वाचि (भ्वा० प०) 'वस निवासे' (भ्वादि प०), इत्येतेभ्यो धातु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परः क्त्वाप्रत्ययः किद्वद् भवति ॥ उदा०—मृडित्वा, मृदित्वा, गुधित्वा, कुषित्वा, क्लिशित्वा, उदित्वा, उषित्वा ॥

भाषार्थ :—[*मृड····वसः*] मृड, मृद, गुध, कुष, क्लिश, वद तथा वस इन धातुओं से उत्तर [*क्त्वा*] क्त्वा प्रत्यय कित्वत् होता है ॥

विशेष :—क्त्वा प्रत्यय तो कित् है ही, पुनः उसे कित्वत् करने का यह प्रयोजन है कि *न क्त्वा सेट्* (१।२।१८) सूत्र से सेट् क्त्वा कित् नहीं होता ऐसा कहा है, यह सब सेट् धातु थे, सो इनसे उत्तर जो क्त्वा वह भी कित् होते हुए भी कित् न माना जाता, कित् माना जाये, अतः यह सूत्र पुरस्तादपवाद रूप में बनाया है। गुध, कुष, क्लिश इन धातुओं को विकल्प से *कित्वत् रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च* (१।२।२६) से प्राप्त था, नित्य कित्वत् हो, इसलिये यहाँ पुनः कहा है ॥

यहाँ से 'क्त्वा' की अनुवृत्ति १।२।८ तक जायगी ॥

रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च ॥१।२।८॥

रुद···प्रच्छः ५।१ ॥ सन् १।१ ॥ च अ० ॥ स०—रुदश्च, विदश्च, मुषश्च, ग्रहिश्च, स्वपिश्च, प्रच्छ् च, रुदविद···प्रट् तस्मात् रुद...प्रच्छः, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—क्त्वा, कित् ॥ अर्थः—'रुदिर् अश्रुविमोचने' (अदा० प०), 'विद ज्ञाने' (अदा० प०), 'मुष स्तेये (क्रया० प०), 'ग्रह उपादाने (क्रया० उ०), ष्विष्वप् शये (अदा० प०), 'प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्' (तुदा० प०), इत्येतेभ्यो धातुभ्यः परौ क्त्वासनौ प्रत्ययौ किद्वद् भवतः ॥ उदा०—रुदित्वा, रुरुदिषति। विदित्वा, विविदिषति। मुषित्वा, मुमुषिषति। गृहीत्वा, जिघृक्षति। सुप्त्वा, सुषुप्सति। पृष्ट्वा, पिपृच्छिषति ॥

भाषार्थ :—[*रुद.....प्रच्छः*] रुद, विद, मुष, ग्रह, स्वप् तथा प्रच्छ् इन धातुओं से परे [*सन्*] सन् [*च*] और क्त्वा प्रत्यय कित्वत् होते हैं। रुद, विद, मुष इन धातुओं को *रलो व्युपधा०* (१।२।२६) से विकल्प से कित्वत् प्राप्त था, नित्यार्थ यह वचन है। ष्वप्, प्रच्छ धातु अनिट् हैं, सो इन्हें १।२।१८ से कित् का निषेध प्राप्त ही नहीं था, पुनः इनसे उत्तर क्त्वा को कित् करना व्यर्थ है,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

क्योंकि वह तो कित् है ही, तब इनका ग्रहण सन् को कित् करने के लिये ही है न कि क्त्वा को कित् करने के लिए, ऐसा जानना चाहिये॥

यहाँ से 'सन्' की अनुवृत्ति १।२।१० तक जायगी॥

इको झल् ॥१।२।९॥

इकः ५।१॥ झल् १।१॥ अनु०—सन् कित्॥ अर्थ :—इगन्ता धातोः परो झलादिः सन् किद्वद् भवति॥ उदा०—चिचीर्षति, तुष्टूषति, चिकीर्षति, जिहीर्षति॥

भाषार्थ :—[इकः] इक् अन्त वाले धातु से परे [झल्] झलादि सन् कित्वत् होता है॥

यहाँ से 'इकः' की अनुवृत्ति १।२।११ तथा 'झल्' की अनुवृत्ति १।२।१३ तक जायगी॥

हलन्ताच्च ॥१।२।१०॥

हलन्तात्, ५।१॥ च० अ०॥ स०—हल् चासौ, अन्तश्च, हलन्तस्तस्मात् हलन्तात्, कर्मधारयतत्पुरुषः। अनु०—इको झल्, सन्, कित्॥ अर्थ :—इकः समीपाद् यो हल् तस्मात् परो झलादिः, सन् किद्वद् भवति॥ अन्तशब्दोऽत्र सामीप्यवाची॥ उदा०—बिभित्सति, बुभुत्सते॥

भाषार्थ :—इक् के [हलन्तात्] समीप जो हल् उससे परे [झल्] भी झलादि सन् कित्वत् होता है॥ यहाँ अन्त शब्द सामीप्यवाची है॥ यहाँ से 'हलन्तात्' की अनुवृत्ति १।२।११ तक जायगी॥

लिङ्सिचावात्मनेपदेषु ॥१।२।११॥

लिङ्सिचौ १।२॥ आत्मनेपदेषु ७।३॥ स०—लिङ् च सिच् लिङ्सिचौ, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—हलन्तात्, इको झल्, कित्॥ अर्थ :—इक् समीपाद् हलः परौ झलादी लिङ्सिचौ, आत्मनेपदेषु किद्वद् भवतः। उदा०—लिङ्—भित्सीष्ट भुत्सीष्ट। सिच्—अभित्त अबुद्ध॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—इक् समीप जो हल् उससे परे जो झलादि [*लिङ्सिचौ*] लिङ् और सिच् वह [*आत्मनेपदेषु*] आत्मनेपद विषय में कित्वत् होते हैं ॥ यहाँ से *'लिङ्सिचौ'* की अनुवृत्ति १।२।१३ तक तथा *आत्मनेपदेषु* की १।२।१७ तक जायगी ॥

उश्च ॥१।२।१२॥

उः ५।१॥ च अ० ॥ अनु०—लिङ्सिचावात्मनेपदेषु, झल्, कित् ॥ *अर्थः*—ऋवर्णान्ताद्धातोः परौ झलादी लिङ्सिचौ, आत्मनेपदविषये किद्वद् भवतः ॥ उदा०—लिङ्—कृषीष्ट, हृषीष्ट। सिच्—अकृत अहृत ॥

भाषार्थः—[उः] ऋवर्णान्त धातुओं से परे [च] भी झलादि लिङ् और सिच् आत्मनेपद विषय में कित्वत् होते हैं ॥ सब सिद्धियाँ परि० १।२।११ के समान जानें। कित्वत् होने से ७।३।८४ से प्राप्त गुण का निषेध पूर्ववत् हो जाता है। अकृत अहृत में सिच् का लोप *हल्ङ्यादिभ्यः* (८।२।२७) से होता है ॥

उदा०—कृषीष्ट (वह करे) हृषीष्ट (वह हरण करे) सिच्—अकृत (उसने किया) अहृत (उसने हरण किया) ॥

वा गमः ॥१।२।१३॥

वा अ० ॥ गमः ५।१॥ अनु०—लिङ्सिचावात्मनेपदेषु, झल्, कित् ॥ *अर्थः*—गम्धातोः परौ झलादी लिङ्सिचौ, आत्मनेपदविषये विकल्पेन किद्वद् भवतः ॥ उदा०—संगसीष्ट, संगंसीष्ट। सिच्—समगत समगंस्त ॥

भाषार्थः—[गमः] गम् धातु से परे झलादि लिङ् और सिच् आत्मनेपद विषय में [वा] विकल्प से कित्वत् होते हैं ॥

हनः सिच् ॥१।२।१४॥

हनः ५।१॥ सिच् १।१॥ अनु०—आत्मनेपदेषु कित् ॥ *अर्थः*—हन्धातोः परः सिच् आत्मनेपदविषये किद्वद् भवति ॥ उदा०—अहत, आहसाताम्, आहसत ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ :—[*हनः*] हन् धातु से परे [*सिच्*] सिच् कित् होता है, आत्मनेपद विषय में ॥

आहत में समगत के समान ही कित्वत् होने से अनुनासिक लोप होकर ८।२।२७ से सिच् लोप हुआ है। *आडो यमहनः* (१।३।२८) सूत्र से हन् धातु से आत्मनेपद हो जायेगा। आहसत में 'झ' को 'त' आदेश *आत्मनेपदेष्वनतः* (७।१।५) से हो जाता है। उदा०—आ (उसने मारा) आहसाताम्, आहसत ॥

यहाँ से *'सिच्'* की अनुवृत्ति १।२।१७ तक जायगी ॥

यमो गन्धने ॥१।२।१५॥

यमः ५।१॥ गन्धने ७।१॥ अनु०—सिच्, आत्मनेपदेषु, कित्॥ *अर्थ* :—गन्धनेऽर्थे वर्त्तमानाद् यम् धातोः परः सिच् आत्मनेपदेषु कित्वद् भवति। *गन्धनं* = सूचनम्, परस्य दोषाविष्करणम् ॥ उदा० उदायत, उदायसाताम् उदायसत ॥

भाषार्थ :—[*गन्धने*] गन्धन अर्थ में वर्त्तमान [*यमः*] यम् से परे आत्मनेपद विषय में सिच् प्रत्यय कित्वत् होता है॥ चुगली करने को कहते हैं ॥

उदायत यहाँ पर भी कित् करने का प्रयोजन अनुनासिक लोप ही है, तदनन्तर सिच् लोप पूर्ववत् ही हो जायेगा। आत्मनेपद *आडो यमहनः* (१।३।२८) से हो जाता है। उत् आङ् यम् त = उदायस्त = 'उदायत' (उसने चुगली की) बन गया ॥

यहाँ से *'यमः'* की अनुवृत्ति १।२।१६ तक जायगी ॥

विभाषोपयमने ॥१।२।१६॥

विभाषा १।१॥ उपयमने ७।१॥ अनु०—यमः सिच्, आत्मनेपदेषु कित्॥ *अर्थ* :—उपयमनेऽर्थे वर्त्तमानाद् यम् धातोः परः सिच् आत्मनेपदविषये विकल्पेन कित्वद् भवति ॥ उपयमनं पाणिग्रहः ॥ उदा०—उपायत कन्याम्, उपायंस्त कन्याम् ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ :—[*उपयमने*] उपयमन अर्थ में वर्त्तमान यम धातु से परे आत्मनेपदविषय में सिच् प्रत्यय [*विभाषा*] विकल्प करके कित्वत् होता है ॥ उपयमन विवाह करने को कहते हैं ॥

उप आङ् पूर्वक 'उपायत' तथा 'उपायंस्त' की सिद्धि 'समगत समगंस्त' के समान परि० १।२।१३ में देखें। कित् पक्ष में अनुनासिक लोप, तथा सिच् लोप होकर, उपायत कन्याम् (उसने कन्या से विवाह किया) तथा अकित् पक्ष में उपायंस्त कन्याम् बनेगा ॥

स्थाघ्वोरिच्च ॥१।२।१७॥

स्थाघ्वोः ६।२ ॥ इत् १।१ ॥ च अ० ॥ *स०*—स्था च घुश्च, स्थाघू, तयोः स्थाघ्वोः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—सिच् आत्मनेपदेषु कित् ॥ *अर्थ* :—स्थाधातोः घुसंज्ञकानां चेकारादेशो भवति, तेभ्यः परः सिच् किद्वदपि भवति ॥ *उदा०*—उपास्थित, उपास्थिषाताम् उपास्थिषत। घुसंज्ञकानाम्—अदित अधित ॥

भाषार्थ :—[*स्थाघ्वोः*] स्था तथा घु संज्ञक धातुओं को [*इत्*] इकारादेश, तथा सिच् को कित्वत् [*च*] भी हो जाता है ॥

न क्त्वा सेट् ॥१।२।१८॥

न अ० ॥ क्त्वा १।१ ॥ सेट् १।१ ॥ *स०*—सह इटा सेट्, न सहेति० (२।२।२८) इति बहुव्रीहिसमासः ॥ *अनु०*—कित् ॥ *अर्थ* :—सेट् क्त्वाप्रत्ययः कित्र भवति ॥ *उदा०*—देवित्वा, वर्त्तित्वा, वर्धित्वा ॥

भाषार्थ :—[*सेट्*] सेट् [*क्त्वा*] क्त्वा प्रत्यय कित् [*न*] नहीं होता है ॥ कित् का निषेध करने से ७।३।८६ से गुण हो जाता है, अन्यथा *क्ङिति च* (१।१।५) से निषेध हो जाता। दिव् इट् त्वा = देवित्वा (क्रीडा करके) वृत् इट् त्वा = वर्त्तित्वा (बरत कर) वृध् इट् त्वा = वर्धित्वा (बढ़ कर) बनेंगे ॥

यहाँ से 'न' 'सेट्' की अनुवृत्ति १।२।२६ तक जायगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः ॥१।२।१९॥

निष्ठा १।१॥ शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः ५।१॥ स०—शीङ् स्विदिश्च मिदिश्च क्ष्विदिश्च धृट् च, शीङ्...धृट्, तस्मात् शीङ्...धृ समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—न सेट्, कित्। अर्थ :—शीङ् स्व (अदा० आ०) ञिष्विदा गात्रप्रक्षरणे (दिवा० प०) ञिमिदा स्ने (दिवा० प०) ञिक्ष्विदा स्नेहनमोचनयोः (दिवा० प०), ञिधृषा प्रागल (स्वा० प०) इत्येतेभ्यो धातुभ्यः परः सेट् निष्ठाप्रत्ययः न भवति॥

उदा०—शयितः शयितवान्, प्रस्वेदितः प्रस्वेदितवान्, प्रमे प्रमेदितवान्, प्रक्ष्वेदितः प्रक्ष्वेदितवान्, प्रधर्षितः प्रधर्षितवान्॥

भाषार्थ :—[शीङ्...धृषः] शीङ्, स्विद्, मिद्, क्ष्विद्, धृष् धातुओं से परे सेट् [निष्ठा] निष्ठा प्रत्यय कित् नहीं होता है॥

निष्ठाप्रत्ययान्त शब्दों की सिद्धियाँ परि० १।१।५ में दर्शाई हैं प्रकार यहाँ भी जानें। सेट् होने से सर्वत्र इट् आगम ७।२।३५ जाता है। कित् निषेध करने का सर्वत्र यही प्रयोजन है, कि से प्राप्त गुण हो जाय, अन्यथा १।१।५ से निषेध हो जाता॥

उदा०—शयितः (सोया हुआ) शयितवान् (वह सोया) (पसीने से भीगा हुआ) प्रस्वेदितवान् (वह पसीने से भीगा) (स्नेह किया हुआ) प्रमेदितवान् (उसने स्नेह किया) (स्नेह किया हुआ) प्रक्ष्वेदितवान् (उसने स्नेह किया) (ढीठ बना हुआ) प्रधर्षितवान् (उसने ढिठाई की)॥

यहाँ से "निष्ठा" की अनुवृत्ति १।२।२२ तक जाती है॥

मृषस्तितिक्षायाम् ॥१।२।२०॥

मृषः ५।१॥ तितिक्षायाम् ७।१॥ अनु०—निष्ठा न सेट् अर्थ :—तितिक्षायामर्थे वर्त्तमानात् मृष्धातोः परः सेट् निष्ठाप्र किद् भवति। तितिक्षा=क्षमा। उदा०—मर्षितः, मर्षितवान्।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ :—[*तितिक्षायाम्*] क्षमा अर्थ में वर्त्तमान [*मृषः*] मृष धातु से परे सेट् निष्ठा प्रत्यय कित् नहीं होता ॥

उदा०—मर्षितः (क्षमा किया हुआ) मर्षितवान् (उसने क्षमा किया) पूर्ववत् कित् निषेध होने से गुण हो जाता है ॥

उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् ॥१।२।२१॥

उदुपधात् ५।१ ॥ भावादिकर्मणोः ७।२ ॥ अन्यतरस्याम् ७।१ ॥ वृ०—उत् उपधायां यस्य स उदुपधस्तस्मात् उदुपधात्, बहुव्रीहिः। भावश्च, आदिकर्म च भावादिकर्मणी, तयोः भावादिकर्मणोः, इतरेतरैकशेषः ॥ अनु०—निष्ठा न सेट् कित् ॥ अर्थ :—उदुपधाद्धातोः परो भावे, आदिकर्मणि च वर्त्तमानः सेट् निष्ठाप्रत्ययोऽन्यतरस्याम् = विकल्पेन कित् न भवति ॥ उदा०—भावे—द्योतितमनेन, द्युतितमनेन। मोदितमनेन, मुदितमनेन ॥ आदिकर्मणि—प्रद्योतितः, प्रद्युतितः। प्रमोदितः, प्रमुदितः ॥

भाषार्थ :—[*उदुपधात्*] उकार जिसकी उपधा में है, ऐसी धातु से परे [*भावादिकर्मणोः*] भाववाच्य तथा आदिकर्म में वर्त्तमान जो सेट् निष्ठा वह [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प करके कित् नहीं होता। आदिकर्म क्रिया की प्रारम्भिक अवस्था को कहते हैं ॥ उदा०—द्योतितमनेन इसके द्वारा प्रकाशित हुआ) द्युतितमनेन, मोदितमनेन (प्रसन्न हुआ) मुदितमनेन। आदिकर्म में—प्रद्योतितः (प्रकाशित होना आरम्भ हुआ) प्रद्युतितः, प्रमोदितः (प्रसन्न होने लगा) ॥

द्युत् तथा मुद् उकारोपध धातुएँ हैं सो कित् निषेध पक्ष में गुण होता कित् पक्ष में गुण निषेध हो जाता है। *नपुंसके भावे क्तः* (३।३।११४) से भाव में क्त प्रत्यय हुआ है तथा *आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या* (वा० ३।२।१०२) इस वार्त्तिक से आदिकर्म को कहने में क्त प्रत्यय हुआ है। भाव, कर्म, कर्त्ता की विशेष व्याख्या *भावकर्मणोः* (१।३।१३) सूत्र पर देखें ॥

यहाँ क्तवतु प्रत्ययान्त के उदाहरण नहीं दिखाये गये हैं, क्योंकि वह भाव तथा आदिकर्म में वर्त्तमान होता ही नहीं है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पूङः क्त्वा च ॥१।२।२२॥

पूङः ५।१ ॥ क्त्वा १।१ ॥ च अ० ॥ अनु०—निष्ठा न कित् ॥ अर्थः—पूङ् पवने (भ्वा० आ०) अस्माद् धातोः पर निष्ठा क्त्वा च कित् न भवति ॥ उदा०—पवितः पवितवान् । पवि

भाषार्थः—[पूङः] पूङ् धातु से परे सेट् निष्ठा, तथा सेट् [क्त्वा प्रत्यय [च] भी कित् नहीं होता है ॥

उदा०—पवितः (पवित्र किया हुआ) पवितवान् (पवित्र कि पवित्वा (पवित्र करके) ॥

पवितः आदि में पूङश्च (७।२।५१) से इट् आगम पक्ष में है, सो सेट् पक्ष में कित् निषेध होने से गुण होकर 'पवितः', रूप बनेंगे, तथा जिस पक्ष में इट् आगम नहीं होगा उस पक्ष में निषेध नहीं होगा, सो गुण का निषेध होकर पूतः, पूतवान् पूत्वा रूप भी बनते हैं ॥ यहाँ से 'क्त्वा' की अनुवृत्ति १।२।२६ जाती है ॥

नोपधात्थफान्ताद्वा ॥१।२।२३॥

नोपधात् ५।१॥ थफान्तात् ५।१॥ वा अ० ॥ स०—न उप यस्य स नोपधः, तस्माद् बहुव्रीहिः । थश्च फश्च थफौ, अन्ते यस्य स थफान्तस्तस्मात्·····द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ अनु०— न सेट् कित् ॥ अर्थः—नकारोपधाद् थकारान्ताद् फकार धातोः परः सेट् क्त्वा प्रत्ययो वा न किद् भवति ॥ उदा०—ग्र ग्रन्थित्वा, ग्रथित्वा ग्रन्थित्वा । गुफित्वा गुम्फित्वा ॥

भाषार्थः—[नोपधात्] नकार उपधावाली धातुयें, यदि [थफान्तात्] थकारान्त और फकारान्त हों तो, उनसे परे जो क्त्वा प्रत्यय वह [वा] विकल्प करके कित् नहीं होता ॥ न सेट् (१।२।१८) से नित्य ही कित्त्व निषेध प्राप्त था विकल्प कर दिया है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा० – ग्रथित्वा (बांध करके) ग्रन्थित्वा, श्रथित्वा (छूट करके) श्रन्थित्वा, गुफित्वा (गूंथ करके) गुम्फित्वा ॥

ग्रन्थ, श्रन्थ धातुयें नकारोपध तथा थकारान्त हैं, सो कित् पक्ष में *अनिदितां हल०* (६।४।२४) से अनुनासिक लोप होगा। तथा अकित् पक्ष में नहीं होगा। इसी प्रकार गुन्फ धातु नकारोपध तथा फकारान्त है, उसमें भी ऐसे ही जानें ॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति १।२।२६ तक जायगी ॥

वञ्चिलुञ्च्यृतश्च ॥१।२।२४॥

वञ्चिलुञ्च्यृतः ५।१॥ च अ०॥ *स०*—वञ्चिश्च लुञ्चिश्च ऋत् च, वञ्चिलुञ्च्यृत् तस्मात् ·····समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—वा क्त्वा न सेट् कित् ॥

अर्थः—वञ्चु प्रलम्भने (चुरा० आ०) लुञ्च अपनयने (भ्वा० प०) ऋत् सौत्रो धातुः घृणायाम्, इत्येतेभ्यो धातुभ्यः परः सेट् क्त्वा वा न किद् भवति ॥ *उदा०*—वचित्वा वञ्चित्वा। लुचित्वा लुञ्चित्वा। ऋतित्वा अर्तित्वा ॥

भाषार्थः—*[वञ्चि....तः]* वञ्चु, लुञ्च, ऋत् इन धातुओं से परे [च] भी सेट् क्त्वा विकल्प करके कित् नहीं होता ॥ पूर्ववत् सेट् क्त्वा को कित्त्व निषेध प्राप्त था, विकल्प विधान कर दिया है ॥

उदा०—वचित्वा (ठग करके) वञ्चित्वा। लुचित्वा (दूर करके) लुञ्चित्वा। ऋतित्वा (घृणा करके) अर्तित्वा ॥

कित् पक्ष में वञ्च् लुञ्च् के अनुनासिक का पूर्ववत् लोप होगा तथा अकित् पक्ष में नहीं होगा। ऋत् धातु को भी कित् पक्ष में गुण निषेध, एवं अकित् पक्ष में गुण होगा, ऐसा जानना चाहिये ॥ वचित्वा वञ्चित्वा में इट् आगम *उदितो वा* (७।२।५६) से होता है ॥

तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य ॥१।२।२५॥

तृषिमृषिकृशेः ५।१॥ काश्यपस्य ६।१॥ *स०*—तृषिश्च मृषिश्च कृशिश्च तृषिमृषिकृशि, तस्मात्....समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—वा क्त्वा न सेट्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कित् ॥ अर्थ :—तृष पिपासायाम्, (दिवा० प०), मृष तितिक्षा (दिवा० उ०), कृश तनूकरणे (दिवा० प०), इत्येतेभ्यो धातुभ्यः सेट् क्त्वा वा न किद् भवति, काश्यपस्याचार्यस्य मतेन ॥ उदा० तृषित्वा तर्षित्वा । मृषित्वा मर्षित्वा । कृशित्वा कर्शित्वा ॥

भाषार्थ :—[*तृषिमृषिकृशेः*] तृष मृष कृश इन धातुओं से परे क्त्वा-प्रत्यय [*काश्यपस्य*] काश्यप आचार्य के मत में विकल्प से कित् नहीं होता ॥ काश्यप ग्रहण पूजार्थ है ॥

उदा०—तृषित्वा (प्यासा होकर) तर्षित्वा । मृषित्वा (सहन करके) मर्षित्वा । कृशित्वा (छील करके या पतला करके) कर्शित्वा । सर्वत्र कित् पक्ष में गुण निषेध तथा अकित् पक्ष में गुण होता है ।

९ रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च ॥१।२।२६॥

रलः ५।१॥ व्युपधात् ५।१॥ हलादेः ५।१॥ सन् १।१॥ च अ० ॥ स०—उश्च इश्च वी, (*इको यणचि* ६।१।७४ इत्यनेन यणादेशः) उपधे यस्य स व्युपधस्तस्मात्.....द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः । हल् आदिर्यस्य स हलादिस्तस्मात्.....बहुव्रीहिः ॥ अनु०—वा क्त्वा न सेट् किति ॥ अर्थ :—उकारोपधाद् इकारोपधाच्च रलन्ताद्धलादेः धातोः सेट् सन्, सेट् क्त्वा च वा कितौ न भवतः ॥ उदा०—द्युत् द्योतित्वा, लिखित्वा लेखित्वा । दिद्युतिषते, दिद्योतिषते, लिलिखिषति लिलेखिषति ॥

भाषार्थ :—[*व्युपधात्*] उकार, इकार उपधा वाली जो [रलन्त एवं [*हलादेः*] हलादि धातुएं उनसे परे जो सेट् [सन् [*च*] और सेट् क्त्वा प्रत्यय वह विकल्प से कित् नहीं होते ।

उदा०—द्युतित्वा (प्रकाशित होकर) द्योतित्वा, लिखित्वा (लिखकर) लेखित्वा । दिद्युतिषते (प्रकाशित होना चाहता है) दिद्योतिषते, लिलिखिषति (लिखना चाहता है) लिलेखिषति ॥

'द्युत दीप्तौ' (भ्वा० आ०) तथा 'लिख अक्षरविन्यासे' (तुदा०) ये धातुएं उकार इकार उपधावाली, रलन्त तथा हलादि भी हैं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इनसे परे सेट् सन् और सेट् क्त्वा को कित् विकल्प से हो गया है। कित् पक्ष में गुण निषेध एवं अकित् पक्ष में पूर्ववत् गुण भी हो जायेगा ॥

सिद्धि सारी पूर्ववत् ही समझें। सन्नन्त की सिद्धि परि० १।२।८ के समान जानें। हाँ ! दिद्युतिषते में 'द्युत् द्युत्' द्वित्व होने पर अभ्यास को *द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्* (७।४।६७) से अभ्यास को सम्प्रसारण होकर 'दि उ त् द्युत् इट् स अ त' = *सम्प्रसारणाच्च* (६।१।१०४) लगकर और अभ्यास कार्य होकर दिद्युतिषते बन गया है, ऐसा जानें ॥

ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ॥१।२।२७॥

ऊकालः १।१॥ अच् १।१॥ ह्रस्वदीर्घप्लुतः १।१॥ उ, ऊ, उ३काल इति (*अकः सवर्णे दीर्घः* ६।१।९७ इत्यनेन त्रयाणामुकाराणां दीर्घत्वम्) ऊकालः। कालशब्दः प्रत्येकमुकारं प्रति सम्बध्यते, उकालः, ऊकालः, उ३काल इति ॥ *स०*—उ ऊ उ३काल इव कालो यस्याचः स ऊकालः, बहुव्रीहिः। ह्रस्वश्च दीर्घश्च प्लुतश्च, ह्रस्वदीर्घप्लुतः, इतरेतरद्वन्द्वः। ह्रस्वदीर्घप्लुत इत्यत्र *सुपां सुलुक्०* (७।१।३९) इत्यनेन जसः स्थाने सुः ॥ यद्वा ह्रस्वदीर्घप्लुत इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः, छान्दसत्वात् नपुंसकताऽभावः ॥ *अर्थः*—उ ऊ उ३ मात्रिक-द्विमात्रिक-त्रिमात्रिक इत्येवंकालो योऽच् स यथासङ्ख्यं ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञको भवति ॥ *उदा०*—ह्रस्वः—दधिच्छत्रम् मधुच्छत्रम्। दीर्घः—कुमारी गौरी। प्लुतः—देवदत्त३अत्र न्वसि ॥

भाषार्थ:—[*ऊकालः*] उकाल=एकमात्रिक, ऊकाल=द्विमात्रिक, तथा उ३काल=त्रिमात्रिक वाले [*अच्*] अच् की यथासङ्ख्य करके [*ह्रस्वदीर्घप्लुतः*] ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत संज्ञा होती है, अर्थात् एकमात्रिक की ह्रस्व, द्विमात्रिक की दीर्घ, तथा त्रिमात्रिक की प्लुत संज्ञा होती है ॥

यहाँ से '*ह्रस्वदीर्घप्लुतः*' की अनुवृत्ति १।२।२८ तक तथा '*अच्*' की १।२।३१ तक जाती है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अचश्च ॥१।२।२८॥

अचः ६।१॥ च अ० ॥ अनु०—अच् ह्रस्वदीर्घप्लुतः ॥ परिभाषा स्थाननियमार्था ॥ अर्थः—ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत इत्येवं विधीयमानो यो स अच एव स्थाने भवति ॥ उदा०—अतिरि, अतिनु, उपगु। सूत्रस्याप्युदाहरणान्यत्र बोद्धव्यानि ॥

भाषार्थः—यह परिभाषा सूत्र है, स्थान का नियम करने के लिये ह्रस्व हो जाये, दीर्घ हो जाये, प्लुत हो जाये, ऐसा नाम लेकर जब कहा जावे तो [च] वह पूर्वोक्त ह्रस्व दीर्घ प्लुत [अचः] अच् के स्थान में ही हों ॥ अतिरि आदि की सिद्धि परि० १।१।४७ में देखें। यहाँ हस्वो नपुंसके० (१।२।४७) से ह्रस्व प्राप्त हुआ तो वह अच् के स्थान ही हुआ न कि व्यञ्जन के स्थान में ॥

[स्वरप्रकरणम्]

उच्चैरुदात्तः ॥१।२।२९॥

उच्चैः अ० ॥ उदात्तः १।१॥ अनु०—अच् ॥ अर्थः—तालवादि हि भागवत्सु स्थानेषु वर्णा निष्पद्यन्ते, तत्र यः समाने स्थाने ऊर्ध्वभागे निष्पन्नोऽच् स उदात्तसंज्ञो भवति ॥ अत्र महाभाष्यकार आह: "आयामो दारुण्यमणुता खस्येति उच्चैःकराणि शब्दस्य। आयामः गात्राणां निग्रहः। दारुण्यम् = स्वरस्य दारुणता, रूक्षता। अणुता खस्य = कण्ठस्य संवृतता, उच्चैःकराणि शब्दस्य" ॥ उदा०—औपगवे, ते, के ॥

भाषार्थः—तालवादि स्थानों से वर्णों का उच्चारण होता है, स्थानों में जो ऊर्ध्व भाग हैं, उन [उच्चैः] ऊर्ध्व भागों से उच्चरित अच्, वह [उदात्तः] उदात्तसंज्ञक होता है ॥

यहाँ महाभाष्यकार कहते हैं कि—"आयामो दारुण्यमणुता खस्य उच्चैःकराणि शब्दस्य"। आयामः = शरीर के सब अवयवों को तान कर लेना। दारुण्यं = स्वर में रूखाई होना। अणुता खस्य = कण्ठ को सङ्कुचित कर लेना, ऐसे-ऐसे यत्नों से बोले जाने वाला जो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वह उदात्तसंज्ञक होता है ॥ प्रायः वेद में उदात्त स्वर का कोई चिह्न नहीं होता है ॥

नीचैरनुदात्तः ॥१।२।३०॥

नीचैः अ० ॥ अनुदात्तः १।१॥ अनु०—अच् ॥ अर्थ :—समाने स्थाने नीचभाग = अधोभागनिष्पन्नो योऽच् सोऽनुदात्तसंज्ञको भवति ॥ अत्रापि महाभाष्यकार आह—"*अन्ववसर्गो मार्दवमुरुता खस्येति नीचैः-कराणि शब्दस्य । अन्ववसर्गः = गात्राणां शिथिलता । मार्दवं = स्वरस्य मृदुता स्निग्धता । उरुता खस्य = महत्ता कण्ठस्येति नीचैः-कराणि शब्दस्य ।*" उदा०—नम॑स्ते॒ दे॒व॒द॒त्त॒, त्व॒, स॒म॒, सि॒म॒ ॥

भाषार्थ :—ताल्वादि स्थानों में जो [*नीचैः*] नीचे स्थानों से बोले जाने वाला अच् वह [*अनुदात्तः*] अनुदात्त संज्ञक होता है ॥

यहाँ भी महाभाष्यकार कहते हैं—*अन्ववसर्गो मार्दवमुरुता खस्येति नीचैःकराणि शब्दस्य ।*" अन्ववसर्गः = शरीर के अवयवों को ढीले कर देना, मार्दवं = स्वर को मृदु कोमल करके बोलना, उरुता खस्य = कण्ठ को फैला करके बोलना, इन-इन प्रयत्नों से बोले जाने वाला अच् अनुदात्त संज्ञक होता है । अनुदात्त स्वर का चिह्न सामान्यतया नीचे पड़ी रेखा होती है ॥

समाहारः स्वरितः ॥१।२।३१॥

समाहारः १।१॥ स्वरितः १।१॥ समाहार इत्यत्र सम् आङ् पूर्वात् हृञ्धातोः घञ्प्रत्ययः, समाहरणं समाहारः, पश्चात् समाहारोऽस्मिन्नस्तीति समाहारः, *अर्शआदिभ्योऽच्* (५।२।१२७) इत्यनेन मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः ॥ अनु०—अच् ॥ अर्थ :—उदात्तानुदात्तगुणयोः समाहारो यस्मिन्नचि सोऽच् स्वरितसंज्ञको भवति ॥ उदा०—क्व॑, शि॒क्य॑म्, क॒न्या॑, सा॒म॒न्यः॑ ॥

भाषार्थ :—[*समाहारः*] जिस अच् में उदात्त तथा अनुदात्त दोनों गुणों का समाहार हो, अर्थात् थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दोनों गुण मिले हों, ऐसा अच् [*स्वरितः*] स्वरितसंज्ञक होता है ॥

स्वरित का चिह्न सामान्यतया ऊपर खड़ी रेखा होती है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम् ॥१।२।३२॥

तस्य ६।१॥ आदितः अ० ॥ उदात्तम् १।१॥ अर्धह्रस्वम् १।१॥ स०—अर्धं ह्रस्वस्य अर्धह्रस्वम्, *अर्धं नपुंसकम्* (२।२।२) इत्य तत्पुरुषसमासः ॥

तस्येति सापेक्षकं पदं स्वरित इत्येतमनुकर्षति। 'आदितः' इ *तसिप्रकरणे आद्यादिभ्य उपसङ्ख्यानम्* (वा० ५।४।४४) इत्यनेन वार्ति तसिः प्रत्ययः, *तद्धितश्चास०* (१।१।३७) इत्यनेनाव्ययत्वम्। अर्ध मात्रम् अर्धह्रस्वं, मात्रचोऽत्र *प्रमाणे लो वक्तव्यः* (वा० ५।२।३७) इत वार्त्तिकेन लोपो द्रष्टव्यः॥ *अर्थः*—तस्य स्वरितस्यादौ, अर्धह्र उदात्तं भवति, शेषमनुदात्तम् ॥ *उदा०*—क्वं, कुन्यां ॥

भाषार्थः—[*तस्य*] उस स्वरित गुण वाले अच् के [*आदि* आदि की [*अर्द्धह्रस्वम्*] आधी मात्रा [*उदात्तम्*] उदात्त, और अनुदात्त होती है ॥

जिस प्रकार दूध तथा पानी मिला देने पर, पता नहीं लगता कहाँ पर पानी वा कहाँ पर दूध है, तथा कितना पानी वा कितना है, इसी प्रकार यहाँ उदात्त तथा अनुदात्त मिश्रित गुण वाले अच् स्वरित संज्ञा कही है, तो पता नहीं लगता कि, कहाँ पर उदात्त वा अनुदात्त है, तथा कितना उदात्त वा कितना अनुदात्त है, सो इस में पाणिनि आचार्य इसी बात का प्रतिपादन करते हैं।

क्वं में आदि की आधी मात्रा उदात्त तथा शेष आधी अनु है। कन्यां में आधी मात्रा आदि की उदात्त तथा शेष डेढ़ अनुदात्त रहेगी ॥ क्वं तथा कन्यां की सिद्धि परि० १।२।३१ में देखें

एकश्रुति दूरात् सम्बुद्धौ ॥१।२।३३॥

एकश्रुति १।१॥ दूरात् ५।१॥ सम्बुद्धौ ७।१॥ स०—एका श्रुतिः य यस्य तत् एकश्रुति, बहुव्रीहिः ॥ श्रवणं श्रुतिः। सम्यग् बो ज्ञापनं सम्बुद्धिः॥ *अर्थः*—दूरादाह्वाने सति, उदात्तानुदात्तस्वरि राणामेकश्रुतिर्भवति। यत्रोदात्तानुदात्तस्वरितानां पृथक् २ स्व

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

श्रूयते स एकश्रुतिस्वरः ॥ उदा०—आगच्छ भो माणवक देवदत्त३ । अत्रोदात्तानुदात्तस्वरितस्वराः पृथक् २ नोच्चारिता भवन्ति ॥

भाषार्थ :—[दूरात्] दूर से [सम्बुद्धौ] सम्बोधन=बुलाने में उदात्त अनुदात्त और स्वरित स्वरों को [एकश्रुति] एकश्रुति हो जाती है, अर्थात् पृथक् २ सब स्वरों का श्रवण न होकर, सब स्वरों का एक ही प्रकार का स्वर सुनाई देता है ॥

यहाँ सम्बुद्धि पद से एकवचनं सम्बुद्धिः (२।३।४६) वाला सम्बुद्धि नहीं लेना है, अपितु सम्यग् बोधनं ज्ञापनं सम्बुद्धिः, भली प्रकार किसी को बोध कराना, ज्ञान कराना बुलाना लिया गया है ।

आगच्छ भो माणवक देवदत्त३ (ऐ लड़के देवदत्त आ) यहाँ उदात्त अनुदात्त स्वरित तीनों स्वर हटकर एकश्रुति हो गई है ॥ एकश्रुति स्वर का कोई चिह्न नहीं होता ॥

यहाँ से 'एकश्रुति' की अनुवृत्ति १।२।३६ तक जायेगी ॥

यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु ॥१।२।३४॥

यज्ञकर्मणि ७।१॥ अजपन्यूङ्खसामसु ७।३॥ स०—यज्ञस्य कर्म यज्ञकर्म, तस्मिन् यज्ञकर्मणि, षष्ठीतत्पुरुषः । जपश्च न्यूङ्खश्च साम च, जपन्यूङ्खसामानि, न जपन्यूङ्खसामानि अजपन्यूङ्खसामानि तेष्वजपन्यूङ्खसामसु द्वन्द्वगर्भनञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—एकश्रुति ॥ अर्थः—यज्ञकर्मणि, उदात्तानुदात्तस्वरितस्वराणामेकश्रुतिर्भवति, जपन्यूङ्खसामानि वर्जयित्वा । जप उपांशुप्रयोगः । न्यूङ्खा निगदविशेषाः, आश्वलायनश्रौतसूत्रे ७।११ व्याख्यातास्तत्र द्रष्टव्याः ॥ उदा०—समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ यजु० ३।१॥ अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्, अपां रेतांसि जिन्वतो३म् ॥ यजु० ३।१२॥ अत्रैकश्रुतिरभूत् ॥

---

१. किसी भी यज्ञकर्म में वेद मन्त्रों द्वारा आहुति दी जावे, तो उसमें एकश्रुति का विधान समझना चाहिये, न्यूङ्ख, जप तथा सामवेद को छोड़कर। अतः जो लोग यज्ञ में स्वर सहित उच्चारण करके आहुति देने की बात कहते हैं, वह इस शास्त्र वचन से माननीय नहीं हो सकती ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ :—[*यज्ञकर्मणि*] यज्ञ कर्म में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों को एकश्रुति हो जाती है, [*अजपन्यूङ्खसामसु*] जप न्यूङ्ख तथा साम को छोड़कर ॥ जप ऐसे बोलने को कहते हैं, जिसे पास बैठे व्यक्ति को भी न सुनाई दे। न्यूङ्ख आश्वलायन श्रौत (७।११) में पढ़े हुये निगदविशेष हैं। साम सामवेद के गान कहते हैं ॥

यहाँ से '*यज्ञकर्मणि*' की अनुवृत्ति १।२।३५ तक जायेगी ॥

उच्चैस्तरां वा वषट्कारः ॥१।२।३५॥

उच्चैस्तराम् १।१॥ वा अ० ॥ वषट्कारः १।१॥ उच्चैः इत्यनेन उदात्त गृह्यते, अयमुदात्तोऽयमुदात्तोऽयमनयोरतितरामुदात्तः, उच्चैस्तरा *द्विवचनविभ०* (५।३।५७) इत्यनेन तरप्प्रत्ययः ॥ *अनु०*—यज्ञकर्म एकश्रुति ॥ *अर्थः*—यज्ञकर्मणि वषट्कारो मन्त्रः, उच्चैस्तरां = उदात्त विकल्पेन भवति, पक्षे एकश्रुतिर्भवति ॥ वषट्कारशब्देनात्र वौ शब्दो गृह्यते ॥ यद्येवं वौषड्ग्रहणमेव कस्मान्न कृतम्? वैचित्र्यार्थं विचित्रा हि सूत्रस्य कृतिः पाणिनेः ॥ *उदा०*—सोमस्याग्ने वीही वौ३षट्। पक्षे एकश्रुतिः—सोमस्याग्ने वीही३वौ३षट् ॥

भाषार्थ :—यज्ञकर्म में [*वषट्कारः*] वषट्कार अर्थात् वौषट् [*उच्चैस्तराम्*] उदात्ततर (*वा*) विकल्प से होते हैं, पक्ष में एकश्रु हो जाती है ॥ पूर्व सूत्र से यज्ञकर्म में नित्य ही एकश्रुति प्राप्त सो विकल्प से उदात्ततर विधान कर दिया ॥

विभाषा[1] छन्दसि ॥१।२।३६॥

विभाषा १।१॥ छन्दसि ७।१॥ *अनु०*—एकश्रुति ॥ *अर्थ*:—छन्द

---

१. यहाँ यह बात समझ लेने की है, कि यज्ञकर्म से अतिरिक्त वेदमन्त्रों सामान्य उच्चारण (स्वाध्याय में) प्रकृत सूत्र के विधान से उदात्त, अनुदा स्वरित इन तीनों स्वरों से, तथा एकश्रुति (बिना स्वर के) से भी बोला सकता है। इससे जो लोग समझते हैं, कि वेदमन्त्रों को स्वर से ही बोला सकता है, तो ऐसी बात नहीं, क्योंकि प्रकृत सूत्र में वेदमन्त्रों के उच्चारण सम्बन्ध में दोनों ही पक्ष स्वीकार किये हैं, अर्थात् स्वर से बोलें अथवा एकश्रुति तीनों स्वर रहित बोलें ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

विषये, उदात्तानुदात्तस्वरितस्वराणामेकश्रुतिर्भवति विकल्पेन, पक्षे त्रैस्वर्यमेव ॥ उदा०—अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ ऋ० १।१।१॥ इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण० ॥ य० १।१॥ अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि । सा० १।१।१॥ ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ अथ० १।१।१॥

भाषार्थ :—[*छन्दसि*] वेद विषय में तीनों स्वरों को [*विभाषा*] विकल्प से एकश्रुति हो जाती है, पक्ष में तीनों स्वर भी होते हैं ॥

इस सूत्र में यज्ञकर्म की अनुवृत्ति नहीं आ रही है, अतः वेद के सामान्य उच्चारण (स्वाध्याय काल में) के समय का यह विधान है। यज्ञकर्म में एकश्रुति १।२।३४ सूत्र से होती है। पक्ष में जब तीनों स्वर होते हैं, तब क्या स्वर कहाँ पर होगा यह सब परिशिष्ट में देखें ॥

न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः ॥१।२।३७॥

न अ०॥ सुब्रह्मण्यायाम् ७।१॥ स्वरितस्य ६।१॥ तु अ० ॥ उदात्तः १।१॥ अनु०—एकश्रुति ॥ *अर्थ* :—सुब्रह्मण्यायां निगदे, एकश्रुतिर्न-भवति, किन्तु तत्र यः स्वरितस्तस्योदात्तादेशो भवति ॥ *यज्ञकर्मण्य०* (१।२।३४) *विभाषा छन्दसि* (१।२।३६) इत्यनेन चैकश्रुतिप्राप्ते प्रतिषिध्यते ॥ सुब्रह्मण्या नाम, व्याख्यानरूपो निगदविशेषः । शतपथब्राह्मणे तृतीये काण्डे तृतीये प्रपाठके, चतुर्थब्राह्मणस्य सप्तदशीं कण्डिकामारभ्य विंशतिकण्डिकापर्यन्तं यो वेदमन्त्रस्य व्याख्यानरूपः पाठस्तस्य सुब्रह्मण्येति संज्ञाऽस्ति ॥ *उदा०*— सुब्रह्मण्यो३मिन्द्रागच्छ हरिव आगच्छ मेधातिथेर्मेष वृषणश्वस्य मे नेऽ गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जार कौशिकब्राह्मण गौतमब्रुवाण ऽधः सुत्यामागच्छ मघवन् ॥ श० ३।३।४।१७ ॥

भाषार्थ :—[*सुब्रह्मण्यायां*] सुब्रह्मण्या नाम वाले निगदों में एकश्रुति [*न*] नहीं होती, किन्तु जो उन निगदों में [*स्वरितस्य*] स्वरित उसको [*उदात्तः*] उदात्त [*तु*] तो हो जाता है ॥

यज्ञकर्मण्य० (१।२।३४) तथा *विभाषा छन्दसि* (१।२।३६) से एकश्रुति की प्राप्ति में यह सूत्र बनाया गया है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वेद मन्त्रों के व्याख्यानरूप शतपथब्राह्मण में, 'सुब्रह्मण्या' नाम निगद विशेष हैं, ऊपर संस्कृत भाग में उनका पता दे दिया है ॥ यहाँ से 'स्वरितस्य' की अनुवृत्ति १।२।३८ तक जाती है ॥

देवब्रह्मणोरनुदात्तः ॥१।२।३८॥

देवब्रह्मणोः ६।२॥ अनुदात्तः १।१॥ स०—देवश्च ब्रह्म च देवब्रह्माणौ, तयोः देवब्रह्मणोः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—स्वरितस्य अर्थः—देवब्रह्मणोः शब्दयोः स्वरितस्यानुदात्तो भवति ॥ सुब्रह्मण्या करणे 'देवा ब्रह्माण' इति पठ्यते, तयोश्च पूर्वसूत्रेण स्वरितस्योदात्तः प्राप्नोति, अनेनानुदात्तो विधीयते ॥ उदा०—देवा ब्रह्माण आगच्छत ॥

भाषार्थः—[देवब्रह्मणोः] देव, ब्रह्मन् शब्दों को स्वरित के स्थान में [अनुदात्तः] अनुदात्त होता है ॥

सुब्रह्मण्यादि निगदों में 'देवा ब्रह्माणः' ऐसा पाठ है, उसको पूर्व सूत्र से स्वरित के स्थान में उदात्त प्राप्त था, इस सूत्र ने अनुदात्त विधान कर दिया ॥

विशेषः—यहाँ पर 'देवा ब्रह्माणः' इन दो शब्दों के स्वरित के स्थान में ही अनुदात्त होता है, न कि 'आगच्छत' शब्द को भी। इस विषय में देखो अ० भा० महर्षि दयानन्द कृत, तथा श० ब्रा० सायण भाष्य ३।३।१।२० पृ० ११४ बम्बई संस्करण ॥

स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् ॥१।२।३९॥

स्वरितात् ५।१॥ संहितायाम् ७।१॥ अनुदात्तानाम् ६।३॥ अनु० एकश्रुति ॥ अर्थः—स्वरितात् परेषामनुदात्तानामेकश्रुतिर्भवति, संहिता विषये ॥ उदा०—इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि ॥ ऋ० १०।७५।५ ॥ माणवक जटिलकाध्यापक क्व गमिष्यसि ॥

भाषार्थः—[संहितायाम्] संहिता विषय में (जब पदपाठ से संहिता पाठ करना हो तो) [स्वरितात्] स्वरित से उत्तर [अनुदात्तानाम्] अनुदात्तों को (एक दो या बहुतों को) एकश्रुति होती है ॥ यहाँ 'अनुदात्तानाम्' की अनुवृत्ति १।२।४० तक जायगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ॥१।२।४०॥

उदात्तस्वरितपरस्य ६।१॥ सन्नतरः १।१॥ *स०*—उदात्तश्च स्वरितश्चोदात्तस्वरितौ, उदात्तस्वरितौ परौ यस्मात् स उदात्तस्वरितपरस्तस्योदात्तस्वरितपरस्य, द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अनुदात्तानाम् ॥ *अर्थः*—उदात्तपरस्य स्वरितपरस्य चानुदात्तस्य सन्नतरः = अनुदात्ततर आदेशो भवति ॥ *उदा०*—देवा मरुतः पृश्निमातरोऽपः। सरस्वति शुतुद्रि। स्वरितपरस्य—अध्यापक क्रं ॥

भाषार्थः—[*उदात्तस्वरितपरस्य*] उदात्त से परे तथा स्वरित से परे जो अनुदात्त, उसे [*सन्नतरः*] सन्नतर अर्थात् अनुदात्ततर आदेश हो जाता है ॥

'सन्नतर' यह अनुदात्ततर की संज्ञा है ॥

अपृक्त एकाल्प्रत्ययः ॥१।२।४१॥

अपृक्तः १।१॥ एकाल् १।१॥ प्रत्ययः १।१॥ *स०*—एकश्चासावल् च, एकाल्, कर्मधारयस्तत्पुरुषः ॥ *अर्थः*—एकाल्प्रत्ययोऽपृक्तसंज्ञको भवति ॥ असहायवाची एकशब्दः ॥ *उदा०* वाक्, लता, कुमारी। घृतस्पृक्, अर्धभाक् पादभाक् ॥

भाषार्थः—[*एकाल्*] असहाय = एक अल् वाले (जो अकेला ही है) [*प्रत्ययः*] प्रत्यय की [*अपृक्तः*] अपृक्त संज्ञा होती है ॥

तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः ॥१।२।४२॥

तत्पुरुषः १।१॥ समानाधिकरणः १।१॥ कर्मधारयः १।१॥ *स०*—समानमधिकरणं यस्य स समानाधिकरणस्तत्पुरुषः, बहुव्रीहिः ॥ *अर्थः*—समानाधिकरणस्तत्पुरुषः कर्मधारयसंज्ञको भवति ॥ तत्पुरुष इति समासविशेषस्य संज्ञा ॥ *उदा०*—पाचकवृन्दारिका, परमराज्यम्, उत्तमराज्यम् ॥

भाषार्थः—[*समानाधिकरणः*] समान है अधिकरण (आश्रय) जिसका, ऐसे [*तत्पुरुषः*] तत्पुरुष की [*कर्मधारयः*] कर्मधारय संज्ञा होती है ॥ समानाधिकरण उसे कहते हैं जहाँ दो धर्म एक ही द्रव्य में रहें ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् ॥१।२।४३॥

प्रथमानिर्दिष्टम् १।१॥ समासे ७।१॥ उपसर्जनम् १।१॥ स०-प्रथमया, विभक्त्या निर्दिष्टं प्रथमानिर्दिष्टम्, तृतीयातत्पुरुषः ॥ अर्थः समासे = समासविधायके सूत्रे प्रथमया विभक्त्या निर्दिष्टं यत् तदुपसर्जनसंज्ञकं भवति ॥ उदा०—कष्टश्रितः, शङ्कुलाखण्डः, यूपदा वृकभयम्, राजपुरुषः, अक्षशौण्डः ॥

भाषार्थः—[*समासे*] समास विधान करने वाले शास्त्र = सूत्र जो [*प्रथमानिर्दिष्टम्*] प्रथमाविभक्ति से निर्देश किया हुआ। उसकी [*उपसर्जनम्*] उपसर्जन संज्ञा होती है ॥

यहाँ "समासे" इस पद से "समास विधान करनेवाला सूत्र" अर्थ लेना है ॥ यहाँ से *"समास उपसर्जनम्"* की अनुवृत्ति १।२।४४ तक जाती है ॥

एकविभक्ति चापूर्वनिपाते ॥१।२।४४॥

एकविभक्ति १।१॥ च अ०॥ अपूर्वनिपाते ७।१॥ स०—न विभक्तिर्यस्य तदेकविभक्ति (पदम्), बहुव्रीहिः। पूर्वश्चासौ निपातः पूर्वनिपातः, कर्मधारयस्तत्पुरुषः। न पूर्वनिपातोऽपूर्वनिपातस्तस्मि पूर्वनिपाते नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—समास उपसर्जनम्॥ अर्थः समासे विधीयमाने, एकविभक्तिकं = नियतविभक्तिकं पदमुपसर्ज भवति, तत्सम्बन्धिपदं सर्वाभिर्विभक्तिभिर्युज्यमानेऽपि, पूर्वनिपा सर्जनकार्यं वर्जयित्वा ॥ उदा०—निष्कौशाम्बिः, निर्वाराणसिः। निष्क कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिः। निष्क्रान्तं कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बि निष्क्रान्तेन कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिना। निष्क्रान्ताय कौशा निष्कौशाम्बये। निष्क्रान्तात् कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बेः। निष्क्र कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बेः। निष्क्रान्ते कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बौ। निष्क्रान्त कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बे। सर्वत्रैवात्र 'कौशाम्ब्याः' नियतविभक्तिकं पञ्चम्यन्तं पदं वर्त्तते, यद्यपि तत्सम्बन्धि 'निष्क्रा इति पदं बहुभिर्विभक्तिभिर्युज्यते ॥ एवं 'निर्वाराणसिः' इत्यपि बोध्यम्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—समास विधान करना है, जिस (विग्रह) वाक्य में, उसमें जो पद [*एकविभक्ति*] नियतविभक्ति वाला हो (चाहे उससे सम्बन्धित दूसरा पद बहुत विभक्तियों से युक्त हो तो भी) तो उसकी [च] भी उपसर्जन संज्ञा होती है, [*अपूर्वनिपाते*] पूर्वनिपात उपसर्जन कार्य को छोड़कर ॥

निष्कौशाम्बिः यहाँ विग्रह करने पर 'कौशाम्बी' शब्द नियत पञ्चमी विभक्तिवाला ही रहता है, सो इसकी उपसर्जन संज्ञा हो गई है ॥

अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ॥१।२।४५॥

अर्थवत् १।१॥ अधातुः १।१॥ अप्रत्ययः १।१॥ प्रातिपदिकम् १।१॥ अर्थोऽस्यास्तीत्यर्थवत्, *तदस्यास्त्य०* (५।२।९४) इति मतुप्प्रत्ययः ॥ न०—न धातुः, अधातुः। न प्रत्ययः, अप्रत्ययः, उभयत्र नञ्तत्पुरुषः ॥ अर्थः—अर्थवत्, शब्दरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं भवति, धातुं प्रत्ययञ्च वर्जयित्वा ॥ उदा०—पुरुषः, डित्थः, कपित्थः, कुण्डम्, पीठम् ॥

भाषार्थः—[*अर्थवत्*] अर्थवान् (अर्थ वाले, सार्थक) शब्दों की *प्रातिपदिकम्*] प्रातिपदिक संज्ञा होती है, [*अधातुरप्रत्ययः*] धातु और प्रत्यय को छोड़कर ॥

उदा०—पुरुषः (एक पुरुष) डित्थः (लकड़ी का हाथी), कपित्थः (बन्दर के बैठने का स्थान), कुण्डम् (कूंडा) पीठम् (चौकी) ॥

सब उदाहरणों में प्रातिपदिक संज्ञा होने से *ङ्याप्प्रातिपदिकात्* के अधिकार में कहे हुये स्वादि प्रत्यय हो जाते हैं। कुण्डम्, पीठम् में 'सु' को 'अम्' *अतोऽम्* (७।१।२४) से हो गया है ॥

यहाँ से *'प्रातिपदिकम्'* की अनुवृत्ति १।२।४६ तक जाती है ॥

कृत्तद्धितसमासाश्च ॥१।२।४६॥

कृत्तद्धितसमासाः १।३॥ च अ० ॥ स०—कृत् च तद्धितश्च समासश्च कृत्तद्धितसमासाः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—प्रातिपदिकम् ॥ अर्थः—कृत्प्रत्ययान्तास्तद्धितप्रत्ययान्ताः समासाश्च प्रातिपदिकसंज्ञका

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भवन्ति ॥ उदा०—कृत्—कारकः, हारकः, कर्त्ता, हर्त्ता। तद्धि शालीयः, औपगवः, ऐतिकायनः। समासः—राजपुरुषः, कष्टश्रितः।

भाषार्थ :—[*कृत्तद्धितसमासाः*] कृत् प्रत्ययान्त, तद्धितप्रत्य तथा समास की [च] भी प्रातिपदिक संज्ञा होती है ॥

पूर्वसूत्र में प्रत्यय का निषेध कर देने से कृत्प्रत्ययान्त तथा त प्रत्ययान्त की प्रातिपदिक संज्ञा नहीं हो सकती थी, सो कहना पड़ा ॥

सारे उदाहरणों की सिद्धि परि० १।१।१ तथा १।१।२ में की व वहीं देखें। समास के उदाहरणों की सिद्धि परि० १।२।४३ में दे

ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ॥१।२।४७॥

ह्रस्वः १।१॥ नपुंसके ७।१॥ प्रातिपदिकस्य ६।१॥ अ नपुंसकलिङ्गेऽर्थे वर्त्तमानं यत् प्रातिपदिकं तस्य ह्रस्वो भवति ॥ अचश्च (१।२।२८) इति परिभाषासूत्रमुपतिष्ठते, तेनाजन्तस्य पदिकस्य ह्रस्वो भवति ॥ उदा०—अतिरि कुलम्, अतिनु कुलम्।

भाषार्थ :— *[नपुंसके]* नपुंसक लिङ्ग में वर्त्तमान जो [*प्रातिपदि* प्रातिपदिक उसको [ह्रस्वः] ह्रस्व हो जाता है ॥ अचश्च परि सूत्र यहाँ पर बैठ जाता है ॥ सिद्धि परि० १।१।४७ में देखें ॥

यहाँ से '*ह्रस्वः, प्रातिपदिकस्य*' की अनुवृत्ति १।२।४८ तक जा

गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ॥१।२।४८॥

गोस्त्रियोः ६।२॥ उपसर्जनस्य ६।१॥ स०—गौश्च गोस्त्रियौ, तयोः गोस्त्रियोः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—ह्रस्वः प्रा कस्य ॥ अर्थ :—उपसर्जनगोशब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य, उपसर्जना यान्तान्तस्य च प्रातिपदिकस्य ह्रस्वो भवति ॥ उदा०—गोशब्दा चित्रगुः शबलगुः। स्त्रीप्रत्ययान्तस्य—निष्कौशाम्बिः अतिखट्वः अतिमालः ॥

भाषार्थ :—[*उपसर्जनस्य*] उपसर्जन [*गोस्त्रियोः*] गो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रातिपदिक तथा उपसर्जन स्त्रीप्रत्ययान्तान्त प्रातिपदिक को ह्रस्व हो जाता है ॥

यहाँ 'स्त्री' शब्द से *स्त्रियाम्* (४।१।३) अधिकार में कहे गये जो टाप्, डाप्, चाप्, ङीप्, ङीष्, ङीन्, स्त्री प्रत्यय लिये गये हैं, न कि 'स्त्री' शब्द लिया है ॥

यहाँ से *'स्त्री'* तथा *'उपसर्जनस्य'* की अनुवृत्ति १।२।४९ तक जाती है ॥

लुक्तद्धितलुकि ॥१।२।४९॥

लुक् १।१॥ तद्धितलुकि ७।१॥ स०—तद्धितस्य लुक् तद्धितलुक्, स्मिन् तद्धितलुकि, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—स्त्री उपसर्जनस्य ॥ अर्थः—द्धितलुकि सति, उपसर्जनस्य स्त्रीप्रत्ययस्यापि लुग् भवति ॥ उदा०—ञ्चेन्द्रः दशेन्द्रः । पञ्चशष्कुलम्, आमलकम्, बकुलम्, कुवलम्, दरम् ॥

भाषार्थः—[*तद्धितलुकि*] तद्धित के लुक् हो जाने पर उपसर्जन स्त्री प्रत्यय का भी [लुक्] लुक् हो जाता है ॥

यहाँ से *'तद्धितलुकि'* की अनुवृत्ति १।२।५० तक जाती है ॥

इद्गोण्याः ॥१।२।५०॥

इत् १।१॥ गोण्याः ६।१॥ अनु०—तद्धितलुकि ॥ अर्थः—द्धितलुकि सति गोणीशब्दस्येकारादेशो भवति ॥ पूर्वसूत्रेण लुकि प्ते तदपवाद इकारो विधीयते ॥ उदा०—पञ्चगोणिः, दशगोणिः ॥

भाषार्थः—तद्धित प्रत्यय के लुक् हो, जाने पर [*गोण्याः*] गोणी ब्द को [इत्] इकारादेश हो जाता है। पूर्वसूत्र से स्त्रीप्रत्यय ङीष्) का लुक् प्राप्त था, इकार अन्तादेश विधान कर दिया ॥ गोण ब्द से *जानपदकुण्डगोण०* (४।१।४२) से आवपन अर्थ में ङीष् त्यय होकर गोणी शब्द बना है। सिद्धि परि० १।१।५१ में देखें ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने ॥१।२।५१॥

लुपि ७।१॥ युक्तवत् अ० ॥ व्यक्तिवचने १।२॥ स०— व्यक्ति वचनञ्च व्यक्तिवचने, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अर्थः— लुपि सति व वचने = लिङ्गसङ्ख्ये युक्तवत् = प्रकृत्यर्थवद् भवतः, अर्थात् त प्रत्ययोत्पत्तेः पूर्वस्य प्रकृत्यर्थस्य ये लिङ्गसङ्ख्ये स्तस्ते तद्धितप्रत्य लुपि सत्यपि भवतः ॥ युक्तः प्रकृत्यर्थः प्रत्ययार्थेन सम्बद्धस्तद्वत् सत्यपि भवतः ॥ व्यक्तिः = लिङ्गम् । वचनं = सङ्ख्या, एकत्व बहुत्वानि । व्यक्तिवचने इति लिङ्गसङ्ख्ययोः पूर्वाचार्याणां निर्दे उदा०—पञ्चालाः, कुरवः, मगधाः, मत्स्याः, अङ्गाः, वङ्गाः, पुण्ड्राः । गोदौ ग्रामः । कटुकबदरी ग्रामः ॥

भाषार्थ :—प्रत्यय के [*लुपि*] लुप् हो जाने पर भी उस प्रत्य उत्पत्ति से पूर्व जो प्रकृत्यर्थ के [*व्यक्तिवचने*] व्यक्ति = लिङ्ग, व सङ्ख्या हों, वही लिङ्ग सङ्ख्या [*युक्तवत्*] प्रकृत्यर्थवत् (प्रकृत्य समान) हों ॥ व्यक्तिवचन यह पूर्वाचार्यों का लिङ्ग और सङ्ख्य लिये नाम है ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति १।२।५२ तक जाती है ॥

विशेषणानां चाजातेः ॥१।२।५२॥

विशेषणानाम् ६।३॥ च अ० ॥ आ अ० ॥ जातेः ५।१॥ लुपि, युक्तवद् व्यक्तिवचने ॥ अर्थ :—तद्धितप्रत्ययस्य लुपि = लु यानि विशेषणानि, तेषामपि युक्तवत् (प्रकृत्यर्थवत्) लिङ्ग भवतः, आ जातेः = जातेः पूर्वम्, आजातिप्रयोगादित्यर्थः । विशेषणत्वेन विशेष्यत्वेन वा जातिर्विवक्ष्यते तदा युक्तवद्भावो न उदा०—पञ्चालाः रमणीयाः बह्वन्नाः बहुक्षीरघृताः बहुमाल्यफ गोदौ रमणीयौ, बह्वन्नौ, बहुक्षीरघृतौ बहुमाल्यफलौ । शोभना बहुमाल्यफला बहुक्षीरघृता ॥

भाषार्थः—प्रत्यय के लुप् होने पर उस लुबर्थ शब्द के जो षणानाम्] विशेषण उनमें [च] भी युक्तवत् = प्रकृत्यर्थ के स लिङ्ग और सङ्ख्या हो जाते हैं [*आजातेः*] जाति के प्रयोग

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ी, अर्थात् जातिवाची कोई शब्द विशेषण रूप में या विशेष्य रूप में युक्त हो तो उसे युक्तवद्भाव न हो ॥ पञ्चालाः आदि लुबर्थों में तो पूर्व सूत्र से युक्तवद्भाव का विधान हो गया था, पर लुबर्थ के विशेषणों में तो युक्तवद्भाव हो नहीं सकता था, सो पञ्चालाः के विशेषण रमणीयादि शब्दों में बहुवचन नहीं होता, अतः लुबर्थ के विशेषणों में भी युक्तवद्भाव का विधान कर दिया। युक्तवद्भाव विधान करने से रमणीयाः आदि में पञ्चालाः के समान ही बहुवचन तथा रमणीयौ आदि में गोदौ के समान द्विवचन, एवं कटुकबदरी के विशेषणों में स्त्रीलिङ्ग हो गया।

उदा०—पञ्चालाः रमणीयाः बह्वन्नाः बहुमाल्यफलाः सम्पन्नपानीयाः (पञ्चाल जनपद बहुत सुन्दर बहुत अन्न माल्य फल वाला एवं खूब जलाशयों वाला है) गोदौ रमणीयौ बह्वन्नौ, बहुमाल्यफलौ सम्पन्नपानीयौ (गोद नाम का ग्राम रमणीय बहुत अन्न, माल्य, फल वाला एवं खूब जलाशयों वाला है)। कटुकबदरी शोभना बहुमाल्यफला ॥

[अशिष्यप्रकरणम्]

तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात् ॥१।२।५३॥

तत् १।१॥ अशिष्यम् १।१॥ संज्ञाप्रमाणत्वात् ५।१॥ स०—शासितुं शक्यम् शिष्यम् न शिष्यमशिष्यम् नञ्तत्पुरुषः। संज्ञायाः प्रमाणं संज्ञाप्रमाणम् षष्ठीतत्पुरुषः॥ संज्ञाप्रमाणस्य भावः संज्ञाप्रमाणत्वम् तस्मात् संज्ञाप्रमाणत्वात्। *तस्य भावस्त्वतलौ* (५।१।११८) इत्यनेन त्वप्रत्ययः॥ संज्ञानं संज्ञा = लौकिकव्यवहारः। तदित्यनेन युक्तवद्भावः परिगृह्यते। अशक्यमित्यनेन शासितुमशक्यमिति वेदितव्यं न तु शासितुमयोग्यं कुतः? शासु अनुशिष्टौ, इत्येतस्माद् धातोः *एतिस्तु-शास्वृदृजुषः क्यप्* (३।१।१०९) इत्यनेन क्यप् प्रत्ययः, स च शक्यार्थे वेदितव्यः, तेनाशिष्यमित्यस्य पूर्णतया शासितुमशक्यमित्यर्थः॥ अर्थः—तद् = युक्तवद्भावकथनम् अशिष्यं = शासितुमशक्यम्। कुतः? संज्ञाप्रमाणत्वात् = लौकिकव्यवहाराधीनत्वात् ॥ उदा०—पञ्चालाः, वरणाः, जनपदादीनां संज्ञा एतास्तत्र लिङ्गं वचनञ्च स्वभावसिद्धमेव ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ :—[*तद्*] उस उपर्युक्त युक्तवद्भाव का [*अशिष्य* पूरा पूरा शासन=विधान नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह [*प्रमाणत्वात्*] लौकिक व्यवहार के आधीन है ॥

विशेष :—जिस प्रकार 'दारा' शब्द स्त्रीवाची होते हुये भी, बहुवचनान्त ही लोक में प्रयुक्त होता है, 'आपः' शब्द भी नित्य बहुवच ही है, सो यह सब लोक से ही सिद्ध है। इसका विधान पूरा २ किया जा सकता, क्योंकि जो अवैयाकरण लोग "पञ्चालाः में अर्थ में प्रत्यय होकर उसका लुप् होने से, युक्तवद्भाव हुआ है" नहीं जानते वह भी तो 'पञ्चालाः' का बहुवचन में ठीक प्रयोग क हैं, सो लिङ्ग वचन लोकाधीन ही है, इसमें लौकिक प्रयोग ही प्रमाण इसी बात को महाभाष्यकार ने *लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वात् लि* (*महा. भा.* ४।१।३) ऐसा कहकर प्रकट किया है ॥

यहाँ से '*अशिष्यम्*' की अनुवृत्ति १।२।५७ तक जाती है ॥

लुब्योगाप्रख्यानात् ॥१।२।५४॥

लुप् १।१॥ योगाप्रख्यानात् ५।१॥ *स०*—न प्रख्यानमप्रख्या नञ्तत्पुरुषः। योगस्याप्रख्यानम् योगाप्रख्यानं तस्मात् योगाप्रख्या षष्ठीतत्पुरुषः॥ *अनु०*—*अशिष्यम्*॥ *अर्थ* :—लुब्विधायकं लुबित्यादिकं सूत्रमप्यशिष्यं=शासितुमशक्यम्। कुतः ? योगस्य सम्बन्धस्य, अप्रख्यानात्=अप्रतीतत्वादित्यर्थः॥ पञ्चालाः, इति देशविशेषस्य संज्ञाः, नहि निवाससम्बन्धादेव पञ्चालाः, वृक्षयो वरणा इति व्यवहियन्ते, तत्राशक्यं लुब्विधानम्। अनन्तरसूत्रमपी सूत्रं दृढीकरोति ॥

भाषार्थ :—[*लुप्*] लुप् विधायक सूत्र (*जनपदे लुप्*, *वरणादि* इत्यादि) भी अशिष्य हैं, नहीं कहे जा सकते [*योगाप्रख्यान* निवासादि सम्बन्ध के अप्रतीत होने से। क्योंकि जो व्याकरण जानते वह भी तो लुबर्थ शब्दों का प्रयोग करते ही हैं। पञ्चालाः तो जनपदादि की संज्ञा विशेष हैं, न कि निवास के योग से ही

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

एवं वृक्ष के योग से ही वरण कहा जाता है। अगला सूत्र इसी कथन को और भी पुष्ट करता है ॥

योगप्रमाणे च तदभावेऽदर्शनं स्यात् ॥१।२।५५॥

योगप्रमाणे ७।१॥ च अ० ॥ तदभावे ७।१॥ अदर्शनम् १।१॥ स्यात् तिङन्तपदम् ॥ स०—योगस्य प्रमाणं योगप्रमाणं तस्मिन् योगप्रमाणे, षष्ठीतत्पुरुषः। न भावः अभावः नञ्तत्पुरुषः। तस्य अभावस्तदभावः, तस्मिन् तदभावे षष्ठीतत्पुरुषः। न दर्शनमदर्शनम्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—अशिष्यम् ॥ अर्थः—यदि पञ्चालादिशब्दा निवासाद्यर्थस्य वाचकाः स्युस्तदा निवासादिसम्बन्धाभावे, पञ्चालादीनामदर्शनमप्रयोगः स्यात्, न चैवं भवति, तेन ज्ञायते नैते योगनिमित्तकाः, परं संज्ञा एताः देशविशेषस्य। पूर्वसूत्रार्थमेव दृढीकरोति ॥

भाषार्थः—[*योगप्रमाणे*] सम्बन्ध को प्रमाण मानकर यदि संज्ञा (पञ्चालादि) हो तो [*च*] भी [*तदभावे*] उस सम्बन्ध के हट जाने पर उस संज्ञा का [*अदर्शनम् स्यात्*] अदर्शन होना चाहिये, पर वह होता नहीं है, इससे पता लगता है, कि पञ्चालादि जनपद विशेष की संज्ञायें हैं, योगनिमित्तक इन्हें कहना अशक्य है।

पूर्व सूत्र के कथन को ही यह सूत्र हेतु देकर स्पष्ट करता है ॥

स्पष्टार्थ व्याख्या—यदि पञ्चालादि शब्द पञ्चालों के निवास करने के कारण ही जनपदविशेष की संज्ञाएँ पड़ी होतीं, तो यदि वहाँ से पञ्चाल क्षत्रिय किसी कारण से सर्वथा चले जावें, तो उस जनपद की पञ्चाल संज्ञा नहीं रहनी चाहिये, क्योंकि जिस कारण से = सम्बन्ध से जनपद की पञ्चाल संज्ञा पड़ी थी, वह सम्बन्ध तो रहा नहीं, फिर भी पञ्चाल का व्यवहार उस जनपद के लिये होता है, इससे पता लगता है, कि ये संज्ञायें योगनिमित्तक = निवासादि अर्थनिमित्तक नहीं हैं, परन्तु संज्ञाविशेष ही हैं ॥

प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्यान्यप्रमाणत्वात् ॥१।२।५६॥

प्रधानप्रत्ययार्थवचनम् १।१॥ अर्थस्य ६।१॥ अन्यप्रमाणत्वात् ५।१॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

स०—प्रधानं च प्रत्ययश्च प्रधानप्रत्ययौ, इतरेतरद्वन्द्वः। अर्थस्य व अर्थवचनम्, षष्ठीतत्पुरुषः। प्रधानप्रत्ययोरर्थवचनं, प्रधानप्रत्य वचनम्, षष्ठीतत्पुरुषः। अन्यस्य प्रमाणमन्यप्रमाणम् षष्ठीतत्पु अन्यप्रमाणस्य भावः, अन्यप्रमाणत्वम् तस्मादन्यप्रमाणत्वात्॥ अनु अशिष्यम्॥ अर्थः—प्रधानार्थवचनं प्रत्ययार्थवचनमप्यशिष्यं शा मशक्यं, कुतः? अर्थस्य अन्यप्रमाणत्वात्=लोकप्रमाणत्वा शास्त्रापेक्षयाऽन्यशब्दः॥ केषाञ्चिदाचार्याणामिदं मत "प्रधानोपसर्जने प्रधानार्थं सह ब्रूतः, प्रकृतिप्रत्ययौ प्रत्ययार्थं सह तदेतत् पाणिन्याचार्यः प्रत्याचष्टे। अर्थाद् ये व्याकरणं न जानन्ति प्रधानार्थं प्रत्ययार्थमेव प्रयुञ्जते, तस्मात् लोकाधीनमेवैतद्, अस्य कर्त्तुमशक्यम्॥

भाषार्थः—[*प्रधानप्रत्ययार्थवचनम्*] प्रधानार्थवचन तथा प्रत्य वचन, अर्थात् यह पद प्रधान है, तथा यह पद अप्रधान है, ए प्रत्यय इस अर्थ में आता है, यह पूरा २ नहीं कहा जा सकता, [अ अर्थ के [*अन्यप्रमाणत्वात्*] अन्य=लोक के आधीन होने शास्त्र की अपेक्षा से यहाँ 'अन्य' शब्द है। कुछ आचार्य "प्रधानोपसर्जने प्रधानार्थं *सह ब्रूतः, प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूतः*" लक्षण किये थे, सो पाणिनि मुनि उनका प्रत्याख्यान करते हैं, क्य जिन्होंने व्याकरण नहीं पढ़ा वे भी प्रधानार्थ एवं प्रत्ययार्थ को ज ही हैं यथा "राजपुरुषमानय" ऐसा कहने पर न राजा लाते हैं न पुरुष मात्र को प्रत्युत राजविशिष्ट पुरुष को ही ला अर्थात् प्रधानार्थता को वे जानते हैं। तथा प्रत्ययार्थ के विषय भी 'औपगवमानय' ऐसा कहने पर उपगु विशिष्ट अपत्य को लाते हैं उपगु को लाते हैं न केवल अपत्य को, अर्थात् प्रत्ययार्थता (अपत्यार्थ को वे समझते हैं। सो यह सब लोकव्यवहाराधीन ही समझना चा इसके लिए पूरा लक्षण बनाना अशक्य है॥

कालोपसर्जने च तुल्यम् ॥१।२।५७॥

कालोपसर्जने १।२॥ च अ०॥ तुल्यम् १।१॥ स०—काल उपसर्जनञ्च कालोपसर्जने, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—अशिष्यम्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परोक्षादिः ॥ *अर्थः*—कालः, उपसर्जनञ्चाशिष्यं शासितुमशक्यं । कुतः ? तुल्यहेतुत्वात्, अर्थात् लोकप्रमाणत्वात् ॥ तुल्यशब्दः पूर्वोक्तस्य सूत्रस्य हेतोरनुकर्षणार्थः ॥

भाषार्थः—[*कालोपसर्जने*] काल तथा उपसर्जन=गौण की परिभाषा [च] भी पूरी २ नहीं की जा सकती [*तुल्यम्*] तुल्य हेतु होने से अर्थात् पूर्व सूत्र में कहे हेतु के कारण ही ॥

कुछ आचार्य प्रातःकाल से लेकर १२ बजे रात्रि तक अद्यतन काल मानते हैं, तथा कुछ आचार्य १२ बजे रात से अगले १२ बजे रात तक अद्यतन काल मानते हैं, इसी प्रकार कुछ आचार्यों ने उपसर्जन की भी परिभाषा की है, "*अप्रधानमुपसर्जनम्*" तो यह सब अशिष्य है, लोक व्यवहाराधीन होने से, क्योंकि जिन्होंने व्याकरण नहीं पढ़ा वह भी 'यह मैंने आज किया, यह कल किया, तथा यह उपसर्जन=गौण है, यह मुख्य है' ऐसा प्रयोग करते ही हैं, सो लोक से ही इनकी प्रतीति हो जावेगी ॥

जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम् ॥१।२।५८॥

जात्याख्यायाम् ७।१॥ एकस्मिन् ७।१॥ बहुवचनम् १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *स०*—जातेः आख्या, जात्याख्या तस्याम्···षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अर्थः*— जात्याख्यायामेकस्मिन्नर्थे बहुवचनं विकल्पेन भवति ॥ जातिर्नामायमेकोऽर्थः तेनैकवचने प्राप्ते बहुवचनं पक्षे विधीयते ॥ *उदा०*—सम्पन्नाः यवाः, सम्पन्नाः व्रीहयः (अत्र बहुत्वम्) सम्पन्नो यवः, सम्पन्नो व्रीहिः (अत्रैकत्वम्) ॥ एकत्वे बहुत्वे सति द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने (१।४।२२) बहुषु बहुवचनम् (१।४।२१) इत्यनेन, एकवचनबहुवचनम् ॥

भाषार्थः—[*जात्याख्यायाम्*] जाति को कहने में [*एकस्मिन्*] एकत्व अर्थ में [*बहुवचनम्*] बहुत्व [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प करके हो जाता है ॥

जाति एक होती है अतः जाति को कहने में एकत्व ही नित्य प्राप्त था, सो यहाँ पक्ष में बहुत्व विधान किया है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'एकस्मिन्' की अनुवृत्ति १।२।५९ तक तथा 'बहुवचनम्' अनुवृत्ति १।२।६० तक, एवं 'अन्यतरस्याम्' १।२।६२ तक जाती है।

अस्मदो द्वयोश्च ॥१।२।५९॥

अस्मदः ६।१॥ द्वयोः ७।२॥ च अ० ॥ अनु०—एकस्मिन् वचनम् अन्यतरस्याम् ॥ अर्थः—अस्मद् शब्दस्यैकत्वे द्वित्वे च विकल्पेन भवति ॥ उदा०—'अहं ब्रवीमि' इत्यस्य स्थाने वक्ता ब्रूमः' इत्यपि वक्तुं शक्नोति, यद्यपि वक्ता एक एव। एवं 'आवां' इत्यस्य स्थाने 'वयं ब्रूमः' इत्यपि भवति, यद्यपि द्वौ वक्तारौ स्तः॥

भाषार्थः—[अस्मदः] अस्मद् शब्द के एकत्व [च] [द्वयोः] द्वित्व अर्थ में बहुवचन विकल्प करके होता है ॥

एकत्व में एकवचन एवं द्वित्व में द्विवचन ही प्राप्त था, बहु का पक्ष में विधान कर दिया। अहं ब्रवीमि (मैं बोलता हूँ) बोलने वाला यद्यपि एक है, तो भी वह 'वयं ब्रूमः' ऐसा बहुवचन बोल सकता है।

इसी प्रकार द्विवचन में 'आवां ब्रूवः' के स्थान में 'वयं ब्रूमः' कह सकते हैं॥ यहाँ से 'द्वयोः' की अनुवृत्ति १।२।६१ तक जाती

फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे ॥१।२।६०॥

फल्गुनीप्रोष्ठपदानाम् ६।३॥ च अ० ॥ नक्षत्रे ७।१॥ फल्गुन्यौ च प्रोष्ठपदे च फल्गुनीप्रोष्ठपदाः, तासाम्.....इतरेतरद्वन्द्व अनु०—द्वयोः, बहुवचनम् अन्यतरस्याम् ॥ अर्थः—फल्गुनीप्रोष्ठपद च नक्षत्रे द्विवचने बहुवचनं विकल्पेन भवति ॥ फल्गुन्यौ द्वे ना प्रोष्ठपदेअपि द्वे, तेन द्वयोर्द्विवचनं प्राप्तं बहुवचनमन्यतरस्यां विधीय उदा०—उदिताः पूर्वाः फल्गुन्यः (अत्र बहुवचनम्) उदिते फल्गुन्यौ (अत्र द्विवचनम्) उदिताः पूर्वाः प्रोष्ठपदाः, उदिते प्रोष्ठपदे ॥

भाषार्थः—[फल्गुनीप्रोष्ठपदानाम्] फल्गुनी और प्रोष्ठपद

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

नक्षत्रे] नक्षत्रों में [च] भी द्वित्व अर्थ के स्थान में बहुत्व अर्थ विकल्प करके होता है ॥

फल्गुनी नाम के दो नक्षत्र हैं, तथा प्रोष्ठपद नाम के भी दो नक्षत्र हैं, सो दो में द्विवचन ही प्राप्त था, पक्ष में बहुवचन भी विधान कर दिया है ॥ उदा०—उदिताः पूर्वाः फल्गुन्यः (पूर्व फल्गुनी नक्षत्र का उदय हुआ) उदिते पूर्वे फल्गुन्ये। उदिताः पूर्वाः प्रोष्ठपदाः (पूर्व प्रोष्ठपदा नक्षत्र का उदय हुआ) उदिते पूर्वे प्रोष्ठपदे ॥

यहाँ से 'नक्षत्रे' की अनुवृत्ति १।२।६२ तक जाती है ॥

छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम् ॥१।२।६१॥

छन्दसि ७।१॥ पुनर्वस्वोः ६।२॥ एकवचनम् १।१॥ अनु०—नक्षत्रे, द्वयोः, अन्यतरस्याम् ॥ अर्थः—छन्दसि विषये पुनर्वस्वोः नक्षत्रस्य द्विवचने विकल्पेनैकवचनं भवति। पुनर्वसू द्वे नक्षत्रे, तेन द्वयोर्द्विवचने प्राप्ते पक्षे एकवचनं विधीयते ॥ उदा०—पुनर्वसुर्नक्षत्रम् (अत्रैकवचनम्) पुनर्वसू नक्षत्रे (अत्र द्विवचनम्) ॥

भाषार्थ :—[छन्दसि] वेदविषय में [पुनर्वस्वोः] पुनर्वसु नक्षत्र के द्विवचन में विकल्प से [एकवचनम्] एकत्व होता है ॥ पुनर्वसु नाम के दो नक्षत्र हैं सो द्विवचन ही प्राप्त था, पक्ष में एकत्व अर्थ का भी विधान कर दिया ॥

उदा०—पुनर्वसुर्नक्षत्रम् (पुनर्वसु नाम के दो नक्षत्र) पुनर्वसू नक्षत्रे ॥

यहाँ से "छन्दसि एकवचनम्" की अनुवृत्ति १।२।६२ तक जाती है ॥

विशाखयोश्च ॥१।२।६२॥

विशाखयोः ६।२॥ च अ० ॥ अनु०—छन्दसि, एकवचनम्, नक्षत्रे, अन्यतरस्याम् ॥ अर्थः—छन्दसि विषये विशाखयोर्नक्षत्रयोर्द्विवचने, एकवचनं विकल्पेन भवति। द्वयोर्द्विवचने प्राप्ते पक्षे एकवचनं विधीयते ॥ उदा०—विशाखा नक्षत्रम्, विशाखे नक्षत्रे ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ:—[*विशाखयोः*] विशाखा नक्षत्र के द्विवचन में [वा] एकवचन विकल्प करके होता है, छन्द विषय में ॥

विशाखा नक्षत्र भी दो हैं, सो दो में द्विवचन प्राप्त था, प एकत्व विधान कर दिया ॥

तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम् ॥१।२।६

तिष्यपुनर्वस्वोः ६।२॥ नक्षत्रद्वन्द्वे ७।१॥ बहुवचनस्य ६।१॥ द्विव १।१॥ नित्यम् १।१॥ *स०*—तिष्यश्च पुनर्वसू च तिष्यपुनर्वसू तयोः पुनर्वस्वोः, इतरेतरद्वन्द्वः। नक्षत्राणां द्वन्द्वः, नक्षत्रद्वन्द्वः, त नक्षत्रद्वन्द्वे, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अर्थ*:—तिष्यपुनर्वस्वोः, नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य नित्यं द्विवचनं भवति। तिष्य एकः, पुनर्वसू द्वौ, द्वन्द्वे बहुत्वं प्राप्तं द्विवचनं नित्यं विधीयते ॥ *उदा०*—उ तिष्यपुनर्वसू दृश्येते ॥

भाषार्थ:—[*तिष्यपुनर्वस्वोः*] तिष्य तथा पुनर्वसु शब्दों के [नक्षत्र नक्षत्रवाची द्वन्द्वसमास करने में [*बहुवचनस्य*] बहुवचन के स्था [*नित्यम्*] नित्य ही [*द्विवचनम्*] द्विवचन हो जाता है ॥

तिष्य नक्षत्र एक है, तथा पुनर्वसु दो हैं, सो इनके द्वन्द्वसमा बहुवचन ही प्राप्त था, नित्य ही द्विवचन विधान कर दिया ॥

उदा०—उदितौ तिष्यपुनर्वसू दृश्येते (उदय हुये २ तिष्य पुनर्वसू नक्षत्र दिखाई दे रहे हैं) ॥

[एकशेषप्रकरणम्]

सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ ॥१।२।६४॥

सरूपाणाम् ६।३॥ एकशेषः १।१॥ एकविभक्तौ ७।१॥ *स०*—स रूपं ययोर्येषां वा ते सरूपास्तेषां सरूपाणां, बहुव्रीहिः। *रात्रिनाभिनामगोत्ररूप०* (६।३।८३) इत्यनेन समानस्य स ज्योतिर्जन एका चासौ विभक्तिश्च, एकविभक्तिः, तस्यामेकविभक्तौ, कर्म स्तत्पुरुषः ॥ एकस्य शेषः, एकशेषः, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अर्थ*:—सरू

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शब्दानामेकविभक्तौ परत एकशेषो भवति, अर्थादेकः शिष्यते, इतरे निवर्त्तन्ते ॥ उदा० –वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षौ। वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षाः ॥

भाषार्थ :—[*सरूपाणाम्*] समान रूप वाले शब्दों का [*एकशेषः*] एकशेष होता है, अर्थात् एक शेष रह जाता है, और हट जाते हैं, [*एकविभक्तौ*] एक (समान) विभक्ति के परे रहते ॥

वृक्षश्च, वृक्षश्च यहाँ दोनों वृक्ष शब्द समान रूप वाले हैं, तथा एक ही प्रथमा विभक्ति परे है, सो एकशेष रह गया, तथा दूसरा हट गया। दो वृक्षों का बोध कराना है अतः द्विवचन 'वृक्षौ' में हो ही जायगा। इसी प्रकार वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षाः में भी दो हट गये, एक रह गया, आगे ४-५ वृक्षों के होने पर भी ऐसा ही जानें। अभिप्राय यह है कि जहाँ सरूप शब्दों वाली कई वस्तुओं का बोध कराना हो, जैसे "यह वृक्ष है, यह वृक्ष है" तो वहाँ उतनी बार उस शब्द का प्रयोग न करके एक ही बार उस शब्द का प्रयोग करके उन सारी वस्तुओं का बोध हो जाता है। नहीं तो जितनी वस्तुएँ होतीं उतनी बार उस शब्द का प्रयोग करना पड़ता अतः यह सूत्र बनाया ॥ यहाँ से 'शेषः' की अनुवृत्ति १।२।७३ तक जाती है ॥

वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः ॥१।२।६५॥

वृद्धः १।१॥ यूना ३।१॥ तल्लक्षणः १।१॥ चेत् अ० ॥ एव अ० ॥ विशेषः १।१॥ *स०*—सः गोत्रप्रत्ययो युवप्रत्ययश्च लक्षणं निमित्तमस्य स तल्लक्षणः, बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—शेषः ॥ *अर्थः*—वृद्धशब्देनात्र गोत्रमुच्यते। लक्षणं=निमित्तम्। विशेषः=वैरूप्यम्। गोत्रप्रत्ययान्तश्शब्दः, यूना सह युवप्रत्ययान्तेन सह शिष्यते युवा निवर्त्तते तल्लक्षणश्चेत्=वृद्धयुवनिमित्तकमेव चेत् विशेषो भवेत् अर्थात् समानायामाकृतौ वृद्धयुवनिमित्तकप्रत्ययस्यैव चेत् वैरूप्यं वैशिष्ट्यं भवेदन्यत् सर्वं समानं स्यात् ॥ *अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्* (४।१।१६२) इत्यनेन पौत्रप्रभृत्यपत्यं गोत्रसंज्ञं भवति, तद्गोत्रमत्र वृद्धशब्देनोच्यते पूर्वाचार्यस्य संज्ञैषा। *गोत्रे तु वंश्ये युवा* (४।१।१६३) इत्यादिभिश्च युवसंज्ञा विहिता ॥ उदा०—गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च गार्ग्यौ, वात्स्यश्च वात्स्यायनश्च वात्स्यौ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[वृद्धः] वृद्ध (गोत्र) प्रत्ययान्त शब्द [यूना] यु प्रत्ययान्त शब्द के साथ शेष रह जाता है [चेत्] यदि [तल्लक्षणः] वृद्धयुवनिमित्तक प्रत्यय का [एव] ही [विशेषः] भेद हो, अर्थ अन्य सब प्रकृति आदि समान हों ॥ वृद्ध शब्द से यहाँ गोत्र लि गया है, पूर्वाचार्यों की यह गोत्र के लिये संज्ञा है ॥

गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च यहाँ गर्ग शब्द से ही *गर्गादिभ्यो* (४।१।१०५) से गोत्र अर्थ में यञ् प्रत्यय आकर *तद्धिते०* (७।२।११ से आदि अच् को वृद्धि एवं *यस्येति च* (६।४।१४८) से अका लोप होकर, वृद्धप्रत्ययान्त गार्ग्य शब्द बना है, तथा उसी गार्ग्य से ही आगे *यञिञोश्च* (४।१।१०१) से युवा प्रत्यय फक् होकर, को *आयनेयीनीयियः०* (७।१।२) से 'आयन्' होकर गार्ग्यायण बना सो गार्ग्य, तथा गार्ग्यायण इन दोनों शब्दों में, केवल एक में गोत्र प्र 'यञ्' है तथा दूसरे में यञ् के पश्चात् युवप्रत्यय फक् है, ये युवनिमित्तक प्रत्यय ही विशेष हैं, शेष इन दोनों की प्रकृति स ही है, अतः समान आकृति (प्रकृति) वाले ये दोनों शब्द हैं, तल्लक्षण ही विशेष है सो प्रकृत सूत्र से वृद्धप्रत्ययान्त 'गार्ग्य' शे गया, गार्ग्यायण हट गया तो *गार्ग्यौ* बना। गार्ग्यौ कहने से (गर्ग का पौत्र) एवं गार्ग्यायण (गर्ग का प्रपौत्र) दोनों की प्र होगी। इसी प्रकार *वात्स्यौ* (वत्स के पौत्र तथा प्रपौत्र) भी समझें ॥

यहाँ से *'वृद्धो यूना'* की अनुवृत्ति १।२।६६ तक तथा *"तल्लक्षणश्चे विशेषः"* १।२।६९ तक जाती है ॥

स्त्री पुंवच्च ॥१।२।६६॥

स्त्री १।१॥ पुंवत् अ० ॥ च अ० ॥ अनु०—वृद्धो तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः, शेषः ॥ अर्थः—वृद्धा=गोत्रप्रत्ययान्त यूना सह शिष्यते, युवा निवर्त्तते, सा च स्त्री पुंवद् भवति, निमित्तकमेव चेत् वैरूप्यं स्यात् ॥ उदा०—गार्गी च गार्ग्यौ गार्ग्यौ, वात्सी च वात्स्यायनश्च वात्स्यौ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—गोत्रप्रत्ययान्त जो [*स्त्री*] स्त्रीलिङ्गवाची शब्द हो, वह युवप्रत्ययान्त शब्द के साथ शेष रह जाता है, और उस स्त्रीलिङ्ग गोत्र-प्रत्ययान्त शब्द को [*पुंवत्*] पुंवत् कार्य [च] भी हो जाता है, यदि उन दोनों शब्दों में वृद्धयुवनिमित्तक प्रत्यय का ही वैरूप्य हो और सब समान हों ॥ गार्गी च गार्ग्यायणश्च गार्ग्यौ, यहाँ गार्ग्य गोत्रप्रत्ययान्त शब्द से *यञश्च* (४।१।१६) से ङीप् प्रत्यय होकर 'गार्ग्य ङीप्' रहा। *यस्येति च* (६।४।१४८) से अकारलोप, एवं *हलस्तद्धितस्य* (६।४।१५०) से यकार लोप होकर गार्ग_ई=गार्गी गोत्रप्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्गवाची शब्द बना है, सो प्रकृत सूत्र से गार्गी शेष रह गया, गार्ग्यायण युवाप्रत्ययान्त हट गया तथा प्रकृत सूत्र से ही गार्गी को पुंवद्भाव हो जाने से, गार्गी का ङीप् हटकर पुलिङ्ग के समान 'गार्ग्य' रूप रह गया, तो गार्ग्यौ बन गया। गार्ग्यौ से गार्गी (गर्ग की पौत्री) एवं गार्ग्यायण (गर्ग के प्रपौत्र) दोनों का ही बोध हुआ करेगा ॥

पुमान् स्त्रिया ॥१।२।६७॥

पुमान् १।१॥ स्त्रिया ३।१॥ *अनु०*—तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः, शेषः ॥ *अर्थः*—पुमान् स्त्रिया सह शिष्यते स्त्री निवर्त्तते तल्लक्षण एव चेत् विशेषो भवेत्, लिङ्गभेद एव चेत् स्यादन्यत् प्रकृत्यादिकं सर्वं समानं भवेदित्यर्थः ॥ *उदा०*—ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी च ब्राह्मणौ, कुक्कुटश्च कुक्कुटी च कुक्कुटौ ॥

भाषार्थ :—[*पुमान्*] पुलिङ्गवाची जो शब्द वह [*स्त्रिया*] स्त्रीलिङ्ग-वाची शब्द के साथ शेष रह जाता है, स्त्रीलिङ्गवाची शब्द हट जाता है, यदि उन शब्दों में स्त्रीत्व पुंस्त्व कृत ही विशेष हो, अन्य प्रकृति आदि सब समान ही हों ॥ ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी च' में प्रकृति दोनों की एक है, केवल एक पुलिङ्गवाची है, दूसरा स्त्रीलिङ्गवाची है सो पुलिङ्ग 'ब्राह्मण' शेष रह गया, तो *ब्राह्मणौ* (ब्राह्मण और ब्राह्मणी) बना। इसी प्रकार कुक्कुटौ (मुर्गा और मुर्गी) में भी जानें ॥

भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम् ॥१।२।६८॥

भ्रातृपुत्रौ १।२॥ स्वसृदुहितृभ्याम् ३।२॥ *स०*—भ्राता च पुत्रश्च,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भ्रातृपुत्रौ, इतरेतरद्वन्द्वः। स्वसा च दुहिता च स्वसृदुहितरौ ता स्वसृदुहितृभ्याम्, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—शेषः ॥ अर्थः भ्रातृपुत्रौ शब्दौ यथाक्रमेण स्वसृदुहितृभ्यां शब्दाभ्यां सह शिष्यं स्वसृदुहितरौ निवर्त्तेते ॥ उदा०—भ्राता च स्वसा च भ्रातरौ। पु दुहिता च पुत्रौ ॥

भाषार्थः—[भ्रातृपुत्रौ] भ्रातृ और पुत्र शब्द यथाक्रम [स्वसृदुहितृभ्याम्] स्वसृ और दुहितृ शब्दों के साथ शेष रह जाते अर्थात् भ्रातृ और स्वसृ के साथ भ्रातृ, तथा पुत्र और दुहितृ के पुत्र शेष रह जाता है, शेष स्वसृ दुहितृ शब्द हट जाते हैं ॥

यहाँ भ्रातरौ का अर्थ भाई और बहिन, तथा पुत्रौ का अर्थ और पुत्री होगा, न कि दो भाई एवं दो पुत्र होगा ॥

नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम् ॥१।२।६९॥

नपुंसकम् १।१॥ अनपुंसकेन ३।१॥ एकवत् अ० ॥ च अ० ॥ अस्य ६।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ स०—न नपुंसकम् अनपुं तेनानपुंसकेन, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—तल्लक्षणश्चेदेव शेषः ॥ अर्थः—नपुंसकगुणविशिष्टश्शब्दोऽनपुंसकेन = स्त्रीपुल्लिङ्ग विशिष्टेन शब्देन सह शिष्यते, स्त्रीपुल्लिङ्गगुणविशिष्टौ शब्दौ नि अस्य नपुंसकलिङ्गशब्दस्य चैकवद् भवति, विकल्पेनैकवत् भवतीत्यर्थः नपुंसकानपुंसकगुणस्यैव चेद् वैरूप्यं स्यात् ॥ उदा शुक्लश्च कम्बलः, शुक्ला च शाटिका, शुक्लं च वस्त्रम् तदिदं शु पक्षे—तानीमानि शुक्लानि, (बहुवचनमभूत्) ॥

भाषार्थः—[नपुंसकम्] नपुंसक लिङ्ग वाची जो शब्द [अनपुंसकेन] नपुंसक लिङ्ग भिन्न शब्दों के साथ, अर्थात् पुंलिङ्गवाची शब्दों के साथ शेष रह जाता है, तथा स्त्रीलिङ्ग पुंलि शब्द हट जाते हैं, एवं [अस्य] उस नपुंसक लिङ्ग शब्द [एकवत्] एकवत् कार्य [च] भी [अन्यतरस्याम्] विकल्प हो जाता है, यदि उन शब्दों में नपुंसकगुण एवं अनपुंसकगु ही वैशिष्ट्य हो, शेष प्रकृति आदि समान ही हों ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

"शुक्लः कम्बलः" यह पुल्लिङ्ग है, "शुक्ला शाटिका" यह स्त्रीलिङ्ग है, "शुक्लं वस्त्रम्" यह नपुंसकलिङ्ग है तथा शुक्लः, शुक्ला, शुक्लम् नपुंसकत्व अनपुंसकत्व गुण का ही वैशिष्ट्य है, प्रकृति तो समान है, सो इस सूत्र से नपुंसकलिङ्ग वाला "शुक्लम्" ही शेष रहा, शेष हट गये, इसी प्रकार इस 'शुक्लम्' से कम्बल, शाटिका, वस्त्र तीनों का बोध कराना है, सो बहुवचन ही होना चाहिये था, पर इसी सूत्र से पक्ष में 'एकवत्' का विधान किया है सो एकवचन होकर 'तदिदं शुक्लम्' (यह सब सफेद हैं) बना। पक्ष में 'तानीमानि शुक्लानि' भी बन गया है ॥

यहाँ से *"अन्यतरस्याम्"* की अनुवृत्ति १।२।७१ तक जाती है ॥

पिता मात्रा ॥१।२।७०॥

पिता १।१॥ मात्रा ३।१॥ अनु०—अन्यतरस्याम्, शेषः ॥ अर्थः—मातृशब्देन सहवचने पितृशब्दः शिष्यते विकल्पेन, मातृशब्दो निवर्त्तते ॥ उदा०—माता च पिता च पितरौ। पक्षे-मातापितरौ ॥

भाषार्थः—[*मात्रा*] मातृ शब्द के साथ [*पिता*] पितृ शब्द विकल्प से शेष रह जाता है, मातृ शब्द हट जाता है।

माता च पिता च पितरौ (माता और पिता) में माता हट गया है, पक्ष में मातापितरौ भी प्रयोग होगा ॥

श्वशुरः श्वश्वा ॥१।२।७१॥

श्वशुरः १।१॥ श्वश्वा ३।१॥ अनु०—अन्यतरस्यां शेषः ॥ अर्थः—श्वश्रूशब्देन सह वचने श्वशुरः शिष्यते विकल्पेन, श्वश्रू निवर्त्तते ॥ उदा०—श्वशुरश्च श्वश्रू च श्वशुरौ। पक्षे-श्वश्रूश्वशुरौ।

भाषार्थः—[*श्वश्वा*] श्वश्रू शब्द के साथ [*श्वशुरः*] श्वशुर शब्द विकल्प से शेष रह जाता है श्वश्रू हट जाता है। पक्ष में वह भी रहेगा॥ उदा०—श्वशुरौ (सास और श्वसुर) श्वश्रूश्वशुरौ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् ॥१।२।७२॥

त्यदादीनि १।३॥ सर्वैः ३।३॥ नित्यम् १।१॥ अनु०—
अर्थ :—त्यदादीनि शब्दरूपाणि सर्वैः सहवचने नित्यं
अन्यानि निवर्त्तन्ते ॥ उदा०—स च देवदत्तश्च तौ, यश्च यज्ञदत्त
स च यश्च यौ ॥

भाषार्थः—[त्यदादीनि] त्यदादि शब्द रूप [सर्वैः] सबके अर्थात् त्यदादियों के साथ या त्यदादि से अन्यों के साथ भी [नित्य ही शेष रह जाते हैं, अन्य हट जाते हैं ॥ त्यदादि गण सर्व के अन्तर्गत ही पढ़ा है ॥ स च यज्ञदत्तश्च में 'स' त्यदादि एवं त्यदादि से भिन्न है, सो 'स' शेष रह गया, यज्ञदत्त हट गया स च यश्च में दोनों त्यदादि हैं सो कौन शेष रहे कौन हटे ? इस को *त्यदादीनां मिथो यद्यत्परं तत्तच्छिष्यते* (वा० १।२।७२) वार्त्तिक ने कि त्यदादियों में क्रम से जो परे २ के हैं वे शेष रह जाते हैं हट जाते हैं सो 'स च यश्च' में परला ही शेष रहा, तो 'यौ' (वह जो) बना ॥

ग्राम्यपशुसङ्घेष्वतरुणेषु स्त्री ॥१।२।७३॥

ग्राम्यपशुसङ्घेषु ७।३॥ अतरुणेषु ७।३॥ स्त्री १।१॥ ग्राम्याः, *ग्रामाद्यखञौ* (४।२।६३) इत्यनेन यत् प्रत्ययः॥ ग्राम्याश्च ते पशवश्च, ग्राम्यपशवः, कर्मधारयस्तत्पुरुषः। ग्राम्य सङ्घाः = समूहाः, ग्राम्यपशुसङ्घास्तेषु ग्राम्यपशुसङ्घेषु षष्ठीतत्पु न विद्यन्ते तरुणाः = बाल्यावस्था येषु सङ्घेषु तेऽतरुणास्तेषु, अ बहुव्रीहिः ॥ अनु०—शेषः। अर्थः—अतरुणेषु ग्राम्यपशुसङ्घेषु स्त्री पुमान् निवर्त्तते ॥ *पुमान् स्त्रिया* (१।२।६७) इत्यनेन पुंसः शेषे स्त्रीशेषो विधीयते ॥ उदा०—गावश्च वृषभाश्च = गाव इमा महिषाश्च महिष्यश्च महिष्य इमाश्चरन्ति ॥

भाषार्थः—[अतरुणेषु] अतरुण अर्थात् बच्चे न हों ऐसे [ग्राम्यपशुसङ्घेषु] ग्रामीण पशुओं के समूह को कहने में स्त्री (स्त्री पशु) शेष रह जाता है, पुमान् (नर) हट जाते हैं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यह सूत्र *पुमान् स्त्रिया* का अपवाद है, उससे पुल्लिङ्ग शब्द का शेष प्राप्त था इसने ग्राम्य पशुओं के झुण्ड को कहने में स्त्री वाची शब्द को शेष कर दिया, पुलिङ्गवाची शब्द हट गया ॥ गावश्च वृषभाश्च में गौ स्त्रीवाची शब्द है, सो वह शेष रह गया, वृषभ पुलिङ्गवाची हट गया, तो गावः (गाय और बैल) बना । इसी प्रकार 'महिष्य इमाः' में जानें ॥

गाय और बैलों का समूह साथ २ चरता हो तो लोक में भी "यह गायें चरती हैं" ऐसा कहा जाता है, न कि "ये गाय बैल चरते हैं" ऐसा कहा जाता है, सो वही इस सूत्र ने विधान कर दिया ॥

॥ *इति द्वितीयः पादः* ॥

तृतीयः पादः

भूवादयो धातवः ॥१।३।१॥

भूवादयः १।३॥ धातवः १।३॥ *स०*—भूश्च वाश्च भूवौ, भूवौ आदी येषां ते भूवादयः, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ *अर्थ* :—भू इत्येवमादयः वा इत्येवंप्रकारकाः क्रियावचनाः शब्दा धातुसंज्ञका भवन्ति ॥ *उदा०*—भवति, पठति, वाति ॥

भाषार्थः—[*भूवादयः*] भू जिनके आदि में है तथा वा (धातु) के समान जो क्रियावाची शब्द हैं, उनकी [*धातवः*] धातु संज्ञा होती है ॥ यहाँ 'भू' के साथ जो आदि शब्द सम्बन्धित होगा वह व्यवस्थावाची है, "भू आदि में है जिनके उनकी" तथा 'वा' के साथ जो आदि शब्द लगेगा, वह प्रकारवाची है, "वा के प्रकार वाली (क्रियावाची)" यह अर्थ होता है, अतः 'भू' जो पृथिवी का वाचक है, उसकी धातु संज्ञा नहीं होती, इसी प्रकार 'वा गतिगन्धनयोः' जो क्रियावाची है उसी वा की धातु संज्ञा होती है, 'वा' जो विकल्पार्थक निपात है, उसकी नहीं होती, क्योंकि यह सब "वाप्रकारक" = क्रियावाची नहीं है। धातु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

संज्ञा होने से धातोः (३।१।९१) के अधिकार में कहे, तिबादि आ जाते हैं ॥

[इत्संज्ञाप्रकरणम्]

उपदेशेऽजनुनासिक इत् ॥१।३।२॥

उपदेशे ७।१॥ अच् १।१॥ अनुनासिकः १।१॥ इत् १।१॥ उपदेशे योऽनुनासिकोऽच् तस्य इत्संज्ञा भवति ॥ उदा०—पठँ वदँ=वदति, एधँ=एधते, सुँ ॥

भाषार्थः—[उपदेशे] उपदेश में होनेवाला जो [अनुनासिक] अनुनासिक (मुख और नासिका से बोला जाने वाला) [अच्] अच् उसकी [इत्] इत् संज्ञा होती है ॥

उपदेश यहाँ पाणिनि मुनि के बनाये ५ ग्रन्थों का नाम (१) अष्टाध्यायी, (२) धातुपाठ, (३) उणादिसूत्र, (४) गणपाठ लिङ्गानुशासन, इनमें होने वाले अनुनासिक अच् की इत् संज्ञा है ॥ पठ इत्यादियों में 'अ' अनुनासिक पाणिनि जी ने पढ़ा था 'पठँ' ऐसा था, पर अब ये अनुनासिक चिह्न लगभग २००० लुप्त हो गये हैं, जो अब सर्वथा बताने ही पड़ते हैं ॥

इत् संज्ञा का प्रयोजन उस इत्संज्ञक का तस्य लोपः (१।३।९) लोप करना है ॥

यहाँ से 'उपदेशे' तथा 'इत्' की अनुवृत्ति १।३।८ तक जाती है

हलन्त्यम् ॥१।३।३॥

हल् १।१॥ अन्त्यम् १।१॥ अन्ते भवमन्त्यं, दिगादित्वात् (४।३ यत् प्रत्ययः ॥ स०—हस्य ल् हल्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ हल् च हल् च सरूपाणामित्यनेन (१।२।६४) एकशेषः, जातिविवक्षायामेकव अनया रीत्या हल् प्रत्याहारो निष्पद्यते ॥ अनु०—उपदेशे, अर्थः—उपदेशेऽन्त्यं हल् इत्संज्ञकं भवति ॥ उदा०—अइउण् णकारस्य । ऋलृक् इति ककारस्य ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—उपदेश में जो [*अन्त्यम्*] अन्तिम [*हल्*] हल् सकी इत् संज्ञा होती है ॥

विशेषः—यहाँ यह बात विचार की है, कि प्रथम प्रत्याहार सूत्र इल्' के 'ल्' की इत् संज्ञा हो, तो हल् प्रत्याहार बनें, तब *हलन्त्यम्* सूत्र बनें, पर जब तक *हलन्त्यम्* सूत्र नहीं बनता, तब तक 'हल्' के 'ल्' की इत् संज्ञा हो ही नहीं सकती, सो इतरेतराश्रय दोष आता है, उस दोष को हटाने के लिये 'ह्स्य ल्' ऐसा समास किया गया है, पुनः ल् च हल् च का एकशेष किया है अर्थात् प्रत्याहार वाले हल् सूत्र के 'ह' के समीप जो 'ल्' उसकी इत् संज्ञा होती है", ऐसा कहने से 'हल्' प्रत्याहार बन गया। पश्चात् हल् का एकशेष करने पर "अन्तिम हल् की इत् संज्ञा होती है", यह अर्थ हो जाता है, सो दोष नहीं रहता। वस्तुतः यह द्वितीयावृत्ति का विषय है, पर समास की उपयोगिता दिखाने के लिये यह सब लिख दिया है ॥ यहाँ से *हलन्त्यम्* की अनुवृत्ति १।३।४ तक जायगी।

न विभक्तौ तुस्माः ॥१।३।४॥

न अ० ॥ विभक्तौ ७।१॥ तुस्माः १।३॥ स०—तुश्च सश्च मश्च तुस्माः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—उपदेशे हलन्त्यम् इत् ॥ अर्थः—विभक्तौ वर्तमानानां तवर्गसकारमकाराणामित्संज्ञा न भवति ॥ पूर्वेणान्त्यं हल् इत्संज्ञकं प्राप्तमनेन प्रतिषिध्यते ॥ उदा०—रामात् वृक्षात्, इति तकारस्य। सकारः—जस्, शस्, भिस्, ङस्, ओस्। मकारः—अम्, आम् ॥

भाषार्थः—[*विभक्तौ*] विभक्ति में वर्त्तमान जो [*तुस्माः*] तवर्ग तकार और मकार, वे अन्तिम हल् होते हुये भी इत्संज्ञक [*न*] नहीं होते ॥ यह सूत्र पूर्व सूत्र का अपवाद है ॥

रामात् में जो ङसि के स्थान में *टाङसिङसामिनात्स्याः* (७।१।१२) से 'आत्' हुआ था, वह स्थानिवत् होकर विभक्ति का तकार था, उसकी पूर्व सूत्र से इत् संज्ञा प्राप्त थी, इस सूत्र से निषेध हो गया। इसी प्रकार जस्, ङस्, अम् इत्यादि के अन्तिम सकार मकार की इत् संज्ञा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पूर्व सूत्र से होनी चाहिये थी, पर वह इनके विभक्ति में वर्त्तमान होने नहीं होती ॥

आदिर्ञिटुडवः ॥१।३।५॥

आदिः १।१॥ ञिटुडवः १।३॥ स०—ञिश्च टुश्च डुश्च ञिटु इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—उपदेशे इत् ॥ अर्थः—उपदेशे व वर्त्तमानानां ञि, टु, डु इत्येतेषामित्संज्ञा भवति ॥ उदा०—ञिमिद् मिन्नः। ञिधृषा=धृष्टः। ञिक्ष्विदा=क्ष्विण्णः। ञिइन्धी=इन् टुवेपृ=वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते। टुओश्वि=श्वय डुपचष्=पक्त्रिमम्। डुवप्=उप्त्रिमम्। डुकृञ्=कृत्रिमम्॥

भाषार्थः—उपदेश के [*आदिः*] आदि में वर्त्तमान जो [*ञिटु*] ञि, टु और डु उनकी इत् संज्ञा होती है ॥

यहाँ से '*आदिः*' की अनुवृत्ति १।३।८ तक जाती है ॥

षः प्रत्ययस्य ॥१।३।६॥

षः १।१॥ प्रत्ययस्य ६।१॥ अनु०—आदिः उपदेशे, इत् ॥ अर्थ उपदेशे प्रत्ययस्य आदिः षकार इत्संज्ञको भवति ॥ उदा०—तत् रजकी ॥

भाषार्थः—उपदेश में [*प्रत्ययस्य*] प्रत्यय के आदि में जो [ष] षकार उसकी इत् संज्ञा होती है ॥

यहाँ से '*प्रत्ययस्य*' की अनुवृत्ति १।३।८ तक जाती है ॥

चुटू ॥१।३।७॥

चुटू १।२॥ स०—चुश्च टुश्च चुटू, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु० प्रत्ययस्य, आदिः उपदेशे इत् ॥ अर्थः—उपदेशे प्रत्ययस्य च चवर्गटवर्गौ, इत्संज्ञकौ भवतः ॥ उदा०—कौञ्जायन्यः। ब्राह्मण शाण्डिक्यः। टवर्गः—वाचा। कुरुचरी, मद्रचरी। उपसरजः मन्दुर आम्रः ॥

भाषार्थः—उपदेश में प्रत्यय के आदि के जो [चुटू] चवर्ग टवर्ग उनकी इत् संज्ञा हो जाती है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लशक्वतद्धिते ॥१।३।८॥

लशकु १।१॥ अतद्धिते ७।१॥ स०—न तद्धितः, अतद्धितस्तस्मिन् अतद्धिते, नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—प्रत्ययस्य, आदिः उपदेशे इत्॥ अर्थः—उपदेशे प्रत्ययस्यादयः लकारशकारकवर्गाः, इत्संज्ञका भवन्ति, तद्धितं वर्जयित्वा॥ उदा०—लकारः—चयनम्, जयनम्। शकारः—भवति, पचति। कवर्गः—भुक्तः, भुक्तवान्। प्रियंवदः वशंवदः। ग्लास्नुः जिष्णुः भूष्णुः। भङ्गुरम्। वाचः॥

भाषार्थ :—उपदेश में प्रत्यय के आदि में वर्त्तमान जो [*लशकु*] लकार, शकार और कवर्ग उनकी इत् संज्ञा होती है, [*अतद्धिते*] तद्धित को छोड़कर॥

तस्य लोपः ॥१।३।९॥

तस्य ६।१॥ लोपः १।१॥ अर्थः—तस्येत्संज्ञकस्य लोपो भवति॥ उदाहरणानि पूर्वसूत्रेष्वेव द्रष्टव्यानि॥

भाषार्थ :—[*तस्य*] जिसकी इत् संज्ञा होती है, उसका (सारे का) [*लोपः*] लोप हो जाता है॥

यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम् ॥१।३।१०॥

यथासङ्ख्यम् अ०॥ अनुदेशः १।१॥ समानाम् ६।३॥ स०—सङ्ख्यामनतिक्रान्तः, यथासंख्यम् अव्ययीभावः॥ अर्थः—समानाम्=समसङ्ख्यानामनुदेशः=पश्चात् कथनम्, यथासङ्ख्यं=सङ्ख्याक्रमेण भवति॥ उदा०—इको यणचि, तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराड्ढक्छण्-ढञ्यकः (४।३।९४)। तूदीशब्दात् ढक् प्रत्ययः=तौदेयः। शलातुरात् छण्—शालातुरीयः। वर्मतीशब्दात् ढञ्—वार्मतेयः। कूचवारात् यक्—कौचवार्यः, अत्र क्रमेणानुदेशा भवन्ति॥

भाषार्थ :—[*समानाम्*] सम सङ्ख्या वाले शब्दों के स्थान में [*अनुदेशः*] पीछे आने वाले शब्द [*यथासङ्ख्यम्*] यथाक्रम नम्बरवार अर्थात् पहले के स्थान में पहला, दूसरे के स्थान में दूसरा इत्यादि होते हैं॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—इको यणचि। तूदीशला० (४।३।९४) तौदेयः (तूदी प्रदेश रहने वाला) शालातुरीयः[1] (शलातुर ग्राम का रहने वाला) वार्मतः (वर्मती नगर का रहने वाला) कौचवार्यः (कूचवार प्रदेश रहने वाला)॥

उदाहरणों में ठीक पहले को पहला, दूसरे को दूसरा, तीसरे को तीसरा अनुदेश हुआ है। इको यणचि में क्रम से इक्=इ, उ, ऋ, को यण्=य्, व्, र्, ल् होते हैं। इसी प्रकार तूदी शब्द से ढक्, शलातुर से छण् आदि क्रम से ही हुये हैं॥ सिद्धियों में पूर्व ही आदि अच् को वृद्धि (७।२।११७) तथा *आयनेयीनीयियः०* (७।१ से 'ढ' को एय् 'छ' को 'ईय्' आदि हुए हैं, ऐसा जानें। और कुछ वि नहीं है॥

स्वरितेनाधिकारः[2] ॥१।३।११॥

स्वरितेन ३।१॥ अधिकारः १।१॥ *अर्थः*—स्वरितेन चिह्नेना कारो वेदितव्यः॥ उदा०—प्रत्ययः, परश्च (३।१।१,२), धातोः (३।१। अङ्गस्य (६।४।१)॥

भाषार्थः—[*स्वरितेन*] जहाँ स्वरित का चिह्न (ऊपर खड़ी रेखा) हो, उसे [*अधिकारः*] अधिकार सूत्र जानना चाहिये॥

[आत्मनेपदप्रकरणम्]

अनुदात्तङित आत्मनेपदम् ॥१।३।१२॥

अनुदात्तङितः ५।१॥ आत्मनेपदम् १।१॥ *सं०*—अनुदात्तश्च अनुदात्तङौ, अनुदात्तङौ इतौ यस्य, स अनुदात्तङित्, तस्मात् अनु

---

१ शलातुर ग्राम पंजाब का एक ऐतिहासिक ग्राम था। कहा जाता है यहीं पाणिनि जी का जन्म हुआ था।

२ यह स्वरित का चिह्न पुराकाल में पाणिनि मुनि ने अधिकार सूत्रों लगाया था, इस समय वे विलुप्त हो गये हैं, सो अधिकार सूत्र कौन-कौन से अब यह अध्यापक को ही बताना पड़ता है, क्योंकि स्वरित चिह्न का रहा नहीं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ङितः, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ *अर्थः*—अनुदात्तेत्, ङित्श्च धातोः[1], आत्मनेपदं भवति॥ *उदा०*—आस—आस्ते। वस—वस्ते। एध—एधते॥ षूङ्—सूते। शीङ्—शेते॥

भाषार्थः—[*अनुदात्तङितः*] अनुदात्त जिसका इत् गया हो, उस धातु से, तथा ङकार जिसका इत् गया हो उस धातु से भी [*आत्मनेपदम्*] आत्मनेपद होता है॥

यहाँ से '*आत्मनेपदम्*' का अधिकार १।३।७७ तक जाता है॥

भावकर्मणोः ॥१।३।१३॥

भावकर्मणोः ७।२॥ *स०*—भावश्च कर्म च भावकर्मणी, तयोः भावकर्मणोः, इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—आत्मनेपदम्। *अर्थः*—भावे कर्मणि चार्थे धातोरात्मनेपदं भवति॥ *उदा०*—भावे—आस्यते देवदत्तेन, चिन्त्यते देवदत्तेन, ग्लायते भवता, सुप्यते भवता। कर्मणि—देवदत्तेन वेदः पठ्यते, देवदत्तेन फलं खाद्यते, क्रियते कटस्त्वया, ह्रियते भारो मया॥

भाषार्थः—[*भावकर्मणोः*] भाववाच्य तथा कर्मवाच्य में (धातु से) आत्मनेपद होता है॥

विशेष—यहाँ यह समझ लेने का विषय है कि भाववाच्य, कर्मवाच्य और कर्तृवाच्य क्या होता है, तथा किन-किन धातुओं से होता है, हम यहाँ संक्षेप से ही उसका निरूपण करते हैं, विस्तार से हमारी बनाई "सरलतमविधि" पुस्तक का पाठ ४१ (संस्क० ३) देखें।

अकर्मक धातुओं से भाव तथा कर्त्ता में लकार एवं प्रत्यय आते हैं, तथा सकर्मक धातुओं से लकार एवं प्रत्यय कर्म तथा कर्त्ता में होते हैं, देखो सूत्र (३।४।६९-६७-७०)। जब क्रिया के साथ कर्म का सम्बन्ध नहीं होता या नहीं हो सकता, तब वह क्रिया अकर्मक होती है। जैसे—देवदत्त आस्ते, देवदत्तः चिन्तयति, यहाँ 'आस' धातु के साथ न

---

१ यहाँ धातु शब्द सामर्थ्य से आ जाता है, क्योंकि आत्मनेपद और परस्मैपद धातु से ही होते हैं॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कर्म का सम्बन्ध है न हो सकता है, तथा चिन्त के साथ भी कर्म का सं नहीं है, अतः आस्ते वस्ते में कर्तृवाच्य में लकार आये हैं, भाव में इसीका आस्यते देवदत्तेन, चिन्त्यते देवदत्तेन (देवदत्त के बैठा जाता है, चिन्ता की जाती है) बनेगा। अकर्मक होने से लिखे अनुसार इनका कर्म नहीं हो सकता।

सामान्यतया वैयाकरणों ने भाव का लक्षण किया है "*स्पन्दनसाधनसाध्यो धात्वर्थो भावः*" अर्थात् जिनमें हिलना जुलना न पाया जाये, ऐसे साधन से सिद्ध किया हुआ धातु का अर्थ कहलाता है। उपर्युक्त उदाहरण में देवदत्त चुपचाप बैठा सो है, उसमें हिलना जुलना आदि नहीं हो रहा, अतः अकर्मक हैं।

जब धातु के साथ कर्म का सम्बन्ध होता है, या हो सकता वह धातु सकर्मक होती है, तथा ऊपर लिखे अनुसार सकर्मक से लकार कर्म तथा कर्त्ता में आयेंगे, भाव में नहीं आयेंगे।

देवदत्तः वेदं पठति, देवदत्तः फलं खादति यहाँ पठ, तथा खाद का कर्ता (देवदत्त) के साथ सम्बन्ध है; सो यहाँ पठति, में कर्त्ता में लकार आए हैं। कर्मवाच्य में इन्हीं का पठ्यते देवदत्तेन, खाद्यते फलं देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा वेद पढ़ा फल खाया जाता है) बनता है।

यहाँ भी "*सपरिस्पन्दनसाधनसाध्यो धात्वर्थः कर्म*" ऐसा सकर्मक के लिये वैयाकरणों ने माना है॥

जब क्रिया और कर्त्ता का अधिकरण=आश्रय परस्पर समान है, तब कर्तृवाच्य क्रिया बनती है। कर्तृवाच्य में क्रिया कर्म कहती है, सो *तिङ्समानाधिकरणे प्रथमा* (*महाभा०* २।३।४६) भाष्यवचन से कर्त्ता में प्रथमा होती है।

जब क्रिया और कर्म का अधिकरण एक होता है, तो क्रिया बनती है। कर्मवाच्य में क्रिया कर्म को कहती है, सो वचन से कर्म में प्रथमा हो जाती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाववाच्य क्रिया में भाव अर्थात् धात्वर्थ मात्र कहा जाता है, सो आस्यते इस भाववाच्य क्रिया से 'बैठना' मात्र अभिप्रेत है॥ कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में कर्त्ता में तृतीया विभक्ति *अनभिहिते* (२।३।१) अधिकार में वर्त्तमान *कर्तृकरणयोस्तृतीया* (२।३।१८) से हुई है। विभक्ति वचन की व्यवस्था वहीं *अनभिहिते* (२।३।१) सूत्र पर ही देखें॥

भाव तथा कर्म में चार बातें कर्त्तृवाच्य से विशेष होती हैं—

(१) आत्मनेपद जो इसी (१।३।१३) सूत्र से होता है। (२) यक्—*सार्वधातुके यक्* (३।१।६७) से होता है। (३) चिण्—*चिण् भाव-कर्मणोः* (३।१।६६) से होता है। (४) चिण्वद्भाव—*स्यसिच्॰॰॰ चिण्वदिट् च* (६।४।६२) से होता है। इस सम्बन्ध में तत्तत्सूत्र देख लेना चाहिये॥

कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे ॥१।३।१४॥

कर्त्तरि ७।१॥ कर्मव्यतिहारे ७।१॥ *स०*—कर्मणः व्यतिहारः कर्मव्यतिहारः, तस्मिन्...षष्ठीतत्पुरुषः॥ *अनु०*—आत्मनेपदम्॥ *अर्थः*—कर्मशब्दः क्रियावाची, न तु *कर्तुरीप्सिततमं कर्म* (१।४।४९) इति। व्यतिहारः=विनिमयः परस्परक्रियाकरणम्। क्रियायाः व्यतिहारे=विनिमये कर्तृवाच्ये, आत्मनेपदं भवति॥ *उदा०*—व्यतिलुनते क्षेत्रम्, व्यतिपुनते वस्त्रम्॥

भाषार्थः—[*कर्मव्यतिहारे*] क्रिया के व्यतिहार अर्थात् अदल बदल करने अर्थ में [*कर्त्तरि*] कर्तृवाच्य में आत्मनेपद होता है॥

यहाँ से '*कर्मव्यतिहारे*' की अनुवृत्ति १।३।१६ तक जाती है॥

न गतिहिंसार्थेभ्यः ॥१।३।१५॥

न अ०॥ गतिहिंसार्थेभ्यः ५।३॥ *स०*—गतिश्च हिंसा च गतिहिंसे, गतिहिंसे अर्थौ येषां ते गतिहिंसार्थास्तेभ्य...द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—कर्मव्यतिहारे, आत्मनेपदम्॥ *अर्थः*—गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यः, हिंसार्थेभ्यश्च कर्मव्यतिहारे आत्मनेपदं न भवति। पूर्वेण प्राप्तिः प्रतिषिध्यते॥ *उदा०*—गत्यर्थेभ्यः—व्यतिगच्छन्ति, व्यतिसर्पन्ति। हिंसार्थेभ्यः—व्यतिहिंसन्ति, व्यतिघ्नन्ति॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*गतिहिंसार्थेभ्यः*] गत्यर्थक तथा हिंसार्थक धातुओं से कर्मव्यतिहार अर्थ में आत्मनेपद [*न*] नहीं होता है ॥

पूर्व सूत्र से कर्मव्यतिहार में आत्मनेपद प्राप्त था, प्रतिषेध कर दिया है ॥ यहाँ से '*न*' की अनुवृत्ति १।३।१६ तक जाती है ॥

इतरेतरान्योन्योपपदाच्च ॥१।३।१६॥

इतरेतरान्योन्योपपदात् ५।१॥ च अ० ॥ *स०*—इतरश्च अन्यो इतरेतरान्योन्यौ, तावुपपदे यस्य, स इतरेतरान्योन्योपपदस्तस्मात् द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—न, कर्मव्यतिहारे, आत्मनेपदम् ॥ *अर्थः*—इतरेतरान्योन्योपपदात् धातोः, आत्मनेपदं न स्यात् कर्मव्यतिहारेऽर्थे ॥ *उदा०*—इतरेतरस्य व्यतिलुनन्ति, अन्योन्यस्य व्यतिलुनन्ति ॥

भाषार्थः—[*इतरे...दात्*] इतरेतर, तथा अन्योन्य शब्द उपपद (समीप में श्रूयमाण) हों तो [*च*] भी, धातु से कर्मव्यतिहार अर्थ में आत्मनेपद नहीं होता है ॥ यह सूत्र भी १।३।१४ का अपवाद है ॥

उदा०—इतरेतरस्य व्यतिलुनन्ति (एक दूसरे का काटते हैं) अन्योन्यस्य व्यतिलुनन्ति (एक दूसरे का काटते हैं) ॥

सिद्धि परि० १।३।१४ के समान हैं ॥

नेर्विशः ॥१।३।१७॥

नेः ५।१॥ विशः ५।१॥ *अनु०*—आत्मनेपदम् ॥ *अर्थः*—निपूर्वाद् विश—(तुदा० प०) धातोः, आत्मनेपदं भवति ॥ *उदा०*—निविशते निविशन्ते ॥

भाषार्थः—[*नेः*] नि उपसर्गपूर्वक [*विशः*] विश धातु से आत्मनेपद होता है ॥ विश धातु धातुपाठ में परस्मैपदी पढ़ी है, इसे आत्मनेपद नहीं प्राप्त था, अतः कह दिया ॥

विशेष:—धातुपाठ में धातुएँ आत्मनेपदी, परस्मैपदी पृथक् पढ़ी ही हैं, सो उन्हीं से कौन आत्मनेपदी हैं, कौन परस्मैपदी हैं परिज्ञान हो ही जायगा, पुनः इस प्रकरण का विधान इसलिये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

जो परस्मैपदी धातु थीं, उनसे आत्मनेपद कब हो जाता है, और जो आत्मनेपदी धातु थीं उनसे परस्मैपद कब हो जाता है ? यह बात दर्शाने के लिये यह प्रकरण है। धातुपाठ की सूची तथा इस प्रकरण से आत्मनेपद और परस्मैपद का पूरा २ ज्ञान हो जाता है, सो पाद के अन्त तक यही विधान समझना चाहिये।

उदा०—निविशते (प्रवेश करता है) निविशेते, निविशन्ते॥

सिद्धियाँ पूर्ववत् ही हैं, निविशेते की सिद्धि परि० १।१।११ के पचेते के समान जानें॥

परिव्यवेभ्यः क्रियः ॥१।३।१८॥

परिव्यवेभ्यः ५।३॥ क्रियः ५।१॥ स०—परि च विच अव च परिव्यवास्तेभ्यः....इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—आत्मनेपदम्॥ अर्थः—परि, वि, अव इत्येवं पूर्वात् "डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये" धातोरात्मनेपदं भवति॥ उदा०—परिक्रीणीते, विक्रीणीते, अवक्रीणीते॥

भाषार्थः—[परिव्यवेभ्यः] परि, वि, तथा अव उपसर्ग पूर्वक [क्रियः] डुक्रीञ् धातु से आत्मनेपद होता है॥ ञित् होने से स्वरितञितः (१।३।७२) से कर्त्रभिप्राय क्रियाफल में आत्मनेपद प्राप्त था, अकर्त्रभिप्राय क्रियाफल (जब क्रिया का फल कर्त्ता के अभिप्राय को सिद्ध न कर रहा हो) में भी आत्मनेपद हो जाये इसलिये यह वचन है॥

विपराभ्यां जेः ॥१।३।१९॥

विपराभ्याम् ५।२॥ जेः ५।१॥ स०—वि च परा च विपरौ, ताभ्यां, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—आत्मनेपदम्॥ अर्थः—वि, परा इत्येवं पूर्वाद् जिधातोरात्मनेपदं भवति॥ उदा०—विजयते, पराजयते॥

भाषार्थः—[विपराभ्याम्] वि, परा पूर्वक [जेः] 'जि' धातु से आत्मनेपद होता है॥ 'वि जि शप् त' इस स्थिति में 'जि' अङ्ग को गुण, तथा ६।१।७५ से अयादेश होकर विजयते (विजय को प्राप्त होता है) पराजयते (पराजित = हारता है) बना है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

आङो दोऽनास्यविहरणे ॥१।३।२०॥

आङः ५।१॥ दः ५।१॥ अनास्यविहरणे ७।१॥ स०—आस्ये विहरणं, आस्यविहरणम्, षष्ठीतत्पुरुषः। न आस्यविहरणमनास्यविहरणं तस्मिन्...नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—आत्मनेपदम्॥ अर्थः—अनास्यविहरणेऽर्थे वर्त्तमानाद् आङ् पूर्वात् डुदाञ् धातोरात्मनेपदं भवति॥ उदा०—विद्याम् आदत्ते॥

भाषार्थ :—[*आङः*] आङ्पूर्वक [*दः*] डुदाञ् धातु से, आत्मनेपद होता है, यदि वह [*अनास्यविहरणे*] मुख को खोलने अर्थ में वर्त्तमान न हो तो॥ यहाँ से '*आङः*' की अनुवृत्ति १।३।२१ तक जाती है॥

क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च ॥१।३।२१॥

क्रीडः ५।१॥ अनुसंपरिभ्यः ५।३॥ च अ०॥ स०—अनु च सम् च परि च, अनुसंपरयस्तेभ्यः.....इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—आङ् आत्मनेपदम्॥ अर्थः—अनु, सम्, परि, इत्येवंपूर्वाद् आङ्पूर्वाच्च क्रीङ आत्मनेपदं भवति॥ उदा०—अनुक्रीडते, संक्रीडते, परिक्रीडते, आक्रीडते॥

भाषार्थ :—[*अनुसंपरिभ्यः*] अनु, सम्, परि [*च*] और आङ् पूर्वक [*क्रीडः*] क्रीड धातु से आत्मनेपद होता है॥

उदा०—अनुक्रीडते (साथ में खेलता है) संक्रीडते (मस्त खेलता है) परिक्रीडते (खूब खेलता है) आक्रीडते (खेलता है)

समवप्रविभ्यः स्थः ॥१।३।२२॥

समवप्रविभ्यः ५।३॥ स्थः ५।१॥ स०—सम् च अव च प्र च वि च समवप्रवयस्तेभ्यः.....इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु० आत्मनेपदम्॥ अर्थः—सम्, अव, प्र, वि इत्येवं पूर्वात् स्थाधातोरात्मनेपदं भवति॥ उदा०—सन्तिष्ठते, अवतिष्ठते, प्रतिष्ठते, वितिष्ठते॥

भाषार्थ :—[*समवप्रविभ्यः*] सम्, अव, प्र, तथा वि पूर्वक [*स्थः*] स्था धातु से आत्मनेपद होता है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शप् परे रहते स्था को 'तिष्ठ' आदेश *पाघ्राध्मास्थाम्ना०* (७।३।७८) हो गया है, शेष सिद्धि पूर्ववत् ही है ॥

उदा०—सन्तिष्ठते (सम्यक् स्थित होता है) अवतिष्ठते (अवस्थित होता है) प्रतिष्ठते (प्रस्थान करता है)। वितिष्ठते (विशेष रूप से स्थित होता है ॥

यहाँ से 'स्थः' की अनुवृत्ति १।३।२६ तक जाती है ॥

प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च ॥१।३।२३॥

प्रकाशनस्थेयाख्ययोः ७।२॥ च अ०॥ तिष्ठन्ति अस्मिन्निति स्थेयः। प०—स्थेयस्याख्या, स्थेयाख्या, षष्ठीतत्पुरुषः। प्रकाशनञ्च स्थेयाख्या च प्रकाशनस्थेयाख्ये, तयोः.....इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—स्थः, आत्मनेपदम्॥ अर्थः—स्वाभिप्रायस्य प्रकाशने, स्थेयाख्ये = विवादपदनिर्णेतुराख्ये च वर्त्तमानात् स्थाधातोरात्मनेपदं भवति॥ उदा०—विद्या तिष्ठते छात्राय। भार्या तिष्ठते पत्ये। स्थेयाख्ये—त्वयि तिष्ठते, मयि तिष्ठते॥

भाषार्थ:—[*प्रका...योः*] प्रकाशन = अपने भाव के प्रकाशन में तथा स्थेयाख्या = विवाद के निर्णय करने वाले को कहने अर्थ में [च] भी स्था धातु से आत्मनेपद होता है॥

उदा०—विद्या तिष्ठते छात्राय (विद्या छात्र को अपना स्वरूप प्रकाशित करती है) भार्या तिष्ठते पत्ये (पतिव्रता स्त्री अपने पति को अपना स्वरूप दर्शाती है) त्वयि तिष्ठते (तुम्हारे विषय में निर्णायक होकर बैठता है) मयि तिष्ठते॥

उदोऽनूर्ध्वकर्मणि ॥१।३।२४॥

उदः ५।१॥ अनूर्ध्वकर्मणि ७।१॥ स०—न ऊर्ध्वकर्म, अनूर्ध्वकर्म-तस्मिन्—नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—स्थः, आत्मनेपदम्॥ अर्थः—अनूर्ध्व-कर्मण्यर्थे वर्त्तमानाद् उत्पूर्वात् स्थाधातोरात्मनेपदं भवति॥ उदा०—गेहे उत्तिष्ठते, कुटुम्बे उत्तिष्ठते॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ :—*[अनूर्ध्वकर्मणि]* अनूर्ध्वकर्म अर्थात् ऊपर उठने वर्त्तमान न हो तो *[उदः]* उत् पूर्वक स्था धातु से आत्मनेपद होत उत् उपसर्ग ऊपर उठने अर्थ में ही प्रायः आता है॥ उत्तिष्ठते, में ऊपर उठना अर्थ नहीं है, प्रत्युत "घर में उन्नति है" यह अर्थ है, सो आत्मनेपद हो गया॥

१ उपान्मन्त्रकरणे ॥१।३।२५॥

उपात् ५।१॥ मन्त्रकरणे ७।१॥ *स०*—मन्त्रस्यकरणं मन तस्मिन्—षष्ठीतत्पुरुषः॥ *अनु*—स्थः, आत्मनेपदम्॥ *अर्थः*- करणे=मन्त्रद्वारेणानुष्ठानेऽर्थे वर्त्तमानाद् उपपूर्वात् स्थाधातोरा भवति॥ *उदा०*—ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते, आग्नेय्या आ मुपतिष्ठते॥

भाषार्थ :—*[मन्त्रकरणे]* मन्त्रकरण अर्थात् मन्त्रद्वारा अ अर्थ में वर्त्तमान *[उपात्]* उपपूर्वक स्था धातु से आत्मनेपद होता

उदा०—ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते (इन्द्रदेवता वाली ऋचा बोलकर गार्हपत्य अग्नि के समीप जाता है) आग्नेय्या अ मुपतिष्ठते (अग्निदेवता वाली ऋचा को कान में बोलकर आग्नी पास जाता है॥

यहाँ से *'उपात्'* की अनुवृत्ति १।३।२६ तक जाती है॥

अकर्मकाच्च ॥१।३।२६॥

अकर्मकात् ५।१॥ च अ०॥ *अनु०*—उपात्, स्थः, आत्मनेप *अर्थ* :—अकर्मकाद् उपपूर्वात् स्था धातोरात्मनेपदं भवति॥ यावद्भुक्तमुपतिष्ठते, यावदोदनमुपतिष्ठते॥

भाषार्थ :—उपपूर्वक *[अकर्मकात्]* अकर्मक स्था धातु से भी आत्मनेपद होता है॥

उदा०—यावद्भुक्तमुपतिष्ठते (भोजन के समय आ खड़ा है) यावदोदनमुपतिष्ठते (जब २ चावल बना कि आ खड़ा होता उदाहरणों में स्था धातु अकर्मक है सो आत्मनेपद हुआ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'अकर्मकात्' की अनुवृत्ति १।३।२९ तक जाती है ॥

उद्विभ्यां तपः ॥१।३।२७॥

उद्विभ्याम् ५।२॥ तपः ५।१॥ स०—उत् च वि च उद्वी, ताभ्यां ...इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्मकात् आत्मनेपदम् ॥ अर्थः—त् , वि इत्येवंपूर्वादकर्मकात् तप धातोरात्मनेपदं भवति ॥ उदा०—त्तपते, वितपते ॥

भाषार्थः—[उद्विभ्याम्] उत् वि पूर्वक अकर्मक [तपः] तप धातु आत्मनेपद होता है ॥

उदा०—उत्तपते (खूब गरम होता है) वितपते (विशेष रूप से रम होता है) ॥

आङो यमहनः ॥१।३।२८॥

आङः ५।१॥ यमहनः ५।१॥ स०—यमश्च हन् च यमहन् मात्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्मकात्, आत्मनेपदम् ॥ र्थः—आङ्पूर्वाभ्यामकर्मकाभ्यां यम हन इत्येताभ्यां धातुभ्यामात्मनेपदं वति ॥ उदा०—आयच्छते आयच्छेते। आहते, आघ्नाते ॥

भाषार्थः—[आङः] आङ् पूर्वक अकर्मक [यमहनः] यम् और धातुओं से आत्मनेपद होता है ॥

समो गम्यृच्छिभ्याम् ॥१।३।२९॥

समः ५।१॥ गम्यृच्छिभ्याम् ५।२॥ स०—गमिश्च ऋच्छिश्च यृच्छी ताभ्यां...इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्मकात्, आत्मनेपदम् ॥ र्थः—समूपूर्वाभ्यामकर्मकाभ्यां गम् ऋच्छि इत्येताभ्यां धातुभ्यामा-नेपदं भवति ॥ उदा०—सङ्गच्छते, समृच्छते ॥

भाषार्थः—[समः] सम् पूर्वक अकर्मक [गम्यृच्छिभ्याम्] गम ऋच्छ धातुओं से आत्मनेपद होता है ॥

उदा०—सङ्गच्छते (साथ-साथ चलता है)। समृच्छते (प्राप्त है) ॥ सङ्गच्छते की सिद्धि परि० १।३।२८ के आयच्छते के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

समान जानें। केवल यहाँ सम् के मकार को नश्चापदान्तस्य (८।३।२४) से अनुस्वार तथा अनुस्वारस्य ययि० (८।४।५७) अनुस्वार को परसवर्ण 'ङ्' हो गया है, यही विशेष है॥

निसमुपविभ्यो ह्वः ॥१।३।२९॥

निसमुपविभ्यः ५।३॥ ह्वः ५।१॥ स०—नि च सम् च उप च वि च निसमुपवयस्तेभ्यः·····इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—आत्मनेपदम्॥ नि, सम्, उप, वि इत्येवंपूर्वाद् ह्वेञ्धातोरात्मनेपदं भवति॥ निह्वयते, संह्वयते, उपह्वयते, विह्वयते॥

भाषार्थ:—[*निसमुपविभ्यः*] नि, सम्, उप तथा वि पूर्वक ह्वेञ् धातु से आत्मनेपद होता है॥

ह्वेञ् के ञित् होने से कर्त्रभिप्राय विषय में आत्मनेपद यहाँ अकर्त्रभिप्रायविषय में भी आत्मनेपद हो जाय इसलिये है। ञित् धातुओं में आगे भी यही प्रयोजन समझ चाहिये॥

उदा०—निह्वयते (निश्चयरूप से बुलाता है) संह्वयते प्रकार बुलाता है)। उपह्वयते (समीप बुलाता है)। (विशेष रूप से बुलाता है)॥

नि ह्वे अ ते इस अवस्था में एचोयवायावः से अयादेश होकर यते आदि बन गये हैं। कुछ भी विशेष नहीं है॥

यहाँ से 'ह्वः' की अनुवृत्ति १।३।३१ तक जाती है॥

स्पर्धायामाङः ॥१।३।३१॥

स्पर्धायाम् ७।१॥ आङः ५।१॥ अनु०—ह्वः, आत्मनेपदम्॥ स्पर्धायां विषये, आङ्पूर्वाद् ह्वेञ्धातोरात्मनेपदं भवति॥ मल्लो मल्लमाह्वयते। छात्रश्छात्रमाह्वयते॥

भाषार्थ:—[*स्पर्धायाम्*] स्पर्धा विषय में [*आङः*] आङ् धातु से आत्मनेपद होता है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—मल्लो मल्लमाह्वयते (एक मल्ल पहलवान दूसरे मल्ल को कुश्ती के लिये ललकारता है, अर्थात् स्पर्धा करता है) छात्रश्छात्रमाह्वयते (एक छात्र दूसरे छात्र को स्पर्धा से ललकारता है) ॥

गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः ॥१।३।३२॥

गन्धना....योगेषु ७।३॥ कृञः ५।१॥ स०—गन्धनञ्च, अवक्षेपणञ्च, सेवनञ्च, साहसिक्यञ्च, प्रतियत्नश्च प्रकथनञ्च उपयोगश्च, गन्धना...योगास्तेषु....इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—आत्मनेपदम्॥ अर्थः—गन्धनम्=सूचनम्, अवक्षेपणं=भर्त्सनम्, सेवनं=सेवा, साहसिक्यं=साहसिकं कर्म, प्रतियत्नः=गुणान्तराधानम्, प्रकथनं=प्रकर्षेण कथनम्, उपयोगः=धर्मार्थे विनियोग इत्येतेष्वर्थेषु वर्त्तमानात् कृञ् धातोरात्मनेपदं भवति॥ उदा०—गन्धने—उत्कुरुते, उदाकुरुते। अवक्षेपणे—श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते। सेवने—आचार्यमुपकुरुते शिष्यः। साहसिक्ये—परदारान् प्रकुरुते। प्रतियत्ने—एधोदकस्योपस्कुरुते, काण्डं गुडस्योपस्कुरुते। प्रकथने—जनापवादान् प्रकुरुते, गाथाः प्रकुरुते। उपयोगे—शतं प्रकुरुते, सहस्रं प्रकुरुते॥

भाषार्थः—[गन्धना...योगेषु] गन्धन=चुगली करना, अवक्षेपण=धमकाना, सेवन=सेवा करना, साहसिक्य=जबरदस्ती करना, प्रतियत्न=किसी गुण को भिन्न गुण में बदलना, प्रकथन=बढ़ा चढ़ाकर कहना, तथा उपयोग=धर्मादिकार्य में लगाना, इन अर्थों में वर्त्तमान [कृञः] कृञ् धातु से आत्मनेपद होता है॥ उदा०—उत्कुरुते, उदाकुरुते (चुगली करता है)। श्येनो वर्त्तिकामुदाकुरुते (श्येन=बाज पक्षी बत्तख को भर्त्सना करता है अर्थात् उठाकर ले जाना चाहता है) आचार्यमुपकुरुते शिष्यः (शिष्य आचार्य की सेवा करता है) परदारान् प्रकुरुते (पराई स्त्री पर दुस्साहस करता है) एधोदकस्योपस्कुरुते (ईंधन जल के गुण को बदलता है) काण्डं गुडस्योपस्कुरुते (सुकलाई=भिण्डी का पौधा गुड़ के गुण को बदलता है) जनापवादान् प्रकुरुते (लोगों की बुराई को अच्छी तरह बढ़ा चढ़ाकर कहता है) गाथाः प्रकुरुते

भिण्डी के पौधे को गुड़ बनाते समय रस में डालकर गुड़ साफ किया जाता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(कथायें अच्छी प्रकार करता है) शतं प्रकुरुते (सौ रुपये में लगाता है) सहस्रं प्रकुरुते ॥

यहाँ से 'कृञः' की अनुवृत्ति १।३।३५ तक जाती है ॥

अधेः प्रसहने ॥१।३।३३॥

अधेः ५।१॥ प्रसहने ७।१॥ अनु०—कृञः आत्मनेपदम् ॥ प्रसहनेऽर्थे वर्त्तमानादधिपूर्वात् कृञ्धातोरात्मनेपदं भवति ॥ शत्रुमधिकुरुते ॥

भाषार्थः—[प्रसहने] प्रसहन अर्थ में वर्त्तमान [अधेः] पूर्वक कृञ् धातु से आत्मनेपद होता है ॥ प्रसहन किसी को हरा देने को कहते हैं ॥

उदा०—शत्रुमधिकुरुते (शत्रु को वश में करता है) ॥

वेः शब्दकर्मणः ॥१।३।३४॥

वेः ५।१॥ शब्दकर्मणः ५।१॥ स०—शब्दः कर्म यस्य स शब्दकर्मा, शब्दकर्मणः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—कृञः, आत्मनेपदम् ॥ विपूर्वात् शब्दकर्मणः कृञ्धातोरात्मनेपदं भवति ॥ उदा०—विकुरुते स्वरान् । ध्वाङ्क्षो विकुरुते स्वरान् ॥

भाषार्थः—[शब्दकर्मणः] शब्द कर्म वाले [वेः] विपूर्वक कृञ् आत्मनेपद होता है ॥

उदा०—क्रोष्टा विकुरुते स्वरान् (गीदड़ स्वरों को बिगाड़ कर बोलता है) ध्वाङ्क्षो विकुरुते स्वरान् (कौवा स्वरों को बिगाड़ कर बोलता है)। उदाहरणों में 'विकुरुते' का 'स्वर' शब्दकर्म आत्मनेपद हो गया है ॥

यहाँ से वेः की अनुवृत्ति १।३।३५ तक जाती है ॥

अकर्मकाच्च ॥१।३।३५॥

अकर्मकात् ५।१॥ च अ० ॥ अनु०—वेः कृञः आत्मनेपदम् ॥ अर्थः—विपूर्वाद् अकर्मकात् कृञ्धातोरात्मनेपदं भवति ॥ विकुर्वते सैन्धवाः । ओदनस्य पूर्णाश्छात्रा विकुर्वते ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ:—विपूर्वक [*अकर्मकात्*] अकर्मक कृञ् धातु से [च] भी ात्मनेपद होता है ॥ वि+कुरु+झ, पूर्ववत् होकर झ को *आत्मनेपदेष्वनत:* ७।१।५) से अत् आदेश होकर तथा *इको यणचि* (६।१।७४) से यणादेश ाकर 'विकुर्वते' बना ॥ उदा०—विकुर्वते सैन्धवा: (अच्छी प्रकार सिखाये ए घोड़े चौकड़ी मारते हैं)। ओदनस्य पूर्णाश्छात्रा: विकुर्वते (भरपेट ावल खाकर छात्र व्यर्थ कूद फाँद करते हैं) ॥

सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः ॥१।३।३६॥

सम्माननोत्स.....व्ययेषु ७।३॥ नियः ५।१॥ स०—सम्माननञ्च त्सञ्जनं च, आचार्यकरणं च, ज्ञानं च, भृतिश्च, विगणनं च, व्ययश्च म्माननोत्.....व्ययास्तेषु इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—आत्मनेपदम् ॥ र्थः-सम्माननं = पूजनम्, उत्सञ्जनं = उत्क्षेपणम् आचार्यकरणं = आचार्य-क्रिया, ज्ञानं = तत्त्वनिश्चयः, भृतिः = वेतनम्, विगणनं = ऋणादेर्निर्यात-नम्, व्ययः = धर्मादिषु विनियोगः, इत्येतेष्वर्थेषु वर्तमानाद् णीञ् ापणे धातोरात्मनेपदं भवति। उदा०—सम्माननम्—मातरं सन्नयते। यते आचार्यो वेदेषु। उत्सञ्जनं—दण्डमुन्नयते, माणवकमुदानयते। ाचार्यकरणं—माणवकमुपनयते। ज्ञान—नयते बुद्धिः वेदेषु। भृतिः—र्मकरान् उपनयते। विगणनं—मद्राः करं विनयन्ते। व्ययः—शतं विनयते, सहस्रं विनयते ॥

भाषार्थ:—[*सम्माननं....व्ययेषु*] सम्माननं = पूजा, उत्सञ्जन = छालना, आचार्यकरण = आचार्यक्रिया, ज्ञान = तत्त्वनिश्चय, विग-न = ऋणादि का चुकाना, व्यय = धर्मादि कार्यों में व्यय करना इन र्थों में वर्तमान [*नियः*] णीञ् धातु से आत्मनेपद होता है ॥

उदा०—सम्माननं—मातरं सन्नयते (माता की पूजा करता है), यते आचार्यो वेदेषु (आचार्य शिष्य की बुद्धि को वेदों में प्रवृत्त राता है, वह उसमें प्रवृत्त होकर सम्मान को प्राप्त होता है)। त्सञ्जन—दण्डमुन्नयते (दण्ड को उछालता है), माणवकमुदानयते (बच्चे ो उछालता है)। आचार्यकरण—माणवकमुपनयते (बच्चे का उपनयन रता है)। ज्ञान—नयते बुद्धिः वेदेषु (वेद विषय में बुद्धि चलती है)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भृति—कर्मकरानुपनयते (नौकरों को वेतन देकर अपने अनुकूल है)। विगणन—मद्राः करं विनयन्ते (मद्र देशवासी राजा को हैं)। व्यय—शतं विनयते, सहस्रं विनयते (धर्म कार्य में सौ देता है, वा सहस्र रुपये देता है)।

यहाँ से 'नियः' की अनुवृत्ति १।३।३७ तक जायगी॥

कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि ॥१।३।३७॥

कर्तृस्थे ७।१॥ च अ०॥ अशरीरे ७।१॥ कर्मणि ७।१॥ स०—तिष्ठतीति, कर्तृस्थः तत्पुरुषः। न शरीरम् इति अशरीरम् तस्मिन् नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—नियः, आत्मनेपदम्॥ अर्थः—ऽशरीरे कर्मणि च सति णीञ्धातोरात्मनेपदं भवति॥ उदा०—विनयते, मन्युं विनयते॥

भाषार्थः—[कर्तृस्थे] कर्ता में स्थित [अशरीरे] शरीर [कर्मणि] कर्म होने पर [च] भी णीञ् धातु से आत्मनेपद है॥ उदा०—क्रोधं विनयते, मन्युं विनयते (क्रोध को दूर करता है, मन्यु को दूर करता है)। यहाँ पर क्रोध और मन्यु णीञ् शरीरभिन्न कर्म हैं, तथा कर्त्ता में स्थित भी हैं, अतः णीञ् आत्मनेपद हो गया॥

वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः ॥१।३।३८॥

वृत्तिसर्गतायनेषु ७।३॥ क्रमः ५।१॥ स०—वृत्तिश्च तायनञ्च=वृत्तिसर्गतायनानि तेषु वृत्तिसर्गतायनेषु, इतरेतर अनु०—आत्मनेपदम्॥ अर्थः—वृत्तिः=अप्रतिबन्धः, सर्गः=उत्सा तायनं=विस्तारः, इत्येतेष्वर्थेषु वर्त्तमानात् 'क्रम' धातोरात्मनेपदं भवति उदा०—वृत्तिः—मन्त्रेषु अस्य क्रमते बुद्धिः। सर्गः—अध्ययनाय क्रमते। तायनं—अस्मिन् शास्त्राणि क्रमन्ते॥

भाषार्थः—[वृत्तिसर्गतायनेषु] वृत्ति=अनिरोध (बिना रुके चलना) सर्ग=उत्साह, तायन=विस्तार, इन अर्थों में [क्रमः] क्रम धातु से आत्मनेपद होता है॥ उदा०—वृत्ति—मन्त्रेषु क्रमते बुद्धिः (मन्त्रों में इसकी बुद्धि खूब चलती है, रुकती नहीं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सर्ग-व्याकरणाध्ययनाय क्रमते (व्याकरण पढ़ने में उत्साहित होता है)। तायनं-अस्मिन् शास्त्राणि क्रमन्ते (इसमें शास्त्र समृद्ध होते हैं)॥ सिद्धि पूर्ववत् ही है॥ यहाँ से 'क्रमः' की अनुवृत्ति १।३।४३ तक जायगी, तथा 'वृत्तिसर्गतायनेषु' की अनुवृत्ति १।३।३९ तक जायेगी॥

उपपराभ्याम् ॥१।३।३९॥

उपपराभ्याम् ५।२॥ स०—उप च परा च उपपरौ, ताभ्यामुपपराभ्याम्, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः आत्मनेपदम्॥ अर्थः—उपपरापूर्वाद् वृत्तिसर्गतायनेष्वर्थेषु वर्त्तमानात् क्रम-धातोरात्मनेपदं भवति॥ उदा०—उपक्रमते, पराक्रमते॥

भाषार्थः—[उपपराभ्याम्] उप परा पूर्वक क्रम धातु से वृत्ति सर्ग तथा तायन अर्थों में आत्मनेपद होता है, (और कोई उपसर्ग पूर्व में हो तो नहीं होता)॥ उदा०—उपक्रमते (उपक्रम अर्थात् प्रारम्भ करता है)। पराक्रमते (पराक्रम अर्थात् पुरुषार्थ करता है)॥

आङ उद्गमने ॥१।३।४०॥

आङः ५।१॥ उद्गमने ७।१॥ अनु०—क्रमः, आत्मनेपदम्॥ अर्थः—आङ्पूर्वात् क्रमधातोरुद्गमनेऽर्थे वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति॥ उदा०—आदित्य आक्रमते, आक्रमते चन्द्रमाः। आक्रमन्ते ज्योतींषि॥

भाषार्थः—[आङः] आङ् पूर्वक [उद्गमने] उद्गमन=उदय होने अर्थ में क्रमु धातु से आत्मनेपद होता है॥

उदा०—आदित्य आक्रमते (सूर्य उदय होता है)। आक्रमते चन्द्रमाः (चन्द्रमा उदय होता है)। आक्रमन्ते ज्योतींषि (तारागण उदय होते हैं)॥

वेः पादविहरणे ॥१।३।४१॥

वेः ५।१॥ पादविहरणे ७।१॥ स०—पादयोः विहरणं पादविहरणं तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—क्रमः, आत्मनेपदम्॥ अर्थः—वेः पूर्वात् क्रमधातोः पादविहरणेऽर्थे वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति॥ उदा०—सुष्ठु विक्रमते वाजी, साधु विक्रमते वाजी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*वेः*] विपूर्वक [*पादविहरणे*] पादविहरण=पैर अर्थ में वर्त्तमान क्रम धातु से आत्मनेपद होता है॥ उदा०—विक्रमते वाजी, साधु विक्रमते वाजी, (घोड़ा सुन्दर कदम उठाता

प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ॥१।३।४२॥

प्रोपाभ्यां ५।२॥ समर्थाभ्याम् ५।२॥ *स०*—प्रोपाभ्यामि तरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—क्रमः, आत्मनेपदम्॥ *अर्थः*—प्र उप पूर्वात् क्रमधातोरात्मनेपदं भवति, यदि तौ 'प्र उप' उपसर्गौ स समानार्थौ, तुल्यार्थौ भवतः॥ आदिकर्मण्यर्थेऽनयोस्तुल्यार्थता उदा०—प्रक्रमते भोक्तुम्। उपक्रमते भोक्तुम्॥

भाषार्थः—[*प्रोपाभ्यां*] प्र उप पूर्वक क्रम धातु से आत्मनेप है, यदि वह प्र उप उपसर्ग [*समर्थाभ्याम्*] समानार्थक=तुल्य अर्थ अर्थात् दोनों का एक अर्थ हो तो॥ आदिकर्म अर्थात् कार्य की प्रा अवस्था को कहने में दोनों तुल्यार्थक होते हैं॥ उदा०—भोक्तुम् (भोजन करना आरम्भ करता है)। उपक्रमते (भोजन करना आरम्भ करता है)॥

१ अनुपसर्गाद्वा ॥१।३।४३॥

अनुपसर्गात् ५।१॥ वा अ०॥ *स०*—न उपसर्ग इति अनु नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—क्रमः, आत्मनेपदम्॥ *अर्थः*—अनुपस उपसर्गरहितात् क्रमधातोर्वाऽऽत्मनेपदं भवति॥ उदा० क्रामति॥

भाषार्थः—[*अनुपसर्गात्*] उपसर्ग रहित क्रम धातु से [*वा*] विकल्प करके होता है। सिद्धि पूर्ववत् है, केवल पर में क्रमः परस्मैपदेषु (७।३।७६) से दीर्घ होकर 'क्रामति' उदा०—क्रमते, क्रामति (चलता है)॥

अपह्नवे ज्ञः ॥१।३।४४॥

अपह्नवे ७।१॥ ज्ञः ५।१॥ *अनु०*—आत्मनेपदम्॥ *अर्थः*—पलापः, तस्मिन् वर्त्तमानात् ज्ञा-धातोरात्मनेपदं भवति॥ उदा० अपजानीते। सहस्रम् अपजानीते॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*अपह्नवे*] अपह्नव अर्थात् मिथ्या भाषण अर्थ में र्त्तमान [*ज्ञः*] ज्ञा धातु से आत्मनेपद होता है ॥ *उदा०*—शतम् पजानीते (सौ रुपये के लिए झूठ बोलता है)। सहस्रम् अपजानीते हजार रुपये के लिए झूठ बोलता है) ॥ यहाँ से "ज्ञः" की अनुवृत्ति ।३।४६ तक जायगी ॥

अकर्मकाच्च ॥१।३।४५॥

अकर्मकात् ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—ज्ञः, आत्मनेपदम्। *अर्थः*—कर्मकात् ज्ञा-धातोरात्मनेपदं भवति ॥ *उदा०*—सर्पिषो जानीते, धुनो जानीते ॥

भाषार्थः—[*अकर्मकात्*] अकर्मक ज्ञा धातु से [च] भी आत्मनेद होता है ॥ सिद्धि पूर्ववत् है। सर्पिषः, मधुनः में करण में षष्ठी, *ोऽविदर्थस्य करणे* (२।३।५१) से हुई है ॥ *उदा०*—सर्पिषो जानीते घी समझकर प्रवृत्त होता है)। मधुनो जानीते। (शहद समझ र प्रवृत्त होता है) ॥

संप्रतिभ्यामनाध्याने ॥१।३।४६॥

संप्रतिभ्याम् ५।२॥ अनाध्याने ७।१॥ *स०*—सम् च प्रति च, म्प्रती ताभ्याम् सम्प्रतिभ्याम्, इतरेतरद्वन्द्वः। न आध्यानम् इति नाध्यानम्, तस्मिन् अनाध्याने, नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—ज्ञः ात्मनेपदम् ॥ *अर्थः*—सम् प्रति इत्येवं पूर्वाद् अनाध्यानेऽर्थे वर्त्तमानाद् ा धातोरात्मनेपदं भवति ॥ *उदा०*—शतं संजानीते, सहस्रं संजानीते, हस्रं प्रतिजानीते ॥

भाषार्थः—[*सम्प्रतिभ्याम्*] सम् प्रति पूर्वक ज्ञा धातु से [*अनाध्याने*] नाध्यान अर्थात् उत्कण्ठा पूर्वक स्मरण अर्थ में वर्त्तमान न हो तो ात्मनेपद होता है ॥ पूर्वसूत्र में अकर्मक से आत्मनेपद का विधान किया था, यहाँ पर सम् प्रति पूर्वक सकर्मक से भी हो जाये इसलिए यह त्र है ॥ *उदा०*—शतं संजानीते, सहस्रं संजानीते (सौ वा हजार की तिज्ञा करता है)। शतं प्रतिजानीते, सहस्रं प्रतिजानीते (सौ वा जार की प्रतिज्ञा करता है) ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भासनोपसम्भाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः ॥१।३।४८॥

भासनोप....मन्त्रणेषु ७।३॥ वदः ५।१॥ स०—भासनञ्च उपसं च ज्ञानञ्च यत्नश्च विमतिश्च उपमन्त्रणञ्च, भासनोप.....मन्त्र तेषु इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—आत्मनेपदम्॥ अर्थः—भासनं= उपसंभाषा=उपसान्त्वनम्, ज्ञानं=सम्यगवबोधः, यत्नः= विमतिः=नानामतिः, उपमन्त्रणं=एकान्ते भाषणं, इत्येतेषु वर्त्तमानाद् वदधातोरात्मनेपदं भवति॥ उदा०—भासनं-शास्त्रे उपसम्भाषा-कर्मकरानुपवदते। ज्ञानं—व्याकरणे वदते। यत्नः—क्षेत्रे गेहे वदते। विमतिः—क्षेत्रे विवदन्ते, गेहे विवदन्ते। उपमन्त्रणं राजानम् उपवदते मन्त्री॥

भाषार्थः—[*भासन...णेषु*] भासन आदि अर्थों में [*वदः*] वद धातु से आत्मनेपद होता है॥ उदा०—भासने वदते (शास्त्र में उसकी बुद्धि प्रकाशित होती है) उपसंभाषा-करानुपवदते (नौकरों को सान्त्वना देता है)। ज्ञान-व्याकरणे (व्याकरण का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करता है) यत्न—क्षेत्रे गेहे वदते (घर में वा क्षेत्र में पुरुषार्थ करता है) विमति—क्षेत्रे गेहे विवदन्ते (खेत में या घर में विवाद करते हैं)। उपमन्त्रण राजानम् उपवदते मन्त्री (राजा से मन्त्री एकान्त में सलाह है)॥ यहाँ से 'वदः' की अनुवृत्ति १।३।५० तक जायगी॥

व्यक्तवाचां समुच्चारणे ॥१।३।४८॥

व्यक्तवाचां ६।३॥ समुच्चारणे ७।१॥ स०—व्यक्ता वाग् व्यक्तवाचः, तेषां व्यक्तवाचां, बहुव्रीहिः। समुच्चारणे इत्यत्र *प्रादयः* (२।२।१८) इत्यनेन तत्पुरुषः॥ अनु०—वदः, आत्मनेपदम्॥ अर्थः—व्यक्तवाचां=स्पष्टवाचां समुच्चारणे=सहोच्चारणेऽर्थे वर्त्तमानाद् वदधातोरात्मनेपदं भवति॥ उदा०—संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः। क्षत्रियाः॥

भाषार्थः—[*व्यक्तवाचाम्*] स्पष्टवाणी के [*समुच्चारणे*] रण=एक साथ उच्चारण करने अर्थ में वर्त्तमान 'वद'

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ात्मनेपद हो जाता है ॥ उदा०—सम्प्रवदन्ते ब्राह्मणाः (ब्राह्मण रस्पर मिलकर उच्चारण करते हैं)। संप्रवदन्ते क्षत्रियाः। (क्षत्रिय लकर उच्चारण करते हैं)। यहाँ से "*व्यक्तवाचां समुच्चारणे*" सारा सूत्र ।३।५० तक जायगा ॥

अनोरकर्मकात् ॥१।३।४९॥

अनोः ५।१॥ अकर्मकात् ५।१॥ अनु०—व्यक्तवाचां, समुच्चारणे दः, आत्मनेपदम् ॥ *अर्थ* :—अनुपूर्वात् अकर्मकात् वद-धातोर्व्यक्तवाचां मुच्चारणेऽर्थे वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति ॥ उदा०—अनुवदते कठः लापस्य। अनुवदते मौद्गः पैप्पलादस्य ॥

भाषार्थ :—[*अनोः*] अनु पूर्वक [*अकर्मकात्*] अकर्मक वद धातु से व्यक्तवाणी के एक साथ उच्चारण करने अर्थ में आत्मनेपद होता है ॥ उदा०—अनुवदते कठः कलापस्य। अनुवदते मौद्गः प्पलादस्य (जैसे कलाप शाखाध्यायी बोलता है, वैसे ही उसके पीछे ठ बोलता है, जैसे पैप्पलाद शाखा वाला बोलता है, वैसे ही उसके छे मुद्ग शाखा वाला बोलता है) ॥

विभाषा विप्रलापे ॥१।३।५०॥

विभाषा १।१॥ विप्रलापे ७।१॥ अनु०—व्यक्तवाचां, समुच्चारणे, दः, आत्मनेपदम् ॥ *अर्थ*:—विप्रलापे = विरुद्धकथनात्मके, व्यक्तवाचां मुच्चारणेऽर्थे वर्त्तमानाद् वद-धातोरात्मनेपदं वा भवति ॥ उदा०—प्रवदन्ते साम्वत्सराः। विप्रवदन्ति साम्वत्सराः। विप्रवदन्ते, प्रवदन्ति वा वैयाकरणाः ॥

भाषार्थ :—[*विप्रलापे*] परस्पर विरुद्ध कथन वाली व्यक्तवाणी के ह उच्चारण में वर्त्तमान वद धातु से आत्मनेपद [*विभाषा*] विकल्प रके होता है, पक्ष में परस्मैपद होता है ॥ पूर्वसूत्र (व्यक्तवाचां मुच्चारणे) से नित्य आत्मनेपद प्राप्त था, यहाँ विकल्प कर दिया ॥ दा०—विप्रवदन्ते साम्वत्सराः, विप्रवदन्ति साम्वत्सराः। (ज्योतिषी ग परस्पर विरुद्ध कथन करते हैं) विप्रवदन्ते, विप्रवदन्ति वा याकरणाः (वैयाकरण लोग परस्पर खण्डन करते हैं) ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अवाद्ग्रः ॥१।३।५१॥

अवात् ५।१॥ ग्रः ५।१॥ अनु०—आत्मनेपदम्॥ अर्थः—'गॄ निगरणे' तुदादौ पठ्यते, तस्येदं ग्रहणम्। अवपूर्वात् 'गॄ' अस्माद् धातोरात्मनेपदं भवति॥ उदा०—अवगिरते, अवगिरन्ते॥

भाषार्थः—[अवात्] अवपूर्वक [ग्रः] 'गॄ निगरणे' धातु से आत्मनेपद होता है॥ उदा०—अवगिरते, (निगलता है)॥

पूर्ववत् गॄ+शप्+त होकर तुदादिभ्यः शः (३।१।७७) से शप् के स्थान में श होकर ऋत इद्धातोः (७।१।१००) से ऋ को इर् उरण्रपरः (१।१।५०) से रपरत्व होकर अव गिर् अ त=अवगिरते बन गया॥ यहाँ से 'ग्रः' की अनुवृत्ति १।३।५२ तक जायगी॥

समः प्रतिज्ञाने ॥१।३।५२॥

समः ५।१॥ प्रतिज्ञाने ७।१॥ अनु०—ग्रः, आत्मनेपदम्॥ अर्थः—सम् पूर्वात् प्रतिज्ञाने=प्रतिज्ञाऽर्थे वर्त्तमानाद् "गॄ" धातोरात्मनेपदं भवति॥ उदा०—शतं सङ्गिरते। नित्यं शब्दं सङ्गिरते॥

भाषार्थः—[समः] सम् पूर्वक गॄ धातु से [प्रतिज्ञाने] स्वीकार अर्थ में आत्मनेपद होता है॥ उदा०—शतं संगिरते (सौ स्वीकार करता है) नित्यं शब्दं संगिरते (शब्द नित्य होता है स्वीकार करता है)॥

उदश्चरः सकर्मकात् ॥१।३।५३॥

उदः ५।१॥ चरः ५।१॥ सकर्मकात् ५।१॥ अनु०—आत्मनेपदम्॥ अर्थः—उत् पूर्वात् सकर्मकात् चर्-धातोरात्मनेपदं भवति॥ गेहमुच्चरते। कुटुम्बमुच्चरते। गुरुवचनमुच्चरते॥

भाषार्थः—[उदः] उत् पूर्वक [सकर्मकात्] सकर्मक चर धातु से आत्मनेपद होता है॥ यहाँ गेहम्, कुटुम्बं धातु के कर्म हैं अतः सकर्मक चर धातु है॥ उदा०—गेहम्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(घर की बात न मान कर चला जाता है) कुटुम्बमुच्चरते (कुटुम्ब की बात न मान कर चला जाता है) गुरुवचनमुच्चरते (गुरुवचन न मान कर चला जाता है)। उत् चरते यहाँ *स्तोःश्चुना श्चुः* (८।४।३९) से त् को च् होकर उच्चरते बना। शेष पूर्ववत् ही है ॥

यहाँ से "चरः" पद की अनुवृत्ति १।३।५४ तक जाती है ॥

समस्तृतीयायुक्तात् ॥१।३।५४॥

समः ५।१॥ तृतीयायुक्तात् ५।१॥ *स०*—तृतीयया युक्तः तृतीया-युक्तः, तस्मात् तृतीयातत्पुरुषः ॥ *अनु०*—चरः आत्मनेपदम् ॥ *अर्थः*—समूपूर्वात् तृतीयायुक्तात् चर्धातोरात्मनेपदं भवति॥ *उदा०*—अश्वेन सञ्चरते ॥

भाषार्थः—[*तृतीयायुक्तात्*] तृतीया विभक्ति से युक्त [*समः*] सम् पूर्वक चर् धातु से आत्मनेपद होता है ॥ *उदा०*—अश्वेन सञ्चरते (घोड़े से चलता है) ॥

यहाँ से *"समस्तृतीयायुक्तात्"* की अनुवृत्ति १।३।५५ तक जायेगी ॥

दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे ॥१।३।५५॥

दाणः ५।१॥ च अ० ॥ सा १।१॥ चेत् अ० ॥ चतुर्थ्यर्थे ७।१॥ *अनु०*—समस्तृतीयायुक्तात्, आत्मनेपदम् ॥ *अर्थः*—समूपूर्वात् तृतीयायुक्तात् 'दाण् दाने' धातोरात्मनेपदं भवति, सा चेत् तृतीया चतुर्थ्यर्थे भवति ॥ *उदा०*—स्वयं ह ओदनं भुङ्क्ते उपाध्यायेन सक्तून् संप्रयच्छते ॥ *अशिष्टव्यवहारे तृतीया चतुर्थ्यर्थे भवतीति वक्तव्यम्*, इत्यनेन वार्त्तिकेनात्र चतुर्थ्यर्थे तृतीया भवति ॥

भाषार्थः—तृतीया से युक्त सम् पूर्वक [*दाणः*] दाण् धातु से [च] भी आत्मनेपद होता है, [चेत्] यदि [*सा*] वह तृतीया [*चतुर्थ्यर्थे*] चतुर्थी के अर्थ में हो तो ॥ चतुर्थी के अर्थ में तृतीया उपरिलिखित वार्त्तिक से होती है ॥ दाण् को यच्छ आदेश *पाघ्राध्मास्थाम्ना०* (७।३।७८) सूत्र से शित् परे रहते हुआ है। शेष पूर्ववत् ही समझें ॥

CC-0; Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—स्वयं ह ओदनं भुङ्क्ते उपाध्यायेन सक्तून् संप्रयच्छते अपने आप चावल खाता है और उपाध्याय को सत्तू देता है)॥

उपाद्यमः स्वकरणे ॥१।३।५६॥

उपात् ५।१॥ यमः ५।१॥ स्वकरणे ७।१॥ अनु०—आत्मनेपदम्॥ उपपूर्वात्, स्वकरणे = पाणिग्रहणे = विवाहेऽर्थे वर्त्तमानाद् यमो रात्मनेपदं भवति॥ उदा०—कन्यामुपयच्छते॥

भाषार्थः—[स्वकरणे] स्वकरण अर्थात् पाणिग्रहण अर्थ में मान [उपात्] उप पूर्वक [यमः] यम् धातु से आत्मनेपद होत उदा०—कन्यामुपयच्छते (कन्या से विवाह करता है उप+यम्+शप्+त इस अवस्था में इषुगमियमां छः (७।३।७७) आदेश अन्त्य अल् मकार के स्थान में होकर छे च (६।१।७ तुक् का आगम होकर उप+य+त्+छ्+अ+त बना। स्तोश्चु (८।४।३९) से त् को च् तथा शेष कार्य पूर्ववत् होकर उपयच्छते बन गया॥

ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः ॥१।३।५७॥

ज्ञाश्रुस्मृदृशां ६।३॥ सनः ५।१॥ स०—ज्ञा च श्रु च स्मृ च दृश् ज्ञाश्रुस्मृदृशः तेषां ज्ञाश्रुस्मृदृशां, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—आ पदम्॥ अर्थः—ज्ञा, श्रु, स्मृ, दृश् इत्येतेषां सन्नन्तानां आ भवति॥ उदा०—धर्मं जिज्ञासते। गुरुं शुश्रूषते। नष्टं सुस्मूर्षते नृपं दिदृक्षते॥

भाषार्थः—[ज्ञाश्रुस्मृदृशाम्] ज्ञा, श्रु, स्मृ, दृश् इन धातु [सनः] सन्नन्त से परे आत्मनेपद होता है॥ ये धातुयें परो थीं अतः इन्हें पूर्ववत्सनः (१।३।६२) से आत्मनेपद नहीं प्राप्त थ यह सूत्र बनाया॥ उदा०—धर्मं जिज्ञासते (धर्म को जानने की करता है)। गुरुं शुश्रूषते (गुरु वचन को सुनने की इच्छा हैं)। नष्टं सुस्मूर्षते (नष्ट हुये को स्मरण करना चाहता है। दिदृक्षते (राजा को देखने की इच्छा करता है)॥ यहाँ से अनुवृत्ति १।३।५९ तक जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

नानोर्ज्ञः ॥१।३।५८॥

न० अ० ॥ अनोः ५।१॥ ज्ञः ५।१॥ अनु०—सनः, आत्मनेपदम् ॥ अर्थः—अनुपूर्वात् सन्नन्तात् 'ज्ञा' धातोरात्मनेपदं न भवति। पूर्वेण सूत्रेणात्मनेपदं प्राप्तं तत् प्रतिषिध्यते ॥ उदा०—पुत्रम् अनुजिज्ञासति ॥

भाषार्थः—[अनोः] अनुपूर्वक सन्नन्त [ज्ञः] ज्ञा धातु से आत्मनेपद [न] नहीं होता है। पूर्व सूत्र से आत्मनेपद प्राप्त था, प्रतिषेध कर दिया ॥

उदा०—पुत्रम् अनुजिज्ञासति (पुत्र को अनुमति देना चाहता है) ॥

यहाँ से "न" की अनुवृत्ति १।३।५९ तक जाती है ॥

प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः ॥१।३।५९॥

प्रत्याङ्भ्यां ५।२॥ श्रुवः ५।१॥ स०—प्रति च आङ् च प्रत्याङौ ताभ्यां....इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—न, सनः, आत्मनेपदम्॥ अर्थः—प्रति आङ् इत्येवं पूर्वात् सन्नन्तात् 'श्रु' धातोरात्मनेपदं न भवति ॥ उदा०—प्रतिशुश्रूषति। आशुश्रूषति ॥

भाषार्थः—[प्रत्याङ्भ्याम्] प्रति आङ् पूर्वक सन्नन्त [श्रुवः] श्रु धातु से आत्मनेपद नहीं होता है ॥ ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः (१।३।५७) से सामान्य करके आत्मनेपद प्राप्त था, यहाँ प्रति आङ् पूर्व होने पर निषेध कर दिया है ॥ उदा०—प्रतिशुश्रूषति (बदले में सुनना चाहता है)। आशुश्रूषति (अच्छे प्रकार सुनना चाहता है) ॥

शदेः शितः ॥१।३।६०॥

शदेः ५।१॥ शितः ६।१॥ अनु०—आत्मनेपदम्॥ अर्थः—शित् सम्बन्धी यः शद्लृ धातुः, तस्मादात्मनेपदं भवति ॥ उदा०—शीयते। शीयेते। शीयन्ते ॥

भाषार्थः—[शितः] शित् सम्बन्धी जो [शदेः] 'शद्लृ शातने' धातु उससे आत्मनेपद होता है ॥ उदा०—शीयते (काटता है) शीयेते। शीयन्ते ॥ शद् + शप् + त इस अवस्था में पाघ्राध्मास्था० (७।३।७८) से 'शीय्' आदेश होकर पूर्ववत् शीयते बन जाता है ॥ यहाँ से "शितः" की अनुवृत्ति १।३।६१ तक जाती है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च ॥१।३।६१॥

म्रियतेः ५।१॥ लुङ्लिङोः ७।२॥ च अ० ॥ स०—लुङ् च लिङ् च लुङ्लिङौ तयोः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—शितः, आत्मनेपदम्॥ अर्थः—लुङ्लिङोः शिद्भावी यो "मृङ् प्राणत्यागे" धातुस्तस्मात् पदं भवति ॥ उदा०—अमृत । मृषीष्ट । शित्—म्रियते । म्रियन्ते ॥

भाषार्थः—[लुङ्लिङोः] लुङ् लिङ् लकार में तथा शित् लि जो [म्रियतेः] 'मृङ् प्राणत्यागे' धातु उससे [च] भी आत्म होता है ॥ मृङ् धातु ङित् थी, सो उसे अनुदात्तङित० (१।३।१२ से आत्मनेपद सिद्ध ही था, पुनर्विधान नियमार्थ है कि, इसको विषयों में ही आत्मनेपद हो, सर्वत्र न हो ॥ उदा०—अमृत (वह मर गया, वा मर जावे)। शित्—म्रियते (मरता है)। म्रियन्ते ॥ अमृत, मृषीष्ट की सिद्धि परि० १।२।११ के समान १।२।११ सूत्र से कित्वत् होता है, तथा अमृत में सिच् ह्रस्वादङ्गात् (८।२।२७) से होगा ॥ म्रियते में रिङ् शयग्ल (७।४।२८) से मृङ् के ऋ को रिङ् आदेश होकर अचिश्नुधा (६।४।७७) से इयङ् होकर 'म्रिय् अ त' रहा, पूर्ववत् सब होकर बन गया ।

पूर्ववत् सनः ॥१।३।६२॥

पूर्ववत् अ० ॥ सनः ५।१॥ अनु०—आत्मनेपदम् ॥ पूर्ववत् ॥ अर्थः—सनः पूर्वो यो धातुः 'आत्मनेपदी' तद्वत् सन आत्मनेपदं भवति ॥ उदा०—आस्ते, शेते । अनुदात्तङित पदमित्यनेनात्रात्मनेपदम्, तद्वत् सन्नन्तादपि आसिसिषते, इत्यत्रात्मनेपदं सिध्यति ॥

भाषार्थः—सन् प्रत्यय के आने के पूर्व जो धातु आत्मनेप हो, उससे [सनः] सन्नन्त से भी [पूर्ववत्] पूर्ववत् आत्मनेप है ॥ उदा०—आसिसिषते (बैठने की इच्छा करता है)। (सोने की इच्छा करता है) ॥ यहाँ पर आस् तथा शीङ्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ने से पूर्व आत्मनेपदी थीं, सो सन् प्रत्ययान्त बन जाने पर भी उनसे
त्मनेपद हुआ ॥ यहाँ इतना और समझना चाहिए, कि सन् से पूर्व
आत्मनेपदी उससे आत्मनेपद कह देने पर ये बात स्वयमेव सिद्ध
कि सन् से पूर्व जो परस्मैपदी धातु है, उससे परस्मैपद हो जायगा,
से पिपठिषति। सन्नन्त की सिद्धियाँ पूर्व दिखा ही आये हैं, यहाँ
ल आस् + इट् + सन् ऐसी अवस्था में *अजादेर्द्वितीयस्य* (६।१।२) से
थम एकाच् को द्वित्व न होकर) द्वितीय एकाच् को 'आ सि सि स त'
ा द्वित्व हुआ, यही विशेष है। शेष पूर्ववत् हुआ ॥

आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य ॥१।३।६३॥

आम्प्रत्ययवत् अ० ॥ कृञः ५।१॥ अनुप्रयोगस्य ६।१॥ स०—
म् प्रत्ययो यस्मात् स आम्प्रत्ययः, बहुव्रीहिः ॥ तस्य इव आम्प्रत्ययवत्,
तस्येव (५।१।११५) इत्यनेन वतिः ॥ अनु०—आत्मनेपदम् ॥
ः—अनुप्रयोगस्य कृञ्धातोराम्प्रत्ययवद् आत्मनेपदं भवति ॥
०—ईक्षाञ्चक्रे, ईहाञ्चक्रे ॥

भाषार्थ:—[*आम्प्रत्ययवत्*] जिस धातु से आम् प्रत्यय किया गया
उसके समान ही [*अनुप्रयोगस्य*] पश्चात् अनुप्रयोग की गई [कृञः]
धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥

प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु ॥१।३।६४॥

प्रोपाभ्यां ५।२॥ युजेः ५।१॥ अयज्ञपात्रेषु ७।३॥ स०—प्रोपाभ्या-
त्रेतरेतरद्वन्द्वः। यज्ञस्य पात्राणि, यज्ञपात्राणि षष्ठीतत्पुरुषः। न
त्राणि अयज्ञपात्राणि, तेष्वयज्ञपात्रेषु, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—
मनेपदम् ॥ अर्थः—प्र, उप इत्येवंपूर्वाद् युज्धातोरयज्ञपात्रप्रयोग-
ेआत्मनेपदं भवति ॥ उदा०—प्रयुङ्क्ते, उपयुङ्क्ते ॥

भाषार्थ:—[*अयज्ञपात्रेषु*] अयज्ञ पात्र विषय में [*प्रोपाभ्याम्*]
प पूर्वक [*युजेः*] युजिर् योगे धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

समः क्ष्णुवः ॥१।३।६५॥

समः ५।१॥ क्ष्णुवः ५।१॥ अनु०—आत्मनेपदम् ॥ सम्पूर्वात् 'क्ष्णु तेजने' धातोरात्मनेपदं भवति ॥ उदा०—संक्ष्णुवाते । संक्ष्णुवते ॥

भाषार्थः—[*समः*] सम् पूर्वक [क्ष्णुवः] क्ष्णु तेजने। आत्मनेपद होता है ॥ उदा०—संक्ष्णुते (तीक्ष्ण करता है)। संक्ष्णुवते में *अचि श्नुधातुभ्रुवां०* (६।४।७७) से उवङ् आदेश जाता है।

भुजोऽनवने ॥१।३।६६॥

भुजः ५।१॥ अनवने ७।१॥ स०—अनवन इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः। अनु०—आत्मनेपदम् ॥ अर्थः—'भुज पालनाभ्यवहारयोः' इति पठ्यते, तस्येदं ग्रहणम् ॥ भुजधातोरनवनेऽर्थे वर्तमानात् आत्मनेपदं भवति ॥ उदा०—भुङ्क्ते । भुञ्जाते । भुञ्जते ॥

भाषार्थः—[*अनवने*] अनवन अर्थात् पालन न करने अर्थ में [भुजः] भुज् धातु से आत्मनेपद होता है ॥ उदा० (खाता है) ॥ परि० १।३।६४ के समान ही भुङ्क्ते की सिद्धि

णेरणौ यत्कर्म णौ चेत्स कर्ताऽनाध्याने ॥१।३।६७॥

णेः ५।१॥ अणौ ७।१॥ यत् १।१॥ कर्म १।१॥ णौ ७।१॥ चेत् अ० ॥ सः १।१॥ कर्ता १।१॥ अनाध्याने ७।१॥ स०—न आध्यानम्, तस्मिन्ननाध्याने नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—आत्मनेपदम् ॥ अर्थः—अण्यन्तावस्थायां यत्कर्म, ण्यन्तावस्थायां चेत् = यदि तदेव कर्म, स एव कर्ता तदा तस्माद् ण्यन्ताद्धातोरात्मनेपदं भवति ॥ उदा०—(अण्यन्ते) आरोहति हस्तिनं हस्तिपकाः । (ण्यन्ते) आरोहयते हस्ती स्वयमेव । (अण्यन्ते) उपसिञ्चन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः । (ण्यन्ते) उपसेचयते हस्ती स्वयम् । (अण्यन्ते) पश्यन्ति भृत्या राजानम् । (ण्यन्ते) दर्शयते राजा स्वम् ।

भाषार्थः—[*अणौ*] अण्यन्त अवस्था में [*यत्*] जो [*कर्म*] [*सः*] वही [*चेत्*] यदि [*णौ*] ण्यन्त अवस्था में [*कर्ता*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

रहा हो, तो ऐसी [णेः] ण्यन्त धातु से आत्मनेपद होता है, नाध्याने] आध्यान अर्थ (उत्कण्ठापूर्वक स्मरण करने को कहते हैं) छोड़कर ॥ उदा०—(अण्यन्ते) आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः हावत हाथी पर चढ़ते हैं) यहाँ पर अण्यन्त आङ् पूर्वक रुह् धातु "हस्तिनं" कर्म है ॥ जब हाथी स्वयं झुककर महावत को चढ़ाने चेष्टा करता है, तब उसी वाक्य को "आरोहयते हस्ती स्वयमेव" ाथी स्वयं चढ़वाता है) इस प्रकार बोला जाता है ॥ यहाँ पर ङ्पूर्वक रुह् धातु ण्यन्त है। अण्यन्त अवस्था में उसका कर्म स्तिनं' था, वही यहाँ पर कर्ता हुआ है, अतः ण्यन्त आङ्पूर्वक रुह् ु से आत्मनेपद हो गया ॥ इसी प्रकार और उदाहरणों में भी ाहें ॥ उपसिञ्चन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः (महावत हस्ती को पानी कर नहलाते हैं) उपसेचयते हस्ती स्वयमेव (हाथी स्वयं झुककर वत से पानी डलवाता है)। पश्यन्ति भृत्या राजानम् (नौकर राजा देख रहे हैं) दर्शयते राजा स्वयमेव (राजा इस प्रकार से कर रहा है, नौकर उसे देख लें) इसी प्रकार दूसरे उदाहरणों में भी अण्यन्त स्था के कर्म 'हस्तिनं' और 'राजानम्' ण्यन्त अवस्था में कर्त्ता बन गये, आत्मनेपद हो जाता है। सिद्धि में कुछ भी विशेष नहीं है ॥ हेतुमति ३।१।२६) से णिच् आकर, आ रुह् इ बना, सनाद्यन्ता धातवः १।३२) से पुनः धातु संज्ञा हो कर पूर्ववत् शप् त आकर गुण हो कर रोह् इ अ त' रहा पुनः गुण होकर आ रोहे अ त, अयादेश होकर हयते बना ॥ यहाँ से "णेः" की अनुवृत्ति १।३।७१ तक जायगी ॥

भीस्म्योर्हेतुभये ॥१।३।६८॥

भीस्म्योः ६।२॥ हेतुभये ७।१॥ स०—भी च स्मिङ् च भीस्मी भीस्म्योः, इतरेतरद्वन्द्वः। हेतोर्भयं हेतुभयं तस्मिन्...पञ्चमीषः ॥ अनु०—णेः, आत्मनेपदम् ॥ अर्थः—"ञिभी भये," ङ् ईषद्धसने,' आभ्यां ण्यन्ताभ्यामात्मनेपदं भवति, हेतुभयेऽर्थे ॥ —जटिलो भीषयते, मुण्डो भीषयते। जटिलो विस्मापयते, विस्मापयते ॥

भाषार्थः—[भीस्म्योः] भी स्मि ण्यन्त धातुओं से [हेतुभये] य अर्थ में आत्मनेपद होता है ॥ उदा०—जटिलो भीषयते, मुण्डो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भीषयते (जटा वाला वा मुँडा हुआ डराता है) जटिलो वा मुण्डो विस्मापयते (जटा वाला वा मुँडा हुआ विचित्र प्रकार हँस कर डराता है) ॥

'भीषयते' की सिद्धि परि० १।१।४५ में कर आये हैं। 'विस्मापयते' में णिच् परे रहते *नित्यं स्मयतेः* (६।१।५६) से स्मि को स्मा होकर वि स्मा इ *अर्तिह्री०ली०* (७।३।३६) से पुक् आगम हुआ, 'स्मा पुक् इ' रहा शेष पूर्ववत् हो कर 'विस्मापयते' बन जायेगा ॥

गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने ॥१।३।६९॥

गृधिवञ्च्योः ६।२॥ प्रलम्भने ७।१॥ स०—गृधिश्च वञ्चिश्च गृधिवञ्ची तयोः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—णेः आत्मनेपदम् ॥ अर्थः—'गृधु अभिकांक्षायाम्', 'वञ्चु गतौ' इत्येतयोर्ण्यन्तयोः प्रलम्भनेऽर्थे वर्त्तमानयोरात्मनेपदं भवति ॥ उदा०—माणवकं गर्धयते । माणवकं वञ्चयते ॥

भाषार्थः—[*गृधिवञ्च्योः*] गृधु, वञ्चु ण्यन्त धातुओं से [परे] प्रलम्भन अर्थात् ठगने अर्थ में आत्मनेपद हो जाता है ॥ माणवकं गर्धयते (बच्चे को भूषण आदि का प्रलोभन दे) माणवकं वञ्चयते (बच्चे को ठगता है) ॥

लियः सम्माननशालीनीकरणयोश्च ॥१।३।७०॥

लियः ५।१॥ सम्माननशालीनीकरणयोः ७।२॥ च अ० सम्माननञ्च शालीनीकरणञ्च इति सम्माननशालीनीकरणे तयोः द्वन्द्वः ॥ अनु०—णेः, आत्मनेपदम् ॥ अर्थः—ण्यन्तात् धातोः सम्माननेऽर्थे = पूजने, शालीनीकरणे = अभिभवने चकारात् च वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति ॥ उदा०—जटाभिरालापयते वर्त्तिकामुल्लापयते । प्रलम्भने—कस्त्वामुल्लापयते ॥

भाषार्थः—यहाँ 'लियः' से 'लीङ् श्लेषणे' तथा 'ली श्लेषणे' दो धातुओं का ग्रहण है । [*सम्मानन...करणयोः*] सम्मानन तथा शालीनीकरण [च] चकार से प्रलम्भन अर्थ में वर्त्तमान [*लियः*] ण्यन्त धातु से आत्मनेपद होता है ॥ उदा०—जटाभिरालापयते (जटा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

को प्राप्त होता है)। श्येनो वर्त्तिकामुल्लापयते (बाज पक्षी बत्तख दबाता है)। प्रलम्भने—कस्त्वामुल्लापयते (कौन तुझको ठगता ॥ उत् + लापयते = उल्लापयते में *तोर्लि* (८।४।५९) से त् को ल् हो है। सर्वत्र *विभाषा लीयतेः* (६।१।५०) से आत्व होकर, *हीन्ली०* (७।३।३६) से पुक् आगम हुआ है, शेष पूर्ववत् जानें ॥

मिथ्योपपदात् कृञोऽभ्यासे ॥१।३।७१॥

मिथ्योपपदात् ५।१॥ कृञः ५।१॥ अभ्यासे ७।१॥ स०—मिथ्याशब्द दं यस्य स मिथ्योपपदः तस्मात्, बहुव्रीहिः ॥ अनु० - णेः, आत्मने- ॥ *अर्थः*—मिथ्याशब्दोपपदादभ्यासे = पुनः पुनरावृत्तिकरणेऽर्थे ानात् 'कृञ्' धातोरात्मनेपदं भवति ॥ उदा०—पदं मिथ्या कारयते ॥

भाषार्थः—[*मिथ्योपपदात्*] मिथ्या शब्द उपपद (समीप पद) जसके ऐसी ण्यन्त [*कृञः*] कृञ् धातु से [*अभ्यासे*] अभ्यास ित् बार बार करने अर्थ में आत्मनेपद होता है ॥ उदा०—पदं या कारयते (पद का बार २ अशुद्ध उच्चारण कराता है) ॥

स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ॥१।३।७२॥

स्वरितञितः ५।१॥ कर्त्रभिप्राये ७।१॥ क्रियाफले ७।१॥ स०—ऐतश्च ञश्च स्वरितञौ, तौ इतौ यस्य स स्वरितञित् तस्मात्, द्वन्द्व- बहुव्रीहिः । कर्तुरभिप्रायः, कर्त्रभिप्रायः तस्मिन्—षष्ठीतत्पुरुषः । ाफले इत्यत्रापि षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—आत्मनेपदम् ॥ *अर्थः*— तेतो ञितश्च धातुभ्य आत्मनेपदं भवति क्रियाफलं यदि कर्त्तारम- ति ॥ उदा०—यजते । पचते । सुनुते । कुरुते ॥

भाषार्थः—[*स्वरितञितः*] स्वरितेत् = स्वरित इत् वाली तथा ञकार वाली धातुओं से आत्मनेपद होता है, यदि उस [*क्रियाफले*] क्रिया फल [*कर्त्रभिप्राये*] कर्त्ता को मिलता हो तो ॥

उदा०—यजते (अपने लिये यज्ञ करता है)। पचते (अपने पकाता है) ॥ विदित रहे कि यहाँ 'यजते' का अर्थ यह होगा वह अपने स्वर्गादि फल के लिये यज्ञ करता है, न कि यजमान के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लिये, उसमें यजति होगा। पचते का अर्थ भी इसी प्र
खाने के लिये पकाता है, न कि किसी दूसरे के लिये, उस
होगा। इस प्रकार इन धातुओं से उभयपद (आत्मनेपद
सिद्ध हो जाता है ऐसा समझना चाहिये। कुरुते की सिद्धि
१।३।३२ में देखें, तथा सुनुते की सिद्धि परि० १।१।५ के
समान जानें, केवल यहाँ आत्मनेपद का 'त' आकर टित्
एत्व हो जावेगा॥ जहाँ तक कर्त्रभिप्राय क्रियाफल की
जायेगी वहाँ तक इसी प्रकार आत्मनेपद परस्मैपद दोनों ही
ऐसा समझना चाहिये॥

यहाँ से *'कर्त्रभिप्राये क्रियाफले'* की अनुवृत्ति १।३।७७ तक

अपाद्वदः ॥१।३।७३॥

अपात् ५।१॥ वदः ५।१॥ अनु०—कर्त्रभिप्राये क्रियाफले
पदम्॥ अर्थः—अपपूर्वाद् वद धातोः कर्त्रभिप्राये क्रि
आत्मनेपदं भवति॥ उदा०—धनकामो न्यायमपवदते॥

भाषार्थः—[*अपात्*] अप पूर्वक [वदः] वद धातु से
प्राय क्रियाफल अर्थ में आत्मनेपद होता है॥ उदा०—
न्यायम् अपवदते (धन का लोभी न्याय छोड़कर बोलता है)
का फल कर्त्ता को न मिलता हो तो "अपवदति" बनेगा॥

णिचश्च ॥१।३।७४॥

णिचः ५।१॥ च अ०॥ अनु०—कर्त्रभिप्राये क्रियाफले
पदम्॥ अर्थः—णिजन्ताद्धातोः कर्त्रभिप्राये क्रियाफल
भवति॥ उदा०—कटं कारयते॥

भाषार्थः—[*णिचः*] णिजन्त धातु से कर्त्रभिप्राय क्रि
में [च] भी आत्मनेपद होता है॥ उदा०—कटं कारयते (
अपने लिये बनवाता है) यदि दूसरे के लिये बनवाता है
कारयति' (दूसरे के लिये चटाई बनवाता है) बनेगा॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे ॥१।३।७५॥

समुदाङ्भ्यः ५।३॥ यमः ५।१॥ अग्रन्थे ७।१॥ *स०*—समुदाङ्भ्य इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः। 'अग्रन्थे' इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—कर्त्रभिप्राये क्रियाफले, आत्मनेपदम्॥ *अर्थः*—सम् उत् आङ् इत्येवंपूर्वाद् यम् धातोः कर्त्रभिप्राये क्रियाफलेऽर्थे आत्मनेपदं भवति, ग्रन्थविषयश्चेत् योगो न स्यात्॥ *उदा०*—व्रीहीन् संयच्छते। भारम् उद्यच्छते। वस्त्रम् आयच्छते॥

भाषार्थः—[*समुदाङ्भ्यः*] सम् उत् आङ् पूर्वक [*यमः*] यम् धातु [*अग्रन्थे*] ग्रन्थ विषय का प्रयोग यदि न हो तो कर्त्रभिप्राय क्रियाफल आत्मनेपद हो जाता है॥ *उदा०*—व्रीहीन् संयच्छते (चावलों को कट्ठा करता है)। भारम् उद्यच्छते (भार को उठाता है) वस्त्रम् आयच्छते (वस्त्र को फैलाता है)॥ *उदा०*—आयच्छते इत्यादि की सिद्धि *आङो यमहनः* (१।३।२८) सूत्र पर कर आये हैं वहीं देखें। अकर्त्रभिप्राय में संयच्छति इत्यादि भी बन ही जायगा॥

अनुपसर्गाज्ज्ञः ॥१।३।७६॥

अनुपसर्गात् ५।१॥ ज्ञः ५।१॥ *स०*—अनुपसर्गादित्यत्र नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—कर्त्रभिप्राये क्रियाफले, आत्मनेपदम्॥ *अर्थः*—अनुपसर्गाद् 'ज्ञा' धातोरात्मनेपदं भवति, कर्त्रभिप्राये क्रियाफले॥ *उदा०*—गां जानीते। अश्वं जानीते॥

भाषार्थः—[*अनुपसर्गात्*] उपसर्ग रहित [*ज्ञः*] ज्ञा धातु से कर्त्रभिप्राय क्रियाफल अर्थ में आत्मनेपद होता है॥ *उदा०*—गां जानीते (अपनी गाय को जानता है), अश्वं जानीते (अपने घोड़े को जानता है)॥ सिद्धियाँ *अपह्नवे ज्ञः* (१।३।४४) सूत्र की तरह ही समझें। अकर्त्रभिप्राय में अश्वं जानाति बनेगा॥

विभाषोपपदेन प्रतीयमाने ॥१।३।७७॥

विभाषा १।१॥ उपपदेन ३।१॥ प्रतीयमाने ७।१॥ *अनु०*—कर्त्रभिप्राये क्रियाफले, आत्मनेपदम्॥ *अर्थः*—कर्त्रभिप्राये क्रियाफले

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उपरिष्टात् पञ्चभिः सूत्रैरात्मनेपदं विहितं, तदस्मिन् विषये उप समीपोच्चरितेन पदेन कर्त्रभिप्राये क्रियाफले प्रतीयमाने सति विभाषाऽऽत्मनेपदं भवति ॥

उदा०—स्वं यज्ञं यजति, स्वं यज्ञं यजते। स्वं कटं करोति, कुरुते। स्वं पुत्रम् अपवदति, स्वं पुत्रमपवदते, इत्यादयः ॥

भाषार्थ :—[*उपपदेन*] उपपद = समीपोच्चरित पद के द्वारा प्राय क्रियाफल के [प्रतीयमाने] प्रतीत होने पर [*विभाषा*] विक (कर्त्रभिप्राय क्रियाफल विषय में) आत्मनेपद होता है ॥ पांचों सूत्रों से कर्त्रभिप्राय क्रियाफल में आत्मनेपद नित्य ही सो इस सूत्र ने उस विषय में भी विकल्प विधान कर दिया है 'स्वं' उपपद से कर्त्रभिप्राय क्रियाफल प्रतीत हो रहा है ॥

उदा०—स्वं यज्ञं यजति, स्वं यज्ञं यजते (अपने यज्ञ को करता स्वं कटं करोति, स्वं कटं कुरुते (अपनी चटाई बनाता है)। अपवदति, स्वं पुत्रम् अपवदते (अपने पुत्र को बुरा-भला कहता

[*परस्मैपदप्रकरणम्*]

शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदम् ॥१।३।७८॥

शेषात् ५।१॥ कर्त्तरि ७।१॥ परस्मैपदम् १।१॥ *अर्थः*- धातुभ्य आत्मनेपदमुक्तं ततोऽन्यत् शेषः, तस्मात् कर्त्तरि वाच्ये पदं भवति ॥ उदा०—याति। वाति। प्रविशति ॥

भाषार्थ :—जिन-जिन धातुओं से आत्मनेपद का विधान उनसे [*शेषात्*] जो शेष बची धातुयें, उनसे [*कर्त्तरि*] कर्त्ता [*परस्मैपदम्*] परस्मैपद होता है ॥ उदा०—याति (जाता वाति (चलता है)। प्रविशति (प्रविष्ट होता है)॥ *'परस्मैपदम्'* की अनुवृत्ति पाद के अन्त १।३।९३ तक जाती है ॥

अनुपराभ्यां कृञः ॥१।३।७९॥

अनुपराभ्यां ५।२॥ कृञः ५।१॥ *स०*—अनुपराभ्यामित्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—परस्मैपदम् ॥ *अर्थ* :—अनु-परा इत्येवंपूर्वाद् धातोः परस्मैपदं भवति ॥ *उदा०*—अनुकरोति। पराकरोति ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[अनुपराभ्यां] अनु परा पूर्वक [कृञः] कृञ् धातु से स्मैपद होता है ॥ उदा०—अनुकरोति (अनुकरण करता है)। पराकरोति र करता है)॥ स्वरितञितः० से कर्त्रभिप्राय क्रियाफल में जो आत्मनेपद न था, उसका अपवाद यह सूत्र है।

अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः ॥१।३।८०॥

अभिप्रत्यतिभ्यः ५।३॥ : क्षिपः ५।१॥ स०—अभि० इत्यत्रेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—परस्मैपदम् ॥ अर्थः—अभि प्रति इत्येवं र्वात् क्षिप् धातोः परस्मैपदं भवति ॥ उदा०—अभिक्षिपति। प्रतिक्षिपति। अतिक्षिपति ॥

भाषार्थः—[अभिप्रत्यतिभ्यः] अभि-प्रति तथा अति पूर्वक [क्षिपः] प् धातु से परस्मैपद होता है ॥ क्षिप् धातु स्वरितेत् होने से त्मनेपदी थी, सो इसको नित्य परस्मैपद का विधान कर दिया है ॥ दा०—अभिक्षिपति (इधर उधर फैंकता है) प्रतिक्षिपति (बदले फैंकता है) अतिक्षिपति (बहुत फैंकता है) ॥

प्राद्वहः ॥१।३।८१॥

प्रात् ५।१॥ वहः ५।१॥ अनु०—परस्मैपदम् ॥ अर्थः—प्रपूर्वाद् वह तोः परस्मैपदं भवति ॥ उदा०—प्रवहति, प्रवहतः, प्रवहन्ति ॥

भाषार्थः—[प्रात्] प्रपूर्वक [वहः] वह धातु से परस्मैपद ता है ॥ उदा०—प्रवहति (बहता है) प्रवहतः, प्रवहन्ति ॥ यह भी रितेत् होने से कर्त्रभिप्राय में आत्मनेपदी थी नित्य परस्मैपद दिया ॥

परेर्मृषः ॥१।३।८२॥

परेः ५।१॥ मृषः ५।१॥ अनु०—परस्मैपदम् ॥ अर्थः—'परि' इत्येवं र्वात् 'मृष्' धातोः परस्मैपदं भवति ॥ उदा०—परिमृष्यति। परिमृष्यतः। रिमृष्यन्ति ॥

भाषार्थः—[परेः] परिपूर्वक [मृषः] मृष् धातु से परस्मैपद ता है ॥ उदा०—परिमृष्यति (सब प्रकार से सहन करता है)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परिमृष्यतः, परिमृष्यन्ति ॥ यह भी स्वरितेत् धातु थी, परस्मैपद का विधान कर दिया ॥ दिवादि गण का होने से श्यन् (३।१।६९) से शप् के स्थान में श्यन् हो जाता है ॥

व्याङ्परिभ्यो रमः ॥१।३।८३॥

व्याङ्परिभ्यः ५।३॥ रमः ५।१॥ स०—व्याङ्परि०इत्यत्र द्वन्द्वः ॥ अनु०—परस्मैपदम् ॥ अर्थः—वि आङ् परि इत्येभ्यः परो रम धातोः परस्मैपदं भवति ॥ उदा०—विरमति । आरमति । परिरमति ॥ भाषार्थः—[व्याङ्परिभ्यः] वि, आङ्, परि पूर्वक [रमः] धातु से परस्मैपद होता है ॥ उदा०—विरमति (रुकता है) आरमति (खेलता है) परिरमति (चारों ओर खेलता है) ॥ अनुवृत्ति से अनुदात्तङित आत्मनेपदम् (१।३।१२) से आत्मनेपद को परस्मैपद कर दिया ॥ यहाँ से 'रमः' की अनुवृत्ति १।३।८५ तक जाती है ॥

उपाच्च ॥१।३।८४॥

उपात् ५।१॥ च अ० ॥ अनु०—रमः, परस्मैपदम् ॥ अर्थः—पूर्वाच्च रमधातोः परस्मैपदं भवति ॥ उदा०—देवदत्तम् उपरमति ॥

भाषार्थः—[उपात्] उपपूर्वक रम धातु से [च] भी परस्मैपद होता है ॥ उदा०—देवदत्तम् उपरमति (देवदत्त को हटाता है) ॥ यहाँ से 'उपात्' की अनुवृत्ति १।३।८५ तक जाती है ॥

विभाषाऽकर्मकात् ॥१।३।८५॥

विभाषा १।१॥ अकर्मकात् ५।१॥ अनु०—उपात्, रमः परस्मैपदम् ॥ अर्थः—अकर्मकादुपपूर्वाद् रम् धातोर्विभाषा परस्मैपदं भवति ॥ उदा०—यावद्भुक्तमुपरमति । यावद्भुक्तमुपरमते ॥

भाषार्थः—[अकर्मकात्] अकर्मक उपपूर्वक रम धातु से विकल्प करके परस्मैपद होता है ॥ उदा०—यावद्भुक्तमुपरमति भुक्तमुपरमते (भोजन नहीं करना चाहता) ॥ पूर्व सूत्र से नित्य प्राप्त था, यहाँ विकल्प कर दिया ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः ॥१।३।८६॥

बुधयुध.....भ्यः ५।३॥ णेः ५।१॥ स०—बुधयुध० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—परस्मैपदम् ॥ अर्थः—बुध, युध, नश, जन, इङ्, प्रु, द्रु, स्रु इत्येतेभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं भवति ॥ उदा०—बोधयति। योधयति। नाशयति। जनयति। अध्यापयति। प्रावयति। द्रावयति। स्रावयति ॥

भाषार्थः—[बुध...भ्यः] बुध्, युध्, नश्, जन्, इङ्, प्रु, द्रु, स्रु इन [णेः] ण्यन्त धातुओं से परस्मैपद होता है॥ उदा०-बोधयति (बोध कराता है)। योधयति (लड़ाता है)। नाशयति(नाश करता है)। जनयति (उत्पन्न करता है)। अध्यापयति (पढ़ाता है)। प्रावयति (प्राप्त कराता है) द्रावयति (पिघलाता है)। स्रावयति (टपकाता है) ॥ यहाँ ण्यन्त होने से कर्त्रभिप्राय क्रियाफल अर्थ में *णिचश्च* (१।३।७४) से आत्मनेपद प्राप्त था, परस्मैपद विधान कर दिया ॥ सिद्धियों में कुछ भी विशेष नहीं है. केवल अध्यापयति में अधि पूर्वक इङ् धातु से णिच् आकर तथा 'इ' को ऐ वृद्धि होकर *क्ङिज्ञीनां ण्यौ* (६।१।४७) से 'ऐ' को आत्व हुआ है एवं *अतिहीं०लीरीक्नूयी०* (७।३।३६) से पुक् आगम हुआ है, शेष पूर्ववत् है ॥ जनयति में ~~*अनिकभ्योश्च* (७।३।३५)~~ से वृद्धिनिषेध भी होता है ॥

यहाँ से *'णेः'* की अनुवृत्ति १।३।८९ तक जाती है ॥

निगरणचलनार्थेभ्यश्च ॥१।३।८७॥

निगरणचलनार्थेभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—निगरणञ्च चलनञ्च इति निगरणचलने, निगरणचलने अर्थौ येषाम् ते निगरणचलनार्थाः, तेभ्यः....द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ अनु०—णेः, परस्मैपदम् ॥ अर्थः—निगरणार्थेभ्यः चलनार्थेभ्यश्च ण्यन्तेभ्यो धातुभ्यः परस्मैपदं भवति ॥ उदा०—निगारयति। आशयति। भोजयति ॥ चलनार्थेभ्यः—चलयति। लोपयति। कम्पयति ॥

भाषार्थः—[*निगरण...भ्यः*] निगरण अर्थात् निगलने अर्थवाले तथा चलनार्थक ण्यन्त जो धातु हैं, उनसे [च] भी परस्मैपद होता है ॥ उदा०—निगारयति (निगलवाता है)। आशयति (खिलाता है)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भोजयति (भोजन कराता है)। चलनार्थेभ्यः—चलयति (चलाता है) चोपयति (धीरे २ चलाता है) कम्पयति (कँपाता है)॥

चलयति में *घटादयो मितः* (धातुपाठ अज० सं० पृ० १२) से अतिदेश तथा *मितां ह्रस्वः* (६।४।९२) से ह्रस्व होता है पूर्ववत् समझें॥

अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात् ॥१।३।८८॥

अणौ ७।१॥ अकर्मकात् ५।१॥ चित्तवत्कर्तृकात् ५।१॥ स०—इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः। न विद्यते कर्म यस्य स अकर्मकः तस्मात् बहुव्रीहिः। चित्तवान् कर्त्ता यस्य स चित्तवत्कर्तृकः तस्माद् बहुव्रीहिः अनु०—णेः, परस्मैपदम्॥ अर्थः—अण्यन्तावस्थायां यो धातुरकर्मकश्चित्तवत्कर्तृकश्च तस्माद् ण्यन्तात् परस्मैपदं भवति॥ उदा० (अण्यन्ते) आस्ते देवदत्तः। (ण्यन्ते) आसयति देवदत्तम् शाययति देवदत्तम्॥

भाषार्थः—[*अणौ*] अण्यन्त अवस्था में जो [*अकर्मकात्*] तथा [*चित्तवत्कर्तृकात्*] चेतन कर्त्तावाला धातु हो, उससे ण्यन्त में परस्मैपद होता है॥ उदा०—(अण्यन्त में) आस्ते देवदत्तः (बैठता है) (ण्यन्त में) आसयति देवदत्तम् (देवदत्त को बैठाता है) शाययति देवदत्त (देवदत्तम् को सुलाता है)॥ यहाँ पकरण तथा शीङ् धातु अकर्मक हैं, एवं उसका चेतन कर्त्ता देवदत्त। ण्यन्त अवस्था में इनसे परस्मैपद हो गया॥ यह *णिचश्च* (१।३।७४) अपवाद सूत्र है॥

न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः ॥१।३।८९॥

न अ०॥ पादम्याङ्य··· वसः ५।१॥ स०—पाद्यश्च आङ्यमश्च आङ्यसश्च परिमुहश्च रुचिश्च नृतिश्च वदश्च वस् पाद····वदवस्, तस्मात् समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—णेः, परस्मै

अर्थः—पा, दमि, आङ्यम, आङ्यस, परिमुह, रुचि, नृति, वद, वस इत्येतेभ्यो ण्यन्तेभ्यो धातुभ्यः परस्मैपदं न भवति॥ पूर्वेण प्रा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं विहितं तत्प्रतिषिध्यते ॥ उदा०—पाययते। दमयते। आयामयते। आयासयते। परिमोहयते। रोचयते। नर्त्तयते। वादयते। वासयते ॥

भाषार्थः—पूर्व दो सूत्रों में ण्यन्तों से परस्मैपद का विधान किया है उसका यह प्रतिषेध सूत्र है ॥ [पाद··वसः] पा, दमि, आङ् पूर्वक यम, आङ् पूर्वक यस, परि पूर्वक मुह, रुचि, नृति, वद, वस इन ण्यन्त धातुओं से परस्मैपद [न] नहीं होता है ॥ उदा०—पाययते, दमयते (दमन कराता है)। आयामयते, आयासयते (फिकवाता है)। परिमोहयते (अच्छी प्रकार मोह कराता है)। रोचयते (पसन्द कराता है)। नर्त्तयते (नचाता है)। वादयते (कहलाता है)। वासयते (बसाता है) ॥ पाययते में शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् (७।३।३७) से युक् आगम होता है ॥

वा क्यषः ॥१।३।९०॥

वा अ० ॥ क्यषः ५।१॥ अनु०—परस्मैपदम् ॥ अर्थः—क्यषन्ताद् धातोर्वा परस्मैपदं भवति ॥ उदा०—लोहितायति, लोहितायते। पटपटायति। पटपटायते ॥

भाषार्थः—[क्यषः] क्यष्प्रत्ययान्त धातु से [वा] विकल्प करके परस्मैपद होता है ॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति १।३।९३ तक जायगी ॥

द्युद्भ्यो लुङि ॥१।३।९१॥

द्युद्भ्यः ५।३॥ लुङि ७।१॥ अनु०—वा, परस्मैपदम् ॥ अर्थः—द्युत 'दीप्तौ' इत्यारभ्य कृपूपर्यन्तेभ्यो धातुभ्यो लुङि परतो वा परस्मैपदं भवति ॥ उदा०—व्यद्युतत्। व्यद्योतिष्ट। अलुठत्। अलोठिष्ट ॥

भाषार्थः—[द्युद्भ्यः] द्युतादि धातुओं से [लुङि] लुङ् परे रहते विकल्प करके परस्मैपद होता है ॥ द्युद्भ्यः में बहुवचन निर्देश करने से द्युतादि धातुओं का (द्युत से लेकर कृपू धातु पर्यन्त का) ग्रहण हो जाता है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वृद्भ्यः स्यसनोः ॥१।३।९२॥

वृद्भ्यः ५।३॥ स्यसनोः ७।२॥ स०—स्यसनोरित्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—वा, परस्मैपदम् ॥ अर्थः—वृतादिभ्यो धातुभ्यः स्यसनोः परतो वा परस्मैपदं भवति ॥ उदा०—वर्त्स्यति। अवर्त्स्यत्। सन्—विवृत्सति। आत्मनेपदे—वर्त्तिष्यते, अवर्तिष्यत। विवर्त्तिषते ॥

भाषार्थः—[*वृद्भ्यः*] वृतादि धातुओं से [*स्यसनोः*] स्य सन् प्रत्ययों के परे रहते विकल्प करके परस्मैपद होता है॥ वृतादि के अन्तर्गत ही वृतादि धातुएँ भी हैं॥ यहाँ भी बहुवचन करने से वृत से वृतादियों का ग्रहण किया गया है॥

यहाँ से '*स्यसनोः*' की अनुवृत्ति १।३।९३ तक जायगी॥

लुटि च क्लृपः ॥१।३।९३॥

लुटि ७।१॥ च अ०॥ क्लृपः ५।१॥ अनु०—स्यसनोः, वा, परस्मैपदम्॥ अर्थः—क्लृप धातोर्लुटि च स्यसनोः परतो वा परस्मैपदं भवति॥ उदा०—कल्प्ता, कल्प्तारौ, कल्प्तारः। कल्प्स्यति, अकल्प्स्यत्। चिक्लृप्सति। आत्मनेपदे—कल्पिता, कल्पिष्यते, अकल्पिष्यत। चिकल्पिषते ॥

भाषार्थः—[*क्लृपः*] क्लृप धातु से [*लुटि*] लुट् परे रहते चकार से स्य सन् परे रहते भी विकल्प से परस्मैपद होता है॥ कल्प्ता, कल्प्तारौ, कल्प्तारः (वह कल समर्थ होगा)। कल्प्स्यति (वह समर्थ होगा)। अकल्प्स्यत् (वह समर्थ होता)। चिक्लृप्सति (वह समर्थ होना चाहता है)। पक्ष में-कल्पिता कल्पिष्यते अकल्पिष्यत चिकल्पिषते ॥ सिद्धियां सारी पूर्ववत् ही हैं। केवल परस्मैपद में सर्वत्र *तासि च क्लृपः* (७।२।६०) से इट् आगम निषेध होता है। आत्मनेपद पक्ष में इट् आगम होता है। कृपो रो लः (८।२।१८) से सर्वत्र 'कृ' के रेफ् अंश को लत्व भी होता है। लुट् लकार में परि० १।१।६ में कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी जानें॥

इति तृतीयः पादः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

चतुर्थः पादः

आ कडारादेका संज्ञा ॥१।४।१॥

आ अ० ॥ कडारात् ५।१॥ एका १।१॥ संज्ञा १।१॥ अर्थः—
ाः कर्मधारये (२।२।३८) इति सूत्रं वक्ष्यति। तत्र आ कडारात् =
रा: कर्मधारये' एतस्मादवधेः पूर्वं पूर्वम् एका संज्ञा भवतीति, अधि-
वेदितव्यः ॥ उदा०—भेत्ता, छेत्ता। शिक्षा, भिक्षा। अततक्षत् ॥

भाषार्थः—[कडारात्] कडाराः कर्मधारये सूत्र से [आ] पहले २
ा] एक ही [संज्ञा] संज्ञा होती है, यह अधिकार जानना चाहिये॥
लोक तथा शास्त्र दोनों में एक ही पदार्थ की कई संज्ञायें हो जाती
ऐसा देखा जाता है, यथा इन्द्र के शक्र पुरुहूत आदि कई नाम हैं।
त्र में भी 'कर्त्तव्यम्' में तव्यत् की प्रत्यय, कृत्, कृत्य कई संज्ञायें
ो हैं, सो इस प्रकरण में भी इसी प्रकार प्राप्त था, अतः कडाराः
धारये तक जो संज्ञा सूत्र हैं उनमें से इस अधिकार से एक ही संज्ञा
कई नहीं, यह नियम किया है॥ अब जहाँ पर दो संज्ञायें प्राप्त
वहाँ कौन सी हो? कौन सी न हो? यह प्रश्न था, तो जो उनमें
पर हो या अनवकाश हो उसे होना चाहिये, दोनों को नहीं॥

विप्रतिषेधे परं कार्यम् ॥१।४।२॥

विप्रतिषेधे ७।१॥ परम् १।१॥ कार्यम् १।१॥ अर्थः—विप्रतिषेधः =
ल्यबलविरोधः, तस्मिन् सति परं कार्यं भवति॥ उदा०—वृक्षेभ्यः,
क्षेभ्यः॥

भाषार्थः—[विप्रतिषेधे] विप्रतिषेध होने पर [परम्] पर वाला
त्र [कार्यम्] कार्य करता है॥ यह परिभाषा सूत्र है॥

तुल्यबलविरोध को, विप्रतिषेध कहते हैं, अर्थात् जहाँ दो सूत्र कहीं
न्यत्र उदाहरणों में पृथक् पृथक् लग चुके हों पर किसी एक स्थल
दोनों ही प्राप्त हो रहे हों, तो कौन सा हो? दोनों कहेंगे कि
'मैं लगूँगा, मैं लगूँगा", तब यह परिभाषा सूत्र निर्णय करेगा कि
र वाला ही हो, पूर्ववाला नहीं॥ जैसे 'वृक्षभ्याम्' यहाँ पर सुपि च

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(७।३।१०२) सूत्र दीर्घ करता है सो वृक्षाभ्याम् बनता है। 'वृक्ष सुप्' यहाँ बहुवचने झल्येत् (७।३।१०३) से बहुवचन सुप् परे रहते एत्व होकर वृक्षेषु बनता है। अब यह बहुवचने झल्येत् पृथक् पृथक् स्थलों में चरितार्थ हैं, पर इस अवस्था में यञादि सुप् परे होने से सुपि च से दीर्घ तथा 'भ्यस्' बहुवचन झलादि सुप् है, सो बहुवचने झल्येत् प्राप्त है सो कौन हो? तब यहाँ तुल्यबलविरोध होने से पर पर वाला सूत्र ही लगा। सुपि च की अपेक्षा से बहुवचने अष्टाध्यायी में पर है, अतः बहुवचने झल्येत् से एत्व होकर लक्षेभ्यः बन गया॥ भ्यस् के सकार को पूर्ववत् रुत्व विसर्ग ही जायगा॥

[संज्ञाप्रकरणम्]

यू स्त्याख्यौ नदी ॥१।४।३॥

यू सुपां सुलुक्० (७।१।३९) इत्यनेन विभक्तेर्लुप्। स्त्याख्यौ १।२॥ नदी १।१॥ स०—ईश्च ऊश्च यू, इतरेतरद्वन्द्वः। इको यणचि (६।१।७४) इत्यनेन यणादेशः। स्त्रियमाचक्षाते, तयोरुपपदमतिङ् (२।२।१९) इत्यनेन तत्पुरुषसमासः॥ अर्थः—ईकारान्तमूकारान्तञ्च स्त्याख्यं शब्दरूपं नदीसंज्ञकं भवति॥ उदा०—ईकारान्तानाम्—गौर्यै, शार्ङ्गरव्यै। ऊकारान्तानाम्—ब्रह्मबन्ध्वै, यवाग्वै॥

भाषार्थः—[यू] ईकारान्त तथा ऊकारान्त जो [स्त्याख्यौ] लिङ्ग की आख्या (कहने वाले) शब्द हैं, उनकी [नदी] संज्ञा होती है॥

यहाँ से 'यू स्त्याख्यौ नदी' की अनुवृत्ति १।४।६ तक जायगी।

नेयङुवङ्स्थानावस्त्री ॥१।४।४॥

न अ०॥ इयङुवङ्स्थानौ १।२॥ अस्त्री १।१॥ स०—इयङ् च उवङ् च इयङुवङौ, इतरेतरद्वन्द्वः। इयङुवङौ स्थानम् अनयोरिति, इयङुवङ्स्थानौ, बहुव्रीहिः। न स्त्री, अस्त्री नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—यू नदी॥ अर्थः—इयङुवङ्स्थानौ ईकारान्त-ऊकारान्तौ शब्दौ नदीसंज्ञकौ न भवतः, स्त्री शब्दं वर्जयित्वा॥ उदा०—हे श्रीः, हे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*इयङुवङ्स्थानौ*] इयङ् उवङ् आदेश होता है जिन ईकारान्त ऊकारान्त स्त्री की आख्या वाले शब्दों को, उनकी नदी संज्ञा [*न*] नहीं होती [*अस्त्री*] स्त्री शब्द को छोड़कर। यह सूत्र पूर्वसूत्र का प्रतिषेध है॥ स्त्री शब्द इयङ् स्थानी था, सो इस सूत्र से नदी संज्ञा का प्रतिषेध उसको भी प्राप्त था, '*अस्त्री*' कहने से उसकी नदी संज्ञा हो गई॥

यहाँ से '*नेयङुवङ्स्थानावस्त्री*' की अनुवृत्ति १।४।६ तक जायगी॥

वामि ॥१।४।५॥

वा अ०॥ आमि ७।१॥ अनु०—नेयङुवङ्स्थानावस्त्री, यू स्त्याख्यौ नदी॥ *अर्थः*—इयङुवङ्स्थानौ स्त्याख्यौ ईकारान्तोकारान्तौ शब्दौ आमि परतो वा नदीसंज्ञकौ न भवतः, स्त्रीशब्दं वर्जयित्वा॥ पूर्वेण नित्यप्रतिषेधे प्राप्ते विकल्प्यते॥उदा०—श्रियाम्। श्रीणाम्। भ्रुवाम्। भ्रूणाम्॥

भाषार्थः—इयङ् उवङ् स्थानी स्त्री की आख्या वाले जो ईकारान्त-ऊकारान्त शब्द उनकी [*आमि*] आम् विभक्ति परे रहते [*वा*] विकल्प नदीसंज्ञा नहीं होती है, स्त्री शब्द को छोड़कर॥ पूर्वसूत्र से नित्य प्रतिषेध प्राप्त था, इस सूत्र ने विकल्प कर दिया॥

उदा०—श्रियाम् (श्री का) श्रीणाम्। भ्रुवाम् (भौंहों का) भ्रूणाम्॥

जब नदी संज्ञा नहीं हुई तब श्री + आम् पूर्ववत् होकर *अचि श्नुधातु०* (६।४।७७) से इयङ् होकर 'श्र् इयङ् आम्' = श्रियाम् बना। भ्रू + आम् भी पूर्ववत् उवङ् हो कर भ्रुवाम् बन गया॥ जब नदी संज्ञा हुई तब, *ह्रस्वनद्यापो नुट्* (७।१।५४) से नुट् आगम हो कर 'श्री नुट् आम्' बनकर अनुबन्ध लोप हो कर तथा न् को ण् अट्कु० (८।४।२) से हो कर श्रीणाम् भ्रूणाम् बन गया॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति १।४।६ तक जाती है॥

ङिति ह्रस्वश्च ॥१।४।६॥

ङिति ७।१॥ ह्रस्वः १।१॥ च अ०॥ अनु०—वा, नेयङुवङ्स्थानावस्त्री, स्त्याख्यौ नदी॥ *अर्थः*—ह्रस्वम् इकारान्तमुकारान्तं स्त्याख्यं शब्द-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

रूपम् इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ ईकारान्तोकारान्तौ च शब्दौ प्रत्यये परतो वा नदीसंज्ञकौ भवतः ॥ उदा०—कृत्यै कृतये। धेनवे। श्रियै, श्रिये, भ्रुवै, भ्रुवे ॥

भाषार्थः—[ह्रस्वः] ह्रस्व इकारान्त उकारान्त जो स्त्रीलिङ्ग वाचक शब्द तथा इयङ्, उवङ् स्थानी जो ईकारान्त ऊकारान्त आख्या वाले शब्द उनकी [च] भी *[ङिति]* ङित् प्रत्यय के परे विकल्प से नदी संज्ञा होती है ॥ ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द नदी संज्ञा किसी सूत्र से प्राप्त नहीं थी, सो विकल्प से विधान किया तथा इयङ् उवङ् स्थानी ईकारान्त-ऊकारान्त शब्दों की भी नदी संज्ञा का प्रतिषेध किया था, सो उनको भी विकल्प से नदी संज्ञा विधान इस सूत्र में करते हैं।

यहाँ से 'ह्रस्वः' की अनुवृत्ति १।४।७ तक जायगी ॥

शेषो घ्यसखि ॥१।४।७॥

शेषः १।१॥ घि १।१॥ असखि १।१॥ स०—असखीत्यत्र तत्पुरुषः ॥ अनु०—ह्रस्वः ॥ अर्थः—शेषो घि संज्ञको भवति शब्दं वर्जयित्वा। कश्च शेषः ? ह्रस्वम् इकारान्तमुकारान्तं शब्दं स्त्र्याख्यं, यच्च स्त्र्याख्यमपि न नदीसंज्ञकं स शेषस्तस्य स्यात् ॥ उदा०—अग्नये, वायवे, कृतये, धेनवे ॥

भाषार्थः—[शेषः] शेष की [घि] घि संज्ञा होती है सखि शब्द को छोड़कर ॥ प्रश्न होता है कि किससे शेष ? हैं कि जो ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग के वाचक (स्त्री की आख्या वालों की तो नदी संज्ञा *ङिति ह्रस्वश्च* ने कर तथा जो स्त्री के आख्या वाले होते हुए भी नदी संज्ञक नहीं हैं। अग्नि, वायु शब्द ह्रस्व इकार, उकार, अन्त वाले तो की आख्या वाले नहीं हैं सो शेष होने से उनकी घि अग्नये, वायवे की सिद्धि परि० १।४।६ के कृतये धेनवे समझें ॥ कृति, धेनु शब्दों की भी *ङिति ह्रस्वश्च* से संज्ञा नहीं होती, अतः ये भी शेष हैं सो घि संज्ञक होकर समझें ॥ यहाँ से 'घि' की अनुवृत्ति १।४।९ तक जायगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पतिः समास एव ॥१।४।८॥

पतिः १।१॥ समासे ७।१॥ एव अ०॥ अनु०—घि॥ अर्थः—तिशब्दस्य शेषत्वात् पूर्वेण सूत्रेण सर्वत्र घि संज्ञा सिद्धैव, अत्र यमः क्रियते। समासे एव पतिशब्दस्य घि संज्ञा स्यात् नान्यत्र॥ ा०—प्रजापतिना, प्रजापतये। सेनापतिना, सेनापतये॥

भाषार्थः—शेष होने से पूर्वसूत्र से पतिशब्द की घिसंज्ञा सर्वत्र द्ध ही थी, यहाँ नियम करते हैं कि—

[*पतिः*] पति शब्द की [*समासे*] समास में [*एव*] ही घि संज्ञा समास से अन्यत्र घि संज्ञा न हो॥

प्रजायाः पतिः, सेनायाः पतिः यहाँ षष्ठीतत्पुरुष समास होकर ापति सेनापति बना था। सो पूर्ववत् टा विभक्तिं आकर समास में े से घि संज्ञा होकर, *आङो नाऽस्त्रियाम्* (७।३।११९) से 'टा' को हुआ, प्रजापतिना (प्रजापति के द्वारा) सेनापतिना (सेनापति के ा) बन गया। प्रजापतये आदि भी ङे विभक्ति में पूर्ववत् ही बन यँगे॥

यहां से *पतिः* की अनुवृत्ति १।४।९ तक जायगी॥

षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा ॥१।४।९॥

षष्ठीयुक्तः १।१॥ छन्दसि ७।१॥ वा अ०॥ स०—षष्ठ्या युक्तः युक्तः, तृतीयातत्पुरुषः॥ अनु०—पतिः, घि॥ अर्थः—पूर्वेण णासमासे घि संज्ञा न प्राप्नोतीति वचनमारभ्यते। षष्ठ्यन्त-क्त्या युक्तः पतिशब्दः छन्दसि = वेदे विकल्पेन घिसंज्ञको भवति॥ ०—कुलुञ्चानां पतये नमः। कुलुञ्चानां पत्ये नमः॥ यजु० २२॥

भाषार्थः—[*षष्ठीयुक्तः*] षष्ठी विभक्ति से युक्त जो पतिशब्द उसकी *दसि*] छन्द विषय में [*वा*] विकल्प से घिसंज्ञा होती है॥ पूर्वसूत्र समास में पति शब्द की घिसंज्ञा नहीं प्राप्त थी, सो पक्ष में विधान दिया॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

घि संज्ञा पक्ष में घेर्ङिति से गुण तथा अयादेश होकर पतये। अन्यत्र 'पति + ए' इस अवस्था में यणादेश होकर, 'पत्ये' बना। कुलुञ्चानां षष्ठ्यन्त शब्द है, उससे युक्त यहाँ पतिशब्द था॥

उदा०—कुलुञ्चानां पतये नमः (बुरे स्वभाव से दूसरे को खसोटनेवालों के पति = अधिपति को नमस्कार) ॥ स्वा० द० कुलुञ्चानां पत्ये नमः ॥

ह्रस्वं लघु ॥१।४।१०॥

ह्रस्वम् १।१॥ लघु १।१॥ अर्थः—ह्रस्वमक्षरं लघु स्यात्॥ उदा०—भेत्ता। छेत्ता। अचीकरत्। अजीहरत्॥

भाषार्थः—[ह्रस्वम्] ह्रस्व अक्षर की [लघु] लघु संज्ञा होती है॥

यहाँ से 'ह्रस्वम्' की अनुवृत्ति १।४।११ तक जायगी॥

संयोगे गुरु ॥१।४।११॥

संयोगे ७।१॥ गुरु १।१॥ अनु०—ह्रस्वम्॥ अर्थः—संयोगे परतः ह्रस्वमक्षरं गुरुसंज्ञकं भवति॥ उदा०—कुण्डा। शिक्षा। भिक्षा॥

भाषार्थः—[संयोगे] संयोग परे रहते ह्रस्व अक्षर की गुरु संज्ञा होती है॥ पूर्वसूत्र से ह्रस्व अक्षर की लघु संज्ञा थी, यह उसका अपवाद है॥

यहाँ से 'गुरु' की अनुवृत्ति १।४।१२ तक जायगी॥

दीर्घं च ॥१।४।१२॥

दीर्घम् १।१॥ च अ०॥ अनु०—गुरु॥ अर्थः—दीर्घमक्षरं गुरुसंज्ञकं भवति॥ उदा०—ईहाञ्चक्रे। ऊहाञ्चक्रे॥

भाषार्थः—[दीर्घम्] दीर्घ अक्षर की [च] भी गुरु संज्ञा होती है॥ उदा०—ईहाञ्चक्रे, ऊहाञ्चक्रे (उसने तर्क किया)॥

सिद्धियाँ परि० १।३।६३ के समान ही हैं॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् ॥१।४।१३॥

यस्मात् ५।१॥ प्रत्ययविधिः १।१॥ तदादि १।१॥ प्रत्यये ७।१॥ अङ्गम् १।१॥ स०—प्रत्ययस्य विधिः, प्रत्ययविधिः, षष्ठीतत्पुरुषः। तस्य आदिः, तदादिः तदादिरादिर्यस्य तत् तदादि, बहुव्रीहिः ॥ अर्थः—यस्मात् (धातोर्वा प्रातिपदिकाद्वा) प्रत्ययविधिः = प्रत्ययो विधीयते तस्य च तदादिशब्दरूपस्य च प्रत्यये परतोऽङ्गसंज्ञा भवति ॥ उदा०—कर्त्ता, हर्त्ता, औपगवः, कापटवः। करिष्यति, अकरिष्यत्, करिष्यावः, करिष्यामः ॥

भाषार्थः—[*यस्मात्*] जिस (धातु या प्रातिपदिक) से [*प्रत्ययविधिः*] प्रत्यय का विधान किया जाये [*प्रत्यये*] उस प्रत्यय के परे होते [*तदादि*] उससे पहले २ जितना भाग है, उसकी [*अङ्गम्*] अङ्ग संज्ञा होती है ॥

सुप्तिङन्तं पदम् ॥१।४।१४॥

सुप्तिङन्तम् १।१॥ पदम् १।१॥ स०—सुप् च तिङ् च, सुप्तिङौ, सुप्तिङौ अन्ते यस्य तत् सुप्तिङन्तम्, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ अर्थः—सुबन्तं तिङन्तं च शब्दरूपं पदसंज्ञं भवति। सुप्-तिङ् इत्यनेन प्रत्याहारग्रहणम् ॥ उदा०—ब्राह्मणाः पठन्ति ॥

भाषार्थः—[*सुप्तिङन्तम्*] सुप् अन्तवाले, तथा तिङ् अन्त वाले शब्दों की [*पदम्*] पद संज्ञा होती है। सुप् से *स्वौजस०* (४।१।२) सु से लेकर सुप् के पकार पर्यन्त २१ प्रत्ययों का ग्रहण है, तथा तिङ् *तिप्तस्झि०* (३।४।७८) के तिप् से लेकर महिङ् के ङकार पर्यन्त १८ प्रत्ययों का ग्रहण है ॥

उदा०—ब्राह्मणाः पठन्ति (ब्राह्मण पढ़ते हैं)। पद संज्ञा होने से जस् के सकार को *पदस्य* (८।१।१६) के अधिकार में वर्त्तमान *सजुषो रुः* (८।२।६६) से रुत्व वा *खरवसान०* (८।३।१५) से विसर्जनीय होता है। 'पठन्ति' के तिङ् अन्त वाला होने से पद संज्ञा होकर *पदस्य* (८।१।१६) *पदात्* (८।१।१७) के अधिकार में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वर्त्तमान *तिङ्ङतिङः* (८।१।२८) से अतिङ् पद से उत्तर तिङ् पद को सर्वानुदात्त हो गया ॥

यहाँ से 'पदम्' की अनुवृत्ति १।४।१७ तक जायगी ॥

नः क्ये ॥१।४।१५॥

नः १।१॥ क्ये ७।१॥ अनु०—पदम् ॥ अर्थः—क्ये परते शब्दरूपं पदसंज्ञं भवति ॥ उदा०—(क्यच्) राजीयति । (क्यङ्) राजायते । (क्यष्) चर्मायति, चर्मायते ॥

भाषार्थः—क्य से क्यच्, क्यङ्, क्यष् तीनों का सामान्य किया है ॥ [नः] नकारान्त शब्द की *[क्ये]* क्यच्, क्यङ्, रहते पद संज्ञा होती है ॥ पूर्वसूत्र से ही पद संज्ञा सिद्ध थी, विधान नियमार्थ है, कि क्य के परे नान्त शब्दों की ही पद अन्यों की नहीं ॥

सिति च ॥१।४।१६॥

सिति ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—पदम् ॥ स०—सकार स स सित् तस्मिन् सिति, बहुव्रीहिः ॥ अर्थः—सिति प्रत्यये पूर्वं पदसंज्ञं भवति ॥ उदा०—भवदीयः । ऊर्णायुः ॥

भाषार्थः—[*सिति*] सित् प्रत्यय के परे रहते [च] पदसंज्ञा होती है ॥ यह *यचि भम्* (१।४।१८) का सूत्र है ॥

स्वादिष्वसर्वनामस्थाने ॥१।४।१७॥

स्वादिषु ७।३॥ असर्वनामस्थाने ७।१॥ स०—सु आदि स्वादयः तेषु....बहुव्रीहिः । असर्वनामस्थान इत्यत्र नञ्तत्पु० अनु०—पदम् ॥ अर्थः—सर्वनामस्थानभिन्नेषु स्वादिषु (प्रत्ययेषु) पूर्वं पदसंज्ञं भवति ॥ उदा०—राजभ्याम्, राजभिः, राजत्वम्, राजतरः, राजतमः । वाग्भिः ॥

भाषार्थः—[*असर्वनामस्थाने*] सर्वनामस्थान भिन्न अर्थात् जस्, अम्, औट् से भिन्न [*स्वादिषु*] स्वादियों के परे रहते पूर्व

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

संज्ञा होती है ॥ स्वादियों में स्वौजस० से लेकर उरः प्रभृतिभ्यः कप् (५।४।१५१) तक के प्रत्यय लिये गये हैं ॥

यहाँ से *'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'* सूत्र की अनुवृत्ति १।४।१८ तक जायगी ॥

यचि भम् ॥१।४।१८॥

यचि ७।१॥ भम् १।१॥ स०—य् च अच् च तस्मिन् यचि, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—स्वादिष्वसर्वनामस्थाने ॥ अर्थः—सर्वनामस्थानभिन्नादौ यकारादौ, अजादौ च प्रत्यये परतः पूर्वं भसंज्ञं भवति ॥ उदा०—गार्ग्यः, वात्स्यः । दाक्षिः, साक्षिः ॥

भाषार्थः—[*यचि*] सर्वनामस्थान भिन्न यकारादि अजादि स्वादियों के परे रहते पूर्व की [*भम्*] भ संज्ञा होती है ॥ पूर्व सूत्र से पद संज्ञा प्राप्त होने पर उसका यह अपवाद सूत्र है ॥ गार्ग्यः वात्स्यः की सिद्धि १।२।६५ सूत्र पर देखें। भ संज्ञा होने से सर्वत्र *यस्येति च* (६।४।१४८) से इवर्ण अवर्ण का लोप होता है ॥ दक्षस्यापत्यं दाक्षिः (दक्ष का पुत्र) यहाँ भी *अत इञ्* (४।१।९५) से इञ् प्रत्यय *तद्धितेष्वचामादेः* (७।२।११७) से आदि अच् को वृद्धि, तथा भ संज्ञा होने से अकार लोप हो गया है। इसी प्रकार साक्षिः (सक्ष का पुत्र) में भी समझें ॥

यहाँ से *'भम्'* की अनुवृत्ति १।४।२० तक जाती है ॥

तसौ मत्वर्थे ॥१।४।१९॥

तसौ १।२॥ मत्वर्थे ७।१॥ स०—तश्च सश्च, तसौ, इतरेतरद्वन्द्वः । तोरर्थः, मत्वर्थः, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—भम् ॥ अर्थः—तकारान्तं, सकारान्तं च शब्दरूपं मत्वर्थे प्रत्यये परतो भसंज्ञकं भवति ॥ उदा०— तकारान्तम् - विद्युत्वान् बलाहकः । उदश्वित्वान् घोषः । सकारान्तं—यशस्वी, पयस्वी तपस्वी ॥

भाषार्थः—[*तसौ*] तकारान्त और सकारान्त शब्दों की [*मत्वर्थे*] मत्वर्थ प्रत्ययों के परे रहते भ संज्ञा हो जाती है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अयस्मयादीनिच्छन्दसि ॥१।४।२०॥

अयस्मयादीनि १।३॥ छन्दसि ७।१॥ स०—अयस्मयमा तानि इमानि अयस्मयादीनि, बहुव्रीहिः॥ अनु०—भम्॥ अ अयस्मयादीनि शब्दरूपाणि छन्दसि विषये साधूनि भवन्ति॥ अ अयस्मयं वर्म। अयस्मयानि पात्राणि। स सुष्टुभा स ऋकता गो

भाषार्थः—[छन्दसि] वेद में [*अयस्मयादीनि*] अयस्मय इत्यादि साधु होते हैं, अर्थात् इनकी भ संज्ञा, पद संज्ञा दोनों ही एक में में आती हैं॥

बहुषु बहुवचनम् ॥१।४।२१॥

बहुषु ७।३॥ बहुवचनम् १।१॥ *अर्थः*—बहुत्वे विवक्षिते भवति॥ उदा०—ब्राह्मणाः पठन्ति॥

भाषार्थः—[*बहुषु*] बहुतों को कहने की विवक्षा में [बहुव बहुवचन का प्रत्यय होता है॥

द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १।४।२२॥

द्व्येकयोः ७।२॥ द्विवचनैकवचने १।२॥ स०—द्वौ च एकश्च, तयोः.....इतरेतरद्वन्द्वः। द्विवचनञ्चैकवचनं च, द्विवचनै इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अर्थः*—द्वित्वे विवक्षिते द्विवचनमेकत्वे वि एकवचनं च भवति॥ उदा०—ब्राह्मणौ पठतः। एकत्वे-ब्राह्मणः प

भाषार्थः—[*द्व्येकयोः*] दो तथा एक के कहने की इ [*द्विवचनैकवचने*] द्विवचन का प्रत्यय तथा एक को कहने की इ एकवचन का प्रत्यय यथा क्रम से होते हैं। उदा०—ब्राह्मणौ (दो ब्राह्मण पढ़ते हैं)। ब्राह्मणः पठति (एक ब्राह्मण पढ़ता यहाँ पर दो ब्राह्मणों को कहने में द्विवचन का 'औ' तथा एक में 'सु' आया है, इसी प्रकार पठ से 'तस् द्विवचन', तथा 'तिप् एक का प्रत्यय आया है॥ ब्राह्मण+औ यहाँ *वृद्धिरेचि* (ब्राह्मणौ हो गया॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[कारकप्रकरणम्]

कारके ॥१।४।२३॥

कारके ७।१॥ अर्थः—अधिकारसूत्रमिदम्, संज्ञासूत्रञ्च। तत्प्रयोक्को हेतुश्च (१।४।५५) इति यावद् यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः कारक इत्येवं तद्वेदितव्यम्। यथा—ध्रुवमपायेऽपादानम्, इत्यत्र कारक इत्यनुवर्त्तते॥

क्रियायाः निर्वर्त्तकं कारकम्, क्रियायामिति वा (क्रियानिमित्ते इति) कारकम्, तच्च विवक्षाधीनमिति वेदितव्यम्॥

भाषार्थः—[कारके] क्रिया के होने पर कारक संज्ञा होती है॥ क्रिया के बनाने वाले को अथवा क्रिया के होने में जो निमित्त हो उसे कारक कहते हैं। वृक्ष से पत्ता गिरता है, यहाँ गिरना क्रिया बन नहीं सकती जब तक वृक्ष न हो, अतः गिरना क्रिया को बनाने वाला अथवा निमित्त होने से वृक्ष भी कारक है, अब कौन कारक हो सो ध्रुवमपायेऽपादानम् से अपादान कारक हो गया॥ यह अधिकार १।४।५५ तत्प्रयोजको० तक है॥ यहाँ यह बात और समझने की है, कि कारक इच्छाधीन होते हैं, यथा—बादल से बिजली चमकती है, बादल में बिजली चमकती है, बादल चमकता है" यहाँ बादल में क्रमशः अपादान अधिकरण और कर्त्ता तीनों कारक हो गये हैं॥ कारक शब्द अपादानादि का विशेषण होने से 'कारके' यह संज्ञा एवं अधिकार दोनों हैं[1]॥

ध्रुवमपायेऽपादानम् ॥१।४।२४॥

ध्रुवम् १।१॥ अपाये ७।१॥ अपादानम् १।१॥ अनु०—कारके॥ अर्थः—क्रियायां सत्याम् अपाये = पृथग्भूते सति, यद् ध्रुवं तत्कारकमपादानसंज्ञकं भवति॥ उदा०—वृक्षात् पत्रं पतति। ग्रामाद् आगच्छति। पर्वताद् अवरोहति॥

भाषार्थः—क्रिया होने पर [अपाये] अपाय अर्थात् अलग होने पर जो [ध्रुवम्] ध्रुव = अचल रहे, उस कारक की [अपादानम्]

१—'कारक' के विषय में विशेष हमारी बनाई 'सरलतमविधि' पाठ ५-१६ तृतीय सं० में देखें॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अपादान संज्ञा होती है ॥ वृक्षात् पत्रं पतति (वृक्ष से पत्ता गिरता है) इस उदाहरण में पत्र का वृक्ष से अलग होना पाया जाता है अलग होने पर पत्र नीचे गिरता है पर वृक्ष वैसे ही अचल खड़ा है सो अपाय होने पर भी वह ध्रुव है अतः उसकी अपादान संज्ञा हो गई ॥

विशेषः—यहाँ कारके = क्रिया होने पर का अभिप्राय यह है कि दो वस्तुएं पृथक् २ पड़ी हैं सो वे ध्रुव भी हैं तो यहाँ उनकी अपादान संज्ञा नहीं हो सकती चाहे उनका अपाय पृथक्ता है ही, क्योंकि पतन क्रिया नहीं हो रही, अतः 'क्रियायां सत्याम्' नहीं है। इसे सर्वत्र कारक प्रकरण में समझें। अपादान संज्ञा होने से इस प्रकरण में वर्त्तमान *अपादाने पञ्चमी* (२।३।२८) सूत्र से पञ्चमी विभक्ति हो गई, सो 'ङसि' विभक्ति ग्राम के आगे आई। *टाङसिङस* (७।१।१२) से ङसि को आत् होकर ग्रामात् बन गया ॥

यहाँ से '*अपादानम्*' की अनुवृत्ति १।४।३१ तक जायगी ॥

भीत्रार्थानां भयहेतुः ॥१।४।२५॥

भीत्रार्थानां ६।३॥ भयहेतुः १।१॥ *स०*—भीश्च त्राश्च भीत्रौ अर्थौ येषां ते भीत्रार्थाः तेषां...द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। भयस्य हेतुः षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—अपादानम्, कारके ॥ *अर्थः*—भ्यर्थानां, त्रायत्यर्थानां च धातूनां प्रयोगे, भयस्य हेतुः यत् कारकं तत् अपादानसंज्ञं भवति ॥ *उदा०*—बिभेत्यर्थानाम्—चौरेभ्यो बिभेति, चौरेभ्य उद्विजते। त्रायत्यर्थानां—चौरेभ्यस्त्रायते, चौरेभ्यो रक्षति।

भाषार्थः—[*भीत्रार्थानाम्*] भय अर्थ वाली, तथा रक्षा अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में [*भयहेतुः*] भय का हेतु जो कारक उसकी अपादान संज्ञा होती है ॥

उदा०—चौरेभ्यो बिभेति (चोरों से डरता है)। उद्विजते (चोरों से डरता है)। चौरेभ्यस्त्रायते (चोरों से रक्षा करता है)। चौरेभ्यो रक्षति (चोरों से रक्षा करता है)। अपादान संज्ञा होकर पूर्ववत् पञ्चमी विभक्ति होकर 'चौर+भ्यस्' आया, भ्यस्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

हुवचने झल्येत् (७।३।१०३) से अदन्त अङ्ग को एत्व हो गया, ष पूर्ववत् है ॥

पराजेरसोढः ॥१।४।२६॥

पराजेः ६।१॥ असोढः १।१॥ स०—सोढुं शक्यते इति सोढः, न सोढः असोढः, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—अपादानम्, कारके ॥ अर्थः—परा इत्येवंपूर्वाद् 'जयतेः' धातोः प्रयोगे ऽसोढो योऽर्थस्तत् कारकमपादानसंज्ञं भवति ॥ उदा०—अध्ययनात् पराजयते ॥

भाषार्थः—[पराजेः] परापूर्वक जि धातु के प्रयोग में [असोढः] सहन नहीं किया जा सकता, ऐसे कारक की अपादान संज्ञा होती है ॥

उदा०—अध्ययनात् पराजयते (पढ़ाई से भागता है, अर्थात् अध्ययन के श्रम को सहन नहीं कर सकता) ॥

वारणार्थानामीप्सितः ॥१।४।२७॥

वारणार्थानाम् ६।३॥ ईप्सितः १।१॥ स०—वारणम् अर्थो येषां धातूनां ते वारणार्थास्तेषाम्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अपादानम्, कारके ॥ अर्थः—वारणार्थानां धातूनां प्रयोगे ईप्सितो योऽर्थस्तत् कारकमपादानसंज्ञं भवति ॥ उदा०—यवेभ्यो गां वारयति । यवेभ्यो गां निवर्त्तयति ॥

भाषार्थः—[वारणार्थानाम्] वारणार्थक अर्थात् रोकने अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में [ईप्सितः] ईप्सित='इष्ट' जो कारक उसकी अपादान संज्ञा होती है ॥

उदा०—यवेभ्यो गां वारयति (जौ के खेत से गाय को हटाता है) । यवेभ्यो गां निवर्त्तयति ॥ यहाँ यव ईप्सित हैं, अतः उसकी अपादान संज्ञा हो गई है ॥

अन्तर्द्धौ येनादर्शनमिच्छति ॥१।४।२८॥

अन्तर्द्धौ ७।१॥ येन ३।१॥ अदर्शनं १।१॥ इच्छति, तिङन्तं पदम् ॥ स०—अदर्शनमित्यत्र, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—अपादानम्, कारके ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अर्थः—अन्तर्द्धौ=व्यवधाननिमित्ते येनादर्शनम् इच्छति तत् पादानसंज्ञकं भवति ॥ उदा०—उपाध्यायाद् अन्तर्द्धत्ते। उपा निलीयते ॥

भाषार्थः—[अन्तर्द्धौ] व्यवधान के कारण से [येन] [अदर्शनम्] छिपना [इच्छति] चाहता हो, उस कारक की संज्ञा होती है ॥

उदा०—उपाध्यायाद् अन्तर्द्धत्ते (उपाध्याय से छिपता उपाध्यायाद् निलीयते (उपाध्याय से छिपता है) ॥ उदाह उपाध्याय से छिपना हो रहा है, सो उसकी अपादान संज्ञा होती

आख्यातोपयोगे ॥१।४।२९॥

आख्याता १।१॥ उपयोगे ७।१॥ अनु०—अपादानम्, अर्थः—आख्याता=प्रतिपादयिता, पाठयिता वा। उपयोगः=नि विद्याग्रहणम् । नियमपूर्वके विद्याग्रहणे य आख्याता=प तत्कारकमपादानसंज्ञं भवति ॥ उदा०—उपाध्यायाद् अधीते। याद् आगमयति ॥

भाषार्थः—[उपयोगे] नियम पूर्वक विद्याग्रहण करने में [आ जो पढ़ानेवाला कारक उसकी अपादान संज्ञा होती है ॥

उदा०—उपाध्यायाद् अधीते (उपाध्याय से नियमपूर्व है)। उपाध्यायाद् आगमयति ॥

जनिकर्तुः प्रकृतिः ॥१।४।३०॥

जनिकर्तुः ६।१॥ प्रकृतिः १।१॥ स०—जनेः कर्त्ता, तस्य.....षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—अपादानम्, कारके ॥ धातोर्यः कर्त्ता, तस्य या प्रकृतिः, कारणं=हेतुः तस्यापा भवति ॥ उदा०—शृङ्गात् शरो जायते। गोमयाद् वृश्चिको जा

भाषार्थः—[जनिकर्तुः] जन धातु का जो कर्त्ता, [प्रकृतिः] प्रकृति, कारण, उस कारक की अपादान संज्ञा शृङ्गात् शरो जायते (सींग से बाण बनते हैं) उदाहरण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कर्त्ता शर है, और उस शर की प्रकृति, कारण शृङ्गसींग है, तो उसकी अपादान संज्ञा हो गई, इसी प्रकार गोमयाद् वृश्चिको जायते (गोबर से बिच्छू पैदा होता है) इस उदाहरण में भी जायते का कर्त्ता वृश्चिक की प्रकृति गोमय है, सो वहाँ भी अपादान संज्ञा हुई ॥

यहाँ से 'कर्तुः' की अनुवृत्ति १।४।३१ तक जाती है ॥

भुवः प्रभवः ॥१।४।३१॥

भुवः ६।१॥ प्रभवः १।१॥ अनु०—अपादानम्, कर्तुः, कारके॥ अर्थः—धातोर्यः कर्त्ता, तस्य यः प्रभवः=उत्पत्तिस्थानम्, तत् कारकमपादानसंज्ञं भवति ॥ उदा०—हिमवतो गङ्गा प्रभवति। कश्मीरेभ्यो वितस्ता प्रभवति ॥

भाषार्थ :—[भुवः] भू धातु का जो कर्त्ता उसका जो [प्रभवः] प्रभव अर्थात् उत्पत्ति स्थान, उस कारक की अपादान संज्ञा होती है ॥

उदा०—हिमवतो गङ्गा प्रभवति (हिमालय से गङ्गा निकली है)। कश्मीरेभ्यो वितस्ता प्रभवति (काश्मीर से वितस्ता निकलती है)॥ गङ्गा जो कि भू धातु का कर्त्ता है, उसका हिमवत्=हिमालय प्रथम उत्पत्ति स्थान है, सो इस सूत्र से हिमवत् की अपादान संज्ञा होकर पञ्चमी विभक्ति का ङसि प्रत्यय आया, पूर्ववत् रुत्व विसर्गादि हुये। कश्मीरेभ्यः में इसी प्रकार पञ्चमी का भ्यस् आया है॥ संस्कृत में देशवाची शब्द प्रायः बहुवचन से प्रयुक्त होते हैं, अतः यहाँ काश्मीर के एक होने पर भी बहुवचन हुआ है ॥

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् ॥१।४।३२॥

कर्मणा ३।१॥ यम् २।१॥ अभिप्रैति तिङन्तं पदम्॥ स १।१॥ सम्प्रदानम् १।१॥ अनु०—कारके॥ अर्थः—करणभूतेन कर्मणा यस्याभिप्रायं साधयति (यमुद्दिशति) तत्कारकम्, कारके=क्रियायां सत्यां सम्प्रदानसंज्ञकं भवति ॥ उदा०—उपाध्यायाय गां ददाति। माणवकाय भक्तां ददाति ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः [*कर्मणा*] करणभूत कर्म के द्वारा [*यम्*] जिसका [*अभिप्रैति*] अभिप्राय सिद्ध किया जाये (जिसको लक्षित किया जाये) [*सः*] कारक (क्रिया होते हुये) [*सम्प्रदानम्*] संप्रदान संज्ञक होता है ॥

उदा०—उपाध्यायाय गां ददाति (उपाध्याय के लिये गौ देता है) माणवकाय भिक्षां ददाति (बच्चे के लिये भिक्षा देता है) । उदाहरण में देना क्रिया बन नहीं सकती जब तक गौ का रस्सा कर उपाध्याय के हाथ में नहीं दे दिया जाता या पुस्तक हाथ में बढ़ाकर देवदत्त के हाथ में नहीं दे दी जाती, सो बढ़ाना क्रिया पर देना क्रिया बनी । इस ददाति क्रिया का बनाने वाला (क्रि देवदत्त भी हुआ सो वह कारक संज्ञक हुआ, और प्रकृत संप्रदानसंज्ञक हुआ । संप्रदान संज्ञा होने से *चतुर्थी संप्रदाने* से संप्रदान में चतुर्थी विभक्ति हुई ॥

यहां से '*संप्रदानम्*' की अनुवृत्ति १।४।४१ तक जायगी ॥

रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ॥१।४।३३॥

रुच्यर्थानां ६।३॥ प्रीयमाणः १।१॥ *स०*—रुचिरर्थो येषां ते रुच्यर्थास्तेषां···बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—संप्रदानम्, कारके ॥ *अर्थः*—रुच्यर्थानां धातूनां प्रयोगे प्रीयमाणः = तृप्यमाणः (यस्तृप्यते) तत्कारकं संप्रदानसंज्ञकं भवति ॥ *उदा०* —देवदत्ताय रोचते मोदकः । स्वदतेऽपूपः ॥

भाषार्थः—[*रुच्यर्थानाम्*] रुचि अर्थात् अभिलाषार्थक धातु के प्रयोग में [*प्रीयमाणः*] प्रीयमाण अर्थात् जिसको वह वस्तु प्रिय लगे ऐसा जो कारक उसकी संप्रदान संज्ञा होती है ॥

उदा०—देवदत्ताय रोचते मोदकः (देवदत्त को लड्डू अच्छे लगते हैं) । यज्ञदत्ताय स्वदतेऽपूपः (यज्ञदत्त को पुआ स्वादु लगता है) ।

यहां उदाहरण में देवदत्त को लड्डू प्रिय लग रहा है, अतः संप्रदान संज्ञा हुई ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः ॥१।४।३४॥

ह्नुङ्स्थाशपाम् ६।३॥ ज्ञीप्स्यमानः १।१॥ स०—श्लाघह्नुङ्० तरद्वन्द्वः ॥ अनु०—सम्प्रदानम्, कारके ॥ अर्थः—ङ्, स्था, शप इत्येतेषां धातूनां प्रयोगे ज्ञीप्स्यमानः = ज्ञपयिषाणो यत् कारकं तत् सम्प्रदानसंज्ञं भवति ॥ उदा०—देवदत्ताय श्लाघते। देवदत्ताय ह्नुते। देवदत्ताय तिष्ठते। देवदत्ताय शपते ॥

भाषार्थः—[*श्लाघह्नुङ्स्थाशपाम्*] श्लाघ, ह्नुङ्, स्था, शप इन ४ धातुओं के प्रयोग में [*ज्ञीप्स्यमानः*] जो जनाए जाने की इच्छा वाला है उस कारक की, संप्रदान संज्ञा होती है ॥

उदा०—देवदत्ताय श्लाघते (देवदत्त की प्रशंसा देवदत्त को जनाने की इच्छा से करता है)। देवदत्ताय ह्नुते (देवदत्त की निन्दा देवदत्त को जनाने की इच्छा से करता है)। देवदत्ताय तिष्ठते (देवदत्त को जनाने की इच्छा से देवदत्त के लिये ठहरता है)। देवदत्ताय शपते (देवदत्त को बुरा भला देवदत्त को जनाने की इच्छा से करता है) ॥ उदाहरणों में देवदत्त जनाए जाने की इच्छा वाला है अर्थात् देवदत्त को जनाना चाहता है, सो देवदत्त सम्प्रदान संज्ञक हो गया ॥

धारेरुत्तमर्णः ॥१।४।३५॥

धारेः ६।१॥ उत्तमर्णः १।१॥ स०—ऋणे उत्तमः उत्तमर्णः... तत्पुरुषः (निपातनात् ऋणशब्दस्य परनिपातः) ॥ अनु०—सम्प्रदानम्, कारके ॥ अर्थः—धृञ् धारणे धातोः प्रयोगे, उत्तमर्णः = ऋणदाता यत् कारकं तत् संप्रदानसंज्ञकं भवति ॥ उदा०—देवदत्ताय शतं धारयति यज्ञदत्तः ॥

भाषार्थः—[*धारेः*] धारि (णिजन्त धृञ्) धातु के प्रयोग में [*उत्तमर्णः*] उत्तमर्ण अर्थात् ऋण देने वाला जो कारक उसकी संप्रदान संज्ञा होती है ॥

उदा०—देवदत्ताय शतं धारयति यज्ञदत्तः (यज्ञदत्त ने देवदत्त के सौ रुपए देने हैं) ॥ उदाहरण में देवदत्त ऋण देने वाला है सो उसकी संप्रदान संज्ञा हुई ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

स्पृहेरीप्सितः ॥१।४।३६॥

स्पृहेः ६।१॥ ईप्सितः १।१॥ अनु०—सम्प्रदानम्, कर्म सं... अर्थः—स्पृह ईप्सायां धातोः प्रयोगे ईप्सितोऽभिप्रेतो ... दानसंज्ञं भवति॥ उदा०—पुष्पेभ्यः स्पृहयति। फलेभ्य...

भाषार्थः—[स्पृहेः] स्पृह ईप्सायाम् धातु के प्रयोग में ईप्सित जो कारक उसकी संप्रदान संज्ञा होती है॥

उदा०—पुष्पेभ्यः स्पृहयति (फूलों की लालसा करता) स्पृहयति (फलों की लालसा करता है)॥

क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः ॥१।४।३७॥

क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानाम् ६।३॥ यम् २।१॥ प्रति अ... १।१॥ स०—क्रुधश्च द्रुहश्च ईर्ष्यश्च असूयश्च, क्रुध... तेषामर्थाः क्रुध···सूयार्थाः क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानाम्, ते क्रुधद्रुहेर्ष्यार्थास्तेषाम्···द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः॥ अनु... कारके॥ अर्थः—क्रुधार्थानां द्रुहार्थानां ईर्ष्यार्थानां अ... धातूनां प्रयोगे यं प्रति कोपस्तत् कारकं संप्रदानसंज्ञकं भवति... देवदत्ताय क्रुध्यति। देवदत्ताय द्रुह्यति। देवदत्ताय ई... दत्ताय असूयति॥

भाषार्थः—[क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानाम्] क्रुध, द्रुह, ईर्ष्या, इन अर्थों वाली धातुओं के प्रयोग में [यम्] जिसके [प्रति] [कोपः] क्रोध किया जाये, उस कारक की संप्रदान संज्ञा हो...

उदा०—देवदत्ताय क्रुध्यति (देवदत्त पर क्रोध क... देवदत्ताय द्रुह्यति (देवदत्त से द्रोह करता है) देवदत्त... (देवदत्त से ईर्ष्या करता है)। देवदत्ताय असूयति (... गुणों की भी निन्दा करता है)॥

यहां से 'यं प्रति कोपः' की अनुवृत्ति १।४।३८ तक जायेगी।

क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म ॥१।४।३८॥

क्रुधद्रुहोः ६।२॥ उपसृष्टयोः ६।२॥ कर्म १।१॥ स०—... त्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—यं प्रति कोपः, कारके॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ग्रो: = उपसर्गपूर्वकयोः क्रुधद्रुहोः प्रयोगे, यं प्रति कोपस्तत्कारकं कर्मसंज्ञं भवति। पूर्वेण सम्प्रदानसंज्ञा प्राप्ता कर्मसंज्ञा विधीयते॥ हा०—देवदत्तमभिक्रुध्यति। देवदत्तमभिद्रुह्यति।

भाषार्थ:—[*उपसृष्टयोः*] उपसर्ग से युक्त जो [*क्रुधद्रुहोः*] क्रुध या द्रुह धातु उनके प्रयोग में जिसके प्रति कोप किया जाये उस कारक कर्म संज्ञा होती है। पूर्वसूत्र से सम्प्रदान संज्ञा प्राप्त थी, यहां कर्मसंज्ञा विधान किया है, अतः यहां सम्प्रदानम् की अनुवृत्ति का संबन्ध नहीं जाता॥

उदा०—देवदत्तमभिक्रुध्यति (देवदत्त पर क्रोध करता है)। देवदत्तमभिद्रुह्यति (देवदत्त के साथ द्रोह करता है)॥ *कर्मणि द्वितीया* (२।३।२) से कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है॥

राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः ॥१।४।३९॥

राधीक्ष्योः ६।२॥ यस्य ६।१॥ विप्रश्नः १।१॥ स०—राधिश्च, ईश्च, राधीक्षी, तयोः···इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—सम्प्रदानम्, कारके॥ अर्थः—राधीक्ष्योः धात्वोः प्रयोगे यस्य विप्रश्नः, = विविधः प्रश्नः क्रियते तत् कारकं सम्प्रदानसंज्ञं भवति॥ उदा०—देवदत्ताय राध्नोति। देवदत्ताय ईक्षते॥

भाषार्थ:—[*राधीक्ष्योः*] राध तथा ईक्ष धातुओं के प्रयोग में [*यस्य*] जिसके विषय में [*विप्रश्नः*] विविध प्रश्न हों, उस कारक सम्प्रदान संज्ञा होती है॥

उदा०—देवदत्ताय राध्नोति (देवदत्त के विषय में पूछे जाने पर कि भाग्य का पर्यालोचन करता है)। देवदत्ताय ईक्षते॥

प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता ॥१।४।४०॥

प्रत्याङ्भ्याम् ५।२॥ श्रुवः ६।१॥ पूर्वस्य ६।१॥ कर्त्ता १।१॥ स०—प्रत्याङ्भ्यामित्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—सम्प्रदानम्, कारके॥ अर्थः—प्रति आङ् इत्येवंपूर्वात् श्रृणोतेः धातोः प्रयोगे, पूर्वस्य कर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यत् कारकं तत् सम्प्रदानसंज्ञं भवति ॥ उदा०—यज्ञदत्तः देवदत्तं प्रतिश्रृणोति। देवदत्ताय गामाश्रृणोति ॥

भाषार्थः—[*प्रत्याङ्भ्याम्*] प्रति आङ् पूर्वक [श्रुवः] श्रु प्रयोग में [*पूर्वस्य*] पूर्व का जो [*कर्त्ता*] कर्त्ता, ऐसा जो कारक सम्प्रदान संज्ञा होती है ॥

उदा०—यज्ञदत्तः देवदत्ताय गां प्रतिश्रृणोति (यज्ञदत्त देवदत्त को गौ देने की प्रतिज्ञा करता है) । देवदत्ताय गामाश्रृणोति उदाहरण में पहले देवदत्त गौ मांगता है, अर्थात् देवदत्त माँगने का कर्त्ता है, पश्चात् यज्ञदत्त देवदत्त को गौ देने की प्रतिज्ञा करता है, सो देवदत्त की, पूर्व क्रिया का कर्त्ता होने से सम्प्रदान संज्ञा हुई। यहां से '*पूर्वस्य कर्त्ता*' की अनुवृत्ति १।४।४१ तक जाती है ॥

अनुप्रतिगृणश्च ॥१।४।४१॥

अनुप्रतिगृणः ६।१॥ च अ० ॥ *स०*—अनु च प्रति च ताभ्यां गृणा, अनुप्रतिगृणा तस्य अनुप्रतिगृणः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—पूर्वस्य कर्त्ता, सम्प्रदानम्, कारके ॥ *अन्वयः*—अनु पूर्वस्य प्रति पूर्वस्य च गृणातेर्धातोः प्रयोगे पूर्वस्य कर्त्ता कारकं तत् सम्प्रदानसंज्ञं भवति ॥ उदा०—होत्रे अनुगृणाति प्रतिगृणाति ॥

भाषार्थः—[*अनुप्रतिगृणः*] अनु प्रति पूर्वक गृणाति धातु के प्रयोग में पूर्व का जो कर्त्ता, ऐसे कारक की [च] भी सम्प्रदान संज्ञा हो।

उदा०—होत्रे अनुगृणाति (होता को प्रोत्साहित करने के लिये दूसरा व्यक्ति मन्त्र बोलता है) 'होत्रे प्रतिगृणाति' यहाँ होता मन्त्र बोल रहा है, उसको कोई और प्रोत्साहित करता है, सो वह मन्त्र बोलने की क्रिया का कर्त्ता है, अतः पूर्व क्रिया का कर्त्ता होने से उसकी सम्प्रदान संज्ञा हुई है ॥

साधकतमं करणम् ॥१।४।४२॥

साधकतमम् १।१॥ करणम् १।१॥ *अनु०*—कारके ॥ *अन्वयः*—क्रियायाः सिद्धौ, यत् साधकतमं तत् कारकं करणसंज्ञं भवति ॥ उदा०—दात्रेण लुनाति। परशुना छिनत्ति ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ :—क्रिया की सिद्धि में जो [*साधकतमम्*] सबसे अधिक हायक कारक उसकी [*करणम्*] करण संज्ञा होती है।

उदा०—दात्रेण लुनाति (दरांती के द्वारा काटता है)। परशुना नत्ति (कुल्हाड़ी के द्वारा फाड़ता है)। उदाहरण में दात्र तथा शु काटने वा फाड़ने क्रिया में सबसे अधिक साधक हैं, ये न होते फाड़ना वा काटना क्रिया हो ही नहीं सकती थी, सो साधकतम ने से इनकी करण संज्ञा हुई। करण संज्ञा होने से *कर्तृकरणयोस्तृतीया* २।३।१८) से तृतीया विभक्ति हो गई॥

यहाँ से '*साधकतमम्*' की अनुवृत्ति १।४।४४ तक जाती है॥

दिवः कर्म च ॥१।४।४३॥

दिवः ६।१॥ कर्म १।१॥ च अ० ॥ अनु०—साधकतमम्, कारके ॥ र्थः—दिव्धातोः साधकतमं यत् कारकं तत् कर्मसंज्ञं भवति, चकारात् णसंज्ञं च ॥ उदा०—अक्षान् दीव्यति। अक्षैर्दीव्यति॥

भाषार्थः—[*दिवः*] दिव धातु का जो साधकतम कारक उसकी कर्म] कर्म संज्ञा होती है, [च] और करण संज्ञा भी होती है॥ सूत्र से करण संज्ञा ही प्राप्त थी, यहाँ कर्म का भी विधान कर दिया है॥

उदा०—अक्षान् दीव्यति (पासों के द्वारा खेलता है)। अक्षैर्दी-ति ॥

परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् ॥१।४।४४॥

परिक्रयणे ७।१॥ सम्प्रदानम् १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ अनु०—साध-मम्, कारके॥ अर्थ :—परिक्रयणे = नियतकाले वेतनादिना स्वीकरणेऽर्थे कतमं यत् कारकं तत् सम्प्रदानसंज्ञकं भवति विकल्पेन। पक्षे यथाप्राप्ता-संज्ञा भवति ॥ उदा०—शताय परिक्रीतोऽनुब्रूहि। शतेन परिक्रीतो-ब्रूहि ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*परिक्रयणे*] परिक्रयण[1] अर्थ में वर्तमान जो साधकारक उसकी [*सम्प्रदानम्*] सम्प्रदानसंज्ञा [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प होती है। पक्ष में यथाप्राप्त करण संज्ञा हो जाती है॥

उदा०—शताय परिक्रीतोऽनुब्रूहि (तू तो सौ रुपए से खरीदा है अब बोल ?) शतेन परिक्रीतोऽनुब्रूहि॥

आधारोऽधिकरणम् ॥१।४।४५॥

आधारः १।१॥ अधिकरणम् १।१॥ अनु०—कारके॥ अर्थः—क्रियासिद्धौ य आधारस्तत्कारकमधिकरणसंज्ञकं भवति॥ उदा०—कटे आस्ते। कटे शेते। स्थाल्यां पचति॥

भाषार्थः—क्रिया की सिद्धि में [*आधारः*] आधार जो उसकी [*अधिकरणम्*] अधिकरण संज्ञा होती है॥

उदा०—कटे आस्ते (चटाई पर बैठता है)। कटे शेते पर सोता है) स्थाल्यां पचति (बटलोई में पकाता है)॥

उदाहरण में आस्ते, शेते इत्यादि क्रियाओं का आधार कट है, सो उसकी अधिकरण संज्ञा हो गई, अधिकरण संज्ञा *सप्तम्यधिकरणे च* (२।३।३६) से सप्तमी विभक्ति हो गई॥

यहाँ से १।४।४८ तक '*आधारः*' की अनुवृत्ति जाती है॥

अधिशीङ्स्थासां कर्म ॥१।४।४६॥

अधिशीङ्स्थासाम् ६।३॥ कर्म १।१॥ स०—शीङ् च स्थाश्च शीङ्स्थासः अधेः शीङ्स्थासः अधिशीङ्स्थासस्तेषां..... पञ्चमीतत्पुरुषः॥ अनु०—आधारः, कारके॥ अर्थः—अधिपूर्वाणां शी, स्था, आस् इत्येतेषां धातूनां प्रयोगे आधारो यत् कारकं तत् कर्म भवति॥ उदा०—ग्राममधिशेते। ग्राममधितिष्ठति। पर्वतमधि

१—परिक्रयण का अभिप्राय यह है, कि किसी ने किसी से रुपया दिया, पर वह उसको लौटा नहीं सका, तब उसने उसको अर्थात् जब तक वह रुपया न चुका दे तब तक उसकी नौकरी बजाता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[अधिशीङ्स्थासाम्] अधिपूर्वक शीङ् स्था आस् इन धातुओं का आधार जो कारक उसकी [कर्म] कर्म संज्ञा होती है ॥ पूर्व सूत्र से आधार कारक की अधिकरण संज्ञा प्राप्त थी यहां कर्म संज्ञा का विधान कर दिया ॥

उदा०—ग्राममधिशेते (ग्राम में सोता है)। ग्राममधितिष्ठति ग्राम में अधिष्ठाता बनकर रहता है)। पर्वतमध्यास्ते (पर्वत के ऊपर रहता है) ॥

यहाँ से 'कर्म' की अनुवृत्ति १।४।४८ तक जाती है ॥

अभिनिविशश्च ॥१।४।४७॥

अभिनिविशः ६।१॥ च अ० ॥ स०—अभिश्च निश्च अभिनी भ्यां विश् अभिनिविश् तस्य....द्वन्द्वगर्भपञ्चमीतत्पुरुषः ॥ अनु०—कर्म, आधारः, कारके ॥ अर्थः—अभिनिपूर्वाद् विशधातोः प्रयोगे आधारो यत्कारकं तत्कर्मसंज्ञं भवति ॥ उदा०—ग्राममभिनिविशते ॥

भाषार्थः—[अभिनिविशः] अभि नि पूर्वक विश धातु का जो आधार कारक उसकी [च] भी कर्म संज्ञा होती है ॥

उदा०—ग्राममभिनिविशते (ग्राम में प्रविष्ट होता है) ॥

उपान्वध्याङ्वसः ॥१।४।४८॥

उपान्वध्याङ्वसः ६।१॥ स०—उप च अनु च अधि च आङ् च उपान्वध्याङस्तेभ्यो वस् उपान्वध्याङ्वस् तस्य....द्वन्द्वगर्भपञ्चमीतत्पुरुषः ॥ अनु०—कारके, कर्म, आधारः ॥ अर्थः—उप, अनु, अधि, आङ् एवंपूर्वाद् वसधातोः प्रयोगे आधारो यत्कारकं तत् कर्मसंज्ञं भवति ॥ उदा०—ग्राममुपवसति सेना। पर्वतमुपवसति। ग्राममनुवसति। ग्राममधिवसति। ग्राममावसति ॥

भाषार्थः—[उपान्वध्याङ्वसः] उप, अनु, अधि और आङ्पूर्वक वस धातु का जो आधार कारक उसकी कर्म संज्ञा होती है ॥

उदा०—ग्राममुपवसति सेना (ग्राम के पास सेना ठहरी है)। ग्राममुपवसति। ग्राममनुवसति सेना (ग्राम के साथ-साथ सेना ठहरी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

है) । ग्राममधिवसति (ग्राम में सेना ठहरी है)। (ग्राम में सेना आवास करती है) ॥

कर्तुरीप्सिततमं कर्म ॥१।४।४९॥

कर्तुः ६।१॥ ईप्सिततमम् १।१॥ कर्म १।१॥ अनु०— अर्थः—क्रियायां सत्यां यत्कर्तुरीप्सिततमं=इष्टतमं कारकं भवति ॥ उदा०—देवदत्तः कटं करोति । ग्रामं गच्छति

भाषार्थः—*[कर्तुः]* कर्ता का *[ईप्सिततमम्]* अत्यन्त जो कारक उसकी *[कर्म]* कर्म संज्ञा होती है ॥

उदा०—देवदत्तः कटं करोति (देवदत्त चटाई बनाता है गच्छति देवदत्तः (देवदत्त ग्राम को जाता है) ॥

उदाहरण में देवदत्त कर्ता को करोति वा गच्छति क्रिया अधिक अभीप्सित कट वा ग्राम है, सो कर्म संज्ञा होकर विभक्ति पूर्ववत् हुई है ॥

यहाँ से 'कर्म' की अनुवृत्ति १।४।५३ तक जाती है ॥

तथायुक्तं चानीप्सितम् ॥१।४।५०॥

तथायुक्तम् १।१॥ च अ० ॥ अनीप्सितम् १।१॥ प्रकारेण युक्तं तथायुक्तम्, मयूरव्यंसकादित्वात् (२।१।७२) समासः। न ईप्सितम्, अनीप्सितम्, नञ्तत्पुरुषः ॥ कर्म, कारके ॥ अर्थः—येन प्रकारेण कर्तुरीप्सिततमं भवति, तेनैव प्रकारेण यदि कर्तुरनीप्सिततमपि युक्तं कर्मसंज्ञकं स्यात् ॥ उदा०—विषं भक्षयति । चौरान् गच्छन्वृक्षमूलान्युपसर्पति ॥

भाषार्थः—जिस प्रकार कर्त्ता का अत्यन्त चाहा हुआ के साथ युक्त होता है *[तथायुक्तम्]* उसी प्रकार *[अनीप्सितम्]* न चाहा हुआ कारक क्रिया के साथ युक्त *[च]* भी कर्म संज्ञा होती है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—विषं भक्षयति (विष को खाता है)। चौरान् पश्यति (चोरों को देखता है)। ग्रामं गच्छन् वृक्षमूलान्युपसर्पति (गाँव को जाता हुआ, वृक्ष की जड़ों को छूता है)। उदाहरण में विष कोई नहीं खाना चाहता, वा चोरों को नहीं देखना चाहता, पर अकस्मात् देखना पड़ता है, विष किसी दुःख के कारण खाना पड़ता है, गाँव को जाते हुये न चाही हुई वृक्ष की जड़ों को छूते हुए जाता है, अतः यह सब अनीप्सित थे, सो अनीप्सित होने से पूर्व सूत्र से कर्म संज्ञक नहीं हो सकते थे, इस सूत्र ने कर दिया॥

अकथितं च ॥१।४।५१॥

अकथितम् १।१॥ च अ०॥ स०—न कथितम्, अकथितम् नञ्-तत्पुरुषः॥ अनु०—कर्म, कारके॥ अर्थः—अकथितमपादानादि-कारकैश्चानुक्तं यत् कारकं तत् कर्मसंज्ञं भवति॥ उदा०—पाणिना कांस्यपात्र्यां गां दोग्धि पयः। पौरवं गां याचते। गामवरुणद्धि व्रजम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। पौरवं गां भिक्षते। वृक्षमवचिनोति फलम्। माणवकं धर्मं ब्रूते। माणवकं धर्मम् अनुशास्ति॥

भाषार्थः—[*अकथितम्*] अनुक्त=अपादानादि से न कहा गया जो कारक उसकी [च] भी कर्म संज्ञा होती है॥

उदा०—पाणिना कांस्यपात्र्यां गां दोग्धि पयः (हाथ से काँसे के पात्र में गाय का दूध दुहता है)। पौरवं गां याचते (पौरव से गौ को माँगता है)। गामवरुणद्धि व्रजम् (गाय को बाड़े में रोकता है)। माणवकं पन्थानं पृच्छति (लड़के से मार्ग को पूछता है)। पौरवं गां भिक्षते। वृक्षमवचिनोति फलम् (वृक्ष से फल तोड़ता है)। माणवकं धर्मं ब्रूते (लड़के को धर्म का उपदेश देता है)। माणवकं धर्मम् अनुशास्ति (लड़के को धर्म का अनुशासन बताता है)॥ गां दोग्धि पयः, पौरवं गां याचते आदि उदाहरणों में पयः गां इत्यादि की जो कर्त्ता के ईप्सिततम होने से *कर्तुरीप्सित०* (१।४।४९) से कर्म संज्ञा हो ही जायगी, पर गौ या पौरव इत्यादि में क्या कारक हैं, अपादान करण इत्यादि हो नहीं सकते, अतः ये अकथित=अनुक्त ही हैं, सो इनकी प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होकर द्वितीया हो गई॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

महाभाष्य में इनका परिगणन कारिका में कर दिया है वह कारिका निम्न प्रकार है :—

दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिक्षिचिजामुपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ।
ब्रुविशासिगुणेन च यत् सचते तदकीर्त्तितमाचरितं कर्मि॥

अर्थात् दुह्, याच, रुध, प्रच्छ, भिक्ष्, तथा चिञ् इन धातु उपयोग (दूध इत्यादि) का जो निमित्त=कारण (गौ इत्यादि) अपूर्वविधि में=अकथित होने पर कर्म संज्ञा होती है। एवं ब्रू धातुओं के प्रधान कर्म (धर्मादि) से जो सम्बन्धित होता है (मा उसके अकथित की भी कर्म संज्ञा होती है॥

गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ ॥१।४।५२॥

गतिबुद्धि.....काणाम् ६।३॥ अणि लुप्तसप्तम्यन्तनिर्देशः १।१॥ स १।१॥ णौ ७।१॥ *स०*—गतिश्च बुद्धिश्च, प्रत्यव गतिबुद्धिप्रत्यवसानानि, गति.....वसानानि अर्था गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थाः, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। शब्दः कर्म शब्दकर्म, गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थाश्च शब्दकर्म च अकर्म गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाः, तेषां.....बहुव्रीहिगर्भो न णि अणि तस्मिन्.....नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—कर्म, *अर्थः*—गत्यर्थानां, बुद्ध्यर्थानां, प्रत्यवसानार्थानाञ्च, शब्द मकर्मकाणाञ्च, अण्यन्तावस्थायां यः कर्त्ता स ण्यन्तावस्थायां भवति॥ *उदा०*—गत्यर्थाः—गच्छति माणवको ग्रामम्, माणवकं ग्रामम्। याति माणवको ग्रामम्, यापयति माणवकं बुद्ध्यर्थाः—बुद्ध्यते माणवको धर्मम्, बोधयति माणवकं धर्मम्। माणवको धर्मम्, वेदयति माणवकं धर्मम्॥ प्रत्यवसानार्था माणवको रोटिकाम्, भोजयति माणवकं रोटिकाम्। अश्नाति रोटिकाम्, आशयति माणवकं रोटिकाम्॥ शब्दकर्मकाणाम् माणवको वेदम्, अध्यापयति माणवकं वेदम्। पठति माणवको पाठयति माणवकं वेदम्॥ अकर्मकाणाम्—आस्ते देवदत्तः, देवदत्तम्। शेते देवदत्तः, शाययति देवदत्तम्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ :—[गति.....कारणाम्] गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक, प्रत्यवसानार्थक=भोजनार्थक तथा शब्द कर्म वाली और अकर्मक धातुओं का जो *[अणि]* अण्यन्त अवस्था का *[कर्त्ता]* कर्त्ता *[स]* वह *[णौ]* ण्यन्त अवस्था में कर्म संज्ञक हो जाता है ॥

उदा०—गति अर्थवाली—गच्छति माणवको ग्रामम्, गमयति माणवकं ग्रामम् (लड़के को गाँव भेजता है)। याति माणवको ग्रामम्, यापयति माणवकं ग्रामम् ॥ बुद्धि अर्थ वाली—बुद्ध्यते माणवको धर्मम्, बोधयति माणवकं धर्मम् (लड़के को धर्म का बोध कराता है)। वेत्ति माणवको धर्मम्, वेदयति माणवकं धर्मम् ॥ भोजन अर्थ वाली—भुङ्क्ते माणवको रोटिकाम्, भोजयति माणवकं रोटिकाम् (माणवक को रोटी खिलाता है)। अश्नाति माणवको रोटिकाम्, आशयति माणवकं रोटिकाम् ॥ शब्दकर्म वाली—अधीते माणवको वेदम्, अध्यापयति माणवकं वेदम् (लड़के को वेद पढ़ाता है)। पठति माणवको वेदम्, पाठयति माणवकं वेदम्। अकर्मक—आस्ते देवदत्तः, आसयति देवदत्तम् (देवदत्त को बिठाता है) शेते देवदत्तः, शाययति देवदत्तम् ॥

ऊपर के सारे उदाहरण पहले अण्यन्त अवस्था में दिखाकर पुनः ण्यन्त में दिखाये गये हैं, सो स्पष्ट ही पता लग जाता है कि अण्यन्त में 'माणवक' कर्त्ता था, वह ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञक होकर द्वितीया विभक्ति वाला है। माणवक में *कर्तृकरणयोस्तृतीया* (२।३।१८) से अनभिहित कर्ता होने से तृतीया विभक्ति पाती थी, द्वितीया हो गई है ॥ यहाँ से *'अणि कर्त्ता स णौ'* की अनुवृत्ति १।४।५३ तक जायगी ॥

हृक्रोरन्यतरस्याम् ॥१।४।५३॥

हृक्रोः ६।२॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ स०—हृक्रोरित्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अणि, कर्त्ता, स णौ, कर्म, कारके ॥ अर्थः—हृञ्, कृञ् एतयोर्धात्वोः, अण्यन्तयोः, यः कर्त्ता स ण्यन्तावस्थायां विकल्पेन कर्मसंज्ञको भवति ॥ उदा०—हरति माणवको भारम्, हारयति माणवकं भारम्। हारयति भारं माणवकेन इति वा। करोति कटं देवदत्तः, कारयति कटं देवदत्तम्, कारयति कटं देवदत्तेन इति वा ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ:—[हृक्रोः] हृञ् तथा कृञ् धातु का अण्यन्त अव जो कर्त्ता वह ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञक [अन्यतरस्याम्] कि होता है। जब कर्म संज्ञक नहीं हुआ तो *कर्तृकरणयो*० (२।३। तृतीया विभक्तिहो गई ॥

उदा०—हरति माणवकः भारम्, हारयति माणवकं भार से भार उठवाता है)। हारयति भारं माणवकेन इति वा। क देवदत्तः, कारयति कटं देवदत्तम् (देवदत्त से चटाई बनवा कारयति कटं देवदत्तेन इति वा ॥

स्वतन्त्रः कर्त्ता ॥१।४।५४॥

स्वतन्त्रः १।१॥ कर्त्ता १।१॥ अनु०—कारके ॥ *अर्थः*—क्रियायाः स्वतन्त्रं यत् कारकं तत् कर्तृसंज्ञकं भवति। उदा०—देवदत्तः प यज्ञदत्तः पचति ॥

भाषार्थ:—क्रिया की सिद्धि में जो [*स्वतन्त्रः*] स्वतन्त्र कारक करे या न करे) उसकी [*कर्त्ता*] कर्त्ता संज्ञा होती है। कर्त्ता सं जाने से *प्रातिपदिकार्थ*० (२।३।४६) से प्रथमा विभक्ति हो जाती है।

यहाँ से '*कर्त्ता*' की अनुवृत्ति १।४।५५ तक जायगी ॥

तत्प्रयोजको हेतुश्च ॥१।४।५५॥

तत्प्रयोजकः १।१॥ हेतुः १।१॥ च अ०॥ *स*०—तस्य प्र तत्प्रयोजकः षष्ठीतत्पुरुषः। निपातनात् समासः॥ अनु०—कर्त्ता, क *अर्थ*:—तस्य स्वतन्त्रकर्त्तुर्यः प्रयोजकः = प्रेरकस्तस्य हेतुसंज्ञा चकारात् कर्त्तृसंज्ञा च ॥ उदा०—देवदत्तः कटं करोति, तं य प्रयुङ्क्ते-यज्ञदत्तो देवदत्तेन कटं कारयति ॥

भाषार्थ:—[*तत्प्रयोजकः*] उस स्वतन्त्र कर्ता का जो प्रयोजक प्रेरक उसकी [हेतुः] हेतु संज्ञा होती है [च] और कर्त्ता सं होती है ॥

उदा०—देवदत्तः कटं करोति, तं यज्ञदत्तः प्रयुङ्क्ते—यज्ञद दत्तेन कटं कारयति (यज्ञदत्त देवदत्त से चटाई बनवाता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदाहरण में यज्ञदत्त की हेतु संज्ञा होने से *हेतुमति च* (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय कृञ् धातु से हुआ है, तथा कर्त्ता संज्ञा होने से कर्त्तृ-प्रक्रिया में लकार आ गया है ॥

[निपातसंज्ञाप्रकरणम्]

प्राग्रीश्वरान्निपाताः ॥१।४।५६॥

प्राक् अ०॥ रीश्वरात् ५।१॥ निपाताः १।३॥ *अर्थः*—*अधिरीश्वरे* (१।४।९६) इत्येतस्मात् प्राक् निपातसंज्ञा भवन्ति, इत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ उदा०—च, वा, ह, अह ॥

भाषार्थः—[*रीश्वरात्*] *अधिरीश्वरे* सूत्र से [*प्राक्*] पूर्व२ [*निपाताः*] निपात संज्ञा का अधिकार जाता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ च, वा, ह आदियों की *चादयोऽसत्त्वे* (१।४।५७) से निपात संज्ञा होकर *स्वरादिनिपातमव्ययम्* (१।१।३६) से अव्यय संज्ञा हो जाती है, अव्यय संज्ञा होने से *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२) से सुप् का लुक् हो जाता है। निपात संज्ञा का सर्वत्र यही फल जानना चाहिये ॥

यहाँ से 'निपाताः' का अधिकार *विभाषा कृञि* (१।४।९७) तक जाता है ॥

चादयोऽसत्त्वे ॥१।४।५७॥

चादयः १।३॥ असत्त्वे ७।१॥ स०—च आदिर्येषां ते चादयः, बहुव्रीहिः। न सत्त्वम्, असत्त्वम्, तस्मिन् असत्त्वे नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—निपाताः ॥ *अर्थः*—चादयो निपातसंज्ञका भवन्ति, यदि सत्त्वेऽर्थे न वर्तन्ते ॥ उदा०—च, वा, ह, एव ॥

भाषार्थः—[*चादयः*] चादिगण में पढ़े शब्दों की निपात संज्ञा होती है, यदि वह [*असत्त्वे*] सत्त्व अर्थात् द्रव्यवाची न हों तो ॥

उदा०—च (और)। वा (विकल्प)। ह (निश्चय से)। एव (ही) ॥

यहाँ से '*असत्त्वे*' की अनुवृत्ति १।४।५८ तक जाती है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रादय उपसर्गाः क्रियायोगे ॥१।४।५८॥

प्रादयः १।३॥ उपसर्गाः १।३॥ क्रियायोगे ७।१॥ स०—प्र आदि प्रादयः, बहुव्रीहिः। क्रियाया योगः क्रियायोगः तस्मिन्..... तत्पुरुषः॥ अनु०—असत्त्वे निपाताः॥ अर्थ :—असत्त्व प्रादयो निपातसंज्ञका भवन्ति, ते च प्रादयः क्रियायोगे संज्ञकाश्च भवन्ति॥ उदा०—प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, प्रति, परि, उप। क्रियायोगे– प्रणयति। परिणयति। प्रणायकः॥

भाषार्थ :—[*प्रादयः*] प्रादिगण में पठित शब्दों की निपात होती है, तथा [*क्रियायोगे*] क्रिया के साथ प्रयुक्त होने पर [*उपसर्गाः*] उपसर्ग संज्ञा भी होती है।

उदा०—प्र (प्रकर्ष)। परा (परे)। अप (हटना)। क्रि योग में--प्रणयति (बनाता है)। परिणयति (विवाह करता प्रणायकः (ले जाने वाला)॥ प्र परा शब्दों की निपात संज्ञा का पूर्ववत् ही फल है। प्रणयति इत्यादि में नयति क्रिया के प्रादियों का योग है, सो उपसर्ग संज्ञा होकर *उपसर्गादसमासेऽपि* शस्य (८।४।१४) से उपसर्ग से उत्तर 'न' को 'ण' हो गया है॥ से '*प्रादयः*' की अनुवृत्ति १।४।५९ तक तथा '*क्रियायोगे*' की १। तक जाती है॥

[निपातसंज्ञान्तर्गतगतिसंज्ञाप्रकरणम्]

गतिश्च ॥१।४।५९॥

गतिः १।१॥ च अ०॥ अनु०—प्रादयः, क्रियायोगे॥ अर्थ प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञकाश्चापि भवन्ति॥ उदा०—प्र प्रकृतम्, यत् प्रकरोति॥

भाषार्थ :—प्रादियों की क्रिया के योग में [*गतिः*] गति संज्ञा और उपसर्ग संज्ञा भी होती है॥ आगे गति संज्ञा के सू *प्राग्रीश्वरान्निपाताः* (१।४।५६) सूत्र से गति संज्ञा वाले शब्दों निपात संज्ञा भी होती जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'गतिः' की अनुवृत्ति १।४।७८ तक जाती है ॥

ऊर्यादिच्विडाचश्च ॥१।४।६०॥

ऊर्यादिच्विडाचः १।३॥ च अ० ॥ स०—ऊरी आदिर्येषां ते ऊर्यादयः, ऊर्यादयश्च च्विश्च डाच्च इति ऊर्यादिच्विडाचः, बहुव्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—गतिः, क्रियायोगे, निपाताः ॥ अर्थ :—ऊर्यादयः शब्दा च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञका निपातसंज्ञकाश्च भवन्ति ॥ उदा०—ऊरीकृत्य । ऊरीकृतम् । यदूरीकरोति । शुक्लीकृत्य । शुक्लीकृतम् । यत् शुक्लीकरोति । पटपटाकृत्य । पटपटाकृतम्, यत् पटपटाकरोति ॥

भाषार्थ :—[ऊर्या...चः] ऊर्यादि शब्द तथा च्व्यन्त और डाजन्त शब्दों की [च] भी क्रिया के योग में गति और निपात संज्ञा होती है ॥

अनुकरणं चानितिपरम् ॥१।४।६१॥

अनुकरणं १।१॥ च अ० ॥ अनितिपरम् १।१॥ स०—इति परो यस्मात् तत् इतिपरम्, न इतिपरम् अनितिपरम् बहुव्रीहिगर्भो नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—गतिः, क्रियायोगे, निपाताः ॥ अर्थ :—अनितिपरम् अनुकरणं क्रियायोगे गतिसंज्ञकं निपातसंज्ञकं च भवति ॥ उदा०—खाट्कृत्य । खाट्कृतम् । यत् खाट्करोति ॥

भाषार्थ :—[अनितिपरम्] इति शब्द जिससे परे नहीं है, ऐसा जो [अनुकरणम्] अनुकरणवाची शब्द उसकी [च] भी क्रियायोग में गति और निपात संज्ञा होती है ॥

उदा०—खाट्कृत्य (खाट् ऐसा शब्द करके) । खाट्कृतम्, यत् खाट्करोति ॥ उदाहरण में पहले किसी ने 'खाट्' ऐसा बोला था दूसरे ने उसका अनुकरण करके 'खाट्' ऐसा कहा तो उस अनुकरण वाले शब्द की प्रकृत सूत्र से गति संज्ञा हो गई । पूर्ववत् ही सर्वत्र गति संज्ञा का फल जानें ॥

आदरानादरयोः सदसती ॥१।४।६२॥

आदरानादरयोः ७।२॥ सदसती १।२॥ स०—आदरश्च अनादरश्च आदरानादरौ, तयोः.....इतरेतरद्वन्द्वः ॥ सदसतीत्यत्रापीतरेतर-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

द्वन्द्वः ॥ अनु०—गतिः, क्रियायोगे, निपाताः ॥ अर्थ :—आदरे, अ
चार्थे यथाक्रमं सद् असत् शब्दौ गतिसंज्ञकौ च भव
उदा०—सत्कृत्य । सत्कृतम् । यत् सत्करोति । असत्कृत्य । असत्
यत् असत्करोति ॥

भाषार्थः—[सदसती] सत् और असत् शब्द यदि यथाक्र
करके [आदरानादरयोः] आदर तथा अनादर अर्थ में वर्त्तमान हो
उनकी क्रियायोग में गति संज्ञा और निपात संज्ञा होती
यथासङ्ख्यमनु० (१।३।१०) से यथाक्रम सत् शब्द से आदर
असत् शब्द से अनादर अर्थ में गति संज्ञा होती है ॥ उदा०—स
(सत्कार करके) । सत्कृतम् (सत्कार किया) । यत् सत्क
असत्कृत्य (असत्कार करके) । असत्कृतम्, यत् असत्क
गति संज्ञा के कार्य सब पूर्ववत् ही हैं ॥

भूषणेऽलम् ॥१।४।६३॥

भूषणे ७।१॥ अलम् अ० ॥ अनु०—गतिः, क्रियायोगे, निपा
अर्थः—भूषणेऽर्थे वर्त्तमानो योऽलं शब्दः स क्रियायोगे गतिसं
निपातसंज्ञकश्च भवति ॥ उदा०—अलंकृत्य । अलंकृतम् ।
अलंकरोति ॥

भाषार्थः—[भूषणे] भूषण अर्थ में वर्त्तमान जो [अलम्]
शब्द उसकी, क्रियायोग में गति संज्ञा और निपातसंज्ञा होती है ॥

उदा०—अलंकृत्य (भूषित करके) । अलंकृतम् । यत् अलंक

अन्तरपरिग्रहे ॥१।४।६४॥

अन्तः १।१॥ अपरिग्रहे ७।१॥ स०—अपरिग्रह इत्यत्र नञ्तत्पु
अनु०—गतिः क्रियायोगे निपाताः ॥ अर्थ :—अपरिग्रहेऽर्थे व
योऽन्तः शब्दः स क्रियायोगे गतिसंज्ञको निपातसंज्ञकश्च भवति ॥
अन्तर्हत्य । अन्तर्हतम् । यदन्तर्हन्ति ॥

भाषार्थः—[अपरिग्रहे] अपरिग्रह अर्थात् न स्वीकार करने
वर्त्तमान [अन्तः] अन्तर् शब्द की क्रियायोग में गति और
संज्ञा होती है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—अन्तर्हत्य (छिपा करके)। अन्तर्हतम्। यदन्तर्हन्ति ॥ स्वरसिद्धि परि० १।४।५६ के समान ही है, केवल यहाँ 'हन्ति' में धातुस्वर से 'हन्ति' आद्युदात्त है ॥

कर्णेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते ॥१।४।६५॥

कर्णेमनसी १।२॥ श्रद्धाप्रतीघाते ७।१॥ स०—कर्णे च मनश्च कर्णेमनसी, इतरेतरद्वन्द्वः। श्रद्धायाः प्रतीघातः श्रद्धाप्रतीघातस्तस्मिन्... षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—गतिः क्रियायोगे, निपाताः॥ अर्थः—कर्णे शब्दः मनस् शब्दश्च क्रियायोगे श्रद्धायाः प्रतीघातेऽर्थे गतिसंज्ञकौ निपातसंज्ञकौ च भवतः॥ उदा०—कर्णेहत्य पयः पिबति। मनोहत्य पयः पिबति॥

भाषार्थः—[श्रद्धाप्रतीघाते] श्रद्धा के प्रतीघात अर्थ में [कर्णेमनसी] कर्णे तथा मनस् शब्दों की क्रिया के योग में गति और निपात संज्ञा होती है॥

उदा०—कर्णेहत्य पयः पिबति (मन भर के दूध पीता है)। मनोहत्य पयः पिबति (मन भर के दूध पीता है)। उदाहरणों में दूध उतना पीता है, कि उसकी इच्छा और पीने की नहीं रहती, सो श्रद्धा का प्रतीघात अर्थ है॥

पुरोऽव्ययम् ॥१।४।६६॥

पुरः अ०॥ अव्ययम् १।१॥ अनु०—गतिः, क्रियायोगे, निपाताः॥ अर्थः—अव्ययं यत् पुरस् शब्दस्तस्य क्रियायोगे गतिसंज्ञा निपातसंज्ञा भवति॥ उदा०—पुरस्कृत्य। पुरस्कृतम्। यत् पुरस्करोति॥

भाषार्थः—[अव्ययम्] अव्यय जो [पुरः] पुरस् शब्द उसकी क्रिया के योग में गति और निपात संज्ञा होती है॥ असि प्रत्ययान्त (३।३।३९) जो पुर् शब्द वह अव्यय होता है॥

उदा०—पुरस्कृत्य (आगे करके)। पुरस्कृतम्। यत् पुरस्करोति॥

यहाँ से 'अव्ययम्' की अनुवृत्ति १।४।६८ तक जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अस्तं च ॥१।४।६७॥

अस्तम् अ० ॥ च अ० ॥ अनु०—अव्ययम्, गतिः, क्रियायोगे निपाताः ॥ अर्थः—अव्ययम् अस्तं शब्दो गतिसंज्ञको निपातसंज्ञ भवति क्रियायोगे ॥ उदा०—अस्तंगत्य सविता पुनरुदेति। गतानि धनानि। यदस्तंगच्छति ॥

भाषार्थः—[अस्तम्] अस्तम् शब्द जो अव्यय है, उसकी भी क्रिया के योग में गति और निपात संज्ञा होती है ॥

उदा०—अस्तंगत्य सविता पुनरुदेति (छिपने के बाद सू उदित होता है)। अस्तंगतानि धनानि (नष्ट हुये धन)। गच्छति (जो अस्त होता है)।

अच्छ गत्यर्थवदेषु ॥१।४।६८॥

अच्छ अ० ॥ गत्यर्थवदेषु ७।३॥ स०—गतिरर्थो येषां ते गत्यर्थाश्च वदश्च, गत्यर्थवदास्तेषु.....बहुव्रीहिगर्भेतरेतर अनु०—अव्ययम्, गतिः, क्रियायोगे निपाताः ॥ अर्थः—अ अच्छशब्दो गत्यर्थेषु वदधातोश्च योगे गतिसंज्ञको निपात भवति ॥ उदा०—अच्छगत्य। अच्छगतम्। यदच्छ अच्छोद्य। अच्छोदितम्। यत् अच्छवदति ॥

भाषार्थः—[गत्यर्थवदेषु] गत्यर्थक और वद धातु के योग में अच्छ शब्द जो अव्यय, उसकी गति और निपात संज्ञा होती है।

उदा०—अच्छगत्य (सामने जाकर) अच्छगतम्। यदच्छ अच्छोद्य (सामने कहकर) अच्छोदितम्। यत् अच्छवदति तथा क्त प्रत्ययों के परे वद को वचिस्वपि० (६।१।१५) से सम्प्रसार तथा आदगुणः (६।१।८४) से पूर्व पर को गुण होकर अच्छोद्य अच्छगत्य तथा अच्छगतम् में अनुदात्तोपदेश० (६।४।३७) से अ लोप हो गया है ॥

अदोऽनुपदेशे ॥ १।४।६९॥

अदः १।१॥ अनुपदेशे ७।१॥ स०—अनुपदेश इत्यत्र नञ् अनु०—गतिः, क्रियायोगे, निपाताः ॥ अर्थः—अनुपदेशेऽर्थे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

क्रियायोगे गतिसंज्ञको निपातसंज्ञकश्च भवति ॥ उदा०—अदःकृत्य। अदःकृतम्, यदद्दःकरोति ॥

भाषार्थ :—[अदः] अदः शब्द [अनुपदेशे] अनुपदेश अर्थ में हो तो क्रिया के योग में गति और निपात संज्ञा होती है ॥ किसी की कही हुई बात को उपदेश तथा जो स्वयं सोचा जाये वह अनुपदेश होता है ॥ उदा०—अदःकृत्य (स्वयं विचार कर)। अदःकृतम्। यददःकरोति ॥

तिरोऽन्तर्द्धौ ॥१।४।७०॥

तिरः अ० ॥ अन्तर्द्धौ ७।१॥ अनु०—गतिः, क्रियायोगे, निपाताः ॥ अर्थ :—अन्तर्द्धौ = व्यवधानेऽर्थे तिरः शब्दः क्रियायोगे गतिसंज्ञको निपातसंज्ञकश्च भवति ॥ उदा०—तिरोभूय। तिरोभूतम्। यत् तिरोभवति ॥

भाषार्थ :—[अन्तर्द्धौ] अन्तर्द्धि अर्थात् व्यवधान अर्थ में [तिरः] तिरः शब्द की क्रिया के योग में गति और निपात संज्ञा होती है ॥

उदा०—तिरोभूय (छिपकर)। तिरोभूतम्। यत् तिरोभवति। यहाँ धातु स्वर से 'भवति' आद्युदात्त है ॥

यहाँ से '*तिरोऽन्तर्द्धौ*' की अनुवृत्ति १।४।७१ तक जाती है ॥

विभाषा कृञि ॥१।४।७१॥

विभाषा १।१॥ कृञि ७।१॥ अनु०—तिरोऽन्तर्द्धौ, गतिः, क्रियायोगे, निपाताः ॥ अर्थ :—तिरः शब्दोऽन्तर्द्धावर्थे कृञ्धातोर्योगे विभाषा गतिसंज्ञको निपातसंज्ञकश्च भवति ॥

उदा०—तिरस्कृत्य, तिरःकृत्य। तिरस्कृतम् तिरःकृतम्। यत् तिरस्करोति यत्तिरःकरोति। अगतिसंज्ञापक्षे—तिरः कृत्वा। तिरः कृतम्। तिरः करोति ॥

भाषार्थ :—अन्तर्द्धि = छिपने अर्थ में, तिरः शब्द की [कृञि] कृञ् के योग में [*विभाषा*] विकल्प से गति और निपात संज्ञा होती है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'विभाषा' की अनुवृत्ति १।४।७५ तक, तथा 'कृञि' अनुवृत्ति १।४।७८ तक जायेगी ॥

उपाजेऽन्वाजे ॥१।४।७२॥

उपाजेऽन्वाजे, विभक्तिप्रतिरूपकौ निपातौ ॥ अनु०—विभाषा, कृञि, गतिः, क्रियायोगे, निपाताः ॥ अर्थः—उपाजे, अन्वाजे शब्दौ कृञि विभाषा गतिसंज्ञकौ भवतः ॥ उदा०—उपाजे कृत्य । उपाजे कृत्वा । अन्वाजेकृत्य । अन्वाजे कृत्वा ॥

भाषार्थः—[उपाजेऽन्वाजे] उपाजे तथा अन्वाजे शब्दों धातु के योग में विकल्प से गति और निपात संज्ञा होती है ॥

उदा०—उपाजेकृत्य (निर्बल की सहायता करके) उपाजे अन्वाजेकृत्य (निर्बल की सहायता करके), अन्वाजे कृत्वा ॥ गति संज्ञा न होने से समास न होकर क्त्वा को ल्यप् नहीं हुआ

साक्षात्प्रभृतीनि च ॥१।४।७३॥

साक्षात्प्रभृतीनि १।३॥ च अ०॥ स०—साक्षात् प्रभृति येषां साक्षात्प्रभृतीनि, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—विभाषा, कृञि, गतिः, योगे, निपाताः ॥ अर्थः—साक्षात् प्रभृतीनि शब्दरूपाणि विभाषा गतिनिपातसंज्ञकानि भवन्ति ॥ उदा०—साक्षात् साक्षात् कृत्वा । मिथ्याकृत्य । मिथ्या कृत्वा ॥

भाषार्थः—[साक्षात्प्रभृतीनि] साक्षात् इत्यादि शब्दों की कृञ् धातु के योग में विकल्प से गति और निपात संज्ञा होती

उदा०—साक्षात्कृत्य (अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष करके)। कृत्वा । मिथ्याकृत्य (शुद्ध को अशुद्ध बोलकर)। मिथ्या सर्वत्र जब गति संज्ञा नहीं होगी तब समास न होने से क्त्वा नहीं होगा, तथा परि० १।४।७१ के समान ही स्वर का भेद हो

अनत्याधान उरसिमनसी ॥१।४।७४॥

अनत्याधाने ७।१॥ उरसिमनसी १।२॥ स०—अनत्याधानं नञ्तत्पुरुषः । उरसि च मनसि चेति उरसिमनसी, इतरेत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

नु०—विभाषा कृञि, गतिः, क्रियायोगे, निपाताः ॥ अर्थः—अत्यानमुपश्लेषणं, तदभावे = अनुपश्लेषणेऽर्थे उरसिमनसी शब्दौ विभाषा ञि गतिसंज्ञकौ निपातसंज्ञकौ च भवतः ॥ उदा०—उरसिकृत्य। सि कृत्वा। मनसिकृत्य। मनसि कृत्वा ॥

भाषार्थ :—[अनत्याधाने] अनत्याधान अर्थात् चिपका के न रखने र्थ में [उरसिमनसी] उरसि और मनसि शब्दों की कृञ् धातु के योग विकल्प से गति और निपात संज्ञा होती है ॥ उदा०—उरसिय (अन्तःकरण में बिठाकर)। उरसि कृत्वा। मनसिकृत्य (मन निश्चय करके) मनसि कृत्वा ॥

यहाँ से 'अनत्याधाने' की अनुवृत्ति १।४।७५ तक जाती है ॥

मध्येपदेनिवचने च ॥१।४।७५॥

मध्ये, पदे, निवचने, लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ०॥ अनु०—नत्याधाने, विभाषा कृञि, गतिः, क्रियायोगे, निपाताः ॥ अर्थः—मध्ये, दे, निवचने, इत्येते शब्दाः कृञि विभाषा गतिसंज्ञका निपातसंज्ञकाश्च भवन्ति अनत्याधानेऽर्थे ॥ मध्ये, पदे इति विभक्तिप्रतिरूपकौ पातौ। निवचनं वचनाभावः, अर्थाभावेऽव्ययीभावसमासः (२।१।६)। पातनाद् एकारान्तत्वं भवति, निवचने इति ॥ उदा०—मध्येकृत्य। ये कृत्वा। पदेकृत्य। पदे कृत्वा। निवचनेकृत्य। निवचने कृत्वा ॥

भाषार्थः—[मध्येपदेनिवचने] मध्ये, पदे, निवचने शब्दों की भी कृञ् के योग में गति और निपात संज्ञा विकल्प से होती है ॥

उदा०—मध्येकृत्य (बीच में लेकर)। मध्ये कृत्वा। पदेकृत्य पद में गिनकर)। पदे कृत्वा। निवचनेकृत्य (वाणी को संयम में रके)। निवचने कृत्वा ॥

नित्यं हस्ते पाणावुपयमने ॥१।४।७६॥

नित्यं अ० ॥ हस्ते पाणौ विभक्तिप्रतिरूपकौ निपातौ ॥ उपयमने १॥ अनु०—कृञि, गतिः, क्रियायोगे, निपाताः ॥ अर्थः—उपयमनेऽर्थे स्ते, पाणौ, शब्दौ कृञि नित्यं गतिसंज्ञकौ निपातसंज्ञकौ च भवतः ॥ ा०—हस्तेकृत्य। पाणौकृत्य ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[हस्तेपाणौ] हस्ते, तथा पाणौ शब्द [उपयमन अर्थात् विवाह विषय में हों तो [नित्यम्] नित्य ही कृञ् के योग में गति और निपात संज्ञा होती है ॥ उदा०—(विवाह करके)। पाणौकृत्य (विवाह करके) ॥

यहाँ से 'नित्यम्' की अनुवृत्ति १।१।७८ तक जाती है ॥

प्राध्वं बन्धने ॥१।४।७७॥

प्राध्वं अ० ॥ बन्धने ७।१॥ अनु०—नित्यं, कृञि, गतिः, क्रि निपाताः ॥ अर्थः—प्राध्वम् अव्ययम् आनुकूल्येऽर्थे वर्त्तते, त यदि बन्धनहेतुकं भवति, तदा प्राध्वं शब्दस्य नित्यं गतिसंज्ञा संज्ञा च भवति कृञि ॥ उदा० प्राध्वंकृत्य ॥

भाषार्थः—[प्राध्वम्] प्राध्वं यह अव्यय शब्द आनुकूल्य है, सो इस शब्द की [बन्धने] बन्धनविषयक अनुकूलता गति और निपात संज्ञा होती है ॥

उदा०—प्राध्वंकृत्य (अनुकूलता से बांधकर) ॥

जीविकोपनिषदावौपम्ये ॥१।४।७८॥

जीविकोपनिषदौ १।२॥ औपम्ये ७।१॥ स०—जीविको० रेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—नित्यं, कृञि, गतिः, क्रियायोगे, नि अर्थः—जीविका, उपनिषद् इत्येतौ शब्दौ औपम्ये विषये नि गतिसंज्ञकौ निपातसंज्ञकौ च भवतः ॥ उदा०—जीवि उपनिषत्कृत्य ॥

भाषार्थः—[जीविकोपनिषदौ] जीविका और उपनिषद् [औपम्ये] उपमा के विषय में कृञ् के योग में गति और संज्ञा होती है ॥ उदा०—जीविकाकृत्य (जीविका के समान उपनिषत्कृत्य (रहस्य के समान करके) ॥

ते प्राग्धातोः ॥१।४।७९॥

ते १।३॥ प्राग् अ० ॥ धातोः ५।१॥ अर्थः—ते गत्युपसर्ग धातोः प्राग् भवन्ति ॥ तथा च पूर्वत्रैवोदाहृताः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ :—[ते] वे गति और उपसर्ग संज्ञक शब्द [धातोः] धातु [प्राक्] पहले होते हैं, अर्थात् धातु से पीछे वा मध्य में प्रयुक्त नहीं गे, पूर्व ही प्रयुक्त होंगे ॥ जैसा कि सारे सूत्रों के उदाहरणों में ते तथा उपसर्गों को धातु से पहले ही लाये हैं ॥

यहाँ से 'ते धातोः' की अनुवृत्ति १।४।८१ तक जायेगी ॥

छन्दसि परेऽपि ॥१।४।८०॥

छन्दसि ७।१॥ परे ७।१॥ अपि अ० ॥ अनु०—ते, धातोः ॥ :—छन्दसि विषये ते गत्युपसर्गसंज्ञकाः परेऽपि भवन्ति, अपि न्दात् प्राक् च ॥ उदा०—याति नि हस्तिना । नियाति हस्तिना । न्ति नि मुष्टिना । निहन्ति मुष्टिना ॥

भाषार्थः—[छन्दसि] वेद विषय में वे गतिउपसर्गसंज्ञक शब्द धातु [परे] परे तथा पूर्व में [अपि] भी आते हैं। अपि शब्द से पूर्व भी लिया है। जैसा कि उदाहरण में 'नि' उपसर्ग याति तथा हन्ति से [तथा पूर्व भी प्रयुक्त हुआ है ॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति १।४।८१ तक जायेगी ॥

व्यवहिताश्च ॥१।४।८१॥

व्यवहिताः १।३॥ च अ० ॥ अनु०—छन्दसि ते धातोः ॥ :—ते गत्युपसर्गसंज्ञकाश्छन्दसि विषये धातोः व्यवहिताश्च यन्ते ॥ उदा०—आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः । (ऋ० ४५।१) ॥ आयाहि (ऋ० ३।४३।२) ॥ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु० (ऋ० ८९।१) ॥ उपत्वाऽग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त सि ॥ (ऋ० १।१।७) ॥

भाषार्थः—वे गति और उपसर्गसंज्ञक शब्द वेद में [व्यवहिताः] वधान से [च] भी देखे जाते हैं ॥ जैसा कि ऊपर उदाहरणों में उपसर्ग याहि तथा यन्तु से व्यवधान होने पर भी हुआ है, तथा व्यवहित होने पर भी 'आयाहि' ऐसा वेद में होता है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[निपातान्तर्गतकर्मप्रवचनीयसंज्ञाप्रकरणम्]

कर्मप्रवचनीयाः ॥१।४।८२॥

कर्मप्रवचनीयाः १।३॥ अर्थ :—इत ऊर्ध्वं कर्मप्रवचनीयसंज्ञा इत्यधिकारो वेदितव्यः, *विभाषा कृञि* (१।४।९७) इति तत्रैवोदाहरिष्यामः ॥

भाषार्थः—[*कर्मप्रवचनीयाः*] *कर्मप्रवचनीयाः* यह सूत्र का अधिकार दोनों है। इसका अधिकार १।४।९७ तक जायेगा, तक के सूत्रों में यह कर्मप्रवचनीय संज्ञा करता जायेगा ॥

अनुर्लक्षणे ॥१।४।८३॥

अनुः १।१॥ लक्षणे ७।१॥ अनु०—कर्मप्रवचनीयाः, अर्थ :—अनुशब्दः कर्मप्रवचनीयसंज्ञको निपातसंज्ञकश्च भवति द्योत्ये ॥ उदा०—शाकल्यस्य संहितामनुप्रावर्षत्। अगस्त्यमन्व प्रजाः ॥

भाषार्थः—[अनुः] अनु शब्द की [*लक्षणे*] लक्षण हो रहा हो तो कर्मप्रवचनीय और निपात संज्ञा हो जाती है ॥

उदा०—शाकल्यस्य संहितामनुप्रावर्षत् (शाकल प्रोक्त समाप्त होते ही वर्षा हुई)। अगस्त्यमन्वसिञ्चन् प्रजाः (नक्षत्र के उदय होते ही वर्षा हुई) ॥

कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से '*संहिता*' और '*अगस्त्यं*' में *प्रवचनीययुक्ते द्वितीया* (२।३।८) से द्वितीया विभक्ति हो गई, तथा गति संज्ञा का भी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से बाध हो '*अन्वसिञ्चन्*' में *उपसर्गात् सुनोतिसुवति०* (८।३।६५) से उत्तर न होने के कारण षत्व नहीं हुआ। निपाताः का अधि से यहाँ सर्वत्र निपात संज्ञा का भी समावेश होता जा रहा पूर्ववत् अव्यय संज्ञा होकर सु का लुक् हो जाएगा। उदाहरण की समाप्ति वर्षा को लक्षित करती है ॥

यहाँ से 'अनुः' की अनुवृत्ति १।४।८५ तक जायगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तृतीयार्थे ॥१।४।८४॥

तृतीयार्थे ७।१॥ स०—तृतीयायाः अर्थः तृतीयार्थस्तस्मिन्····· ष्ठीतत्पुरुषः। अनु०—अनुः, कर्मप्रवचनीयाः, निपाताः॥ अर्थः—तृतीयार्थे द्योत्ये अनुशब्दः कर्मप्रवचनीयसंज्ञको निपातसंज्ञकश्च भवति॥ उदा०—नदीमन्ववसिता सेना॥

भाषार्थः—[*तृतीयार्थे*] तृतीयार्थ द्योतित हो रहा हो तो अनु शब्द की कर्मप्रवचनीय और निपात संज्ञा होती है॥

उदा०—नदीमन्ववसिता सेना (नदी के साथ-साथ सेना बस रही है)॥ कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से नदी में पूर्ववत् द्वितीया विभक्ति हो गई है॥

हीने ॥१।४।८५॥

हीने ७।१॥ अनु०—अनुः, कर्मप्रवचनीयाः, निपाताः॥ अर्थः—हीने द्योत्येऽनुः कर्मप्रवचनीयसंज्ञको निपातसंज्ञकश्च भवति॥ उदा०—अनुशाकटायनं वैयाकरणाः। अन्वर्जुनं योद्धारः॥

भाषार्थः—[*हीने*] हीन अर्थात् न्यूनता द्योतित होने पर अनु शब्द की कर्मप्रवचनीय और निपात संज्ञा होती है॥

उदा०—अनुशाकटायनं वैयाकरणाः (सब वैयाकरण शाकटायन से पीछे ही रहे)। अन्वर्जुनं योद्धारः (सब योद्धा अर्जुन से पीछे ही रहे)। पूर्ववत् यहाँ भी द्वितीया विभक्ति हो जाती है॥

यहाँ से '*हीने*' की अनुवृत्ति १।४।८६ तक जायगी॥

उपोऽधिके च ॥१।४।८६॥

उपः १।१॥ अधिके ७।१॥ च अ०॥ अनु०—हीने, कर्मप्रवचनीयाः, निपाताः॥ अर्थः—उपशब्दोऽधिके हीने च द्योत्ये कर्मप्रवचनीयसंज्ञको निपातसंज्ञकश्च भवति॥ उदा०—उपखार्यां द्रोणः। उपनिष्के कार्षापणम्। *हीने*—उपशाकटायनं वैयाकरणाः॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*उपः*] उपशब्द [*अधिके*] अधिक [च] तथा अर्थ द्योतित होने पर कर्मप्रवचनीय और निपात संज्ञक होता है॥

उदा०—उपखार्यां द्रोणः (खारी द्रोण से बड़ी है)। उपकार्षापणम् (कार्षापण से निष्क बड़ा है)। हीन में—उपशाकटायनं वैयाकरणाः (शाकटायन से सब वैयाकरण छोटे हैं)॥

कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उपखार्यां तथा उपनिष्के में *यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी* (२।३।९) से सप्तमी विभक्ति हुई है। में पूर्ववत् द्वितीया हो गई॥

अपपरी वर्जने ॥१।४।८७॥

अपपरी १।२॥ वर्जने ७।१॥ स०—अपपरी इत्यत्रेतरेतर० अनु०—कर्मप्रवचनीयाः, निपाताः॥ *अर्थः*—अपपरी शब्दौ वर्जने कर्मप्रवचनीयसंज्ञकौ निपातसंज्ञकौ च भवतः॥ उदा०—अपत्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः। परित्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः॥

भाषार्थः—[*वर्जने*] वर्जन अर्थात् छोड़ने अर्थ में [अप परि शब्दों की कर्मप्रवचनीय और निपात संज्ञा होती है॥

उदा०—अपत्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः (त्रिगर्त देश को छोड़कर हुई)। परित्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः। त्रिगर्तेभ्यः में पञ्चमी विभक्ति *पञ्चम्यपाङ्परिभिः* (२।३।१०) से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से हो गई है।

आङ्मर्यादावचने ॥१।४।८८॥

आङ् १।१॥ मर्यादावचने ७।१॥ स०—मर्यादाया वचनं मर्यादावचनं तस्मिन्...षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—कर्मप्रवचनीयाः, निपाताः॥ अर्थः मर्यादावचनेऽर्थे, आङ् कर्मप्रवचनीयसंज्ञको निपातसंज्ञकश्च भवति॥ उदा०—मर्यादायाम्—आ पाटलिपुत्राद् वृष्टो देवः। अभिविधौ—आ कुमारेभ्यो यशः पाणिनेः। आ मथुरायाः, आ साङ्काश्यादित्यादि॥

भाषार्थः—[*आङ्*] आङ् की [*मर्यादावचने*] मर्यादा अभिविधि अर्थ में कर्मप्रवचनीय और निपात संज्ञा होती है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वचन ग्रहण करने से 'अभिविधि' अर्थ भी यहां निकल आता है। र्यादा किसी अवधि को कहते हैं, अभिविधि भी मर्यादा ही होती है, समें अन्तर इतना है कि जहां से किसी बात की अवधि बांधी ाय उसको लेकर अभिविधि होती है, तथा मर्यादा उस अवधि से वर२ तक समझी जाती है। जैसे कि आ पाटलिपुत्रात् वृष्टो देवः इस दाहरण में मर्यादा है सो इसका अर्थ होगा पाटलिपुत्र से (अवधि से) वर२ वर्षा हुई। यदि यह उदाहरण अभिविधि में होगा तो इसका र्थ होगा, पाटलिपुत्र को लेकर, अर्थात् पाटलिपुत्र में भी वर्षा हुई। सी प्रकार अभिविधि में 'आ कुमारेभ्यो यशः पाणिनेः' का अर्थ है वर२ तक पाणिनि जी का यश है॥

कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से इसके योग में पाटलिपुत्र इत्यादि ब्दों में *'पञ्चम्यपाङ्परिभिः'* से पञ्चमी विभक्ति पूर्ववत् हुई है। *पाङ्मर्यादाभिविध्योः* (२।१।१२) से यहां पक्ष में समास भी हो जाता है, समास होकर आपाटलिपुत्रं, आकुमारं इत्यादि रूप भी बनेंगे॥

लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः॥१।४।८९॥

लक्षणेत्थ...वीप्सासु ७।३॥ प्रतिपर्यनवः १।३॥ स०—लक्षणञ्च, त्थम्भूताख्यानञ्च, भागश्च, वीप्सा च, लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्साः, सु···इतरेतरद्वन्द्वः। प्रतिपर्यनव इत्यत्रापि इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—र्मप्रवचनीयाः, निपाताः॥ अर्थः—प्रति, परि, अनु इत्येते शब्दाः, क्षण, इत्थम्भूताख्यान, भाग, वीप्सा इत्येतेष्वर्थेषु कर्मप्रवचनीयसंज्ञकाः, पातसंज्ञकाश्च भवन्ति॥ उदा०—लक्षणे—वृक्षं प्रति विद्योतते द्युत्। वृक्षं परि विद्योतते। इत्थम्भूताख्याने—साधुर्देवदत्तो मातरं ति, मातरं परि, मातरम् अनु। भागे—यदत्र मां प्रति स्यात्। यदत्र परि स्यात्, माम् अनु स्यात्। वीप्सा—वृक्षं २ प्रति सिञ्चति। क्षं २ परि सिञ्चति। वृक्षम् २ अनु सिञ्चति॥

भाषार्थः—[प्रतिपर्यनवः] प्रति, परि, अनु इनकी [लक्षणे···प्सासु] क्षण, इत्थम्भूताख्यान, (अर्थात् वह इस प्रकार का है ऐसा कहने में) ाग और वीप्सा इन २ अर्थों में कर्मप्रवचनीय और निपात संज्ञा ती है। वीप्सा व्याप्ति को कहते हैं॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—लक्षण में—वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् (वृक्ष पर चमकती है)। वृक्षं परि विद्योतते, वृक्षमनु विद्योतते। ख्यान में—साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति (देवदत्त माता के प्रति व्यवहार करता है) मातरं परि, मातरम् अनु। भाग में—प्रति स्यात् (यहाँ जो मेरा भाग हो)। यदत्र मां परि स्यात्, अनु स्यात्। वीप्सा—वृक्षं २ प्रति सिञ्चति (प्रत्येक वृक्ष को है) वृक्षं २ परि सिञ्चति, वृक्षम् २ अनु सिञ्चति॥ कर्मप्र संज्ञा होने से, उपसर्ग संज्ञा का बाध हो गया, तो स्व सिञ्चति में षत्व *उपसर्गात् सुनोति०* (८।३।६५) से नहीं है। पूर्ववत् यहाँ भी द्वितीया हो जायेगी। वीप्सा में 'वृक्षं' को द्वित्व *नित्यवीप्सयोः* (८।१।४) से हो जाता है॥

यहाँ से *'लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु'* की अनुवृत्ति तक जायगी॥

अभिरभागे ॥१।४।९०॥

अभिः १।१॥ अभागे ७।१॥ स०—अभाग इत्यत्र तत्पुरुषः॥ अनु०—लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु, कर्मप्रवच निपाताः॥ अर्थः—भागवर्जितेषु लक्षणेत्थम्भूताख्यानभाग स्वर्थेष्वभिः कर्मप्रवचनीयसंज्ञको निपातसंज्ञकश्च भवति॥ लक्षणे—वृक्षमभि विद्योतते विद्युत्। इत्थम्भूताख्यान—साधुर्दे मातरमभि। वीप्सायाम्—वृक्षं वृक्षमभि सिञ्चति॥

भाषार्थः—लक्षणादि अर्थों में [*अभिः*] अभि शब्द की कर्म नीय और निपात संज्ञा होती है, [*अभागे*] भाग अर्थ को छोड़ लक्षणादि अर्थों को कहने में भाग अर्थ में भी कर्मप्रव संज्ञा प्राप्त थी सो 'अभागे' इस पद ने निषेध कर दि उदा०—लक्षण में—वृक्षमभि विद्योतते विद्युत् (वृक्ष पर चमकती है) इत्थम्भूताख्यान में—साधुर्देवदत्तो मातरमभि (माता से अच्छा व्यवहार करता है) वीप्सा में—वृक्षं वृ सिञ्चति (प्रत्येक वृक्ष को सींचता है)। पूर्ववत् षत्व निषेध द्वितीया विभक्ति कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से हो गई है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः ॥१।४।९१॥

प्रतिः १।१॥ प्रतिनिधिप्रतिदानयोः ७।२॥ स०—प्रतिनिधिश्च, प्रतिदानञ्च प्रतिनिधिप्रतिदाने तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मप्रवचनीयाः, निपाताः॥ अर्थः—प्रतिशब्दस्य प्रतिनिधिप्रतिदानयोरर्थयोः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा निपातसंज्ञा च भवति ॥ उदा०—अभिमन्युरर्जुनतः प्रति। माषान् तिलेभ्यः प्रति यच्छति॥

भाषार्थः—[प्रतिः] प्रति शब्द की [प्रति ···दानयोः] प्रतिनिधि और प्रतिदान अर्थ में कर्मप्रवचनीय और निपात संज्ञा होती है॥

उदा०—अभिमन्युरर्जुनतः प्रति (अभिमन्यु अर्जुन का प्रतिनिधि है)। माषान् तिलेभ्यः प्रतियच्छति (तिलों के बदले उड़द देता है)॥ यहाँ *प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्* (२।३।११) से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से 'तिलेभ्यः' तथा 'अर्जुनतः' में पञ्चमी विभक्ति हो गई है। अर्जुनतः में *अपादाने चाहीय०* (५।४।४५) से तसि प्रत्यय हुआ है। अर्जुन तसि = अर्जुनतस् = अर्जुनतः बना॥

अधिपरी अनर्थकौ ॥१।४।९२॥

अधिपरी १।२॥ अनर्थकौ १।२॥ स०—अधिश्च परिश्चेति अधिपरी, इतरेतरद्वन्द्वः। न विद्यते, अर्थान्तरं ययोस्तावनर्थकौ, बहुव्रीहिः॥ अनु०—कर्मप्रवचनीयाः, निपाताः॥ अर्थः—अनर्थान्तरवाचिनौ = अभिन्नार्थवाचिनौ अधिपरी शब्दौ कर्मप्रवचनीयसंज्ञकौ निपातसंज्ञकौ च भवतः॥ उदा०—कुतोऽध्यागच्छति। कुतः पर्यागच्छति॥

भाषार्थः—[अधिपरी] अधि, परि शब्द यदि [अनर्थकौ] अनर्थक अर्थात् दोनों अभिन्नार्थक = समानार्थक हों तो उनकी कर्मप्रवचनीय और निपात संज्ञा होती है॥ उदाहरण में अधि, परि अनर्थक = समानार्थक हैं, सो कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो गई है॥

सुः पूजायाम् ॥१।४।९३॥

सुः १।१॥ पूजायाम् ७।१॥ अनु०—कर्मप्रवचनीयाः, निपाताः॥ अर्थः—सुशब्दः पूजायामर्थे कर्मप्रवचनीयसंज्ञको निपातसंज्ञकश्च भवति॥ उदा०—सुसिक्तं भवता। सुस्तुतं भवता॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*सुः*] सु शब्द की [*पूजायाम्*] पूजा अर्थ में प्रवचनीय और निपात संज्ञा होती है॥ उदा०—सुसिक्तं (आपने बहुत अच्छा सींचा)। सुस्तुतं भवता (आपने स्तुति की)॥ कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्ग संज्ञा का गया, तो *उपसर्गात् सुनोति०* (८।३।६५) से षत्व नहीं हुआ॥

अतिरतिक्रमणे च ॥१।४।९४॥

अतिः १।१॥ अतिक्रमणे ७।१॥ च अ०॥ अनु०—कर्मप्रवचनीयाः निपाताः॥ अर्थः—अतिशब्दः कर्मप्रवचनीयसंज्ञको निपातसंज्ञकः भवति, अतिक्रमणेऽर्थे, चकारात् पूजायामपि॥ उदा०—अतिसिक्तं भवता, अतिस्तुतमेव भवता। पूजायाम्-अतिसिक्तं भवता। अतिस्तुतं भवता॥

भाषार्थः—[*अतिः*] अति शब्द की [*अतिक्रमणे*] अतिक्रमण उल्लङ्घन [*च*] और पूजा अर्थ में कर्मप्रवचनीय तथा निपात संज्ञा होती है॥

उदा०—अतिसिक्तमेव भवता (आपने अधिक ही सींच दिया), अतिस्तुतमेव भवता (आपने बहुत ही स्तुति की)। पूजा में—अतिसिक्तं भवता (आपने अच्छा सींचा) अतिस्तुतं भवता (आपने सम्यक् स्तुति की)॥ पूर्ववत् षत्व न होना ही कर्मप्रवचनीय संज्ञा का फल है॥

अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु ॥१।४।९५॥

अपिः १।१॥ पदार्थ……समुच्चयेषु ७।३॥ स०—पदार्थश्च इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—कर्मप्रवचनीयाः, निपाताः॥ अर्थः अपिः शब्दः पदार्थ, सम्भावन, अन्ववसर्ग, गर्हा, समुच्चय इत्येतेषु कर्मप्रवचनीयसंज्ञको निपातसंज्ञकश्च भवति॥ उदा०—पदार्थे—मधुनोऽपि स्यात्। सर्पिषोऽपि स्यात्॥ सम्भावने—अपि सिञ्चेत् मूलकसहस्रम् अपि स्तुयाद् राजानम्। अन्ववसर्गे—अपि सिञ्च, अपि स्तुहि। गर्हायाम्—धिग् जाल्मं देवदत्तम्, अपि सिञ्चेत् पलाण्डुम्। समुच्चये—अपि सिञ्च, अपि स्तुहि॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थ :—[*अपिः*] अपि शब्द की [*पदार्थ*·····*येषु*] पदार्थ, सम्भावन, अन्ववसर्ग (अर्थात् कामचार करे, या न करे) गर्हा = निन्दा तथा समुच्चय इन-इन अर्थों में कर्मप्रवचनीय और निपात संज्ञा होती है ॥

उदा०—पदार्थ में—मधुनोऽपि स्यात् (थोड़ा सा शहद भी चाहिये)। सर्पिषोऽपि स्यात् (थोड़ा सा घी भी चाहिये) सम्भावन में—अपि सिञ्चेत् मूलकसहस्रम् (सम्भव है, यह हजार मूली तक भी सींच दे)। अपि स्तुयात् राजानम् (शायद यह राजा की भी स्तुति करे)। अन्ववसर्ग में—अपि सिञ्च, अपि स्तुहि (चाहे सींच, चाहे स्तुति कर)। गर्हा में—धिग्जाल्मं देवदत्तम्, अपि सिञ्चेत् पलाण्डुम् (धिक्कार है देवदत्त को जो प्याज को भी सींचता है)। समुच्चय में—अपि सिञ्च, अपि स्तुहि (सींच भी, और स्तुति भी कर) ॥ कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से पूर्ववत् षत्व नहीं होता ॥

अधिरीश्वरे ॥१।४।९६॥

अधिः १।१॥ ईश्वरे ७।१॥ अनु०—कर्मप्रवचनीयाः, निपाताः ॥ अर्थ :—अधिशब्द ईश्वरेऽर्थे कर्मप्रवचनीयसंज्ञको निपातसंज्ञकश्च भवति। स्वस्वामि सम्बन्ध ईश्वरशब्दः ॥ उदा०—अधि देवदत्ते पञ्चालाः। अधि पञ्चालेषु देवदत्तः ॥

भाषार्थ :—[*अधिः*] अधि शब्द की [*ईश्वरे*] ईश्वर = स्वामी अर्थ में कर्मप्रवचनीय और निपात संज्ञा होती है ॥

उदा०—अधि देवदत्ते पञ्चालाः (पञ्चाल देवदत्त के आधीन हैं)। अधि पञ्चालेषु देवदत्तः (पञ्चालों का देवदत्त स्वामी है)। ईश्वर शब्द स्व-स्वामी सम्बन्धवाची है, सो स्वामी व स्व दोनों में *यस्मादधिकं यस्य०* (२।३।९) से सप्तमी विभक्ति हो गई है ॥

यहाँ से '*अधिः*' की अनुवृत्ति १।४।९७ तक जाती है ॥

विभाषा कृञि ॥१।४।९७॥

विभाषा १।१॥ कृञि ७।१॥ अनु०—अधिः, कर्मप्रवचनीयाः, निपाताः॥ अर्थः—अधिशब्दः कृञि परतो विभाषा कर्मप्रवचनीयसंज्ञको निपात-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

संज्ञकश्च भवति ॥ उदा०—यदत्र मामधिकरिष्यति। पक्षे—यद अधि करिष्यति।

भाषार्थः—अधि शब्द की [*इकि*] कृञ् के परे [*विभाषा*] से कर्मप्रवचनीय और निपात संज्ञा होती है ॥

[लप्रकरणम्]

लः परस्मैपदम् ॥१।४।९८॥

लः ६।१॥ परस्मैपदम् १।१ ॥ *अर्थः*—लादेशाः परस्मैपद भवन्ति ॥ उदा०—तिप्, तस्, झि। सिप्, थस्, थ। मिप्, वस्, शतृ, कसु ॥

भाषार्थः—[*लः*] लादेश [*परस्मैपदम्*] परस्मैपद संज्ञक होते सूत्र में 'लः' पद में आदेश की अपेक्षा से षष्ठी है, सो *लस्य* (३ से लकारों के स्थान में जो *तिप्तस्झि०* (३।४।७८) सूत्र से आदेश वे लिये गये हैं। *लटः शतृशानचावः* (३।२।१२४) से लट् के शतृ, शानच् होते हैं, वे भी लादेश हैं, सो शानच् की तो आत्मनेपद संज्ञा करेंगे, शतृ की यहाँ परस्मैपद संज्ञा हो गई *क्वसुश्च* (३।२।१०७) से लिट् के स्थान में कसु आदेश हुआ है वह भी लादेश है, अतः परस्मैपद संज्ञक हो गया। परस्मैपद होने से यह प्रत्यय परस्मैपदी धातुओं से ही होंगे ॥

तङानावात्मनेपदम् ॥१।४।९९॥

तङानौ १।२॥ आत्मनेपदम् १।१॥ *स०*—तङ् च आनश्च, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अर्थः*—तङानौ आत्मनेपदसंज्ञकौ भवतः पूर्वेण पदसंज्ञायां प्राप्तायामात्मनेपदं विधीयते ॥ उदा०—त, आताम्, झ। आथाम्, ध्वम्। इट्, वहि, महिङ्। आन=शानच्, कानच् ॥

भाषार्थः—[*तङानौ*] तङ् और आन [*आत्मनेपदम्*] आत्मनेपद संज्ञक होते हैं ॥ तङ् से 'त' से लेकर महिङ् के ङकार पर्यन्त अक्षरों का ग्रहण है तथा आन से शानच्, कानच् का ॥ पूर्वसूत्र से जिन लादेशों को परस्मैपद कहा था, यह उसका अपवाद सूत्र है अर्थात् लादेशों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

था आन आत्मनेपद संज्ञक होते हैं, तो शेष बचे लादेश से परस्मैपद हो गये ॥

तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः ॥१।४।१००॥

तिङ्, ६।१॥ त्रीणि १।३॥ त्रीणि १।३॥ प्रथममध्यमोत्तमाः १।३॥ -प्रथमश्च, मध्यमश्च, उत्तमश्च, प्रथममध्यमोत्तमाः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ —तिङः (अष्टादश प्रत्ययाः) त्रीणि त्रीणि, यथाक्रमं प्रथम-मध्यम- संज्ञका भवन्ति ॥ उदा०—तिप्, तस्, झि इति प्रथमः पुरुषः। थस्, थ इति मध्यमः। मिप्, वस्, मस् इति उत्तमः।

भाषार्थ :—[तिङः] तिङ् (१८ प्रत्ययों के) के जो [त्रीणि त्रीणि] २ के जुट अर्थात् त्रिक, उनकी क्रम से [प्रथम···माः] प्रथम, म और उत्तम संज्ञा होती है ॥

यहाँ से 'तिङस्त्रीणि त्रीणि' पद की अनुवृत्ति १।४।१०३ तक ी है ॥

तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः ॥१।४।१०१॥

तानि १।३॥ एक.....नानि १।३॥ एकशः अ०॥ स०—एकवचनं द्विवचनं च, बहुवचनं चेति एकवचनद्विवचनबहुवचनानि, इतरेतर-न्द्वः ॥ अनु०—तिङः, त्रीणि, त्रीणि ॥ अर्थः—तानि तिङस्त्रीणि, ीणि, एकशः = एकैकं पदं (क्रमेण) एकवचनद्विवचनबहुवचन-संज्ञकानि वन्ति ॥ उदा०—तिप् (एकवचनम्) तस् (द्विवचनम्) झि बहुवचनम्) एवमग्रेऽपि ॥

भाषार्थ :—[तानि] उन तिङों के तीन तीन (त्रिक) की [एकशः] क एक करके क्रम से [एक.....चनानि] एकवचन, द्विवचन और हुवचन संज्ञा होती है ॥

यहाँ से 'एकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः' की अनुवृत्ति १।४।१०२ क जाती है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सुपः ॥१।४।१०२॥

सुपः ६।१॥ अनु०—एकवचनद्विवचनबहुवचनान्येक त्रीणि ॥ अर्थः—सुपश्च त्रीणि त्रीणि एकशः (क्रमेण) द्विवचनबहुवचनसंज्ञकानि भवन्ति ॥ उदा०—सु (एकव (द्विवचनम्) जस् (बहुवचनम्) एवं सर्वत्र ॥

भाषार्थः—[सुपः] सुपों के तीन तीन की एकवचन, द्वि बहुवचन संज्ञा एक-एक करके हो जाती है। पूर्व सूत्र में ति तीन की क्रम से एकवचनादि संज्ञायें की थीं, यहाँ सुपों की कर दिया ॥

यहाँ से 'सुपः' की अनुवृत्ति १।४।१०३ तक जाती है॥

विभक्तिश्च ॥१।४।१०३॥

विभक्तिः १।१॥ च अ० ॥ अनु०—सुपः, तिङः, त्रीणि अर्थः—सुपः तिङश्च त्रीणि त्रीणि विभक्तिसंज्ञकानि च उदा०—पठतः, पुरुषान् ॥

भाषार्थः—सुपों और तिङों के तीन तीन की [विभक्तिः] संज्ञा [च] भी हो जाती है॥ उदाहरण में पठ् के आगे आया, तथा पुरुष के आगे शस् आया, उस शस् को पूर्ववत् (६।१।९८) से दीर्घ तथा तस्माच्छसो नः० (६।१।९९) से 'स्' होकर पुरुषान् व पठतस् बना, अब आन् (शस्) व तस् की विभ होने से नकार व सकार की इत् संज्ञा हलन्त्यम् (१।३।३) से प्राप्त पर उसका न विभक्तौ तुस्माः (१।३।४) से निषेध हो जाता है॥

युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः ॥१।४॥

युष्मदि ७।१॥ उपपदे ७।१॥ समानाधिकरणे ७।१॥ स्थानिनि अपि अ० ॥ मध्यमः १।१॥ स्थानं प्रसक्तमस्यास्तीति अर्थः—युष्मदि शब्द उपपदे समानाधिकरणे सति = समानार्थ तुल्यकारके सति, स्थानिनि = अप्रयुज्यमाने, अपि = अप्रयुज्यमा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

मपुरुषो भवति ॥ उदा०—त्वं पचसि, युवां पचथः यूयं पचथ। युज्यमानेऽपि—पचसि, पचथः, पचथ ॥

भाषार्थः—[युष्मदि] युष्मद् शब्द के [उपपदे] उपपद रहते मानाधिकरणे] समान अभिधेय होने पर [स्थानिनि] युष्मद् द का प्रयोग न हो [अपि] या हो, तो भी [मध्यमः] मध्यम पुरुष ा है ॥

यहाँ से 'उपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि' की अनुवृत्ति ४।१०७ तक जाती है, तथा 'युष्मदि मध्यमः' १।४।१०५ तक जाता है॥

प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च ॥१।४।१०५॥

प्रहासे ७।१॥ च अ०॥ मन्योपपदे ७।१॥ मन्यतेः ६।१॥ उत्तमः १॥ एकवत् अ० ॥ च अ० ॥ स०—मन्य उपपदे यस्य स योपपदस्तस्मिन्...बहुव्रीहिः ॥ अनु०—युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे ानिन्यपि मध्यमः ॥ अर्थः—प्रहासः = परिहासः। प्रहासे गम्यमाने योपपदे धातोर्युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यम-ुषो भवति, मन्यतेर्धातोश्चोत्तमपुरुषो भवति, स चोत्तम एकवद् वति ॥ उदा०—एहि मन्ये ओदनं भोक्ष्यसे, नहि भोक्ष्यसे, भुक्तः ऽतिथिभिः। एहि मन्ये रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि, यातस्तेन पिता ॥

भाषार्थः—[प्रहासे] परिहास गम्यमान हो रहा हो तो [च] भी मन्योपपदे] मन्य है उपपद में जिसके, ऐसी धातु से युष्मद् उपपद ो समान अभिधेय होने पर, युष्मद् शब्द का प्रयोग हो या न हो तो मध्यम पुरुष हो जाता है, तथा उस [मन्यतेः] मन धातु से [उत्तमः] त्तम पुरुष हो जाता है, और उस उत्तम पुरुष को [एकवत्] कवत् = एकत्व [च] भी हो जाता है ॥

उदा०—एहि मन्ये ओदनं भोक्ष्यसे, न हि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽ-थिभिः (तुम ऐसा समझते हो कि मैं चावल खाऊँगा, नहीं खाओगे, योंकि वह तो तुम्हारे अतिथि खा गये)। एहि मन्ये रथेन यास्यसि हि यास्यसि, यातस्तेन ते पिता (तुम यह समझते हो कि मैं रथ पर कर जाऊँगा, सो नहीं जा सकते, क्योंकि रथ पर तो चढ़ कर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तुम्हारे पिता चले गये) ॥ उदाहरण में कोई किसी को हि
वाक्य बोल रहा था, कि तुम क्या खाओगे, वा रथ से जा
यहाँ हँसी = प्रहास से कहा जा रहा है । यहाँ भोक्ष्यसे में म
(भोक्ष्ये) तथा मन्ये में मध्यम पुरुष (मन्यसे) प्राप्त था,
के स्थान में मध्यम तथा मध्यम में उत्तम का विधान क
उदाहरण में 'भुज्' धातु 'मन्य' उपपद वाली है, अतः म
हो गया है ॥

अस्मद्युत्तमः ॥१।४।१०६॥

अस्मदि ७।१॥ उत्तमः १।१॥ अनु०—उपपदे, समानाधिक
न्यपि ॥ *अर्थः*—अस्मद्युपपदे समानाभिधेये सति
ऽप्यप्रयुज्यमानेऽप्युत्तमपुरुषो भवति ॥ उदा०—अहं पचामि
पचावः । वयं पचामः । अप्रयुज्यमानेऽपि—पचामि, पचावः,

भाषार्थः—[*अस्मदि*] अस्मद् शब्द उपपद रहते, समान
हो तो, अस्मद् शब्द प्रयुक्त हो या न हो तो भी [उत्त
पुरुष हो जाता है ॥ उदा०—अहं पचामि । आवां पचा
पचामः । अप्रयुज्यमान होने पर—पचामि, पचावः, पचामः ॥

शेषे प्रथमः ॥१।४।१०७॥

शेषे ७।१॥ प्रथमः १।१॥ अनु०—उपपदे, समान
स्थानिन्यपि ॥ *अर्थः*—मध्यमोत्तमविषयादन्यत्र शेषः । यत्र
समानाधिकरणशब्दावुपपदे न स्तस्तस्मिन् शेष उपपदे समा
प्रयुज्यमाने, अप्रयुज्यमानेऽपि प्रथमपुरुषो भवति ॥
पचति । तौ पचतः । ते पचन्ति । अप्रयुज्यमानेऽपि—पच
पचन्ति ॥

भाषार्थः—मध्यम उत्तम पुरुष जिन विषयों में कहे
[शेषे] शेष विषय में, समानाधिकरण एवं शेष के प्रयुज्य
अप्रयुज्यमान होने पर भी [*प्रथमः*] प्रथम पुरुष होता है ॥

उदा०—सः पचति । तौ पचतः । ते पचन्ति ।
होने पर—पचति, पचतः पचन्ति ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परः सन्निकर्षः संहिता ॥१।४।१०८॥

१।१॥ सन्निकर्षः १।१॥ संहिता १।१॥ *अर्थ* :—परशब्दोऽति-
ची। वर्णानामतिशयः सन्निकर्षः संहितासंज्ञको भवति।
दधि+अत्र=द्ध्यत्र। मधु+अत्र=मध्वत्र॥

र्थ :—वर्णों के [परः] अतिशय = अत्यन्त [*सन्निकर्षः*]
अर्थात् समीपता की [*संहिता*] संहिता संज्ञा होती है॥

हरणों में इकार, अकार तथा उकार, अकार की अत्यन्त समीपता
ा संज्ञा होने से *संहितायाम्* (६।१।७०) के अधिकार में इको
(६।१।७४) से यणादेश हो गया है॥

विरामोऽवसानम् ॥१।४।१०९॥

रामः १।१॥ अवसानम् १।१॥ *अर्थ* :—विरामोऽवसानसंज्ञको
॥ उदा०—वृक्षः, प्लक्षः। दधिँ, मधुँ॥

र्थ :—[*विरामः*] विराम अर्थात् समाप्ति की [*अवसानम्*]
न संज्ञा होती है॥

वसान संज्ञा होने से *खरवसानयोर्विसर्जनीयः* (८।३।१५) से
नीय हो जाता है। दधिँ, मधुँ में अवसान संज्ञा होने से
अनुनासिकः (८।४।५६) से अनुनासिक हो गया है, इस
वावसाने (८।४।५५) से अवसान की अनुवृत्ति आती है॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रथमः पादः

समर्थः पदविधिः ॥२।१।१॥

समर्थः १।१॥ पदविधिः १।१॥ स०—चतुर्विधः द्रष्टव्यः। सङ्गतार्थः समर्थः। संसृष्टार्थः समर्थः। समर्थः। सम्बद्धार्थः समर्थः। उत्तरपदलोपी कर्मध पदस्य विधिः, पदयोर्विधिः, पदानां विधिः, पदात् विधि इति सर्वविभक्त्यन्तः समासोऽत्र बोध्यः ॥ अर्थः—मिदम्। येन सह यस्य सम्बन्धो भवति, तेन सह स समर्थ अर्थात् समर्थात् समर्थस्य वा पदस्य विधिर्भवति। तद्यथा राज्ञः पुरुषः राजपुरुषः इत्यत्र समासो भवति यतो ह्यु इति उभे पदे परस्परं सम्बद्धार्थे = समर्थे स्तः, अत एवा जायते, परं 'भार्या राज्ञः पुरुषो देवदत्तस्य' इत्यत्र राज्ञः, पुरु पदयोः सम्बद्धार्थता = परस्परमाकाङ्क्षता नास्ति, इत्यतः भवति ॥ एवं कष्टं श्रितः = कष्टश्रितः इत्यत्र समर्थताभ भवति। एवं सर्वत्र योजनीयम् ॥

भाषार्थः— [*पदविधिः*] पदों की विधि अर्थात् सुबन्त सम्बन्धी विधि [*समर्थः*] समर्थ पदों की होती है ॥ सूत्र है, अतः सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र में इसकी प्रवृत्ति जिस शब्द के साथ जिस शब्द का परस्पर सम्बन्ध होता है समर्थ कहाते हैं। जैसे कि समास विधि में (राजा का पुरुष) राजपुरुषः, यहाँ राजा का पुरुष है, राजा का है अतः राज्ञः और पुरुषः दोनों पद परस्पर सम्ब हैं सो समास हो गया है, पर 'भार्या राज्ञः पुरुषो देवदत्तस्य भार्या, पुरुष देवदत्त का) यहाँ राज्ञः का सम्बन्ध भार्या के तथा पुरुष का सम्बन्ध देवदत्त के साथ है, परस्पर राज्ञः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सम्बद्धार्थता = समर्थता नहीं है, अतः राज्ञः पुरुषः का यहाँ समास नहीं हुआ। सूत्र में समर्थ ग्रहण करने का यही प्रयोजन है॥ इसी प्रकार कष्टं श्रितः यहाँ समर्थ होने से समास होकर 'कष्टश्रितः' बन जाता है, 'पश्य देवदत्त कष्टं, श्रितो विष्णुमित्रो गुरुकुलम्' (हे देवदत्त कष्ट देख, विष्णुमित्र गुरुकुल में पहुँच गया) यहाँ पर कष्टं तथा श्रितः परस्पर सम्बद्धार्थता नहीं है, सो समास नहीं हुआ॥ इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिये॥

'राजपुरुषः आदि की सिद्धियाँ परि० १।२।४३ में देखें॥

सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे ॥२।१।२॥

सुप् १।१॥ आमन्त्रिते ७।१॥ पराङ्गवत् अ०॥ स्वरे ७।१॥ अङ्गेन तुल्यम् अङ्गवत्, परस्य अङ्गवत् पराङ्गवत् षष्ठीतत्पुरुषः॥ अर्थः—आमन्त्रिते पदे परतः सुबन्तं पराङ्गवद् भवति स्वरे कर्त्तव्ये॥ उदा०—कुण्डेन अटन्। परशुना वृश्चन्। मद्राणां राजन्। इमी राणां राजन्॥

भाषार्थः—[*आमन्त्रिते*] आमन्त्रित संज्ञक पद के परे रहते उसके जो [*सुप्*] सुबन्त पद उसको [*पराङ्गवत्*] पर के अङ्ग के समान कार्य होता है [*स्वरे*] स्वर विषय में॥ यह अतिदेश सूत्र है॥

यहाँ से 'सुप्' का अधिकार २।२।२९ तक जायेगा॥

प्राक् कडारात् समासः ॥२।१।३॥

प्राक् अ०॥ कडारात् ५।१॥ समासः १।१॥ *अर्थः*—'कडाराः कर्मधारये' इति सूत्रं वक्ष्यति, प्राग् एतस्मात् समासो भवतीत्यधिकारो वेदितव्यः॥ अग्र उदाहरिष्यामः॥

भाषार्थः—[*कडारात्*] *कडाराः कर्मधारये* (२।२।३८) से [*प्राक्*] ले २ [*समासः*] समास संज्ञा का अधिकार जायेगा यह जानना चाहिये॥

विशेष:—समास संक्षेप करने को कहते हैं। जिसमें अनेक का एक पद, अनेक विभक्तियों की एक विभक्ति तथा अनेक स्वरों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

का एक स्वर हो, उसे समास कहते हैं। यह चार प्रकार का है जिसकी व्याख्या द्वितीय पाद के अन्त तक की जायगी॥ इस में विशेष जानकारी के लिये हमारी बनाई सरलतम विधि पृ० ४०-४१, पाठ १७ देखें॥

सह सुपा ॥२।१।४॥

सह अ० ॥ सुपा ३।१॥ अनु०—समासः, सुप्॥ सुपा सह सुप् समस्यते, इत्यधिकारो वेदितव्यः॥ अग्र उदाहरि

भाषार्थः—[*सुपा*] सुप् के [*सह*] साथ सुपों का समास है, यह अधिकार २।२।२२ तक जानना चाहिये॥

[अव्ययीभावसमासप्रकरणम्]

अव्ययीभावः ॥२।१।५॥

अव्ययीभावः १।१॥ अर्थः—अयमप्यधिकारो वेदितव्यः। समासो भवति तस्याव्ययीभावसंज्ञा भवतीति वेदितव्यम् उदाहरिष्यामः॥

भाषार्थः—यह भी अधिकार सूत्र है। २।१।२१ तक यहाँ से आगे जो जो समास कहेंगे, उसकी [*अव्ययीभावः*] भाव संज्ञा होती है, ऐसा जानना चाहिये॥

विशेषः—अव्ययीभाव समास में पूर्वपद का अर्थ प्रधान है, यथा—उपकुम्भम् में 'उप' अव्यय है, जिसका अर्थ है समीप, समीप अर्थ की प्रधानता है, न कि कुम्भ की॥

अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति प्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्ति साकल्यान्तवचनेषु ॥२।१।६॥

अव्ययम् १।१॥ विभक्ति.....वचनेषु ७।३॥ स०—समीपञ्च, समृद्धिश्च, व्यृद्धिश्च, अर्थाभावश्च, अत्ययश्च, शब्दप्रादुर्भावश्च, पश्चाच्च, यथा च, आनुपूर्व्यञ्च, यौगपद्यञ्च,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri

म्पत्तिश्च, साकल्यञ्च, अन्तश्चेति विभक्तिस...न्ताः, तेवचनाश्च, तेषु,... न्द्वपूर्वः कर्मधारयः ॥ अनु०—सह सुपा, सुप्, समासः, अव्ययी-भावः ॥ अर्थ :—विभक्ति, समीप, ऋद्धेराधिक्यम् = समृद्धि, ऋद्धे-भावः = व्यृद्धि, वस्तुनोऽभावः = अर्थाभाव, भूतत्वमतिक्रमः = त्यय, असम्प्रति, प्रकाशता शब्दस्य = शब्दप्रादुर्भाव, पश्चात् यथार्थ, नुपूर्व्य, यौगपद्य, सादृश्य, सम्पत्ति, साकल्य, अन्तवचन इत्येतेष्वर्थेषु व्ययं वर्त्तते तत् समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, अव्ययीभावश्च मासो भवति ॥ विभक्तिशब्देनेह कारकमुच्यते, विभज्यते प्रातिपदि-र्थोऽनयेति कृत्वा तच्चेहाधिकरणं विवक्षितं न तु सर्वे कारकाः ॥ दा०—विभक्तिः—स्त्रोष्वधिकृत्य = अधिस्त्रि, अधिकुमारि, ॥ समीपं—म्भस्य समीपम् = उपकुम्भम् उपकूपम् ॥ समृद्धिः—सुमगधम्, भारतम् ॥ व्यृद्धिः—मगधानां व्यृद्धिः = दुर्मगधम्, दुर्गवदिकम् ॥ र्थाभावः—मक्षिकाणामभावः निर्मक्षिकम्, निर्मशकम् ॥ अत्ययः—तीतानि हिमानि, निर्हिमं, निःशीतं ॥ असंप्रति—अतितैसूकम् ॥ दप्रादुर्भावः—पाणिनिशब्दस्य प्रकाशः = [1]इतिपाणिनि, तत्पाणिनि ॥ पात्—रथानां पश्चात्, अनुरथं पादातम् ॥ यथा—यथाशब्दस्य त्वारोऽर्थाः ॥ योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्तिः, सादृश्यञ्चेति । त्र क्रमेण, उदाह्रियते ॥ योग्यता—रूपस्य योग्यम् = अनुरूपम् ॥ प्सा—अर्थम् अर्थं प्रति = प्रत्यर्थम् शब्दनिवेशः ॥ पदार्थानतिवृत्तिः—क्तिम् अनतिक्रम्य = यथाशक्ति ॥ सादृश्यम्—यथाऽसादृश्ये (२।१।७) ते सादृश्यप्रतिषेधात् उदाहरणं न प्रदीयते ॥ आनुपूर्व्यम्—ष्टस्य आनुपूर्व्यम् = अनुज्येष्ठं प्रविशन्तु भवन्तः ॥ यौगपद्यम्—युगपत् = सचक्रं धेहि ॥ सादृश्यम्—सदृशः सख्या = ससखि ॥ सम्पत्तिः—णः सम्पत्तिः = सब्रह्म बाभ्रवाणाम् ॥ सक्षत्रं शालङ्कायनानाम् ॥ कल्यम्—तृणानां साकल्यं = संतृणमभ्यवहरति, सबुसम् ॥ अन्त-नम्—अग्नेरन्तः = साग्नि, समहाभाष्यं व्याकरणमधीते ॥

भाषार्थः—[विभक्ति····वचनेषु] विभक्ति समीपादि अर्थों में मान जो [अव्ययम्] अव्यय वह समर्थ सुबन्त के साथ समास को होता है, और वह अव्ययीभाव संज्ञक होता है ॥

१. समास के अपने पदों को लेकर जहाँ विग्रह न हो, उसे अस्वपाद विग्रह है, न स्वपद = अस्वपद ! सो यहाँ अस्वपद विग्रह समास है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

विभक्ति शब्द से यहाँ कारक लिया गया है। उन कारकों अधिकरण कारक ही विवक्षित है, न कि सब कारक॥ ऋद्धि की अधिकता को समृद्धि कहते हैं, तथा ऋद्धि के अभाव को व्यृ हैं। वस्तु के अभाव को अर्थाभाव कहते हैं। जो भूतका उसके अतीत हो जाने को अत्यय कहते हैं अथवा जो हो वह न शब्द की प्रकाशता को शब्दप्रादुर्भाव कहते हैं। यहां वचन प्रत्येक के साथ सम्बन्ध लगा लेना॥

उदा०—*विभक्ति*—अधिस्त्रि (स्त्रियों के विषय में) अधि *समीप*—उपकुम्भम् (घड़े के पास) उपकूपम् (कूए के *समृद्धि*—सुमगधम् (मगध देश वालों की समृद्धि) सु *व्यृद्धि*—दुर्मगधम् (मगध देश वालों के ऐश्वर्य का अभाव) कम्। *अर्थाभाव*—निर्मक्षिकम् (मक्खियों का अभाव) नि (मच्छरों का अभाव)। *अत्यय*—निर्हिमं वर्त्तते (शीतकाल हो गया) निःशीतम्। *असंप्रति*—अतितैसु[1]कम् वर्त्तते (तैसू का अब समय नहीं है)। *शब्दप्रादुर्भाव*—इतिपाणिनि (शब्द की प्रसिद्धि) तत्पाणिनि। *पश्चात्*—अनुरथं पादाता के पीछे-पीछे पैदल सेना)। *यथार्थ*—यथा शब्द के चार योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति और सादृश्य। यहाँ उदाहरण देते हैं—*योग्यता*—अनुरूपम् (रूप के योग्य होत *वीप्सा*—प्रत्यर्थं शब्दनिवेशः (अर्थ-अर्थ के प्रति शब्द का व्यव है)। *पदार्थानतिवृत्ति*—यथाशक्ति (शक्ति का उल्लङ्घन न *यथाऽसादृश्ये* (२।१।७) में सादृश्य अर्थ का प्रतिषेध किये यहाँ सादृश्य का उदाहरण नहीं दिया जा सकता॥ *आनुपूर्व्य* ज्येष्ठं प्रविशन्तु भवन्तः (जो-जो ज्येष्ठ हों वैसे-वैसे क्रम से प्र जायें)। *यौगपद्य*—सचक्रं धेहि (एक साथ चक्कर *सादृश्य*—ससखि (सखी के तुल्य)। *सम्पत्ति*—सब्रह्म (ब्रह्मु कुल वालों का ब्रह्म में आत्मभाव होना)।

---

१. तिसूका नाम का एक ग्राम है, उसमें होने वाला (तत्र भवः अथवा वहां से आने वाला (तत आगतः ४।३।७४) पदार्थ तैसूक कहा तैसूक कोई ओढ़ने का गरम कपड़ा होगा जिसके उपभोग का सम्प्रति ऐसा अनुमान है। यह कपड़ा तिसूका ग्राम में बनता होगा यह भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सत्त्रं शालङ्कायनानाम् (शालङ्कायनों का क्षत्रियत्व में लीन होना) *साकल्य*—सतृणमभ्यवहरति (तिनके समेत खा जाता है) सबुसम् ॥ *अन्तवचन*—साग्नि अधीते (अग्निविद्या के समाप्ति पर्यन्त पढ़ता है) समहाभाष्यं व्याकरणमधीते (महाभाष्य की समाप्तिपर्यन्त व्याकरण पढ़ता है) ॥

अधिस्त्रि, उपाग्नि आदि की सिद्धि हम परि० १।१।४० में दिखा आये हैं। समास की सिद्धियाँ तो हम और भी बहुत बार दिखा चुके हैं। अव्ययीभाव समास की सिद्धि में ३, ४ कार्यविशेष होते हैं। प्रथम *अव्ययीभावश्च* (१।१।४०) से अव्यय संज्ञा होकर *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२) से समास के पश्चात् आई हुई विभक्ति का लुक् हो जाना। द्वितीय—यदि अदन्त शब्द हो तो अव्ययादाप्सुपः से लुक् न होकर *नाव्ययीभावादतोऽत्वपञ्चम्याः* (२।४।८३) से विभक्ति को अम् हो जायगा जैसे 'उपकुम्भ सु' में सु को अम् होकर उपकुम्भम् बना है। तृतीय कार्य *अव्ययीभावश्च* (२।४।१८) से अव्ययीभाव समास को नपुंसक लिङ्ग होकर *ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य* (१।२।४७) से ह्रस्व होता है, जैसे अधिकुमारि में कुमारी को ह्रस्व हो गया है ॥ पाठक देखें कि सम्पूर्ण सूत्र के उदाहरणों तथा अव्ययीभाव के सारे प्रकरण में यही विशेष कार्य हुए हैं, शेष समास की सिद्धि तो पूर्व दिखा ही चुके हैं। अधि उप, सु इत्यादि अव्यय हैं। सिद्धि में एक बात और ध्यान देने की है कि जिस विभक्ति में विग्रह करें, उसी को रखकर समास करना चाहिये। यथा 'कुम्भस्य समीपम्', में षष्ठी से विग्रह है सो 'कुम्भ ङस् उप सु'रख के समास करेंगे ॥

विशेष:—विभाषा (२।१।११) अधिकार से पहले २ तक ये सब सूत्र नित्य समास करते हैं। "यस्य विग्रहो नास्ति स नित्यसमासः," जिस समास का विग्रह वाक्य प्रयुक्त न हो, केवल समस्त पद प्रयोग में आये, उसे नित्य समास कहते हैं, सो यहाँ नित्य समास होने से, इनका विग्रह नहीं होता। पुनरपि केवल अर्थप्रदर्शनार्थ इनका विग्रह किया गया है।

यहाँ से '*अव्ययम्*' की अनुवृत्ति २।१।८ तक जायगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यथाऽसादृश्ये ॥२।१।७॥

यथा अ० ॥ असादृश्ये ७।१॥ स०—असादृश्य इत्यत्र तत्पुरुषः ॥ अनु०—अव्ययम्, सुप्, समासः, सह सुपा, अव भावः ॥ अर्थः—असादृश्येऽर्थे वर्त्तमानं यथा इत्येतदव्ययं सु सुबन्तेन सह समस्यते, अव्ययीभावसंज्ञकश्च भवति ॥ उदा०— वृद्धाः = यथावृद्धम्, यथाध्यापकम्, ये ये चौराः = यथाचौरं बध यथापण्डितं सत्करोति ॥ .

भाषार्थः—[असादृश्ये] असादृश्य अर्थ में वर्त्तमान [य यथा जो अव्यय उसका समर्थ सुबन्त के साथ समास हो जाता है, वह अव्ययीभाव समास कहा जाता है ॥

उदा०—यथावृद्धम् (जो जो वृद्ध हैं)। यथाध्यापकम्। य बध्नाति (जो जो चोर हैं उन उनको बाँधता है)। यथाप सत्करोति (जो २ पण्डित हैं उन २ का सत्कार करता है) ॥

यावदवधारणे ॥२।१।८॥

यावत् अ० ॥ अवधारणे ७।१॥ अनु०—अव्ययम्, समासः, सह सुपा, अव्ययीभावः ॥ अर्थः—अवधारणेऽर्थे व "यावत्" अव्ययं समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, अव्ययीभ समासो भवति ॥ उदा०—यावन्ति अमत्राणि = यावदमत्रं ब्राह्म आमन्त्रयस्व। यावन्ति कार्षापणानि यावत्कार्षापणम् फलं क्रीणाति

भाषार्थः—[यावत्] यावत् अव्यय [अवधारणे] अव अर्थात् निश्चय करने अर्थ में वर्त्तमान हो तो उसका समर्थ सु साथ समास होता है, और वह अव्ययीभाव संज्ञक होता है ॥

उदा०—यावदमत्रं ब्राह्मणान् आमन्त्रयस्व (जितने पात्र हैं ब्राह्मणों को बुलाओ)। यावत्कार्षापणं फलं क्रीणाति (कार्षापण हैं, उतने फल खरीदता है) ॥

सुप् प्रतिना मात्रार्थे ॥२।१।९॥

सुप् १।१॥ प्रतिना ३।१॥ 'प्रति' इत्यनुकरणमत्र गृह्यते तस्य विभक्तिरिति ॥ मात्रार्थे ७।१॥ स०—मात्रायाः अर्थः मात्रार्थस्तस्मि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Archive Digitization Initiative

षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—[1]समासः, सह सुपा, अव्ययीभावः ॥ अर्थः—मात्रार्थे = स्वल्पार्थे वर्त्तमानेन प्रतिना सह समर्थं सुबन्तं समस्यते अव्ययीभावश्च समासो भवति ॥ अस्त्यत्र किञ्चित् शाकम् = शाकप्रति । सूपप्रति ॥ अर्थप्रदर्शनार्थमत्र विग्रहः प्रदर्श्यते ॥

भाषार्थः—[*मात्रार्थे*] मात्रा अर्थात् स्वल्प अर्थ में वर्त्तमान [*प्रतिना*] प्रति शब्द के साथ समर्थ [*सुप्*] सुबन्त का समास हो जाता है, और वह अव्ययीभाव समास होता है ॥

उदा०—शाकप्रति (थोड़ा शाक)। सूपप्रति (थोड़ी दाल) ॥

अक्षशलाकासंख्याः परिणा ॥२।१।१०॥

अक्षशलाकासंख्याः १।३॥ परिणा ३।१॥ स०—अक्षश्च, शलाका च, संख्या च, अक्षशलाकासंख्याः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अव्ययीभावः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—अक्षशब्दः, शलाका शब्दः, संख्या = एकद्वि इत्यादयः शब्दाः परिशब्देन सह समस्यन्ते, अव्ययीभावश्च समासो भवति ॥ उदा०—अक्षपरि, पाशक्रीडायां यथा गुटिकापाते जयो भवति, तद्विपरीतपातः शलाकापरि। एकपरि, द्विपरि ॥

भाषार्थः—[*अक्षशलाकासंख्याः*] अक्ष, शलाका, तथा संख्या वाची जो शब्द वह [*परिणा*] परि सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होते हैं, और वह अव्ययीभाव संज्ञक होते हैं ॥

उदा०—अक्षपरि (जब एक पासा उल्टा गिरा हो अर्थात् हारा हो उसे अक्षपरि कहते हैं)। शलाकापरि (इस में भी, शलाका उलटी पड़ गई)। एकपरि (एक की कमी से हार गया)। द्विपरि (दो की कमी से हार गया) ॥ समास करने से *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२) से सु का लुक् करना ही प्रयोजन है ॥

---

१ यहां २।१।२ से सुप् की अनुवृत्ति आ रही है। पुनः जो 'सुप्' इस सूत्र में कहा, वह 'अव्ययं' की निवृत्ति के लिए है। अतः यहां 'सुप्' के आते हुए भी सुप् का सम्बन्ध नहीं दिखाया ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

विभाषाऽपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या ॥२।१।११॥

विभाषा १।१॥ अपपरिबहिरञ्चवः १।३॥ पञ्चम्या ३।१॥ स०—च परिश्च बहिश्च अञ्चुश्च अपपरिबहिरञ्चवः, इतरेतरद्वन्द्वः। अनु०—सुप्, सह सुपा, समासः, अव्ययीभावः॥ अर्थः—परि, बहिस्, अञ्चु इत्येते शब्दाः पञ्चम्यन्तेन समर्थेन सुबन्तेन विकल्पेन समस्यन्ते, अव्ययीभावश्च समासो भवति॥ उदा०—अपत्रिगर्त्तं वृष्टो देवः। अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः। परित्रिगर्त्तं, परि त्रिगर्तेभ्यो वा। बहिर्ग्रामं बहिर्ग्रामात्। प्राग्ग्रामम्, प्राग्ग्रामात्॥

भाषार्थः—[*अपपरिबहिरञ्चवः*] अप, परि, बहिस्, अञ्चु ये [*पञ्चम्या*] पञ्चम्यन्त समर्थ सुबन्त के साथ [*विभाषा*] विक समास को प्राप्त होते हैं, और वह अव्ययीभाव समास होता है॥

उदा०—अपत्रिगर्त्तं वृष्टो देवः (त्रिगर्त्त देश = कांगड़ा को छो वर्षा हुई)। अप त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टो देवः। परित्रिगर्त्तं, परित्रिग वा (त्रिगर्त्त को छोड़कर वर्षा हुई)। बहिर्ग्राममम्, बहिर्ग्रा (ग्राम से बाहर)। प्राग्ग्राममम् प्राग्ग्रामात् (ग्राम से पूर्व)।

असमास पक्ष में *अपपरी वर्जने* (१।४।८७) से कर्मप्रवचनीय होकर तथा पञ्चमी विभक्ति *पञ्चम्यपाङ्परिभिः* (२।३।१०) से होती समास पक्ष में सु आकर *नाव्ययी०* (२।४।८२) से पूर्ववत् सु हो गया है॥ यहाँ से *'विभाषा'* का अधिकार २।२।२९ तक जाता इसे महाविभाषा कहते हैं। *"पञ्चम्या"* की अनुवृत्ति भी तक जाती है॥

आङ् मर्यादाभिविध्योः ॥२।१।१२॥

आङ् अ०॥ मर्यादाभिविध्योः ७।२॥ स०—मर्यादा च विधिश्च, मर्यादाभिविधी तयोः,..... इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—विभ पञ्चम्या, सुप्, सह सुपा, समासः, अव्ययीभावः॥ अर्थः—मर्याद विधौ वर्त्तमानम् आङ् इत्येष शब्दः समर्थेन पञ्चम्यन्तेन सुबन्तेन विकल्पेन समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति॥ उदा०—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

टलिपुत्रं वृष्टो देवः, आ पाटलिपुत्राद् वृष्टो देवः। अभिविधौ—आकुमारं यशः पाणिनेः, आ कुमारेभ्यो यशः पाणिनेः॥

भाषार्थः—[*मर्यादाभिविध्योः*] मर्यादा, और अभिविधि अर्थ में वर्त्तमान [*आङ्*] आङ् शब्द समर्थ पञ्चम्यन्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह अव्ययीभाव संज्ञक होता है॥ उदाहरण में पूर्व सूत्र के समान पञ्चमी विभक्ति हुई है, तथा *आङ्मर्यादावचने* (१।४।८८) से आङ् की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई है। मर्यादा अभिविधि के विषय में आङ्मर्यादा० (१।४।८८) सूत्र देखें॥

लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये ॥२।१।१३॥

लक्षणेन ३।१॥ अभिप्रती १।२॥ आभिमुख्ये ७।१॥ अनु०—विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः, अव्ययीभावः॥ *अर्थः*—अभिप्रती इत्येतौ शब्दौ आभिमुख्ये वर्त्तमानौ लक्षणवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्येते, अव्ययीभावश्च समासो भवति॥ उदा०—अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति। अग्निम् अभि। प्रत्यग्नि। अग्निम् प्रति। अग्निं लक्ष्यीकृत्य शलभाः पतन्ति इत्यर्थः॥

भाषार्थः—[*लक्षणेन*] लक्षणवाची सुबन्त के साथ [*आभिमुख्ये*] आभिमुख्य अर्थ में वर्त्तमान [*अभिप्रती*] अभि प्रति शब्दों का विकल्प से समास हो जाता है, और वह अव्ययीभाव समास होता है॥

उदा०—अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति (अग्नि पर पतङ्गे गिरते हैं)। अग्निम् अभि। प्रत्यग्नि (अग्नि के सामने) अग्निम् प्रति॥ प्रत्यग्नि की सिद्धि परि० १।१।४० में कर चुके हैं॥ यहाँ से '*लक्षणेन*' की अनुवृत्ति २।१।१५ तक जाती है॥

अनुर्यत्समया ॥२।१।१४॥

अनुः १।१॥ यत्समया अ०॥ *स०*—यस्य समया, यत्समया, षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—लक्षणेन, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः, अव्ययीभावः॥ *अर्थः*—अनुः यस्य समीपवाची तेन लक्षणभूतेन समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—अनुयमुनं मथुरा वसति, यमुनायाः अनु। अनुवनं वृक्षाः सं अनुपर्वतं। वनस्य अनु, पर्वतस्य अनु॥

भाषार्थ :—[*यत्समया*] जिसका समीपवाची [अनुः] सुबन्त हो, उस लक्षणवाची सुबन्त के साथ अनुशब्द विकल्प समास को प्राप्त होता है, और वह अव्ययीभाव समास होता है॥

उदा०—अनुयमुनं मथुरा वसति (यमुना के किनारे २ नगरी बसी है।) यमुनायाः अनु। अनुवनं वृक्षाः सं अनुपर्वतं। वनस्य अनु, पर्वतस्य अनु॥ समास होने से अव्ययी० (२।४।१८) से नपुंसक लिङ्ग होकर ह्रस्वो नपुंसके० (१।२।४७) यमुना को ह्रस्व हो गया है॥

यहाँ से 'अनुः' की अनुवृत्ति २।१।१५ तक जाती है॥

यस्य चायामः ॥२।१।१५॥

यस्य ६।१॥ च अ०॥ आयामः १।१॥ अनु०—अनुः, ह विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः, अव्ययीभावः॥ *अर्थः*—अनुर्यो = विस्तारवाची तेन लक्षणवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह अनुः विभाषा समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति॥ उदा०—व वाराणसी। गङ्गाया अनु। अनुयमुनं मथुरा। यमुनायाः अनु।

भाषार्थः—अनु शब्द [*यस्य*] जिसका [*आयामः*] विस्तार हो ऐसे लक्षणवाची समर्थ सुबन्त के साथ [च] भी अनु शब्द करके समास को प्राप्त हो, और वह अव्ययीभाव समास हो॥

उदा०—अनुगङ्गं वाराणसी। गङ्गाया अनु। अनुयमुनं यमुनायाः अनु (वाराणसी की लम्बाई गङ्गा के किनारे २ मथुरा यमुना नदी के किनारे २ बसी है)॥ पूर्ववत् ही से ह्रस्व यहाँ भी जानें॥

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च ॥२।१।१६॥

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि १।३॥ च अ०॥ स०—तिष्ठद्गु प्रभृ तानि तिष्ठद्गुप्रभृतीनि, बहुव्रीहिः॥ अनु०—अव्ययीभावः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अर्थः—तिष्ठद्गु इत्येवमादीनि समुदायरूपाणि, अव्ययीभावसंज्ञकानि निपात्यन्ते ॥ उदा०—तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले स = तिष्ठद्गु कालः । वहन्ति गावो यस्मिन् काले स = वहद्गु कालः ॥

भाषार्थः—[*तिष्ठद्गुप्रभृतीनि*] तिष्ठद्गु इत्यादि समुदाय रूप शब्दों की [च] भी अव्ययीभाव संज्ञा निपातन से होती है ॥ गण में ये शब्द जैसे पढ़े हैं वैसे ही साधु समझने चाहिए विग्रह अर्थ प्रदर्शन के लिए है ॥

उदा०—तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले स = तिष्ठद्गु कालः (जिस समय गौएँ दोहने के लिए अपने स्थान पर ठहरती हैं) । वहन्ति गावो यस्मिन् काले स = वहद्गु कालः ॥ अव्ययीभाव संज्ञा होने से पूर्ववत् सु का लुक् होता है । तिष्ठद्गु आदि में *गोस्त्रियोरुप०* (१।२।४८) तथा *एच इग्घ्रस्वादेशे* (१।१।४७) से 'गो' को ह्रस्व भी हो जायगा ॥

पारे मध्ये षष्ठ्या वा ॥२।१।१७॥

पारे, मध्ये उभयत्र लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ षष्ठ्या ३।१॥ वा अ०॥ अनु०—अव्ययीभावः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ *अर्थः*—पारे मध्ये शब्दौ षष्ठ्यन्तेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्येते, अव्ययीभावश्च समासो भवति, तत्सन्नियोगेन च तयोरेकारान्तत्वं निपात्यते । षष्ठीसमासापवादसूत्रमिदम् । वावचनात् सोऽपि भवति, महाविभाषया विग्रहवाक्यविकल्पो भवति । तेन त्रीणि रूपाणि सिद्ध्यन्ति ॥ उदा०—पारेगङ्गम् । पारम् गङ्गायाः । षष्ठीसमासपक्षे-गङ्गापारम् ॥ मध्येगङ्गम्, मध्यम् गङ्गायाः । षष्ठीसमासपक्षे—गङ्गामध्यम् ॥

भाषार्थः—[*पारे मध्ये*] पार मध्य शब्दों का [*षष्ठ्या*] षष्ठ्यन्त बन्त के साथ [*वा*] विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है, तथा व्ययीभाव समास के साथ २ इन शब्दों को एकारान्तत्व भी पातन से हो जाता है ॥ प्रकृत जो आ रही महाविभाषा है, उससे ग्रह वाक्य का विकल्प होता है, तथा सूत्र में कहे 'वा' से षष्ठी पुरुष समास भी पक्ष में होता है, क्योंकि यह सूत्र षष्ठी समास का पवाद है ॥ षष्ठी समास पक्ष में गङ्गा की (१।२।४३) उपसर्जन' ा हुई है सो *उपसर्जनं पूर्वम्* (२।२।३०) से गङ्गा का पूर्वनिपात ा है, नपुंसक लिङ्ग होने से सु को *अतोऽम्* (७।१।२४) से अम्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

आदेश हुआ है। अव्ययीभाव समास पक्ष में तो पूर्ववत् ह्रस्वत्व तथा अम् हो जायेगा कोई विशेष नहीं है॥

उदा०—पारेगङ्गम् (गङ्गा के पार)। पारम् गङ्गायाः। समास पक्ष में—गङ्गापारम्॥ मध्येगङ्गम् (गङ्गा के बीच)। मध्यम् गङ्गायाः। षष्ठी समास पक्ष में—गङ्गामध्यम्॥

सङ्ख्या वंश्येन ॥२।१।१८॥

सङ्ख्या १।१॥ वंश्येन ३।१॥ अनु०—विभाषा, अव्ययं सुप्, सह सुपा, समासः॥ वंशे भवः वंश्यः, *दिगादिभ्यो यत्* (अ इति यत्प्रत्ययः॥ अर्थः—संख्यावाचिसुबन्तं वंश्यवाचिना सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो उदा०—द्वौ मुनी व्याकरणस्य वंश्यौ, द्विमुनि व्याकरणस्य। व्याकरणस्य॥

भाषार्थः—[*संख्या*] संख्यावाची सुबन्त [*वंश्येन*] समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, अव्ययीभाव समास होता है॥

उदा०—द्वौ मुनी व्याकरणस्य वंश्यौ, द्विमुनि व्या (व्याकरण के दो मुनि, पाणिनि तथा पतञ्जलि)। त्रिमुनि रणस्य (पाणिनि, पतञ्जलि, और कात्यायन)॥

'वंश' विद्या तथा जन्म से प्राणियों के एकरूपता होने को सो उदाहरण में दोनों मुनियों की विद्या से समानता होने वंश है। विभक्तिलुक् ही समास का प्रयोजन है॥

यहाँ से '*संख्या*' की अनुवृत्ति २।१।१९ तक जाती है॥

नदीभिश्च ॥२।१।१९॥

नदीभिः ३।१॥ च अ०॥ अनु०—संख्या, विभाषा, अव्य सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—संख्यावाचिसुबन्तं सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते अव्ययीभावश्च समासो उदा०—सप्तानां गङ्गानां समाहारः, सप्तगङ्गम्। द्वयोः समाहारः, द्वियमुनम्। पञ्चनदम्। सप्तगोदावरम्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—संख्यावाची सुबन्त [*नदीभिः*] नदीवाची सुबन्तों के साथ [च] भी विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह अव्ययीभाव संज्ञक होते हैं ॥

उदा०—सप्तानां गङ्गानां समाहारः, सप्तगङ्गम् (गङ्गा की सात धारायें जैसा कि हरिद्वार में है)। द्वयोः यमुनयोः समाहारः, द्वियमुनम् (यमुना की दो शाखायें)। पञ्चनदम् (पाँच नदियों का जहाँ संगम हो)। सप्तगोदावरम् (गोदावरी नदी की सात धारायें) ॥

यहाँ से '*नदीभिः*' की अनुवृत्ति २।१।२० तक जायेगी ॥

अन्यपदार्थे च संज्ञायाम् ॥२।१।२०॥

अन्यपदार्थे ७।१॥ च अ०॥ संज्ञायाम् ७।१॥ *स०*—अन्यः पदार्थो यस्य स अन्यपदार्थः, तस्मिन् बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—नदीभिः, अव्ययीभावः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ *अर्थः*—अन्यपदार्थे गम्यमाने, संज्ञायां विषये सुबन्तं नदीवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति ॥ *उदा०*—उन्मत्तगङ्गम्, लोहितगङ्गम् ॥

भाषार्थः—[*अन्यपदार्थे*] अन्यपदार्थ गम्यमान होने पर [च] भी [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में सुबन्त का नदीवाची सुबन्त के साथ समास होता है, और वह अव्ययीभाव समास होता है ॥

यहाँ 'विभाषा' के आने पर भी नित्य समास ही होता है, क्योंकि अन्यपद वाक्य से संज्ञा की प्रतीति ही नहीं हो सकती, अतः हम अनुवृत्ति में विभाषा पद नहीं लाये हैं ॥

उदा०—उन्मत्तगङ्गम् (जिस देश में गङ्गा उन्मत्त होकर बहती है, वह देश)। लोहितगङ्गम् ॥

तत्पुरुषः ॥२।१।२१॥

तत्पुरुषः १।१॥ *अनु०*—सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अधिकारोऽयम्, इतोऽग्रे यः समासः स तत्पुरुषसंज्ञको भवतीति वेदितव्यम्, २।२।२३ इति यावत् ॥ उदाहरणानि, अग्रे वक्ष्यन्ते ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—यह अधिकार और संज्ञा सूत्र है। यहाँ से आगे जिस समास कहेंगे उसकी [तत्पुरुषः] तत्पुरुष संज्ञा जाननी चाहिए।

विशेषः—तत्पुरुष समास उत्तर पदार्थ प्रधान होता है। यथा राजपुरुषः में षष्ठी तत्पुरुष है, सो यहाँ पर 'पुरुष' की प्रधानता है, राजपुरुषम् आनय कहने पर लोग पुरुष को लाते हैं, राजा को नहीं। इससे पता लगता है कि यहाँ उत्तरपद 'पुरुष' की ही प्रधानता है।

द्विगुश्च ॥२।१।२२॥

द्विगुः १।१॥ च अ०॥ अनु०—तत्पुरुषः॥ अर्थः—द्विगुः समासस्तत्पुरुषसंज्ञको भवति॥ संज्ञासूत्रमिदम्॥ उदा०—पञ्चानां राज्ञां समाहारः पञ्चराजम्। दशराजम्। द्व्यहः, त्र्यहः। पञ्चगवम्, दशगवम्॥

भाषार्थः—[द्विगुः] द्विगु समास की [च] भी तत्पुरुष संज्ञा होती है। संख्यापूर्वो द्विगुः (२।१।५१) से द्विगु संज्ञा का विधान किया गया है, इस सूत्र से तत्पुरुष संज्ञा भी हो जाती है॥

द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ॥२।१।२३॥

द्वितीया १।१॥ श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ३।३॥ श्रितातीत० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुपा, समासः॥ अर्थः—द्वितीयान्तं सुबन्तं श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त, आपन्न इत्येतैः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—कष्टं श्रितः, कष्टश्रितः। नरकश्रितः। अरण्यम् अतीतः, अरण्यातीतः। कूपं पतितः, कूपपतितः। नगरं गतः, नगरगतः। तरङ्गान् अत्यस्तः, तरङ्गात्यस्तः। आनन्दप्राप्तः। सुखम् आपन्नः, सुखापन्नः॥

भाषार्थः—[द्वितीया] द्वितीयान्त सुबन्त [श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः] श्रित इत्यादि सुबन्तों के साथ विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष संज्ञक होता है॥

उदा०—कष्टं श्रितः, कष्टश्रितः (कष्ट को प्राप्त हुआ) नरकं श्रितः। अरण्यम् अतीतः, अरण्यातीतः (जङ्गल को उल्लङ्घन कर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तितः, कूपपतितः (कूँए में गिरा हुआ)। नगरं गतः, नगरगतः को गया हुआ)। तरङ्गान् अत्यस्तः, तरङ्गात्यस्तः (लहरों में फेंका आनन्दं प्राप्तः आनन्दप्राप्तः (आनन्द को प्राप्त हुआ)। सुखम् सुखापन्नः (सुख को प्राप्त हुआ)॥

हाँ से 'द्वितीया' की अनुवृत्ति २।१।२८ तक जाती है॥

स्वयं क्तेन ॥२।१।२४॥

यम् अ०॥ क्तेन ३।१॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह-समासः॥

र्थः—स्वयमित्येतद् अव्ययम् क्तान्तेन सुबन्तेन सह विकल्पेन ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—स्वयं धौतौ पादौ = स्वयं-। स्वयंभुक्तम् स्वयंभुक्तम्॥

षार्थः—[स्वयम्] स्वयं इस अव्यय शब्द का [क्तेन] क्तान्त के साथ विकल्प से समास होता है और वह तत्पुरुष समास होता स्वयं शब्द अव्यय है अतः यहाँ 'द्वितीया' की अनुवृत्ति का सम्बन्ध बिठाया है, क्योंकि अव्यय द्वितीयान्त हो ही नहीं सकता॥

उदा०—स्वयंधौतौ पादौ (स्वयं धोये हुये दो पैर)। स्वयं धौतौ। क्तम् (स्वयं खाया हुआ)॥

यहाँ से 'क्तेन' की अनुवृत्ति २।१।२७ तक जायगी॥

खट्वा क्षेपे ॥२।१।२५॥

खट्वा १।१॥ क्षेपे ७।१॥ अनु०—क्तेन, द्वितीया, तत्पुरुषः, सुप्, सुपा, समासः॥ अर्थ :—द्वितीयान्तः खट्वाशब्दः क्षेपे गम्यमाने न समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ —खट्वारूढोऽयं दुष्टः। खट्वाप्लुतः॥

षार्थ :—[क्षेपे] निन्दा गम्यमान हो तो [खट्वा] द्वितीयान्त खट्वा क्तान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष स होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—खट्वारूढोऽयं दुष्टः (बिना गुरुजनों की आ
दुष्ट गृहस्थ में चला गया)। खट्वाप्लुतः (कुमार्गगामी
विद्या पढ़ कर गुरु से आज्ञा लेकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश
जो ऐसा नहीं करता वह निन्दा का पात्र है, उसी को यहाँ
कहा है, सो यहाँ क्षेप गम्यमान है॥ यहाँ विग्रह वाक्य
प्रतीति ही नहीं होती अतः यहाँ विभाषा का सम्बन्ध
हुये भी नहीं बैठता। यह भी नित्य समास है॥

सामि ॥२।१।२६॥

सामि अ०॥ अनु०—क्तेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्
समासः॥ अर्थः—सामि इत्येतदव्ययम् क्तान्तेन सुबन्तेन
ल्पेन समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—
सामिपीतम्, सामिभुक्तम्॥

भाषार्थः—[*सामि*] सामि इस अव्यय शब्द का क्त
साथ विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास
यहाँ भी सामि शब्द के अव्यय होने से 'द्वितीया' पद का
बैठा है॥ उदा०—सामिकृतम् (आधा किया हुआ)।
सामिभुक्तम्॥

कालाः ॥२।१।२७॥

कालाः १।३॥ अनु०—क्तेन, द्वितीया, तत्पुरुषः, विभाषा
सुपा, समासः॥ अर्थः—कालवाचिनो द्वितीयान्ताः शब्दाः
सुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥
संयोगार्थमिदंवचनमत्यन्तसंयोगे ह्युत्तरसूत्रेण क्रियते॥ उदा०—
सूता मुहूर्त्ताः। अहस्सङ्क्रान्ताः। रात्र्यतिसृता मुहूर्त्ताः। रात्रि
मासप्रमितश्चन्द्रमाः, मासं प्रमातुमारब्धः प्रतिपच्चन्द्रमा इत्यर्थ

भाषार्थः—[*कालाः*] कालवाची द्वितीयान्त शब्द का
के साथ विकल्प से समास हो जाता है, और वह तत्पुरुष
है॥ अनत्यन्तसंयोग में समास हो जाय इसलिये यह सूत्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ग में तो अगले सूत्र से समास प्राप्त ही था। उदाहरणों में अनत्यन्त-
ग कैसे हैं, यह परिशिष्ट में देखें ॥

यहाँ से 'कालाः' की अनुवृत्ति २।१।२८ तक जायगी ॥

अत्यन्तसंयोगे च ॥२।१।२८॥

अत्यन्तसंयोगे ७।१॥ च अ० ॥ स०—अत्यन्तः संयोगः; अत्यन्त-
गस्तस्मिन् ··· ··· ··· कर्मधारयतत्पुरुषः ॥ अनु०—कालाः, द्वितीया,
रुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—अत्यन्तसंयोगः =
थासंयोगः = कृत्स्नसंयोगः, तस्मिन् गम्यमाने कालवाचिनो
यान्ताः शब्दाः समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च
सो भवति ॥ उदा०—मुहूर्त्तं सुखम् = मुहूर्त्तसुखम्। सर्वरात्र-
ाणी। सर्वरात्रशोभना ॥

भाषार्थः—[अत्यन्तसंयोगे] अत्यन्त संयोग गम्यमान होने पर
भी कालवाची द्वितीयान्त शब्दों का सुबन्तों के साथ विकल्प से
स होता है। अत्यन्त संयोग से अभिप्राय लगातार संयोग से है ॥

उदा०—मुहूर्त्तं सुखम् = मुहूर्त्तसुखम् (मुहूर्त्त भर सुख)। सर्वरात्र-
ाणी = सर्वरात्रकल्याणी (कल्याणप्रद सारी रात)। सर्वरात्रशोभना
र सारी रात) रात्रि शब्द से यहाँ अहः सर्वैकदेशसं० (५।४।८७) से
सान्त अच् प्रत्यय होकर 'रात्र' बना है ॥

तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन ॥२।१।२९॥

तृतीया १।१॥ तत्कृत लुप्ततृतीयान्तनिर्देशः ॥ अर्थेन ३।१॥ गुणवचनेन
स०—तेन कृतम् तत्कृतम्, तृतीयातत्पुरुषः। गुणमुक्तवान् गुण-
स्तेन···(उपपद) तत्पुरुषः ॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्,
सुपा, समासः ॥ अर्थः—तृतीयान्तं सुबन्तं तत्कृतेन गुणवचनेन,
ब्दन च सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—
या खण्डः, शङ्कुलाखण्डः, किरिणा काणः किरिकाणः। अर्थशब्देन—
न अर्थः धान्यार्थः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*तृतीया*] तृतीयान्त सुबन्त [*तत्कृतार्थेन गुण*] तत्कृत = तृतीयान्तार्थकृत गुणवाची शब्द के साथ तथा अर्थ के साथ समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है।

विशेषः—जिसने पहले गुण को कहा था, किन्तु अब द्रव्य को ही कहता है, उसे "गुणवचन" कहते हैं। जैसे कि खण्ड तथा काणशब्द खण्डन (तोड़ना) तथा निमीलन (आँख बन्द गुण को पहले कहते थे, किन्तु अब 'खण्डगुण' अर्थात् खण्ड जिसका, 'काणगुण' काण है गुण जिसका उस द्रव्य को कहते खण्ड और काण गुणवचन शब्द हैं। यहाँ खण्डगुणोऽस्य काणगुणोऽस्यास्तीति इस अर्थ में खण्ड तथा काण शब्द से मतु (५।२।९४) आया था पर उसका *गुणवचनेभ्यो मतुपो लुक्* (वा०) इस वार्त्तिक से लुक् हो जाता है॥ तत्कृतार्थेन यहाँ महायोगविभाग किया है, अर्थात् 'तत्कृतेन' को गुणवचनेन का माना है एवं 'अर्थेन' इसको अलग माना है, सो अर्थ हुआ "द्रव्य के साथ भी समास होता है" जिसका उदाहरण है 'धान्यार्थः' का अर्थ हुआ तृतीयान्तार्थ कृत, जैसे कि उदाहरण में शङ्कुला से) किरिणा (सुअर से) तृतीयान्त हैं, सो तत्कृत ही खण्डत्व (टुकड़ा) काणत्व (काना) है अतः यहाँ समास हो गया है॥ उदा०—शङ्कुला (सरोते के द्वारा किया हुआ खण्ड = टुकड़ा)। किरिकाणो के द्वारा काना किया) धान्यार्थः (धान्य से प्रयोजन)॥

यहाँ से *तृतीया* की अनुवृत्ति २।१।३४ तक जायगी॥

पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः॥२।१।३१॥

पूर्वसदृश···श्लक्ष्णैः ३।३॥ स०—पूर्वसदृश० इत्यत्रेतरेतर० अनु०—तृतीया, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, अर्थः—तृतीयान्तं सुबन्तं, पूर्व, सदृश, सम, ऊनार्थ, कलह, मिश्र, श्लक्ष्ण इत्येतैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च भवति॥ उदा०—मासेन पूर्वः = मासपूर्वः। संवत्सरपूर्वः। सदृशः = मातृसदृशः भ्रातृसदृशः। मात्रा समः मातृसमः। कार्षापणेन, ऊनं रूप्यं, कार्षापणोनम् रूप्यम्, कार्षापणन्यूनम्

तृतीयान्तं सुबन्तं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लहः, वाक्कलहः। असिकलहः। वाचा निपुणः, वाग्निपुणः। विद्या-
पुणः। गुडेन मिश्रः, गुडमिश्रः। तिलमिश्रः। आचारेण श्लक्ष्णः, आचा-
लक्ष्णः॥

भाषार्थः—तृतीयान्त सुबन्त का [पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुण-मिश्रश्लक्ष्णैः] पूर्वादि सुबन्तों के साथ विकल्प से समास हो जाता है, और वह तत्पुरुष समास होता है॥

उदा०—मासपूर्वः (एक मास पूर्व का) संवत्सरपूर्वः। मातृसदृशः (माता के तुल्य) भ्रातृसदृशः। मातृसमः (माता के समान) भ्रातृसमः। ऊनार्थ में—कार्षापणोनं रूप्यम् (कार्षापण से कम रुपया)। कार्षापणन्यूनं। कलहः (वाणी के द्वारा झगड़ा)। असिकलहः (तलवार से लड़ाई)। वाग्निपुणः (वाणी में निपुण)। विद्यानिपुणः। गुडमिश्रः (गुड़ मिलाया आ)। तिलमिश्रः। आचारश्लक्ष्णः (आचार से अच्छा)॥

कर्तृकरणे कृता बहुलम् ॥२।१।३१॥

कर्तृकरणे ७।१॥ कृता ३।१॥ बहुलम् १।१॥ स०—कर्त्ता च करणं च कर्तृकरणम् तस्मिन् समाहारद्वन्द्वः॥ अनु०—तृतीया, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—कर्तरि करणे च या तृतीया तदन्तं सुबन्तं समर्थेन कृदन्तेन सुबन्तेन सह बहुलं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—अहिना हतः, अहिहतः। वृकहतः। करणे—दात्रेण लूनं=दात्रलूनम्, परशुना छिन्नः परशुछिन्नः। नखैर्निर्भिन्नः=नखनिर्भिन्नः॥

भाषार्थः—[कर्तृकरणे] कर्त्तृवाची और करणवाची जो तृतीयान्त सुबन्त वे समर्थ [कृता] कृदन्त सुबन्त के साथ [बहुलम्] बहुल करके समास को प्राप्त होते हैं और वह तत्पुरुष समास होते हैं॥

उदाहरण—अहिना हतः में हतः क्रिया का कर्त्ता अहि है, उस अहि कर्त्ता में तृतीया कर्तृकरणयोस्तृतीया (२।३।१८) से हुई है, अतः यह कर्तृवाची ही है॥ दात्रेण लूनः में लूनः क्रिया का करण कारक दात्र है, सो यहाँ पूर्वोक्त सूत्र से करण कारक में तृतीया है, अतः यह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

करणवाची है ॥ हतः इत्यादि क्त प्रत्ययान्त हैं, 'क्त' की (३।१।९३) से कृत् संज्ञा हो गई ॥

विशेषः—बहून् अर्थान् लातीति बहुलम् जो बहुत अर्थों करावे उसे बहुल कहते हैं जो कि चार प्रकार का होता है, लक्षण निम्न प्रकार है :—

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः, क्वचिद् विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य, चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥

अर्थात् कहीं पर विधि न प्राप्त होते हुये भी कार्य होना, प्राप्त होने पर भी कार्य न होना, कहीं विकल्प से होना, तथा ही हो जाना, यह चार प्रकार का बहुल देखने में आता है, जहाँ बहुल हो वहाँ ऐसे ही कार्य जानना ॥

उदा०—अहिना हतः, अहिहतः (साँप के द्वारा काटा वृकहतः ॥ करणे—दात्रेण लूनं = दात्रलूनम् (दरांती से काटा परशुना छिन्नः परशुछिन्नः (कुल्हाड़ी से काटा हुआ)। नखैर्नि नखनिर्भिन्नः (नाखूनों के द्वारा तोड़ कर निकाला हुआ) ॥

यहाँ से 'कर्तृकरणे' की अनुवृत्ति २।१।३२ तक जायगी ॥

कृत्यैरधिकार्थवचने ॥२।१।३२॥

कृत्यैः ३।३॥ अधिकार्थवचने ७।१॥ स०—अर्थस्य = पदार्थस्य अर्थवचनम्, षष्ठीतत्पुरुषः। अधिकं च तदर्थवचनं च, अधिकार्थ तस्मिन् कर्मधारयतत्पुरुषः ॥ अनु०—कर्तृकरणे, तृतीया, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—कर्तृवाचि, वाचि तृतीयान्तं सुबन्तं कृत्यसंज्ञकप्रत्ययान्तैः सुबन्तैः सह अधिक गम्यमाने विभाषा समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा० पेया = काकपेया नदी। शुना लेह्यः = श्वलेह्यः कूपः ॥ छेद्यानि = वाष्पछेद्यानि तृणानि। कण्टकेन सञ्ज्ञेयः = ओदनः ॥

भाषार्थः—कर्तृवाची तथा करणवाची जो तृतीयान्त समर्थ [कृत्यैः] कृत्य प्रत्ययान्त सुबन्तों के साथ विकल्प से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ने] अधिकार्थवचन गम्यमान होने पर समास को प्राप्त होता है, और तत्पुरुष समास होता है ॥

किसी की स्तुति या निन्दा में कुछ बढ़ कर अधिक बात बोल देना धिकार्थवचन होता है ॥ पेया, लेह्यः इत्यादि में यत् और ण्यत् प्रत्यय हैं सो कृत्याः (३।१।९५) से कृत्य संज्ञक हैं ॥

उदा०—काकैः पेया = काकपेया नदी (इतने थोड़े[1] जल वाली नदी से कौआ भी पी डाले), शुना लेह्यः श्वलेह्यः कूपः (कुत्ते के चाट जाने य कूँआ, अर्थात् थोड़े जल वाला)॥ करण में—वाष्पेण छेद्यानि = ष्पछेद्यानि तृणानि (भाप से भी गल जाने वाले कोमल तिनके) कण्ट- न सञ्चेयः = कण्टकसञ्चेय ओदनः (इतने थोड़े चावल जो काँटे से इकट्ठे हो जायें) ॥

ऊपर के दो उदाहरणों में कर्त्ता में तृतीया है, और निन्दा में धिकार्थवचनता है, तथा पिछले दो उदाहरणों में करण में तृतीया, और ंसा में अधिकार्थवचनता है, ऐसा समझना चाहिये ॥

अन्नेन व्यञ्जनम् ॥२।१।३३॥

अन्नेन ३।१॥ व्यञ्जनम् १।१॥ अनु०—तृतीया, तत्पुरुषः, विभाषा, , सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—व्यञ्जनवाचि तृतीयान्तं सुबन्तं नवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो ति ॥

उदा०—दध्ना उपसिक्त ओदनः = दध्योदनः । क्षीरौदनः ॥

भाषार्थः—[व्यञ्जनम्] व्यञ्जनवाची तृतीयान्त सुबन्त [अन्नेन] नवाची समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, र वह तत्पुरुष समास होता है ॥

उदा०—दध्ना उपसिक्त ओदनः = दध्योदनः (दही मिला हुआ वल)। क्षीरौदनः ॥ दध्योदनः में यणादेश, तथा क्षीरौदनः, में रेचि (६।१।८५) से वृद्धि एकादेश हुआ है ॥

---

१. वस्तुतः इतने थोड़े जल वाली नदी हो ही नहीं सकती जिसे कौआ भी जाये, यहाँ ऐसा कहना ही अधिकार्थवचनता है । इसी प्रकार और उदाहरणों भी समझें ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भक्ष्येण मिश्रीकरणम् ॥२।१।३४॥

भक्ष्येण ३।१॥ मिश्रीकरणम् १।१॥ अनु०—तृतीया, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—मिश्रीकरणवाचि सुबन्तं भक्ष्यवाचिना सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च भवति॥ उदा०—गुडेन मिश्रा धानाः = गुडधानाः। गुडपृथुकाः।

भाषार्थः—[*मिश्रीकरणम्*] मिश्रीकरणवाची तृतीयान्त [*भक्ष्येण*] भक्ष्यवाची सुबन्त के साथ समास को प्राप्त और वह तत्पुरुष समास होता है।

उदा०—गुडेन मिश्रा धानाः = गुडधानाः (गुड़ मिले हुए गुडधानी)। गुडपृथुकाः (गुड़ से मिला हुआ च्यूड़ा भक्ष्य विशेष)।

चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः ॥२।१।३५॥

चतुर्थी १।१॥ तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः ३।३॥ स०—तदर्थम्, चतुर्थीतत्पुरुषः। तदर्थं च अर्थश्च बलिश्च हितञ्च सुखञ्च तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितानि तैः.....इतरेतरद्वन्द्वः॥ तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—चतुर्थ्यन्तं तदर्थ, अर्थ, बलि, हित, सुख, रक्षित इत्येतैः समर्थैः सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—तदर्थ य दारु = यूपदारु। कुण्डलाय हिरण्यम् = कुण्डलहिरण्यम्। अर्थ णार्थं पयः। ब्राह्मणार्थो यवागूः। बलि—इन्द्राय बलिः = इन्द्रबलि बलिः। हित-गोभ्यो हितं = गोहितम्। सुख-गोभ्यः सुखं = अश्वसुखम्। रक्षित-पुत्राय रक्षितम् = पुत्ररक्षितम्। अश्वरक्षितम्।

भाषार्थः—[*चतुर्थी*] चतुर्थ्यन्त सुबन्त [*तदर्थार्थबलि रक्षितैः*] तदर्थ में तथा अर्थ बलि हित सुख रक्षित इन समर्थों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष होता है॥

१—अर्थ शब्द के साथ नित्यसमास वार्त्तिक (२।१।३५) से कहे 'ब्राह्मणार्थं' का विग्रह नहीं दिखाया है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—तदर्थ-यूपाय दारु = यूपदारु (खम्भे के लिए लकड़ी)। ण्डलाय हिरण्यम् = कुण्डलहिरण्यम् (कुण्डल के लिये जो सोना)। अर्थ-ह्मणार्थं पयः (ब्राह्मण के लिये दूध)। ब्राह्मणार्था यवागूः (ब्राह्मण के ये लप्सी)। बलि—इन्द्राय बलिः = इन्द्रबलिः (इन्द्र देवता के लिये ल)। कुबेरबलिः। हित—गोभ्यो हितं = गोहितम् (गाय के लिये जो त)। सुख-गोभ्यः सुखं = गोसुखम् (गाय के लिये जो सुख)। अश्व-खम्। रक्षित-पुत्राय रक्षितम् = पुत्ररक्षितम् (पुत्र के लिये रक्षित), श्वरक्षितम्॥

पञ्चमी भयेन ॥२।१।३६॥

पञ्चमी १।१॥ भयेन ३।१॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह पा, समासः॥ अर्थः—पञ्चम्यन्तं सुबन्तं भयवाचि समर्थेन सुबन्तेन सह कल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—वृकेभ्यो यम् = वृकभयम्। चौरभयम्॥

भाषार्थः—[पञ्चमी] पञ्चम्यन्त सुबन्त [भयेन] भयवाची सुबन्त साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास ता है॥

उदा०—वृकेभ्यो भयम् = वृकभयम् (भेड़िये से भय) चौरभयम्॥ हाँ से 'पञ्चमी' की अनुवृत्ति २।१।३८ तक जायगी॥

अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः ॥२।१।३७॥

अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैः ३।३॥ अल्पशः अ०॥ स०—अपेता-ढ० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—पञ्चमी, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, ह सुपा, समासः॥ अर्थः—अल्पं पञ्चम्यन्तं सुबन्तं, अपेत, अपोढ, क्त, पतित, अपत्रस्त इत्येतैः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—दुःखात् अपेतः = दुःखापेतः, सुखा-तः। धनात् अपोढः = धनापोढः। दुःखात् मुक्तः = दुःखमुक्तः। स्वर्गात् तितः = स्वर्गपतितः। तरङ्गात् अपत्रस्तः = तरङ्गापत्रस्तः॥

भाषार्थः—[अल्पशः] अल्प पञ्चम्यन्त सुबन्त [अपेतापोढमुक्तपतिता-स्तैः] अपेत, अपोढ, मुक्त, पतित, अपत्रस्त इन समर्थ सुबन्तों के साथ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

विकल्प से समास को प्राप्त होता है और वह तत्पुरुष समास है। सूत्र में अल्पशः कहने का अभिप्राय यह है कि अल्प = थोड़े ही सुबन्तों का समास होता है, सब पञ्चम्यन्तों का नहीं, यथा पतितः इस पञ्चम्यन्त का नहीं होता है ॥

उदा०—दुःखापेतः (दुःख से दूर)। सुखापेतः। धनापेतः बाधित)। दुःखमुक्तः (दुःख से छूट गया)। स्वर्गपतितः (स्वर्ग हुआ)। तरङ्गापत्रस्तः (तरङ्गों से फैंका हुआ) ॥

स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन ॥२।१।३८॥

स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि १।३॥ क्तेन ३।१॥ स०—अन्तिकश्च दूरश्चेति स्तोकान्तिकदूरास्तेऽर्थाः येषां ते स्तोकान्तिकदूरार्थाश्च कृच्छ्रञ्च तानि·····कृच्छ्राणि, बहुव्रीहिगर्भ द्वन्द्वः ॥ अनु०—पञ्चमी, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, अर्थः—स्तोक, अन्तिक, दूर इत्येवमर्थाः शब्दाः कृच्छ्रशब्दश्च क्तान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च भवति ॥ उदा०—स्तोकात् मुक्तः, स्तोकान्मुक्तः। अल्पान्मुक्तः। कात् आगतः = अन्तिकादागतः। अभ्याशादागतः। दूरात् आगतः दागतः। विप्रकृष्टादागतः। कृच्छ्रात् मुक्तः = कृच्छ्रान्मुक्तः। लब्धः = कृच्छ्रालब्धः ॥

भाषार्थः—[*स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि*] स्तोक, अन्तिक और वाले पञ्चम्यन्त सुबन्त तथा कृच्छ्र शब्द जो पञ्चम्यन्त सुबन्त समर्थ क्तान्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है, तत्पुरुष समास होता है ॥ समास पक्ष में *सुपो धातु०* (२।४ जो पञ्चमी का लुक् प्राप्त था उसका *पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः* से अलुक् अर्थात् लुक् नहीं हुआ। समास होने से यही लाभ एक पद तथा एक स्वर हो गया ॥ स्तोकान्मुक्तः में त् को न् *नासिके०* (८।४।४४) से हुआ है। दूरादागतः में त् को द् *जशोन्ते* (८।२।३९) से हो गया है ॥

उदा०—स्तोकान्मुक्तः (थोड़े से ही छूट गया)। अन्तिकादागतः (समीप से आया हुआ)। अभ्याशादागतः (पास से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दूरादागतः (दूर से आया)। विप्रकृष्टादागतः। कृच्छ्रान्मुक्तः (थोड़े से छूट गया)। कृच्छ्रालब्धः ॥

सप्तमी शौण्डैः ॥२।१।३९॥

सप्तमी १।१॥ शौण्डैः ३।३॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—सप्तम्यन्तं सुबन्तं शौण्डादिभिः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—अक्षेषु शौण्डः = अक्षशौण्डः। अक्षधूर्तः। अक्षकितवः ॥

भाषार्थः—[सप्तमी] सप्तम्यन्त सुबन्त [शौण्डैः] शौण्ड इत्यादि सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ शौण्ड में बहुवचन निर्देश होने से यहाँ शौण्डादि गण लिया गया है ॥

उदा०—अक्षशौण्डः (द्यूत क्रीडा में चालाक) अक्षधूर्तः। अक्षकितवः ॥ यहाँ से 'सप्तमी' की अनुवृत्ति २।१।४७ तक जायगी।

सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च ॥२।१।४०॥

सिद्धशुष्कपक्वबन्धैः ३।३॥ च अ०॥ स०—सिद्धशुष्क० इत्यत्रेतरेतर-द्वन्द्वः ॥ अनु०—सप्तमी, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—सिद्ध, शुष्क, पक्व, बन्ध, इत्येतैः सुबन्तैः सह सप्तम्यन्तं सुबन्तं विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—ग्रामे सिद्धः = ग्रामसिद्धः। नगरसिद्धः। आतपे शुष्कः = आतपशुष्कः, छायायां शुष्कः = छायाशुष्कः। स्थाल्यां पक्वः = स्थालीपक्वः। यूपे बन्धः = यूपबन्धः। चक्रबन्धः ॥

भाषार्थः—[सिद्धशुष्कपक्वबन्धैः] सिद्ध, शुष्क, पक्व, बन्ध इन सुबन्तों के साथ [च] भी सप्तम्यन्त सुबन्त का विकल्प से समास होता है और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

उदा०—ग्रामसिद्धः (ग्राम में बना) नगरसिद्धः। आतपशुष्कः (गर्मी में सूखा हुआ)। छायाशुष्कः। स्थालीपक्वः (बटलोई में पकाया हुआ)। यूपबन्धः (यज्ञ के खम्भे में बाँधा हुआ)। चक्रबन्धः (चक्र में बाँधा हुआ) ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ध्वाङ्क्षेण क्षेपे ॥२।१।४१॥

ध्वाङ्क्षेण ३।१॥ क्षेपे ७।१॥ अनु०—सप्तमी, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—सप्तम्यन्तं सुबन्तं ध्वाङ्क्ष समर्थेन सुबन्तेन सह क्षेपे गम्यमाने विभाषा समस्यते तत्पुरुषश्च भवति॥ उदा०—तीर्थे ध्वाङ्क्ष इव, तीर्थध्वाङ्क्षः। तीर्थे काक तीर्थकाकः, तीर्थवायसः॥

भाषार्थः—सप्तम्यन्त सुबन्त समर्थ [ध्वाङ्क्षेण] ध्वाङ्क्ष वाची सुबन्त के साथ [क्षेपे] क्षेप = निन्दा गम्यमान होने पर वि समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है॥

उदा०—तीर्थध्वाङ्क्षः (जैसे कौआ एक स्थान पर नहीं उसी प्रकार जो छात्र एक स्थान पर न पढ़कर यत्र तत्र सर्वत्र वह तीर्थध्वाङ्क्षः[1] तीर्थकाकः कहलाता है) तीर्थकाकः, तीर्थवाय

कृत्यैर्ऋणे ॥२।१।४२॥

कृत्यैः ३।३॥ ऋणे ७।१॥ अनु०—सप्तमी, तत्पुरुषः, वि सह सुपा, समासः॥ अर्थः—सप्तम्यन्तं सुबन्तं कृत्यप्रत्ययान्तै सुबन्तैः सह, ऋणे गम्यमाने विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समास उदा०—मासे देयम् ऋणं = मासदेयम् ऋणम्। संवत्सरदेय देयम्॥

भाषार्थः—सप्तम्यन्त सुबन्त [कृत्यैः] कृत्य प्रत्ययान्त सम के साथ [ऋणे] ऋण गम्यमान होने पर विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है॥

उदा०—मासे देयम् ऋणं = मासदेयम् ऋणम् (महीने भ दिया जाने वाला ऋण) संवत्सरदेयम्, त्र्यहदेयम्॥ प्रत्यय अचो यत् (३।१।९७) से हुआ है सो कृत्याः (३।१ कृत्य संज्ञक है॥ दा+यत्_ दीयते दी+यत्_

---

१. विद्यार्थी का यत्र तत्र भागना ही यहाँ क्षेप है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

संज्ञायाम् ॥२।१।४३॥

संज्ञायाम् ७।१॥ अनु०—सप्तमी, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—सप्तम्यन्तं सुबन्तं संज्ञायाम् विषये समर्थेन सुपा सह समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—अरण्येतिलकाः। अरण्येमाषाः। वनेकिंशुकाः। वनेबिल्वकाः। कूपेपिशाचकाः॥

भाषार्थः—सप्तम्यन्त सुबन्त [संज्ञायाम्] संज्ञा विषय में समर्थ सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है॥ यहाँ महाविभाषा का अधिकार आते हुये भी नित्य समास ही होता है, क्योंकि विग्रह वाक्य से संज्ञा की प्रतीति ही नहीं होती है॥

उदा०—अरण्येतिलकाः (जङ्गली तिल)। अरण्येमाषाः (जङ्गली उड़द)। वनेकिंशुकाः (जङ्गली टेसू के फूल)। वनेबिल्वकाः (पूर्ववत् अर्थ जानें)। कूपेपिशाचकाः (यहाँ भी पूर्ववत् जानें)॥ सर्वत्र उदाहरणों में *हलदन्तात् सप्तम्याः०* (६।३।७) से विभक्ति का अलुक् हुआ है॥

क्तेनाहोरात्रावयवाः ॥२।१।४४॥

क्तेन ३।१॥ अहोरात्रावयवाः १।३॥ स०—अहश्च रात्रिश्च, अहोरात्रौ तयोरवयवाः, अहोरात्रावयवाः द्वन्द्वगर्भषष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—सप्तमी, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—सप्तम्यन्ताः अहरवयववाचिनः रात्र्यवयववाचिनश्च शब्दाः क्तप्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—पूर्वाह्णे कृतम् = पूर्वाह्णकृतम्। मध्याह्नकृतम्, पूर्वरात्रे कृतम् = पूर्वरात्रकृतम्। मध्यरात्रकृतम्॥

भाषार्थः—[अहोरात्रावयवाः] दिन के अवयववाची एवं रात्रि के अवयववाची सप्तम्यन्त सुबन्तों का [क्तेन] क्तान्त समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है और वह समास तत्पुरुष संज्ञक होता है॥

उदा०—पूर्वाह्णे कृतम् = पूर्वाह्णकृतम् (दिन के पूर्व भाग में किया हुआ)। मध्याह्नकृतम्, पूर्वरात्रे कृतम् = पूर्वरात्रकृतम् (रात्रि के पूर्व भाग में किया हुआ कार्य) मध्यरात्रकृतम्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से "क्तेन" की अनुवृत्ति २।१।४६ तक जाती है॥

तत्र ॥२।१।४५॥

तत्र अ०॥ अनु०—क्तेन, सप्तमी, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, समासः॥

अर्थः—'तत्र' इति सप्तम्यन्तं सुबन्तं क्तप्रत्ययान्तेन समर्थेन सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—तत्रभुक्तम्। तत्रपीतम्। तत्रकृतम्॥

भाषार्थः—[तत्र] तत्र इस सप्तम्यन्त शब्द का क्तप्रत्ययान्त के साथ समास विकल्प से होता है, और वह तत्पुरुष संज्ञक। समास होने से एक पद एक स्वर हो जाता है, पक्ष में पृथक् पद भी रहते हैं॥

उदा०—तत्रभुक्तम् (वहाँ खाया) तत्रपीतम् (वहाँ पिया) तत्रकृतम्॥

क्षेपे ॥२।१।४६॥

क्षेपे ७।१॥ अनु०—क्तेन, सप्तमी, तत्पुरुषः, विभाषा, सुपा, समासः॥

अर्थः—सप्तम्यन्तं सुबन्तं क्तान्तेन सुबन्तेन सह क्षेपे विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—अवतप्तेनकुलस्थितं तव एतत्। प्रवाहेमूत्रितम्। भस्मनिहुतम्॥

भाषार्थः—सप्तम्यन्त सुबन्त क्तान्त सुबन्त के साथ [क्षिप्] (निन्दा) गम्यमान होने पर समास को विकल्प से प्राप्त होता, वह तत्पुरुष समास होता है॥ उदा०—अवतप्तेनकुलस्थितं (तपी हुई भूमि में जिस प्रकार नेवला अस्थिर होकर इधर-उधर है, क्षण भर नहीं ठहरता उसी प्रकार तुम्हारा कार्य है, अर्थात् चञ्चल है) प्रवाहेमूत्रितम् (बहते पानी में मूत्र करने के समान, किया काम है, अर्थात् निष्फल है)। भस्मनिहुतम् (भस्म में आहुति डालने के समान तुम्हारा काम है)॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

]

त्पुरुषे कृति बहुलम् (६।३।१३) से अवतप्ते इत्यादियों में सप्तमी अलुक् हुआ है। नकुलस्थितं इत्यादि क्तान्त शब्द हैं। अत्यन्त लता आदि ही यहाँ क्षेप है, कार्यों को आरम्भ करके जो धैर्य से उसे न कर इधर-उधर भागे, उसके लिये यह कहा है॥

यहाँ से 'क्षेपे' की अनुवृत्ति २।१।४७ तक जायगी॥

पात्रेसंमितादयश्च ।२।१।४७॥

पात्रेसंमितादयः १।३॥ च अ०॥ स०—पात्रेसंमित आदिर्येषां ते संमितादयः, बहुव्रीहिः॥ अनु०—क्षेपे, सप्तमी, तत्पुरुषः, सुप्, सह समासः॥ अर्थः—पात्रेसंमिताः इत्यादयः शब्दाः क्षेपे गम्यमाने गया एव निपात्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—पात्रे-ताः। पात्रेबहुलाः॥

भाषार्थः—[पात्रेसंमितादयः] पात्रेसंमित इत्यादि शब्द [च] भी गम्यमान होने पर समुदाय रूप से अर्थात् जैसे गण में पठित हैं, प्रकार निपातन किये जाते हैं, और तत्पुरुष संज्ञक होते हैं॥ र यहाँ अवधारण के लिए है॥

उदा०—पात्रेसंमिताः (भोजन के समय में ही जो इकट्ठे हो जावें ी कार्य के समय नहीं)। पात्रेबहुलाः (भोजन काल में ही जो , किसी कार्य में नहीं)॥

कालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन ।।२।१।४८॥

पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः १।३॥ समानाधिकरणेन ३।१॥ —पूर्वकाल० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सुपा, समासः॥ अर्थः—पूर्वकाल, एक, सर्व, जरत्, पुराण, नव, ल, इत्येते सुबन्ताः समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते रुषश्च समासो भवति॥ उदा०—स्नातश्चानुभुक्तश्च = स्नातानु-ः, कृष्टसमीकृतम्। एकश्चासौ वैद्यश्च = एकवैद्यः। एकभिक्षा। सर्वे ते मनुष्याः = सर्वमनुष्याः। सर्वदेवाः। जरत् चासौ हस्ती च = जर-ी। जरदश्वः। पुराणं च तदन्नञ्च = पुराणान्नम्। पुराणावसथम्। न, तदन्नं च = नवान्नम्। नवावसथम्। केवलञ्च तदन्नं च = में ान्नम्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः*] पूर्वकाल, जरत्, पुराण, नव, केवल इन सुबन्तों का [*समानाधिकरणेन*] करण सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है, और समास होता है॥ समानाधिकरण की व्याख्या १।२।४२ में हैं॥ यह सूत्र *विशेषणं०* (२।१।५६) का अपवाद है॥

उदा०—स्नातश्चानुभुक्तश्च = स्नातानुभुक्तः (पहले पीछे खाया)। कृष्टसमीकृतम् (खेत को जोता पीछे बराबर एकश्चासौ वैद्यश्च = एकवैद्यः (एक ही है और वही वैद्य) भिक्षा। सर्वे च ते मनुष्याः = सर्वमनुष्याः (सब मनुष्य)। जरत् चासौ हस्ती च = जरद्धस्ती (बूढ़ा हाथी)। जरदश्वः। तदन्नञ्च = पुराणान्नम् (पुराना अन्न) पुराणावसथम् (पुराना तदन्नं च = नवान्नम् (नया अन्न) नवावसथम्। केवलञ्च केवलान्नम् (केवल अन्न)॥

जरद्धस्ती में ह् को ध् *झयो होऽन्यतरस्याम्* (८ हुआ है॥

यहाँ से '*समानाधिकरणेन*' की अनुवृत्ति पाद २।१।७१ तक जाती है।

दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम् ॥२।१।४९॥

दिक्सङ्ख्ये १।२॥संज्ञायाम् ७।१॥ स०—दिक् च सङ्ख्या ङ्ख्ये, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, सुपा, समासः॥ अर्थः—दिग्वाचिनः सङ्ख्यावाचिनश्च समानाधिकरणेन समर्थेन सुबन्तेन सह संज्ञायां विषये तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—पूर्वा चासौ इषुकामशमी पूर्वेषुकामशमी। अपरेषुकामशमी। सङ्ख्या-पञ्च च ते पञ्चाम्राः। सप्त च ते ऋषयः = सप्तर्षयः॥

भाषार्थः—[*दिक्सङ्ख्ये*] दिशावाची और सङ्ख्यावाची जो समानाधिकरण सुबन्त के साथ [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में प्राप्त होते हैं, और वे तत्पुरुष संज्ञक होते हैं॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—पूर्वा चासौ इषुकामशमी च = पूर्वेषुकामशमी (किसी नगर संज्ञा है)। अपरेषुकामशमी। संङ्ख्या—पञ्च च ते आम्राः, पञ्चाम्राः म के पाँच वृक्ष)। सप्तर्षयः (सात ऋषि)॥ पूर्वेषुकामशमी में समाधिकरण समास होने से तत्पुरुषः समा० (१।२।४२) से कर्मधारय संज्ञा हर 'पूर्वा' को पुंवत् कर्मधारय० (६।३।४०) से पुंवद्भाव हुआ है। दगुणः (६।१।८४) से गुण एकादेश होकर पूर्वेषुकामशमी है॥

यहाँ से 'दिक्सङ्ख्ये' की अनुवृत्ति २।१।५० तक जाती है॥

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च ॥२।१।५०॥

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे ७।१॥ च अ० ॥ स०—तद्धितार्थश्च, उत्तरश्च, समाहारश्च, तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारस्तस्मिन्' 'समाहारो द्वन्द्वः॥ ०—दिक्सङ्ख्ये, समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, सः ॥अर्थः—तद्धितार्थे = तद्धितोत्पत्तिविषये उत्तरपदे च परतः समागम्यमाने, दिक्सङ्ख्ये सुबन्ते समर्थेन समानाधिकरणवाचिना सुबन्तेन विभाषा समस्येते तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—पूर्वस्यां शायां भवः = पौर्वशालः, आपरशालः॥ संङ्ख्या-तद्धितार्थे-पञ्चानां तानाम् अपत्यम् = पाञ्चनापितिः। पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः = पञ्चलः॥ दिक्-उत्तरपदे—पूर्वा शाला प्रिया यस्य = पूर्वशालाप्रियः। सङ्-उत्तरपदे-पञ्च गावो धनं यस्य स पञ्चगवधनः। पञ्चनावप्रियः॥ हारे दिक्शब्दो नास्तीति नोदाह्रियते॥ सङ्ख्या-समाहारे—पञ्चानां नां समाहारः = पञ्चपूली, दशपूली। पञ्चानां कुमारीणां समाहारः कुमारि, दशकुमारि, अष्टानाम् अध्यायानां समाहारः अष्टाधी॥

भाषार्थः—[तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे] तद्धित का विषय उपस्थित पर, उत्तरपद परे रहते, तथा समाहार गम्यमान होने पर [च] भी वाची तथा सङ्ख्यावाची सुबन्तों का समर्थ समानाधिकरणवाची त के साथ विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः ॥२।१।५१॥

सङ्ख्यापूर्वः १।१॥ द्विगुः १।१॥ स०—सङ्ख्या पूर्वो यस्य सः सङ्ख्यापूर्वः, बहुव्रीहिः ॥ अर्थः—तद्धितार्थोत्तरपद० इत्यत्र यः समासः स द्विगुसंज्ञको भवति ॥ पूर्वसूत्रस्यायं शेषः ॥ पूर्वसूत्रस्यैवोदाहरणानि बोद्धव्यानि । अन्यच्च—पञ्चेन्द्राणां स्थालीपाकस्य, पञ्चेन्द्रः, दशेन्द्रः ॥

भाषार्थः—तद्धितार्थोत्तरपद समाहार में जो [सङ्ख्यापूर्वः] पूर्व समास है वह [*द्विगुः*] द्विगु संज्ञक होता है ॥ यह सूत्र शेष है ॥ पञ्चेन्द्रः की सिद्धि हम परि०१।२।४६ पर दिखा चुके उदाहरण पूर्व सूत्र के ही हैं ॥

कुत्सितानि कुत्सनैः ॥२।१।५२॥

कुत्सितानि १।३॥ कुत्सनैः ३।३॥ अनु०—समानाधिकरणेन विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—कुत्सितवाचीनि कुत्सनवचनैः समानाधिकरणैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यन्ते, समासो भवति ॥ उदा०—वैयाकरणश्चासौ खसूचिश्च = वैयाकरणखसूचिः । याज्ञिककितवः । मीमांसकदुर्दुरूढः ॥

भाषार्थः—[*कुत्सितानि*] कुत्सितवाची (निन्दा किये गये) सुबन्त [कुत्सनैः] कुत्सनवाची (निन्दावाची) समानाधिकरण के साथ विकल्प करके समास को प्राप्त होते हैं, और वे तत्पुरुष होते हैं ॥

यहाँ से पहले २ के सब सूत्र *विशेषणं विशेष्येण बहुलम्* के अपवाद हैं, उस सूत्र से समास करते तो "खसूचिः" आदि षणवाची उपसर्जन संज्ञक होने से, पूर्वनिपात होता, परन्तु निपात हो गया, यही पृथक् सूत्र बनाने का प्रयोजन है । ऐसे सूत्रों में जानना चाहिये ॥

उदा०—वैयाकरणखसूचिः (आकाश की ओर देखने वाला) अर्थात् ऐसा वैयाकरण जो कि व्याकरण की बात पूछने पर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

देखने लगे, बता न सके)। याज्ञिककितवः (ऐसा याज्ञिक जो यज्ञ अनधिकारियों के यहाँ भी यज्ञ कराये)। मीमांसकदुर्दुरूढः (नास्तिक मांसक)॥

यहाँ से 'कुत्सनैः' की अनुवृत्ति २।१।५३ तक जाती है॥

पापाणके कुत्सितैः ॥२।१।५३॥

पापाणके १।२॥ कुत्सितैः ३।३॥ स०—पापञ्च, अणकञ्च, पापाणके, तरद्वन्द्वः॥ अनु०—कुत्सनैः, समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सुपा, समासः॥ अर्थः—पाप, अणक इत्येतौ कुत्सनवाचिनौ सुबन्तौ सतवाचिभिः समानाधिकरणैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्येते, तत्पुरुषश्च सो भवति॥ पूर्वसूत्रस्यापवादोऽयम्। पापाणकयोः कुत्सनवाचित्वात् नपाते प्राप्ते, पूर्वनिपातार्थोयमारम्भः॥ उदा०—पापश्चासौ नापित-पापनापितः। पापकुलालः। अणकनापितः। अणककुलालः॥

भाषार्थः—[पापाणके] पाप और अणक जो कुत्सनवाची सुबन्त वे नाधिकरण [कुत्सितैः] कुत्सितवाची सुबन्तों के साथ विकल्प से स को प्राप्त होते हैं, और वह तत्पुरुष समास होते हैं॥ यह सूत्र पूर्व का अपवाद है। कुत्सनवाची पाप अणक शब्द थे ही, सो समास पूर्व से हो ही जाता, पुनः आरम्भ पूर्वनिपातार्थ है॥

उदा०—पापनापितः (पापी नाई)। पापकुलालः। अणकनापितः न्दित नाई)। अणककुलालः (निन्दित कुम्हार)॥

उपमानानि सामान्यवचनैः ॥२।१।५४॥

उपमानानि १।३॥ सामान्यवचनैः ३।३॥ अनु०—समानाधिकरणेन, रुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—उपमानवाचीनि वानि समानाधिकरणसामान्यवचनैः सुबन्तैः सह, विभाषा समस्यन्ते, रुषश्च समासो भवति॥ उपमीयते अनेन इति उपमानम्॥ उदा०—इव श्यामः=घनश्यामो देवदत्तः। शस्त्री इव श्यामा=शस्त्रीश्यामा त्ता॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[उपमानानि] उपमानवाची सुबन्त [सामान्यवाची समानाधिकरण सुबन्तों के साथ विकल्प से प्राप्त होते हैं, और वे तत्पुरुष समास होते हैं ॥

जिस वस्तु से किसी की उपमा दी जाये वह वस्तु उपमान तथा जिसकी दी जाय वह उपमेय होता है, उदाहरण में श्यामा उपमान व देवदत्त उपमेय हैं ॥ जिस विशेष गुण को लेकर उपमान का साम्य दिखाया जाये वह सामान्यवचन = साधारण कहलाता है। यथा पूर्वोक्त उदाहरण में शस्त्री के श्यामत्व देवदत्ता में दिखाया है, सो श्यामा सामान्यवचन है, अतः समास हुआ है ॥ जो शब्द उनकी समानता को बताये वह शब्द कहलाता है, जैसे—इव, यथा। ये ४ बातें उपमा होती हैं ॥

उदा०—घनश्यामो देवदत्तः (बादलों की तरह काला शस्त्रीश्यामा देवदत्ता (शस्त्री = छोटा छुरा, उसके समान जो

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ॥२।१।५५॥

उपमितं १।१॥ व्याघ्रादिभिः ३।३॥ सामान्याप्रयोगे ७।१॥ व्याघ्र आदिर्येषां ते व्याघ्रादयः, तैः·····बहुव्रीहिः। न प्रयोगः सामान्यस्य अप्रयोगः, सामान्याप्रयोगः, तस्मिन् षष्ठीतत्पुरुषः। समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः। सामान्यस्य = साधारणधर्मस्य अप्रयोगे = अनुच्चारणे सति, उपमेयवाचि सुबन्तं समानाधिकरणैः व्याघ्रादिभिः सुबन्तैः समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—पुरुषोऽयं व्याघ्र इव = पुरुषव्याघ्रः। पुरुषोऽयं सिंह इव = पुरुषसिंहः ॥

भाषार्थः—[सामान्याप्रयोगे] साधारण धर्म के अप्रयोग होने पर [उपमितम्] उपमेयवाची सुबन्त का समानाधि [व्याघ्रादिभिः] व्याघ्रादि समर्थ सुबन्तों के साथ विकल्प से है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ पूर्वसूत्र का सूत्र पूर्वनिपातार्थ है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—पुरुषव्याघ्रः (व्याघ्र के समान शूरवीर पुरुष)। पुरुषसिंहः ॥
रण में पुरुष उपमेय, व्याघ्र उपमान हैं। साधारण धर्म शूरता है,
त् शूरत्व को लेकर उपमा दी गई है, सो उसका यहाँ अप्रयोग है।
प्रयोग होगा वहाँ समास नहीं होगा ॥

विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ॥२।१।५६॥

विशेषणं १।१॥ विशेष्येण ३।१॥ बहुलम् १।१॥ अनु०—समाना-
रणेन, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—विशेषणवाचि
तं विशेष्यवाचिना समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह बहुलं समस्यते,
रुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—नीलञ्च तदुत्पलञ्च = नीलोत्पलम्।
त्पलम्। बहुलवचनात् क्वचित् नित्यसमास एव। कृष्णसर्पः, लोहित-
ः ॥

भाषार्थः—[*विशेषणम्*] विशेषणवाची सुबन्त [*विशेष्येण*] विशेष्यवाची
नाधिकरण सुबन्त के साथ [बहुलम्] बहुल करके समास को प्राप्त
है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ बहुल की व्याख्या हम
।३१ में कर चुके हैं ॥ जो किसी की विशेषता को बताये वह विशेषण
त् भेदक होता है, तथा जिसकी बताये वह विशेष्य होता है ॥

उदा०—नीलोत्पलम् (नीला कमल) रक्तोत्पलम् (लाल कमल)
र्पः (काला साँप) लोहितशालिः (लाल धान) ॥

उदाहरण में नील उत्पल की विशेषता को बताता है अतः वह विशे-
है, तथा उत्पल विशेष्य है, सो समास हो गया है ॥

यहाँ से "*विशेषणं विशेष्येण*" की अनुवृत्ति २।१।५७ तक
ी है ॥

पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च ॥२।१।५७॥

पूर्वापर.....वीराः १।३॥ च अ० ॥ स०—पूर्वापर० इत्यत्रेतरेतर-
द्वः ॥ अनु०—विशेषणं विशेष्येण, समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः,
भाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—पूर्व, अपर, प्रथम, चरम,
जघन्य, समान, मध्य, मध्यम, वीर इत्येते विशेषणवाचिनः सुबन्ताः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

समानाधिकरणैः विशेष्यवाचिभिः सुबन्तैः सह विभाषा तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—पूर्वश्चासौ पुरुषश्च = अपरपुरुषः । प्रथमपुरुषः । चरमपुरुषः । जघन्यपुरुषः । समानपुरुषः । मध्यपुरुषः । मध्यमपुरुषः । वीरपुरुषः ॥

भाषार्थः—[पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराः] पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, समान, मध्य, मध्यम, वीर इन विशेष्यवाची सुबन्तों का [च] भी विशेष्यवाची समानाधिकरण सुबन्तों के साथ विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

पूर्व सूत्र से ही समास सिद्ध था, पुनः यह सूत्र यों ही है, अथवा पूर्व से बहुल करके समास प्राप्त होने पर यह सूत्र है, कि यहाँ विकल्प से हो, पुनरपि यह प्रपञ्च ही है ॥

उदा०—पूर्वपुरुषः (पहला पुरुष) । अपरपुरुषः (दूसरा पुरुष) । प्रथमपुरुषः । चरमपुरुषः (अन्तिम पुरुष) । जघन्यपुरुषः (निकृष्ट पुरुष) । समानपुरुषः (समान पुरुष) । मध्यपुरुषः (बीच का आदमी) । मध्यमपुरुषः । वीरपुरुषः (वीर पुरुष) ॥

श्रेण्यादयः कृतादिभिः ॥२।१।५८॥

श्रेण्यादयः १।३॥ कृतादिभिः ३।३॥ स०—श्रेणिः आदिर्येषां ते श्रेण्यादयः, बहुव्रीहिः । कृत आदिर्येषां ते कृतादयः, तैः ..... अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा । अर्थः—श्रेण्यादयः सुबन्ताः समानाधिकरणैः कृतादिभिः सुबन्तैः सह समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—अश्रेणयः श्रेणिकृताः । एककृताः ॥

भाषार्थः—[श्रेण्यादयः] श्रेण्यादि सुबन्त [कृतादिभिः] समानाधिकरण सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते तत्पुरुष संज्ञक होते हैं ॥ उदा०—श्रेणिकृताः (जो पंक्ति में पंक्ति में करके) एककृताः (जो एक नहीं थे उनको एक करके)

क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ् ॥२।१।५९॥

क्तेन ३।१॥ नञ्विशिष्टेन ३।१॥ अनञ् १।१॥ नञ् विशिष्टो यस्मिन् स नञ्विशिष्टः, तेन ..... बहुव्रीहिः ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

स्मिन् सोऽनञ्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, भाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—अनञ् क्तान्तं सुबन्तं, नञ्विशिष्टेन क्तान्तेन समानाधिकरणसुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—कृतं च तदकृतं च = कृताकृतम् । भुक्ताभुक्तम् । पीतापीतम् ॥

भाषार्थः—[अनञ्] अनञ् क्तान्त सुबन्त [नञ्विशिष्टेन] नञ्विशिष्ट (अर्थात् जिस शब्द में नञ् ही विशेष हो, अन्य सब द्वितीय पद के तुल्य हो) समानाधिकरणवाची [क्तेन] क्तान्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त हो, और वह तत्पुरुष समास हो ॥

उदा०—कृताकृतम् (जिसका किया न किया बराबर हो)। भुक्ताभुक्तम् (जिसका खाना न खाना एक हो)। पीतापीतम् ॥

उदाहरण 'कृताकृतम्' आदि में पूर्वपद नञ् रहित कृत, तथा उत्तरपद नञ्विशिष्ट है। उत्तरपद में पूर्वपद से केवल नञ् ही विशेष है, अन्य सब प्रकृति प्रत्ययादि तुल्य हैं। नञोऽत्यर्थो नाव्यतीहादि [illegible] पदलोपश्च

सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः ॥२।१।६०॥

सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः ॥१।३॥ पूज्यमानैः ३।३॥ स०—सत् च महत् च परमश्च उत्तमश्च उत्कृष्टश्च सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—सत्, महत्, परम, उत्तम, उत्कृष्ट इत्येते सुबन्ताः समानाधिकरणैः पूज्यमानैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—सत् चासौ पुरुषश्च = सत्पुरुषः । महापुरुषः । परमपुरुषः । उत्तमपुरुषः । उत्कृष्टपुरुषः ॥

भाषार्थः—[सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः] सत्, महत्, परम, उत्तम, उत्कृष्ट जो सुबन्त वे समानाधिकरणवाची [पूज्यमानैः] पूज्यमान (पूजा के योग्य) सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वे तत्पुरुष संज्ञक होते हैं ॥ ये सब सूत्र २।१।५६ के प्रपञ्च हैं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—सत्पुरुषः (सज्जन पुरुष)। महापुरुषः। परमपुरुषः (उत्तम पुरुष)। उत्तमपुरुषः। उत्कृष्टपुरुषः (अच्छा पुरुष)॥

महापुरुषः में महत् को *आन्महतः समानाधिकरण०* (६।३।४६) से आत्व, होता है, जो कि *अलोन्त्यस्य* (१।१।५२) से अन्त्य अल् को हुआ है॥

वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम् ॥२।१।६१॥

वृन्दारकनागकुञ्जरैः ३।३॥ पूज्यमानम् १।१॥ स०—वृन्दारकश्च नागश्च कुञ्जरश्च = वृन्दारकनागकुञ्जराः, तैः····इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—पूज्यमानवाचि सुबन्तं, वृन्दारक नाग कुञ्जर इत्येतैः समानाधिकरणैः सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—गोवृन्दारकश्च = गोवृन्दारकः। अश्ववृन्दारकः। गोनागः। अश्वनागः। गोकुञ्जरः। अश्वकुञ्जरः॥

भाषार्थः—[पूज्यमानम्] पूज्यमानवाची सुबन्त [वृन्दारकनाग०] वृन्दारक, नाग, कुञ्जर इन समानाधिकरणवाची सुबन्तों के विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास है॥ गो, अश्व, पूज्यमानवाची थे, सो समास होकर उपसर्जन (२।२।३०) से इनका पूर्व निपात हुआ है, पूर्वसूत्र से परनिपात था, पूर्वनिपातार्थ यह सूत्र है॥

उदा०—गोवृन्दारकः (सुन्दर गौ)। अश्ववृन्दारकः। गोनागः (बड़ी गौ)। गोकुञ्जरः (अच्छी गौ)। अश्वकुञ्जरः॥

कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने ॥२।१।६२॥

कतरकतमौ १।२॥ जातिपरिप्रश्ने ७।१॥ स०—कतरश्च, कतमश्च कतरकतमौ, इतरेतरद्वन्द्वः। जातेः परितः प्रश्नः, जातिपरिप्रश्नः, तत्पुरुषः॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सुपा, समासः॥ अर्थः—जातिपरिप्रश्नेऽर्थे वर्त्तमानौ कतर-कतम-समर्थेन समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्येते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

मासो भवति ॥ उदा०—कतरः कठः = कतरकठः कतरकलापः । कतमः कठः । कतमकलापः ॥

भाषार्थः—[*जातिपरिप्रश्ने*] जातिपरिप्रश्न अर्थात् जाति के विषय में त्रिविध प्रश्न में वर्त्तमान जो [*कतरकतमौ*] कतर, कतम शब्द वे समानाधिकरणवाची समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त हों और तत्पुरुष समास होवें ॥

उदा०—कतरकठः (इन दोनों में कौन कठ है) । कतरकलापः । कतमकठः (इन सब में कौन कठ है) । कतमकलापः ॥

किं क्षेपे ॥२।१।६३॥

किम् १।१॥ क्षेपे ७।१॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ *अर्थः*—किम् इत्येतत् सुबन्तं क्षेपे गम्यमाने समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—कथंभूतः सखा = किंसखा योऽभिद्रुह्यति । किंराजा यो न रक्षति ॥

भाषार्थः—[किम्] किं सुबन्त का [क्षेपे] निन्दा गम्यमान होने पर समानाधिकरणवाची समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

उदा०—किंसखा यो अभिद्रुह्यति (वह कैसा मित्र है, अर्थात् मित्र नहीं है, जो द्रोह करता है) । किंराजा यो न रक्षति (वह कैसा राजा है, जो प्रजा की रक्षा नहीं करता) ॥

पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्वष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्त्तैर्जातिः ॥२।१।६४॥

पोटायुवति···धूर्तैः ३।३॥ जातिः १।१॥ स०—पोटा च युवतिश्च स्तोकश्च कतिपयं च गृष्टिश्च धेनुश्च वशा च वेहच्च वष्कयणी च प्रवक्ता च श्रोत्रियश्च अध्यापकश्च धूर्तश्च = पोटा···धूर्ताः तैः···इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अर्थः—पोटा, युवति, स्तोक, कतिपय, गृष्टि, धेनु वशा, वेहद्, वीर प्रवक्तृ, श्रोत्रिय, अध्यापक, इत्येतैः समानाधिकरणैः सुबन्तैः सह सुबन्तं विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा० चासौ पोटा च = इभपोटा । इभयुवतिः । अग्निस्तोकः । उदश्वित्कतिपयम् । गोगृष्टिः । गोधेनुः । गोवशा । गोवेहत् । गोवष्कयणी । कठश्रोत्रियः । कठाध्यापकः । कठधूर्त्तः ॥

भाषार्थः—[जातिः] जातिवाची जो सुबन्त वह [पोटायुवति०] पोटा युवति आदि समानाधिकरणवाची समर्थ सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष संज्ञक होता है ॥ कठ आदि जातिवाची सुबन्त हैं ॥ यहाँ पर जाति विशेष्य है, पोटा विशेषण हैं, सो २।१।५६ से समास प्राप्त था, पुनर्वचन विशेष्य का पूर्व निपात (२।२।३०) हो, विशेषणवाचियों का नहीं, इसलि

उदा०—इभपोटा (नपुंसक हाथी) इभयुवतिः (नौजवान ह अग्निस्तोकः (थोड़ी अग्नि) उदश्वित्कतिपयम् (कुछ मट्ठा)। गोगृ बार प्रसूता जो गौ)। गोधेनुः (तत्काल ब्याई हुई गौ)। गोवशा गौ)। गोवेहत् (गर्भपातिनी गौ)। गोवष्कयणी (तरुण हैं बछड़े ऐसी गौ)। कठप्रवक्ता (कठ जो व्याख्याता)। कठश्रोत्रियः (कठ पढ़ने वाला)। कठाध्यापकः (कठ जो अध्यापक)। कठधूर्त्तः धूर्त्त) ॥

यहाँ से 'जातिः' की अनुवृत्ति २।१।६५ तक जायगी ॥

प्रशंसावचनैश्च ॥२।१।६५॥

प्रशंसावचनैः ३।३॥ च अ० ॥ अनु०—जातिः समानाधि तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—जातिवाचि प्रशंसावचनैः समानाधिकरणैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यते, समासो भवति ॥ उदा०—ब्राह्मणश्चासौ तेजस्वी च = ब्राह्मणतेज ब्राह्मणशूरः । गोप्रकाण्डम् । गोमतल्लिका । गोमचर्चिका ॥

भाषार्थः—जातिवाची सुबन्त [प्रशंसावचनैः] प्रशंसावाची धिकरण सुबन्त के साथ [च] भी विकल्प से समास को प्राप्त

CC-0, Pānini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

और वह तत्पुरुष समास होता है। प्रकाण्ड, मतल्लिका आदि प्रशंसावाची शब्द हैं॥

युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिः ॥२।१।६६॥

युवा १।१॥ खलतिपलितवलिनजरतीभिः ३।३॥ स०—खलतिश्च पलितश्च वलिनश्च जरती च = खलति···जरत्यः = ताभिः इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—युवशब्दः, खलति, पलित, वलिन, जरती इत्येतैः समानाधिकरणैः सुबन्तैः सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—युवा खलतिः = युवखलतिः। युवा पलितः = युवपलितः। युवा वलिनः = युववलिनः। युवतिः जरती = युवजरती॥

भाषार्थः—[युवा] युवन् शब्द [खलतिपलितवलिनजरतीभिः] खलति, पलित, वलिन, जरती इन समानाधिकरणवाची सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है॥

उदा०—युवखलतिः (नौजवान गञ्जा पुरुष)। युवपलितः (नौजवान सफेद बालों वाला)। युववलिनः (नौजवान झुर्री वाला)। युवजरती (नौजवानी में ही बूढ़ी हुई स्त्री)॥ 'युवन् सु खलति सु, इस अवस्था में समास होकर *नलोपः प्राति०* (८।२।७) से युवन् के न् का लोप हो गया शेष पूर्ववत् है॥ स्त्रीलिङ्ग में युवति खलती तथा युवति जरती का समास होने पर १।२।४२ से कर्मधारय संज्ञा होकर, *पुंवत् कर्मधारय०* (६।३।४०) से पुंवद्भाव होकर युव रह गया, शेष पूर्ववत् समझें॥

कृत्यतुल्याख्या अजात्या ॥२।१।६७॥

कृत्यतुल्याख्याः १।३॥ अजात्या ३।१॥ स०—तुल्यस्य आख्या, तुल्याख्या षष्ठीतत्पुरुषः। कृत्याश्च तुल्याख्याश्च, कृत्यतुल्याख्याः, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—कृत्यप्रत्ययान्ताः तुल्यपर्यायाश्च सुबन्ता अजातिवाचिना समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—भोज्यं चादः उष्णञ्च, भोज्योष्णम्। भोज्यलवणम्।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पानीयशीतम्। तुल्याख्याः—तुल्यश्वेतः। तुल्यमहान्। सदृशमहान्॥

भाषार्थः—[*कृत्यतुल्याख्याः*] कृत्य प्रत्ययान्त सुबन्त तथा पर्यायवाची सुबन्त [*अजात्या*] अजातिवाची समानाधिकरण सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह समास होते हैं॥

उदा०—भोज्योष्णम् (गर्म खाने योग्य पदार्थ)। भोज्यलवणम् (भोजन योग्य नमकीन पदार्थ)। पानीयशीतम् (पीने योग्य शीतल)। तुल्य की आख्या वाले—तुल्यश्वेतः (बराबर सफेद)। तुल्यमहान् (बराबर महान्)। सदृशश्वेतः। सदृशमहान्॥ भुज धातु से ण्यत् (यत्) प्रत्यय होकर भोज्य, तथा पा धातु से अनीयर् प्रत्यय होकर पानीय बना है, ये प्रत्यय कृत्याः (३।१।९५) से कृत्य संज्ञक हैं। उक्त शब्द अजातिवाची हैं, सो पूर्ववत् समास हो गया है॥

वर्णो वर्णेन ॥२।१।६८॥

वर्णः १।१॥ वर्णेन ३।१॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः॥ *अर्थः*—वर्णविशेषवाचि सुबन्तं, वर्णवाचिना समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, स च समासो भवति॥ उदा०—कृष्णश्चासौ सारङ्गश्च कृष्णसारङ्गः। कृष्णसारङ्गः। कृष्णशबलः। लोहितशबलः॥

भाषार्थः—[*वर्णः*] वर्णविशेषवाची सुबन्त [*वर्णेन*] वर्णवाचि समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास को विकल्प से प्राप्त। और वह तत्पुरुष समास होता है॥

उदा०—कृष्णसारङ्गः (काला और चितकबरा) लोहितसारङ्गः (लाल और चितकबरा)। कृष्णशबलः (काला और चितकबरा) लोहितशबलः॥

कुमारः श्रमणादिभिः ॥२।१।६९॥

कुमारः १।१॥ श्रमणादिभिः ३।३॥ स०—श्रमण आदिर्येषां ते श्रमणादयस्तैः.....बहुव्रीहिः॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—कुमारशब्दः समानाधिकरणैः श्रमणा-
भः समर्थैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥
उ०—कुमारी चासौ श्रमणा च = कुमारश्रमणा। कुमारप्रव्रजिता ॥

भाषार्थः—[कुमारः] कुमार शब्द समानाधिकरणवाची [श्रमणा-
दिभिः] श्रमणादि सुबन्तों के साथ समास को विकल्प से प्राप्त होता है,
वह तत्पुरुष समास होता है ॥

उदा०—कुमारश्रमणा (कुमारी तपस्विनी)। कुमारप्रव्रजिता (कुमारी
यासिनी) ॥ सूत्र २।१।६६ की सिद्धि के समान ही यहाँ भी पुंवद्भाव
ा है ॥

चतुष्पादो गर्भिण्या ॥२।१।७०॥

चतुष्पादः, १।३॥ गर्भिण्या ३।१॥ स०—चत्वारः पादा येषां, ते
ुष्पादः, बहुव्रीहिः॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः विभाषा, सुप्,
सुपा, समासः ॥ अर्थः—चतुष्पाद्वाचिनः (पश्वादयः) सुबन्ताः
र्भिणी-समानाधिकरण-सुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च
ासो भवति ॥ उदा०—गौश्चासौ गर्भिणी च = गोगर्भिणी। महिषी-
र्भिणी। अजागर्भिणी ॥

भाषार्थः— [चतुष्पादः] चतुष्पादवाची (चार पैर हैं जिनके, पशु
दि) जो सुबन्त वह समानाधिकरणवाची [गर्भिण्या] गर्भिणी सुबन्त
साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं और वे तत्पुरुष संज्ञक
हैं ॥

उदा०—गोगर्भिणी (गर्भिणी गाय) महिषीगर्भिणी (गर्भिणी भैंस)।
ागर्भिणी (गर्भिणी बकरी) ॥

मयूरव्यंसकादयश्च ॥२।१।७१॥

मयूरव्यंसकादयः, १।३॥ च अ० ॥ स०—मयूरव्यंसक आदिर्येषां ते
ूरव्यंसकादयः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, सुप्,
सुपा, समासः ॥ अर्थः—मयूरव्यंसकादयो गणशब्दाः समानाधि-
णे तत्पुरुषसञ्ज्ञका भवन्ति। समुदाया एव निपात्यन्ते ॥ उदा०—
ूरव्यंसकः। छात्रव्यंसकः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[मयूरव्यंसकादयः] मयूरव्यंसकादि गणपठित शब्द [च] भी, समानाधिकरण तत्पुरुष संज्ञक होते हैं॥

उदा०—मयूरव्यंसकः (बहुत चालाक मोर)। छात्रव्यंसकः विद्यार्थी)॥

इति प्रथमः पादः

——:०:——

द्वितीयः पादः

पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे ॥२।२।१॥

पूर्वापराधरोत्तरम् १।१॥ एकदेशिना ३।१॥ एकाधिकरणे ७।१॥ पूर्वं च अपरं च अधरं च उत्तरं च, तत् पूर्वापराधरोत्तरं द्वन्द्वः। एकं च तदधिकरणम् च, एकाधिकरणम्, तस्मिन्, कर्मधारयस्तत्पुरुषः। एकदेशोऽस्यास्तीति एकदेशी, तेन। अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ पूर्व अपर, अधर, उत्तर इत्येते सुबन्ताः एकाधिकरणवाचिनो द्रव्यवाचिना एकदेशिना समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—पूर्वं कायस्य = पूर्वकायः। पूर्वं = पूर्वनदी। अपरकायः। वृक्षस्य अपरं = अपरवृक्षम्। अधरं = अधरकायः। गृहस्य अधरं = अधरगृहम्। उत्तरं उत्तरकायः॥

भाषार्थः—[पूर्वापराधरोत्तरम्] पूर्व, अपर, अधर, उत्तर [एकाधिकरणे] एकाधिकरणवाची = एकद्रव्यवाची [एकदेशि] देशी (अवयवी) समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास को हैं, और वे तत्पुरुष संज्ञक होते हैं॥ एकदेश = अवयव जिस एकदेशी कहलाता है, अर्थात् समुदाय, वह एक अधिकरण देश और एकदेशी दोनों एक द्रव्य में स्थित हों तो समास हो

उदा०—पूर्वकायः (शरीर का पूर्वभाग)। पूर्वनदी, (शरीर का अपर भाग)। अपरवृक्षः। अधरकायः (शरीर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

) अधरगृहम्। उत्तरकायः (शरीर का उत्तर भाग)॥ उदाहरण में
, नदी इत्यादि शब्द एकदेशी हैं, क्योंकि उन्हीं का अवयव पूर्व
र है, सो अवयव वाले हैं, और एक अधिकरण वाले भी हैं भिन्न
न नहीं॥ यह सूत्र षष्ठी समास का अपवाद है, षष्ठी समास होता
काय, वा नदी का *उपसर्जनं पूर्वम्* (२।२।३०) से पूर्वनिपात होता, अब
निपात ही होता है॥
यहाँ से *'एकदेशिनैकाधिकरणे'* की अनुवृत्ति २।२।३ तक जायगी॥

अर्धं नपुंसकम् ॥२।२।२॥

अर्धम् १।१। नपुंसकम् १।१॥ अनु०—एकदेशिनैकाधिकरणे, तत्पुरुषः, षा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—नपुंसकलिङ्गे वर्त्तमानो र्द्धशब्दः, स एकाधिकरणवाचिना एकदेशिना सुबन्तेन सह विभाषा स्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ समप्रविभागे अर्द्ध शब्दो नपुंसके ते, ततोऽन्यत्र पुंल्लिङ्गः॥ उदा०—पिप्पल्याः अर्द्धं = अर्द्धपिप्पली। कोशातकी॥

भाषार्थः—[*अर्द्धम्*] अर्द्ध शब्द [*नपुंसकम्*] नपुंसकलिङ्ग में वर्त्तमान एकाधिकरणवाची एकदेशी सुबन्त के साथ विकल्प से समास को होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है॥ अर्द्ध शब्द आधे को में नपुंसकलिङ्ग होता है, उससे अन्यत्र पुंल्लिङ्ग होता है॥ यह भी समास का अपवाद सूत्र है॥

उदा०—अर्द्धपिप्पली (पिप्पली का आधा)। अर्द्धकोशातकी (आधी)॥

द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम् ॥२।२।३॥

द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याणि १।३॥ अन्यतरस्याम् अ०॥ स०—द्वितीय-इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—एकदेशिनैकाधिकरणे, तत्पुरुषः, षा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—एकाधिकरणे गम्यमाने, य, तृतीय, चतुर्थ, तुर्य इत्येते सुबन्ता एकदेशवाचिना सुबन्तेन सह षा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ षष्ठीसमासापवादोऽयम्।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अन्यतरस्याम् ग्रहणेन पक्षे सोऽपि भवति, महाविभाषया तु ह विकल्पः ॥ उदा०—द्वितीयं भिक्षायाः = द्वितीयभिक्षा। भिक्षाद्वितीयं। तृतीयं भिक्षायाः = तृतीयभिक्षा, भिक्षातृ भिक्षायाः = चतुर्थभिक्षा, भिक्षाचतुर्थम्। तुर्यं भिक्षायाः भिक्षातुर्यम् ॥

भाषार्थः—एकाधिकरण गम्यमान हो तो [*द्वितीयतृतीय* द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, तुर्य सुबन्त एकदेशवाची सुबन्त के स *तरस्याम्*] विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वे त होते हैं ॥

यह सूत्र षष्ठी समास का अपवाद है। महाविभाषा आ रहा है उससे विग्रह वाक्य भी रहेगा, और 'अन्यत से पक्ष में षष्ठी समास भी होगा। षष्ठी समास होने पर की उपसर्जन संज्ञा होने से पूर्व निपात होगा, यही विशेष है।

उदा०—द्वितीयभिक्षा (भिक्षा का दूसरा भाग)। तृतीयभिक्षा, भिक्षातृतीयं। चतुर्थभिक्षा, भिक्षाचतुर्थं। तुर्यभि का चौथा भाग) भिक्षातुर्यम् ॥

यहाँ से '*अन्यतरस्याम्*' की अनुवृत्ति २।२।४ तक जायगी।

प्राप्तापन्ने च द्वितीयया ॥२।२।४॥

प्राप्तापन्ने १।२॥ च अ० ॥ द्वितीयया ३।१॥ स आपन्नं च = प्राप्तापन्ने, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अन्यतर रुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—प्राप्त, सुबन्तौ द्वितीयान्तेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्येते तत्पु भवति॥ उदा०—प्राप्तो जीविकां = प्राप्तजीविकः। द्वितीया जीविकाप्राप्तः, आपन्नो जीविकाम् = आपन्नजीविकः, जीविका

भाषार्थः—[*प्राप्तापन्ने*] प्राप्त, आपन्न सुबन्त [च] भी द्वितीयान्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते तत्पुरुष समास होते हैं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यह सूत्र द्वितीयातत्पुरुष (२।१।२३) का अपवाद है ॥ उदाहरण में भक्ति चापूर्वनिपाते (१।२।४४) से जीविका शब्द की उपसर्जन संज्ञा गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य (१।२।४८) से ह्रस्व हो जाता है ॥

उदा०—प्राप्तजीविकः (जीविका को प्राप्त किया)। द्वितीया समास में—जीविकाप्राप्तः। आपन्नजीविकः (जीविका को प्राप्त किया)। कापन्नः ॥

कालाः परिमाणिना ॥२।२।५॥

कालाः १।३॥ परिमाणिना ३।१॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सुपा, समासः ॥ परिमाणमस्यास्तीति, परिमाणी, तेन·····॥ —परिमाणवाचिनः कालशब्दाः परिमाणिवाचिना सुबन्तेन सह षा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—मासो जातस्य = जातः। संवत्सरजातः। द्व्यहजातः। त्र्यहजातः ॥

भाषार्थः—परिमाणवाची [कालाः] काल शब्द [परिमाणिना] परिमाणवाची सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

यह सूत्र भी षष्ठी समास का अपवाद है ॥ जात शब्द परिमाणी है, त् परिमाण, मास या संवत्सर का अवधारण उसी में है ॥ यहाँ परि- के साथ समास कहने से सामर्थ्य से कालवाची शब्द भी परिमाण होंगे ॥ उदा०—मासजातः (एक महीना का पैदा हुआ)। रजातः (एक साल का पैदा हुआ) द्व्यहजातः। त्र्यहजातः ॥

नञ् ॥२।२।६॥

नञ् अ० ॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ —नञ् इत्येतदव्ययं समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, श्च समासो भवति ॥ उदा०—न ब्राह्मणः = अब्राह्मणः। त्रेयः ॥

भाषार्थः—[नञ्] नञ् इस अव्यय का समर्थ सुबन्त के साथ प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—अब्राह्मणः (जो ब्राह्मण नहीं) अक्षत्रियः॥

ईषदकृता ॥२।२।७॥

ईषत् अ० ॥ अकृता ३।१॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुपा, समासः॥ अर्थः—'ईषत्' इत्ययं शब्दोऽकृदन्तेन सुबन्तेन विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—ईषत्कडारः = ईषत्कडारः। ईषत्पिङ्गलः। ईषदुन्नतः॥

भाषार्थः—[ईषत्] ईषत् शब्द [अकृता] अकृदन्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है।

उदा०—ईषत्कडारः (थोड़ा पीला) ईषत्पिङ्गलः (थोड़ा पीला)। ईषद्विकटः (थोड़ा बिगड़ा हुआ)। ईषदुन्नतः (थोड़ा उन्नत)।

षष्ठी ॥२।२।८॥

षष्ठी १।१॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा॥ अर्थः—षष्ठ्यन्तं सुबन्तं समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः। राज्ञः कम्बलः॥

भाषार्थः—[षष्ठी] षष्ठ्यन्त सुबन्त समर्थ सुबन्त के साथ विभाषा समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है। परि० १।२।४३ में देखें॥

यहाँ से 'षष्ठी' की अनुवृत्ति २।२।१७ तक जायगी॥

याजकादिभिश्च ॥२।२।९॥

याजकादिभिः ३।३॥ च अ० ॥ स०—याजक आदिर्येषां तानि याजकादीनि, तैर्दयस्तैः, याजकादिभिः, बहुव्रीहिः॥ अनु०—षष्ठी, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—षष्ठ्यन्तं सुबन्तं याजकादिभिः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ ब्राह्मणस्य याजकः ब्राह्मणयाजकः। ब्राह्मणपूजकः॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—षष्ठ्यन्त सुबन्त [*याजकादिभिः*] याजकादि सुबन्तों के [च] भी विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष स होता है॥ समास पूर्व सूत्र से ही प्राप्त था पुनर्वचन *तृजकाभ्यां रि* (२।२।१५) से निषेध प्राप्त होने पर पुनः षष्ठी समास प्राप्त कराने लिए है॥

उदा०—ब्राह्मणयाजकः (ब्राह्मण का यज्ञ कराने वाला) ब्राह्मणपूजकः ह्मण की पूजा करने वाला)॥

[*षष्ठीसमासनिषेधप्रकरणम्*]

न निर्द्धारणे ॥२।२।१०॥

न अ०॥ निर्द्धारणे ७।१॥ अनु०—षष्ठी, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, सः॥ अर्थः—निर्द्धारणे वर्त्तमानं षष्ठ्यन्तं सुबन्तं समर्थेन सुपा सह, समस्यते॥ उदा०—मनुष्याणां क्षत्रियः शूरतमः। कृष्णा गवां सम्पन्न-तमा। धावन्नध्वगानां शीघ्रतमः॥

भाषार्थः—जाति, गुण, अथवा क्रिया के द्वारा समुदाय में से एक पृथक् करने को निर्धारण कहते हैं॥ [*निर्द्धारणे*] निर्धारण में वर्त्त-षष्ठ्यन्त सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास [न] नहीं होता पूर्व सूत्रों से समास की प्राप्ति थी, यहाँ निषेध किया है॥ यह प्रकरण षष्ठी (२।२।८) सूत्र से समास प्राप्त होने पर निषेध के है॥

उदा०—मनुष्याणां क्षत्रियः शूरतमः (मनुष्यों में क्षत्रिय शूरतम होते कृष्णा गवां सम्पन्नक्षीरतमा (गौओं में काली गौ उत्तम और खूब देने वाली होती है)। धावन्नध्वगानां शीघ्रतमः (रास्ता चलने वालों दौड़ने वाला शीघ्रगामी होता है)॥

उदाहरण में सारे मनुष्यों में से क्षत्रियों को शूर कहा है, सो र्द्धारण अर्थ है, अतः मनुष्य और क्षत्रिय का समास नहीं हुआ। इन हरणों में *यतश्च निर्धारणम्* (२।३।४१) से षष्ठी विभक्ति हुई है॥

यहाँ से 'न' की अनुवृत्ति २।२।१६ तक जायगी।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन ॥

पूरणगु·····करणेन ३।१॥ स०—सुहितोऽर्थो येषां ते बहुव्रीहिः। पूरणं च गुणश्च सुहितार्थश्च सत् च अव्यय समानाधिकरणञ्च, पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधि·····समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—न, षष्ठी, तत्पुरुषः, सुप् समासः॥ अर्थः—पूरणप्रत्ययान्त, गुणवाचि, सुहितार्थ = तृप्त अव्यय, तव्यप्रत्ययान्त, समानाधिकरणवाची, इत्येतैः सुबन्तैः सुबन्तं, न समस्यते॥ उदा०—छात्राणां पञ्चमः। छात्राणां गु बलाकायाः शौक्ल्यम्। काकस्य काष्ण्यम्। सुहितार्थ-फलै फलानां तृप्तः। सद्-ब्राह्मणस्य कुर्वन्। ब्राह्मणस अव्यय-ब्राह्मणस्य कृत्वा, ब्राह्मणस्य हृत्वा। तव्य—ब्राह्मण समानाधिकरण-शुकस्य मारावित्स्य। राज्ञः पाटलिपुत्रक सूत्रकारस्य॥

भाषार्थः—[पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणै प्रत्ययान्त, गुणवाची शब्द, सुहित = तृप्ति अर्थ वाले, सत् सं अव्यय, तव्य प्रत्ययान्त तथा समानाधिकरणवाची शब्दों षष्ठ्यन्त सुबन्त समास को प्राप्त नहीं होता है॥

उदा०—छात्राणां पञ्चमः (छात्रों में पाँचवाँ) छात्रा गुण-बलाकायाः शौक्ल्यम् (बगुले की सफेदी) काकस्य सुहितार्थ में-फलानां सुहितः (फलों की तृप्ति)। फलानां तृप्त ब्राह्मणस्य कुर्वन् (ब्राह्मण का करता हुआ)। ब्राह्मणस्य कुर्वाण ब्राह्मणस्य कृत्वा (ब्राह्मण का कार्य करके) ब्राह्मणस्य ह ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम् (ब्राह्मण के करने योग्य) समानाधिकर मारावित्स्य (मारावित् नाम के तोते का) राज्ञः पाटलिपुत्रकस्य राजा का) पाणिनेः सूत्रकारस्य॥

पञ्चमः आदि में नान्तादसङ्ख्या० (५।२।४९) से मट् अर्थ में हुआ है॥ शौक्ल्यम् आदि गुणवाची शब्द हैं। तौ १२७) से शतृ शानच् प्रत्ययों की सत् संज्ञा कही है, कुर्वन् शतृ शानच् प्रत्यय हुए हैं॥ कृत्वा हृत्वा में 'क्त्वा' प्रत्यय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तोसुन्कसुनः (१।१।३९) से अव्यय संज्ञा है सो समास नहीं हुआ ॥ स्य मारावित्स्य आदि समानाधिकरण वाले शब्द हैं, क्योंकि वही है और वही मारावित् नाम वाला है। इसी प्रकार औरों में भी मना चाहिये ॥

क्तेन च पूजायाम् ॥२।२।१२॥

क्तेन ३।१॥ च अ० ॥ पूजायाम् ७।१॥ अनु०—न, षष्ठी, तत्पुरुषः, , सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—पूजायां यः क्तप्रत्ययो विहितः, तेन षष्ठी न समस्यते ॥ मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च (३।२।१८८) इत्यनेन ायां क्तप्रत्ययो भवति ॥ उदा०—राज्ञां मतः। राज्ञां बुद्धः। राज्ञां जितः ॥

भाषार्थः—[पूजायाम्] पूजा के अर्थ में जो [क्तेन] क्त प्रत्यय का धान है उसके साथ [च] भी षष्ठ्यन्त सुबन्त समास को प्राप्त नहीं ता ॥ मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च इस सूत्र से जो क्त विहित है उसी का लक्षण यहाँ पर पूजायाम् शब्द से किया गया है ॥ उदा०—राज्ञां ः (राजाओं का माना हुआ) राज्ञां बुद्धः (राजाओं का जाना हुआ)। ज्ञां पूजितः (राजाओं का पूजित) ॥

यहाँ से 'क्तेन' की अनुवृत्ति २।२।१३ तक जायगी ॥

अधिकरणवाचिना च ॥२।२।१३॥

अधिकरणवाचिना ३।१॥ च अ० ॥ अनु०—क्तेन, न, षष्ठी, पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—अधिकरणवाचिना क्तेन ह षष्ठी न समस्यते ॥ उदा०—इदमेषां यातम्। इदमेषां भुक्तम् ॥

भाषार्थः—[अधिकरणवाचिना] अधिकरणवाची क्त प्रत्ययान्त सुबन्त साथ [च] भी षष्ठ्यन्त सुबन्त समास को प्राप्त नहीं होता ॥

उदा०—इदमेषां यातम् (यह उनके जाने का रास्ता)। इदमेषां क्तम् (यह इनके भोजन का स्थान) ॥

क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगति० (३।४।७६) सूत्र से अधिकरण में क्त धान किया गया है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कर्मणि च ॥२।२।१४॥

कर्मणि ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—न, षष्ठी, तत्पुरुषः, सुपा, समासः ॥ अर्थः—कर्मणि या षष्ठी सा समर्थेन सुबन्तेन समस्यते। उभयप्राप्तौ कर्मणि (२।३।६६) इत्यनेन या कर्मणि षष्ठी विधीयते, तस्यैवात्र ग्रहणम्। उदा०—आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपालकेन। रोचते मे ओदनस्य भोजनं देवदत्तेन। रोचते मे मोदकस्य भोजनं बालकेन।

भाषार्थः—[कर्मणि] कर्म में जो षष्ठी विहित है, वह समर्थ सुबन्त के साथ समास को नहीं प्राप्त होती ॥

उदा०—आश्चर्यो गवां दोहो अगोपालकेन (अगोपालक से दुहना आश्चर्य का विषय है) रोचते मे ओदनस्य भोजनं (मुझे देवदत्त का चावल खाना प्रिय है) रोचते मे मोदकस्य भोजनं (मुझे बालक का लड्डू खाना प्रिय है) ॥ उभयप्राप्तौ कर्मणि सूत्र से कर्म में षष्ठी 'गवाम्, ओदनस्य' आदि में हुई है सो इस सूत्र से भोजन आदि समर्थ सुबन्तों के साथ समास नहीं हुआ।

यहाँ से 'कर्मणि' की अनुवृत्ति २।२।१५ तक जायगी ॥

तृजकाभ्यां कर्त्तरि ॥२।२।१५॥

तृजकाभ्यां ३।२॥ कर्त्तरि ७।१॥ अनु०—कर्मणि, न, षष्ठी, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—कर्त्तरि यौ तृच्-अकौ तदन्तेन कर्मणि या षष्ठी सा न समस्यते ॥ उदा०—पुरां भेत्ता। अपां स्रष्टा। यवानां लावकः। कूपस्य खनकः ॥

भाषार्थः—[कर्त्तरि] कर्त्ता में जो [तृजकाभ्याम्] तृच्-अकप्रत्ययान्त सुबन्त उनके साथ कर्म में जो षष्ठी वह समास को प्राप्त होती ॥ यहाँ कर्तृकर्मणोः कृति (२।३।६५) से कर्म में षष्ठी होती है ॥

उदा०—पुरां भेत्ता (पुरों को तोड़ने वाला)। अपां स्रष्टा (जल को उत्पन्न करने वाला)। यवानां लावकः (जौ को काटने वाला)। कूपस्य खनकः (कूए को खोदने वाला) ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'अक' की अनुवृत्ति २।२।१७ तक जायगी ॥

कर्त्तरि[1] च ॥२।२।१६॥

कर्त्तरि ७।१॥ च अ०॥ अनु०—अक, न, षष्ठी, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—कर्त्तरि या षष्ठी साऽकान्तेन सह न समस्यते ॥ उदा०—तव शायिका । मम जागरिका ॥

भाषार्थः—[कर्त्तरि] कर्त्ता में जो षष्ठी, वह [च] भी अक प्रत्ययान्त अन्त के साथ समास को प्राप्त नहीं होती है ॥ ण्वुल् को युवोरनाकौ (७।१।१) से जो अक हुआ है, उसका ही इन दोनों सूत्रों में ग्रहण है[1] ॥

नित्यं क्रीडाजीविकयोः ॥२।२।१७॥

नित्यं १।१॥ क्रीडाजीविकयोः ७।२॥ स०—क्रीडा च जीविका च क्रीडाजीविके तयोः···इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अक, षष्ठी, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—क्रीडार्थे, जीविकार्थे च षष्ठ्यन्तं षष्ठ्यन्तं अकान्तेन सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—उद्दालकपुष्पभञ्जिका । वारणपुष्पप्रचायिका । जीविकायाम्—दन्तलेखकः । नखलेखकः ॥

भाषार्थः—[क्रीडाजीविकयोः] क्रीडा और जीविका अर्थ में षष्ठ्यन्त अन्त अक अन्त वाले सुबन्त के साथ [नित्यम्] नित्य ही समास को प्राप्त होता है ॥ विभाषा का अधिकार आ रहा था अतः उसकी निवृत्ति के लिये यहाँ नित्य शब्द का ग्रहण है, सो पक्ष में विग्रह वाक्य नहीं होगा ॥ षष्ठी (२।२।८) सूत्र से यहाँ समास प्राप्त ही था, पुनः यह सूत्र क्रीडा विषय में नित्य समास हो जावे, पक्ष में विग्रह वाक्य न रहे इसलिये है तथा जीविका विषय में षष्ठी समास का तृजकाभ्यां कर्त्तरि (२।२।१५) से निषेध प्राप्त था, वहाँ भी समास हो जावे, इसलिये यह सूत्र है।

यहाँ से 'नित्यम्' की अनुवृत्ति २।२।१९ तक जायगी ॥

---

१. २।२।१५, १६ इन दो सूत्रों का व्याख्यान काशिका में महाभाष्य के विरुद्ध होने से मान्य नहीं ॥ देखो अ० भाष्य स्वामी द० कृत ॥पृ० २४४॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कुगतिप्रादयः ॥२।२।१८॥

कुगतिप्रादयः १।३॥ स०—प्र आदिर्येषां ते प्रादयः, कुश्च प्रादयश्च, कुगतिप्रादयः, बहुव्रीहिगर्भो द्वन्द्वः॥ अनु०—नित्यं, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—कुगतिसंज्ञकाः, प्रादयः, सुबन्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह नित्यं समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—कुब्राह्मणः। कुपुरुषः। गतिः—उररीकृत्य, उररीकृतम्। दुष्पुरुषः। सुपुरुषः। अतिपुरुषः॥

भाषार्थः—[कुगतिप्रादयः] कु, गति सञ्ज्ञक और प्रादि सुबन्त के साथ समास को नित्य ही प्राप्त हों और वे तत्पुरुष हों।

उदा०—कुब्राह्मणः (बुरा ब्राह्मण)। कुपुरुषः (बुरा पुरुष)। उररीकृत्य (स्वीकार करके)। उररीकृतम्। प्रादयः—दुष्पुरुषः (बुरा पुरुष) सुपुरुषः (अच्छा पुरुष)। अतिपुरुषः (अच्छा पुरुष)॥

उररीकृत्य की गति संज्ञा *ऊर्यादिच्विडाचश्च* (१।४।६०) से। इनकी सिद्धि १।४।५९ के समान ही जानें॥

उपपदमतिङ् ॥२।२।१९॥

उपपदम् १।१॥ अतिङ् १।१॥ स०—न तिङ्, अतिङ् तत्पुरुषः॥ अनु०—नित्यं, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—अतिङन्तम् उपपदं समर्थेन शब्दान्तरेण सह नित्यं समस्यते, समासो भवति॥ उदा०—कुम्भं करोति = कुम्भकारः, नगरकारः।

भाषार्थः—[अतिङ्] तिङ् भिन्न जो [उपपदम्] उपपद शब्दान्तर के साथ नित्य समास को प्राप्त होता है, और समास होता है॥ उदा०—कुम्भकारः (कुम्हार)। नगरकारः (बनाने वाला)॥

सिद्धि परि० १।१।३८ में की गई स्वादुङ्कारम् के समान। भेद केवल यहाँ इतना है कि *कर्मण्यण्* (३।२।१) से अण् प्रत्यय णमुल् नहीं, शेष उसी के समान है॥

यहाँ से 'उपपदम्' की अनुवृत्ति २।२।२२ तक जायगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अमैवाव्ययेन ॥२।२।२०॥

अमा ३।१॥ एव अ० ॥ अव्ययेन ३।१॥ अनु०—उपपदम्, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः। अर्थः—अव्ययेन उपपदस्य यः समासः सोऽमा अव्ययेनैव सह स्यात् नान्येन, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते। सम्पन्नङ्कारं भुङ्क्ते। लवणङ्कारं भुङ्क्ते॥

भाषार्थः—यह सूत्र नियमार्थ है। [*अव्ययेन*] अव्यय के साथ उपपद यदि समास हो तो वह [*अमा*] अमन्त अव्यय के साथ [एव] ही हो और अव्ययों के साथ नहीं॥

उदाहरणों की सिद्धि *कृन्मेजन्तः* (१।१।३८) के परि० में देखें। कृन्मेजन्तः से ही इनकी अव्यय संज्ञा होती है स्वादुम् आदि मकारान्त शब्द उपपद हैं॥

विशेषः—यहाँ उपपद का समास पूर्व सूत्र से सिद्ध था अतः नियम हो जाता है, पुनः 'एवकार अमन्त उपपद का ही विशेषण हो', इस इष्ट का अवधारण करने के लिए है अर्थात् जिस सूत्र के द्वारा केवल अम् (णमुलादि) प्रत्यय का ही विधान हो तदन्त के साथ ही समास हो क्त्वा णमुल् दोनों प्रत्ययों का जहाँ एक साथ विधान हो वहाँ इस सूत्र से समास न हो। यथा अग्रे भुक्त्वा, अग्रे भोजम् यहाँ *विभाषाऽग्रेप्रथम०* (३।४।२४) से दोनों प्रत्ययों का विधान है अतः प्रकृत सूत्र से समास नहीं हुआ।

यहाँ से '*अमैवाव्ययेन*' की अनुवृत्ति २।२।२१ तक जायेगी॥

तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् ॥२।२।२१॥

तृतीयाप्रभृतीनि १।३॥ अन्यतरस्याम् अ०॥ स०—तृतीयाप्रभृतिर्येषां, तानि तृतीयाप्रभृतीनि, बहुव्रीहिः॥ अनु०—अमैवाव्ययेन, उपपदम्, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—'उपदंशस्तृतीयायाम्' इति सूत्रादग्रे यानि उपपदानि, तानि तृतीयाप्रभृतीनि उपपदानि अमन्तेनैवाव्ययेन सह अन्यतरस्यां समस्यन्ते॥ उदा०—मूलकोपदंशं भुङ्क्ते। मूलकेन उपदंशं भुङ्क्ते। उच्चैःकारम् आचष्टे। उच्चैःकारम्। यष्टिग्राहम्। यष्टिं ग्राहम्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[तृतीयाप्रभृतीनि] तृतीयाप्रभृति उपदंशस्तृतीयाः ४७) सूत्र से आगे (अन्वच्यानुलोम्ये ३।४।६४ तक) जो उपद अमन्त अव्यय के साथ ही [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से समास हों, और वह तत्पुरुष समास हों॥

उदा०—मूलकोपदंशं भुङ्क्ते (मूली को दाँत से काट कर ह मूलकेन उपदंशं भुङ्क्ते। उच्चैःकारम् आचष्टे (दुःख की ब ऊँचे से कहता है)। उच्चैः कारम्। यष्टिग्राहं (लाठी लेक ग्राहम्॥

पूर्व सूत्र की तरह 'उपदंशम्' आदि की अव्यय संज्ञा भक्ष से है, उपदंशस्तृ० से उप पूर्वक दंश दशने धातु से णमुल् प्र है। उच्चैःकारम् में कृ धातु से *अव्ययेऽयथाभि०* (३।४।५६) हुआ है, वृद्धि आदि पूर्ववत् हुई हैं। ग्रह धातु से *द्वितीयायाञ्च* से णमुल् प्रत्यय हुआ है, सो ये सब अमन्त अव्यय हैं,अतः उपपद रहते विकल्प से समास हुआ है। असमास पक्ष में उदाहरण में स्वर का भेद पड़ता है॥ यहाँ महाविभाषा के आने अन्यतरस्याम् 'नित्य' पद की अनुवृत्ति को हटाने के लिये है॥

यहाँ से '*तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्*' की अनुवृत्ति जायगी॥

क्त्वा च ॥२।२।२२॥

क्त्वा ३।१॥ च अ०॥ अनु०—तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्, सुप्, सह सुपा, समासः॥ *अर्थः*—तृतीयाप्रभृतीनि, क्त्वाप्रत्ययान्तेन सह अन्यतरस्यां समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो उदा०—उच्चैःकृत्य, उच्चैः कृत्वा॥

भाषार्थः—तृतीयाप्रभृति जो उपपद वह [क्त्वा] क्त्वा प्र शब्दों के साथ [च] भी विकल्प से समास को प्राप्त होते वह तत्पुरुष समास होते हैं॥ पूर्व सूत्र से अमन्त में प्राप्त यह सूत्र अन्यत्र भी विधान करे इसलिये है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—उच्चैःकृत्य (ऊँचा कर के)। उच्चैः कृत्वा ॥

जिस पक्ष में समास हुआ उस पक्ष में क्त्वा को ल्यप् ७।१।३७ से गया तथा असमास पक्ष में नहीं हुआ ॥ यहाँ से तत्पुरुष समास का अधिकार समाप्त हुआ ॥

[बहुव्रीहिसमासप्रकरणम्]

शेषो बहुव्रीहिः ॥२।२।२३॥

शेषः १।१॥ बहुव्रीहिः १।१॥ अर्थः—उक्तादन्यः शेषः। शेषः समासो बहुव्रीहिसंज्ञको भवति, इत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ अग्र एवोदाहरिष्यामः ॥

भाषार्थः—जो ऊपर समास कहा गया है, उससे जो अन्य वह शेष है। [शेषः] शेष समास [बहुव्रीहिः] बहुव्रीहि संज्ञक होता है, यह अधिकार २।२।२८ तक जानना चाहिये ॥

अनेकमन्यपदार्थे ॥२।२।२४॥

अनेकम् १।१॥ अन्यपदार्थे ७।१॥ स०—न एकम् अनेकम् नञ्तत्पुरुषः। अन्यं चादः पदम् अन्यपदम् तस्य अर्थः = अन्यपदार्थः, कर्मधारयगर्भषष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—बहुव्रीहिः, विभाषा, सुप्, समासः ॥ अर्थः—अन्यपदार्थे गम्यमाने, अनेकं सुबन्तं, परस्परं विभाषा समस्यते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति ॥ उदा०—प्राप्तम् उदकं यं ग्रामं, स प्राप्तोदको ग्रामः। ऊढः रथो येन स ऊढरथोऽनड्वान्। उपहृतः पशुः यस्मै स उपहृतपशुः। उद्धृतः ओदनो यस्याः सा उद्धृतौदना स्थाली। चित्रा गावो यस्य स चित्रगुः, शबलगुः। वीराः पुरुषाः यस्मिन् ग्रामे स वीरपुरुषको ग्रामः ॥

भाषार्थः—[अन्यपदार्थे] अन्यपदार्थ गम्यमान हो तो [अनेकम्] अनेक सुबन्त परस्पर समास को विकल्प से प्राप्त होते हैं, और वे बहुव्रीहि संज्ञक होते हैं ॥

उदा०—प्राप्तोदको ग्रामः (प्राप्त हो गया है पानी जिस गाँव को)। ऊढरथोऽनड्वान् (जिसके द्वारा गाड़ी ले जाई गई ऐसा बैल)। उपहृतपशुः (जिसके लिये पशु ले जाया गया ऐसा पुरुष)। उद्धृतौदना स्थाली

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(जिस बटलोई से चावल निकाल लिया गया, वह बटलोई) शबलगुः। वीरपुरुषको ग्रामः (वीर पुरुषों वाला गाँव)॥

बहुव्रीहि समास में अन्यपद प्रधान होता है, जैसा कि चित्रा, गावः दो पद थे, सो चित्रगुः का अर्थ न चित्रित प्रत्युत किसी तीसरे ही पद का 'जिसकी चित्रित गायें हैं, होता है अतः अन्य पद का ही प्रधानत्व है, इसी प्रकार सब में समझें॥ सूत्र में 'अनेकम्' इसलिये कहा है कि दो अधिकों का भी बहुव्रीहि समास हो जाये॥

चित्रगुः आदि की सिद्धि परि० १।२।४८ पर देखें॥

●

सङ्ख्ययाऽव्ययासन्नादूराधिकसङ्ख्याः सङ्ख्येये ॥२।१।२५॥

सङ्ख्यया ३।१॥ अव्ययासन्नादूराधिकसङ्ख्याः १।३॥ सङ्ख्येये ७।१॥ स०—अव्ययञ्च आसन्नश्च अदूरश्च अधिकश्च सङ्ख्या च, सन्नादूराधिकसङ्ख्याः, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—बहुव्रीहिः, विभाषा समासः॥ अर्थः—अव्यय, आसन्न, अदूर, अधिक, सङ्ख्या इत्येतेषां सङ्ख्येयेऽर्थे या सङ्ख्या तया सह विभाषा समस्यन्ते बहुव्रीहिश्च भवति॥ उदा०—उपदशाः। उपविंशाः। आसन्नदशाः। आसन्नविंशाः। अदूरदशाः। अदूरविंशाः। अधिकदशाः। अधिकविंशाः। संख्यात्रिचतुराः, द्विदशाः॥

भाषार्थः—[सङ्ख्येये] सङ्ख्येय में वर्त्तमान जो [सङ्ख्या] ख्या उसके साथ [अव्ययासन्नादूराधिकसङ्ख्याः] अव्यय, आसन्न अधिक सङ्ख्या का समास विकल्प से हो जाता है॥ पूर्व अन्यपदार्थ में बहुव्रीहि समास कहा था यहाँ अन्यपदार्थ में भी हो जाय इसलिये यह सूत्र बनाया॥ जिस पदार्थ की किया जाय वह सङ्ख्येय कहाता है। दशानां समीपं ये ते यहाँ दस जो पदार्थ गणन किये गये हैं वे सङ्ख्येय हुये, समीप हैं, वे उपदशाः हैं, इस प्रकार सङ्ख्येय में वर्तमान सङ्ख्या है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दिङ्नामान्यन्तराले ॥२।२।२६॥

दिङ्नामानि १।३॥ अन्तराले ७।१॥ स०—दिशां नामानि = दिङ्नामानि, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—बहुव्रीहिः, विभाषा, सुप्, समासः॥ अर्थः—दिङ्नामानि सुबन्तानि, अन्तराले वाच्ये परस्परं विभाषा समस्यन्ते बहुव्रीहिश्च समासो भवति॥ उदा०—दक्षिणस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं, सा दक्षिणपूर्वा दिक्, पूर्वोत्तरा, उत्तरपश्चिमा, पश्चिमदक्षिणा॥

भाषार्थः—[दिङ्नामानि] दिशा के नामवाची सुबन्तों का [अन्तराले] अन्तराल अर्थात् दो दिशाओं के बीच की दिशा (कोना) वाच्य हो तो, परस्पर विकल्प से समास होता है और वह बहुव्रीहि समास होता है॥ उदाहरणों की सिद्धियाँ परि० १।१।२७ में देखें॥

तत्र तेनेदमिति सरूपे ॥२।२।२७॥

तत्र अ०॥ तेन ३।१॥ इदम् १।१॥ इति अ०॥ सरूपे १।२॥ अनु०—बहुव्रीहिः, विभाषा, सुप्, समासः॥ अर्थः—'तत्र' इति सप्तम्यन्ते सरूपे द्वे पदे, तेन इति तृतीयान्ते सरूपे द्वे पदे, इदम् इत्येतस्मिन् अर्थे विभाषा समस्येते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति॥ उदा०—केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं = केशाकेशि, कचाकचि। दण्डैश्च, दण्डैश्च इत्यनेन इदं युद्धं प्रवृत्तं = दण्डादण्डि। मुसलामुसलि॥

भाषार्थः—[तत्र] सप्तम्यन्त तथा [तेन] तृतीयान्त [सरूपे] सरूप (समान रूप वाले) सुबन्त परस्पर [इदम्] इदम् [इति] इस अर्थ में विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं और वह बहुव्रीहि समास होते हैं॥

उदा०—केशाकेशि (एक दूसरे के केशों को पकड़-पकड़ कर जो युद्ध हो वह युद्ध)। कचाकचि। दण्डादण्डि (दोनों ओर से डण्डे से जो युद्ध हो वह युद्ध)। मुसलामुसलि॥ उदाहरण में केशेषु केशेषु दण्डैश्च दण्डैश्च आदि परस्पर दोनों सरूप पद हैं, इदम् = 'यह' अर्थ है ही सो समास हो गया॥ केश आदि में दीर्घ *अन्येषामपि दृश्यते* (६।३।१३७) होता है, तथा इच् *कर्मव्यतिहारे* (५।४।१२७) से समासान्त इच् प्रत्यय होकर केशाकेशि बना है। शेष पूर्ववत् ही है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तेन सहेति तुल्ययोगे ॥२।२।२८॥

तेन ३।१॥ सह अ०॥ इति अ०॥ तुल्ययोगे ७।१॥ स०—योगश्च=तुल्ययोगः, तस्मिन्·····कर्मधारयतत्पुरुषः॥ बहुव्रीहिः, विभाषा, सुप्, समासः॥ *अर्थः*—तुल्ययोगे कर्तरि इत्येतद् अव्ययं तेनेति तृतीयान्तेन सुबन्तेन सह विभाषा बहुव्रीहिश्च समासो भवति॥ उदा०—सह पुत्रेण आगतः सच्छात्रः। सकर्मकरः॥

भाषार्थः—[*सह*] सह [*इति*] यह अव्यय [*तुल्ययोगे*] में वर्तमान हो तो [*तेन*] तृतीयान्त सुबन्त के साथ समास होता है, और वह बहुव्रीहि संज्ञक होता है॥

उदा०—सपुत्रः (पुत्र के साथ)। सच्छात्रः (छात्र के साथ)। सकर्मकरः (नौकर के साथ)॥

तुल्य=समान योग अर्थात् सम्बन्ध को कहते हैं, सो में 'पुत्र के साथ पिता आया है' यह अर्थ है अतः तुल्य पुत्रेण में तृतीया *सहयुक्तेऽप्रधाने* (२।३।१९)से हुई है, स भाव *वोपसर्जनस्य* (६।३।८१) से हुआ है, सच्छात्र (६।१।७१) से तुक् आगम तथा *स्तोःश्चुना०* (८।३।३९) से है, शेष पूर्ववत् है॥

चार्थे द्वन्द्वः ॥२।२।२९॥

चार्थे ७।१॥ द्वन्द्वः १।१॥ स०—चेन (कृतः) अर्थः, चार्थः, षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—विभाषा, सुप्, समासः। पदार्थे (२।२।२४) इत्यतः 'अनेकम्' मण्डूकप्लुतगत्यानुवर्तते। चार्थे वर्त्तमानम् अनेकं सुबन्तम् परस्परं विभाषा समासं समासो भवति॥ समुच्चयः, अन्वाचयः, इतरेतरः, चत्वारो चकारस्यार्थाः। तत्रेतरेतरे, समाहारे च समासो सामर्थ्याभावात्॥ उदा०—रामश्च लक्ष्मणश्च इति रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च शत्रुघ्नश्चेति रामलक्ष्मणभरत समाहारे—पाणिश्च पादश्च=पाणिपादम्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Initiative

भाषार्थः— [चार्थे] च के अर्थों में वर्त्तमान अनेक सुबन्तों का र समास हो जाता है और वह [द्वन्द्वः] द्वन्द्व समास होता है ॥

च के चार अर्थ होते हैं समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतर और समा- इतरेतर और समाहार में द्वन्द्व समास होता है, समुच्चय, चय में नहीं, सामर्थ्य का अभाव होने से ॥ द्वन्द्व समास में पद प्रधान होते हैं ॥

उदा०—रामलक्ष्मणौ (राम और लक्ष्मण) रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाः लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न)। समाहार में-पाणिपादम् (हाथ पैर) ॥

राम सु लक्ष्मण सु इस अवस्था में समासादि होकर पूर्ववत् ही क्ष्मणौ बन गया। पाणिपादम् यहाँ *द्वन्द्वश्च प्राणि०* (२।४।२) से द्भाव हो जाता है ॥

उपसर्जनं पूर्वम् ॥२।२।३०॥

उपसर्जनम् १।१॥ पूर्वम् १।१॥ अनु०—समासः ॥ अर्थः—उपसर्जन- समासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् ॥ तथा चैवोदाहृतम् ॥

भाषार्थः—[*उपसर्जनम्*] उपसर्जन संज्ञक शब्द का समास में पहले प्रयोग करना चाहिए ॥ *प्रथमानिर्दिष्टं०* (*१।२।४३*) से र्जन संज्ञा होती है ॥ यहाँ ऊपर से 'समासः' जो प्रथमान्त आ था वह अर्थ के अनुसार विभक्ति विपरिणाम होकर सप्तमी ल जाता है।

हाँ से '*उपसर्जनम्*' की अनुवृत्ति २।२।३१ तथा '*पूर्वम्*' की अनुवृत्ति ३८ तक जायगी ॥

राजदन्तादिषु परम् ॥२।२।३१॥

राजदन्तादिषु ७।३॥ परम् १।१॥ *स०*—राजदन्त आदिर्येषां ते दन्तादयस्तेषु ··· बहुव्रीहिः ॥ अनु०—उपसर्जनम् ॥ अर्थः—राजदन्ता- दिशब्देषु उपसर्जनं परं प्रयोक्तव्यम् ॥ *उदा०*—दन्तानां राजा = दन्तः। वनस्य अग्रे = अग्रेवणम् ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[राजदन्तादिषु] राजदन्तादि गण शब्दों में संज्ञक का [परम्] पर प्रयोग होता है। पूर्व सूत्र से पूर्वनिपात पर इस सूत्र का आरम्भ है, अतः यहाँ 'पूर्वम्' पद की अ हुये भी नहीं बिठाई ॥

उदा०—राजदन्तः (दाँतों का राजा)। अग्रेवणम् (वन दन्तानां राजा आदि में षष्ठी तत्पुरुष समास है उपसर्जन संज्ञक है, अतः पूर्व प्रयोग न होकर परप्रयोग में निपातन से सप्तमी का अलुक् माना है। वनं पुरगा सारिका० (८।४।४) से वनं के न को ण हो गया है॥

द्वन्द्वे धि ॥२।२।३२॥

द्वन्द्वे ७।१॥ धि १।१॥ अनु०—पूर्वम्॥ अर्थः—द्वन्द्वसमा पूर्वं प्रयोक्तव्यम्॥ उदा०—पटुश्च गुप्तश्चेति = पटुगुप्तौ।

भाषार्थः—[द्वन्द्वे] द्वन्द्व समास में [धि] धि संज्ञ प्रयोग करना चाहिये॥ द्वन्द्व समास में सभी पद प्र सो किसी का भी पूर्व प्रयोग हो सकता है, अतः इस सूत्र कि ध्यन्त का ही पूर्व प्रयोग हो॥

उदा०—पटुगुप्तौ (चतुर और गुप्त)। मृदुगुप्तौ। शेषो ध्यसखि (१।४।७) से पटु मृदु तथा अग्नि की धि यहाँ से द्वन्द्वे की अनुवृत्ति २।२।३४ तक जायगी॥

अजाद्यदन्तम् ॥२।२।३३॥

अजाद्यदन्तम् १।१॥ स०—अच् आदिर्यस्य तत् अजादि अत् अन्ते यस्य तत् अदन्तम्, बहुव्रीहिः। अजादि अजाद्यदन्तम्, कर्मधारयतत्पुरुषः। अनु०—द्वन्द्वे, पूर्वम्॥ समासे अजाद्यदन्तं शब्दरूपं पूर्वं प्रयोक्तव्यम्॥ उदा० उष्ट्रशशकम्॥

भाषार्थः—द्वन्द्व समास में [अजाद्यदन्तम्] का पूर्व प्रयोग होता है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—उष्ट्रखरम् (ऊँट और गदहा)। उष्ट्रशशकम् (ऊँट और शश)। उदाहरण में उष्ट्र शब्द अजादि तथा अदन्त भी है अतः वह आया है, खर एवं शशक केवल अदन्त हैं, अतः पूर्व प्रयोग नहीं है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि जहाँ द्वन्द्व समास में कई यदन्त शब्द होंगे वहाँ 'बहुषु अनियमः' इस वचन से कोई भी यदन्त पहले आ सकता है जैसे-उष्ट्ररथेन्द्राः, इन्द्ररथोष्ट्राः॥

अल्पाच्तरम् ॥२।२।३४॥

अल्पाच्तरम् १।१॥ स०—अल्पोऽच् यस्मिन्, तत् अल्पाच्, बहुव्रीहिः॥ द्वे इमे अल्पाची, इदमनयोरतिशयेन अल्पाच् तत्, अल्पाच्तरम्। द्विवचनविभज्यो० (५।३।५७) इत्यनेन तरप् प्रत्ययः॥ अनु०—द्वन्द्वे, पूर्वम्॥ अर्थः—द्वन्द्वे समासेऽल्पाच्तरं शब्दरूपं पूर्वं प्रयोक्तव्यम्॥ उदा०—प्लक्षन्यग्रोधौ, धवखदिरपलाशाः॥

भाषार्थः—[अल्पाच्तरम्] अल्पाच्तर शब्दरूप का द्वन्द्व समास में पूर्व प्रयोग होता है॥

उदा०—प्लक्षन्यग्रोधौ (पिलखन और वटवृक्ष)। धवखदिरपलाशाः॥

प्लक्ष और न्यग्रोध में प्लक्ष अल्प अच् वाला है, तथा धवखदिरपलाशाः में धव अल्पाच् है, सो पहले आये हैं॥ द्वन्द्व समास में नियम प्राप्त होने पर इन सूत्रों ने नियम कर दिया॥

सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ ॥२।२।३५॥

सप्तमीविशेषणे १।२॥ बहुव्रीहौ ७।१॥ स०—सप्तमी च विशेषणञ्च, सप्तमीविशेषणे, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—पूर्वम्॥ अर्थः—बहुव्रीहिसमासे सप्तम्यन्तं विशेषणञ्च पूर्वं प्रयोक्तव्यम्॥ उदा०—कण्ठे स्थितः कालो यस्य स कण्ठेकालः। उरसिलोमा। विशेषणम्—चित्रगुः, शबलगुः॥

भाषार्थः—[बहुव्रीहौ] बहुव्रीहि समास में [सप्तमीविशेषणे] सप्तमी जो पद तथा विशेषण वाची जो पद हो, उसका पूर्व प्रयोग करना चाहिये॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

बहुव्रीहि समास में सभी पद उपसर्जन होते हैं, अ० उपसर्जनं पूर्वम् (२।२।३०) से पहले आ सकता था, कोई था, सो यह सूत्र बनाया ॥

उदा०—कण्ठेकालः (कण्ठ में स्थित है काल जिसके, वाला)। उरसिलोमा (छाती में बाल हैं जिसके) विशेषणात् शबलगुः ॥ उदाहरण में कण्ठे उरसि सप्तम्यन्त होने से यहाँ अमूर्द्धमस्तकात् स्वा० (६।३।१०) से विभक्ति का अलुक् सप्तम्युपमान० (वा० २।२।२४) इस वार्त्तिक से समास, तथा का लोप हुआ है ॥ चित्र, तथा शबल यह गौ के विशेषण आये हैं ॥

यहाँ से 'बहुव्रीहौ' की अनुवृत्ति २।२।३७ तक जायगी ॥

निष्ठा ॥२।२।३६॥

निष्ठा १।१॥ अनु०—बहुव्रीहौ, पूर्वम् ॥ अर्थः—निष्ठा बहुव्रीहौ समासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् ॥ उदा०—कटः कृतोऽनेन भिक्षितभिक्षिः। अवमुक्तोपानत्कः। आहूतसुब्रह्मण्यः ॥

भाषार्थः—बहुव्रीहि समास में [निष्ठा] निष्ठान्त शब्दों का प्रयोग होता है ॥ उदा०—कृतकटः (जिसने चटाई बना ली है) भिक्षितभिक्षिः (जिसने भिक्षा याचन कर ली है)। अवमुक्तोपानत्कः (जिसने जूता उतार दिया है)। आहूतसुब्रह्मण्यः (जिसने बुलाया) ॥

कृत तथा भिक्षित आदि निष्ठान्त शब्द हैं ॥

यहाँ से निष्ठा की अनुवृत्ति २।२।३७ तक जायगी ॥

वाहिताग्न्यादिषु ॥२।२।३७॥

वा अ० ॥ आहिताग्न्यादिषु ७।३॥ स०—आहिताग्नि आदिर्येषां ते आहिताग्न्यादयस्तेषु ··· ···बहुव्रीहिः ॥ अनु०—निष्ठा पूर्वम् ॥ अर्थः—पूर्वेण नित्यं पूर्वनिपाते प्राप्ते विकल्प उच्यते आहिताग्न्यादिषु निष्ठान्तं शब्दरूपं बहुव्रीहौ समासे पूर्वं वा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

०—आहितोऽग्निः येन स अग्न्याहितः। आहिताग्निः। जातपुत्रः। जातः॥

भाषार्थः—[आहिताग्न्यादिषु] आहिताग्न्यादि गण में निष्ठान्त शब्दों बहुव्रीहि समास में [वा] विकल्प से पूर्व प्रयोग करना चाहिये, र्थात् पर प्रयोग तथा पूर्व प्रयोग दोनों होगा॥ पूर्व सूत्र से नित्य ही ष्ठान्त का पूर्व प्रयोग प्राप्त था, विकल्प कह दिया॥ उदा०—अग्न्या-ः (जो अग्न्याधान कर चुका)। आहिताग्निः। जातपुत्रः (जिसके उत्पन्न हुआ)। पुत्रजातः॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति २।२।३८ तक जायेगी॥

कडाराः कर्मधारये ॥२।२।३८॥

कडाराः १।३॥ कर्मधारये ७।१॥ अनु०—वा, पूर्वम्॥ अर्थः—कर्म-रये समासे कडारादयः शब्दा वा पूर्वं प्रयोक्तव्याः॥ उदा०—कड.र-सौ जैमिनिश्च कडारजैमिनिः। जैमिनिकडारः॥

भाषार्थः—[कर्मधारये] कर्मधारय समास में [कडाराः] कडारादि ब्दों का विकल्प से पूर्व प्रयोग होता है॥ कडाराः में बहुवचन होने से ारादि गण लिया गया है॥ विशेषणं विशेष्येण० (२।१।५६) से ास होने पर विशेषण का पूर्वनिपात २।२।३० से प्राप्त था यहाँ कल्प कह दिया॥ उदा०—कडारजैमिनिः (पीला जैमिनि)। जैमिनि-हारः॥

॥ इति द्वितीयः पादः॥

—:०:—

तृतीयः पादः

[विभक्तिप्रकरणम्]

अनभिहिते ॥२।३।१॥

अनभिहिते ७।१॥ स०—न अभिहितः = अनभिहितः, तस्मिन्..... तत्पुरुषः॥ अर्थः—अनभिहिते = अकथिते, अनुक्ते, अनिर्दिष्टे ीदौ विभक्तिर्भवतीत्यधिकारो वेदितव्यः॥ सामान्येन आपादपरि-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

समाप्तेः, अधिकारोऽयं वेदितव्यः, विशेषस्तु कारकविभक्तिषु न तु उपपदविभक्तिषु, तत्रानावश्यकत्वात् ॥ केनानभिहिते कृत्तद्धितसमासैः ॥ उदा०—कटं करोति, ग्रामं गच्छति 'ग्रामम्' इत्यत्रानभिहितत्वात् *कर्मणि द्वितीया* (२।३।२) भवति ॥

भाषार्थः—[*अनभिहिते*] अनभिहित = अकथित = अनुदिष्ट कर्मादि कारकों में आगे कही हुई विभक्तियाँ होने अधिकार जानना चाहिये ॥ यह अधिकार सामान्यतया तक है, पर विशेषतया कारक विभक्तियों में ही प्रवृत्त होत विभक्तियों (अर्थात् अमुक के योग में अमुक विभक्ति अनावश्यक होने से प्रवृत्त नहीं होता ॥ अब प्रश्न होता है, अनभिहित ? सो तिङ्, कृत्, तद्धित एवं समास के द्वारा लिया गया है। जैसा कि—'देवदत्तः कटं करोति' यहाँ 'क पद में तिप् कर्त्ता में आया है, अतः उसका कर्त्ता के साथ धिकरण है अर्थात् कर्त्ता को ही तिङन्त पद कहता है को नहीं कहता, सो यह 'कट' अनभिहित कर्म हो गया, *द्वितीया* से अनभिहित कर्म में द्वितीया विभक्ति हो गई प्रकार ग्रामं गच्छति में जानें ॥ अनभिहित कहने से अभि कारकों में विभक्तियाँ नहीं होतीं। जैसा कि—'क्रियते क यहाँ 'क्रियते' में 'त' कर्मवाच्य में आया है, सो कर्म के साथ धिकरण होने से कर्म को ही कहता है कर्त्ता को नहीं, अतः अभिहित कर्म है, सो कट में पहले के समान द्वितीया वि हुई, अपितु *तिङ्समानाधिकरणे प्रथमा* या *अभिहिते* (२।३।४६) इस भाष्यवचन से प्रथमा विभक्ति हो गई है। अभिहित है, उसका जो वचन होगा, वही क्रिया का भी हो समझना चाहिये ॥

इसी प्रकार कृत् में 'कृतः कटः देवदत्तेन' यहाँ 'कृ कर्म में आया है अतः कर्म को कहता है, सो कर्म कृत् के द्वारा है, अतः उसमें द्वितीया न होकर पूर्वोक्तानुसार प्रथमा 'देवदत्तेन' कर्त्ता में *कर्त्तृकरणयो०* (२।३।१८) से तृतीया हुई है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इसी प्रकार तद्धित, समास के विषय में भी समझ लेना चाहिये, सब द्वितीयावृत्ति का विषय है अतः अधिक नहीं दिया ॥

कर्मणि द्वितीया ॥२।३।२॥

कर्मणि ७।१॥ द्वितीया १।१॥ अनु०—अनभिहिते ॥ अर्थः—अनभिहिते कर्मणि द्वितीया विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—ग्रामं गच्छति। कटं करोति ॥

भाषार्थः—अनभिहित [*कर्मणि*] कर्म में [*द्वितीया*] द्वितीया विभक्ति होती है ॥ पूर्व सूत्र में 'कट' अनभिहित कैसे है यह दिखाते हैं, अतः *कर्तुरीप्सिततमं* कर्म (१।४।४९) से कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति इस सूत्र से हो जाती है ॥

यहाँ से *'द्वितीया'* की अनुवृत्ति २।३।५ तक तथा *'कर्मणि'* की अनुवृत्ति २।३।३ तक जायेगी ॥

तृतीया च होश्छन्दसि ॥२।३।३॥

तृतीया १।१॥ च अ० ॥ होः ६।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—अनभिहिते, कर्मणि, द्वितीया ॥ अर्थः—छन्दसि विषये "हु दानादनयोः" तस्यधातोरनभिहिते कर्मणि कारके तृतीया विभक्तिर्भवति, चकारात् द्वितीया च ॥ उदा०—यवाग्वा अग्निहोत्रं जुहोति। यवागूम् अग्निहोत्रं जुहोति ॥

भाषार्थः—[*छन्दसि*] छन्द विषय में [*होः*] हु धातु के अनभिहित में [*तृतीया*] तृतीया विभक्ति होती है, [*च*] चकार से द्वितीया विभक्ति भी होती है ॥ उदा०—यवाग्वा अग्निहोत्रं जुहोति (लप्सी को अग्निहोत्र में डालता है) यवागूम् अग्निहोत्रं जुहोति ॥ यवागू + टा, इको यणचि लगाकर यवाग्वा बन गया ॥

अन्तरान्तरेणयुक्ते ॥२।३।४॥

अन्तरान्तरेणयुक्ते ७।१॥ स०—अन्तरा च अन्तरेण च अन्तरान्तरे, ताभ्यां युक्तः अन्तरान्तरेणयुक्तः, तस्मिन्·····द्वन्द्वगर्भतृतीया-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तत्पुरुषः ॥ अनु०—द्वितीया ॥ अर्थः—अन्तरा अन्तरेण शब्दयोर्योगे द्वितीया विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—अन्तरा त्वां कमण्डलुः, अन्तरेण पुरुषकारं न किञ्चित् लभ्यते। अन्तरेण कथं पचेत्। अन्तरेण त्वां च मां च कमण्डलुः ॥

भाषार्थः—अन्तरा, अन्तरेण शब्द निपात हैं, [अन्तरा] उनके योग में द्वितीया विभक्ति होती है ॥ उदा०—अन्तरा कमण्डलुः (तुम्हारे और मेरे बीच में कमण्डलु है)। अन्तरेण न किञ्चित् लभ्यते (बिना पुरुषार्थ के कुछ भी प्राप्त नहीं) अग्निमन्तरेण कथं पचेत् (अग्नि के बिना कैसे पके)। अन्तरेण च मां च कमण्डलुः (तुम्हारे और मेरे बीच में कमण्डलु है)

कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ॥२।३।५॥

कालाध्वनोः ७।२॥ अत्यन्तसंयोगे ७।१॥ स०—कालश्च अध्वा च कालाध्वानौ, तयोः कालाध्वनोः, इतरेतरद्वन्द्वः। अत्यन्तः अत्यन्तसंयोगः, तस्मिन्·····कर्मधारयतत्पुरुषः ॥ अनु०—अर्थः—कालवाचिनि शब्दे, अध्ववाचिनि शब्दे च, अत्यन्तसंयोगे माने द्वितीया विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—मासम् अधीतोऽनुवाकः। संवत्सरम् अधीतोऽष्टकः। संवत्सरं कल्याणी। अध्वनि—क्रोशं कुटिला नदी। क्रोशं रमणीया वनराजी ॥

भाषार्थः—[अत्यन्तसंयोगे] अत्यन्त संयोग गम्यमान हो [कालाध्वनोः] काल और अध्ववाची = मार्गवाची शब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है ॥ अत्यन्तसंयोग का अर्थ है लगातार संयोग।

उदा०—मासम् अधीतोऽनुवाकः (महीने भर में अनुवाक पढ़ा)। संवत्सरं अधीतोऽष्टकः (वर्ष भर में अष्टक पढ़ा)। संवत्सरं कल्याणी (साल भर सुखदायी)। अध्वा में—क्रोशं कुटिला नदी (कोस भर टेढ़ी है)। क्रोशं रमणीया वनराजी (कोस भर तक सुन्दर वन)।

यहाँ से 'कालाध्वनोः' की अनुवृत्ति २।३।७ तक तथा 'अत्यन्त' की २।३।६ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अपवर्गे तृतीया ॥२।३।६॥

अपवर्गे ७।१॥ तृतीया १।१॥ अनु०—कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ॥ —अपवर्गेऽर्थे कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया विभक्तिर्भवति ॥ ०—मासेनानुवाकोऽधीतः, संवत्सरेणानुवाकोऽधीतः । अध्वनः— नानुवाकोऽधीतः । योजनेनानुवाकोऽधीतः ॥

भाषार्थः—पूर्व सूत्र से द्वितीया प्राप्त थी, यहाँ पर [अपवर्गे] अप- (अर्थात् क्रिया की समाप्ति होने पर फल भी मिल जाये) अर्थ में और मार्गवाची शब्दों से अत्यन्तसंयोग गम्यमान होने पर [तृतीया] या विभक्ति होती है ॥

उदा०—मासेनानुवाकोऽधीतः (मास भर में अनुवाक पढ़ लिया, र उसे याद भी कर लिया) । संवत्सरेणानुवाकोऽधीतः । अध्वा का— शेनानुवाकोऽधीतः, योजनेनानुवाकोऽधीतः (कोस एवं योजन भर ड़ी में बैठे बैठे अनुवाक पढ़ लिया) ॥ मासेनानुवाकोऽधीतः का अर्थ होगा कि मास भर में अनुवाक पढ़ा, और उसे अच्छी प्रकार याद हो गया, सो याद हो जाना अपवर्ग हुआ ॥ अनुवाक, अष्टकादि वेद कुछ मन्त्रों के गणन का नाम है ॥

सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये ॥२।३।७॥

तमीपञ्चम्यौ १।२॥ कारकमध्ये ७।१॥ स०—सप्तमी च पञ्चमी सप्तमीपञ्चम्यौ, इतरेतरद्वन्द्वः । कारकयोर्मध्यः कारकमध्यः, तस्मिन् ....षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—कालाध्वनोः ॥ अर्थः—कारकयोर्मध्ये यौ लाध्ववाचिनौ शब्दौ, ताभ्यां सप्तमीपञ्चम्यौ विभक्ती भवतः ॥ ०—अद्य देवदत्तो भुक्त्वा द्व्यहे भोक्ता । अद्य देवदत्तो भुक्त्वा यहाद् भोक्ता, एवं, त्र्यहे त्र्यहाद् वा भोक्ता । अध्वनः—इहस्थोऽ- मुष्यासः क्रोशे लक्ष्यं विध्यति । क्रोशात् लक्ष्यं विध्यति ॥

भाषार्थः—[कारकमध्ये] दो कारकों के बीच में जो कालवाची और ध्ववाची शब्द उनमें [सप्तमीपञ्चम्यौ] सप्तमी और पञ्चमी विभक्ति ती हैं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—अद्य देवदत्तो भुक्त्वा द्व्यहं भोक्ता (आज देवदत्त दो दिन के पश्चात् खायेगा)। अद्य देवदत्तो भुक्त्वा द्व्यहाद् एवं, त्र्यहं त्र्यहाद् वा भोक्ता। अध्वा का—इहस्थोऽयमिष्वासः लक्ष्यं विध्यति (यहाँ पर बैठा हुआ यह बाण चलाने वाला देवदत्त लक्ष्य को बींधता है)। क्रोशात् लक्ष्यं विध्यति॥ अद्य देवदत्तो द्व्यहं भोक्ता, यहाँ कारक को शक्त्यधीन मानने से दो दिन वाली बात ठीक हो जाती है, क्योंकि आज खाने वाले देवदत्त दो दिन के पश्चात् खाने वाले देवदत्त की शक्ति भिन्न-भिन्न कारकमध्य हो गया। इसी प्रकार इहस्थोऽयमिष्वासः क्रोशं लक्ष्यं यहाँ भी 'इष्वासः' कर्त्ता है "लक्ष्यं" कर्म है, सो 'क्रोश' शब्द, कर्त्ता एवं कर्म कारक के मध्य में है, अतः क्रोश सप्तमी एवं पञ्चमी हो गई है। अथवा कर्म और अपादान के मध्य में है। कर्म पूर्ववत् ही है, तथा अपादान जहाँ से छूटता है वह है॥

कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया ॥२।३।८॥

कर्मप्रवचनीययुक्ते ७।१॥ द्वितीया १।१॥ स०—कर्मप्रवचनीयेन युक्तः कर्मप्रवचनीययुक्तः, तस्मिन् ·····तृतीयातत्पुरुषः॥ अर्थः—कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकैः शब्दैर्युक्ते द्वितीया विभक्तिर्भवति॥ उदा०—अनु संहितामनुप्रावर्षत्॥

भाषार्थः—[*कर्मप्रवचनीययुक्ते*] कर्मप्रवचनीय संज्ञक शब्दों में [*द्वितीया*] द्वितीया विभक्ति होती है॥ उदाहरण में (१।४।८३) से अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई है, अतः द्वितीया विभक्ति हो गई॥

यहाँ से 'कर्मप्रवचनीययुक्ते' की अनुवृत्ति २।३।११ तक जा

यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ॥२।३।९॥

यस्मात् ५।१॥ अधिकम् १।१॥ यस्य ६।१॥ च अ०॥ ईश्वरवचनम् १।१॥ तत्र अ०॥ सप्तमी १।१॥ अनु०—कर्मप्रवचनीययुक्ते॥ अन्वयः—अधिकं, यस्य च ईश्वरवचनं तत्र कर्मप्रवचनीययोगे सप्तमी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Initiative

॥ उदा०—उपखार्य्यां द्रोणः। उपनिष्के कार्षापणम्। अधि ब्रह्मदत्ते लाः, अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः ॥

भाषार्थः—[यस्मात्] जिससे [अधिकम्] अधिक हो [च] और य] जिसकी [ईश्वरवचनम्] ईश्वरवचनता अर्थात् सामर्थ्य हो] उसमें कर्मप्रवचनीय के योग में [सप्तमी] सप्तमी विभक्ति होती । पूर्व सूत्र से द्वितीया प्राप्त थी उसका यह अपवाद है ॥

उदा०—उपखार्य्यां द्रोणः (द्रोण से बड़ी खारी है)। उपनिष्के पणम्। अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चालाः। अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः ॥

स्व स्वामी दोनों सम्बन्धी शब्द होने से पञ्चाल तथा ब्रह्मदत्त दोनों र्याय से सप्तमी विभक्ति होती है ॥ उपखार्याम् आदि में उप की ऽधिके च (१।४।८६) तथा अधि ब्रह्मदत्ते में अधि की अधिरीश्वरे ४।९६) से कर्मप्रवचनीय संज्ञा है ॥

पञ्चम्यपाङ्परिभिः ॥२।३।१०॥

पञ्चमी १।१॥ अपाङ्परिभिः ३।३॥ स०—अप च आङ् च परि अपाङ्परयः, तैः··· ···इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मप्रवचनीययुक्ते ॥ र्थः—अप, आङ् परि इत्येतैः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकैर्योगे पञ्चमी विभक्ति-ति ॥ उदा०—अप त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टो देवः। आपाटलिपुत्रात् वृष्टो देवः। परि त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टो देवः ॥

भाषार्थः—कर्मप्रवचनीय संज्ञक [अपाङ्परिभिः] अप आङ् परि के में [पञ्चमी] पञ्चमी विभक्ति होती है ॥ अपपरी वर्जने (१।४।८७) आङ्मर्यादावचने (१।४।८८) से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। र्जने (८।१।५) से 'परि' को द्वित्व हुआ है ॥

यहाँ से 'पञ्चमी' की अनुवृत्ति २।३।११ तक जायगी ॥

प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ॥२।३।११॥

प्रतिनिधिप्रतिदाने १।२॥ च अ० ॥ यस्मात् ५।१॥ स०—प्रतिनिधिश्च दानञ्च, प्रतिनिधिप्रतिदाने इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—पञ्चमी, कर्म-चनीययुक्ते ॥ अर्थः—यस्मात् प्रतिनिधिः यस्माच्च प्रतिदानं तत्र कर्म-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रवचनीययोगे पञ्चमी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—ऋ
प्रति। प्रद्युम्नो वासुदेवतः प्रति ॥ प्रतिदाने—तिलेभ्यः
अस्मै प्रतियच्छति ॥

भाषार्थः—[*यस्मात्*] जिससे [*प्रतिनिधिप्रतिदाने*] प्रतिनिधि
जिससे प्रतिदान हो उससे [च] पञ्चमी विभक्ति होती है।
में अर्जुन तथा वासुदेव से प्रतिनिधित्व हुआ है, सो
विभक्ति होने से *प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः* (५।४।४४) से तसि
है। *प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः* (१।४।९१) से प्रति की कर्मप्र
हुई है ॥ माषों के बदले तिल दिये जा रहे हैं, सो प्रतिदान
में पञ्चमी विभक्ति हुई है ॥

गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि ॥२

गत्यर्थकर्मणि ७।१॥ द्वितीयाचतुर्थ्यौ १।२॥ चेष्टायाम् ७
७।१॥ स०—गतिरर्थो येषां ते गत्यर्थाः, गत्यर्थानां (
गत्यर्थकर्म, तस्मिन्·····बहुव्रीहिगर्भषष्ठीतत्पुरुषः॥
भिहिते ॥ अर्थः—चेष्टाक्रियाणां गत्यर्थानां धातूनाम्,
भिहिते कर्मणि कारके द्वितीयाचतुर्थ्यौ विभक्ती भवतः॥
व्रजति। ग्रामाय व्रजति। ग्रामं गच्छति। ग्रामाय गच्छति॥

भाषार्थः—[*चेष्टायाम्*] चेष्टा जिनकी क्रिया हो, ऐसे [
गत्यर्थक धातुओं के [*अध्वनि*] मार्ग रहित कर्म में [
द्वितीया, और चतुर्थी विभक्ति होती हैं ॥

उदा०—ग्रामं व्रजति (गाँव को जाता है) इत्यादि में
क धातु हैं, इनका कर्म ग्राम है, सो केवल द्वितीया (२।३।
चतुर्थी का भी विधान कर दिया है ॥ गाँव को चल कर
जायगा, अतः चेष्टा क्रिया वाली गम् धातु है ॥

चतुर्थी सम्प्रदाने ॥२।३।१३॥

चतुर्थी १।१॥ सम्प्रदाने ७।१॥ अनु०—अनभिहिते
अनभिहिते सम्प्रदानकारके चतुर्थी विभक्तिर्भवति॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

णकाय भिक्षां ददाति। शिष्याय विद्यां ददाति। देवदत्ताय रोचते
क्षः ॥

भाषार्थः—अनभिहित [*सम्प्रदाने*] सम्प्रदान कारक में [*चतुर्थी*]
र्थी विभक्ति होती है ॥

उदा०—माणवकाय भिक्षां ददाति (बच्चे के लिये भिक्षा देता है)।
ाय विद्यां ददाति। देवदत्ताय रोचते मोदकः ॥

सम्प्रदान संज्ञा *कर्मणा यमभि०* (१।४।३२) से होती है। देवदत्ताय
ते में *रुच्यर्थानां प्रीय०* (१।४।३३) से सम्प्रदान संज्ञा हुई है ॥

यहाँ से '*चतुर्थी*' की अनुवृत्ति २।३।१८ तक जायगी ॥

क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः ॥२।३।१४॥

क्रियार्थोपपदस्य ६।१॥ च अ०॥ कर्मणि ७।१॥ स्थानिनः ६।१॥ स०—
ाये इयं = क्रियार्था, तत्पुरुषः। क्रियार्था क्रिया उपपदं यस्य स क्रिया-
पदः (धातुः) तस्य·····उत्तरपदलोपी बहुव्रीहिः ॥ अनु०—चतुर्थी,
भिहिते ॥ यत्र गम्यते चार्थो न च प्रयुज्यते शब्दः, स स्थानी ॥
—स्थानिनः = अप्रयुज्यमानस्य क्रियार्थोपपदस्य धातोः, अनभिहिते
ण कारके चतुर्थी विभक्तिर्भवति ॥ कर्मणि द्वितीया प्राप्ता, चतुर्थी
यते ॥ उदा०—एधेभ्यो व्रजति। पुष्पेभ्यो व्रजति। वृकेभ्यो व्रजति।
भ्यो व्रजति ॥

भाषार्थः—[*क्रियार्थोपपदस्य*] क्रिया के लिये जो क्रिया वह हो
द में जिसके ऐसी [*स्थानिनः*] अप्रयुज्यमान धातु के अनभिहित
र्मणि] कर्म कारक में [च] भी चतुर्थी विभक्ति होती है ॥

उदा०—एधेभ्यो व्रजति (ईंधन को लेने के लिये जाता है)। पुष्पे-
व्रजति, वृकेभ्यो व्रजति (भेड़िये को मारने के लिये जाता है)।
भ्यो व्रजति ॥

उदाहरण में व्रजति क्रियार्थ क्रिया उपपद है, क्योंकि जाना इसलिये
हा है कि ईंधन को लाना क्रिया करें, या वृकों को मारें सो क्रिया के
क्रिया हो रही है। यहाँ एधान् (आहर्तुं) व्रजति, वृकान् (हन्तुं)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

व्रजति ऐसा चाहिये था, पर स्थानिनः = अप्रयुज्यमान आहर्तुं या हन्तुं का प्रयोग नहीं किया है, केवल है। यहाँ पर *तुमुन्ण्वुलौ क्रियायाम्*० (३।३।१०) से उपपद है, क्योंकि क्रियायाम् में सप्तमी है, उसका विशेषण है, अतः *तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्* (३।१।९२) से उपपद संज्ञा *तुमन्ण्वुलौ क्रियायां*० से आहर्त्तुम् आदि में तुमुन् प्रत्यय यह सूत्र उसी का विषय है॥

इस सारे सूत्र की अनुवृत्ति ३।३।१५ तक जायगी॥

तुमर्थाच्च भाववचनात् ॥३।३।१५॥

तुमर्थात् ५।१॥ च अ०॥ भाववचनात् ५।१॥ स०-इत्यर्थो यस्य स तुमर्थः, तस्मात्.....बहुव्रीहिः। उक्त वचनम् भावस्य वचनं भाववचनम्, षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु-पपदस्य च कर्मणि स्थानिनः, चतुर्थी, अनभिहिते॥ अर्थः मानस्य क्रियार्थोपपदस्य धातोर्यद् अनभिहितं कर्म, तस्य भाववचनप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकात् चतुर्थीविभक्तिर्भवति। पाकाय व्रजति। त्यागाय व्रजति। सम्पत्तये व्रजति। इष्टये

भाषार्थः—क्रियार्थ क्रिया उपपद में है जिसके ऐसी धातु के [*तुमर्थात्*] तुमर्थ [*भाववचनात्*] भाववचन को चतुर्थी विभक्ति होती है॥

उदा०—पाकाय व्रजति (पाक करने को जाता है)। त्याग सम्पत्तये व्रजति (सम्पत्ति के लिये जाता है)। इष्टये व्रजति को जाता है)।

उदाहरण में व्रजति क्रिया क्रियार्थ क्रिया है, वह है जिसके अर्थात् 'कर्त्तुं', जो कि अप्रयुज्यमान है उसका वचन कर्म पाक, त्यागः आदि, उसमें चतुर्थी विभक्ति हुई पाके धातु से तुमर्थ अर्थात् *तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां*० (३।३।१०) जिस अर्थ में तुमुन् होता है, उस अर्थ में जो भाववचन *भाववचनाश्च* (३।३।११) सूत्र से घञादि प्रत्यय हुए हैं, इस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तुमर्थ भाववचन प्रत्ययान्त कर्म हैं, सो इसमें चतुर्थी विभक्ति हो है ॥

नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च ॥२।३।१६॥

नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगात् ५।१॥ च अ० ॥ स०—नमश्च च स्वाहा च स्वधा च अलञ्च वषट् च, इति नमःस्वस्तिस्वाहा लंवषट्, तैर्योगः, नमःस्वस्ति ·····योगः तस्मात्·····"द्वन्द्वगर्भस्तृतीया रुषः ॥ अनु०—चतुर्थी ॥ अर्थः—नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं, इत्येतैः शब्दैर्योगे चतुर्थीविभक्तिर्भवति ॥ उदा०—नमो गुरुभ्यः। देवेभ्यः। स्वस्ति प्रजाभ्यः। अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। स्वधा भ्यः। अलं मल्लो मल्लाय। अलमित्यर्थग्रहणम्। प्रभुर्मल्लो मल्लाय। अग्नये। वषड् इन्द्राय ॥

भाषार्थः—[नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगात्] नमः, स्वस्ति, हा, स्वधा, अलं, वषट् इन शब्दों के योग में [च] भी चतुर्थी क्ति होती है ॥

उदा०—नमो गुरुभ्यः (गुरुओं को नमस्कार है)। नमो देवेभ्यः। स्ति प्रजाभ्यः (प्रजा का कल्याण हो)। अग्नये स्वाहा (अग्नि देवता नमस्कार है)। सोमाय स्वाहा (सोम के लिए आहुति)। स्वधा भ्यः (पितरों के लिए अन्न)। अलं मल्लो मल्लाय (पहलवान के लिए वान समर्थ है)। प्रभुर्मल्लो मल्लाय (मल्ल मल्ल के लिए समर्थ है)। अग्नये (अग्नि के लिए हवि त्याग)। वषड् इन्द्राय ॥

मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु ॥२।३।१७॥

मन्यकर्मणि ७।१॥ अनादरे ७।१॥ विभाषा १।१॥ अप्राणिषु ७।३॥ —मन्यतेः कर्म, मन्यकर्म तस्मिन्·····षष्ठीतत्पुरुषः। न आदरः दरः, तस्मिन् अनादरे नञ्तत्पुरुषः। न प्राणिनः अप्राणिनस्तेषु ···· त्पुरुषः ॥ अनु०—चतुर्थी, अनभिहिते ॥ अर्थः—अनादरे गम्य- प्राणिवर्जिते मन्यतेः कर्मणि विभाषा चतुर्थीविभक्तिर्भवति ॥ ०—न त्वा तृणं मन्ये। न त्वा तृणाय मन्ये, न त्वा बुसं मन्ये। न बुसाय मन्ये ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*अनादरे*] अनादर गम्यमान होने पर [मन्य] मन्य धातु के [*अप्राणिषु*] प्राणिवर्जित अनभिहित कर्म में [*विभाषा*] विकल्प से होती है ॥

उदा०—न त्वा तृणं मन्ये (मैं तुमको तिनके के समझता)। न त्वा तृणाय मन्ये। न त्वा बुसं मन्ये (मैं तु बराबर भी नहीं समझता)। न त्वा बुसाय मन्ये ॥

मन्य धातु का 'तृणं' प्राणिवर्जित कर्म है सो उसमें चतुर्थी हो गई है। तिनका भी नहीं समझता ऐसा कहने दर है ॥ दिवादिगण की मन धातु का यहाँ ग्रहण है॥ प्राप्ति में यह विधान है ॥

कर्त्तृकरणयोस्तृतीया ॥२।३।१८॥

कर्तृकरणयोः ७।२॥ तृतीया १।१॥ स०—कर्त्ता च क करणे, तयोः.....इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अनभिहिते ॥ भिहितकर्त्तृकरणयोस्तृतीया विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—कर्त्ता कृतम्। यज्ञदत्तेन भुक्तम्। करणे—असिना छिनत्ति। दात्रे अग्निना पचति ॥

भाषार्थः—अनभिहित [*कर्त्तृकरणयोः*] कर्त्ता और करण तृतीया विभक्ति होती है ॥ उदा०—देवदत्तेन कृतम् (देवदत्त किया गया)। यज्ञदत्तेन भुक्तम्। करण में—असिना छिनत्ति द्वारा काटता है)। दात्रेण लुनाति (दरांती के द्वारा अग्निना पचति (अग्नि के द्वारा पकाता है) ॥

देवदत्तेन कृतम् आदि में देवदत्त अनभिहित कर्त्ता कृतम् में 'क्त' प्रत्यय कर्म में *तयोरेव कृत्यक्त०* ३।४।७०) सो कृतम् क्रिया का समानाधिकरण कर्म से है न कि कर्त्ता अनभिहित = अकथित अनुक्त है, सो तृतीया हो गई छिनत्ति आदि में क्रिया का समानाधिकरण 'करण आदि' है, अतः वह भी अनभिहित करण है। *साधकतमं करणम्* से करण संज्ञा तथा *स्वतन्त्रः कर्त्ता* (१।४।५४) से कर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

हैं ॥ *अनभिहिते* (२।३।१) सूत्र पर अनभिहित विषय में हम पर्याप्त
का आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी जानें ॥

यहाँ से '*तृतीया*' की अनुवृत्ति २।३।२३ तक जायगी ॥

सहयुक्तेऽप्रधाने ॥२।३।१९॥

सहयुक्ते ७।१॥ अप्रधाने ७।१॥ स०—सह शब्देन युक्तम्, सह-
म्, तस्मिन् ... तृतीयातत्पुरुषः। न प्रधानम्, अप्रधानं, तस्मिन्....
त्पुरुषः ॥ अनु०—तृतीया ॥ अर्थः—सहार्थेन युक्तेऽप्रधाने
या विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—पुत्रेण सह आगतः पिता। पुत्रेण
गोमान्। पुत्रेण सह स्थूलः। पुत्रेण सार्द्धम् ॥

भाषार्थः—[*सहयुक्ते*] सह के अर्थवाची शब्दों के योग में
धाने] अप्रधान में तृतीया विभक्ति हो जाती है ॥

उदा०—पुत्त्रेण सह आगतः पिता (पुत्र के साथ पिता आया)।
सह गोमान् (पुत्र के साथ गौ वाला)। पुत्रेण सह स्थूलः (पुत्र के
मोटा)। पुत्रेण सार्द्धम् (पुत्र के साथ)।

उदाहरण में पिता प्रधान है, क्योंकि मुख्यरूप से आने की क्रिया में
समर्थ है, पुत्र उसके केवल साथ आया है, अतः अप्रधान है। यदि
आने में असमर्थ वा निर्बल हो पुत्र ही प्रधान रूप से आना क्रिया
रहा हो, तो पिता अप्रधान होगा, उसमें तृतीया हो जायेगी।
—पित्रा सह आगतः पुत्रः। सह के अर्थवाची के योग में
या होती है, सो सार्द्धम् आदि के योग में भी हो गई, तथा जहाँ
सह का अर्थ रहे, सहार्थ शब्दों का योग न हो, वहाँ भी तृतीया हो
है। *यथा*—वृद्धो यूना ॥

येनाङ्गविकारः ॥२।३।२०॥

येन ३।१॥ अङ्गविकारः १।१॥ अङ्गम् अस्यास्तीति, अङ्गः, *अर्शआदि-*
भ्यो (५।२।१२७) इत्यनेन मतुबर्थे अच् प्रत्ययः ॥ स०—अङ्गस्य
रः, अङ्गविकारः, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—तृतीया ॥ अर्थः—येन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अङ्गेन अङ्गस्य = शरीरस्य विकारो लक्ष्यते तत्र तृतीया [illegible] उदा०—अक्ष्णा काणः । पादेन खञ्जः । पाणिना कुण्ठः ॥

भाषार्थः—[*येन*] जिस अङ्ग के द्वारा (शरीरावयव के) [*विकारः*] अङ्गी, अर्थात् शरीर का विकार लक्षित हो, [illegible] विभक्ति होती है ॥ अङ्ग अर्थात् शरीर के अवयव हैं, [illegible] वह शरीर (समुदाय) अङ्ग कहलाया । येन अर्थात् [illegible] आक्षेप से द्वितीय अङ्ग शरीरावयववाची लिया गया है। अक्ष्णा काणः (आँख से काना) । पादेन खञ्जः (पैर से लँगड़ा) कुण्ठः (हाथ से लुञ्जा) ॥

उदाहरण में आँख शरीरावयव के द्वारा शरीर समुदाय विकार परिलक्षित हो रहा है, सो उसमें तृतीया हुई है। और उदाहरणों में भी समझें ॥

इत्थंभूतलक्षणे ॥२।३।२१॥

इत्थंभूतलक्षणे ७।१॥ लक्ष्यते अनेनेति लक्षणम् । स०—प्राप्तः, इत्थम्भूतः, तस्य लक्षणम्, इत्थम्भूतलक्षणम्, तस्मिन्, तत्पुरुषः ॥ अनु०—तृतीया ॥ अर्थः—इत्थंभूतलक्षणे तृतीया भवति ॥ उदा०—अपि भवान् कमण्डलुना छात्रमद्राक्षीत् । मेखलया ब्रह्मचारिणमद्राक्षीत् ॥

भाषार्थः—[*इत्थंभूतलक्षणे*] इत्थंभूत का जो लक्षण [illegible] विभक्ति होती है ॥ इस प्रकार को जो प्राप्त हुआ वह [illegible] लाया ॥ उदा०—अपि भवान् कमण्डलुना छात्रमद्राक्षीत् [illegible] कमण्डलु लिये हुए छात्र को देखा) । अपि भवान् मेखलया [illegible] मद्राक्षीत् (क्या आपने मेखला वाले छात्र को देखा) ॥

उदाहरण में मनुष्य सामान्य है, उसमें छात्रत्व और [illegible] प्रकार है अर्थात् छात्रत्व प्रकार = धर्म को प्राप्त हुआ मनुष्य [illegible] प्रकार को प्राप्त हुआ मनुष्य, यह इत्थंभूत है। इस इत्थंभूत [illegible] और मेखला लक्षण हैं अर्थात् कमण्डलु से छात्र लक्षित [illegible] है, और मेखला से ब्रह्मचारी अतः उसमें तृतीया हो गई है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दिगणस्थ धातु से क्त प्रत्यय होकर भूत शब्द बना है, अतः भूत अर्थ प्राप्त है। इत्थम् में इदमस्थमुः (५।३।२४) से थमु प्रत्यय है ॥

संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि ॥२।३।२२॥

संज्ञः ६।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ कर्मणि ७।१॥ अनु०—तृतीया, अभिहिते ॥ अर्थः—सम् पूर्वस्य, ज्ञाधातोरनभिहिते, कर्मणि कारके तृतीया विभक्तिर्भवति विकल्पेन ॥ उदा०—मात्रा संजानीते बालः। मातरं सञ्जानीते। पित्रा संजानीते। पितरं संजानीते ॥

भाषार्थः—[संज्ञः] सम् पूर्वक ज्ञा धातु के, अनभिहित [कर्मणि] कारक में [अन्यतरस्याम्] विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है ॥ में यथाप्राप्त द्वितीया विभक्ति होती है ॥

उदा०—मात्रा संजानीते बालः (बालक माता को पहचानता है)। मातरं सञ्जानीते। पित्रा संजानीते। पितरं संजानीते ॥

मातृ शब्द संजानीते का कर्म था सो उसमें द्वितीया तथा तृतीया क्ति हो गई हैं ॥ संप्रतिभ्याम्० (१।३।४६) से संजानीते में आत्मने- आ है ॥

हेतौ ॥२।३।२३॥

हेतौ ७।१॥ अनु०—तृतीया ॥ अर्थः—हेतुवाचिशब्दे तृतीया विभ- क्ति ॥ उदा०—विद्यया यशः। सत्सङ्गेन बुद्धिः। धनेन कुलम् ॥

भाषार्थः—[हेतौ] हेतुवाची शब्द में तृतीया विभक्ति होती है ॥ किसी कार्य की सिद्धि की जाये वह हेतु होता है ॥

उदा०—विद्यया यशः (विद्या के द्वारा यश प्राप्त हुआ)। सत्सङ्गेन (सत्सङ्ग के द्वारा बुद्धि प्राप्त हुई)। धनेन कुलम् (धन के द्वारा स्थित है) ॥ उदाहरण में विद्या के द्वारा यश प्राप्त हुआ, अतः वह इसी प्रकार औरों में भी समझें ॥ पूर्ववत् 'विद्या टा' आकर आपः (७।३।१०५) से एत्व होकर विद्ये आ, एचोऽयवायावः (६।१।७५) विद्यया बन गया ॥ शेष पूर्ववत् है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'हेतौ' की अनुवृत्ति २।३।२७ तक जायगी॥

अकर्त्तर्यृणे पञ्चमी ॥२।३।२४॥

अकर्त्तरि ७।१॥ ऋणे ७।१॥ पञ्चमी १।१॥ अनु०—हेतौ॥ अ० ऋणे वाच्ये कर्त्तृरहिते हेतौ पञ्चमी विभक्तिर्भवति॥ उ० बद्धः। सहस्राद् बद्धः॥

भाषार्थः—[*अकर्त्तरि*] कर्तृभिन्न हेतुवाची शब्द में [*ऋणे*] वाच्य होने पर [*पञ्चमी*] पञ्चमी विभक्ति होती है॥

उदा०—शताद् बद्धः (सौ रुपये के ऋण से बँधा मालिक ने उसे नौकर बना लिया)। सहस्राद् बद्धः॥

उसके बन्धन का हेतु सौ रुपये हैं, सो हेतुवाची हो हो गई है॥ पूर्व सूत्र से हेतु में तृतीया प्राप्त थी, पञ्चमी

यहाँ से 'पञ्चमी' की अनुवृत्ति २।३।२५ तक जाती है।

विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् ॥२।३।२५॥

विभाषा १।१॥ गुणे ७।१॥ अस्त्रियाम् ७।१॥ स०—न स्त्री अस्त्रियाम्, नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—हेतौ, पञ्चमी॥ अर्थः—न स्त्रीलिङ्गं विहाय पुल्लिङ्गनपुंसकलिङ्गे वर्त्तमानो यो हेतुवाची शब्दस्तस्मिन् विकल्पेन पञ्चमी विभक्तिर्भवति, पक्षे तृतीया पूर्वेण नित्यं तृतीया प्राप्ता विकल्प्यते॥ उदा०—जाड्याद् बद्धः। पाण्डित्यान् मुक्तः। पाण्डित्येन मुक्तः॥

भाषार्थः—[*अस्त्रियाम्*] स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर नपुंसक लिङ्ग में वर्त्तमान जो हेतुवाची [*गुणे*] गुणवाची [*विभाषा*] विकल्प से पञ्चमी विभक्ति होती है॥

उदा०—जाड्याद् बद्धः (मूर्खता से बन्धन में फँस गया) बद्धः। पाण्डित्यान् मुक्तः (पाण्डित्य के कारण मुक्त हो गया) त्येन मुक्तः॥ जाड्य, वा पाण्डित्य नपुंसक लिङ्ग में वर्त्तमान शब्द हैं, तथा बन्धन वा मुक्त होने के हेतु हैं, सो पञ्चमी गई। नित्य तृतीया (२।३।२४) प्राप्त थी, पञ्चमी विकल्प

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Initiative

पञ्चमी होने के पश्चात् पक्ष में *हेतौ* (२।३।२३) सूत्र से प्राप्त तृतीया हो गई ॥

षष्ठी हेतुप्रयोगे ॥२।३।२६॥

षष्ठी १।१॥ हेतुप्रयोगे ७।१॥ *स०*—हेतोः प्रयोगः, हेतुप्रयोगः, मन्.....षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—हेतौ ॥ *अर्थः*—हेतु शब्दस्य गे हेतौ द्योत्ये षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ *उदा०*—अन्नस्य हेतोर्धनिकुले ति ॥

भाषार्थः—[*हेतुप्रयोगे*] हेतु शब्द के प्रयोग में, तथा जिससे हेतु तित हो रहा हो, उस शब्द में [*षष्ठी*] षष्ठी विभक्ति होती है ॥

उदा०—अन्नस्य हेतोर्धनिकुले वसति (अन्न के कारण से धनवान् कुल में वास करता है)। अन्न हेतु था सो उसमें षष्ठी हो गई है ॥

यहाँ से '*षष्ठी हेतुप्रयोगे*' की अनुवृत्ति २।३।२७ तक जायगी ॥

सर्वनाम्नस्तृतीया च ॥२।३।२७॥

सर्वनाम्नः ६।१॥ तृतीया १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—षष्ठी, हेतुप्रयोगे, ॥ *अर्थः*—सर्वनाम्नो हेतुशब्दस्य प्रयोगे हेतौ द्योत्ये तृतीया विभक्तिर्वति, चकारात् षष्ठी च ॥ *उदा०*—कस्य हेतोर्वसति। केन हेतुना दति। यस्य हेतोर्वसति। येन हेतुना वसति ॥

भाषार्थः—हेतु शब्द के प्रयोग में तथा हेतु के विशेषणवाची नाम्नः] सर्वनाम संज्ञक शब्द के प्रयोग में, हेतु द्योतित होने पर तीया] तृतीया विभक्ति होती है, [च] चकार से षष्ठी विभक्ति भी है ॥

यहाँ पर *निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां प्रायदर्शनम्* इस *वार्तिक* से प्रायः सर्वनाम विशेषणवाची शब्द प्रयुक्त होने पर, निमित्त, कारण, हेतु प्रयोग हो तो सब विभक्तियाँ होती हैं ॥

उदा०—कस्य हेतोर्वसति (किस हेतु से बसता है)। केन हेतुना । यस्य हेतोर्वसति (जिस हेतु से बसता है)। येन हेतुना वसति ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अपादाने पञ्चमी ॥२।३।२८॥

अपादाने ७।१॥ पञ्चमी १।१॥ अनु०—अनभिहिते॥ अनभिहितेऽपादाने कारके पञ्चमी विभक्तिर्भवति॥ उदा०—पर्णानि पतन्ति। ग्रामाद् आगच्छति॥

भाषार्थ—अनभिहित [*अपादाने*] अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति होती है॥ *ध्रुवमपायेऽपा०* (१।४।२४) से आ हुई है॥ उदा०—वृक्षात् पर्णानि पतन्ति (वृक्ष से पत्ते) ग्रामाद् आगच्छति॥ उदाहरण में आगच्छति क्रिया से अ भिहित है, अतः पञ्चमी हुई है॥

यहाँ से *पञ्चमी* की अनुवृत्ति २।३।३५ तक जायगी॥

अन्यारादितरर्त्तेदिक्छब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ॥२।३

अन्या……हियुक्ते ७।१॥ स०—अन्यश्च आराच्च च दिक्शब्दश्च अञ्चूत्तरपदश्च आच्च आहि चेति, अन्या दिक्छब्दाञ्चूत्तरपदाजाहयः, तैर्युक्तः, अन्या……जाहियुक्तः ……द्वन्द्वगर्भस्तृतीयातत्पुरुषः॥ अनु०—पञ्चमी॥ अर्थः—अन्य इतर, ऋते, दिक्शब्द, अञ्चूत्तरपद, आच्, आहि इत्येतैर्विभक्तिर्भवति॥ उदा०—अन्यो देवदत्तात्। अन्य इत्यर्थग्रहणं प्रयोगेऽपि भवति—भिन्नो देवदत्तात्। अर्थान्तरं देवदत्तात्। देवदत्तात्। आरात् यज्ञदत्तात्। इतरो देवदत्तात्। ऋते पूर्वो ग्रामात् पर्वतः। उत्तरो ग्रामात्। पूर्वो ग्रीष्मात् वसन्तः। उत्तरपदे—प्राग् ग्रामात्। प्रत्यग् ग्रामात्। आच—दक्षिणा उत्तरा ग्रामात्। आहि—दक्षिणाहि ग्रामात्। उत्तराहि ग्रामात्।

भाषार्थः—[*अन्यारादित……युक्ते*] अन्य, आरात्, दिक्शब्द, अञ्चूत्तरपद, आच्प्रत्ययान्त तथा आहिप्रत्यय योग में पञ्चमी विभक्ति होती है॥

उदा०—अन्यो देवदत्तात्। भिन्नो देवदत्तात् (देवदत्त अर्थान्तरं देवदत्तात्। आरात् देवदत्तात् (देवदत्त से दूर आरात् यज्ञदत्तात्। इतरो देवदत्तात् (देवदत्त से इतर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ज्ञदक्षात् (यज्ञदत्त के बिना)। पूर्वो ग्रामात् पर्वतः (ग्राम से पूर्व र्वत)। उत्तरो ग्रामात्। पूर्वो ग्रीष्माद् वसन्तः (ग्रीष्म से पूर्व वसन्त)। ञ्चूत्तरपद में—प्राग् ग्रामात् (ग्राम से पूर्व)। प्रत्यग् ग्रामात् (ग्राम से श्चिम)। आच्—दक्षिणा ग्रामात् (गाँव से दक्षिण) उत्तरा ग्रामात्। क्षिणाहि ग्रामात् (ग्राम से दक्षिण)। उत्तराहि ग्रामात्॥

प्र पूर्वक अञ्चु शब्द से *ऋत्विग्दधृग्०* (३।२।५९) से किन् प्रत्यय आ है। दक्षिणा में, *दक्षिणादाच्* (५।३।३६) तथा उत्तरा में *उत्तराच्च* ।३।३८) से आच् प्रत्यय हुआ है। *आहि च दूरे* (५।३।३७) से क्षिणाहि आदि में आहि प्रत्यय हुआ है॥

षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ॥२।३।३०॥

षष्ठी १।१॥ अतसर्थप्रत्ययेन ३।१॥ *स०*—अतसोऽर्थः, अतसर्थः, ीतत्पुरुषः, अतसर्थे प्रत्ययः, अतसर्थ-प्रत्ययस्तेन·····सप्तमीतत्पुरुषः॥ र्थः—अतसर्थप्रत्ययेन युक्ते षष्ठीविभक्तिर्भवति॥ *उदा०*—दक्षिणतो मस्य। उत्तरतो ग्रामस्य। पुरो ग्रामस्य। पुरस्तात् ग्रामस्य। उपरि मस्य। उपरिष्टात् ग्रामस्य॥

भाषार्थः—[*अतसर्थप्रत्ययेन*] अतसर्थ प्रत्यय के योग में [*षष्ठी*] षष्ठी भक्ति होती है। अतसुच् के अर्थ में विहित, *दक्षिणोत्ताराभ्यामतसुच्* ।३।२८) के अधिकार में कहे हुए प्रत्यय अतसर्थ प्रत्यय कहलाते हैं॥

उदा०—दक्षिणतो ग्रामस्य (ग्राम के दक्षिण में)। उत्तरतो ग्रामस्य। ग्रामस्य (ग्राम के पूर्व में)। पुरस्तात् ग्रामस्य। उपरि ग्रामस्य (ग्राम पर) उपरिष्टात् ग्रामस्य॥

दक्षिणतः आदि में *दक्षिणोत्ताराभ्यामतसुच्* (५।३।२८) से अतसुच् हुआ है। *पूर्वाधरावरा०* (५।३।३९) से पूर्व को पुर् आदेश तथा प्रत्यय अतसर्थ में हुआ है *दिक्शब्देभ्यः०* (५।३।२७) से पुरस्तात् स्तात्ति प्रत्यय हुआ है। *उपर्युपरिष्टात्* (५।३।३१) से ऊर्ध्व को उप तथा रिल् रिष्टातिल् प्रत्यय उपरि, उपरिष्टात् में हुए हैं। इन सब के में षष्ठी हो गई है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

एनपा द्वितीया ॥२।३।३१॥

एनपा ३।१॥ द्वितीया १।१॥ *अर्थः*—एनप् प्रत्ययान्तेन योगे विभक्तिर्भवति ॥ पूर्वेण षष्ठी प्राप्ता द्वितीया विधीयते ॥ उदा०—णेन ग्रामम् । उत्तरेण ग्रामम् ॥

भाषार्थः—[*एनपा*] एनप् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है ॥ *एनबन्यतरस्यामदूरे०* (५।३।३५) प्रत्यय का विधान है । एनप् के अतसर्थ प्रत्यय होने से पूर्व षष्ठी प्राप्त थी, द्वितीया का विधान कर दिया ॥

उदा०—दक्षिणेन ग्रामम् (ग्राम से दक्षिण) । उत्तरेण ग्रामम्

पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥२।३।३२॥

पृथग्विनानानाभिः ३।३॥ तृतीया १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ पृथक् च विना च नाना च, पृथग्विनानानाः, तैः·····इतरेण अनु०—पञ्चमी ॥ *अर्थः*—पृथक्, विना, नाना इत्येतैर्योगे तृतीया विभक्तिर्भवति, अन्यतरस्यां, पञ्चमी च ॥ उदा०—पृथक् ग्रामेण । ग्रामात् । विना घृतेन । विना घृतात् । नाना देवदत्तेन । नाना देवदत्तात्

भाषार्थः—[*पृथग्विनानानाभिः*] पृथक्, विना, नाना इन शब्दों में [*तृतीया*] तृतीया विभक्ति [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से होती है, में पञ्चमी भी होती है ॥

उदा०—पृथक् ग्रामेण (ग्राम से पृथक्) । पृथक् ग्रामात् । घृतेन (बिना घी के) । विना घृतात् । नाना देवदत्तेन (भिन्न) । नाना देवदत्तात् ॥

यहाँ से '*तृतीया*' की अनुवृत्ति २।३।३३ तक जायगी ॥

करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य ॥२।३।

करणे ७।१॥ च अ०॥ स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्य ६।१॥ असत्त्ववचनस्य ६।१॥ स०—स्तोकश्च अल्पश्च कृच्छ्रश्च कतिपयश्च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयः तस्य·····समाहारो द्वन्द्वः ॥ न सत्त्ववचनम् असत्त्ववचनं तस्य नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—तृतीया, पञ्चमी, अनभिहिते ॥ *अर्थः*—स्तो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

च्छ्र कतिपय इत्येतेभ्योऽसत्त्ववचनेभ्योऽनभिहिते करणे कारके तीयापञ्चम्यौ विभक्ती भवतः ॥ उदा०—स्तोकान्मुक्तः, स्तोकेन क्तः। अल्पान्मुक्तः, अल्पेन मुक्तः। कृच्छ्रान्मुक्तः, कृच्छ्रेण मुक्तः। तिपयान्मुक्तः, कतिपयेन मुक्तः ॥

भाषार्थः—[स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्य] स्तोक, अल्प, कृच्छ्र, कति- य इन [असत्त्ववचनस्य] असत्त्ववाची = अद्रव्यवाची शब्दों के अन- भिहित [करणे] करण कारक में तृतीया [च] और पञ्चमी विभक्ति होती ॥ उदा०—स्तोकान्मुक्तः, स्तोकेन मुक्तः। अल्पान्मुक्तः अल्पेन मुक्तः। च्छ्रान्मुक्तः, कृच्छ्रेण मुक्तः। कतिपयान्मुक्तः (कुछ लोगों से छूट या)। कतिपयेन मुक्तः ॥

करण में तृतीया (२।३।१८) से प्राप्त ही थी, पञ्चमी का ही यहाँ धान किया है ॥ स्तोकान्मुक्तः आदि उदाहरणों में *स्तोकान्तिकदूरार्थ०* २।१।३९) से समास तथा *पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः* (६।३।२) से पञ्चमी अलुक् हुआ है ॥ तृतीयापक्ष में समास नहीं हुआ है। स्तोकान् त् को *न् यरोनुनासिके०* (८।४।४५) से हुआ है ॥

दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ॥२।३।३४॥

दूरान्तिकार्थैः ३।३॥ षष्ठी १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ स०—दूरश्च अन्तिकश्च, दूरान्तिकौ, तौ अर्थौ येषां ते दूरान्तिकार्थास्तैः..... न्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ अनु०—पञ्चमी ॥ अर्थः—दूरार्थानाम् अन्ति- र्थानां = समीपार्थानां शब्दानां योगे षष्ठी विभक्तिर्विकल्पेन भवति, ते पञ्चमी च ॥ उदा०—दूरं ग्रामात्। दूरं ग्रामस्य। विप्रकृष्टं ग्रामात्। प्रकृष्टं ग्रामस्य। अन्तिके—अन्तिकं ग्रामात्। अन्तिकं ग्रामस्य। मीपं ग्रामात्। समीपं ग्रामस्य। अभ्याशं ग्रामात्। अभ्याशं ग्रामस्य।

भाषार्थः—[दूरान्तिकार्थैः] दूर अर्थ वाले, तथा समीप अर्थ वाले, ब्दों के योग में [षष्ठी] षष्ठी विभक्ति [अन्यतरस्याम्] विकल्प से ती है पक्ष में पञ्चमी भी होती है ॥

उदा०—दूरं ग्रामात्। (ग्राम से दूर) दूरं ग्रामस्य। विप्रकृष्टं मात्। विप्रकृष्टं ग्रामस्य। अन्तिकं ग्रामात् (ग्राम से समीप)। अन्तिकं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ग्रामस्य । समीपं ग्रामात् । समीपं ग्रामस्य । अभ्याशं ग्रामात् । ग्रामस्य ॥

यहाँ से 'षष्ठ्यन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति २।३।३५ तक जा

दूरान्तिकार्थैभ्यो द्वितीया च ॥२।३।३५॥

दूरान्तिकार्थैभ्यः ५।३॥ द्वितीया १।१॥ च अ० ॥ स०—नुसारमेव दूरान्तिकार्थैभ्य इत्यत्र समासः ॥ अनु०—षष्ठ्यन्य पञ्चमी ॥ अर्थः—दूरान्तिकार्थैभ्यः शब्देभ्यः द्वितीया विभक्ति चकारात् षष्ठी च भवति विकल्पेन ॥ अतः पक्षे पञ्चम्यपि भ विभक्तित्रयं सिद्धं भवति ॥ उदा०—दूरं ग्रामस्य, दूरस्य ग्राम ग्रामस्य । विप्रकृष्टं, विप्रकृष्टस्य, विप्रकृष्टाद् वा ग्रामस्य । अन्ति कस्य, अन्तिकाद् वा ग्रामस्य । समीपं, समीपस्य समीपाद् वा

भाषार्थः—[*दूरान्तिकार्थैभ्यः*] दूर अर्थ वाले तथा समीप शब्दों से [*द्वितीया*] द्वितीया विभक्ति होती है, [च] और ष षष्ठी भी होती है, तथा अन्यतरस्याम् की अनुवृत्ति होने से पञ्चमी भी होती है ॥ इस प्रकार तीन रूप बनते हैं। पूर्व अन्तिक के योग में षष्ठी विकल्प से कही थी तथा यहाँ दूरान्ति से द्वितीयादि कहा है, यह भेद है ॥

यहाँ से '*दूरान्तिकार्थैभ्यः*' की अनुवृत्ति २।३।३६ तक जाती

सप्तम्यधिकरणे च ॥२।३।३६॥

सप्तमी १।१॥ अधिकरणे ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—दूरान्ति अनभिहिते ॥ अर्थः—अनभिहितेऽधिकरणे सप्तमी विभ चकाराद् दूरान्तिकार्थैभ्यश्च ॥ उदा०—कटे आस्ते । शकटे स्थाल्यां पचति । दूरान्तिकार्थैभ्यः—दूरे ग्रामस्य । विप्रकृष्टे अन्तिके ग्रामस्य । अभ्याशे ग्रामस्य ॥

---

१. यहाँ काशिकादियों में षष्ठी की अनुवृत्ति न लाकर तृतीया का किया है। सो प्रयोगाधीन जानना चाहिये ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—अनभिहित [*अधिकरणे*] अधिकरण में [*सप्तमी*] सप्तमी विभक्ति होती है तथा [च] चकार से दूरान्तिकार्थक शब्दों से भी होती है ॥ *आधारोऽधिकरणम्* (१।४।४५) से अधिकरण संज्ञा कही है, उस अधिकरण में यहाँ सप्तमी विभक्ति कह दी है ॥

उदा०—कटे आस्ते (चटाई पर बैठता है)। शकटे आस्ते (गाड़ी में बैठता है)। स्थाल्यां पचति (बटलोई में पकाता है)। दूरान्तिकार्थों —दूरे ग्रामस्य। विप्रकृष्टे ग्रामस्य। अन्तिके ग्रामस्य। अभ्याशे ग्रामस्य ॥

यहाँ से '*सप्तमी*' की अनुवृत्ति २।३।४१ तक जायगी ॥

यस्य च भावेन भावलक्षणम् ॥२।३।३७॥

यस्य ६।१॥ च अ० ॥ भावेन ३।१॥ भावलक्षणम् १।१॥ स०—भावस्य लक्षणम् = भावलक्षणम्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—सप्तमी ॥ अर्थः—यस्य च भावेन = क्रियया, भावः = क्रियान्तरं लक्ष्यते तस्मात् सप्तमी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—गोषु दुह्यमानासु गतः। दुग्धासु आगतः। अग्निषु हूयमानेषु गतः। हुतेष्वागतः ॥

भाषार्थः—[*यस्य*] जिसकी [*भावेन*] क्रिया से कोई [*भावलक्षणम्*] दूसरी क्रिया लक्षित की जाय, उसमें [च] भी सप्तमी विभक्ति होती है ॥ इस सूत्र में भाव का अर्थ क्रिया है ॥

उदा०—गोषु दुह्यमानासु गतः (गौओं के दोहन काल में गया था)। दुग्धासु आगतः (दोहन काल के पश्चात् आ गया)। अग्निषु हूयमानेषु गतः (यज्ञ काल में गया था)। हुतेष्वागतः (यज्ञ काल के पश्चात् आ गया) ॥

उदाहरण में गौ की दोहन क्रिया से गमन क्रिया (जाना) लक्षित की जा रही है, अतः उसमें सप्तमी हो गई है, इसी प्रकार और उदाहरणों में भी समझें ॥

यहाँ से इस सारे सूत्र की अनुवृत्ति २।३।३८ तक जायगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

षष्ठी चानादरे ॥२।३।३८॥

षष्ठी १।१॥ च अ० ॥ अनादरे ७।१॥ स०—न आदरः तस्मिन् अनादरे नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—यस्य च भावेन भावलक्षणम् सप्तमी ॥ अर्थः—यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते, ततोऽनादरे षष्ठी विभक्तिर्भवति, चकारात् सप्तमी च ॥ उदा०—रुदतः प्राव्राजीत् रुदति प्राव्राजीत् । क्रोशतः प्राव्राजीत् । क्रोशति प्राव्राजीत् ॥

भाषार्थः—जिसकी क्रिया से क्रियान्तर लक्षित हो उसमें, अनादर गम्यमान होने पर [षष्ठी] षष्ठी तथा [च] चकार से विभक्ति भी होती है ॥

उदा०—रुदतः प्राव्राजीत् (रोते हुए को छोड़ कर बिना परि परिव्राजक बन गया) । रुदति प्राव्राजीत् । क्रोशतः प्राव्राजीत् (चि हुये को छोड़ कर परिव्राजक बन गया) । क्रोशति प्राव्राजीत् ॥ क्रोशन क्रिया से क्रियान्तर उसका, जाना लक्षित हो रहा है तथा भी प्रकट हो रहा है, सो षष्ठी सप्तमी विभक्ति हो गई ॥

यहाँ से 'षष्ठी' की अनुवृत्ति २।३।४१ तक जायगी ॥

स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च ॥२।३।३९॥

स्वामीश्व···प्रसूतैः ३।३॥च अ०॥ स०—स्वामी च ईश्वरश्च अधि दायादश्च साक्षी च प्रतिभूश्च प्रसूतश्चेति, स्वामीश्वराधिपति क्षिप्रतिभूप्रसूताः, तैः·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—षष्ठी, अर्थः—स्वामिन् , ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षिन् , प्रतिभू इत्येतैः शब्दैर्योगे, षष्ठीसप्तम्यौ विभक्ती भवतः ॥ उदा०—गवां गोषु स्वामी । गवाम् ईश्वरः, गोषु ईश्वरः । गवाम् अधिपतिः, गोषु अधिपतिः । गवां दायादः, गोषु दायादः । गवां साक्षी, गवां प्रतिभूः, गोषु प्रतिभूः । गवां प्रसूतः, गोषु प्रसूतः ॥

भाषार्थः—[स्वामी·····प्रसूतैः] स्वामी, ईश्वर, अधिपति, साक्षी, प्रतिभू , प्रसुत इन शब्दों के योग में [च] भी षष्ठी और विभक्ति होती हैं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—गवां स्वामी (गौओं का स्वामी)। गोषु स्वामी। गवाम् ईश्वरः गौओं का मालिक)। गोषु ईश्वरः। गवाम् अधिपतिः (गौओं का मालिक)। गोषु अधिपतिः। गवां दायादः (गौ रूपी पैतृक धन का अधिकारी)। गोषु दायादः। गवां साक्षी (गौओं का साक्षी)। गोषु साक्षी। गवां प्रतिभूः (गौओं का जामिन)। गोषु प्रतिभूः। गवां प्रसूतः (गौओं का बछड़ा)। गोषु प्रसूतः ॥

आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् ॥२।३।४०॥

आयुक्तकुशलाभ्यां ३।२॥ च अ० ॥ आसेवायाम् ७।१॥ स०—आयुक्तश्च कुशलश्च, आयुक्तकुशलौ, ताभ्याम्.....इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—षष्ठी, सप्तमी ॥ अर्थः—आसेवायां गम्यमानायाम्, आयुक्त, कुशल इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां योगे षष्ठीसप्तम्यौ विभक्ती भवतः॥ उदा०—आयुक्तः कटकरणस्य। आयुक्तः कटकरणे। कुशलः कटकरणस्य। कुशलः कटकरणे ॥

भाषार्थः—[*आयुक्तकुशलाभ्याम्*] आयुक्त तथा कुशल शब्दों के योग में [च] भी [*आसेवायाम्*] आसेवा = तत्परता गम्यमान हो तो षष्ठी सप्तमी विभक्ति हो जाती हैं ॥

उदा०—आयुक्तः कटकरणस्य (चटाई बनाने में लगा है)। आयुक्तः कटकरणे। कुशलः कटकरणस्य (चटाई बनाने में होशियार है)। कुशलः कटकरणे ॥

यतश्च निर्द्धारणम् ॥२।३।४१॥

यतः अ० ॥ च अ० ॥ निर्द्धारणम् १।१॥ अनु०—षष्ठी, सप्तमी ॥ अर्थः—यतः = यस्मात् निर्द्धारणम् (जातिगुणक्रियाभिः, समुदायाद् एकस्य पृथक्करणम्) भवति, तस्मात् षष्ठीसप्तम्यौ विभक्ती भवतः॥ उदा०—मनुष्याणां क्षत्रियः शूरतमः। मनुष्येषु क्षत्रियः शूरतमः। गवां कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमा। गोषु कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमा। अध्वगानां धावन्तः शीघ्रतमाः। अध्वगेषु धावन्तः शीघ्रतमाः ॥

भाषार्थः—[*यतः*] जिससे [*निर्द्धारणम्*] निर्द्धारण हो उसमें [च] षष्ठी सप्तमी विभक्ति होती हैं॥ उदाहरण में मनुष्य गौ तथा

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दौड़ते हुओं से, निर्द्धारण किया जा रहा है, अतः षष्ठी समा
हैं ॥ यहाँ षष्ठी समास का निषेध *न निर्द्धारणे* (२।२।१०) से हु

यहाँ से '*यतश्च निर्द्धारणम्*' की अनुवृत्ति २।३।४२ तक जा

पञ्चमी विभक्ते ॥२।३।४२॥

पञ्चमी १।१॥ विभक्ते ७।१॥ अनु०—यतश्च निर्द्धारणम्॥
यस्मिन् निर्द्धारणे विभागो भवति, तत्र पञ्चमी विभक्तिर्भवति॥
माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः सुकुमारतराः। पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्य

भाषार्थः—जिस निर्द्धारण में [*विभक्ते*] विभाग किया जा
[*पञ्चमी*] पञ्चमी विभक्ति होती है ॥ ऊपर के सूत्र का यह अप

उदा०—माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः सुकुमारतराः (मथुरा
पटना वालों से अधिक सुकुमार हैं)। पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्यतरा

मथुरा और पाटलिपुत्र वालों का यहाँ विभाग है, तथा
भी है ॥

साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः ॥२।३।४३॥

साधुनिपुणाभ्याम् ३।२॥ अर्चायां ७।१॥ सप्तमी १।१॥ अप्र
स०—साधुश्च निपुणश्च, साधुनिपुणौ, ताभ्याम्·····इतरेतरद्व
प्रतिः अप्रतिस्तस्य··· ···नञ्तत्पुरुषः॥ अर्थः—अर्चायाम् = सत्कार
माने साधुनिपुणशब्दाभ्यां योगे सप्तमी विभक्तिर्भवति, न चे
प्रयोगो भवेत् ॥ उदा०—मातरि साधुः। पितरि साधुः। मातरि
पितरि निपुणः ॥

भाषार्थः—[*अर्चायाम्*] अर्चा = सत्कार गम्यमान होने प
निपुणाभ्याम्] साधु, निपुण शब्दों के योग में [*अप्रतेः*] प्रति
न हो तो [*सप्तमी*] सप्तमी विभक्ति होती है ॥

उदा०—मातरि साधुः (माता के प्रति साधु है)। पितरि
मातरि निपुणः (माता के प्रति कुशल है)। पितरि निपुणः ॥

यहाँ से '*सप्तमी*' की अनुवृत्ति २।३।४५ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ॥२।३।४४॥

प्रसितोत्सुकाभ्यां ३।२॥ तृतीया १।१॥ च अ०॥ स०—प्रसितश्च उत्सुकश्च, प्रसितोत्सुकौ, ताभ्यां·····इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—सप्तमी॥ अर्थः—प्रसित, उत्सुक इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां योगे तृतीया विभक्तिर्भवति, चकारात् सप्तमी च॥ उदा०—केशैः प्रसितः। केशेषु प्रसितः। केशैरुत्सुकः। केशेषूत्सुकः॥

भाषार्थः—[*प्रसितोत्सुकाभ्याम्*] प्रसित उत्सुक इन शब्दों के योग [*तृतीया*] तृतीया विभक्ति होती है [च] तथा चकार से सप्तमी भी होती है॥ उदा०—केशैः प्रसितः (केशों को सम्हालने में लगा रहने वाला)। केशेषु प्रसितः। केशैरुत्सुकः (केशों के लिये उत्सुक)। केशेषूत्सुकः॥

यहाँ से '*तृतीया*' की अनुवृत्ति २।३।४५ तक जायगी॥

नक्षत्रे च लुपि ॥२।३।४५॥

नक्षत्रे ७।१॥ च अ०॥ लुपि ७।१॥ अनु०—तृतीया, सप्तमी॥ अर्थः—लुबन्तात् नक्षत्रशब्दात् तृतीयासप्तम्यौ विभक्ती भवतः॥ उदा०—पुष्येण पायसमश्नीयात्। पुष्ये पायसमश्नीयात्॥

भाषार्थः—[*लुपि*] लुबन्त [*नक्षत्रे*] नक्षत्रवाची शब्द से [च] भी तृतीया और सप्तमी विभक्ति होती हैं॥ नक्षत्रवाची शब्द से जहाँ काल अर्थ में प्रत्यय आकर लुप् हो जाता है, उसका इस सूत्र में ग्रहण है।

उदा०—पुष्येण पायसमश्नीयात् (पुष्य नक्षत्र से युक्त काल में खीर खावे)। पुष्ये पायसमश्नीयात्॥

पुष्य शब्द से *नक्षत्रेण युक्तः कालः* (४।२।३) से अण् प्रत्यय होकर, *लुबविशेषे* (४।२।४) से उस अण् का लुप् हो गया है, अतः यह लुबन्त नक्षत्रवाची शब्द है, सो तृतीया सप्तमी हो गई हैं॥

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ॥२।३।४६॥

प्रातिपदि·····मात्रे ७।१॥ प्रथमा १।१॥ स०—प्रातिपदिकस्य अर्थः प्रातिपदिकार्थः, षष्ठीतत्पुरुषः। प्रातिपदिकार्थश्च, लिङ्गञ्च परिमाणञ्च, वचनञ्च,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनं, समाहारो द्वन्द्वः। प्रातिपदिक परिमाणवचनञ्चादः मात्रञ्च = प्राति····वचनमात्रं तस्मिन्··· तत्पुरुषः, द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते, इत्येवम् मात् मात्रशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते ॥ अर्थः—प्रातिपदिकार्थः लिङ्गं = स्त्रीपुंनपुंसकानि। परिमाणं = तोलनम्। वचनम्=ए बहवः॥ प्रातिपदिकार्थमात्रे, लिङ्गमात्रे, परिमाणमात्रे, वचनमात्रे विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—प्रातिपदिकार्थमात्रे—उच्चैः, नीचैः मात्रे—कुमारी, वृक्षः, कुण्डम्। परिमाणमात्रे—द्रोणः, खारी, वचनमात्रे—एकः, द्वौ, बहवः ॥

भाषार्थः—[*प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे*] प्रातिपदिक लिङ्गमात्र, परिमाणमात्र तथा वचनमात्र में [*प्रथमा*] प्रथमा होती है ॥

विशेषः—यहाँ इतनी बात समझने की है कि प्रातिपदिक है? प्रातिपदिकार्थ पञ्चक (सत्ता, द्रव्य, लिङ्ग, सङ्ख्या, त्रिक (सत्ता, द्रव्य, लिङ्ग) तथा द्विक (सत्ता, द्रव्य) को भी जब पञ्चक प्रातिपदिकार्थ मानेंगे तो लिङ्गादि के पृथक् ग्रहण आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि वे सब प्रातिपदिकार्थ गये। जब द्विक मानेंगे तो बाकी सब पृथक् पृथक् कहने पड़ेंगे मात्र का यहाँ अर्थ यह है कि 'जहाँ प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त भी अधिकता हो, परिमाण की भी अधिकता हो' सो लिङ्गाधिक्ये, परिमाणाधिक्ये आदि अर्थ हुआ ॥

यहाँ से '*प्रथमा*' की अनुवृत्ति २।३।४८ तक जायगी ॥

सम्बोधने च ॥२।३।४७॥

सम्बोधने ७।१॥च अ०॥ सम्यग् बोधनं, सम्बोधनं, तस्मिन् अनु०-प्रथमा ॥ अर्थः—सम्बोधने च प्रथमा विभक्तिर्भवति ॥ देवदत्त, हे देवदत्तौ, हे देवदत्ताः ॥

भाषार्थः—[*सम्बोधने*] सम्बोधन में [च] भी प्रथमा विभक्ति इस प्रकार सु औ जस् सम्बोधन विभक्ति में भी आते हैं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वस्था में सम्बोधन संज्ञा होने से २।३।४६ से सम्बुद्धि संज्ञा हो तथा सम्बुद्धि संज्ञा होने से एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः (६।१।६७) से सु प हो गया है ॥

सामन्त्रितम् ॥२।३।४८॥

सा १।१॥ आमन्त्रितम् १।१॥ अनु०—प्रथमा ॥ अर्थः—सा इत्यनेन धने या प्रथमा सा निर्दिश्यते ॥ सम्बोधने या प्रथमा, तदन्तं रूपं आमन्त्रितसञ्ज्ञं भवति ॥ उदा०—अग्ने ॥

भाषार्थः—[सा] सम्बोधन में जो प्रथमा उसकी [आमन्त्रितम्] न्त्रित संज्ञा होती है ॥ आमन्त्रित संज्ञा होने से आमन्त्रितस्य च १।१९२) से अग्ने को आद्युदात्त हो गया है। आमन्त्रित संज्ञा होने अन्यत्र पद से उत्तर अष्टमाध्याय का आमन्त्रितस्य च (८।१।१९) लगता है ॥

यहाँ से 'आमन्त्रितम्' की अनुवृत्ति २।३।४९ तक जायेगी ॥

एकवचनं सम्बुद्धिः ॥२।३।४९॥

एकवचनम् १।१॥ सम्बुद्धिः १।१ ॥ अनु०—आमन्त्रितम् ॥ अर्थः—मन्त्रितप्रथमाविभक्तेर्यद् एकवचनं तत्सम्बुद्धिसञ्ज्ञकं भवति ॥ ा०—अग्ने । वायो । देवदत्त ॥

भाषार्थः—आमन्त्रित सञ्ज्ञक प्रथमा विभक्ति के [एकवचनम्] एक चन की [सम्बुद्धिः] सम्बुद्धि संज्ञा होती है ॥ अग्ने, वायो में ह्रस्वस्य णः (७।३।१०८) से गुण तथा सम्बुद्धि संज्ञा होने से एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ।१।६७) से सु का लोप हो गया है ॥

षष्ठी शेषे ॥२।३।५०॥

षष्ठी १।१॥ शेषे ७।१॥ अर्थः—कर्मादीनि कारकाणि यत्र न विवक्ष्यन्ते शेषः । शेषे षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—राज्ञः पुरुषः । कार्षापणस्य म् । वृक्षस्य शाखा ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—कर्मादि कारक जहाँ विवक्षित न हों वह शेष में [*षष्ठी*] षष्ठी विभक्ति होती है ॥ उदा०—राज्ञः पुरुषः (राजा का पुरुष)। कार्पासस्य वस्त्रम् (रुई का वस्त्र)। वृक्षस्य शाखा (वृक्ष की शाखा) ॥

यहाँ से '*षष्ठी शेषे*' की अनुवृत्ति पाद के अन्त तक जिन-जिन सूत्रों में 'शेषे' अधिकार लगेगा, वहाँ अधिकार नहीं लगेगा, ऐसा जानें ॥

ज्ञोऽविदर्थस्य करणे ॥२।३।५१॥

ज्ञः ६।१॥ अविदर्थस्य ६।१॥ करणे ७।१॥ *स०*—विदेरर्थः षष्ठीतत्पुरुषः, न विदर्थः, अविदर्थः, तस्य ·····नञ्तत्पुरुषः। *षष्ठी शेषे* ॥ *अर्थः*—अविदर्थस्य = अज्ञानार्थस्य ज्ञाधातोः, शेषे विवक्षिते षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—सर्पिषो जानीते ॥

भाषार्थः—[*अविदर्थस्य*] अज्ञानार्थक जो [ज्ञः] ज्ञा [*करणे*] करण कारक में शेष विवक्षित होने पर षष्ठी वि है ॥ घी को मानकर प्रवृत्ति हो रही है, घी है नहीं, अ है। *अकर्मकाच्च* (१।३।४५) से जानीते में आत्मनेपद हु सर्वत्र इसलिए कहते हैं कि कारक विवक्षाधीन हैं, सो किसी विवक्षा न हो, तब शेष विवक्षित होने पर षष्ठी होगी ॥

अधीगर्थदयेशां कर्मणि ॥२।३।५२॥

अधीगर्थदयेशाम् ६।३॥ कर्मणि ७।१॥ *अनु०*—ष *स०*—अधीग् अर्थो येषां धातूनां ते अधीगर्थाः, दयश्च, ईश् च, अधीगर्थदयेशः, तेषां ·····बहुव्रीहिगर्भ *अर्थः*—अधीगर्थ, = स्मरणार्थक दय, ईश इत्येतेषां धातूनां कर्मणि कारके षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—मातुरध्येति स्मरति। सर्पिषो दयते। सर्पिष ईष्टे ॥

भाषार्थः—[*अधीगर्थदयेशाम्*] अधि पूर्वक इक् धातु वाली धातुओं के, तथा दय, और ईश धातुओं के [कर्म] कारक में, शेष विवक्षित होने पर षष्ठी विभक्ति होती है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

धातु स्मरण अर्थ में होती है ॥ उदा०—मातुरध्येति (माता का ण करता है) । मातुः स्मरति । सर्पिषो दयते । (घी देता है) । सर्पिष (घी पर अधिकार करता है) ॥

यहाँ से 'कर्मणि' की अनुवृत्ति २।३।६१ तक जायगी ॥

कृञः प्रतियत्ने ॥२।३।५३॥

कृञः ६।१॥ प्रतियत्ने ७।१॥ अनु०—कर्मणि, षष्ठी शेषे ॥ अर्थः—कृ धातोः कर्मणि कारके शेषत्वेन विवक्षिते प्रतियत्ने गम्यमाने षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—एधश्च उदकञ्च एधोदकं, तत् एधोदकम् (तीयान्तम्) अत्रानेन सूत्रेण कर्मणि षष्ठी—एधोदकस्य उपस्कुरुते ।

भाषार्थः—[कृञः] कृञ् धातु के कर्म में शेष विवक्षित होने [प्रतियत्ने] प्रतियत्न गम्यमान हो तो षष्ठी विभक्ति होती है ॥ प्रतियत्न किसी गुण को किसी और रूप में बदलने को कहते हैं ॥

उदा०—एधोदकस्य उपस्कुरुते । (ईंधन और जल के गुण को बदलता है) ॥

रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः ॥२।३।५४॥

रुजार्थानाम् ६।३॥ भाववचनानाम् ६।३॥ अज्वरेः ६।१॥ स०—रुजार्था येषां ते रुजार्थाः तेषां·····बहुव्रीहिः । भावो वचनः (कर्त्ता) येषां ते भाववचनाः तेषाम्·····बहुव्रीहिः । न ज्वरिः अज्वरिः तस्य अज्वरेः, नञ्तत्पुरुषः ॥ वक्तीति वचनः कर्त्तरि ल्युट्, तेन वचनशब्दस्य कर्त्तरि पर्यायम् ॥ अनु०—कर्मणि षष्ठी शेषे ॥ अर्थः—भाववचनानां = भावकर्त्तृकाणां रुजार्थानां धातूनां ज्वरवर्जितानाम्, कर्मणि कारके शेषे विवक्षिते, षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—चौरस्य रुजति रोगः । चौरस्य आमयति आमयः ॥

भाषार्थः—[भाववचनानाम्] धात्वर्थ को कहने वाले जो घञादि प्रत्ययान्त शब्द, वे हैं कर्त्ता जिन [रुजार्थानाम्] रुजार्थक धातुओं का, उनके कर्म में शेष विवक्षित होने पर षष्ठी विभक्ति होती

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

है [अज्वरेः] ज्वर धातु को छोड़कर ॥ उदा०—चौरम् रोगः (रोग चोर को कष्ट देता है)। चौरस्य आमयति आमः ॥ भाववचन का अर्थ भावकर्त्तृक है। भाव का अर्थ हुआ वचन का तात्पर्य कर्त्ता से है, सो उदाहरण में 'रुज्' धातु भोगना जो धात्वर्थ है, वह घञ् प्रत्ययान्त 'रोग' शब्द से रहा है, तथा रोग शब्द रुजति का कर्त्ता है, अतः चौर हो गई है ॥

आशिषि नाथः ॥२।३।५५॥

आशिषि ७।१॥ नाथः ६।१॥ अनु०—कर्मणि, षष्ठी शेषे। आशिषि वर्त्तमानस्य नाथधातोः, कर्मणि कारके, शेषे विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—सर्पिषो नाथते। मधुनो नाथते॥

भाषार्थः—[*आशिषि*] आशीर्वचन अर्थ में [*नाथः*] कर्म में शेष विवक्षित होने पर षष्ठी विभक्ति होती है॥ का अर्थ इच्छा है॥ उदा०—सर्पिषो नाथते (घी की इच्छा मधुनो नाथते (शहद की इच्छा करता है) ॥

जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् ॥२।३।५६॥

जासिनि ···पिषाम् ६।३॥ हिंसायाम् ७।१॥ स०—जासिश्च नाटश्च क्राथश्च पिष् च, जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषः, ·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणि, षष्ठी शेषे ॥ ताडने चुरादौ पठ्यते, तस्येदं ग्रहणम्। निप्रहण = निपूर्वस्य हन धातोः, नाट, क्राथ, पिष इत्येतेषां च हिंसा कर्मणि कारके शेषे विवक्षिते षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा० उज्जासयति, दुष्टस्य निप्रहन्ति, वृषलस्य निहन्ति, चौरस्य प्रहन्ति विगृहीतस्य नि, प्र इत्येतस्य ग्रहणम्। चौरस्य उन्नाटयति क्राथयति। चौरस्य पिनष्टि ॥

भाषार्थः—[*हिंसायाम्*] हिंसा क्रिया वाली [*जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषाम्*] जसु ताडने, नि, प्र पूर्वक हन, ण्यन्त नट, एवं क्रा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ओं के कर्म में शेष विवक्षित होने पर षष्ठी विभक्ति होती
। उदा०—चौरस्य उज्जासयति (चोर को मारता है)। दुष्टस्य
हन्ति (दुष्ट को मारता है)। वृषलस्य निहन्ति (नीच को मारता
। चौरस्य प्रहन्ति (चोर को मारता है)। चौरस्य उन्नाटयति (चोर
नष्ट करता है)। चौरस्य क्राथयति (चोर को मारता है)। चौरस्य
ष्टि (चोर को मार-मार कर पीसता है)॥ नट क्रथ धातु घटादि गण
पढ़ी हैं, सो *घटादयो मितः*, (धातुपाठ भ्वादिगण का सूत्र पृ० १२)
मित् होकर *मितां ह्रस्वः* (६।४।९२) से ह्रस्व प्राप्त था, पर यहाँ
यातन से वृद्धि हो जाती है। उदाहरण में चोर कर्म था, सो यहाँ
हो गई है॥

व्यवहृपणोः समर्थयोः ॥२।३।५७॥

व्यवहृपणोः ६।२॥ समर्थयोः ६।२॥ *स०*—व्यवहृ च पणश्च
वहृपणौ तयोः.....इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—कर्मणि, षष्ठी
ष॥ *अर्थः*—वि अव पूर्वको यो हृञ् धातुः पण धातुश्च, इत्येतयोः
मर्थयोः कर्मणि कारके शेषत्वेन रनभिहिते विवक्षिते षष्ठी विभक्ति-
वति॥ *उदा०*—शतस्य व्यवहरति। सहस्रस्य व्यवहरति। शतस्य
ते। सहस्रस्य पणते॥

भाषार्थः—[*व्यवहृपणोः*] वि अव पूर्वक हृ धातु तथा पण
तु [*समर्थयोः*] समर्थ = समानार्थक हों तो उनके कर्म में शेष
वक्षित होने पर षष्ठी विभक्ति होती है॥ वि अव पूर्वक हृ धातु
वहारार्थक है, तथा पण धातु भी व्यवहार अर्थ वाली ली गई है,
दोनों समानार्थक हैं॥ *उदा०*—शतस्य व्यवहरति (सौ रुपये व्यव-
र में लाता है)। सहस्रस्य व्यवहरति। शतस्य पणते (सौ रुपये व्यव-
र में लाता है)। सहस्रस्य पणते॥

दिवस्तदर्थस्य ॥२।३।५८॥

दिवः ६।१॥ तदर्थस्य ६।१॥ *स०*—सः (व्यवहारः) अर्थो यस्य, स
र्थः, तस्य.....षष्ठीतत्पुरुषः॥ *अनु०*—कर्मणि, षष्ठी, अन-
हिते॥ *अर्थः*—तदर्थस्य = व्यवहारार्थस्य दिव्धातोः अनभिहिते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कर्मणि कारके शेषे विवक्षिते षष्ठी विभक्तिर्भवति। उदा० दीव्यति। सहस्रस्य दीव्यति॥

भाषार्थः—[*तदर्थस्य*] व्यवहारार्थक [*दिवः*] दिव धा भिहित कर्म में शेष विवक्षित होने पर षष्ठी विभक्ति होती है। यहाँ द्यू पण् धातुओं का जो व्यवहार अर्थ है, वह लिया गया

उदा०—शतस्य दीव्यति (सौ रुपये व्यवहार में ल सहस्रस्य दीव्यति॥

यहाँ से '*दिवस्तदर्थस्य*' की अनुवृत्ति २।३।६० तक जायेगी

विभाषोपसर्गे ॥२।३।५९॥

विभाषा १।१॥ उपसर्गे ७।१॥ अनु०—दिवस्तदर्थस्य, कर्म अनभिहिते॥ *अर्थः*—तदर्थस्य दिव्धातोः सोपसर्गे यदि हिते कर्मणि कारके शेषे विवक्षिते विभाषा षष्ठी विभक्तिर्भवति नित्यं प्राप्ते विकल्प्यते॥ उदा०—शतस्य प्रतिदीव्यति। दीव्यति। सहस्रस्य प्रतिदीव्यति। सहस्रं प्रतिदीव्यति॥

भाषार्थः—व्यवहारार्थक दिव् धातु [*उपसर्गे*] सोपसर्ग हो भिहित कर्म कारक में शेष विवक्षित होने पर [*विभाषा*] विक विभक्ति होती है, पक्ष में यथाप्राप्त द्वितीया होती है॥

द्वितीया ब्राह्मणे ॥२।३।६०॥

द्वितीया १।१॥ ब्राह्मणे ७।१॥ अनु०—दिवस्तदर्थस्य, कर्म अनभिहिते॥ *अर्थः*—ब्राह्मणविषयके प्रयोगे, तदर्थस्य अनभिहिते कर्मणि कारके द्वितीया विभक्तिर्भवति॥ उदा० तदहः सभायां दीव्येयुः॥

भाषार्थः—[*ब्राह्मणे*]ब्राह्मण विषयक प्रयोग में व्यवहा धातु के कर्म में [*द्वितीया*] द्वितीया विभक्ति होती है॥ कर्म तो होती ही है, पुनर्वचन, पूर्व सूत्रों से जो षष्ठी प्राप्त थी के लिए है, अतः 'गाम्' में यहाँ षष्ठी न होकर द्वितीया हो

यहाँ से '*ब्राह्मणे*' की अनुवृत्ति २।३।६१ तक जायगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Initiative

प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासम्प्रदाने ॥२।३।६१॥

प्रेष्यब्रुवोः ६।२॥ हविषः ६।१॥ देवतासम्प्रदाने ७।१॥ स०—प्रेष्यश्च च, प्रेष्यब्रुवौ, तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः। देवताभ्यः सम्प्रदानं देवता-प्रदानं, तस्मिन्·····चतुर्थीतत्पुरुषः॥ अनु०—ब्राह्मणे, कर्मणि, ठी अनभिहिते॥ अर्थः—प्रेष्यब्रुवोर्हविषः कर्मणः देवतासम्प्रदाने ति ब्राह्मणविषये षष्ठी विभक्तिर्भवति॥ उदा०—अग्नये छागस्य हविषो ाया मेदसः प्रेष्य। अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसोऽनुब्रूहि॥

भाषार्थः—[प्रेष्यब्रुवः] प्र पूर्वक इष धातु (दिवादि गण वाली) तथा धातु के [हविषः] हवि कर्म में, ब्राह्मण विषयक प्रयोग में [देवतासम्प्र-ने] देवताओं को सम्प्रदान = देने अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है॥

चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि ॥२।३।६२॥

चतुर्थ्यर्थे ७।१॥ बहुलम् १।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—षष्ठी॥ अर्थः—न्दसि विषये चतुर्थ्यर्थे बहुलं षष्ठी विभक्तिर्भवति॥ उदा०—दार्वाघाट-वनस्पतीनाम्। (यजु० २४।३५॥ तै० ५।५।१५।१॥ मै०३।१४।१६)। वनस्पतिभ्यः' एवं प्राप्ते॥ रात्र्यै हिमवतो हस्ती॥

भाषार्थः—[चतुर्थ्यर्थे] चतुर्थी के अर्थ में [छन्दसि] वेद विषय में हुलम्] बहुल करके षष्ठी विभक्ति होती है॥ बहुल कहने से 'रात्र्यै' हाँ षष्ठी नहीं होती है॥

यहाँ से 'बहुलं छन्दसि' की अनुवृत्ति २।३।६३ तक जायगी॥

यजेश्च करणे ॥२।३।६३॥

यजेः ६।१॥ च अ०॥ करणे ७।१॥ अनु०—बहुलं छन्दसि, षष्ठी, नभिहिते॥ अर्थः—यजधातोः, अनभिहिते करणे कारके वेदविषये हुलं षष्ठी विभक्तिर्भवति॥ उदा०—घृतस्य यजते (कौषी० १६।५॥ श० ४।२।४)। घृतेन यजते। सोमस्य यजते। सोमेन यजते॥

भाषार्थः—[यजेः] यज धातु के [च] भी अनभिहित [करणे] करण रक में वेदविषय में बहुल करके षष्ठी विभक्ति होती है॥ करण में तीया प्राप्त थी, बहुल कहने से पक्ष में वह भी हो गई॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे ॥२।३।६४॥

कृत्वोऽर्थप्रयोगे ७।१॥ काले ७।१॥ अधिकरणे ७।१॥ स० सोऽर्थः, कृत्वोर्थः षष्ठीतत्पुरुषः। कृत्वोर्थ एव अर्थो येषां ते कृत्वोऽर्थाः, बहुव्रीहिः। कृत्वोऽर्थस्य प्रयोगः, कृत्वोऽर्थप्रयोगः ……षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—षष्ठी शेषे, अनभिहिते॥ अर्थानां प्रत्ययानां प्रयोगे, अनभिहिते काले अधिकरणे षष्ठी विभक्तिः उदा०—पञ्चकृत्वोऽह्नो भुङ्क्ते। द्विरह्नोऽधीते। दिवसस्य भुङ्क्ते॥

भाषार्थः—[*कृत्वोऽर्थप्रयोगे*] कृत्वसुच् प्रत्यय के अर्थ में जो प्रत्यय हैं, तदन्त प्रातिपदिकों के प्रयोग में [*काले*] अनभिहित [*अधिकरणे*] अधिकरण उनमें षष्ठी विभक्ति अधिकरण में सप्तमी प्राप्त थी, उसका यह अपवाद है॥

उदा०—पञ्चकृत्वोऽह्नो भुङ्क्ते (दिन में ५ बार खाता है) होऽधीते (दिन में दो बार पढ़ता है)। दिवसस्य पञ्चकृत्वो

अहन् तथा दिवस शब्द कालवाची अधिकरण हैं, गई है॥ *संख्याया: क्रियाभ्या०* (५।४।१७) से पञ्चकृत्वः में तथा द्विर् में *द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्* (५।४।१८) से कृत्वोर्थ में हुआ है॥

कर्तृकर्मणोः कृति ॥२।३।६५॥

कर्तृकर्मणोः ७।२॥ कृति ७।१॥ स०—कर्त्ता च कर्म च, तयोः……इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—षष्ठी, अनभिहिते॥ प्रयोगे अनभिहिते कर्त्तरि, कर्मणि च षष्ठी विभक्तिर्भवति॥ कर्त्तरि—भवतः शायिका। भवत आसिका। कर्मणि—पुरां भेत्ता। वज्रस्य भर्त्ता॥

भाषार्थः—अनभिहित [*कर्तृकर्मणोः*] कर्त्ता और कर्म में कृत् का प्रयोग होने पर षष्ठी विभक्ति होती है॥ से कृत् संज्ञक ण्वुच् प्रत्यय (३।३।१११) शायिका आदि में तृच् प्रत्यय स्रष्टा आदि में हुआ है, सो इनके कर्त्ता और हो गई है। पूरी सिद्धि परि० २।२।१६ में देखें॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'कृति' की अनुवृत्ति २।३।६६ तक जायगी ॥

उभयप्राप्तौ कर्मणि ॥२।३।६६॥

उभयप्राप्तौ ७।१॥ कर्मणि ७।१॥ स०—उभयोः (कर्त्तृकर्मणोः) प्राप्ति-स्मिन् (कृति), सोऽयमुभयप्राप्तिः, तस्मिन्····· ·····बहुव्रीहिः॥ अनु०—ति, षष्ठी, अनभिहिते ॥ अर्थः—उभयोः कर्त्तृकर्मणोः प्राप्तिर्यस्मिन् ति तत्रानभिहिते कर्मण्येव षष्ठी विभक्तिर्भवति, न कर्त्तरीति नियम्यते ॥ दा०—आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपालकेन। रोचते ओदनस्य पाको देव-त्तेन ॥

भाषार्थः—पूर्व सूत्र से कर्त्ता और कर्म दोनों में षष्ठी प्राप्त थी, सो हाँ नियम कर दिया कि जिस कृदन्त के योग में [उभयप्राप्तौ] कर्त्ता ौर कर्म दोनों में एक साथ षष्ठी प्राप्त हो, वहाँ अनभिहित [कर्मणि] र्म में षष्ठी हो, कर्त्ता में नहीं॥ उदाहरण में दोहः, पाकः घञ् प्रत्ययान्त दन्त हैं। अगोपालक तथा देवदत्त कर्त्ता हैं, और गौ तथा ओदन कर्म , सो कृत् के योग में दोनों में (कर्त्ता और कर्म में) षष्ठी प्राप्त हुई, तब स सूत्र से कर्म, 'गौ' तथा 'ओदन' में ही षष्ठी हुई, कर्त्ता में कर्तृकरण-तृ० (२।३।१८) से तृतीया हो गई ॥ कर्मणि च (२।२।१४) से गवां हः आदि में षष्ठी समास भी नहीं हुआ ॥

क्तस्य च वर्त्तमाने ॥२।३।६७॥

क्तस्य ६।१॥ च अ० ॥ वर्त्तमाने ७।१॥ अनु०—षष्ठी, अनभिहिते ॥ र्थः—वर्त्तमाने काले विहितस्य क्तप्रत्ययान्तस्य प्रयोगे षष्ठी विभक्ति-वति ॥ उदा०—राज्ञां मतः, राज्ञां बुद्धः, राज्ञां पूजितः ॥

भाषार्थः—[वर्तमाने] वर्त्तमान काल में विहित जो [क्तस्य] क्त प्रत्यय सके प्रयोग में [च] भी षष्ठी विभक्ति होती है ॥ न लोकाव्ययनिष्ठा० ।३।६९) से निष्ठा संज्ञक होने से क्त प्रत्ययान्त के प्रयोग में षष्ठी प्राप्त ी थी, यहाँ वर्त्तमान काल में विहित क्त में प्राप्त करा दी। मति-द्धिपूजार्थेभ्यः (३।२।१८८) से वर्त्तमानकाल में क्त विहित है। निष्ठा (३।२।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

१०२) से भूतकाल में होता है ॥ *क्तेन च पूजायाम्* (२।२।१) हरण में षष्ठी समास का भी निषेध हो गया है ॥

यहाँ से 'क्तस्य' की अनुवृत्ति २।३।६८ तक जायगी ॥

अधिकरणवाचिनश्च ॥२।३।६८॥

अधिकरणवाचिनः ६।१॥च अ०॥ अनु०—क्तस्य, षष्ठी, क अर्थः—अधिकरणवाचिनः क्त प्रत्ययान्तस्य योगे षष्ठी विभ क्तोऽधिकरणे० (३।४।७६) इत्यनेनाधिकरणे क्तो विहितः॥ इदमेषां यातम्। इदमेषां भुक्तम्। इदमेषां शयितम्। इदमेषां

भाषार्थः—[*अधिकरणवाचिनः*] अधिकरणवाची क्त प्रत्यय में [च] भी षष्ठी विभक्ति होती है ॥ इस सूत्र का भी २।३।६ का निषेध प्राप्त होने पर विधान है ॥ *क्तोऽधिकरणे०* अधिकरण में क्त होता है। यहाँ *अधिकरणवाचिना च* से षष्ठी समास का निषेध होता है ॥ उदा०—इदमेषां यातम् भुक्तम्। इदमेषां शयितम् (यह इनके सोने का स्थान)। इद (यह इनके जाने का स्थान) ॥

न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ॥२।३।६९॥

न अ० ॥ लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ६।३॥ स०—खलोऽ खलर्थ एव अर्थो येषां ते खलर्थाः, बहुव्रीहिः। लश्च उश्च उ यश्च निष्ठा च खलर्थश्च तृन्चेति, लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृन ...इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—षष्ठी, अनभिहिते ॥ अर्थः— अव्यय, निष्ठा, खलर्थ, तृन् इत्येतेषां योगे षष्ठी विभक्तिर्न भ ग्रहणेन ये लकारस्य स्थान आदेशाः शतृशानचौ, कानचूकसु च, ते गृह्यन्ते ॥ उदा०—ओदनं पचन्। ओदनं पचमानः। ओदनं पेचानः। क्वसु—ओदनं पेचिवान्। किकिनौ—दि ददिर्गाः। उ—कटं चिकीर्षुः, ओदनं बुभुक्षुः। मुकं वाराणसीं रक्ष आहुः। अव्यय—कटं कृत्वा। ओदनं निष्ठा—कटं कृतवान्। देवदत्तेन कृतम्। खलर्थ—ईषत्करः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

स्यानः सोमो भवता ॥ तृन्—सोमं पवमानः, नटमाघ्नानः । अधीयन् पायणम् । कर्त्ता कटान् । वदिता जनापवादान् ॥ तृन् इत्यनेन प्रत्याग्रहणम्, लटः शतृ० इत्यारभ्य आ तृनो नकारात् ॥

भाषार्थः—[*लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्*] ल, उ, उक, अव्यय, ष्ठा, खलर्थ, तृन् इनके योग में षष्ठी विभक्ति [न] नहीं होती ॥ ये लादेश शतृ शानच् कानच् क्वसु कि किन् इनका ग्रहण है ॥ *कर्मणोः कृति* (२।३।६५) से कर्त्ता कर्म में षष्ठी प्राप्त होने पर इस ने निषेध कर दिया है ॥

उदा०—ओदनं पचन्, ओदनं पचमानः । कानच—ओदनं पेचानः (ने पकाया) । क्वसु—ओदनं पेचिवान् । किकिन्—पपिः सोमम्, र्गाः । उ—कटं चिकीर्षुः (चटाई बनाने की इच्छा वाला) । ओदनं क्षुः (चावल खाने की इच्छा वाला) । उक—आगामुकं वाराणसीं आहुः (राक्षस लोग भी मुक्ति की इच्छा से वाराणसी की ओर आने इच्छा रखते हैं, ऐसा लोग कहते हैं) । अव्यय—कटं कृत्वा (चटाई करके), ओदनं भुक्त्वा । निष्ठा—कटं कृतवान् (चटाई बनाई), देवदत्तेन कृतम् (देवदत्त के द्वारा किया गया) । खलर्थ—ईषत्करः कटो ता (आपको चटाई बनाना आसान है) । ईषत्पानः सोमो भवता आपके द्वारा सोम पीना आसान है) । तृन्—सोमं पवमानः (सोम को वित्र करते हुए) नटमाघ्नानः (नट को मारता हुआ) । अधीयन् रायणम् (पारायण को पढ़ता हुआ) । कर्त्ता कटान् (चटाई को बनाने ला) वदिता जनापवादान् (लोगों की बुराई को कहने वाला) ॥

लटः शतृशान० (३।२।१२४) से लट् के स्थान में शतृ, शानच्, *लिटः नज्वा*, (३।२।१०६) से लिट् के स्थान में कानच् *क्वसुश्च* (३।२।१०७) क्वसु, *आहगमहन०* (३।२।१७१) से कि तथा किन् प्रत्यय लिट् स्थानी अतः ये सब लादेश होने से "ल" कहने से लिए गये हैं ॥ पेचिवान् दि की पूरी सिद्धियाँ तत् तत् सूत्र में ही देखें, यहाँ तो यही दिखाना कि कर्म में (ओदनम् आदि में) जो षष्ठी प्राप्त थी, वह नहीं हुई ॥ *शंसमिक्ष उः* (३।२।१६८) से उ प्रत्यय चिकीर्षुः आदि में हुआ है ॥ पपतपद० (३।२।१५४) से उकञ् जिसको सूत्र में 'उक' कहा है,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

'आगामुकं' में हुआ है ॥ कृत्वा की अव्यय संज्ञा कृ
(१।१।३९) से हुई है ॥ खल् के अर्थ में जो विहित प्रत्यय
कहाये । ईषत्करः में ईषद्दुःसुषु० (३।३।१२६) से खल् तथा
खलर्थ में युच् प्रत्यय हुआ है ॥ तृन् से प्रत्याहार का ग्रह
शतृशानचाव० के तृ से लेकर तृन् के नकार पर्यन्त, अतः तृ
उसके अन्तर्गत जो शानन् चानश् शतृ तृन्, उनका भी
है । पवमानः में पूङ्यजोः शानन् (३।२।१२८) से शान
'आघ्नानः' में आङ् पूर्वक हन् धातु से ताच्छील्यवयो० (३
चानश् प्रत्यय, एवं 'अधीयन्' में इङ्धार्य्योःशत्र० (३।२।१२
प्रत्यय तथा कर्त्ता में आक्वेस्तच्छील० (३।२।१३४) से तृन्
है, ये सब तृन् में प्रत्याहार ग्रहण करने से आ गये ॥ स
तत् तत् सूत्र में ही देखें ॥ सूत्र में उ+उक में अकः सवर्णे
से दीर्घ एकादेश होकर ऊक बना, पुनः आद्गुणः (६।१।८
एकादेश होकर 'लोक' बन गया ॥

यहाँ से 'न' की अनुवृत्ति २।३।७० तक जायगी ॥

अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः ॥२।३।७०॥

अकेनोः ६।२॥ भविष्यदाधमर्ण्ययोः ७।२॥ स०—अक
अकेनौ तयोः····इतरेतरद्वन्द्वः । भविष्यच्च आधमर्ण्यञ्च, भवि
तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—न, षष्ठी, अनभिहिते ॥
भविष्यति आधमर्ण्ये च विहितस्य अकान्तस्य, इन्प्रत्ययान्तस
षष्ठी विभक्तिर्न भवति ॥ उदा०—कटं कारको व्रजति । ओद
व्रजति ॥ अकप्रत्ययस्तु भविष्यत्येव विहितो न त्वाधमर्ण्ये,
मुदाहरणम् आधमर्ण्यस्य ॥ इनः—ग्रामं गमी । ग्रामं गामी ।
शतंदायी । सहस्रंदायी ॥

भाषार्थः—[अकेनोः] अक प्रत्यय तथा इन प्रत्यय जो
धमर्ण्ययोः] भविष्यत् काल तथा आधमर्ण्य अर्थों में विहित
शब्दों के कर्म में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है ॥ यहाँ दो प्रत्य
ही अर्थों के होने से यथासंख्य होना चाहिये सो नहीं हो
व्याख्यान से जानना चाहिये । अक (वु) केवल भविष्यत् काल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तथा 'इन्' भविष्यत् और आधमर्ण्य दोनों में है, सो उसी प्रकार हरण दिये हैं ॥ *उदा०*—कटं कारको व्रजति (चटाई बनाने वाला ता है)। ओदनं भोजको व्रजति ॥ इनि—ग्रामं गमी (गाँव को जाने ा)। ग्रामं गामी। आधमर्ण्ये—शतं दायी (सौ रुपया कर्जा चुकाने ा)। सहस्रं दायी ॥

कारकः आदि में ण्वुल् (३।१।१३३) से हुआ है। गमी में *गमेरिनिः* ा० ४।६) से इनि प्रत्यय हुआ है, जो कि *भविष्यति गम्यादयः* ३।३) सूत्र से भविष्यत् काल में विहित है। दायी में *आवश्य-मर्ण्ययो०* (३।३।१७०) से णिनि आधमर्ण्य अर्थ में हुआ है। पूरी द्ध तृत् तत् सूत्र में ही मिलेगी ॥ षष्ठी का प्रतिषेध करने पर कर्म में ाया हो गई है। २।३।६५ का ही अपवाद यह सूत्र भी है ॥

कृत्यानां कर्त्तरि वा ॥२।३।७१॥

कृत्यानाम् ६।३॥ कर्त्तरि ७।१॥वा अ०॥ अनु०—षष्ठी, अनभिहिते ॥ ः—कृत्यप्रत्ययान्तानां प्रयोगे अनभिहिते कर्त्तरि विकल्पेन षष्ठी क्तिर्भवति, न कर्मणि ॥ *उदा०*—देवदत्तस्य कर्त्तव्यः। देवदत्तेन व्यः। भवतः कटः कर्त्तव्यः। भवता कटः कर्त्तव्यः ॥

भाषार्थः—[*कृत्यानाम्*] कृत्य प्रत्ययान्तों के योग में अनभिहित र्तरि] कर्त्ता में [*वा*] विकल्प से षष्ठी होती है न कि कर्म में। कर्तृकर्म० ३।६५) से नित्य कर्त्ता में षष्ठी प्राप्त थी विकल्प कह दिया है ॥

उदा०—देवदत्तस्य कर्त्तव्यः (देवदत्त के करने योग्य)। देवदत्तेन व्यः। भवतः कटः कर्त्तव्यः (आपके द्वारा चटाई बनाई जानी हिये)। भवता कटः कर्त्तव्यः ॥ देवदत्त तथा भवत् शब्द कर्त्ता हैं, सो में षष्ठी तथा पक्ष में *कर्तृकरणयो०* (२।३।१८) से तृतीया भी हो गई कट अभिहित कर्म है अतः इसमें *कर्तृकर्मणोः कृति* से कृत् का प्रयोग पर भी षष्ठी नहीं हुई, क्योंकि वहाँ अनभिहित कर्म कहा है, महाभाष्य के वचन *तिङ्समानाधिकरणे प्रथमा* (महाभाष्य ।४६) से प्रथमा हो गई है। तव्य प्रत्यय *कृत्याः* (३।१।९५) से कृत्य क है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥२।३।७२॥

तुल्यार्थैः ३।३॥ अतुलोपमाभ्याम् ३।२॥ तृतीया १।१॥ वा ७।१॥ स०—तुल्यः अर्थो येषां, ते तुल्यार्थाः, तैः……। तुला च उपमा च, तुलोपमे, न तुलोपमे, अतुलोपमे, ताभ्यां गर्भो नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—षष्ठी शेषे ॥ अर्थः—तुल्यार्थैः शब्दैः शेषे विवक्षिते तृतीया विभक्तिर्भवति, अन्यतरस्याम्, पक्षे तुलोपमाशब्दौ वर्जयित्वा ॥ उदा०—तुल्यो देवदत्तेन। तुल्यो सदृशो देवदत्तेन। सदृशो देवदत्तस्य ॥

भाषार्थः—[तुल्यार्थैः] तुल्य के पर्यायवाची शब्दों के विवक्षित होने पर [अतुलोपमाभ्याम्] तुला और उपमा शब्द कर, [अन्यतरस्याम्] विकल्प से [तृतीया] तृतीया विभक्ति में षष्ठी विभक्ति होती है ॥ उदा०—तुल्यो देवदत्तेन (तुल्य)। तुल्यो देवदत्तस्य। सदृशो देवदत्तेन। सदृशो

यहाँ से 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति २।३।७३ तक जायगी।

चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः ॥२।३।७३॥

चतुर्थी १।१॥ च अ० ॥ आशिषि ७।१॥ आयुष्यमद्रभद्र हितैः ३।३॥ स०—आयुष्यञ्च मद्रञ्च भद्रञ्च कुशलं च सुखं आयुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहिताः, तैः……इतरेतरद्वन्द्वः॥ शेषे अन्यतरस्याम् ॥ अर्थः—आशिषि गम्यमानायाम् आयुष्य कुशल, सुख, अर्थ, हित इत्येतैर्योगे शेषे विवक्षिते विकल्पेन चतु भवति, पक्षे षष्ठी च ॥ उदा०—आयुष्यं देवदत्ताय भूयात्। देवदत्तस्य भूयात्। अत्र आयुष्यादीनां पर्यायग्रहणम् इत्येवं पर्यायाणामपि ग्रहणं भवति ॥ चिरं जीवितं देवदत्ताय वा भूयात्। मद्रं देवदत्ताय। मद्रं देवदत्तस्य। भद्रं देवदत्ताय। देवदत्तस्य। कुशलं देवदत्ताय। कुशलं देवदत्तस्य। निरामयं देवदत्तस्य। सुखं देवदत्ताय। सुखं देवदत्तस्य। शं देवदत्तस्य। अर्थो देवदत्ताय। अर्थो देवदत्तस्य। प्रयोजनं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

योजनं देवदत्तस्य। हितं देवदत्ताय। हितं देवदत्तस्य। पथ्यं देवदत्ताय। थ्यं देवदत्तस्य ॥

भाषार्थः—[*आशिषि*] आशीर्वचन गम्यमान हो तो [*आयुष्यमद्रभद्र-शलसुखार्थहितैः*] आयुष्य मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित इन ब्दों के योग में शेष विवक्षित होने पर [*चतुर्थी*] चतुर्थी विभक्ति होती [च] चकार से पक्ष में षष्ठी भी होती है ॥ यहाँ आयुष्य इत्यादि ब्दों के पर्यायवाचियों का भी ग्रहण होता है ॥

उदा०—आयुष्यं देवदत्ताय भूयात् (देवदत्त की आयु बढ़े)। आयु-देवदत्तस्य भूयात्। चिरं जीवितं देवदत्ताय, देवदत्तस्य वा भूयात्। देवदत्ताय (देवदत्त का भला हो)। मद्रं देवदत्तस्य ॥ भद्रं देवदत्ताय वदत्त का कल्याण हो)। भद्रं देवदत्तस्य। कुशलं देवदत्ताय (देवदत्त कुशल हो)। कुशलं देवदत्तस्य। निरामयं देवदत्ताय (देवदत्त रहित हो)। निरामयं देवदत्तस्य। सुखं देवदत्ताय (देवदत्त को ख हो)। सुखं देवदत्तस्य। शं देवदत्ताय। शं देवदत्तस्य। अर्थो देव-ताय (देवदत्त का प्रयोजन सिद्ध हो)। अर्थो देवदत्तस्य। प्रयोजनं दत्ताय। प्रयोजनं देवदत्तस्य। हितं देवदत्ताय (देवदत्त का हित हो)। तं देवदत्तस्य। पथ्यं देवदत्ताय। पथ्यं देवदत्तस्य ॥

॥ *इति तृतीयः पादः* ॥

—:०:—

चतुर्थः पादः

[एकवद्भावप्रकरणम्]

द्विगुरेकवचनम् ॥२।४।१॥

द्विगुः १।१॥ एकवचनम् १।१॥ स०—एकस्य वचनम् एकवचनम्, तत्पुरुषः ॥ अर्थः—द्विगुसमास एकवचनं = एकस्य अर्थस्य वाचको ति ॥ उदा०—पञ्चपूलाः समाहृताः = पञ्चपूली। दशपूली ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*द्विगुः*] द्विगु समास [*एकवचनम्*] एकवचन एक अर्थ का वाचक होता है ॥ *सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः* (२।१।५१) पूर्व वाले तत्पुरुष की द्विगु संज्ञा कही है ॥ पञ्चपूली आदि परि० २।१।५० में देखें ॥ एकवद्भाव हो जाने से सर्वत्र (१।४।२२) से एकवचन होकर 'सु' आ जाता है ॥

यहाँ से '*एकवचनम्*' की अनुवृत्ति २।४।१६ तक जायेगी ॥

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ॥२।४।२॥

द्वन्द्वः १।१॥ च अ० ॥ प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ६।३॥ स०—प्राणी तूर्यञ्च सेना च, प्राणितूर्यसेनाः, तासाम् अङ्गानि प्राणितूर्य..... तेषां.....द्वन्द्वगर्भषष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—एकवचनम् ॥ प्राण्यङ्गानां तूर्याङ्गानां सेनाङ्गानां च द्वन्द्वः एकवद्भवति ॥ उदा० च पादौ च पाणिपादम् । शिरश्च ग्रीवा च = शिरोग्रीवम् । तूर्याङ्ग मार्दङ्गिकश्च पाणविकश्च = मार्दङ्गिकपाणविकम् । वीणावादकपरि वंशी च वीणा च, वंशीवीणम् । मृदङ्गश्च शङ्खश्च पणवश्च, मृदङ्गशङ्ख वम् । *सेनाङ्गानाम्*—रथिकाश्च अश्वारोहाश्च = रथिकाश्वारोहम् । पादातम् । हस्तिनश्च अश्वाश्च, उष्ट्राश्च = हस्त्यश्वोष्ट्रम् ॥

भाषार्थः—[*प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्*] प्राणि के अङ्ग, तूर्य अङ्ग तथा सेना के अङ्ग (अवयव) वाची शब्दों के [*द्वन्द्वः*] को [*च*] भी एकवद्भाव हो जाता है ॥ अङ्ग शब्द प्रत्येक सम्बन्धित होता है । अङ्ग का अर्थ अवयव है ॥

उदा०—पाणिपादम् (हाथ और पैर) । शिरोग्रीवम् (सिर और *तूर्याङ्गानाम्*—मार्दङ्गिकपाणविकम् (मृदङ्ग तथा पणव = ढोल वाला) । वीणावादकपरिवादकम् (वीणावादक और परिवादक) । वीणम् (बाँसुरी और वीणा) । मृदङ्गशङ्खपणवम् । सेनाङ्ग काश्वारोहम् (रथों वाले तथा घुड़सवार) । रथिकपादातम् (रथ पैदल चलने वाले) । हस्त्यश्वोष्ट्रम् ॥ इस प्रकरण में द्वन्द्व समास एकवद्भाव किया है, वहाँ-वहाँ सर्वत्र *स नपुंसकम्* (२।४।१७) लिङ्ग भी हो जाता है ॥ एकवद्भाव करने का सर्वत्र यही

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

में द्विवचन, तथा बहुतों में बहुवचन प्राप्त था, सो एकवद्भाव से एकवचन ही हो ॥

यहाँ से 'द्वन्द्वः' की अनुवृत्ति २।४।१६ तक जायेगी ॥

अनुवादे चरणानाम् ॥२।४।३॥

अनुवादे ७।१॥ चरणानाम् ६।३॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम् ॥ अर्थः-वादे गम्यमाने चरणानां द्वन्द्वं एकवद्भवति ॥ उदा०—उदगात् कठ-पम् । प्रत्यष्ठात् कठकौथुमम् ॥

भाषार्थः—[चरणानाम्] चरण[1]वाचियों का जो द्वन्द्व उसको [अनुवादे] वाद गम्यमान होने पर एकवद्भाव हो जाता है ॥

उदा०—उदगात् कठकालापम् । प्रत्यष्ठात् कठकौथुमम् (कठ और की उन्नति हुई, और प्रतिष्ठा हुई, ऐसा पुनः कहा) ॥

अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम् ॥२।४।४॥

अध्वर्युक्रतुः १।१॥ अनपुंसकम् १।१॥ स०—अध्वर्योः (सम्बन्धी) अध्वर्युक्रतुः षष्ठीतत्पुरुषः । न नपुंसकम्, अनपुंसकम्, नञ्-षः ॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम् ॥ अर्थः—अध्वर्युवेदे विहितो तुः स अध्वर्युक्रतुरित्युच्यते । अनपुंसकलिङ्गानाम् अध्वर्युक्रतु-नां शब्दानां द्वन्द्वसमास एकवद् भवति ॥ उदा०—अर्काश्च, अश्व-च = अर्काश्वमेधम् । सायाह्नश्च अतिरात्रश्च = साया- ह्नातिरात्रम् । गराजसूयम् ॥

---

[1] यहाँ चरण शाखा के प्रवर्त्तक ग्रन्थ का नाम है, चरण की बहुत सी होती हैं, सो शाखा के आदि ग्रन्थ का नाम ही चरण है। हम यहाँ विद्वान् रिसर्च स्कालर श्री० पं० भगवद्दत्त जी के ग्रंथ "वैदिक वाङ्मय हास" से उद्धरण उपस्थित करते हैं। "शाखा चरण का अवान्तर विभाग शाकल, वाष्कल, वाजसनेय, चरक आदि चरण हैं, इनकी आगे क्रमशः ५, और १२ शाखायें हैं। इस विचार का पोषक एक पाठ है—जमदग्निप्रव-जसनेयचरणाय यजुर्वेदकण्वशाखाध्यायिने.....।" देखो पृ० १७३ सं० थमभाग ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[अध्वर्युक्रतुः] अध्वर्यु (यजुर्वेद) में विहि यज्ञवाची शब्द वह [अनपुंसकम्] नपुंसकलिङ्ग में वर्त्तमा उनका द्वन्द्व एकवद्भाव को प्राप्त होता है।

उदा०—अर्काश्वमेधम् (अर्क यज्ञ और अश्वमेध य तिरात्रम् (सायाह्न यज्ञ और अतिरात्र यज्ञ)। सोमयागराज याग और राजसूय यज्ञ)॥

अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम् ॥२।४।५॥

अध्ययनतः अ०॥ अविप्रकृष्टाख्यानाम् ६।३॥ स०—अ अविप्रकृष्टा, नञ्तत्पुरुषः। अविप्रकृष्टा आख्या येषां, ते ख्यास्तेषां ..... बहुव्रीहिः॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम् अध्ययननिमित्तेन येषां शब्दानाम् अविप्रकृष्टा आख्या=समी तेषां द्वन्द्व एकवद् भवति॥ उदा०—अष्टाध्यायीमहाभा रणनिरुक्तम्। पदकक्रमकम्। क्रमकवार्त्तिकम्॥

भाषार्थः—[अध्ययनतः] अध्ययन के निमित्त से ख्यानाम्] समीप की आख्या वाले जो शब्द हैं, उनका द्व को प्राप्त होता है॥

उदा०—अष्टाध्यायीमहाभाष्यम् (अष्टाध्यायी और व्याकरणनिरुक्तम् (व्याकरण और निरुक्त) पदकक्रमकम् क्रमपाठ का ग्रन्थ)। क्रमकवार्त्तिकम् (क्रमपाठ तथा ग्रन्थ)॥

अष्टाध्यायी प्रथमावृत्ति द्वितीयावृत्ति पढ़ने के पश्च भाष्य पढ़ा जाता है, अतः अध्ययन की दृष्टि से इनकी इसी प्रकार, व्याकरण पूर्ण करने के पश्चात् निरुक्त पढ़ा वेद का पद पाठ पढ़ लेने के पश्चात् क्रम पाठ पढ़ते हैं, अध्ययन की अपेक्षा से समीप की आख्या वाले शब्द द्व वद्भाव हो गया है। स नपुंसकम् (२।४।१७) से नपुंस जायेगा। क्रमादिभ्यो वुन् (४।२।६०) से पद तथा क्रम हुआ है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

जातिरप्राणिनाम् ॥२।४।६॥

जातिः १।१॥ अप्राणिनाम् ६।३॥ स०—न प्राणिनः अप्राणिनः तेषां नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम्॥ अर्थः—अप्राणिवाचिनां जातिवाचिशब्दानां द्वन्द्व एकवद् भवति॥ उदा०—आराशस्त्रि। धानाशष्कुलि। खट्वापीठम्। घटपटम्॥

भाषार्थः—[अप्राणिनाम्] प्राणिरहित [जातिः] जातिवाची शब्दों का जो द्वन्द्व है, उसे एकवद्भाव होता है॥

उदा०—आराशस्त्रि (लोहे का अस्त्र एवं छुरिका) धानाशष्कुलि (सत्तु पूरी) खट्वापीठम् (खाट और चौकी)। घटपटम् (घड़े और वस्त्र)॥ पूर्ववत् नपुंसकलिंग होकर, शस्त्री शष्कुली को ह्रस्वो नपुंसके (१।२।४७) से ह्रस्व हो गया है॥

विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः ॥२।४।७॥

विशिष्टलिङ्गः १।१॥ नदी १।१॥ देशः १।१॥ अग्रामाः १।३॥ स०—विशिष्टः भिन्नः लिङ्गः यस्य, स विशिष्टलिङ्गः, बहुव्रीहिः॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम्॥ अर्थः—विशिष्टलिङ्गानां = भिन्नलिङ्गानां नदीवाचिनां देशवाचिनां च शब्दानां द्वन्द्व एकवद् भवति, ग्रामवाचिशब्दान् वर्जयित्वा॥ उदा०—उद्धयश्च इरावती च = उद्धयेरावति। गङ्गा च शोणं च = गङ्गाशोणम्। देशः—कुरवश्च कुरुक्षेत्रञ्च = कुरुकुरुक्षेत्रम्। कुरुकुरुजाङ्गलम्॥

भाषार्थः—[विशिष्टलिङ्गः] भिन्न २ लिङ्ग वाले [नदी] नदीवाची, [देशः] देशवाची शब्दों का जो द्वन्द्व है, उसे एकवद्भाव होता है, [अग्रामाः] ग्रामवाची शब्दों को छोड़कर॥

उदा०—उद्धयेरावति (उद्धय[1] और इरावती)। गङ्गाशोणम् (गङ्गा और शोण नदी। देश—कुरुकुरुक्षेत्रम् (कुरु तथा कुरुक्षेत्र नामक देश)। कुरुकुरुजाङ्गलम् (कुरु तथा कुरुजाङ्गल देश)॥

---

[1] उद्धय का वर्त्तमान नाम उझ है। यह जम्मू प्रान्त के जसरोटा जिले में कुछ दूर पञ्जाब में बहकर गुरुदासपुर जिले में रावी के दाहिने किनारे पर गिरती है। इरावती वर्त्तमान रावी का नाम है॥ देखो पाणिनिकालीन भारतवर्ष हिन्दी सं०॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदाहरण में उद्धच पुलिङ्ग तथा इरावती स्त्रीलिङ्ग है, लिङ्ग तथा शोण नपुंसकलिङ्ग में है, अतः विशिष्ट=भि नदीवाची शब्द हैं। इसी प्रकार कुरु पुलिङ्ग तथा कुरुक्षेत्र नपुंसकलिङ्ग हैं, सो भिन्न लिङ्ग वाले देशवाची शब्द हैं, अ होकर पूर्ववत् कार्य हुआ है। ग्राम भी देश में आ जाते वाची शब्दों को छोड़ कर कह दिया है॥

क्षुद्रजन्तवः ॥२।४।८॥

क्षुद्रजन्तवः १।३॥ स०—क्षुद्राश्च ते जन्तवश्च, क्षुद्रजन्त तत्पुरुषः॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम्॥ अर्थः—क्षु शब्दानां द्वन्द्व एकवद्भवति॥ उदा०—यूकाश्च लिक्षाश्च दंशमशकम्। कीटपिपीलिकम्॥

भाषार्थः—[क्षुद्रजन्तवः] क्षुद्रजन्तु वाची शब्दों का द्व को प्राप्त होता है॥ क्षुद्र जन्तु से नेवले से लेकर सू जायेंगे। महाभाष्य में क्षुद्र की व्याख्या कई ढङ्ग से की

उदा०—यूकालिक्षम् (जूँ और लीख)। दंशमशकम् मच्छर)। कीटपिपीलिकम् (कीड़ी और चिऊँटी)॥

येषां च विरोधः शाश्वतिकः ॥२।४।९॥

येषां ६।३॥ च अ०॥ विरोधः १।१॥ शाश्वतिकः द्वन्द्वः, एकवचनम्॥ अर्थः—येषां जीवानां शाश्वतिकः = स काल्किः विरोधः = वैरं तद्वाचिशब्दानां द्वन्द्व एकवद् भवति मार्जारमूषकम्। अहिनकुलम्॥

भाषार्थः—[येषां] जिन जीवों का [शाश्वतिकः] शाश्व [विरोधः] विरोध है तद्वाची शब्दों का द्वन्द्व [च] भी प्राप्त होता है॥

उदा०—मार्जारमूषकम् (बिल्ली और चूहे)। अहिनकुल नेवला)॥ बिल्ली जहाँ भी चूहे को देखेगी उसे खा लेगी,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ते ही मार डालेगा, इस प्रकार इनका आपस में स्वाभाविक सनातन
ध है ॥

शूद्राणामनिरवसितानाम् ॥२।४।१०॥

शूद्राणाम् ६।३॥ अनिरवसितानाम् ६।३॥ स०—न निरवसिताः अनि-
तताः, तेषां···नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम् ॥ अर्थः—
रवसितशूद्रवाचिशब्दानां द्वन्द्व एकवद्भवति ॥ यैर्भुक्ते पात्रं
रेण (मार्जनेन) शुध्यति, तेऽनिरवसिताः । उदा०—तक्षायस्कारम् ।
तन्तुवायम् । रजककुलालम् ॥

भाषार्थः—[*अनिरवसितानाम्*] अनिरवसित [*शूद्राणाम्*] शूद्रवाची
ों का जो द्वन्द्व समास है, वह एकवद्भाव को प्राप्त होता है ॥ जिन
के भोजन के पात्र माजने करने के पश्चात् शुद्ध माने जायें वे
रवसित शूद्र कहे जाते हैं, तथा जिनके शुद्ध नहीं माने जाते, वे
सित होते हैं ॥

उदा०—तक्षायस्कारम् (बढ़ई और लुहार) । रजकतन्तुवायम् (धोबी
जुलाहा) । रजककुलालम् (धोबी और कुम्हार) ॥ तक्ष अयस्कारादि
रवसित शूद्र हैं ॥

गवाश्वप्रभृतीनि च ॥२।४।११॥

गवाश्वप्रभृतीनि १।३॥ च अ० ॥ स०—गवाश्वं प्रभृति येषां तानि
श्वप्रभृतीनि, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम् ॥ अर्थः—गवा-
तीनि द्वन्द्वरूपाणि, कृतैकवद्भावानि साधूनि भवन्ति ॥ उदा०—
श्वम् । गवाविकम् । गवैडकम् । अजाविकम् ॥

भाषार्थः—इस एकवद्भाव के अधिकार में [*गवाश्वप्रभृतीनि*] गवाश्व
दि शब्द एकवद्भाव किये हुये जैसे पढ़े हैं वैसे [च] ही साधु समझे
हैं ॥ उदा०—गवाश्वम् (गौ और घोड़ा) । गवाविकम् (गौ और
) । गवैडकम् (गौ और भेड़) । अजाविकम् ॥

---

१. शूद्र वास्तव में वह होता है, जिसको पढ़ाने पर भी कुछ न आये। जन्म से
न शूद्र होते ही हैं, विद्या और संस्कार से द्विज बनते हैं। तक्ष और अयस्कार भी
बन सकते हैं, और द्विज भी तक्ष अयस्कार बन सकते हैं, यह भी एक पक्ष है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

गो अश्व का समास (२।२।२९) होकर एकवद्भाव तथा यनस्य (६।१।११६) से अवङ् आदेश होकर गवाश्वम् बना।

विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापरा त्तराणाम् ॥२।४।१२॥

विभाषा १।१॥ वृक्षमृग·····धरोत्तराणाम् ६।३॥ स·····इत्यत्र इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम्॥ अर्थ-द्वन्द्वो तृण, धान्य, व्यञ्जन, पशु, शकुनि, अश्ववडव, पूर्वापर, अधरो द्वन्द्वो विभाषा एकवद् भवति ॥ उदा०—प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च धम्। प्लक्षन्यग्रोधाः। मृग-रुरवश्च पृषताश्च = रुरुपृषतम्। तृण—कुशकाशम्। कुशकाशाः। धान्य-व्रीहियवम्। व्रीहियवाः दधिघृतम्। दधिघृते। पशु-गोमहिषम्। गोमहिषाः। शकुनि कपिञ्जलम्। तित्तिरिकपिञ्जलाः। अश्ववडवम्। अश्ववडवौ। पूर्वापरे। अधरोत्तरम्। अधरोत्तरे ॥

भाषार्थः—[वृक्ष·····णाम्] वृक्ष, मृग, तृण, धान्य, पशु, शकुनि, अश्ववडव, पूर्वापर, अधरोत्तर वाची द्वन्द्व समास वह [*विभाषा*] विकल्प से एकवद्भाव को प्राप्त वृक्ष, तृण, धान्य, व्यञ्जनवाचियों के द्वन्द्व में प्राणिरहित शब्द होने से *जातिरप्राणिनाम्* (२।४।६) से नित्य एकवद्भाव यहाँ विकल्प कर दिया है, शेष में किसी से प्राप्त नहीं विधान कर दिया है। यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है ॥

उदा०—प्लक्षन्यग्रोधम्। प्लक्षन्यग्रोधाः। मृग—रुरुपृषतम् विशेष और श्वेतबिन्दुवाला हरिण)। रुरुपृषताः। तृण (कुश और काश) कुशकाशाः। धान्य-व्रीहियवम् (चावल व्रीहियवाः। व्यञ्जन-दधिघृतम्। (दही और घी) दधिघृते। हिषम् (गायें और भैंसें)। गोमहिषाः। शकुनि-तित्तिरिकपिञ्जलम् और चातक)। तित्तिरिकपिञ्जलाः। अश्ववडवम् (घोड़ा अश्ववडवौ। पूर्वापरम् (पूर्व और पर)। पूर्वापरे। अधरोत्तरम् त्तरे ॥ पूर्ववदश्ववडवौ (२।४।२७) से अश्ववडवौ में पूर्ववत्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'विभाषा' की अनुवृत्ति २।४।१३ तक जायेगी ॥

विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि ॥२।४।१३॥

विप्रतिषिद्धम् १।१॥ च अ० ॥ अनधिकरणवाचि १।१॥ स०—अधिवक्ति, इति अधिकरणवाचि उपपदस० (२।२।१९) इत्यनेन तत्पुसमासः। न अधिकरणवाचि, अनधिकरणवाचि, नञ्तत्पुरुषः ॥ ०—विभाषा, द्वन्द्वः, एकवचनम् ॥ अर्थः—विप्रतिषिद्धं = परस्परद्धानाम्, अनधिकरणवाचिनां = अद्रव्यवाचिनाम्, द्वन्द्वसमास एकभवति विकल्पेन ॥ उदा०—शीतोष्णम्। शीतोष्णे। सुखदुःखम्। दुःखे। जीवितमरणम्। जीवितमरणे ॥

भाषार्थः—[विप्रतिषिद्धम्] विप्रतिषिद्ध = परस्पर विरुद्ध [अनरणवाचि] अनधिकरणवाची = अद्रव्यवाची शब्दों का जो द्वन्द्व को [च] भी विकल्प से एकवद्भाव होता है ॥ ठण्डा और गरम आदि परस्पर विरोधी = विप्रतिषिद्ध हैं ॥ उदा०—शीतोष्णम् (ठण्डा गरम)। शीतोष्णे। सुखदुःखम् (सुख और दुःख)। सुखदुःखे। तमरणम् (जीना और मरना)। जीवितमरणे ॥

न दधिपयआदीनि ॥२।४।१४॥

न अ० ॥ दधिपयआदीनि १।३॥ स०—दधि च पयश्च, दधिपयसी, पयसी आदिर्येषां तानि दधिपयआदीनि, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ ०—द्वन्द्वः, एकवचनम् ॥ अर्थः—दधिपयआदीनि द्वन्द्वशब्दरूपाणि कवद्भवन्ति ॥ उदा०—दधिपयसी। सर्पिर्मधुनी। मधुसर्पिषी ॥

भाषार्थः—[दधिपयआदीनि] दधिपयसी आदि शब्दों को एकवद्भाव नहीं होता है ॥

उदा०—दधिपयसी (दही और दूध) सर्पिर्मधुनी (घी और शहद) सर्पिषी ॥ व्यञ्जनवाची होने से उदाहरणों में विभाषा वृक्ष० (२।४।

---

१. अधिकरण किसी द्रव्य = मूर्त्तपदार्थ का ही हो सकता है, क्रिया या का नहीं, अतः यहाँ अधिकरण शब्द से द्रव्य लिया गया है, अनधिकरण- का अर्थ हुआ अद्रव्यवाची ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

१२) से एकवद्भाव प्राप्त था निषेध कर दिया है। गण के में भी पूर्वसूत्रों से एकवद्भाव प्राप्त होने पर यह निषेध सूत्र यहाँ से 'न' की अनुवृत्ति २।४।१५ तक जायगी॥

अधिकरणैतावत्त्वे च ॥२।४।१५॥

अधिकरणैतावत्त्वे ७।१॥ च अ०॥ स०—एतावतो भावः अधिकरणस्य एतावत्त्वं = इयत्ता, परिमाणम्, अधिकरणैतावत्त्व ……षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—न, द्वन्द्वः, एकवचनम्॥ अ करणैतावत्त्वे यो द्वन्द्वः स एकवद् न भवति। उदा०—च पादाः। दश दन्तोष्ठाः।

भाषार्थः—[*अधिकरणैतावत्त्वे*] अधिकरण का परिमाण जो द्वन्द्व समास वह [च] भी एकवद्भाव को प्राप्त नहीं होता

उदा०—चत्वारो हस्तपादाः (चार हाथ और पैर)। द (दस दाँत और होठ)॥

चार हाथ पैर, वा दश दन्तोष्ठ में चार, तथा दस हाथ पैर वा दन्तोष्ठ हैं। उन हाथ पैर तथा दन्तोष्ठों की माण चार तथा दस से प्रकट हो रही है, इस प्रकार एतावत्त्व कहा जा रहा है॥ प्राणियों का अवयव होने *प्राणि०* (२।४।२) से एकवद्भाव प्राप्त था, यहाँ इयत्ता निषेध कर दिया है॥

यहाँ से '*अधिकरणैतावत्त्वे*' की अनुवृत्ति २।४।१६ तक

विभाषा समीपे ॥२।४।१६॥

विभाषा १।१॥ समीपे ७।१॥ अनु०—अधिकरणैतावत्त्वे वचनम्॥ अर्थः—अधिकरणैतावत्त्वस्य समीपेऽर्थे यो द्वन्द्वः एकवद् भवति॥ उदा०—उपदशं दन्तोष्ठम्। उपदशाः दशं जानुजङ्घम्। उपदशाः जानुजङ्घाः॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. And Gangotri Initiative

भाषार्थः—अधिकरण के एतावत्त्व का [समीपे] समीप अर्थ कहना हो द्वन्द्व समास में [विभाषा] विकल्प से एकवद्भाव होता है ॥ पूर्व सूत्र नित्य निषेध प्राप्त था, विकल्प कर दिया ॥

उदा०—उपदशं दन्तोष्ठम् (दस के लगभग दाँत और होठ)। पदशाः दन्तोष्ठाः। उपदशं जानुजङ्घम् (दस के लगभग घुटने और ङ्घा)। उपदशाः जानुजङ्घाः ॥ दन्तोष्ठ आदि अधिकरण (द्रव्य) हैं नका एतावत्त्व दश से प्रकट हो रहा है, तथा उप से समीप अर्थ भी तीत हो रहा है ॥

[लिङ्गप्रकरणम्]

स नपुंसकम् ॥२।४।१७॥

सः १।१॥ नपुंसकम् १।१॥ अर्थः—अस्मिन् एकवद्भावप्रकरणे यस्य कवद्भावो विहितः, स नपुंसकलिङ्गो भवति ॥ उदा०—पञ्चगवम्। गवम्। द्वन्द्वः—पाणिपादम्। शिरोग्रीवम् ॥

भाषार्थः—इस एकवद्भाव प्रकरण में जिस (द्विगु और द्वन्द्व) को कवद्भाव विधान किया है, [सः] वह [नपुंसकम्] नपुंसक लिङ्ग होता ॥ तत् तत् सूत्र में इसके उदाहरण आ ही गये हैं ॥ पञ्चगवम् में *दिताथोत्तर०* (२।१।५०) से समास तथा *संख्यापूर्वो०* (२।१।१०) से द्विगु ा एवं *गोरतद्धितलुकि* (५।४।९२) से समासान्त टच् प्रत्यय भी हुआ पश्चात् अवादेश होकर पञ्चगवम् बना है। *द्विगुरेकवचनम्* (२।४।१) एकवद्भाव होकर, नपुंसक लिङ्ग होता है ॥

यहाँ से 'नपुंसकम्' की अनुवृत्ति २।४।२५ तक जायेगी ॥

अव्ययीभावश्च ॥२।४।१८॥

अव्ययीभावः १।१॥ च अ० ॥ अनु०—नपुंसकम् ॥ अर्थः—अव्ययीवः समासो नपुंसकलिङ्गो भवति ॥ उदा०—अधिस्त्रि। उपकुमारि। त्तगङ्गम्। लोहितगङ्गम् ॥

भाषार्थः—[अव्ययीभावः] अव्ययीभाव समास [च] भी नपुंसकङ्ग में होता है ॥ नपुंसकलिङ्ग होने से १।२।४७ से ह्रस्व हो जाता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अधिस्त्रि की सिद्धि परि० १।१।४० में देखें। उन्मत्तगङ्गम् में (२।१।२०) से समास हुआ है। नपुंसक लिङ्ग होने से पूर्वपद ह्रस्व हो गया॥

तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः ॥२।४।१९॥

तत्पुरुषः १।१॥ अनञ्कर्मधारयः १।१॥ स०—नञ् च कर्मधारयः, समाहारो द्वन्द्वः। न नञ्कर्मधारयः, अनञ्कर्मधारयः, नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—नपुंसकम्॥ अर्थः—नञ्तत्पुरुषं तत्पुरुषं च विहाय, अस्मिन् प्रकरणे योऽन्यस्तत्पुरुषसमासः स नपुंसकलिङ्गो भवति, इत्यधिकारो वेदितव्यः॥ उदा०—ब्राह्मणानां ब्राह्मणसेनम्, ब्राह्मणसेना। असुरसेनम्, असुरसेना॥

भाषार्थः—[*अनञ्कर्मधारयः*] नञ् तत्पुरुष तथा कर्मधारय को छोड़कर, जो अन्य [*तत्पुरुषः*] तत्पुरुष वह नपुंसकलिङ्ग में हो, यह अधिकार २।४।२५ तक जानना चाहिये॥

उदा०—ब्राह्मणसेनम्, ब्राह्मणसेना (ब्राह्मणों की सेना) सेनम्, असुरसेना (असुरों की सेना)॥

संज्ञायां कन्थोशीनरेषु ॥२।४।२०॥

संज्ञायाम् ७।१॥ कन्था १।१॥ उशीनरेषु ७।३॥ अनु०—तत्पु कर्मधारयः, नपुंसकम्॥ अर्थः—संज्ञायां विषये अनञ्कर्मधार न्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति, सा चेत्कन्था, उशीनरेषु उदा०—सौशमीनां कन्था, = सौशमिकन्थम्। आह्वरकन्थम्॥

भाषार्थः—[*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में नञ् तथा कर्मधार को छोड़कर [*कन्था*] कन्थान्त तत्पुरुष नपुंसक लिङ्ग में हो [*उशीनरेषु*] यदि वह कन्था उशीनर जनपद सम्बन्धी हो तो नगर को कहते हैं॥

---

१. उशीनर एक जनपद (जिला) का नाम था। सम्भवतः यह चनाब के बीच का निचला भूभाग था। देखो; पाणिनिकालीन भारत

२. देखो पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८३॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Ani Gangotri Initiative

उदा०—सौशमिकन्थम् (सौशमि लोगों का नगर)। आह्वरकन्थम् आह्वर लोगों का नगर)। नपुंसक लिङ्ग होने से ह्रस्वो नपुंसके० (१।२।४७) से कन्था को ह्रस्व हो गया है॥

उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम् ॥२।४।२१॥

उपज्ञोपक्रमम् १।१॥ तदाद्याचिख्यासायाम् ७।१॥ उपज्ञायतेऽसौ उपज्ञा। उपक्रम्यतेऽसौ, उपक्रमः॥ स०—उपज्ञा च उपक्रमश्च, उपज्ञोपक्रमम्, समाहारो द्वन्द्वः। आख्यातुमिच्छा=आचिख्यासा। तयोः (उपज्ञोपक्रमयोः) आदिः, तदादिः षष्ठीतत्पुरुषः। तदादेः, आचिख्यासा, तदाद्याचिख्यासा' तस्याम्.....षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः, नपुंसकम्॥ अर्थः—अनञ्कर्मधारयः, उपज्ञान्त उपक्रमान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति यदि तयोः, उपज्ञोपक्रमयोरादिः=प्रथमः तस्य आख्यातुमिच्छा=आचिख्यासा भवेत्॥ उदा०—पाणिनेः उपज्ञा=पाणिन्युपज्ञम् अकालकं व्याकरणम्। व्याड्युपज्ञं दुष्करणम्[1]। नन्दोपक्रमाणि मानानि॥

भाषार्थः—[उपज्ञोपक्रमम्] उपज्ञान्त तथा उपक्रमान्त तत्पुरुष नपुंसक लिङ्ग में होता है, नञ् कर्मधारय तत्पुरुष को छोड़कर [तदाद्याचिख्यासायाम्] यदि उपज्ञेय तथा उपक्रम्य के आदि=प्रथमकर्त्ता को कहने की इच्छा हो॥ उपज्ञा किसी नई सूझ को कहते हैं, तथा उपक्रम किसी चीज के प्रारम्भ करने को कहते हैं। उपज्ञा तथा उपक्रम में भेद इतना है कि उपज्ञा सर्वथा नई वस्तु नहीं होती, किन्तु उसमें कोई विशेष सूझ ही होती है, जैसे कि पाणिनि से पूर्व भी और व्याकरण थे, उसमें केवल 'अकालक व्याकरण' बनाने की उपज्ञा पाणिनि ने की है। किन्तु उपक्रम सर्वथा नये निर्माण को कहते हैं। जैसे बाटों का नया प्रारम्भ नन्द का ही है॥

उदा०—पाणिन्युपज्ञम् अकालकं व्याकरणम् (काल की परिभाषा से रहित व्याकरणरचना पाणिनि की ही उपज्ञा है)। व्याड्युपज्ञं दुष्करम् (दुष्करण नामक ग्रन्थ व्याडि की उपज्ञा है)। नन्दोपक्रमाणि मानानि (नन्द ने पहले-पहले तौलने के बाँटों का प्रारम्भ किया)॥

---

१. न्यास में इसी सूत्र पर 'दशहुष्करणम् पाठ है। दशहुष्करणं व्याडिकृत एक ग्रन्थ है, जिसमें कालादि की परिभाषायें की हुई थीं॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

छाया बाहुल्ये ॥२।४।२२॥

छाया १।१। बाहुल्ये ७।१॥ अनु०—तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः क्लीबम्॥ अर्थः—बाहुल्ये = बहुत्वे गम्यमाने, अनञ्कर्मधारयस्तत्पुरुषः, नपुंसकलिङ्गो भवति॥ उदा०—शलभच्छायम्। इक्षुच्छा

भाषार्थः—[बाहुल्ये] बाहुल्य अर्थात् बहुत्व गम्यमान हो तो कर्मधारय तत्पुरुष को छोड़कर [छाया] छायान्त जो तत्पुरुष है वह नपुंसक लिंग में होता है॥

शलभच्छायम् (पतङ्गों की छाया)। इक्षुच्छायम् (ईख की उदाहरण में शलभ इत्यादि का बाहुल्य प्रकट हो रहा है॥ सुराच्छाया० (२।४।२५) से विकल्प से छायान्त तत्पुरुष को लिङ्ग प्राप्त था, यहाँ बाहुल्य गम्यमान होने पर नित्य कर दिया है॥

सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा ॥२।४।२३॥

सभा १।१॥ राजाऽमनुष्यपूर्वा १।१॥ स०—न मनुष्यः, नञ्तत्पुरुषः। राजा च अमनुष्यश्च, राजामनुष्यौ, इतरेत राजामनुष्यौ पूर्वौ यस्याः सा राजाऽमनुष्यपूर्वा (सभा) अनु०—तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः, नपुंसकम्। अर्थः—अनञ् सभान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गे भवति, सा चेत् सभा राजपूर्वा पूर्वा च भवति॥ उदा०—इनसभम्। ईश्वरसभम्। रक्षःसभम्। पिशाचसभम्॥

भाषार्थः—नञ्, कर्मधारय तत्पुरुष को छोड़कर [राजाऽ राजा और अमनुष्यपूर्व जो [सभा] सभान्त तत्पुरुष वह लिङ्ग में होता है॥

यहाँ स्वं रूपं शब्द० (१।१।६८) से राजा शब्द का ही चाहिये, उसके पर्यायों का नहीं, किन्तु जित्पर्यायवचनस्यैव र्थम् (वा० १।१।६८) इस वार्त्तिक से राजा के पर्यायों का ही है, राजा शब्द का नहीं॥ रक्षः पिशाच मनुष्य नहीं हैं॥

उदा०—इनसभम् (राजा की सभा) ईश्वरसभम्। रक्षःसभम् (राक्षसों की सभा)। पिशाचसभम्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'सभा' की अनुवृत्ति २।४।२४ तक जायेगी ॥

अशाला च ॥२।४।२४॥

अशाला १।१॥ च अ० ॥ स०—न शाला अशाला, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—सभा, तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः, नपुंसकम् ॥ अर्थः—शालाभिन्ना सभा तदन्तो नञ्कर्मधारयभिन्नस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति ॥ उदा०—स्त्रीणां सभा स्त्रीसभम् । दासीसभम् ॥

भाषार्थः—[अशाला] शाला अर्थ से भिन्न जो सभा तदन्त नञ्कर्मधारयभिन्न तत्पुरुष [च] भी नपुंसक लिङ्ग में होता है ॥

उदा०—स्त्रीसभम् (स्त्रियों की सभा) दासीसभम् (दासियों की सभा)। स्त्रीसभम् आदि में शाला नहीं कहा जा रहा है, स्त्रियों का समुदाय कहा जा रहा है ॥

विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम् ॥२।४।२५॥

विभाषा १।१॥ सेनासुराच्छायाशालानिशानाम् ६।३॥ स०—सेना सुरा च छाया च शाला च निशा च, सेनासुराच्छायाशालानिशाः, तासाम्···इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—तत्पुरुषोऽनञ् कर्मधारयः, नपुंसकम् ॥ अर्थः—सेना, सुरा, छाया, शाला, निशा इत्येतदन्तोऽनञ्-कर्मधारयस्तत्पुरुषो विकल्पेन नपुंसकलिङ्गो भवति ॥ उदा०—ब्राह्मणसेनम्, ब्राह्मणसेना । असुरसेनम्, असुरसेना । यवसुरं, यवसुरा । कुड्यच्छायम्, कुड्यच्छाया । गोशालम्, गोशाला । श्वनिशम्, श्वनिशा ॥

भाषार्थः—[सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्] सेना, सुरा, छाया, शाला, निशा अन्त वाला जो नञ् और कर्मधारय को छोड़कर तत्पुरुष समास वह नपुंसक लिंग में [विभाषा] विकल्प से होता है ॥ पूर्व सूत्रों से किसी से नपुंसक लिङ्ग नहीं प्राप्त था सो यहाँ अप्राप्त विकल्प है ॥

उदा०—ब्राह्मणसेनम्, ब्राह्मणसेना । असुरसेनम् असुरसेना (असुरों की सेना)। यवसुरं (जौ की शराब)। यवसुरा । कुड्यच्छायम् (दीवार की छाया)। कुड्यच्छाया। गोशालम् (गोशाला)। गोशाला । श्वनिशम् (कुत्तों की रात)। श्वनिशा ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः ॥२।२।२६॥

परवत् अ० ॥ लिङ्गम् १।१॥ द्वन्द्वतत्पुरुषयोः ६।२॥ परस्य षष्ठ्यर्थे (५।१।११५) वतिः ॥ स०—द्वन्द्वश्च तत्पुरुषश्च, द्वन्द्व तयोः···इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अर्थः—द्वन्द्वसमासस्य तत्पुरुषस्य परस्येव लिङ्गं भवति ॥ उदा०—कुक्कुटश्च मयूरी च=कुक्कु इमे। मयूरीकुक्कुटौ। गुणवृद्धी, वृद्धिगुणौ। तत्पुरुषे-अर्ध अर्धपिप्पली, अर्धकोशातकी। अर्धनखरञ्जनी ॥

भाषार्थः—[द्वन्द्वतत्पुरुषयोः] द्वन्द्व तथा तत्पुरुष समास का पर के समान अर्थात् उत्तरपद का [लिङ्गम्] लिङ्ग होता है। में जब प्रत्येक पद भिन्न लिङ्गों वाले होते हैं, तो कौन लिङ्ग समास में तो सारे पद प्रधान होते हैं, सो किसी भी पद का सकता था अतः नियम किया कि परवत् लिङ्ग ही हो, तब समास तो उत्तरपद प्रधान ही होता है, सो परवत् लिङ्ग सिद्ध एकदेशी तत्पुरुष समास के लिए यहाँ परवत् लिङ्ग कहा है। उत्तरपद प्रधान नहीं होता ॥

उदा०—कुक्कुटमयूर्यौ इमे (मुर्गा और मोरनी)। गुणवृद्धी, वृद्धिगुणौ। तत्पुरुष में—अर्धपिप्पली। अर्धनखरञ्जनी (मेंहदी का आधा भाग) ॥

उदाहरण में मयूरी पद जब उत्तरपद में था तब परवत् से स्त्रीलिंग तथा जब कुक्कुट उत्तरपद में था तब परवत् पुलिंग हो गया है। इसी प्रकार गुणवृद्धी में भी जानें। वृद्धिगुणौ राजदन्तादि में (२।२।३१) पढ़ा है ॥ अर्ध नपुंसक से अर्धपिप्पली आदि में समास हुआ है ॥

पूर्ववदश्ववडवौ ॥२।४।२७॥

पूर्ववत् अ० ॥ अश्ववडवौ १।२॥ स०—अश्वश्च वडवा वडवौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अर्थः—अश्ववडवशब्दयोः पूर्व भवति ॥ विभाषा वृक्षमृग०(२।४।१२) इत्यनेन अश्ववडवयो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

द्वावो विकल्पेनोक्तस्तत्रैकवद्भावादन्यत्र परवल्लिंगतायां प्राप्तायामिदमारभ्यते ॥ उदा०—अश्ववडवौ ॥

भाषार्थः—[अश्ववडवौ] अश्ववडवा शब्दों के द्वन्द्व समास में [पूर्ववत्] पूर्ववत् लिङ्ग हो ॥ पूर्व सूत्र से परवत् लिङ्ग प्राप्त था उसका अपवाद स्थान किया है ॥ विभाषा वृक्षमृग० सूत्र से अश्व वडव शब्दों को विकल्प से एकवद्भाव कहा है, सो एकवद्भाव पक्ष में तो, स नपुंसकम् (२।४।१७) से नपुंसक लिङ्ग हो गया, जिस पक्ष में एकवद्भाव नहीं हुआ उस पक्ष में इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है। पूर्ववत् लिङ्ग कहने से समास अश्व के समान लिङ्ग हो गया ॥

यहाँ से 'पूर्ववत्' की अनुवृत्ति २।४।२८ तक जायेगी ॥

हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च च्छन्दसि ॥२।४।२८॥

हेमन्तशिशिरौ १।२॥ अहोरात्रे १।२॥च अ०॥ छन्दसि ७।१॥ स०—हेमन्तश्च शिशिरं च, हेमन्तशिशिरौ, इतरेतरद्वन्द्वः। अहश्च रात्रिश्च, अहोरात्रे, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—पूर्ववत् ॥ अर्थः—हेमन्तशिशिरशब्दयोः, अहोरात्रशब्दयोश्च द्वन्द्वसमासे, छन्दसि विषये पूर्ववत् लिङ्गं भवति ॥ उदा०—हेमन्तशिशिरावृतू। वर्चो द्रविणाम् (यजु० १०।१४)। अहोरात्रे ऊर्ध्वष्ठीवे (यजु० १८।२३)। अहानि च रात्रयश्च = अहोरात्राणि ॥

भाषार्थः—[हेमन्तशिशिरौ] हेमन्त और शिशिर शब्द [च] तथा [अहोरात्रे] अहन् और रात्रि शब्दों का द्वन्द्व समास में [छन्दसि] वेद विषय में पूर्ववत् लिङ्ग होता है ॥ यहाँ परवत् लिङ्ग प्राप्त था पूर्ववत् लिङ्ग कर दिया है। हेमन्त पुलिङ्ग था, शिशिर नपुंसक लिङ्ग था, पूर्ववत् लिङ्ग करने से हेमन्त पुलिङ्ग हो गया। इसी प्रकार अहः नपुंसक लिङ्ग था रात्रि स्त्रीलिङ्ग था, सो पूर्ववत् लिङ्ग होकर नपुंसकलिङ्ग हो गया है ॥

रात्राह्नाहाः पुंसि ॥२।४।२९॥

रात्राह्नाहाः १।३॥ पुंसि ७।१॥ स०—रात्रश्च, अह्नश्च, अहश्च, रात्राह्नाहाः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अर्थः—रात्र, अह्न, अह इत्येतेषां पुंस्त्वं भवति ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

रात्राह्नाहानां कृतसमासान्तानां ग्रहणम् ॥ उदा०—द्वयोर्रा
हारः, द्विरात्रः । त्रिरात्रः । चतूरात्रः । पूर्वाह्णः । अपराह्णः ।
द्व्यहः । त्र्यहः ॥

भाषार्थः—परवल्लिङ्गं० (२।४।२६) का अपवाद यह सूत्र है
ह्नाहाः] रात्र अह्न अह इन कृत समासान्त शब्दों को [पुं
होता है ॥

अपथं नपुंसकम् ॥२।४।३०॥

अपथम् १।१॥ नपुंसकम् १।१॥ *अर्थः*—अपथशब्दो नपुं
भवति । उदा०—अपथम् इदम् । अपथानि गाहते मूढः ॥

भाषार्थः—नञ् समास किया हुआ जो [*अपथम्*] अपथ
वह [*नपुंसकम्*] नपुंसक लिङ्ग में हो ॥

उदा०—अपथम् इदम् (यह कुमार्ग है) । अपथानि गाहते
यहाँ से '*नपुंसकम्*' की अनुवृत्ति २।४।३१ तक जायगी ॥

अर्धर्चाः पुंसि च ॥२।४।३१॥

अर्धर्चाः १।३॥ पुंसि ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—नपुंसकम् ।
अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि चकारात् नपुंसके च भवन्ति ॥ उदा०—
अर्धर्चम् । गोमयः । गोमयम् ॥

भाषार्थः—[*अर्धर्चाः*] अर्धर्चादि शब्द [*पुंसि*] पुलिङ्ग में
कार से नपुंसक लिङ्ग में भी होते हैं ॥ अर्धर्चाः में बहुवच
होने से अर्धर्चादि गण लिया गया है ॥

उदा०—अर्धर्चः (आधी ऋचा) । अर्धर्चम् । गोमयः
गोबर) । गोमयम् ॥

[अन्वादेशप्रकरणम्]

इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ ॥२।४।३२॥

इदमः ६।१॥ अन्वादेशे ७।१॥ अश् १।१॥ अनुदात्तः १।१॥
७।१॥ आदिश्यते, इति आदेशः । पश्चात् आदेशः अन्वादेशः

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

या आदिर्यस्याः, सा तृतीयादिः, तस्यां……बहुव्रीहिः ॥ *अर्थः*—देशे वर्त्तमानस्य, इदं शब्दस्य ततीयादौ विभक्तौ परतः, अनुदात्तः आदेशो भवति ॥ उदा०—आभ्यां छात्राभ्यां रात्रिरधीता (आदेशवाक्यम्) अथो आभ्यामहरप्यधीतम्। अस्मै छात्राय कम्बलं देहि, अथोऽस्मै शाटकमपि देहि। अस्य छात्रस्य शोभनं शीलम्, अथोऽस्य तं स्वम् ॥

भाषार्थः—[अन्वादेशे] अन्वादेश में वर्त्तमान जो [इदमः] इदम् शब्द को [अनुदात्तः] अनुदात्त [अश्] अश् आदेश होता है, तृतीयादौ] तृतीयादि विभक्तियों के परे रहते ॥

उदा०—आभ्यां छात्राभ्यां रात्रिरधीता (आदेशवाक्य) अथो आभ्यामप्यधीतम् (इन छात्रों के द्वारा रात भर पढ़ा गया, तथा इन छात्रों ने दिन में भी पढ़ा)। अस्मै छात्राय कम्बलं देहि, अथोऽस्मै शाटकमपि (इस छात्र को कम्बल दो, तथा इसे धोती भी दो)। अस्य छात्रस्य शोभनं शीलम्, अथोऽस्य प्रभूतं स्वम् (इस छात्र की सुशीलता अच्छी और यह धनवान् भी है) ॥

कहे हुये वाक्य के पीछे, उसी को कुछ और कहने को अन्वादेश कहते हैं ॥ उदाहरण में 'आभ्यां छात्राभ्यां रात्रिरधीता' यह आदेश वाक्य है। उसके पश्चात् उन्हीं छात्रों के विषय में कुछ और कहा गया है, सो अन्वादेश है। इसी प्रकार और उदाहरणों में भी समझें। भ्याम् आदि तृतीयादि विभक्तियों के परे रहते अश् आदेश हो गया है ॥ आदेश होने पर रूप में भेद नहीं होता है। केवल स्वर में भेद है। जब *अव्ययसर्व०* (५।३।७१) से अकच् करेंगे उस समय में भेद होता है ॥ शित् होने से अश् सारे इदम् के स्थान में होता है। अन्वादेश से अन्यत्र *ऊडिदम्पदाद्यप्पुभ्रैद्युभ्यः* (६।१।१६५) से विभक्ति उदात्त होकर आभ्याम् ऐसा स्वर रहेगा। अन्वादेश स्थल में अनुदात्त आदेश होकर विभक्ति को भी *अनुदात्तौ सुप्पितौ* (३।१।३) से अनुदात्त हो गया सो आभ्याम् ऐसा स्वर रहा। अन्वादेश स्थल में ऊडिदम्प० नहीं लगाता क्योंकि वह अन्तोदात्त से उत्तर विभक्ति को उदात्त करता यहाँ अनुदात्त अश् से उत्तर है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'इदमोऽन्वादेशे, अनुदात्तः' की अनुवृत्ति जायेगी तथा 'अश्' की २।४।३३ तक जायेगी ॥

एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ ॥२।४।३३॥

एतदः ६।१॥ त्रतसोः ७।२॥ त्रतसौ १।२॥ च अ०॥ स०—त्रश्च तश्चेति त्रतसौ, तयोः.....इतरेतरद्वन्द्वः। अनु०—अन्वादेशेऽशनुदात्तः ॥ अर्थः—अन्वादेशे वर्त्तमानस्य शब्दस्य, त्रतसोः प्रत्यययोः परतोऽनुदात्तः 'अश्' आदेशश्चापि त्रतसावनुदात्तौ भवतः ॥ उदा०—एतस्मिन् ग्रामे सुखं वसामः, अथो अत्र युक्ताऽधीमहे। एतस्मात् छात्रात् छन्दोऽधीष्व व्याकरणमप्यधीष्व ॥

भाषार्थः—अन्वादेश विषय में वर्त्तमान जो [एतदः] उसे अनुदात्त अश् आदेश होता है, [त्रतसोः] त्र, तस् परे रहते, [च] और वे [त्रतसौ] त्र, तस् प्रत्यय [अनुदात्तौ] होते हैं ॥ इदम् की अनुवृत्ति का सम्बन्ध इस सूत्र में अगले सूत्र में लगेगा ॥

उदा०—एतस्मिन् ग्रामे सुखं वसामः, अथो अत्र युक्ता ग्राम में सुख से रहते हैं, और यहाँ लगकर पढ़ते भी हैं। छात्राद् व्याकरणमधीष्व, अथो अतः छन्दोप्यधीष्व (व्याकरण पढ़ो और इससे वेद भी पढ़ो) ॥

'अथो अत्र' यह अन्वादेश में है, अतः त्र, (५।३।१०) के परे रहते एतद् को अश् आदेश, होकर अत्र, अ (६।१।१८७) से प्रत्यय से पूर्व को उदात्त प्राप्त था, कर दिया है ॥

यहाँ से 'एतदः' की अनुवृत्ति २।४।३४ तक जायेगी ॥

द्वितीयाटौस्स्वेनः ॥२।४।३४॥

द्वितीयाटौस्सु ७।३॥ एनः १।१॥ स०—द्वितीया च टा द्वितीयाटौसः, तेषु.....इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—एतदः,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दात्तः ॥ अर्थः—द्वितीया, टा, ओस् इत्येतासु विभक्तिषु परतोऽन्वा-
वर्त्तमानयोः इदमेतद्शब्दयोरनुदात्त 'एन' आदेशो भवति ॥
०—इमं छात्रं छन्दोऽध्यापय, अथो एनं व्याकरणमध्यापय। टा—
न छात्रेण रात्रिरधीता, अथो एनेन अहरप्यधीतम्। ओस्—अनयो-
त्रयोः शोभनं शीलम्, अथो एनयोः प्रभूतं स्वम्। एतद्ः—एतं छात्रं
ोऽध्यापय, अथो एनं व्याकरणमध्यापय। एतेन छात्रेण रात्रिरधीता,
ो एनेन अहरप्यधीतम्। एतयोश्छात्रयोः शोभना प्रकृतिः, अथो एनयोः
वाणी ॥

भाषार्थः—[*द्वितीयाटौस्सु*] द्वितीया, टा, ओस् विभक्तियों के परे
ते अन्वादेश में वर्त्तमान जो इदम् तथा एतद् शब्द उनको अनुदात्त
नः] एन आदेश होता है ॥ उदा०—इमं छात्रं छन्दोऽध्यापय
ो रानं व्याकरणमध्यापय (इस छात्र को वेद पढ़ाओ, और
व्याकरण भी पढ़ाओ)। टा—अनेन छात्रेण रात्रिरधीता, अथो एनेन
हरप्यधीतम् (इस छात्रने रात्रि भर पढ़ा और इसने दिन में भी
)। ओस्—अनयोश्छात्रयोः शोभनं शीलम्, अथो एनयोः प्रभूतं
म् (इन दोनों छात्रों का स्वभाव अच्छा है, और खूब धन वाले हैं)।
द् का—एतं छात्रं छन्दोऽध्यापय, अथो एनं व्याकरणमध्यापय।
न छात्रेण रात्रिरधीता, अथो एनेन अहरप्यधीतम्। एतयोश्छात्रयोः
ना प्रकृतिः अथो एनयोः मृदुवाणी ॥

एन + अम् = एनम्, एन (टा) इन = एनेन, एन + ओस् = एनयोः,
वादेश विषय में हो गया है ॥

[आर्धधातुकप्रकरणम्]

आर्धधातुके॥२।४।३५॥

आर्धधातुके ७।१॥ अर्थः—'आर्धधातुके' इत्यधिकारसूत्रम्॥
ऽग्रे वक्ष्यमाणानि कार्याणि, आर्धधातुकविषये भवन्तीति वेदितव्यम्॥
उदाहरिष्यामः ॥

भाषार्थः—यह अधिकार सूत्र है, २।४।५७ तक जायेगा ॥ यहाँ से
ो जो कार्य कहेंगे, वे [*आर्धधातुके*] आर्धधातुक विषय में होंगे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

आर्धधातुके में विषय सप्तमी है, अर्थात् आगे आर्धधातु आयेगा यह मानकर (परे न हो तो भी) आर्धधातुक के ही कार्य होंगे।

विशेषः—सप्तमी तीन प्रकार की होती है। पर सप्तमी, निमित्त सप्तमी, सो यहाँ विषयसप्तमी है। किति *क्ङिति च* (१।१।५) में है, तथा परसप्तमी के अनेकों उदाहरण पर 'परे रहते' ऐसा कहा जाये वह पर सप्तमी है, तथा वह है, जहाँ वह विषय अभी आया न हो, केवल यह ऐसा विषय आगे आयेगा, सो ऐसा मानकर कार्य हो। *अस्तेर्भूः* (२।४।५२) में आर्धधातुक का विषय आयेगा, ऐसे ही आर्धधातुक प्रत्यय लाने से पूर्व ही भू आदेश कर दो। सप्तमी का विशेष प्रयोजन *अस्तेर्भूः* (२।४।५२) *ब्रुवो वचिः* (२।४।५३-५४) में ही है, न कि सब सूत्रों में। *आर्धधातुकं* (३।१।११४) से *धातोः* (३।१।९१) के अधिकार में धातु से आने प्रत्ययों की आर्धधातुक संज्ञा कही है॥

अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति ॥२।४।३६॥

अदः ६।१॥ जग्धिः १।१॥ ल्यप् लुप्तसप्तम्यन्तनिर्देशः किति ७।१॥ अनु०—आर्धधातुके॥ अर्थः—अदो जग्धिः ल्यपि आर्धधातुके परतः, तकारादौ किति चार्धधातुके उदा०—प्रजग्ध्य। विजग्ध्य। जग्धः। जग्धवान्॥

भाषार्थः—[अदः] अद को [*जग्धिः*] जग्धि आदेश [*ल्यप्ति किति*] ल्यप् तथा तकारादि कित् आर्धधातुक के जग्धि में इकार उच्चारण के लिए लगाया है, वस्तुतः होता है॥

यहाँ से 'अदः' की अनुवृत्ति २।४।४० तक जायगी॥

लुङ्सनोर्घस्लृ ॥२।४।३७॥

लुङ्सनोः ७।२॥ घस्लृ १।१॥ स०—लुङ् च सन् च लुङ्सनौ तयोः इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—अदः, आर्धधातुके॥ अर्थः-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

र्धधातुके परतः अदधातोः 'घस्लृ' आदेशो भवति ॥ उदा०—अघ-
। सनि—जिघत्सति । जिघत्सतः ॥

भाषार्थः—[लुङ्सनोः] लुङ् और सन् आर्धधातुक के परे रहते धातु को [घस्लृ] घस्लृ आदेश होता है ॥

घञपोश्च ॥२।४।३८॥

घञपोः ७।२॥ च अ० ॥ स०—घञ् च अप् च, घञपौ, तयोः..... तरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अदः, आर्धधातुके ॥ अर्थः—घञि अपि च र्धधातुके परतः, अदो घस्लृ—आदेशो भवति ॥ उदा०—घासः । सः ॥

भाषार्थः—[घञपोः] घञ् और अप् आर्धधातुक के परे रहते [च] अद धातु को घस्लृ आदेश होता है ॥ उदा०—घासः (भोजन) सः (भोजन) ॥

अद् धातु से *भावे* (३।३।१८) से घञ् होकर घस्लृ आदेश हुआ है। ० १।१।१ भागः के समान सिद्धि समझें। प्रघसः में *उपसर्गेऽदः* ३।५९) से अप् प्रत्यय हुआ है। यहाँ वृद्धि ञित् णित् प्रत्यय परे होने से नहीं हुई ॥

यहाँ से 'घञपोः' की अनुवृत्ति २।४।३९ तक जायगी ॥

बहुलं छन्दसि ॥२।४।३९॥

बहुलम् १।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—घञपोः, अदः, आर्धधातुके ॥ —छन्दसि विषये घञि, अपि चार्धधातुके परतो बहुलम् अदो घस्लृ आदेशो भवति ॥ उदा०—अश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने (अथ० ५।५।६)। न च भवति—अष्टा महो दिव आदो हरी इव (ऋ० १।१-८)। अपि—प्रघसः। न च भवति—प्रादः। अन्यत्रापि बहुलग्रहणात्—नूनम् (यजु० २१।४३।) सग्धिश्च मे (यजु० १८।९) ॥

भाषार्थः—[छन्दसि] छन्द विषय में घञ, अप् परे रहते, अद को आदेश [बहुलम्] बहुल करके होता है॥ बहुल कहने से घञ् तथा परे रहते घस् आदेश हो भी गया, और नहीं भी हुआ है। एवं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

जहाँ घञ् अप् परे नहीं भी था वहाँ भी घस्लृ भाव हो जाता है। 'घस्ताम्' लङ् लकार में, तथा सग्धि क्तिन् परे रहते भी हो जाता है। परि० १।१।५७ में देखें ॥

लिट्यन्यतरस्याम् ॥२।४।४०॥

लिटि ७।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ अनु०—अदः, घस्लृ॥ अर्थः—लिटि परतोऽदो अन्यतरस्यां 'घस्लृ' आदेशो भवति। जघास, जक्षतुः, जक्षुः। पक्षे—आद, आदतुः, आदुः॥

भाषार्थः—[*लिटि*] लिट् परे रहते अद को [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से घस्लृ आदेश होता है ॥ परि० १।१।५७ में जक्षतुः जक्षुः देखें। जघास में णल् के परे *अत उपधायाः* (७।२।११६) से वृद्धि गई, यही विशेष है। यहाँ *असंयोगा०* (१।२।५) से क्ङिति उपधालोप नहीं हुआ। जब घस्लृ आदेश नहीं हुआ तब 'आद' बन गया है ॥

यहाँ से सारे सूत्र की अनुवृत्ति २।४।४१ तक जायेगी॥

वेञो वयिः ॥२।४।४१॥

वेञः ६।१॥ वयिः १।१॥ अनु०—लिट्यन्यतरस्याम्॥ अर्थः—वेञः स्थाने 'वयिः' आदेशो विकल्पेन भवति लिटि परतः ॥ उदा०—उवाय, ऊयतुः, ऊयुः। ऊवतुः, ऊवुः॥

भाषार्थः—[*वेञः*] वेञ् को [*वयिः*] वयि आदेश विकल्प से लिट् धातुक के परे रहते हो जाता है ॥

हनो वध लिङि ॥२।४।४२॥

हनः ६।१॥ वध लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ लिङि आर्धधातुके ॥ अर्थः—हनो वध आदेशो भवति लिङि परतः ॥ उदा० वध्यात्, वध्यास्ताम्, वध्यासुः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Initiative

भाषार्थः—[हनः] हन को [वध] वध आदेश आर्धधातुक [लिङि] के परे रहते हो जाता है ॥ लिङाशिषि (३।४।११६) से आशीर्लिङ् आर्धधातुक होता है, विधिलिङ् नहीं ॥

यहाँ से 'हनो वध' की अनुवृत्ति २।४।४४ तक जायगी ॥

लुङि च ॥२।४।४३॥

लुङि ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—हनो वध, आर्धधातुके ॥ अर्थः—आर्धधातुके परतो हनधातोः 'वध' आदेशो भवति ॥ उदा०—धीत् । अवधिष्टाम् । अवधिषुः ॥

भाषार्थः—[लुङि] लुङ् आर्धधातुक के परे रहते [च] भी हन को आदेश हो जाता है ॥ अवधीत् की सिद्धि परि० १।१।५६ में देखें। धिष्टाम् में भी पूर्ववत् तस् को ताम् तथा आदेशप्रत्यय० (८।३।५९) से को ष्, ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से त् को ट् होकर अवधिष्टाम् बना शेष पूर्व-ही है। अवधिषुः में झि को जुस् सिजभ्यस्त० (३।४।१०९) से होकर धिष् उस् = अवधिषुः पूर्ववत् सब कार्य होकर बन गया है ॥

आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥२।४।४४॥

आत्मनेपदेषु ७।३॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ अनु०—हनो वध, आर्धधातुके ॥ अर्थः—लुङ्लकारे, आत्मनेपदेषु प्रत्ययेषु परतो हनो वध आदेशो विकल्पेन भवति ॥ उदा०—आवधिष्ट, आवधिषाताम्, आवधिषत। आहत, आहसाताम्, आहसत ॥

भाषार्थः—लुङ् लकार में [आत्मनेपदेषु] आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्ययों के परे रहते [अन्यतरस्याम्] विकल्प करके हन को वध आदेश होता है, सूत्र १।२।१४ में आहत आदि की सिद्धि समझें। यहाँ आङो यमहनः (१।३।२८) से आत्मनेपद होता है ॥ आ अट् वध इट् स् त = आ वध इ ष त, इस अवस्था में पूर्ववत् षत्व तथा ष्टुत्व होकर आवधिष्ट बन गया ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इणो गा लुङि ॥२।४।४५॥

इणः ६।१॥ गा १।१॥ लुङि ७।१॥ अनु०—आर्धधातुके॥ इणधातोः 'गा' आदेशो भवति लुङ्यार्धधातुके परतः॥ अगात्। अगाताम्। अगुः॥

भाषार्थः—[*इणः*] इण् को [*गा*] गा आदेश [*लुङि*] धातुक परे रहते हो जाता है॥ अट् गा स् त् इस अवस्था लुक् *गातिस्थाघु०* (२।४।७७) से होकर अगात् (वह गया) पूर्ववत् है। अगुः में झि को जुस् *आतः* (३।४।११०) से हुआ

यहाँ से '*इणः*' की अनुवृत्ति २।४।४७ तक जायेगी॥

णौ गमिरबोधने ॥२।४।४६॥

णौ ७।१॥ गमिः १।१॥ अबोधने ७।१॥ स०—न बोधः तस्मिन्……नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—इणः, आर्धधातुके॥ आर्धधातुके परतः, अबोधनार्थस्य = अज्ञानार्थस्य इणो भवति॥ उदा०—गमयति। गमयतः। गमयन्ति॥

भाषार्थः—[*णौ*] णिच् आर्धधातुक के परे रहते [अबोध] नार्थक अर्थात् अज्ञानार्थक इण् धातु को [गमिः] गमि आदेश है॥ गमि में इकार उच्चारणार्थ है॥

उदा०—गमयति (भेजता है)। गमयतः। गमयन्ति॥ सिद्धि हम बहुत बार कर आये हैं, सो उसी प्रकार समझें।

यहाँ से '*गमिः*' की अनुवृत्ति २।४।४८ तक तथा 'अबोधने' तक जायेगी॥

सनि च ॥२।४।४७॥

सनि ७।१॥ च अ०॥ अनु०—गमिरबोधने, इणः, आर्धधातुके॥ अर्थः—अबोधनार्थस्य 'इणः' सनि आर्धधातुके परतो भवति॥ उदा०—जिगमिषति। जिगमिषतः। जिगमिषन्ति॥

भाषार्थः—[*सनि*] सन् आर्धधातुक-प्रत्यय के परे रहते अबोधनार्थक इण् धातु को गमि आदेश हो जाता है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—जिगमिषति (जाना चाहता है)। जिगमिषतः। जिगमिषन्ति॥ न्त की सिद्धियाँ भी हम पूर्व दिखा चुके हैं, उसी प्रकार समझें। ास के ग् को ज् कुहोश्चुः (७।४।६२) से होकर, सन्यतः (७।४।७९) इत्व हो गया है॥

यहाँ से 'सनि' की अनुवृत्ति २।४।४८ तक जायेगी॥

इङश्च ॥२।४।४८॥

इङः ६।१॥ च अ०॥ अनु०—सनि, गमिः, आर्धधातुके॥ अर्थः—धातोः सन्यार्धधातुके परतो गमिरादेशो भवति॥ उदा०—अधिगांसते। अधिजिगांसेते॥

भाषार्थः—[इङः] इङ् धातु को [च] भी सन् प्रत्यय के परे गमि देश हो जाता है॥ उदा०—अधिजिगांसते (पढ़ना चाहता है)। धिजिगांसेते॥

इङ् के ङित् होने से अनुदात्तङित० (१।३।१२) से उदाहरण में त्मनेपद होगा। अज्झनगमां० (६।४।१६) से ग के अ को दीर्घ, तथा म् अनुस्वार नश्चापदान्तस्य झलि (८।३।२४) से हो गया है। शेष सिद्धि न्त के समान ही है॥ इङ् धातु का अधि पूर्वक ही प्रयोग होता अतः वैसे ही उदाहरण दिये हैं॥

यहाँ से 'इङः' की अनुवृत्ति २।४।५१ तक जायेगी॥

गाङ् लिटि ॥२।४।४९॥

गाङ् १।१॥ लिटि ७।१॥ अनु०—इङः, आर्धधातुके॥ अर्थः—इङः आदेशो भवति लिट्यार्धधातुके परतः॥ उदा०—अधिजगे। धिजगाते। अधिजगिरे॥

भाषार्थः—इङ् को [गाङ्] गाङ् आदेश [लिटि] लिट् लकार परे ते होता है॥ उदा०—अधिजगे (उसने पढ़ा)। अधिजगाते। धिजगिरे॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लिटस्तझयो० (३।४।८१) से त को एश् तथा *आतो लोप०* (६।४।६४) से आकार लोप होकर 'अधि ग् ए' इस अवस्था में *द्विर्वचनेऽचि* (१।१।५९) से स्थानिवद्भाव होकर *लिटि धातोर०* (६।१।८) से द्वित्व हुआ, 'अधि गा ग् ए' ऐसा बनकर पूर्ववत् अभ्यास कार्य होकर अधिजगे।

यहाँ से '*गाङ्*' की अनुवृत्ति २।४।५१ तक जायेगी॥

विभाषा लुङ्लृङोः ॥२।४।५०॥

विभाषा १।१॥ लुङ्लृङोः ७।२॥ स०—लुङ् च लृङ् च तयोः.....इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—इङः, गाङ्, आदेः॥ अर्थः—इङ्धातोर्विभाषा गाङ् आदेशो भवति, लुङि लृङि च परतः॥ उदा०—अध्यगीष्ट, अध्यगीषाताम्। पक्षे—अध्येषाताम्। लृङ्—अध्यगीष्यत, अध्यगीष्येताम्। पक्षे—अध्येष्येताम्॥

भाषार्थः—इङ् धातु को [*विभाषा*] विकल्प से गाङ् आदेश [लुङ्लृङोः] लुङ् लृङ् लकार परे रहते हो जाता है॥

यहाँ से '*विभाषा*' की अनुवृत्ति २।४।५१ तक जायेगी॥

णौ च संश्चङोः ॥२।४।५१॥

णौ ७।१॥ च अ०॥ संश्चङोः ७।२॥ स०—सन् च चङ् च तयोः.....इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—विभाषा, गाङ्, इङः, आदेः॥ अर्थः—सन्परे यो णिच्, चङ् परे च यो णिच् तयोः परतः इङ् धातोर्विकल्पेन गाङ् आदेशो भवति॥ उदा०—अधिजिगापयिषति, अध्यापयिषति। चङि—अध्यजीगपत्, अध्यापिपत्॥

भाषार्थः—[*संश्चङोः*] सन् परे है जिससे तथा चङ् परे है ऐसा जो [*णौ*] णिच्, उसके परे रहते [च] भी इङ् धातु को गाङ् आदेश होता है॥

अस्तेर्भूः ॥२।४।५२॥

अस्तेः ६।१॥ भूः १।१॥ अनु०—आर्धधातुके॥ अर्थः—स्थाने 'भू' इत्ययमादेशो भवति, आर्धधातुके विषये॥ उदा०—भवितुम्, भवितव्यम्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—आर्धधातुक का विषय यदि उपस्थित हो तो [अस्तेः] अस् को [भूः] भू आदेश होता है ॥ परि० १।१।४८ में सिद्धियाँ देखें ॥

ब्रुवो वचिः ॥२।४।५३॥

ब्रुवः ६।१॥ वचिः १।१॥ अनु०—आर्धधातुके ॥ अर्थः—आर्धधातुके ये ब्रूञ्धातोः, वचिरादेशो भवति ॥ उदा०—वक्ता, वक्तुम्, वक्तव्यम् ॥

भाषार्थः—आर्धधातुक विषय में [ब्रुवः] ब्रूञ् धातु को [वचिः] वचि आदेश होता है ॥ परि० १।१।४८ में सिद्धि देखें। वचि में इकार उच्चारण के लिये है, वस्तुतः वच् आदेश होता है ॥

चक्षिङः ख्याञ् ॥२।४।५४॥

चक्षिङः ६।१॥ ख्याञ् १।१॥ अनु०—आर्धधातुके ॥ अर्थः—चक्षिङ्धातोः ख्याञ् आदेशो भवति, आर्धधातुके विषये ॥ उदा०—आख्याता, आख्यातुम्, आख्यातव्यम् ॥

भाषार्थः—[चक्षिङः] चक्षिङ् धातु को [ख्याञ्] ख्याञ् आदेश आर्धधातुक विषय में होता है ॥

उदा०—आख्याता (कहने वाला)। आख्यातुम्। आख्यातव्यम्। पूर्ववत् परि० १।१।४८ के समान ही सिद्धियाँ हैं। ख्याञ् में ञकार उच्चारणसम्बन्ध लगाया है ॥

यहाँ से 'चक्षिङः ख्याञ्' की अनुवृत्ति २।४।५५ तक जायेगी ॥

वा लिटि ॥२।४।५५॥

वा अ० ॥ लिटि ७।१॥ अनु०—चक्षिङः ख्याञ्, आर्धधातुके ॥ अर्थः—लिङ्याआर्धधातुके परतः चक्षिङः ख्याञ् आदेशो वा भवति ॥ उदा०—आचख्यौ, आचख्यतुः, आचख्युः। आचचक्षे, आचचक्षाते, आचचक्षिरे ॥

भाषार्थः—[लिटि] लिट् आर्धधातुक के परे रहते, चक्षिङ् धातु को विकल्प से ख्याञ् आदेश होता है ॥ उदा०—आचख्यौ (उसने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कहा) आचख्यतुः, आचख्युः। आचचक्षे, आचक्षाते, आचक्षिरे॥ आचख्यतुः आचख्युः की सिद्धि परि० १।१।५८ के समान जानें। केवल यहाँ ख्याञ् आदेश ही विशेष है। 'णल्' को आत औ णलः (७।१।३४) से औकारादेश होकर वृद्धि देश हो गया है। आचचक्षे में चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश हो सो पूर्ववत् द्वित्व अभ्यास कार्य और 'त' को एश् (३।४।८१) च चक्ष् ए = आचचक्षे बना। आचचक्षिरे में झ को इरेच् हो गया है॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति २।४।५६ तक जायेगी॥

अजेर्व्यघञपोः ॥२।४।५६॥

अजेः ६।१॥ वी १।१॥ अघञपोः ७।२॥ स०—घञ् च घञपौ, इतरेतरद्वन्द्वः न घञपौ अघञपौ, तयोः..... अनु०—वा आर्धधातुके॥ अर्थः—अजधातोः 'वी' आदेशो भवति, आर्धधातुके परतः, घञपौ वर्जयित्वा॥ उदा०—प्रवेता। प्राजिता। प्रवेतुम्। प्राजितुम्। प्रवेतव्यम्। प्राजितव्यम्॥

भाषार्थः—[अजेः] अज धातु को [वी] वी आदेश आर्धधातुक परे रहते होता है, [अघञपोः] घञ् अप् आर्धधातुक छोड़कर॥ उदा०—प्रवेता (ले जाने वाला)। प्राजिता। प्रवेतुम्। प्राजितुम्। प्रवेतव्यम्। प्राजितव्यम्॥ परि० १।१।४८ के समान ही हिंसा जब 'अज' आदेश नहीं हुआ तो सेट् होने से इडागम, तथा वी आदेश हुआ तो एकाच उपदेशे० (७।२।१०) से इट् निषेध होकर धातु० (७।३।८४) से गुण हो गया॥

यहाँ से 'अजेः' की अनुवृत्ति २।४।५७ तक जायेगी॥

वा यौ ॥२।४।५७॥

वा १।१॥ यौ ७।१॥ अनु०—अजेः, आर्धधातुके॥ अर्थः—'वा' आदेशो भवति, यौ = औणादिके युचि प्रत्यये परतः॥ वायुः॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—अज को [वा] आदेश होता है, औणादिक [यौ] युच् धातुक-प्रत्यय के परे रहते ॥ यहाँ यु को *युवोरनाकौ* से अन आदेश होता क्योंकि *युवोरनाकौ* से सानुनासिक यु, वु को ही अन, आदेश हैं, और यह निरनुनासिक यु है ॥ *यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो* (उणा० ३।२०) इस उणादिसूत्र से युच् प्रत्यय होता है, सो लुक से अज धातु से भी युच् प्रत्यय हो जाता है ॥

[लुक्प्रकरणम्]

ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः ॥२।४।५८॥

ण्यक्षत्रियार्षञितः ५।१॥ यूनि ७।१॥ लुक् १।१॥ अणिञोः ६।२॥ —ञ् इत् यस्य स ञित्, ण्यश्च क्षत्रियश्च आर्षश्च ञिच्च ण्यक्षत्रिय-ञित्, तस्मात्·····बहुव्रीहिगर्भसमाहारो द्वन्द्वः। अण् च इञ् अणिञौ, तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अर्थः—ण्यन्तात् गोत्रप्रत्ययान्तात्, क्षत्रियवाचिगोत्रप्रत्ययान्तात्, ऋषिवाचिगोत्रप्रत्ययान्तात्, ञित्गोत्र-प्रत्ययान्ताच्च युवापत्ये विहितयोः, अण्इञोर्लुग् भवति ॥ उदा०— गर्ग्यः पिता, गार्ग्यः पुत्रः। क्षत्रिय—श्वाफल्कः पिता, श्वाफल्कः पुत्रः। ऋषि—वासिष्ठः पिता, वासिष्ठः पुत्रः। ञित्-बैदः पिता, बैदः पुत्रः। तैकायनिः पिता, तैकायनिः पुत्रः ॥

भाषार्थः—[*ण्यक्षत्रियार्षञितः*] ण्यन्त गोत्रप्रत्ययान्त, क्षत्रियवाचि प्रत्ययान्त, ऋषिवाची गोत्र प्रत्ययान्त, तथा ञ् जिनका इत् गया हो जो गोत्र प्रत्ययान्त शब्द, उनसे जो [यूनि] युवापत्य में आये [अणिञोः] अण् और इञ् प्रत्यय, उनका [लुक्] लुक् हो जाता है ॥

ण्य, क्षत्रिय, आर्ष से युवापत्य में अण् का उदाहरण नहीं मिलता, 'ञित् से उत्पन्न अण्' का ही उदाहरण दिया है ॥

यहाँ से 'यूनि' की अनुवृत्ति २।४।६१ तथा 'लुक्' की अनुवृत्ति ।८३ तक जायगी ॥

पैलादिभ्यश्च ॥२।४।५९॥

पैलादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—पैल आदिर्येषां ते पैलादयस्तेभ्यः ·····बहुव्रीहिः ॥ अनु०—यूनि लुक् ॥ अर्थः—पैलादिभ्यो गोत्र-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वाचिभ्यः शब्देभ्यः, युवापत्ये प्रत्ययस्य लुग् भवति॥ पिता, पैलः पुत्रः॥

भाषार्थः—गोत्रवाची जो [*पैलादिभ्यः*] पैलादि शब्द भी युवापत्य में विहित जो प्रत्यय उसका लुक् हो जाता है।

पीला शब्द से गोत्रापत्य में *पीलाया वा* (४।१।११८) से इञ् हुआ हैं, तदन्त से पुनः युवापत्य में जो *अणो द्व्यचः* (४ फिञ् आया उसका लुक् प्रकृत सूत्र से हो गया, सो पिता पैलः कहलाये॥ पैलादि गण में जो इञन्त शब्द हैं, उनसे (४।१।१०१) से युवापत्य में प्राप्त फक् का तथा जो फिञ् हैं उनसे युवापत्य में *प्राग्दीव्यतो०* (४।१।८३) से प्राप्त अण् गया है॥

इञः प्राचाम् ॥२।४।६०॥

इञः ५।१॥ प्राचाम् ६।३॥ अनु०—यूनि लुक्॥ गोत्रे विहितो य इञ् तदन्तात् युवप्रत्ययस्य लुग् भवति। पान्नागारिः पिता, पान्नागारिः पुत्रः। मान्थरैषणिः पिता, पुत्रः॥

भाषार्थः—[*प्राचाम्*] प्राग्देश वाले गोत्रापत्य में विहित इञ् प्रत्यय तदन्त से, युवापत्य में विहित प्रत्ययों का लुक् गोत्र में *अत इञ्* (४।१।९५) से इञ् हुआ था सो युवा *यञिञोश्च* (४।१।१०१) से फक् आया, उसका लुक् हो गया है

न तौल्वलिभ्यः ॥२।४।६१॥

न अ०॥ तौल्वलिभ्यः ५।३॥ अनु०—यूनि लुक्॥ लुकि प्राप्ते प्रतिषिध्यते। गोत्रवाचिभ्यः तौल्वल्यादिभ्यो विहितस्य प्रत्ययस्य लुङ् न भवति॥ उदा०—तौल्वलिः लायनः पुत्रः॥

भाषार्थः—गोत्रवाची [*तौल्वलिभ्यः*] तौल्वलि आदि विहित जो युवापत्य में प्रत्यय उसका लुक् [*न*] नहीं होता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सब गण पठित शब्दों में गोत्रापत्य में इञ् आता है, सो उससे जो युवापत्य में *यञिञोश्च* (४।१।१०१) से फक् आयेगा, उसका नहीं हुआ तो तौल्वलायनः पुत्रः आदि प्रयोग बने। इस प्रकार सूत्र से जो लुक् की प्राप्ति थी, उसका यह निषेध सूत्र है॥ तौल्व-ञ्यः में बहुवचन ग्रहण करने से तौल्वल्यादि गण लिया गया है॥

तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् ॥२।४।६२॥

तद्राजस्य ६।१॥ बहुषु ७।३॥ तेन ३।१॥ एव अ०॥ अस्त्रियाम् ॥ स०—न स्त्री, अस्त्री, तस्याम्·····नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—॥ अर्थः—अस्त्रीलिंगस्य बहुषु वर्त्तमानस्य तद्राजसंज्ञकस्य प्रत्ययस्य भवति, यदि तेनैव = तद्राजसंज्ञकेनैव कृतं बहुत्वं स्यात्॥ उदा०—ाः, वङ्गाः, मगधाः, कलिङ्गाः॥

भाषार्थः—[बहुषु] बहुत्व अर्थ में वर्त्तमान [तद्राजस्य] तद्राज संज्ञक प्रत्यय का लुक् हो जाता है, [अस्त्रियाम्] स्त्रीलिंग को छोड़कर, वह बहुत्व [तेनैव] तद्राज सञ्ज्ञक कृत हो॥ *ते तद्राजाः* (२।४।६२) तथा *ञ्यादयस्तद्राजाः* (५।३।११९) से तद्राज संज्ञा है॥

यहाँ से 'बहुषु तेनैव' की अनुवृत्ति २।४।७० तक जायेगी, तथा 'स्त्रियाम्' की अनुवृत्ति २।४।६५ तक जायगी॥

यस्कादिभ्यो गोत्रे ॥२।४।६३॥

यस्कादिभ्यः ५।३॥ गोत्रे ७।१॥ स०—यस्क आदिर्येषां ते यस्कादयः, य·····बहुव्रीहिः॥ अनु०—लुक्, बहुषु तेनैवास्त्रियाम्॥ अर्थः—ादिभ्यो विहितो यो गोत्रप्रत्ययस्तस्य बहुषु वर्त्तमानस्य, अस्त्रीलिंगस्य भवति, यदि तेनैव = गोत्रप्रत्ययेनैव कृतं बहुत्वं स्यात्॥ उदा०—ाः। लभ्याः॥

भाषार्थः—[यस्कादिभ्यः] यस्कादि गण पठित शब्दों से विहित ञ अर्थ में जो [गोत्रे] गोत्रप्रत्यय उसका लुक् हो जाये, स्त्रीलिंग को छोड़कर, यदि वह बहुत्व, गोत्र प्रत्यय कृत हो॥ यस्काः आदि में गोत्रा-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पत्य में यस्कस्य गोत्रापत्यानि बहूनि इस अर्थ में शिवादिभ्यो ११२) से जो अण् आया उसका प्रकृत सूत्र से तत्कृत लुक् हो गया है, सो यास्कः, यास्कौ, यस्काः ऐसे रूप चलेंगे।

यहाँ से 'गोत्रे' की अनुवृत्ति २।४।७० तक जायगी॥

यञञोश्च ॥२।४।६४॥

यञञोः ६।२॥च अ०॥ स०—यञ् च अञ् च, यञञौ, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—गोत्रे, लुक्, बहुषु तेनैवास्त्रियाम्, गोत्रे विहितस्य, यञ्प्रत्ययस्य अञ्प्रत्ययस्य च लुग् भवति, गोत्रप्रत्ययकृतं यदि बहुत्वं स्यात्, स्त्रीलिङ्गं विहाय॥ उदा०—वत्साः। अञ्—बिदाः, उर्वाः॥

भाषार्थः—गोत्र में विहित जो [यञञोः] यञ् और अञ् [च] भी तत्कृत बहुत्व में लुक् होता है, स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर। गर्गाः की सिद्धि परि० १।१।६२ में देखें। विदाः उर्वाः में अञ् (४।१।१०४) से बहुत अपत्यों को कहने में जो अञ् प्रत्यय उसका लुक् प्रकृत सूत्र से होकर तन्निमित्तक वृद्धि आदि भी बैदौ बिदाः ऐसे रूप चलेगें॥

अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च ॥२।४।६५॥

अत्रिभृगु……रोभ्यः ५।३॥ च अ०॥ स०—अत्रिश्च भृगुश्च वसिष्ठश्च गोतमश्च, अङ्गिराश्चेति = अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यः……इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—गोत्रे, लुक्, बहुषु तेनैव अर्थः—अत्रि, भृगु, कुत्स, वसिष्ठ, गोतम, अङ्गिरस् इत्येतेभ्यो गोत्रे विहितस्य प्रत्ययस्य तत्कृतबहुवचने लुग् भवति, स्त्रीलिङ्गं उदा०—अत्रयः, भृगवः, कुत्साः, वसिष्ठाः, गोतमाः, अङ्गिरसः।

भाषार्थः—[अत्रि……भ्यः] अत्रि, भृगु, कुत्स, वसिष्ठ, अङ्गिरस् इन शब्दों से तत्कृत बहुत्व गोत्रापत्य में विहित उसका [च] भी लुक् हो जाता है॥ अत्रि शब्द से (४।१।१२२) से बहुत्व में जो ढक् प्रत्यय हुआ, उसका लुक् हो (अत्रि के पौत्रादि) बना। एकवचन द्विवचन में ढक् का लुक्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Initiative

त्रेय: आत्रेयौ बनेगा। शेष भृगु आदियों से ऋष्यन्धक० (४।१।११४) अण् प्रत्यय बहुत्व अर्थ में हुआ है, सो उसका लुक् हो गया। भृगु जसि च (७।३।१०९) से गुण होकर भृगव: बना है॥

बह्वच इञ: प्राच्यभरतेषु ॥२।४।६६॥

बह्वच: ५।१॥ इञ: ६।१॥ प्राच्यभरतेषु ७।३॥ स०—प्राक्षु भवा: प्राच्या:, प्राच्याश्च भरताश्च प्राच्यभरतास्तेषु ..... इतरेतरद्वन्द्व:। बह्वो यस्मिन् स बह्वच्, तस्मात् ..... बहुव्रीहि:॥ अनु०—गोत्रे, लुक्, बहुषु तेनैव॥ अर्थ:—बह्वच्शब्दात् प्राच्यगोत्रे भरतगोत्रे च य विहितस्तस्य तत्कृत=गोत्रप्रत्ययकृतबहुवचने लुग् भवति॥ उदा०—पन्नागारा:, मन्थरेषणा:। भरतगोत्रे—युधिष्ठिरा:, अर्जुना:॥

भाषार्थ:— [बह्वच:] बह्वच् शब्द से [प्राच्यभरतेषु] प्राच्यगोत्र तथा भरतगोत्र में विहित जो [इञ:] इञ् प्रत्यय उसका तत्कृतबहुवचन में लुक् हो जाता है॥

उदा०—पन्नागारा:, मन्थरेषणा: (मन्थरेषण नामक व्यक्ति के बहुत से पौत्र प्रपौत्र आदि)। भरतगोत्र में—युधिष्ठिरा:, अर्जुना:॥

पन्नागार युधिष्ठिर आदि बह्वच् शब्द हैं, सो उनके बहुत से पौत्र आदियों को कहने में गोत्र प्रत्यय जो अत इञ् (४।१।९५) से इञ् आया उसका लुक् हो गया है॥ एकत्व द्वित्व अर्थ में लुक् न होने से पान्नागारि:, पान्नागारी' बनता है॥

न गोपवनादिभ्य: ॥२।४।६७॥

न अ० ॥ गोपवनादिभ्य: ५।३॥ स०-गोपवन आदिर्येषां, ते गोपवनादय: तेभ्य: ..... बहुव्रीहि:॥ अनु०—गोत्रे, लुक्, बहुषु तेनैव॥ अर्थ:—गोपवनादिभ्य: परस्य गोत्रे विहितस्य प्रत्ययस्य तत्कृतबहुवचने लुक् न भवति॥ विदाद्यन्तर्गणोऽयं गोपवनादि:, तत्र अनृष्या०(४।१।१०४) इति 'अञ्' प्रत्ययान्तत्वाद् यञञोश्च(२।४।६४)इति लुकि प्राप्ते प्रतिषिध्यते॥ उदा०—गौपवना:, शैग्रवा:॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*गोपवनादिभ्यः*] गोपवनादि शब्दों से परे [गोत्र] का तत्कृत बहुवचन में लुक् [न] नहीं होता है॥ गोपवन बिदादिगण के अन्तर्गत ही हैं, सो *अनृष्यानन्तर्य*० से हुये अञ् का बहुत्व में *यञञोश्च* से लुक् प्राप्त था, उसका प्रतिषेध कर दिया, तो गौपवनाः ही बना॥

तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे ॥२।४।६८॥

तिककितवादिभ्यः ५।३॥ द्वन्द्वे ७।१॥ स०—तिकश्च कितवौ, आदिश्च आदिश्च आदी, तौ आदी येषां ते तिककितवा····द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः॥ अनु०—गोत्रे, लुक्, बहुषु तेनैव॥ द्वन्द्वसमासे तिकादिभ्यः कितवादिभ्यः परस्य गोत्रे विहितस्य तत्कृतबहुवचने लुग् भवति॥ उदा०—तैकायनयश्च कैतवश्च तिककितवाः। वाङ्गरयश्च भाण्डीरथयश्च = वङ्गरभाण्डीरथाः।

भाषार्थः—[*तिककितवादिभ्यः*] तिकादि एवं कितवादि शब्दों से [द्वन्द्वे] द्वन्द्व समास में, तत्कृत बहुत्व में आये प्रत्यय का लुक् होता है॥ उदाहरण "तिककितवाः" में तिक दोनों शब्दों से *तिकादिभ्यः फिञ्* (४।१।१५४) से फिञ् प्रत्यय लुक् हुआ है। "वाङ्गरभाण्डीरथाः" में दोनों शब्दों से (४।१।९५) से इञ् प्रत्यय होकर लुक् हुआ है॥ चार्थे द्वन्द्वः से द्वन्द्व समास सर्वत्र हो ही जायगा॥

उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे ॥२।४।६९॥

उपकादिभ्यः ५।३॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ अद्वन्द्वे ७।१॥ आदिर्येषां ते उपकादयस्तेभ्यः·····बहुव्रीहिः। न द्वन्द्वः अद्वन्द्वः ·····नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—गोत्रे, लुक्, बहुषु तेनैव॥ दिभ्यः शब्देभ्यो गोत्रे विहितस्य प्रत्ययस्य तत्कृतबहुवचने लुग् भवति, द्वन्द्वे चाद्वन्द्वे च॥ उदा०—उपकलमकाः, ष्टलाः, कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः। एते त्रयः शब्दाः कृतद्वन्द्वाः आदिषु पठिताः, तेषु सूत्रेण नित्यं लुक् भवति, अद्वन्द्वे तत्रैव

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वति। उपकाः औपकायनाः, लमकाः लामकायनाः इत्यादिः। परिशिष्टानां तु द्वन्द्वेऽद्वन्द्वे सर्वत्र विकल्पो भवति ॥

भाषार्थः—[*उपकादिभ्यः*] उपकादि शब्दों से परे गोत्र में विहित तत्कृत-बहुवचन में प्रत्यय उनका लुक् [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प होता है [*अद्वन्द्वे*] द्वन्द्व समास में भी और अद्वन्द्व समास भी ॥

यहाँ 'अद्वन्द्वे' ग्रहण ऊपर से आने वाले 'द्वन्द्वे' के अधिकार की समाप्ति के लिये है, न कि "द्वन्द्व समास में न हो" इसलिए है, अतः यहाँ द्वन्द्व और अद्वन्द्व दोनों में ही विकल्प होता है ॥

गण पठित उपकलमकाः भ्रष्टककपिष्ठलाः, कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः ये सब शब्द द्वन्द्व समास किये हुए तिककितवादि गण में पढ़े हैं, अतः इन्हें पूर्व सूत्र से ही नित्य लुक् प्राप्त था, यहाँ अद्वन्द्व में विकल्प के लिए कहा है। यथा उपकाः, औपकायनाः लमकाः, लामकायनाः आदि। शेष सब गणपठित शब्दों में द्वन्द्व एवं अद्वन्द्व दोनों में विकल्प होता है ॥ उपक और लमक शब्दों से *नडादिभ्यः* फक् (४।१।९९) से गोत्र प्रत्यय फक् हुआ था, उसी का इस सूत्र से लुक् हुआ है ॥ अद्वन्द्व में विकल्प होने से पक्ष में श्रवण भी हो गया है। भ्रष्टक एवं कपिष्ठल शब्दों से *अत इञ्* (४।१।९५) से गोत्र प्रत्यय इञ् हुआ है, उसी का इस सूत्र ने लुक् कर दिया है। एवं कृष्णाजिन में गोत्र प्रत्यय अण् तथा कृष्णसुन्दर में फिञ् इञ् प्रत्यय हुआ था, उसी का यहाँ लुक् हो गया है ॥

आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच् ॥२।४।७०॥

आगस्त्यकौण्डिन्ययोः ६।२॥ अगस्तिकुण्डिनच् १।१॥ स०—आगस्त्यश्च, कौण्डिन्यश्च, आगस्त्यकौण्डिन्यौ, तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः। अगस्तिश्च कुण्डिनच्च, अगस्तिकुण्डिनच् समाहारो द्वन्द्वः। अनु०—गोत्रे, लुक्, बहुषु तेनैव ॥ अर्थः—आगस्त्य कौण्डिन्य इत्येतयोः शब्दयोः विहितस्य प्रत्ययस्य तत्कृतबहुवचने लुक् भवति, परिशिष्टस्य च त्रिभागस्य अगस्ति, कुण्डिनच् इत्येतौ आदेशौ यथासंख्यं भवतः ॥ उ०—अगस्तयः, कुण्डिनाः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*आगस्त्यकौण्डिन्ययोः*] आगस्त्य तथा कौण्डिन्य गोत्र में विहित जो तत्कृतबहुवचन में प्रत्यय, उसका लुक् हो जाता है बची अगस्त्य एवं कुण्डिनी प्रकृति को [*अगस्तिकुण्डिनच्*] कुण्डिनच् आदेश भी हो जाते हैं॥ आगस्त्य कौण्डिन्य शब्द उत्पन्न करके यहाँ निर्दिष्ट हैं॥

सुपो धातुप्रातिपदिकयोः ॥२।४।७१॥

सुपः ६।१॥ धातुप्रातिपदिकयोः ६।२॥ स०—धातुश्च प्रातिपदिकं धातुप्रातिपदिके, तयो·····इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—लुक्॥ अर्थः—धात्ववयवस्य, प्रातिपदिकावयवस्य च सुपो लुग् भवति॥ उदा०—पचति, पचतीयति। प्रातिपदिके—कष्टश्रितः, राजपुत्रः॥

भाषार्थः—[*धातुप्रातिपदिकयोः*] धातु और प्रातिपदिक से [*सुपः*] सुप् का लुक् हो जाता है॥

अदिप्रभृतिभ्यः शपः ॥२।४।७२॥

अदिप्रभृतिभ्यः ५।३॥ शपः ६।१॥ स०—अदिप्रभृति येषां ते अदिप्रभृतयस्तेभ्यः·····बहुव्रीहिः॥ अनु०—लुक्॥ अर्थः—अदिप्रभृतिभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य शपो लुग् भवति॥ उदा०—अत्ति, जक्षति॥ द्वेष्टि॥

भाषार्थः—[*अदिप्रभृतिभ्यः*] अदादि धातुओं से परे जो [*शपः*] आता है, उसका लुक् हो जाता है॥ 'अद् शप् ति, हन् शप् ति' इस स्थिति में शप् का लुक् होकर अद् ति रहा, *खरि च* (८।४।५४) से चर्त्व होकर, अत्ति (खाता है)। हन्ति (मारता है) बना। द्विष् शप् ति इस स्थिति में शप् का लुक् होकर, *ष्टुना ष्टुः* (८।४।४०) से ष्टुत्व तथा गुण होकर (द्वेष्टि करता है) बना है॥

यहाँ से *अदिप्रभृतिभ्यः* की अनुवृत्ति २।४।७३ तक तथा *शपः* की अनुवृत्ति २।४।७६ तक जाती है॥

बहुलं छन्दसि ॥२।४।७३॥

बहुलम् १।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—लुक्, अदिप्रभृतिभ्यः शपः॥ अर्थः—छन्दसि=वैदिकप्रयोगविषये शपो बहुलं लुग् भवति।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

त्रं हनति (ऋ० ८।८९।३) अशयदिन्द्रशत्रुः (ऋ० १।३२।१०) बहुल-ग्रहणसामर्थ्याद् अन्येभ्योऽपि गणेभ्यो लुग् भवति। त्राध्वं नो देवाः ऋ० २।२९।६) ॥

भाषार्थः—[*छन्दसि*] वैदिक प्रयोग विषय में शप् का लुक् [*बहुलम्*] हुल करके होता है ॥ जहाँ प्राप्त है, वहाँ नहीं होता, जहाँ नहीं प्राप्त है हाँ हो जाता है ॥ हन् शीङ् अदादिगण की धातु हैं, सो लुक् प्राप्त था, नहीं हुआ। अशयत् शीङ् धातु का लङ् लकार का रूप है, शीङ् को ण तथा शप् परे मानकर अयादेश हो गया है ॥ त्रैङ् पालने भ्वादिगण की धातु है, सो लुक् प्राप्त नहीं था, हो गया है। लोट् में ध्वम् आदेश होकर त्राध्वं रूप बना है ॥

यहाँ से 'बहुलम्' की अनुवृत्ति २।४।७४ तक जाती है ॥

यङोऽचि च ॥२।४।७४॥

यङः ६।१॥ अचि ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—बहुलम्, लुक् ॥ अर्थः—अचि प्रत्यये परतो यङो बहुलं लुग् भवति, बहुलग्रहणाद् अनच्यपि भवति ॥ उदा०—लोलुवः। पोपुवः। मरीमृजः। सरीसृपः। अनच्यपि—पठीति लालपीति ॥

भाषार्थः—[*अचि*] अच् प्रत्यय के परे रहते [*यङः*] यङ् का लुक् जाता है [च] चकार से बहुल करके अच् परे न हो तो भी लुक् जाता है ॥ ऊपर से छन्दसि की अनुवृत्ति नहीं आती, अतः भाषा और छन्द दोनों में ये प्रयोग बनेंगे ॥

जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ॥२।४।७५॥

जुहोत्यादिभ्यः ५।३॥ श्लुः १।१॥ स०—जुहोति आदिर्येषां ते जुहोत्यादयस्तेभ्यः.....बहुव्रीहिः ॥ अनु०—शपः ॥ अर्थः—जुहोत्यादिभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य शपः श्लुर्भवति ॥ उदा०—जुहोति। बिभर्त्ति। तेक्ति ॥

भाषार्थः—[*जुहोत्यादिभ्यः*] जुहोत्यादि गण से उत्तर जो शप् उसका [*श्लुः*] श्लु हो जाता है, अर्थात् श्लु कहकर अदर्शन होता है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' की अनुवृत्ति २।४।७६ तक जा

बहुलं छन्दसि ॥२।४।७६॥

बहुलम् १।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—शपः, जुहोत्यादिभ्यः अर्थः—छन्दसि = वैदिकप्रयोगविषये जुहोत्यादिभ्यः परस्य श्लुरादेशो भवति ॥ उदा०—दाति प्रियाणि, (ऋ० ४।८ प्रियाणि, पूर्णां विवष्टि (ऋ० ७।१६।११) जनिमा विवक्ति॥

भाषार्थः—[छन्दसि] छन्द विषय में जुहोत्यादि धातुओं को श्लु आदेश [बहुलम्] बहुल करके होता है॥

गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु ॥२।४।७७॥

गातिस्थाघुपाभूभ्यः ५।३॥ सिचः ६।१॥ परस्मैपदेषु ७।३॥ गातिश्च, स्थाश्च, घुश्च, पाश्च, भूश्च, गातिस्थाघुपाभुवः, तेभ्यः इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—लुक् ॥ अर्थः—गा स्था घु पा भू परस्य सिचो लुग् भवति परस्मैपदेषु परतः ॥ उदा०—अगात्। घु—अदात्। अधात्, अपात्। अभूत् ॥

भाषार्थः—[गातिस्थाघुपाभूभ्यः] गा, स्था, घुसंज्ञक, धातु तथा भू इन धातुओं से परे [सिचः] सिच् का लुक् हो जाता [परस्मैपदेषु] परस्मैपद परे रहते ॥

उदा०—अगात्, अस्थात् (वह ठहरा)। घु—अदात् (उसने अधात् (उसने धारण किया)। अपात् (उसने रक्षा की) हुआ) ॥ इणो गा लुङि (२।४।४५) से जो इण् को गा आदेश उसका यहाँ ग्रहण है ॥ दाधाघ्वदाप् (१।१।१९) से घु संज्ञा लुङ् लकार में हम पहले सिद्धियाँ दिखा चुके हैं, उसी प्रकार समझें, कुछ भी विशेष नहीं है ॥

यहाँ से 'सिचः' की अनुवृत्ति २।४।७९ तथा 'परस्मैपदेषु' वृत्ति २।४।७८ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः ॥२।४।७८॥

विभाषा १।१॥ घ्राधेट्शाच्छासः ५।१॥ स०—घ्राश्च धेट् च शाश्च छाश्च साश्चेति, घ्राधेट्शाच्छासम्, तस्मात् ..... समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—सिचः, परस्मैपदेषु, लुक् ॥ अर्थः—घ्रा धेट् शा छा सा, इत्येतेभ्य उत्तरस्य परस्मैपदेषु परतः सिचो लुग् विकल्पेन भवति ॥ उदा०—अघ्रात् अघ्रासीत्, अधात् अधासीत्, अशात् अशासीत्, अच्छात् अच्छासीत्, असात् असासीत् ॥

भाषार्थः—[घ्राधेट्शाच्छासः] घ्रा, धेट्, शा, छा, सा इन धातुओं परे [विभाषा] विकल्प करके परस्मैपद परे रहते सिच् का लुक् हो जाता है ॥ धेट् धातु घु संज्ञक थी, सो पूर्व सूत्र से नित्य सिच् का लुक् प्राप्त था, विकल्प विधान कर दिया है, शेष धातुओं से लुक् प्राप्त था, सो विकल्प कह दिया है ॥

उदा०—अघ्रात् अघ्रासीत्, अधात् अधासीत्, अशात् अशासीत् (उसने पतला किया)। अच्छात् अच्छासीत्, असात् असासीत् (उसने भोजन समाप्त कर लिया) ॥ सिच् के अलुक् पक्ष में 'अ घ्रा सिच् ईट्' परि० १।१।१ अलावीत् के समान बनकर, *यमरमनमातां सक् च* (७।२।७३) से सक् और इट् आगम होकर 'अ घ्रा सक् इट् सिच् ईट्' बना, इट ईटि (८।२।२८) से सिच् लोप तथा अनुबन्ध लोप होकर 'घ्रास् इ ई त्', सवर्ण दीर्घ होकर अघ्रासीत् बन गया है, इसी प्रकार अन्य सिद्धियों में भी समझें। अच्छात् में छे च (६।१।७१) से तुक् आगम तथा श्चुत्व विशेष है ॥

यहाँ से '*विभाषा*' की अनुवृत्ति २।४।७९ तक जायेगी ॥

तनादिभ्यस्तथासोः ॥२।४।७९॥

तनादिभ्यः ५।३॥ तथासोः ७।२॥ स०—तन् आदिर्येषां ते तनादयस्तेभ्यः..... बहुव्रीहिः। तश्च थाश्च, तथासौ, तयोस्तथासोः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—विभाषा, सिचः, लुक् ॥ अर्थः—तनादिभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य सिचो विभाषा लुग् भवति, तथासोः परतः ॥ उदा०—अतत अतनिष्ट। असात असनिष्ट। थास्—अतथाः अतनिष्ठाः। असाथाः असनिष्ठाः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*तनादिभ्यः*] तनादि गण की धातुओं से उत्तर उसका [*तथासोः*] त और थास् परे रहते विकल्प से लुक् हो

उदा०—अतत (उसने विस्तार किया)। अतनिष्ट। अत विस्तार किया)। अतनिष्ठाः। असात (उसने दिया) असाथाः असनिष्ठाः (तुमने दान दिया)॥ सिच् के लुक् प दात्तो० (६।४।३७) से न् लोप भी हो जायगा। अलुक् प आगम होकर अतनिष् त, अतनिष् थास्, इस अवस्था में अतनिष्ट, अतनिष्ठास् बना। पूर्ववत् ष्टुत्व विसर्जनीय होक हो गया॥

मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः ॥२।

मन्त्रे ७।१॥ घस·····जनिभ्यः ५।३॥ लेः ६।१॥ स ह्वरश्च णशश्च वृ च दहश्च आच्च वृज् च कृ च गमिश्च जनिश्च ···जनयः, तेभ्यः··· ···इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—लुक्॥ अर्थः घस, ह्वर, णश, वृ, दह, आत् वृज्, कृ, गमि, जनि इत्येतेभ्य लेः = च्लिप्रत्ययस्य लुग् भवति॥ उदा०—अक्षन्नमीमदन्त १।८२।१) ह्वर्—माह्वर्मित्रस्य त्वम्। नश्—प्रणङ् मर्तः १।१८।३) वृङ्वृञोः सामान्येन ग्रहणम्-सुरुचो वेन आ १३।३)। दह्—मा न आ धक् (ऋ० ६।६१।१४) आत् इत्यनेन आ ग्रहणम्—आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् (ऋ० १।११५।१)। नो अस्मिन् महाधने परा वर्क् (ऋ० ८।७५।१२) कृ-अक्रन् कृतः (यजु० ३।४७) गमि-अग्मन् (ऋ० १।१२१।७) जनि अस्य दन्ताः (ऐ० ब्रा० ७।१४।१५)॥

भाषार्थः—[*मन्त्रे*] मन्त्र विषय में [*घस·····जनिभ्यः*] णश, वृ, दह, आत्=आकारान्त, वृज्, कृ, गमि, धातुओं से उत्तर जो [*लेः*] लि अर्थात् च्लि प्रत्यय उस जाता है॥

यहाँ से *लेः* की अनुवृत्ति २।४।८१ तक जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Initiative

आमः ॥२।४।८१॥

आमः ५।१॥ अनु०—लेः, लुक् ॥ अर्थः—आम उत्तरस्य लेर्लुग् भवति ॥ उदा०—ईहांचक्रे, ऊहांचक्रे, ईक्षांचक्रे ॥

भाषार्थः—[आमः] आम् प्रत्यय से उत्तर लि का लुक् हो जाता है ॥ सिद्धियाँ परि०-१।३।६३ में देखें ॥ यहाँ सामर्थ्य से लेः से लिट् का ग्रहण होता है, न कि च्लि का ॥

अव्ययादाप्सुपः ॥२।४।८२॥

अव्ययात् ५।१॥ आप्सुपः ६।१॥ स०—आप् च, सुप् च, आप्सुप्, तस्य ·····समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—लुक् ॥ अर्थः—अव्ययाद् उत्तरस्य, आपः सुपश्च, लुग् भवति ॥ उदा०—तत्र शालायाम् । यत्र शालायाम् । कृत्वा—कृत्वा, हृत्वा ॥

भाषार्थः—[अव्ययात्] अव्यय से उत्तर [आप्सुपः] आप्=(टाप्, ङाप्, चाप्) स्त्रीप्रत्यय, तथा सुप् का लुक् हो जाता है ॥

उदा०—तत्र शालायाम् (उस शाला में) । यत्र शालायाम् । सुपः—कृत्वा । हृत्वा ॥

तत्र यत्र की सिद्धि परि० १।१।३७ में देखें, यहाँ विशेष यह है कि अव्यय संज्ञा होने से स्त्रीलिङ्ग में जब *अजाद्यतष्टाप्* (४।१।४) से टाप् आया तो उसका लुक् प्रकृत सूत्र से हो गया है ॥ परि० १।१।३९ में कृत्वा हृत्वा की सिद्धि देखें । अव्यय संज्ञा होकर कृत्वा हृत्वा के आगे जो सु आया था उसका लुक् हो गया है ॥

यहाँ से 'सुपः' की अनुवृत्ति २।४।८३ तक जायेगी ॥

नाव्ययीभावादतोऽत्वपञ्चम्याः ॥२।४।८३॥

न अ० ॥ अव्ययीभावात् ५।१॥ अतः ५।१॥ अम् १।१॥ तु अ० ॥ पञ्चम्याः ६।१॥ स०—न पञ्चमी अपञ्चमी, तस्याः ·····नञ्तत्पुरुषः ॥ लुक्०—सुपः लुक् ॥ अर्थः—अतः=अदन्तात् अव्ययीभावसमासाद् उत्तरस्य सुपो लुङ् न भवति, तस्य सुपः, 'अम्' आदेशस्तु भवति, अप-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ङ्याः = पञ्चमीं विभक्तिं विहाय ॥ उदा०—उपकुम्भं तिष्ठति पश्य ॥

भाषार्थः—[*अतः*] अदन्त [*अव्ययीभावात्*] अव्ययीभाव से उत्तर, सुप् का लुक् [न] नहीं होता है, अपितु उस सुप् को आदेश [तु] तो होता है [*अपञ्चम्याः*] पञ्चमी विभक्ति को। *अव्ययीभावश्च* (१।१।४०) सूत्र से अव्ययीभाव समास होता है, सो पूर्व सूत्र से लुक् की प्राप्ति थी, यहाँ निषेध उपकुम्भं तिष्ठति (कुम्भ के समीप बैठता है) में 'अव्ययं' (२।१।६) से समास हुआ है, उपकुम्भ शब्द अदन्त अव्ययीभाव है, सो इसके सुप् को अम् आदेश हो गया है ॥

यहाँ से '*अव्ययीभावादतोऽम्*' की अनुवृत्ति २।४।८४ तक

तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् ॥२।४।८४॥

तृतीयासप्तम्योः ६।२॥ बहुलम् १।१॥ स०—तृतीया च सप्तमी सप्तम्यौ, तयोः··· ···इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अव्ययीभात अर्थः—अदन्तादव्ययीभावात्, उत्तरयोः तृतीयासप्तम्योः स्थाने बहुलम् अम्भावो भवति॥ उदा०—उपकुम्भेन कृतम् कृतम्। सप्तमी—उपकुम्भे निधेहि। उपकुम्भं निधेहि ॥

भाषार्थः—अदन्त अव्ययीभाव से उत्तर [*तृतीयासप्तम्योः*] सप्तमी विभक्ति के स्थान में [*बहुलम्*] बहुल से अम् आदेश पूर्व सूत्र से नित्य अम् आदेश पाता था, बहुल कर दिया। आदेश नहीं हुआ तो विभक्ति का लुक् भी नहीं हुआ है ॥

लुटः प्रथमस्य डारौरसः ॥२।४।८५॥

लुटः ६।१॥ प्रथमस्य ६।१॥ डारौरसः १।३॥ स०—डाश्च, डारौरसः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अर्थः—लुडादेशस्य प्रथमपुरुष यथासङ्ख्यम् डा, रौ, रस् इति त्रय आदेशा भवन्ति॥ उदा० कर्त्तारौ कर्त्तारः ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

]

भाषार्थः—[लुटः] लुडादेश जो (तिप् आदि) [प्रथमस्य] प्रथम पुरुष में को यथासङ्ख्य करके [डारौरसः] डा, रौ, रस् आदेश हो जाते हैं ॥ द्धि परि० १।१।६ के समान ही है, केवल यहाँ एकाच उप०(७।२।१०)से का निषेध और सार्वधातु० (७।३।८४) से 'कृ' को गुण, एवं उरण्रपरः १।५०) से रपरत्व होगा ॥ कर्त्ता में अचो रहाभ्यां द्वे (८।४।४५) से को द्वित्व भी हो जायगा । तस् को रौ, झि को रस् आदेश होकर भी वत् ही सिद्धि होगी ॥ आत्मनेपद तथा परस्मैपद दोनों के स्थान में डा रौ रस् आदेश हो जाते हैं ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रथमः पादः

प्रत्ययः ॥३।१।१॥

प्रत्ययः १।१॥ *अर्थः*—इतोऽग्रे आपञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः इति यावत् 'प्रत्ययः' इति संज्ञात्वेनाधिक्रियते॥ उदा०—करणीयम्॥

भाषार्थः—यहाँ से लेकर पञ्चमाध्याय की समाप्ति पर्यन्त [प्रत्ययः] प्रत्यय संज्ञा का अधिकार जायेगा॥ यह संज्ञा सूत्र दोनों ही है॥

उदा०—कर्त्तव्यम्, करणीयम्, (करना चाहिए)॥

परश्च ॥३।१।२॥

परः १।१॥ च अ०॥ *अनु०*—प्रत्ययः॥ *अर्थः*—यस्य विहिता स प्रत्ययः, परश्च भवति, इत्यधिकारो वेदितव्यः, आ परिसमाप्तेः॥ उदा०—कर्त्तव्यम्, तैत्तिरीयम्॥

भाषार्थः—जिसकी प्रत्यय संज्ञा कही है [च] वह (प्रातिपदिक से) विधान किया जावे, उससे [परः] परे होवे अधिकार भी पञ्चमाध्याय की समाप्ति (५।४।१६०) पर्यन्त जाता अगले सूत्र ३।१।३ के परि० में उदाहरणों की सिद्धि स्वर

आद्युदात्तश्च ॥३।१।३॥

आद्युदात्तः १।१॥ च अ०॥ *स०*—आदिरुदात्तो यस्य युदात्तः, बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—प्रत्ययः॥ *अर्थः*—यस्य विहिता सः प्रत्ययः आद्युदात्तोऽपि भवति॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. eGangotri Initiative

ञ्चमाध्यायपर्यन्तम्, परिभाषासूत्रं वा ॥ उदा०—कर्त्तव्यम्, रीयम् ॥

भाषार्थः—जिसकी प्रत्यय संज्ञा कही है वह [आद्युदात्तः] आद्यु- [च] भी होता है। यह भी अधिकार सूत्र है, पञ्चमाध्याय की ाप्ति पर्यन्त जायेगा। जहाँ जो प्रत्यय विधान किया जायेगा, उसको आद्युदात्त भी करता जायेगा, अथवा इसको परिभाषा सूत्र भी माना सकता है ॥

अनुदात्तौ सुप्पितौ ॥३।१।४॥

अनुदात्तौ १।२॥ सुप्पितौ १।२॥ स०—सुप्च पिच्च सुप्पितौ, इतरेतर- द्वः ॥ अनु०—प्रत्ययः ॥ अर्थः—सुप्पितौ प्रत्ययौ अनुदात्तौ भवतः ॥ णाद्युदात्ते प्राप्ते, अनुदात्तो विधीयते ॥ उदा०—हृषदौ, हृषदः ॥ त्-पर्चति, पठंति ॥

भाषार्थः—पूर्व सूत्र का यह अपवाद है। [सुप्पितौ] सुप् तथा पित् यय [अनुदात्तौ] अनुदात्त होते हैं। यह भी अधिकार पञ्चमाध्याय न्त जानना चाहिए। अथवा यह भी परिभाषा सूत्र माना जा सकता है ॥

गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ॥३।१।५॥

गुप्तिज्किद्भ्यः ५।३॥ सन् १।१॥ स०—गुप् च तिज् च कित् च, ज्किदस्तेभ्यः ·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—प्रत्ययः, परश्च ॥ :—गुप गोपने, तिज निशाने, कित निवासे रोगापनयने च, एतेभ्यः तुभ्यः) सन् प्रत्ययः परश्च भवति ॥ उदा०—जुगुप्सते, तितिक्षते, कित्सति ॥

भाषार्थः—[गुप्तिज्किद्भ्यः] गुप्, तिज्, कित् इन धातुओं से स्वार्थ [सन्] सन् प्रत्यय होता है, और वह परे होता है ॥

उदा०—जुगुप्सते (निन्दा करता है), तितिक्षते (क्षमा करता है), कित्सति (रोग का इलाज करता है) ॥ इस सूत्र में कही हुई वार्त्तिकों कारण इन निर्दिष्ट अर्थों में ही इन धातुओं से सन् प्रत्यय होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सन्नन्त की सिद्धि हम बहुत बार दिखा चुके हैं, उसी
जानें ॥

यहाँ से 'सन्' की अनुवृत्ति ३।१।७ तक जायेगी ॥

मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥३।१।६॥

मान्बधदान्शान्भ्यः ५।३॥ दीर्घः १।१॥ च अ० ॥ आभ्यः
स०—मान् च बधश्च दान् च शान् च = मान्बधदान्शाः
इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अभ्यासस्य विकारः, आभ्यासस्तस्य
अनु०—सन्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—मान पूजायाम्,
दान खण्डने, शान तेजने इत्येतेभ्यः (धातुभ्यः) सन्नन्त
अभ्यासविकारस्य च दीर्घादेशो भवति ॥ उदा०—मीमांसते
दीदांसते, शीशांसते ॥

भाषार्थः—[मान्·····भ्यः] मान्, बध, दान् और
से सन् प्रत्यय होता है [च] तथा [आभ्यासस्य] अभ्यास
अर्थात् अभ्यास को सन्यतः (७।४।७९) से इत्व करने के
दीर्घ आदेश हो जाता है ॥

धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ॥३।१।७॥

धातोः ५।१॥ कर्मणः ६।१॥ समानकर्तृकात् ५।१॥ इच्छा
वा अ० ॥ स०—समानः कर्त्ता यस्य स समानकर्तृकः, तस्मात्
काद्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—सन्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—
यो धातुः समानकर्तृकः (इषिणा सह समानकर्तृकः) तस्मा
वा सन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कर्त्तुमिच्छति = चिकी
मिच्छति = जिहीर्षति, पठितुमिच्छति = पिपठिषति ॥

भाषार्थः—[कर्मणः] कर्म का अवयव जो [धातोः]
कर्तृकात्] समानकर्तृक (अर्थात् इष धातु के साथ समान
उससे [इच्छायाम्] इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय [वा]
होता है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदाहरण में 'कर्त्तुम्' इच्छति क्रिया का कर्म है, उसका अवयव धातु है सो कृ धातु से सन् प्रत्यय हुआ है। कर्त्तु तथा कृति का कर्त्ता एक ही देवदत्त है, इसलिए कृ धातु समानकर्तृक है। वा कहने से पक्ष में 'कर्त्तुमिच्छति' ऐसा वाक्य भी प्रयोग में है। ऐसे ही अन्य उदाहरणों में भी समझ लेना चाहिए॥

चिकीर्षति की सिद्धि परिशिष्ट १।१।५७ के चिकीर्षकः के समान 'कीर्ष' बना कर शप् तिप् लाकर जानें। अथवा परि० १।२।९ में देखें॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति ३।१।२२ तथा "कर्मणः" की ३।१।१० इच्छायाम् की ३।१।९ तक जावेगी॥

सुप आत्मनः क्यच् ॥३।१।८॥

सुपः ५।१॥ आत्मनः ६।१॥ क्यच् १।१॥ अनु०—कर्मणः, इच्छायाम्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—आत्मसम्बन्धिनः सुबन्तात्कर्मणः इच्छार्थे वा क्यच् प्रत्ययो भवति परश्च॥ उदा०—आत्मनः पुत्रमिच्छति = पुत्रीयति॥

भाषार्थः—[आत्मनः] आत्म सम्बन्धी [सुपः] सुबन्त कर्म से इच्छा में विकल्प से [क्यच्] क्यच् प्रत्यय होता है॥ सिद्धि परिशिष्ट ७१ में देखें।

यहाँ से 'सुपः' की अनुवृत्ति ३।१।११ तक तथा 'आत्मनः' की ९ तक, एवं क्यच् की अनुवृत्ति ३।१।१० तक जावेगी॥

काम्यच्च ॥३।१।९॥

काम्यच् १।१॥ च अ०॥ अनु०—सुपः, आत्मनः, कर्मणः, इच्छायाम्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—आत्मसम्बन्धिनः सुबन्तात्कर्मणः इच्छार्थे वा काम्यच् प्रत्ययो भवति, परश्च॥ उदा०—आत्मनः पुत्रमिच्छति = पुत्रकाम्यति, वस्त्रकाम्यति॥

भाषार्थः—आत्मसम्बन्धी सुबन्त कर्म से इच्छा अर्थ में विकल्प से [क्यच्] काम्यच् प्रत्यय [च] भी होता है॥ जब काम्यच् प्रत्यय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पक्ष में नहीं होगा तो विग्रह वाक्य रह जावेगा। उदा० पुत्रमिच्छति = पुत्रकाम्यति (अपने पुत्र की इच्छा करता है) वस्त्रं काम्यति (अपने वस्त्र को चाहता है)॥ पुत्रकाम्य क्विप् (३।१।३२) से धातु संज्ञा होकर पूर्ववत् शप् तिप् आदि बना है॥

उपमानादाचारे ॥३।१।१०॥

उपमानात् ५।१॥ आचारे ७।१॥ अनु०—सुपः क्यच् प्रत्ययः परश्च॥ अर्थः—उपमानवाचिनः सुबन्तात्प्रातिपदिकाच्च वा क्यच् प्रत्ययः परश्च भवति॥ उदा०—पुत्रमिवाचरति शिष्यम् = पुत्रीयति शिष्यम्, गर्दभमिवाचरति अश्वम् = गर्दभीयति अश्वम्॥

भाषार्थः—[उपमानात्] उपमानवाची सुबन्त कर्म से आचार अर्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय होता है॥ उदा० पुत्रमिवाचरति अध्यापकः शिष्यम् = पुत्रीयति शिष्यम् (अध्यापक पुत्र के समान शिष्य में आचरण करता है) गर्दभमिवाचरति अश्वम् = गर्दभीयति अश्वम् (घोड़े के साथ गधे जैसा बरतता है)॥ सिद्धि २।४।७१ में देख लें॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ३।१।११ तक जावेगी॥

कर्तुः क्यङ् सलोपश्च ॥३।१।११॥

कर्तुः ५।१॥ क्यङ् १।१॥ सलोपः १।१॥ च अ०॥ सश्च लोपः सलोपः, षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—उपमानादाचारे सुपः प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—उपमानवाचिनः कर्तुः सुबन्तात् प्रातिपदिकाच्च वा क्यङ् प्रत्ययः परश्च भवति, तत्र च सकारान्तो यः सकारस्य च वा लोपो भवति॥ उदा०—श्येन इवाचरति श्येनायते। श्येनीयति। पण्डित इवाचरति मूर्खः = पण्डितायते, पुष्कर इवाचरति कुमुदं, कुमुदं पुष्करायते। पयायते तक्रम्, पयस्यति।

भाषार्थः—उपमानवाची सुबन्त [कर्तुः] कर्त्ता से आचार अर्थ में [क्यङ्] क्यङ् प्रत्यय विकल्प से होता है, तथा जो सकारान्त हो उसके [सलोपः] सकार का लोप [च] भी विकल्प से हो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Archive Digitization Initiative

उदा०—श्येनायते (कौआ बाज के समान आचरण करता है) पण्डितायते (मूर्ख पण्डित के समान आचरण करता है) पुष्करायते (नीला कमल फेंद कमल के समान खिल रहा है) पयायते (मट्ठा दूध के समान होता है) पयस्यते ॥ पयस् आदि के सकार का लोप विकल्प से हो गया है। सिद्धि पुत्रीयति के समान ही है। क्यङ् के ङित् होने से आत्मनेपद अनुदात्तङित० (१।३।१२) से हो जाता है ॥

यहाँ से क्यङ् की अनुवृत्ति ३।१।१८ तक जायेगी ॥

भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः ॥३।१।१२॥

भृशादिभ्यः ५।३॥ भुवि ७।१॥ अच्वेः ५।१॥ लोपः १।१॥ च अ० ॥ हलः ६।१॥ स०—भृश आदिर्येषां ते भृशादयस्तेभ्यः ·····बहुव्रीहिः। च्विः अच्विः, तस्मात् अच्वेः, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—वा, क्यङ्, लोपः, परश्च ॥ अर्थः—अच्व्यन्तेभ्यो भृशादिभ्यः शब्देभ्यः भुवि = भवत्यर्थे क्यङ् प्रत्ययः परश्च भवति, यश्च हलन्तः शब्दस्तस्य लोपो भवति ॥ उदा०—अभृशो भृशो भवति = भृशायते, अशीघ्रः शीघ्रो भवति शीघ्रायते, अनुन्मनः उन्मनो भवति उन्मनायते ॥

भाषार्थः—[अच्वेः] अच्व्यन्त [भृशादिभ्यः] भृशादि शब्दों से [भुवि] भू धातु के अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है और उन भृशादि शब्दों के अन्तर्गत जो हलन्त शब्द हैं, उनके [हलः] हल् का [लोपः] लोप [च] भी होता है ॥ उदाहरणों में च्वि प्रत्यय का अर्थ, अभूततद्भाव (१।४।५०) है, अर्थात् जो भृश नहीं वह भृश होता है, सो यहाँ च्वि का अर्थ तो विद्यमान है परन्तु ये शब्द च्व्यन्त नहीं हैं, अतः क्यङ् प्रत्यय हो गया है ॥ उदा०—अभृशो भृशो भवति = भृशायते (जो अधिक नहीं वह अधिक होता है) अशीघ्रः शीघ्रो भवति = शीघ्रायते (जो शीघ्रकारी नहीं वह शीघ्रकारी बनता है) उन्मनायते (जिसका मन उन्मना नहीं था, वह उखड़ सा गया) ॥

यहाँ से "अच्वेः, भुवि" की अनुवृत्ति ३।१।१३ तक जायगी ॥

लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ॥३।१।१३॥

लोहितादिडाज्भ्यः ५।३॥ क्यष् १।१॥ स०—लोहित आदिर्येषां ते लोहितादयः, लोहितादयश्च डाच् च, लोहितादिडाचस्तेभ्यः···बहु-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

व्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—भुवि, अच्वेः, वा, प्रत्ययः, अर्थः—अच्व्यन्तेभ्यो लोहितादिभ्यः शब्देभ्यः, डाजन्तेभ्यश्च क्यष् प्रत्ययः परश्च भवति ॥ उदा०—अलोहितो लोहितो भवति तायते, लोहितायति । डाच—पटपटायते, पटपटायति ॥

भाषार्थः—अच्व्यन्त [लोहितादिडाज्भ्यः] लोहितादि शब्द डाच् प्रत्ययान्त शब्दों से भू धातु के अर्थ में [क्यष्] प्रत्यय होता है ॥ परि० १।३।९० में सिद्धियाँ देखें ॥

कष्टाय क्रमणे ॥३।१।१४॥

कष्टाय ४।१॥ क्रमणे ७।१॥ अनु०—क्यङ् वा प्रत्ययः अर्थः—चतुर्थीसमर्थात् कष्टशब्दात् क्रमणे = अनार्जवेऽर्थे क्यङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कष्टाय (कर्मणे) क्रामति = गच्छति ।

भाषार्थः—चतुर्थी समर्थ [कष्टाय] कष्ट शब्द से [क्रमणे] में क्यङ् प्रत्यय होता है ।

कष्ट शब्द के चतुर्थी विभक्ति से निर्दिष्ट होने से ही ऐसा अर्थ यहाँ लिया गया है ॥ उदा०—कष्टाय (कर्मणे) कष्टायते (क्लिष्ट कार्य में कुटिलता पूर्वक प्रवृत्त होता है) ॥

कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्त्तिचरोः ॥३।१।१५॥

कर्मणः ५।१॥ रोमन्थतपोभ्यां ५।२॥ वर्त्तिचरोः ७।२॥ रोमन्थश्च तपश्च, रोमन्थतपसी ताभ्यां.....इतरेतरद्वन्द्वः ॥ चर् च वर्त्तिचरौ तयोः वर्त्तिचरोः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—क्यङ् प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—रोमन्थशब्दात्तपःशब्दाच्च कर्मणो वर्त्तिचरोरर्थयोः क्यङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—रोमन्थं रोमन्थायते गौः । तपश्चरति तपस्यति ॥

भाषार्थः—[रोमन्थतपोभ्याम्] रोमन्थ तथा तप [कर्मणः] यथासङ्ख्य करके [वर्त्तिचरोः] वर्त्ति (वर्त्तनं वर्त्तिः) तथा चरि (चरिः) अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है ॥ अकृत्सार्वधातु० से दीर्घ होने रोमन्थायते में दीर्घ होगा ॥ क्यङ् के ङित् होने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative.

दात्तङित० (१।३।१२) से आत्मनेपद ही प्राप्त था, सो तपसः पदं च (वा० १।३।१५) इस वार्त्तिक से परस्मैपद हो गया है ॥ ०—रोमन्थायते गौः (गौ जुगाली करती है) तपस्यति (तपस्या ा है) ॥

यहाँ से कर्मणः की अनुवृत्ति ३।१।२१ तक जायेगी ॥

वाष्पोष्मभ्यामुद्वमने ॥३।१।१६॥

वाष्पोष्मभ्याम् ५।२॥ उद्वमने ७।१॥ स०—वाष्पश्च ऊष्मा च ोष्माणौ ताभ्यां·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणः क्यङ् वा यः परश्च ॥ अर्थः—कर्मभ्यां वाष्पोष्मशब्दाभ्यामुद्वमनेऽर्थे क्यङ् ो भवति ॥ उदा०—वाष्पमुद्वमति वाष्पायते कूपः। ऊष्माणमुद्वमति ायते मनुष्यः ॥

भाषार्थः—[वाष्पोष्मभ्याम्] वाष्प और ऊष्म कर्म से [उद्वमने] न अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है ॥

उदा०—वाष्पायते कूपः (कूआ भाप को ऊपर फैंकता है) ऊष्मायते यः (मनुष्य मुख से गरम वायु निकालता है) ॥

उदाहरणों में अकृत्सार्वधातुकयो० (७।४।२५) से दीर्घ होता है ॥ ायते में ऊष्मन् की नः क्ये (१।४।१५) से पद संज्ञा होकर न लोपः ो (८।२।७) से नकार का लोप हो जाता है ॥

शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ॥३।१।१७॥

शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः ५।३॥ करणे ७।१॥ स०—शब्दश्च कलहश्च अभ्रञ्च कण्वञ्च मेघश्च, शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघास्तेभ्यः इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणः क्यङ् वा प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—वैर, कलह, अभ्र, कण्व, मेघ इत्येतेभ्यः कर्मवाचिभ्यः शब्देभ्यः = करोत्यर्थे क्यङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शब्दं करोति = शब्दायते वैरं करोति = वैरायते। कलहं करोति = कलहायते। अभ्रायते कण्वायते। मेघायते सूर्यः ॥

भाषार्थः—[शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः] शब्द, वैर, कलह, अभ्र, मेघ, इन कर्मवाची शब्दों से [करणे] करण अर्थात् करोति के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है॥ उदा०—शब्दायते (शब्द करता है) वैरायते (वैर करता है) कलहायते (कलह करता है) कण्वायते (पाप करता है) मेघायते (सूर्य बादल बनाता है) कण्वायते (पाप करता है) मेघायते बादल बनाता है)। यहाँ सर्वत्र *सनाद्यन्ता धातवः* (३।१।३२) से धातु संज्ञा तथा क्यङ् के ङित् होने से आत्मनेपद होता है। इसी प्रत्यय को दीर्घ भी जानें॥

यहाँ से करणे की अनुवृत्ति ३।१।२१ तक जायेगी॥

सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् ॥३।१।१८॥

सुखादिभ्यः ५।३॥ कर्तृ लुप्तषष्ठ्यन्तनिर्देशः॥ वेदना स०—सुख आदिर्येषां ते सुखादयः, तेभ्यः·····बहुव्रीहिः॥ कर्मणः क्यङ् वा प्रत्ययः परश्च॥ अर्थः—सुखादिभ्यः शब्देभ्यो वेदनायाम् = अनुभवेऽर्थे क्यङ् प्रत्ययो भवति, कर्तुः सम्बन्धीनि सुखादीनि भवन्ति। उदा०—सुखं वेदयते दुःखायते॥

भाषार्थः—कर्मवाची [*सुखादिभ्यः*] सुखादि शब्दों से वेदना अर्थात् अनुभव करने अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है, शब्द वेदयिता [कर्तृ] कर्त्ता सम्बन्धी ही हों, अर्थात् अनुभव करने वाला भी वही हो, कोई अन्य नहीं॥ उदा० देवदत्त को सुख है और अनुभव करने वाला भी वही है। हरणों में दीर्घ होता है॥

उदा०—सुखायते (सुख का अनुभव करता है), दुःखायते अनुभव करता है)॥

नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् ॥३।१।१९॥

नमोवरिवश्चित्रङः ५।१॥ क्यच् १।१॥ स०—नमश्च च, नमोवरिवश्चित्रङ् तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः॥ वा प्रत्ययः परश्च॥ अर्थः—नमस् वरिवस् चित्रङ् इत्येतेभ्यः करोत्यर्थे वा क्यच् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—नमः करोति = नमस्यति देवान्, वरिवः करोति = वरिवस्यति गुरून्,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[नमोवरिवश्चित्रङः] नमस्, वरिवस्, चित्रङ्, इन कर्मवाची शब्दों से करोति के अर्थ में [क्यच्] क्यच् प्रत्यय होता है॥ क्यच् तथा क्यङ् प्रत्यय में यही भेद है कि क्यच् करने से परस्मैपद क्यङ् में आत्मनेपद होगा॥ चित्रङ् शब्द में ङित् करने से आत्मनेपद ही होता है॥ उदा०-नमस्यति देवान् (देवों को नमस्कार करता है), वस्यति गुरून् (गुरुओं की सेवा करता है), चित्रीयते (आश्चर्य करता है)॥

पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ् ॥३।१।२०॥

पुच्छभाण्डचीवरात् ५।१॥ णिङ् १।१॥ स०-पुच्छञ्च, भाण्डञ्च, चीवरञ्च, पुच्छभाण्डचीवरं तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—करणे णिः वा प्रत्ययः परश्च॥ अर्थः—पुच्छ, भाण्ड, चीवर इत्येतेभ्यः कर्मवाचिभ्यः शब्देभ्यो णिङ् प्रत्ययो भवति करणविशेषे॥ उदा०—पुच्छं स्यति उत्पुच्छयते गौः। परिपुच्छयते। भाण्डं समाचिनोति सम्भाण्डयते। चीवरं परिदधाति सञ्चीवरयते भिक्षुः॥

भाषार्थः—[पुच्छभाण्डचीवरात्] पुच्छ, भाण्ड, चीवर इन कर्मवाची शब्दों से [णिङ्] णिङ् प्रत्यय होता है, क्रिया विशेष को कहने में॥ उदा०—उत्पुच्छयते गौः (गौ पूँछ उठाती है), परिपुच्छयते (गौ पूँछ इधर उधर तरफ चलाती है), सम्भाण्डयते (बर्त्तनों को ठीक से रखता है), सञ्चीवरयते भिक्षुः (भिक्षु कपड़े पहनता है)॥ उदाहरणों में ङित् होने से आत्मनेपद होता है। सिद्धि णिजन्त की सिद्धियों के समान है॥

मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच् ॥३।१।२१॥

मुण्ड ···तूस्तेभ्यः ५।३॥ णिच् १।१॥ स०—मुण्डश्च मिश्रश्च श्लक्ष्णश्च लवणञ्च व्रतञ्च वस्त्रञ्च हलश्च कलश्च कृतञ्च तूस्तञ्च, मुण्ड·····तानि, तेभ्यः, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—कर्मणः करणे वा प्रत्ययः॥ अर्थः—मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत, तूस्त इत्येतेभ्यः कर्मवाचिभ्यः शब्देभ्यः करोत्यर्थे णिच् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—मुण्डं करोति = मुण्डयति, मिश्रयति, श्लक्ष्णयति, लवणयति, पयो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

व्रतयति, वस्त्रमाच्छादयति = संवस्त्रयति, हलिं गृह्णाति ह
गृह्णाति = कलयति, निपातनादकारः स च सन्वद्भावश्च
गृह्णाति = कृतयति, तूस्तानि विहन्ति = वितूस्तयति केशान्।

भाषार्थः—[मुण्ड·····तूस्तेभ्यः] मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, व
वस्त्र, हल, कल, कृत, तूस्त, इन कर्मवाची शब्दों से करोत्यर्थ
णिच् प्रत्यय होता है॥ लवण, व्रत वस्त्रादि शब्द अकारान्त
लोपः (६।४।४८) से अकार लोप होकर यथाप्राप्त वृद्धि या गु
लगेंगे तो अकार स्थानिवत् (१।१।५५) हो जायेगा॥ उदा
(बाल काटता है) श्लक्ष्णयति (चिकना करता है) ल्वकं
बनाता है) पयो व्रतयति (दूध का व्रत करता है) संवस्त्र
ढाँपता है) हलयति (हल चलाता है) कलयति (कलियों
कृतयति (फल को ग्रहण करता है) वितूस्तयति केशा
अलग-अलग करता है)॥

धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्॥३।१।२२॥

धातोः ५।१॥ एकाचः ५।१॥ हलादेः ५।१॥ क्रियासमभि
यङ् १।१॥ स०—क्रियायाः समभिहारः क्रियासमभिहारः
षष्ठीतत्पुरुषः। एकोऽच् यस्मिन् स एकाच् तस्मात्·····
आदिर्यस्य स हलादिः, तस्मात् हलादेः, बहुव्रीहिः॥ अनु
परश्च॥ *अर्थः*—एकाच् यो धातुर्हलादिस्तस्मात् क्रियासमभि
पुन्येऽर्थे (भृशार्थे वा) यङ् प्रत्ययो विकल्पेन भवति॥
पुनः पचति पापच्यते, पापठ्यते, भृशं ज्वलति जाज्वल्यते,

भाषार्थः—[एकाचः] एक अच् वाली जो [हलादेः] ह
धातु उससे [क्रियासमभिहारे] क्रियासमभिहार अर्थात् क्रि
अर्थ में और भृशार्थ (अतिशय) में विकल्प से [यङ्]
होता है॥

यहाँ से यङ् की अनुवृत्ति ३।१।२४ तक जायेगी, तथा
कार ३।१।२३ तक जायेगा॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

नित्यं कौटिल्ये गतौ ॥३।१।२३॥

नित्यम् १।१॥ कौटिल्ये ७।१॥ गतौ ७।१॥ अनु०—धातोः, यङ् प्रत्ययः श्च ॥ अर्थः—गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यो नित्यं कौटिल्ये गम्यमाने यङ् ययो भवति न तु समभिहारे ॥ उदा०—कुटिलं क्रामति = चङ्क्रम्यते द्रम्यते ॥

भाषार्थः—[गतौ] गत्यर्थक धातुओं से [नित्यम्] नित्य [कौटिल्ये] टिल गति गम्यमान होने पर ही यङ् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'नित्यं' की अनुवृत्ति ३।१।२४ तक जायेगी ॥

लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम् ॥३।१।२४॥

लुपसद·····गृभ्यः ५।३॥ भावगर्हायाम् ७।१॥ स०—लुपसद० यत्रेतरेतरद्वन्द्वः । भावस्य गर्हा भावगर्हा तस्याम् भावगर्हायां, षष्ठीतत्पु- ः ॥ अनु०—नित्यं, धातोः, यङ्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—लुप, सद, , जप, जभ, दह, दश, गृ इत्येतेभ्यो धातुभ्यो नित्यं भावगर्हायां = त्वर्थगर्हायां यङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—गर्हितं लुम्पति = लोलुप्यते सद्यते । चञ्चूर्यते । जञ्जप्यते । जञ्जभ्यते । दन्दह्यते । दन्दश्यते । जागिल्यते ॥

भाषार्थः—[लुपसद·····गृभ्यः] लुप, सद, चर, जप, जभ, दह, दश, इन धातुओं से नित्य [भावगर्हायाम्] भाव की निन्दा अर्थात् धात्वर्थ न्दा में ही यङ् प्रत्यय होता है । लोलुप्यते में लोप करने वाला अर्थात् टने वाला निन्दित नहीं है, अपितु उसके काटने में ही निन्दा है वह टना क्रिया खराब ढंग से करता है, सो भावगर्हा है ॥

सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्ण-चुरादिभ्यो णिच् ॥३।१।२५॥

सत्याप·····चूर्णचुरादिभ्यः ५।३॥ णिच् १।१॥ स०—चुर् आदि- ां ते चुरादयः, सत्यापश्च पाशश्च रूपं च वीणा च तूलश्च श्लोकश्च ना च लोम च त्वचं च वर्म च वर्ण च चूर्ण च चुरादयश्च, सत्यापपाश ·····चुरादयस्तेभ्यः, बहुव्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः त्ययः परश्च ॥ अर्थः—सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण इत्येतेभ्यः शब्देभ्यः, चुरादिभ्यः णिच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सत्यम् आचष्टे सत्यापयति, रूपयति, वीणया उपगायति = उपवीणयति, तूलेन अनुकुष्णाति = यति, श्लोकैरुपस्तौति = उपश्लोकयति, सेनयाऽभियाति = लोमान्यनुमार्ष्टि अनुलोमयति, त्वचं गृह्णाति त्वचयति, वर्म संवर्मयति, वर्णं गृह्णाति = वर्णयति, चूर्णैरवध्वंसयति = चुरादिभ्यः—चोरयति, चिन्तयति ॥

भाषार्थः—[*सत्याप*····*चुरादिभ्यः*] सत्याप, पाश ह्र श्लोक सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण, इन शब्दों (धातुपाठ में पढ़ी) धातुओं से [*णिच्*] णिच् प्रत्यय उदा०—सत्यापयति (सत्य का आचरण करता है), विपाश से छुड़ाता है), रूपयति (दर्शाता है), उपवीणयति (वीणा अनुतूलयति (रूई के द्वारा कान की मैल आदि खींचता है) (श्लोकों से स्तुति करता है), अभिषेणयति (सेना सहित है), अनुलोमयति (बालों को साफ करता है), त्वचयति पकड़ता है), संवर्मयति (कवच सहित तैयार होता है), पकड़ता है), अवचूर्णयति (चूर्ण से किसी वस्तु का नाश क दियों से—चोरयति (चुराता है), चिन्तयति (चिन्ता करता है) प्रथम *भूवादयो०* (१।३।१) से धातु संज्ञा करके 'चोरि' बनाकर *यन्ता०* (३।१।३२) से धातु संज्ञा हुई, तत्पश्चात् पूर्ववत् शप् शप् को मानकर *सार्वधातु०*(७।३।८४)से 'रि'को रे गुण तथा 'चोरयति' बना ॥ चुरादि गण में सर्वत्र एक बार भूवादयो० होकर णिच् प्रत्यय लाकर पुनः *सनाद्यन्ता धातवः* से धातु करेगी। सत्यापयति आदि में तो पूर्ववत् ही प्रथम होकर णिच् लाकर *सनाद्यन्ता०* से धातु संज्ञा "सत्यापि" पूर्ववत् शप् तिप् लाकर गुण अयादेश करके 'सत्यापयति'

यहाँ से *णिच्* की अनुवृत्ति ३।१।२६ तक जायेगी ॥

---

१. धातोः का अधिकार आते हुए भी यहाँ चुरादियों के साथ बैठता है, सत्यापपाश० आदि के साथ नहीं, क्योंकि सत्याप आदि हैं, तथा चुरादि धातुएं हैं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

हेतुमति च ॥३।१।२६॥

हेतुमति ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—णिच् प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—तन्त्रस्य कर्त्तुः प्रयोजको हेतुः। *तत्प्रयोजको हेतुश्च* (१।४।५५) अनेन हेतुसंज्ञा भवति। हेतुरस्यास्तीति हेतुमान् तदीयः व्यापारः णादिलक्षणः, तस्मिन् हेतुमति-अभिधेये धातोर्णिच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—देवदत्तः कटं करोति = कटं कारयति देवदत्तेन यज्ञदत्तः। ओदनं पाचयति ॥

भाषार्थः—स्वतन्त्र कर्त्ता के प्रयोजक को हेतु कहते हैं। उसका जो णादिलक्षण व्यापार वह हेतुमान् हुआ, उसके अर्थात् [*हेतुमति*] हेतुमान् के अभिधेय होने पर [च] भी धातु से णिच् प्रत्यय होता है ॥ चटाई बनाते हुए देवदत्त को यज्ञदत्त के द्वारा प्रैष (प्रेरणा) दिया जाता है कि चटाई बनाओ, सो उदाहरण के द्वितीय वाक्य में हेतुमत् अभिधेय है, अतः णिच् प्रत्यय, कृ तथा पच् धातुओं से हो गया ॥ उदा०—देवदत्तः कटं करोति = कटं कारयति देवदत्तेन यज्ञदत्तः (यज्ञदत्त देवदत्त से चटाई बनवा रहा है), ओदनं पाचयति (चावल पका रहा है) ॥ सिद्धियों में कुछ भी विशेष नहीं है ॥

कण्ड्वादिभ्यो यक् ॥३।१।२७॥

कण्ड्वादिभ्यः ५।३॥ यक् १।१॥ स०—कण्डू आदिर्येषां ते कण्ड्वादयस्तेभ्यः कण्ड्वादिभ्यः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—धातोः प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—कण्ड्वादिभ्यो धातुभ्यो यक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कण्डूयति, कण्डूयते मन्तूयति ॥

भाषार्थः—[*कण्ड्वादिभ्यः*] कण्ड्वादि धातुओं से [*यक्*] यक् प्रत्यय होता है ॥ कण्ड्वादि धातु तथा प्रातिपदिक दोनों हैं, सो धातोः का अधिकार होने से यहाँ कण्ड्वादि धातु ही ली गई हैं ॥ उदा०—कण्डूयति (खुजली करता है) कण्डूयते, मन्तूयति (अपराध करता है) ॥ *रितश्चितः०* (१।३।७२) से कण्डूयति में उभयपद होता है ॥ मन्तु को *अकृत्सार्व०* (७।४।२५) से होता है ॥ कण्डूय, मन्तूय की *सनाद्यन्ता०* (३।१।३२) से धातु संज्ञा होकर शप् तिप् आ ही जायेंगे ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ॥३।१।२८॥

गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्यः ५।३॥ आयः १।१॥ गुश्च धूपश्च विच्छिश्च पणिश्च पनिश्च, गुपूधूपविच्छिपणिपनयः इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—विच्छ, पण व्यवहारे स्तुतौ च, पन च इत्येतेभ्यो धातुभ्य भवति ॥ उदा०—गोपायति, धूपायति, विच्छायति, पणायति, पनायति ॥

भाषार्थः—[गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्यः] गुपू, धूप, विच्छ, पणि, पनि, इन धातुओं से [आयः] आय प्रत्यय होता है। गोपायति (रक्षा करता है) धूपायति (पीड़ा देता है), विच्छायति (चाहता है), पणायति (स्तुति करता है), पनायति (स्तुतिकरता है)। ऊकार अनुबन्ध है। लघूपध गुण होकर 'गोपाय' धातु शप् तिप् आकर गोपायति बना है ॥

ऋतेरीयङ् ॥३।१।२९॥

ऋतेः ५।१॥ ईयङ् १।१॥ अनु०—धातोः प्रत्ययः परश्च ॥ ऋतिधातोः 'ईयङ्' प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ऋतीयते, ऋर्तीयते ॥

भाषार्थः—[ऋतेः] ऋति धातु से [ईयङ्] ईयङ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—ऋतीयते (घृणा करता है)॥ ऋत्-ईय-ते। (३।१।३२) से धातु संज्ञा होकर शप्, त आ गये हैं। अनुदात्तङित० (१।३।१२) से हो गया है ॥

विशेषः—ऋति धातु धातुपाठ में नहीं पढ़ी है, यह घृणा अर्थ में है। जो धातु सूत्रपाठ (अष्टाध्यायी) में धातुपाठ में नहीं, उसे सौत्र धातु कहते हैं ॥

कमेर्णिङ् ॥३।१।३०॥

कमेः ५।१॥ णिङ् १।१॥ अनु०—धातोः प्रत्ययः परश्च ॥ कमु धातोर्णिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कामयते ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[कमेः]कमु कान्तौ धातु से [णिङ्] णिङ् प्रत्यय होता ॥ ङकार अनुबन्ध आत्मनेपदार्थ है, तथा णकार अत उपधायाः ७।२।११६) से वृद्धि करने के लिए है ॥ कमु में उकार अनुबन्ध है ॥

उदा०—कामयते (कामना करता है) ॥

आयादय आर्धधातुके वा ॥३।१।३१॥

आयादयः १।३॥ आर्धधातुके ७।१॥ वा अ० ॥ स०—आय आदिर्येषां आयादयः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—प्रत्ययः ॥ अर्थः—आयादयः प्रत्यया आर्धधातुकविषये विकल्पेन भवन्ति । नित्यप्रसङ्गे विकल्प्यते ॥ उदा०—गोपा गोपिता, गोपायिता, अर्तिता ऋतीयिता । कमिता, कामयिता ॥

भाषार्थः—[आयादयः] आयादि प्रत्यय अर्थात् आय, ईयङ्, णिङ् प्रत्यय जिन-जिन धातुओं से कहे हैं, उनसे [आर्धधातुके] आर्धधातुक विषय की विवक्षा हो तो वे प्रत्यय [वा] विकल्प से होंगे । नित्य प्रत्यय की उत्पत्ति प्राप्त थी सो विकल्प कर दिया ॥ यहाँ "आर्धधातुके" में विषय सप्तमी है ॥

सनाद्यन्ता धातवः ॥३।१।३२॥

सनाद्यन्ताः १।३॥ धातवः १।३॥ स०—सन् आदिर्येषां ते सनादयः, बहुव्रीहिः । सनादयोऽन्ते येषां ते सनाद्यन्ताः, बहुव्रीहिः ॥ अर्थः—सनाद्यन्ताः समुदायाः धातुसंज्ञका भवन्ति ॥ उदा०—पुत्रीयति, पुत्रकाम्यति, चिकीर्षति ॥

भाषार्थः—सन् जिनके आदि में है वे सनादि प्रत्यय कहलाए (अर्थात् गुप्तिज्किद्भ्यः सन् (३।१।५) के सन् से लेकर प्रकृत सूत्र तक जितने क्यच् काम्यच् क्यङ् णिङ् आदि प्रत्यय हैं, वे सब सनादि हुए । सनादि प्रत्यय हैं अन्त में जिस शब्द के वह सारा समुदाय (सनादि अन्त वाला) सनाद्यन्त हुआ, उस [सनाद्यन्ताः] सनाद्यन्त समुदाय की [धातवः] धातु संज्ञा होती है ॥ पिछले सारे सूत्रों के उदाहरण इस सूत्र के उदाहरण बनेंगें । इस प्रकरण में प्रातिपदिकों एवं सुबन्तों से भी (यथा लोहित, भृश, पुत्र आदि से) प्रत्यय की उत्पत्ति करके पुनः प्रत्ययान्त की प्रकृत सूत्र से धातु संज्ञा कर दी जाती है, जिससे प्रातिपदिक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भी तिङन्त बन जाते हैं, अतः उन्हें *नामधातु* कहते हैं, [illegible] से ही तिङन्त बनते हैं ॥

स्यतासी लृलुटोः ॥३।१।३३॥

स्यतासी १।२॥ लृलुटोः ७।२॥ स०—स्यश्च तासिश्च स्यतासी, इतरेतरद्वन्द्वः। लृ च लुट् च लृलुटौ तयोः लृलुटोः, इतरेतरद्वन्द्वः। धातोः प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—लृ इत्यनेन लृट् लृङोः, द्वयोः लृलुटोः परतो धातोः स्यतासी प्रत्ययौ यथाक्रमं भवतः। करिष्यति, अकरिष्यत्। लुट्-कर्त्ता, पठिता ॥

भाषार्थः—लृ से यहाँ लृट् लृङ् दोनों लकारों का ग्रहण है। [लृलुटोः] लृ (लृट्, लृङ्) तथा लुट् परे रहते यथासंख्य [स्यतासी] स्य, तास् प्रत्यय हो जाते हैं ॥ सिद्धियाँ पहले हो चुकी हैं ॥

सिब्बहुलं लेटि ॥३।१।३४॥

सिप् १।१॥ बहुलम् १।१॥ लेटि ७।१॥ अनु०—धातोः परश्च ॥ अर्थः—लेट्लकारे परतो धातोर्बहुलं सिप् भवति ॥ उदा०—भविषति, भविषाति। भविषत्, भविषद्, भविषाद् ॥ भाविषति, भाविषाति। भाविषत्। भाविषद्, भाविषाद् ॥ न च भवति—भवत्, भवात्। भवद्, भवाद् ॥ एवं तसि—भविषतः, भाविषतः, भाविषातः। भवतः, भवातः ॥ झि—भविषन्ति, भविषन्, भविषान्। भाविषन्ति, भाविषान्ति। भाविषन्, भवन्ति भवान्ति। भवन्, भवान् ॥ सिपि—भविषसि, भविषः, भविषाः। भाविषसि, भाविषासि। भाविषः, भाविषाः। भवासि। भवः, भवाः ॥ थसि—भविषथः, भविषाथः। भाविषाथः। भवथः, भवाथः ॥ थ—भविषथ, षथ, भाविषाथ। भवथ, भवाथ ॥ मिपि—भविषमि, षम्, भविषाम्। भाविषमि, भाविषामि। भाविषम्। भविषाम्। भवामि। भवम्, भवाम् ॥ वसि—भविषवः, भविषावः। षाव। भाविषवः, भाविषावः। भाविषव, भाविषाव। भवव, भवाव ॥ मसि—भविषमः, भविषामः, भविषम,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

विषमः, भाविषामः। भाविषम, भाविषाम। भवमः, भवामः। भवम, वाम॥

जोषिषत्, तारिषत्, मन्दिषत्। न च भवति—पतति विद्युत्। ऽ० ७।२५।१)। उदधिं च्यावयति (तुलना अथर्व० १०।१।१३, तै० ब्रा० ६।४।५, तां० ब्रा० ६।१०।१६, ११।८।११, १३।५।१३, सर्वत्र तत्सदृश पाठो न तु पूर्णः) जीवाति शरदः शतम् (ऋ० १०।८५।३९) स देवाँ वक्षति (ऋ०१।१।२)॥

भाषार्थः—[*लेटि*] लेट् लकार परे रहते धातु से [*बहुलम्*] बहुल के [*सिप्*] सिप् प्रत्यय होता है॥

कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि ॥३।१।३५॥

कास्प्रत्ययात् ५।१॥ आम् १।१॥ अमन्त्रे ७।१॥ लिटि ७।१॥ स०—स् च प्रत्ययश्च कास्प्रत्ययं तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः। न मन्त्रः मन्त्रस्तस्मिन्·····नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—धातोः प्रत्ययः परश्च॥ र्थः—कासृ शब्दकुत्सायां धातोः, प्रत्ययान्ताच्च धातोः 'आम्' प्रत्ययो ति लिटि परतः, अमन्त्रविषये = लौकिकप्रयोगविषये॥ उदा०—साञ्चक्रे, लोलूयाञ्चक्रे, पोपूयाञ्चक्रे॥

भाषार्थः—[*कास्प्रत्ययात्*] 'कासृ शब्दकुत्सायाम्' धातु से, तथा यान्त धातुओं से [*लिटि*] लिट् लकार परे रहते [*आम्*] आम् प्रत्यय ा है, यदि [*अमन्त्रे*] मन्त्रविषयक अर्थात् वेदविषयक प्रयोग न हो तो॥ ०—कासाञ्चक्रे (वह खांसा) लोलूयाञ्चक्रे (उसने बार-बार काटा) पूयाञ्चक्रे (बार-बार पवित्र किया)॥

सिद्धि परिशिष्ट १।३।६३ के समान समझें। पहले लोलूय की सना० (३।१।३२) से धातु संज्ञा करके परि० १।१।४ के समान सिद्धि ली जावेगी। अब यह लोलूय धातु यङ्-प्रत्ययान्त हो गई, सो आम् य प्रकृत सूत्र से आकर लोलूयाञ्चक्रे परि० १।३।६३ के समान गा॥

यहाँ से 'आम्' की अनुवृत्ति ३।१।४० तक तथा 'अमन्त्रे लिटि' की १। ३९ तक जावेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ॥३।१।३६॥

इजादेः ५।१॥ च अ० ॥ गुरुमतः ५।१॥ अनृच्छः ५।१॥ आदिर्यस्य स इजादिः, तस्मात्····बहुव्रीहिः। न ऋच्छ् अनृच्छ् नञ्तत्पुरुषः ॥ गुरु वर्णो विद्यतेऽस्मिन् इति गुरुमान् तदस्यास्त्य० (५।२।९४) इत्यनेन मतुप् प्रत्ययः ॥ अनु०-आम् लिटि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—इजादिर्यो धातुर्गुरुमान् आम् प्रत्ययो भवति, अमन्त्रे, लिटि परतः ऋच्छधातुं उदा०—ईहाञ्चक्रे ऊहाञ्चक्रे ॥

भाषार्थः—[इजादेः] इजादि [च] तथा [गुरुमतः] गुरुमान् उससे आम् प्रत्यय हो जाता है, लौकिक प्रयोग विषय में [अनृच्छः] ऋच्छ् धातु को छोड़कर ॥ ईह चेष्टायाम्, ऊह इजादि हैं तथा दीर्घं च (१।४।१२) से गुरु संज्ञा होने से हैं, सो आम् प्रत्यय प्रकृत सूत्र से हो गया। ऋच्छ् धातु संयोगे गुरु (१।४।११) से गुरु संज्ञा होने से गुरुमान् प्रत्यय की प्राप्ति थी, पर अनृच्छः कहने से निषेध हो गया॥ ३।६३ में सिद्धि देखें ॥

दयायासश्च ॥३।१।३७॥

दयायासः ५।१॥ च अ० ॥ स०—दयश्च अयश्च आस् च तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—आममन्त्रे लिटि धातोः परश्च ॥ अर्थः—'दय दानगतिरक्षणेषु,' 'अय गतौ', 'आस इत्येतेभ्यो धातुभ्यो लिटि परतोऽमन्त्रे विषये आम् प्रत्ययो उदा०—दयाञ्चक्रे, पलायाञ्चक्रे, आसाञ्चक्रे ॥

भाषार्थः—[दयायासः] दय, अय, आस धातुओं से [च] विषयक लिट् लकार परे रहते आम् प्रत्यय हो जाता है॥ इजादि एवं गुरुमान् न होने से पूर्व सूत्र से आम् की प्राप्ति विधान कर दिया॥ उदा०—दयाञ्चक्रे (उसने रक्षा की) (वह भाग गया) आसाञ्चक्रे (वह बैठा) ॥ पलायाञ्चक्रे में अय धातु से आम् प्रत्यय हुआ है। उपसर्गस्यायतौ (८।२।१९) लू हो गया है, शेष सब सिद्धि परि० ३।१।६३ के समान ही

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Initiative

उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् ॥३।१।३८॥

उषविदजागृभ्यः ५।३॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ स०—उषश्च विदश्च च उषविदजागरः तेभ्यः····· इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—आममन्त्रे धातोः प्रत्ययः परश्च॥ अर्थः—'उष दाहे', 'विद ज्ञाने', 'जागृ निद्राक्षये' इत्येतेभ्यो धातुभ्योऽमन्त्रे विषये लिटि परत आम् प्रत्ययो विकल्पेन भवति॥ उदा०—ओषाञ्चकार, उवोष। विदाञ्चकार, विवेद। जागराञ्चकार, जजागार॥

भाषार्थः—[उषविदजागृभ्यः] उष विद तथा जागृ धातुओं से [अन्यतरस्याम्] विकल्प से अमन्त्र विषय में लिट् परे रहते आम् प्रत्यय होता है॥

यहाँ से 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति ३।१।३९ तक जायेगी॥

भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ॥३।१।३९॥

भीह्रीभृहुवाम् ६।३॥ श्लुवत् अ०॥ च अ०॥ स०—भीश्च ह्रीश्च च हुश्च, भीह्रीभृहवः तेषां····· इतरेतरद्वन्द्वः॥ श्लौ इव श्लुवत्॥ अनु०—अन्यतरस्याम्, आममन्त्रे लिटि धातोः प्रत्ययः परश्च॥ अर्थः—'भी भये', 'ह्री लज्जायाम्', 'डुभृञ् धारणपोषणयोः', 'हु दानादनयोः' इत्येतेभ्योऽमन्त्रे लिटि परतो विकल्पेन आम् प्रत्ययो भवति, श्लुवच्च एषां कार्यं भवति॥ उदा०—बिभयाञ्चकार, बिभाय। जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय। बभराञ्चकार, बबार। जुहवाञ्चकार, जुहाव॥

भाषार्थः—[भीह्रीभृहुवाम्] भी, ह्री, भृ, हु, इन धातुओं से अमन्त्रविषयक लिट् परे रहते विकल्प से आम् प्रत्यय होता है [च] तथा इनको [श्लुवत्] श्लुवत् कार्य अर्थात् श्लु के परे रहते जो कार्य होने चाहियें, वे भी हो जाते हैं॥ श्लौ (६।१।१०) से द्वित्व तथा भृञामित् (७।४।७६) से अभ्यास को इत्व करना ही श्लुवत् कार्य हैं॥ उदा०—बिभयाञ्चकार, बिभाय (वह डर गया था)। जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय (वह लज्जित हो गया था)। बभराञ्चकार, बबार (उसने पालन किया था)। जुहवाञ्चकार, जुहाव (उसने हवन किया था)॥ 'भी' इत्यादि धातुओं को श्लौ (६।१।१०) से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

द्वित्व अभ्यास कार्य आदि सब पूर्ववत् होगा। भू से भृञामित् से इत्व होगा, अन्यत्र सन्यतः (७।४।७९) से होगा प्रत्यय नहीं होगा तो तिप् के स्थान में परस्मैपदानाम् णल् होगा तथा लिटि धातोरनभ्यासस्य (६।१।८) से द्वित्व पक्ष में लिट् के पूर्व आम् प्रत्यय का व्यवधान होने से रनभ्यासस्य से द्वित्व प्राप्त नहीं होता था, अतः श्लुवत् क

कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ॥३।१।४०॥

कृञ् १।१॥ च अ०॥ अनुप्रयुज्यते तिङ्॥ लिटि ७॥ इत्यत्र पश्चादर्थे 'अनुः' ॥ अनु०—आम् धातोः प्रत्ययः पर आम् प्रत्ययस्य पश्चात् कृञ् अनुप्रयुज्यते, लिटि परतः॥ प्रत्याहारग्रहणम्, कृभ्वस्तियोगे० (५।४।५०) इत्यतः प्रभृत्या तृतीय० (५।४।५८) इत्यस्य अकारात्॥ उदा०—पाठयाञ्च याम्बभूव, पाठयामास ॥

भाषार्थः—आम्प्रत्यय के पश्चात् [कृञ्] कृञ् प्रत्याहार का [च] भी [अनुप्रयुज्यते] अनुप्रयोग होता है [लिटि] लिट् 'कृञ्' से कृञ् प्रत्याहार लिया गया है कृभ्वस्तियोगे (५।४।५०) लेकर कृञो द्वितीयतृतीय० (५।४।५८) के अकार पर्यन्त, तीन धातुओं का इससे ग्रहण होता है ॥

ऊपर से ही यहाँ 'लिटि' की अनुवृत्ति आ सकती थी 'लिटि' ग्रहण किया है, उसका यह प्रयोजन है कि आमः लिट् का लुक् करने के पश्चात् कृ भू अस् का अनुप्रयोग लिट् की पुनरुत्पत्ति हो जावे, जैसा कि परि० १।३।६३ भी दिखा आये हैं ॥

विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ॥३।१।४१॥

विदाङ्कुर्वन्तु तिङ्॥ इति अ०॥ अन्यतरस्याम्॥ विदाङ्कुर्वन्तु इत्येतद् रूपं विकल्पेन निपात्यते। पक्षे विदन्तु॥ धातोर्लोटि प्रथमपुरुषस्य बहुवचने 'आम्' प्रत्ययः, गुण प्रत्ययस्य लुक्, लोट्परस्य कृञोऽनुप्रयोगो निपात्यते॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*विदाङ्कुर्वन्तु*] विदाङ्कुर्वन्तु [*इति*] यह रूप लोट् के म पुरुष के बहुवचन में निपातन किया जाता है [*अन्यतरस्याम्*] रूप करके, पक्ष में विदन्तु भी बनेगा ॥ विद धातु को लोट् लकार म पुरुष बहुवचन के परे रहते आम् प्रत्यय तथा उस आम् प्रत्यय मानकर विद् को जो *पुगन्तलघूपधस्य च* (७।३।८६) से गुण पाता है का अभाव, उस लोट् का लुक् तथा लोट्परक कृञ् धातु का अनु- ग यह सब निपातन से यहाँ सिद्ध किया जाता है ॥ शेष कुर्वन्तु में को अन्तादेश *एरुः* (३।४।८६) से इ को उ, *तनादिकृञ्भ्य उः* (३।१।७९) विकरण, *सार्वधातुकार्द्धधातु०* (७।३।८४) *उरण्रपरः* (१।१।५०) से होकर 'कर् उ अन्तु' बना, *अत उत्सार्वधातुके* (६।४।११०) से उत्व यणादेश होकर कुर्वन्तु बन ही जावेगा ॥ विदाङ्कुर्वन्तु= कुर्वन्तु ॥

विशेष—जो कार्य लक्षणों से अर्थात् सूत्रों से सिद्ध नहीं होते उन्हें करना "*निपातन*" कहा जाता है ॥

यहाँ से '*अन्यतरस्याम्*' की अनुवृत्ति ३।१।४२ तक जावेगी ॥

अभ्युत्सादयाम्प्रजनयाञ्चिकयांरमयामकः पावयांक्रियाद्विदामक्रन्नितिच्छन्दसि ॥३।१।४२॥

अभ्युत्सादयांप्रजनयांचिकयांरमयामकः १।१॥ पावयांक्रियात् तिङ् ॥ मक्रन् तिङ् ॥ इति अ० ॥ छन्दसि ७।१॥ स०—अभ्युत्सादयाञ्च याञ्च चिकयाञ्च रमयाञ्च अभ्युत्सा·····रमयामास्तेभ्यः अकः ·····अकः द्वन्द्वगर्भपञ्चमीतत्पुरुषः ॥ अनु०—अन्यतरस्याम् ॥ 'अकः' शब्दः अभ्युत्सादयां, प्रजनयां, चिकयां, रमयाम् इत्येतैः सह सम्बध्यते ॥ अर्थः—अभ्युत्सादयामकः, प्रजनयामकः, चिक- कः, रमयामकः, पावयांक्रियात्, विदामक्रन् इत्येते शब्दाः छन्दसि विकल्पेन निपात्यन्ते। सद जन, रम इत्येतेषां ण्यन्तानां धातूनां आम् प्रत्ययो निपात्यते। चिकयामकः इत्यत्रापि चिञ् धातोर्लुङि आम् निपात्यते, द्विर्वचनं कुत्वञ्चात्र विशेषः। पावयांक्रियादिति पुनातेर्वा ण्यन्तस्य लिङि 'आम्' निपात्यते। क्रियादिति चास्यानु-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रयोगः। विदामक्रन्निति विदेर्लुङि, आम् निपात्यते गुणाभा
न्नित्यस्य चानुप्रयोगः॥ उदा०—अभ्युत्सादयामकः, भाष
अभ्युदसीषदत्। प्रजनयामकः, अपरपक्षे—प्राजीजनत्।
पक्षे—अचैषीत्। रमयामकः, पक्षे—अरीरमत्। पावयांक्रि
पाव्यात्। विदामक्रन्, पक्षे—अवेदिषुः।

भाषार्थः—[अभ्यु···मकः, पावयांक्रियात्, विदामक्रन्] अभ्यु
मकः, प्रजनयामकः, चिकयामकः, रमयामकः, पावयांक्रियात्, विदा
मक्रन् [इति] ये शब्द [छन्दसि] वेद विषय में विकल्प से सि
किये जाते हैं॥ रमयाम् के पश्चात् रखा हुआ 'अक' शब्द 'स
दयाम्' आदि चारों शब्दों के साथ अभिसम्बद्ध होता है। अर्थात्
अभ्युत्सादयामादि चारों शब्दों में 'अक' का अनुप्रयोग विकल्प से
होता है॥ इन शब्दों में क्या क्या कार्य निपातन से हुए
हैं यह यहाँ बताते हैं—

सद, जन, रम णिजन्त धातुओं से लुङ् लकार में प्रथम
किया गया है, तत्पश्चात् अक का अनुप्रयोग निपातन है। सि
आदि सर्वत्र होती जायेगी। चिकयामकः यहाँ चिञ् धातु
रहते, आम् प्रत्यय, चि धातु को द्विर्वचन एवं कुत्व निपातन
अक का अनुप्रयोग भी निपातित है। ण्यन्त में अयादेश
(६।४।५५) से णि को अयादेश हो ही जायगा। पावयांक्रि
पूङ् या पूञ् ण्यन्त धातुओं से लिङ् परे रहते आम् प्रत्यय
तथा क्रियात् का अनुप्रयोग भी निपातन है। विदामक्रन्
धातु से लुङ् परे रहते आम् प्रत्यय, विद धातु को
अक्रन् का अनुप्रयोग निपातन है॥ पक्ष में अभ्युदसीषदत्
जिनकी सिद्धियाँ परिशिष्ट में देखें॥ यहाँ धुटि [तृतीयः]
से भित् भकै जाने से भित: [प्रथमः] के ह्रस्व होगया है।

च्लि लुङि ॥३।१।४३॥

च्लिः लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः॥ लुङि ७।१॥ अनुवृ
परश्च॥ अर्थः—लुङि परतो धातोः च्लिप्रत्ययो
स्थानेऽमे सिजादीनादेशान् वक्ष्यति, तत्रैवोदाहरिष्यामः॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. AneGangotri Initiative

]

षार्थः—धातु से [लुङि] लुङ् लकार परे रहते [च्लि] च्लि होता है।

यहाँ से लुङि की अनुवृत्ति ३।१।६६ तक जावेगी ॥

च्लेः सिच् ॥३।१।४४॥

च्लेः ६।१॥ सिच् १।१॥ अनु०—लुङि ॥ अर्थः—च्लेः स्थाने सिच् श्यो भवति लुङि परतः ॥ उदा०—अकार्षीत् अहार्षीत् ॥

षार्थः—[च्लेः] च्लि के स्थान में [सिच्] सिच् आदेश होता सिद्धियाँ परि० १।१।१ में देख लें ॥

यहाँ से च्लेः की अनुवृत्ति ३।१।६६ तक जावेगी ॥

शल इगुपधादनिटः क्सः ॥३।१।४५॥

शलः ५।१॥ इगुपधात् ५।१॥ अनिटः ५।१॥ क्सः १।१॥ स०—उपधा यस्य स इगुपधः तस्माद् इगुपधाद् बहुव्रीहिः ॥ न विद्यते यस्मिन् सोऽनिट् तस्माद् ·····बहुव्रीहिः ॥ अनु०—च्लेः लुङि ॥ अर्थः—शलन्तो यो धातुः, अनिट् इगुपधः, तस्मात् च्लेः स्थाने आदेशो भवति लुङि परतः ॥ उदा०—अधुक्षत्, अलिक्षत् ॥

षार्थः—[शलः] शलन्त · [इगुपधात्] इक् उपधावाली जो [अनिटः] अनिट् धातु उससे च्लि के स्थान में [क्सः] क्स आदेश है, लुङ् परे रहते ॥

यहाँ से 'क्सः' की अनुवृत्ति ३।१।४७ तक जावेगी ॥

श्लिष आलिङ्गने ॥३।१।४६॥

श्लिषः ५।१॥ आलिङ्गने ७।१॥ अनु०—क्सः च्लेः लुङि धातोः ॥ —श्लिषधातोः, आलिङ्गनेऽर्थे च्लेः स्थाने 'क्स' आदेशो भवति परतः ॥ उदा०—आश्लिक्षत् माता पुत्रीम् ॥

षार्थः—[श्लिषः] श्लिष धातु से [आलिङ्गने] आलिङ्गन अर्थ में के स्थान में क्स आदेश होता है लुङ् परे रहते ॥ उदा०—आश्लि-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

क्षत् माता पुत्रीम् (माता ने अपनी पुत्री का आलिङ्गन किया)। क्षत् में षढोः कः सि (८।२।४१) से श्लिष् के ष् को क् हुआ। क्ष को 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होकर पूर्ववत् ही जावेगा ॥

न दृशः ॥३।१।४७॥

न अ० ॥ दृशः ५।१॥ अनु०—क्सः च्लेः लुङि धातोः। दृश्धातोः परस्य च्लेः 'क्स' आदेशो न भवति॥ शल इगुपधा० इत्यनेन क्स आदेशे प्राप्ते प्रतिषिध्यते, तस्मिन् प्रतिषिद्धे भवतः॥ उदा०—अदर्शत्, अद्राक्षीत् ॥

भाषार्थः—[दृशः] दृश् धातु से उत्तर च्लि के स्थान में [न] नहीं होता, लुङ् परे रहते ॥ शल इगुपधा० (३।१।४५) प्राप्त होने पर निषेध है। क्स के प्रतिषेध हो जाने पर (३।१।५७) से अङ् तथा पक्ष में सिच् आदेश हो जाते हैं।

णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ् ॥३।१।४८॥

णिश्रिद्रुस्रुभ्यः ५।३॥ कर्त्तरि ७।१॥ चङ् १।१॥ इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—च्लेः, लुङि, धातोः॥ अर्थः—णिश्रिद्रुस्रु इत्येतेभ्यश्च धातुभ्य उत्तरस्य च्लेः स्थाने चङ् कर्त्तरि लुङि परतः॥ उदा०—ण्यन्तेभ्यः—अचीकरत्। अशिश्रियत्। अदुद्रुवत्। असुस्रुवत् ॥

भाषार्थः—[णिश्रिद्रुस्रुभ्यः] ण्यन्त तथा श्रिञ् सेवायाम्। धातुओं से च्लि के स्थान में [चङ्] चङ् आदेश होता कर्त्तृवाची लुङ् परे रहते ॥

यहाँ से चङ् की अनुवृत्ति ३।१।५१ तक तथा कर्त्तरि ३।१।६१ तक जावेगी ॥

विभाषा धेट्श्व्योः ॥३।१।४९॥

विभाषा १।१॥ धेट्श्व्योः ६।२॥ स०—धेट् च श्विश्च इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—कर्त्तरि चङ् च्लेः लुङि धातोः।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

टुओश्वि गतिवृद्ध्योः इत्येताभ्यां धातुभ्याम् उत्तरस्य च्लेः स्थाने ा चङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः॥ उदा०-अदधत्, अधासीत्। श्वि—अशिश्वियत्, अश्वत्, अश्वयीत्॥

षार्थः—[धेट्श्व्योः] धेट् तथा टुओश्वि धातुओं से उत्तर च्लि न में चङ् आदेश होता है [*विभाषा*] विकल्प से, कर्त्तावाची लुङ् हते॥

हाँ से '*विभाषा*' की अनुवृत्ति ३।१।५० तक जावेगी॥

गुपेश्छन्दसि ॥३।१।५०॥

पेः ५।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—विभाषा कर्त्तरि चङ् च्लेः लुङि ॥ अर्थः—गुपू धातोरुत्तरस्य च्लेर्विभाषा चङ् आदेशो भवति विषये कर्त्तृवाचिनि लुङि परतः॥ उदा०—इमान्नो मित्रावरुणौ जूगुपतम्, अगौप्तम्, अगोपिष्टम्, अगोपायिष्टम्॥

षार्थः—[गुपेः] गुप धातु से उत्तर च्लि के स्थान में विकल्प आदेश होता है [*छन्दसि*] वेद विषय में॥

हाँ से *छन्दसि* की अनुवृत्ति ३।१।५१ तक जावेगी॥

नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः ॥३।१।५१॥

अ०॥ ऊनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः ५।३॥ स०—ऊनय-ध्वनयतिश्च एलयतिश्च अर्दयतिश्च, ऊनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतयः इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—छन्दसि कर्त्तरि चङ् च्लेः, लुङि धातोः॥ 'ऊन परिहाणे' 'ध्वन शब्दे' 'इल प्रेरणे' 'अर्द गतौ याचने च' यो धातुभ्यो एयन्तेभ्य उत्तरस्य छन्दसि विषये च्लेः स्थाने चङ् न भवति, कर्त्तरि लुङि परतः॥ उदा०—मा त्वायतो जरितुः यीः (ऋ० १।५३।३) औनिनः इति भाषायाम्। मा त्वाग्निर्ध्व-(ऋ० १।१६२।१५) अदिध्वनत् इति भाषायाम्। कामैलयीः, इति भाषायाम्। मैनमर्दयीत्, आर्दिदत् इति भाषायाम्॥

र्थः—[ऊनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः] ऊन, ध्वन, इल अर्द ल धातुओं से उत्तर वेद विषय में च्लि के स्थान में चङ् आदेश

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[न] नहीं होता है॥ चङ् का निषेध करने से सिच् हो (३।१।४८) से ण्यन्त होने से चङ् प्राप्त था, है। भाषा प्रयोग में चङ् हो ही जायेगा। ऊनयीः, (सिप्) का रूप है। उदाहरणों की सिद्धियाँ परिशिष्ट इत्यादि के समान ही जानें। ऊनयीः अर्दयीत् ध्वनयीः आडजादीनाम् तथा लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः (६।४।७२, अट् का आगम नहीं होता क्योंकि यहाँ माङ् 'न माङ्योगे' (६।४।७४) से निषेध हो जाता है। 'इल्' के इ को आटश्च (६।१।८७) से वृद्धि होती है। चङ् होकर चङि (६।१।११) से द्वित्वादि हो जावेगा।

अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ॥३।१।५२॥

अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यः ५।३॥ अङ् १।१॥ स०—रेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—कर्त्तरि च्लेः, लुङि धातोः॥ 'वच परिभाषणे', 'ख्याञ् प्रकथने' इत्येतेभ्यो धातुभ्यः स्थाने अङादेशो भवति, कर्त्तरि लुङि परतः॥ उदा०—स्थेताम्, पर्यास्थन्त। अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन्। आख्यताम्, आख्यन्॥

भाषार्थः—[अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यः] अस, वच, से उत्तर च्लि के स्थान में [अङ्] अङ् आदेश हो लुङ् परे रहते॥ वच से ब्रूञ् के स्थान में जो वच तथा वच परिभाषणे धातु, दोनों लिये गये हैं, इसी चक्षिङ् को जो ख्याञ् आदेश, (२।४।५४), तथा दोनों ही लिये गए हैं॥

यहाँ से 'अङ्' की अनुवृत्ति ३।१।५९ तक जावेगी।

लिपिसिचिह्वश्च ॥३।१।५३॥

लिपिसिचिह्वः ५।१॥ च अ०॥ स०—लिपिश्च सिचिह्वम् तस्मात्····· समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—लुङि धातोः॥ अर्थः—'लिप उपदेहे', 'विच क्षरणे'

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य च्लेः स्थाने अङ् आदेशो भवति कर्त्तरि लुङि त॥ उदा०—अलिपत्, असिचत्, आह्वत्॥

भाषार्थः—[*लिपिसिचिह्वः*] लिप सिच ह्वेञ् इन धातुओं से [च] कर्त्तृवाची लुङ् परे रहते च्लि के स्थान में अङ् आदेश होता है॥

यहाँ से *लिपिसिचिह्वः* की अनुवृत्ति ३।१।५४ तक जायेगी॥

आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्॥३।१।५४॥

आत्मनेपदेषु ७।३॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ अनु०—लिपिसिचिह्व॰ कर्त्तरि च्लेः लुङि धातोः॥ अर्थः—लिप्यादिभ्यो धातुभ्यः कर्तृवाचि लुङि, आत्मनेपदेषु परतः च्लेः 'अङ्' आदेशो विकल्पेन भवति॥ ०—अलिपत, अलिप्त। असिचत, असिक्त। अह्वत, अह्वास्त॥

भाषार्थः—लिप इत्यादि धातुओं से कर्त्तावाची लुङ् [*आत्मनेपदेषु*] त्मनेपद परे रहते [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से च्लि के स्थान में अङ् देश होता है॥ पूर्व सूत्र से नित्य अङ् प्राप्त था यहाँ विकल्प कर दिया है। जब अङ् नहीं होगा तो सिच् हो जायेगा॥

पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु॥३।१।५५॥

पुषादिद्युताद्यॢदितः ५।१॥ परस्मैपदेषु ७।३॥ स०—पुष आदिर्येषां पुषादयः, द्युत आदिर्येषां ते द्युतादयः, ॡत् इत् यस्य स ॡदित्। पुषाश्च, द्युतादयश्च, ॡदित् च इति पुषादिद्युताद्यॢदित् तस्मात्, पुषादिद्याद्यॢदितः, बहुव्रीहिगर्भसमाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—अङ् कर्त्तरि , लुङि धातोः॥ अर्थः—पुषादिभ्यः, द्युतादिभ्यः, ॡदिद्भ्यश्च तुभ्यः कर्तृवाचिनि लुङि परस्मैपदेषु परतः च्लेः 'अङ्' आदेशो भवति॥ ादिषु पुष पुष्टौ इत्यारभ्य, गृधु अभिकाङ्क्षायाम् इति यावत् पुषाणः। भ्वादिषु 'द्युत दीप्तौ' इत्यारभ्य कृपू सामर्थ्ये इति यावत् ादिर्गणः॥ उदा०—पुषादिभ्यः—अपुषत्, अशुषत्। द्युतादिभ्यः—द्युतत् अश्वितत्। ॡदिद्भ्यः—अगमत्, अशकत्॥

भाषार्थः—[पुषादिद्युताद्यॢदितः] पुषादि द्युतादि तथा ॡदित् धातुओं से च्लि के स्थान में अङ् होता है कर्त्तावाची लुङ् [*परस्मैपदेषु*] स्मैपद परे रहते, दिवादिगण के अन्तर्गत जो 'पुष पुष्टौ' धातु है वहाँ से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लेकर 'गृधु अभिकांक्षायाम्' तक पुषादि गण माना गया है। दीप्तौ' (भ्वादि अन्तगत) से लेकर 'कृपू सामर्थ्ये' तक मानी गयी हैं ॥ अङ् के ङित् होने से सर्वत्र *ङिति च* (१ निषेध होता है ॥ उदा०—पुषादियों का—अपुषत् (व अशुषत् (सूख गया)। द्युतादियों का—अद्युतत् (वह चमका (वह सफेद हो गया) लृदितों का—अगमत् (वह गया), समर्थ हो गया) ॥

यहाँ से 'परस्मैपदेषु' की अनुवृत्ति ३।१।५७ तक जायेगी।

सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च ॥३।१।५६॥

सर्त्तिशास्त्यर्तिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—सर्त्ति० द्वन्द्वः ॥ अनु०—परस्मैपदेषु, अङ् कर्त्तरि, च्लेः, लुङि, धा 'सृ गतौ शासु अनुशिष्टौ' 'ऋ गतौ' इत्येतेभ्यो धातु च्लेः स्थाने अङ् आदेशो भवति कर्तृवाचिनि लुङि परस्मै उदा०—असरत् अशिषत्, आरत् ॥

भाषार्थः—[*सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यः*] सृ, शासु तथा ऋ इ उत्तर [*च*] भी च्लि के स्थान में अङ् आदेश होता है, प परस्मैपद परे रहते ॥

इरितो वा ॥३।१।५७॥

इरितः ५।१॥ वा अ० ॥ स०—इश्च रश्च इरौ, तौ इतौ य तस्माद् इरितः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—परस्मैपदेषु अङ् लुङि धातोः ॥ *अर्थः*—इरितो धातोरुत्तरस्य च्लेः स्थाने अ भवति कर्तृवाचिनि लुङि परस्मैपदेषु परतः ॥ उदा०—ई अरौत्सीत्। भिदिर्—अभिदत्, अभैत्सीत्। छिदिर् अच्छैत्सीत् ॥

भाषार्थः—[*इरितः*] इरित् जो धातुएँ उनसे उत्तर च्लि [*वा*] विकल्प करके अङ् आदेश होता है, कर्त्तावाची पर रहते। रुधिर् इत्यादि धातुओं का रेफ *हलन्त्यम्* (१।३।३) उपदेशे० (१।३।२) से इत् संज्ञक हुआ है, अतः ये सब धातु

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति ३।१।५८ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ॥३।१।५८॥

जॄस्त.....भ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—जॄस्तम्भु० इत्यत्रेतरे-
द्वन्द्वः ॥ अनु०—वा, परस्मैपदेषु, अङ्, कर्त्तरि, च्लेः, लुङि धातोः ॥
र्थः—'जॄष् वयोहानौ', 'स्तम्भुः' सौत्रो धातुः, 'म्रुचु म्लुचु गत्यर्थौ,
ग्लुचु स्तेयकरणे, ग्लुञ्चु गत्यर्थः, टुओश्वि गतिवृद्ध्योः,
येतेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य च्लेः स्थाने वा अङ् आदेशो भवति कर्तृ-
चिनि लुङि परस्मैपदेषु परतः ॥ उदा०—अजरत्, अजारीत् अस्तभत्
स्तम्भीत्। अम्रुचत्, अम्रोचीत्। अम्लुचत्, अम्लोचीत्। अग्रुचत्,
ग्रोचीत्। अग्लुचत्, अग्लोचीत्। अग्लुचत्, अग्लुञ्चीत्। अश्वत्,
श्वयीत्, अशिश्वियत् ॥

भाषार्थः—[जॄस्तम्भु...भ्यः] जॄष्, स्तम्भु, म्रुचु, म्लुचु, ग्रुचु, ग्लुचु,
ञ्चु श्वि इन धातुओं से उत्तर [च] भी च्लि के स्थान में अङ् आदेश
ता है, कर्त्तावाची लुङ् परस्मैपद परे रहते ॥ जिस पक्ष में अङ् नहीं
गा उस पक्ष में सिच् होता है ॥

कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि ॥३।१।५९॥

कृमृदृरुहिभ्यः ५।३॥ छन्दसि ७।१॥ स०—कृ च मृ च दृ च रुहिश्च,
मृदृरुहयः तेभ्यः.....इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अङ्, कर्त्तरि च्लेः लुङि,
तोः ॥ अर्थः—'डुकृञ् करणे', 'मृङ् प्राणत्यागे, 'दृ विदारणे' 'रुह
जजन्मनि प्रादुर्भावे च' इत्येतेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य च्लेः स्थाने 'अङ्'
देशो भवति, छन्दसि विषये कर्तृवाचिनि लुङि परतः ॥ उदा०-शक-
ऽङ्गुष्ठकोऽकरत्। अथोऽमरत्। अदरत् अर्थान्। पर्वतमारुहत्।
तरिक्षाद्दिवमारुहम् ॥

भाषार्थः—[कृमृदृरुहिभ्यः] कृ, मृ, दृ, रुह इन धातुओं से उत्तर च्लि
स्थान में अङ् आदेश होता है, कर्त्तावाची लुङ् परे रहते [छन्दसि]
विषय में ॥ अमरत् यहाँ व्यत्ययो बहुलम् (३।१।८५) से व्यत्यय से
स्मैपद हो गया है ॥

चिण्ते पदः ॥३।१।६०॥

चिण् १।१॥ ते ७।१॥ पदः ५।१॥ अनु०—कर्त्तरि, च्लेः, लुङि, धातोः ॥
र्थः—'पद गतौ' इत्येतस्माद् धातोरुत्तरस्य च्लेः स्थाने चिण् आदेशो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भवति, कर्तृवाचिनि लुङि तशब्दे परतः ॥ उदा०—उदपादि समपादि भैक्षम् ॥

भाषार्थः—[पदः] पद धातु से उत्तर च्लि के स्थान में आदेश होता है, कर्त्तृवाची लुङ् [ते] त शब्द परे रहते। उदपादि सस्यम् (उसने फसल को उत्पन्न किया), समपादि भिक्षा की) ॥ उत् पूर्वक पद धातु से 'उत् अट् पद् च्लि' होकर प्रकृत सूत्र से चिण् होकर, *चिणो लुक्* (६।४।१०४) हो गया है। 'उत् अट् पद् चिण् = इ अब इस अवस्था में (७।२।११६) से वृद्धि होकर उदपादि बन गया ॥

यहाँ से 'चिण्' की अनुवृत्ति ३।१।६५ तक तथा 'ते' की जायेगी ॥

दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ॥३॥

दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्यः ५।३॥ अन्यतरस्याम् दीपजन० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—चिण्, ते, लुङि, धातोः ॥ अर्थः—'दीपी दीप्तौ', 'जनी प्रादुर्भावे अवगमने', 'पूरी आप्यायने, 'तायृ सन्तानपालनयोः' वृद्धौ' इत्येतेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य च्लेः स्थाने चिण् आदेः भवति, कर्तृवाचिनि लुङि तशब्दे परतः ॥ उदा०—अदीपि अजनि, अजनिष्ट। अबोधि, अबुद्ध। अपूरि, अपूरिष्ट अतायिष्ट। अप्यायि, अप्यायिष्ट ॥

भाषार्थः—[*दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्यः*] दीप, जन, तायृ, ओप्यायी इन धातुओं से उत्तर च्लि के स्थान में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से हो जाता है, कर्त्तृवाची परे रहते ॥ उदा०—अदीपि, अदीपिष्ट (वह प्रदीप्त हुआ) अजनिष्ट (वह उत्पन्न हुआ)। अबोधि, अबुद्ध (उसने जान अपूरिष्ट (उसने पूर्ण किया)। अतायि, अतायिष्ट (उसने अप्यायि, अप्यायिष्ट (वह बढ़ा) ॥

अजनि में *जनिवध्योश्च* (७।३।३५) से वृद्धि निषेध चिण् पक्ष में सिद्धि पूर्व सूत्र के अनुसार जानें। जिस पक्ष

CC-0; Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

होगा उस पक्ष में सिच् होकर पूर्ववत् आत्मनेपद में 'अट् दीप् इट् सिच् त' होकर सिच् के स् को ष् तथा ष्टुत्व होकर अदीपिष्ट आदि बनेगा ॥ अबुद्ध की सिद्धि परिशिष्ट १।२।११ में देखें ॥ बुध् धातु अनिट् है सो इडागम भी नहीं हुआ है ॥

यहाँ से *अन्यतरस्याम्* की अनुवृत्ति ३।१।६३ तक जावेगी ॥

अचः कर्मकर्त्तरि ॥३।१।६२॥

अचः ५।१॥ कर्मकर्त्तरि ७।१॥ *स०*—कर्म चासौ कर्त्ता च कर्मकर्त्ता तस्मिन्·····कर्मधारयस्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—अन्यतरस्याम्, चिण्, ते, च्लेः, लुङि ॥ *अर्थः*—अजन्ताद्धातोरुत्तरस्य कर्मकर्त्तरि लुङि तशब्दे परतः, च्लेः स्थाने चिण् आदेशो विकल्पेन भवति ॥ *उदा०*—अकारि कटः स्वयमेव, अकृत कटः स्वयमेव । अलावि केदारः स्वयमेव, अलविष्ट केदारः स्वयमेव ॥

भाषार्थः—[अचः] अजन्त धातुओं से [कर्मकर्त्तरि] कर्मकर्त्ता लुङ् में त शब्द परे रहते च्लि के स्थान में चिण् आदेश विकल्प से होता है ॥ *उदा०*—अकारि कटः स्वयमेव (चटाई स्वयमेव बन गई) अकृत कटः स्वयमेव । अलावि केदारः स्वयमेव (खेती स्वयं कट गई) अलविष्ट केदारः स्वयमेव ॥ चिण् पक्ष में *अचो ञ्णिति* (७।२।११५) से वृद्धि कार्य होंगे । तथा सिच् पक्ष में अकृत की सिद्धि परिशिष्ट १।२।१२ में देखें । अलविष्ट में कुछ भी विशेष नहीं है ॥ सौकर्य के अतिशय में कर्म की कर्त्ता के समान विवक्षा हो जाती है, अर्थात् कर्म कर्त्ता बन जाता है, सो कर्मकर्त्ता को कर्मवद्भाव *कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः* (३।१।८७) से होकर कर्माश्रित कार्य, *चिण्भावकर्मणोः* (३।१।६६) से जो चिण् होना है, वह नित्य प्राप्त ही था, अजन्त धातुओं से विकल्प करके चिण् हो, इसलिए यह सूत्र है ॥ कर्मकर्त्ता किसे कहते हैं ? वह कब होता है ? इसकी विशेष व्याख्या ३।१।८७ सूत्र पर ही देखें । कर्मवाच्य को कहे हुए कार्य ३।१।८७ सूत्र से कर्मवद्भाव होने से कर्मकर्त्ता में भी होते हैं, अतः यहाँ *भावकर्मणोः* (१।३।१३) से आत्मनेपद सर्वत्र होगा ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से कर्मकर्त्तरि की अनुवृत्ति ३।१।६५ तक जावेगी॥

दुहश्च ॥३।१।६३॥

दुहः ५।१॥ च अ० ॥ अनु०—कर्मकर्त्तरि, अन्यतरस्याम्, ते, च्लेः, लुङि, धातोः ॥ अर्थः—दुह प्रपूरणे अस्माद् धातो कर्मकर्त्तरि च्लेः स्थाने चिण् आदेशो भवति विकल्पेन तशब्दे उदा०—अदोहि गौः स्वयमेव, अदुग्ध गौः स्वयमेव ॥

भाषार्थः—[दुहः] दुह धातु से उत्तर [च] भी कर्मकर्त्ता के स्थान में चिण् आदेश विकल्प से होता है, त शब्द प *न दुहस्नुनमां यक्चिणौ* (३।१।८९) से कर्मकर्त्ता में दुह धातु नित्य ही प्रतिषेध प्राप्त था, यहाँ विकल्प कर दिया है॥ कर्मवद्भाव होकर कर्मवाच्य में कहे हुए कार्य पूर्वोक्त प्रका होते हैं ॥

न रुधः ॥३।१।६४॥

न अ० ॥ रुधः ५।१॥ अनु०—कर्मकर्त्तरि, चिण्, ते, धातोः ॥ अर्थः—रुधिर् आवरणे, धातोरुत्तरस्य कर्मक स्थाने चिण् आदेशो न भवति तशब्दे परतः ॥ उदा०— गौः स्वयमेव ॥

भाषार्थः—[रुधः] रुधिर् धातु से उत्तर कर्मकर्त्ता में चि में चिण् आदेश [न] नहीं होता त शब्द परे रहते ॥ ३।१।८७ से कर्मवद्भाव होकर *'चिणभावकर्मणोः'* से चिण् की यहाँ निषेध कर दिया है ॥ उदा०—अन्ववारुद्ध गौः स्वयमेव आप रुक गई) ॥ अनु अव पूर्वक रुधिर् धातु से सिच् हो *झलो झलि* (८।२।२६) से सिच् लोप, *झलां जश् झशि* (८ रुध् के 'ध्' को 'द' तथा त को ध *झषस्तथोर्धो०* (८।२।४० अन्ववारुद्ध बना है ॥

यहाँ से 'न' की अनुवृत्ति ३।१।६५ तक जावेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तपोऽनुतापे च ॥३।१।६५॥

तपः ५।१॥ अनुतापे ७।१॥ च अ०॥ अनु०—न, कर्मकर्त्तरि, चिण्, च्लेः, लुङि, धातोः॥ अर्थः—अनुतापः = पश्चात्तापः। तप संतापे धातोरुत्तरस्य, कर्मकर्त्तरि, अनुतापे च च्लेः स्थाने चिण् आदेशो न भवति शब्दे परतः॥ उदा०—कर्मकर्त्तरि—अतप्त तपस्तापसः। अनुतापे—अन्ववातप्त पापेन कर्मणा॥

भाषार्थः—[तपः] तप धातु से उत्तर कर्मकर्त्ता में [च] तथा [अनुतापे] अनुताप अर्थ में च्लि के स्थान में चिण् आदेश नहीं होता है, त शब्द परे हो तो॥ अनुताप पश्चात्ताप को कहते हैं॥

अतप्त तपस्तापसः (तपस्वी स्वयमेव स्वर्गादि कामना के लिए तप को प्राप्त करता है) में *तपस्तपः कर्मकस्यैव* (३।१।८८) से तप को यहाँ कर्मवद्भाव होने से चिण् प्राप्त था, सो यहाँ निषेध कर दिया है। अनुताप अर्थ में कर्तृस्थभावक तप धातु अकर्मक है, अतः इसको कर्मवद्भाव प्राप्त ही नहीं था, सो "अन्त्रवातप्त पापेन कर्मणा" (जो पहले पाप किया उससे अनुतप्त हुआ) में कर्म में (शुद्ध कर्मवाच्य में) लकार हुए हैं, कि कर्मकर्त्ता में। यहाँ दोनों ही स्थानों में प्रकृत सूत्र से चिण् का निषेध हो गया है, चिण् का निषेध होने से सिच् हो जाता है, जिसका *श्लो झलि* (८।२।२६) से लोप हो जाता है। शेष सिद्धि पूर्ववत् है॥

चिण्भावकर्मणोः ॥३।१।६६॥

चिण् १।१॥ भावकर्मणोः ७।२॥ स०—भावश्च कर्म च, भावकर्मणी तयोः.....इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—ते, च्लेः, लुङि, धातोः॥ अर्थः—धातोरुत्तरस्य च्लेः चिण् आदेशो भवति, भावे कर्मणि च लुङि तशब्दे परतः॥ उदा०—भावे—अशायि भवता। कर्मणि—अकारि कटो देवदत्तेन॥

भाषार्थः—[भावकर्मणोः] भाव और कर्म में धातु मात्र से उत्तर च्लि के स्थान में [चिण्] चिण् आदेश होता है, लुङ् त शब्द परे रहते॥ भाव और कर्म क्या है, यह सब हमने *'भावकर्मणोः'* (१।३।१३) सूत्र पर लिखा है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदा०—भाव में—अशायि भवता (आप सो गये)। कर्म में—कटो देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा चटाई बनाई गई)॥ शय्यते (७।२।११५) से वृद्धि आदि होकर सिद्धि पूर्ववत् जाने॥

यहाँ से 'भावकर्मणोः' की अनुवृत्ति ३।१।६७ तक जायेगी।

सार्वधातुके यक् ॥३।१।६७॥

सार्वधातुके ७।१॥ यक् १।१॥ अनु०—भावकर्मणोः, धातोः परश्च॥ अर्थः—भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतो धातोः प्रत्ययो भवति॥ उदा०—भावे—आस्यते भवता, शय्यते भवता। कर्मणि—क्रियते कटः, गम्यते ग्रामः॥

भाषार्थः—भाव और कर्म में विहित [सार्वधातुके] सार्वधातुक परे हों तो, धातु मात्र से [यक्] यक् प्रत्यय होता है॥ उदा०—भाव में—आस्यते भवता (आपके द्वारा बैठा जाता है) शय्यते भवता (आपके द्वारा सोया जाता है)। कर्म में—क्रियते कटः (चटाई बनाई जाती है) गम्यते ग्रामः (गाँव को जाया जाता है)॥ सिद्धियां परिशिष्ट में देखें॥ शय्यते में केवल यह विशेष है कि 'अयङ् यि क्ङिति' से अयङ् आदेश भी होता है॥

यहाँ से 'सार्वधातुके' की अनुवृत्ति ३।१।८२ तक जायेगी।

कर्त्तरि शप् ॥३।१।६८॥

कर्त्तरि ७।१॥ शप् १।१॥ अनु०—सार्वधातुके, धातोः परश्च॥ अर्थः—कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतो धातोः शप् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—भवति, पठति। भवतु, पठतु। अभवत्, अपठत्। भवेत् पठेत्॥

भाषार्थः—[कर्त्तरि] कर्त्तावाची सार्वधातुक के परे रहते [शप्] शप् प्रत्यय होता है॥ लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् लकार 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' (३।४।११३) से सार्वधातुकसंज्ञक हैं सो इन्हीं लकारों में शप् प्रत्यय होता है॥

यहाँ से 'कर्त्तरि' की अनुवृत्ति ३।१।८८ तक जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दिवादिभ्यः श्यन् ॥३।१।६९॥

दिवादिभ्यः ५।३॥ श्यन् १।१॥ स०—दिव आदिर्येषां ते दिवादयः तेभ्यः……बहुव्रीहिः॥ अनु०—सार्वधातुके कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—दिवादिभ्यो धातुभ्यः श्यन् प्रत्ययो भवति कर्त्तरि सार्वधातुके परतः॥ उदा०—दीव्यति, सीव्यति।

भाषार्थः—[*दिवादिभ्यः*] दिवादि गण की धातुओं से [*श्यन्*] श्यन् प्रत्यय होता है, कर्त्तावाची सार्वधातुक परे रहते॥ धातुमात्र से शप् प्रत्यय प्राप्त था उसके अपवाद ये सब सूत्र विधान किये हैं॥ भाष्य के अनुसार यहाँ शप् के स्थान में श्यन्, श्नु आदि आदेश होते हैं, ऐसा समझना चाहिए॥

यहाँ से 'श्यन्' की अनुवृत्ति ३।१।७२ तक जायेगी॥

वा भ्राशम्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ॥३।१।७०॥

वा अ०॥ भ्राशम्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ५।१॥ स०—भ्राशश्च म्लाशश्च भ्रमुश्च क्रमुश्च क्लमुश्च त्रसिश्च त्रुटिश्च लष् च इति भ्राशम्लाश……लष्, तस्मात् समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—श्यन् कर्त्तरि, सार्वधातुके, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—टुभ्राशृ टुम्लाशृ दीप्तौ, भ्रमु अनवस्थाने, भ्रमु चलने द्वयोरपि ग्रहणं, क्रमु पादविक्षेपे, क्लमु ग्लानौ, त्रसी उद्वेगे, त्रुटी छेदने, लष कान्तौ इत्येतेभ्यो धातुभ्यो वा श्यन् प्रत्ययः परश्च भवति कर्त्तरि सावधातुके परतः॥ उदा०—भ्राशते, भ्राश्यते। म्लाशते, म्लाश्यते। भ्रमति भ्राम्यति। क्रामति, क्राम्यति। क्लामति, क्लाम्यति। त्रसति, त्रस्यति। त्रुटति, त्रुट्यति। अभिलषति, अभिलष्यति॥

भाषार्थः—[*भ्राशम्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः*] टुभ्राशृ टुम्लाशृ, भ्रमु, क्रमु, क्लमु, त्रसि, त्रुटी, लष इन धातुओं से [*वा*] विकल्प श्यन् प्रत्यय होता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते॥ पक्ष में शप् प्रत्यय होगा॥ उदा०—भ्राशते, भ्राश्यते (चमकता है) म्लाशते, म्लाश्यते (चमकता है) भ्रमति, भ्राम्यति (घूमता है) क्रामति, क्राम्यति (चलता है) क्लामति, क्लाम्यति (ग्लानि करता है) त्रसति, त्रस्यति (डरता है) त्रुटति, त्रुट्यति (टूटता है) अभिलषति, अभिलष्यति (चाहता है)॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शमामष्टानां दीर्घः श्यनि (७।३।७५) से भ्राम्यति में श्यन् परे होता है। ष्ठिवुक्लमुचमां० (७।३।३५) से क्लामति क्लाम्यति (शप् तथा श्यन् दोनों पक्षों में शित् परे होने से) दीर्घ होता है। परस्मैपदेषु (७।३।७६) से क्रामति, क्राम्यति में दीर्घ होता है। तुदादिगण में पढ़ी है, अतः पक्ष में श प्रत्यय होगा॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति ३।१।७२ तक जायेगी॥

यसोऽनुपसर्गात् ॥३।१।७१॥

यसः ५।१॥ अनुपसर्गात् ५।१॥ अनु०—वा श्यन्, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनुपसर्गाद् यसु विकल्पेन श्यन् प्रत्ययो भवति कर्त्तरि सार्वधातुके परतः। दैवादिकः तस्मिन्नित्ये श्यनि प्राप्ते विकल्पेन विधीयते। यस्यति, यसति ॥

भाषार्थः—[अनुपसर्गात्] अनुपसर्ग [यसः] यस् धातु से श्यन् प्रत्यय होता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते॥ दिवादि गण की धातु है, उससे नित्य श्यन् प्राप्त था विकल्प दिया है, पक्ष में शप् होगा ॥ उदा०—यस्यति, यसति (अच्छी करता है) ॥

संयसश्च ॥३।१।७२॥

संयसः ५।१॥ च अ० ॥ अनु०—वा श्यन् सार्वधातुके प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—सम्पूर्वाद् यसधातोः श्यन् प्रत्ययो भवति कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः ॥ उदा०—संयस्यति, संयसति

भाषार्थः—[संयसः] सम् पूर्वक यस् धातु से [च] भी विकल्प से होता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते॥ पूर्व पसर्ग यस धातु से विकल्प कहा था, अतः सम्पूर्वक नहीं विधान कर दिया है ॥ उदा०—संयस्यति संयसति (अच्छी करता है) ॥

स्वादिभ्यः श्नुः ॥३।१।७३॥

स्वादिभ्यः ५।३॥ श्नुः १।१॥ स०—षुञ् आदिर्येषां तेभ्यः.....बहुव्रीहिः ॥ अनु०—सार्वधातुके कर्त्तरि धातोः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

]

च ॥ अर्थः—षुञ् अभिषवे, इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यो श्नुप्रत्ययो
ति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः ॥ उदा०—सुनोति, सिनोति ॥

भाषार्थः—[स्वादिभ्यः] षुञ् अभिषवे इत्यादि धातुओं से [श्नुः]
प्रत्यय होता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ॥

यहाँ से 'श्नुः' की अनुवृत्ति ३।१।७६ तक जायेगी ॥

श्रुवः शृ च ॥३।१।७४॥

श्रुवः ५।१॥ शृ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ अनु०—श्नुः,
धातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—श्रु श्रवणे, अस्माद्
ः श्नुप्रत्ययो भवति कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः, शृ आदेशश्च
तोर्भवति ॥ उदा०—शृणोति, शृणुतः ॥

भाषार्थः—[श्रुवः] श्रु धातु से श्नु प्रत्यय होता है, कर्त्तावाची सार्व-
धातुक परे रहते, साथ ही श्रु धातु को [शृ] शृ आदेश [च] भी हो
ता है ॥ उदा०—शृणोति (सुनता है), शृणुतः ॥

अक्षोऽन्यतरस्याम् ॥३।१।७५॥

अक्षः ५।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ अनु०—श्नुः, सार्वधातुके, कर्त्तरि,
ः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अक्षू व्याप्तौ इत्येतस्माद् धातोः श्नुः प्रत्ययो
ल्पेन भवति कर्त्तरि सार्वधातुके परतः ॥ उदा०—अक्ष्णोति, अक्नुति ॥

भाषार्थः—[अक्षः] अक्षू धातु से [अन्यतरस्याम्] विकल्प से श्नु
य होता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ॥ अक्षू धातु भ्वादिगण
है सो नित्य शप् प्राप्त था विकल्प कर दिया है ॥ उदा०—अक्ष्णोति,
ति (व्याप्त होता है) ॥

यहाँ से 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति ३।१।७६ तक जायेगी ॥

तनूकरणे तक्षः ॥३।१।७६॥

तनूकरणे ७।१॥ तक्षः ५।१॥ अनु०—अन्यतरस्यां श्नुः सार्व-
धातुके कर्त्तरि धातोः प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—तनूकरणे = सूक्ष्मी
ऽर्थे वर्त्तमानात् तक्षूधातोः, विकल्पेन श्नुः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—
ति काष्ठम्, तक्ष्णोति ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*तक्षः*] तक्षू धातु [*तनूकरणे*] तनूकरण अर्थ में वर्तमान हो तो, श्नु प्रत्यय विकल्प से हो कर्त्ता, सार्वधातुक परे रहते ॥ तक्षू धातु भी भ्वादिगण की है, प्राप्त था विकल्प कर दिया है ॥ उदा०—तक्षति (लकड़ी छीलता है) ॥

तुदादिभ्यः शः ॥३।१।७७॥

तुदादिभ्यः ५।३॥ शः १।१॥ स०—तुद आदिर्येषां ते ……बहुव्रीहिः ॥ अनु०—सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्र अर्थः—तुद व्यथने इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः श कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः ॥ उदा०—तुदति, तुदतः

भाषार्थः—[*तुदादिभ्यः*] तुदादि धातुओं से [*शः*] है, कर्त्तावाची सार्वधातुक परे रहते ॥ श प्रत्यय सार्व से ङित्वत् है, सो *क्ङिति च* (१।१।५) से तुद को गु जाता है ॥ उदा०—तुदति (पीडा देता है) तुदतः (आ

रुधादिभ्यः श्नम् ॥३।१।७८॥

रुधादिभ्यः ५।३॥ श्नम् १।१॥ स०—रुध् आदि स्तेभ्यः……बहुव्रीहिः ॥ अनु०—सार्वधातुके, कर्त्तरि, परश्च ॥ अर्थः—रुधादिभ्यो धातुभ्यः श्नम् प्रत्ययो सार्वधातुके परतः ॥ उदा०—रुणद्धि, भिनत्ति ॥

भाषार्थः—[*रुधादिभ्यः*] रुधादिगण की धातुओं से प्रत्यय होता है, कर्त्तावाची सार्वधातुक परे रहते ॥ १।१।४६ में देखें ॥

तनादिकृञ्भ्य उः ॥३।१।७९॥

तनादिकृञ्भ्यः ५।३॥ उः १।१॥ स०—तन् आदिर्य तनादयश्च कृञ् च तनादिकृञस्तेभ्यः……बहुव्रीहिगर्भ इतरेत सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः-तनादि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

च उः प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः ॥ उदा०—
ति, सनोति, करोति ॥

भाषार्थः—[*तनादिकृञ्भ्यः*] तनादिगण की धातुओं से तथा कृञ् से [उः] उ प्रत्यय होता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ॥ ०—तनोति (विस्तार करता है) सनोति (देता है) करोति (करता तन् उ ति' पूर्ववत् होकर, *सार्वधातुका०* (७।३।८४) से 'उ' को 'ओ' होकर तनोति बन जावेगा ॥

यहाँ से 'उः' की अनुवृत्ति ३।१।८० तक जावेगी ॥

धिन्विकृण्व्योर च ॥३।१।८०॥

धिन्विकृण्व्योः ६।२॥ अ, लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ स०—वश्च, कृण्वश्च धिन्विकृण्वौ तयोः, धिन्विकृण्व्योः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ —उः, सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—धिवि इत्येताभ्यां धातुभ्याम् उः प्रत्ययो भवति कर्त्तृवाचिनि सार्वधातुके अकारश्चान्तादेशो भवति ॥ उदा०—धिनोति, कृणोति ॥

भाषार्थः—[*धिन्विकृण्व्योः*] धिवि, कृवि धातुओं से उ प्रत्यय [च] इनको [अ] अकार अन्तादेश भी हो जाता है, कर्त्तृवाची सार्वक परे रहते ॥ ये भ्वादिगण की धातुएँ हैं सो शप् प्राप्त था 'उ' न कर दिया है ॥

क्र्यादिभ्यः श्ना ॥३।१।८१॥

क्र्यादिभ्यः ५।३॥ श्ना १।१॥ स०—क्री आदिर्येषां ते क्र्यादिभ्यः ... बहुव्रीहिः ॥ अनु०—सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, परश्च ॥ अर्थः—डुक्रीञ् इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः श्ना प्रत्ययो कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः ॥ उदा०—क्रीणाति, क्रीणीतः ॥

भाषार्थः—[*क्र्यादिभ्यः*] डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये इत्यादि धातुओं [श्ना] श्ना प्रत्यय होता है, कर्त्तावाची सार्वधातुक परे रहते ॥ उदा०—ति (खरीदता है) क्रीणीतः ॥ 'क्री ना ति' *'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽ* (८।४।२) से न को ण होकर क्रीणाति बन गया ॥ क्रीणीतः में ई घोः (६।४।११३) से ईत्व हो गया है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'श्ना' की अनुवृत्ति ३।१।८२ तक जायेगी॥

स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च ॥३॥

स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः ५।३॥ श्नुः १।१॥ च अ॰ स्तम्भु॰ इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु॰—श्ना, सार्वधातुके, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—स्तम्भु, स्तुम्भु, स्कम्भु, स्कुञ् चत्वारः सौत्रा धातवः, स्कुञ् आप्रवणे, इत्येतस्मात् भवति, चकारात् श्ना च कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परः स्तभ्नाति, स्तभ्नोति। स्तुभ्नाति, स्तुभ्नोति। स्कभ्नाति, स्कुभ्नाति, स्कुभ्नोति। स्कुनाति, स्कुनोति॥

भाषार्थः—[स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः] स्तम्भादि [श्नुः] श्नु प्रत्यय होता है [च] तथा श्ना प्रत्यय स्तम्भादि ४ धातुएँ सौत्रपाठ की रोकने अर्थ में हैं। स्कुञ् पढ़ी है सो इससे श्ना प्रत्यय सिद्ध ही था, पुनः लिए वचन है॥ उदा॰—स्तभ्नाति (रोकता है) स्तभ्नोति (रोकता है) स्तुभ्नोति। स्कभ्नाति (रोकता है) स्कभ्नोति (रोकता है) स्कुभ्नोति। स्कुनाति (कूदता है) स्कुनोति॥

हलः श्नः शानज्झौ ॥३।१।८३॥

हलः ५।१॥ श्नः ६।१॥ शानच् १।१॥ झौ ७।१॥ धातोरुत्तरस्य श्ना प्रत्ययस्य स्थाने शानच् आदेशो भवति॥ उदा॰—मुषाण रत्नानि। पुषाण॥

भाषार्थः—[हलः] हलन्त धातु से उत्तर [श्नः] स्थान में [शानच्] शानच् आदेश हो जाता है [झौ] हो तो॥ उदा॰—मुषाण रत्नानि (रत्नों को चुरा लो) करो)॥ मुष् पुष् हलन्त धातुएँ हैं, सो पूर्ववत् लोट् श्ना सिप्' बनकर सेर्ह्यपिच्च (३।४।८७) से सिप् को सूत्र से श्ना को शानच् आदेश होकर 'मु शानच् हेः (६।४।१०५) से हि का लुक् होकर मुषाण बन गया॥

यहाँ से 'श्नः' की अनुवृत्ति ३।१।८४ तक जावेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

छन्दसि शायजपि ॥३।१।८४॥

छन्दसि ७।१॥ शायच् १।१॥ अपि अ० ॥ अनु०—श्नः ॥ अर्थः—से विषये श्नः स्थाने 'शायच्' आदेशो भवति, शानजपि ॥ —गृभाय जिह्वया मधु (ऋ० ८।१७।५)। शानच्—बधान पशुम् ॥

भाषार्थः—[छन्दसि] वेद में श्ना के स्थान में [शायच्] शायच् श होता है, तथा शानच् [अपि] भी होता है ॥ श्ना को शायच् श होकर गृभ शायच् = गृभाय बनेगा ॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।१।८६ तक जाती है ॥

व्यत्ययो बहुलम् ॥३।१।८५॥

व्यत्ययः १।१॥ बहुलम् १।१॥ अनु०—छन्दसि ॥ अर्थः—छन्दसि सर्वेषां विधीनां बहुलप्रकारेण व्यत्ययो भवति ॥ अत्र महाभाष्य- प्रकरणान्तरविहितानां स्यादिविकरणानामपि व्यत्ययसिद्ध्यर्थं योग- ां करोति। यथा—'व्यत्ययः' इत्येको योगस्तस्यायमर्थो व्यत्ययो वै स्यादिविकरणानाम् । ततश्च 'बहुलम्' व्यत्यय इत्यनुवर्त्तते, यमर्थः बहुलं छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति ॥ किं पुनरिदं व्यत्ययो ? उत्तरयति—व्यतिगमनं व्यत्ययः। यस्य प्राप्तिः स न स्यादन्य स्यादथवा कोऽपि न स्यात् ॥ के च ते विधयो येषां व्यत्ययो ति ? उच्यते—सुपां व्यत्ययः, तिङां व्यत्ययः, वर्णव्यत्ययः, लिङ्ग- यः, कालव्यत्ययः, पुरुषव्यत्ययः, आत्मनेपदव्यत्ययः, परस्मै- यत्ययः। तत्र क्रमेणोदाह्रियते ॥ *उदा०—सुपां व्यत्ययः*—युक्ता सीद् धुरि दक्षिणायाः (ऋक० १।१६४।६) दक्षिणायामिति प्राप्ते, या विषये व्यत्ययेन षष्ठी। *तिङां व्यत्ययः*—चषालं ये अश्वयूपाय त (ऋ० १।१६२।६२) तक्षन्तीति प्राप्ते, झि विषये व्यत्ययेन तिप्। त्ययः—त्रिष्टुभौजः शुभितमुग्रवीरम्। शुधितमिति प्राप्ते, धकारस्य भकारो वर्णव्यत्ययः। *लिङ्गव्यत्ययः*—मधोर्गृह्णाति। मधोस्तृप्ता ते। मधुन इति प्राप्ते, नपुंसकलिङ्गविषये पुँल्लिङ्गव्यत्ययः ॥ *काल-* यः—श्वोऽग्नीनाधास्यमानेन। श्वः सोमेन यक्ष्यमाणेन। आधाता येवं प्राप्ते अनद्यतनभविष्यत्कालविहितलुट्लकारविषये व्यत्ययेन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लृट्लकारः । पुरुषव्यत्ययः—अधा स वीरैर्दशभिर्वियूया (ऋ० १५) वियूयादिति प्राप्ते, प्रथमपुरुषविषये व्यत्ययेन आत्मनेपदव्यत्ययः—ब्रह्मचारिणमिच्छते (अथ० ११।५।। प्राप्ते, परस्मैपदविषये आत्मनेपदव्यत्ययः । परस्मैपदव्यत्ऊर्मिर्युध्यति । 'युध्यते' इति प्राप्ते, आत्मनेपदविषये परस्मै

भाषार्थः—वेद विषय में [बहुलम्] बहुल करके स [व्यत्ययः] व्यत्यय होता है ॥

यहाँ महाभाष्यकार ने 'व्यत्ययः ऐसा सूत्र का योग प्रकरण विहित जो स्यादिविकरण उनका भी व्यत्यय तथा द्वितीय योगविभाग 'बहुलम्' से वेदविषय में सं व्यत्यय सिद्ध किया है । वे कौन कौन सी विधियाँ हैं इस महाभाष्य में निम्न प्रकार से है—

सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च ।
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोऽपि च सिद्ध्यति

उपग्रह, परस्मैपद, आत्मनेपद को कहते हैं। नर अर्थात् इन सबके उदाहरण ऊपर संस्कृत भाग में दिखा ही दिये हैं बता दिया है कि कहाँ पर क्या व्यत्यय हुआ है ? और अतः यहाँ पुनः उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है।

---

१. यहाँ व्यत्यय के विषय में लोगों में बड़ी भ्रान्ति है, अज्ञ कहते हैं कि 'बाउला छन्दसि' ऐसा सूत्र बनाना चाहिए, तथा पु कि वेद में व्यत्यय हो ही क्यों ? जब परमात्मा ने वेद बनाया, तो पूरा पूरा ठीक क्यों न बना दिया । इसका समाधान यह है कि जो मर्यादा एवं प्रक्रिया को पढ़ा नहीं, या उसकी बुद्धि कुण्ठित होने में में यह बात ठीक बैठी नहीं, ऐसे ज्ञानलवदुर्विदग्ध लोगों के होने पर जनता उनको परिडत या विद्वान् पुकारने लग जावे, ऐसी अवस्था में भी कठिन है। तो भी हम जनता के अज्ञान की निवृत्ति के कहते हैं—

निरुक्तकार ने चौथे पांचवे छठे अध्याय में अनवगत संस्कार प्रत्यय स्पष्ट ज्ञात नहीं होता) शब्दों का निर्वचन दिखाया है, जो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

को कहते हैं, अर्थात् किसी विषय में कुछ प्राप्त हो और कुछ हो , अथवा कुछ न होना यही व्यत्यय है ॥

लिङ्याशिष्यङ् ॥३।१।८६॥

लिङि ७।१॥ आशिषि ७।१॥ अङ् १।१॥ अनु०—छन्दसि, धातोः, यः, परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये आशिषि यो लिङ् विधीयते न् परतोऽङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उपस्थेयं वृषभं तुग्रियाणाम्। सुपगेयम्। गमेम जानतो गृहान्। मन्त्रं वोचेमाग्नये (यजु० ३।११)। यमेनां मनसि प्रविष्टाम् (अथ० १९।४।२)। व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयम्। शकेम त्वा समिधम् (ऋ० १।९४।३) अस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये (यजु० १०।६३।१०) ॥

भाषार्थः—वेद विषय में [*लिङि आशिषि*] आशिषि लिङ् के परे [अङ्] अङ् प्रत्यय होता है ॥

अङ् करने का प्रयोजन स्था, गा, गम, वच, विद, शक, रुह इन्हीं धातुओं में है, सो इसी प्रकार संस्कृत भाग में उदाहरण दिये हैं ॥

रण, शब्दसाहचर्य्य तथा अर्थोपपत्ति इन चार बातों के आधार पर होता है, उनमें प्रकृति प्रत्यय की कल्पना ही पूर्वोक्तानुसार अनिवार्य मानी गई है। नित्यः परीक्षेत' अर्थात् अर्थ को प्रधान मान कर निर्वचन करना ही निरुक्त का सिद्धान्त है, सो इसी प्रकार वेद में जहाँ पूर्वापर प्रकरणादि के अनुसार शब्द सामान्य व्याकरण की दृष्टि से ठीक नहीं प्रतीत होता, वहीं के लिए नि मुनि एवं महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि ने भी व्यत्यय के सिद्धान्त को मान वेद मन्त्रों के व्यापक अर्थ का प्रतिपादन किया है, नहीं तो मन्त्र संकुचित अर्थ रह जाते। जैसा कि "हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् धार पृथिवीम्" यहाँ दाधार का अर्थ धारण करता है; धारण किया, धारण तीनों कालों में होता है, केवल भूतकाल में ही नहीं, यह भी एक प्रकार का प ही है, जो कि '*छन्दसि लुङ्लङ्लिटः*' (३।४।६) से कहा है। इस य से मन्त्र के अर्थ की व्यापकता सिद्ध होती है, केवल भूतकालिक अर्थ करने से चित अर्थ हो जाता, अतः व्यत्यय वेद का एक मूलभूत अनिवार्य एवं महत्त्व विधान है, इस पर उपहास करने वाले स्वयं उपहास के पात्र हैं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः ॥३।१।८७॥

कर्मवत् अ० ॥ कर्मणा ३।१॥ तुल्यक्रियः १।१॥ स०-यस्य, स तुल्यक्रियः, (कर्त्ता) बहुव्रीहिः ॥ कर्मणा, *तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः* (५।१।११४) इति वतिः प्रत्ययः। कर्मणा = कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्त्ता कर्मवद्भवति यस्मिन् कर्मणि कर्तृभूतेऽपि क्रिया तद्वल्लक्ष्यते यथा कर्मवद्भवति ॥ तेन कर्माश्रयाणि कार्याणि प्रतिपद्यन्ते ॥ कर्त्तरि शप् (३।१।६८) इत्यतोऽत्र कर्तृग्रहणं मण्डूकप्लुतगत्याऽनुवर्त्तते, तेन विपरिणम्यते ॥ यक्-आत्मनेपद-चिण्-चिण्वद्भावाः प्रयोजनम्। भिद्यते काष्ठं स्वयमेव। अभेदि काष्ठं स्वयमेव। कारिष्यते कटः

भाषार्थः—जिस कर्म के कर्त्ता हो जाने पर भी, क्रिया वैसी ही हो, जैसी की कर्मावस्था में थी, उस [*कर्मणा*] कर्म के साथ तुल्यक्रियावाले कर्त्ता को [*कर्मवत्*] कर्मवद्भाव होता है॥ *कर्त्तरि शप्* (३।१।६८) से कर्त्तरि की अनुवृत्ति मण्डूकप्लुत रही है, जिसका प्रथमा में विपरिणाम हो जाता है॥

देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति' यहाँ देवदत्त कर्त्ता तथा काष्ठ वही काष्ठ अत्यन्त सूखा हुआ हो, फाड़ने में कोई कठिनाई सौकर्यातिशय विवक्षा में कर्म ही कर्त्ता बन जाता है, ही कर्तृत्व विवक्षा होती है। जैसे काष्ठं भिद्यते स्वयमेव फटी जा रही है, सो ऐसी अवस्था में उस कर्त्ता को कर्म के जाय, कर्मवद्भाव हो जाय इसलिए यह सूत्र है। कर्मवद्भाव प्रयोजन हैं—*सार्वधातुके यक्* (३।१।६७) से यक्, भावकर्मणो से आत्मनेपद, *चिण्भावकर्मणोः* (३।१।६६) से चिण्, (६।४।६२) से चिण्वद्भाव, इन चारों प्रयोजनों वाले संस्कृत भाग में दिखा दिये हैं॥

सूत्र में 'कर्मणा' शब्द कर्मस्थक्रिया का वाचक है। इसी हैं कि धातुएँ चार प्रकार की होती हैं:—(१) कर्मस्थक्रियक भावक (३) कर्तृस्थक्रियक (४) कर्तृस्थभावक। जिन धातु (व्यापार) कर्म में ही स्थित रहे, वह कर्मस्थक्रियक हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. eGangotri Initiative

ड़ी फाड़ता है, यहाँ फटना रूपी व्यापार लकड़ी कर्म में हो रहा है, न
र्त्ता देवदत्त में, सो फाड़ना (भिनत्ति) क्रिया कर्मस्थक्रियक है ॥
का धात्वर्थ कर्म में हो वह कर्मस्थभावक हैं, यथा 'अग्निः घटं
ति' (अग्नि घट को पकाता है) यहाँ पकना रूपी धात्वर्थ कर्म
में है, अतः पकना क्रिया कर्मस्थभावक है। इस प्रकार जिन
ओं का व्यापार कर्त्ता में स्थित हो, वह कर्तृस्थक्रियक हैं। यथा
त्त गांव को जाता है, यहाँ जाना रूपी व्यापार कर्त्ता में है, न कि
में है, इसी प्रकार कर्त्ता में स्थित धात्वर्थ को कर्तृस्थ भावक कहते
था 'देवदत्तः चिन्तयति = देवदत्त चिन्ता करता है', यहाँ चिन्तन
धात्वर्थ देवदत्त में है ॥ सामान्य रूप में क्रिया एवं भाव में इतना
न्तर माना गया है, कि *"अपरिस्पन्दनसाधनसाध्यो धात्वर्थो भावः"*
त् जिसमें हिलना जुलना चेष्टा न हो ऐसे साधनों से सिद्ध करने
धात्वर्थ भाव है, तथा *"सपरिस्पन्दनसाधनसाध्यस्तु क्रिया"* जिसमें
हिलना जुलना पाया जावे ऐसे साधनों से सिद्ध करने योग्य
र्थ का नाम क्रिया है। इस प्रकार जहाँ कुछ क्रियाकृत विशेष
वह कर्मस्थक्रियक कर्तृस्थक्रियक, जहाँ न हो वह कर्मस्थभावक
थभावक है, जैसा कि उदाहरणों से स्पष्ट है ॥ इस तरह सूत्र
र्मणा' शब्द 'कर्मस्थक्रिया' का वाचक होने से यह निकला कि कर्म-
व कर्मस्थक्रियक' एवं कर्मस्थभावक' को ही होता है कर्तृस्थक्रियक
कर्तृस्थभावक को नहीं होता ॥

यहाँ 'तुल्यक्रियः' में तुल्य शब्द सादृश्य अर्थ का वाचक है, न कि
न अर्थ का, सो सूत्र का अर्थ हुआ—जिस कर्म के कर्त्ता बन जाने
ी (अर्थात् उदाहरण में काष्ठ पहले कर्म था, उसके कर्त्ता बन जाने
ी) क्रिया तद्वत् लक्षित हो, जैसी की कर्मावस्था में थी, ऐसे तुल्य-
वाले कर्त्ता को कर्मवद्भाव = कर्म के सदृश कार्य होता है। उदाहरण
भेदन क्रिया काष्ठ की कर्मावस्था में थी, वही भेदन क्रिया काष्ठ
र्त्ता बन जाने पर भी है, अतः तुल्यक्रियत्व है ही ॥ कर्मवद्भाव
से कर्मवाच्य में कहे हुए कार्य कर्मकर्त्ता में भी हो जाते हैं, यही
द्भाव का प्रयोजन है ॥

यहाँ से 'कर्मवत्' की अनुवृत्ति ३।१।९० तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तपस्तपःकर्मकस्यैव ॥३।१।८८॥

तपः ६।१॥ तपःकर्मकस्य ६।१॥ एव अ० ॥ स०—तपः स तपःकर्मकस्तस्य·····बहुव्रीहिः ॥ अनु०—कर्मवत् ॥ सन्तापे अस्य धातोः कर्त्ता, कर्मवद्भवति स च तपःकर्मकस्यैव कस्य ॥ तुल्यक्रियाऽभावात्पूर्वेणाऽप्राप्तो विधीयते ॥ उदा०—तपस्तापसः, अतप्त तपस्तापसः ॥

भाषार्थः—[*तपः*] तप सन्तापे धातु के कर्त्ता को कर्मवद्भाव है, यदि वह तप धातु [*तपःकर्मकस्य*] तप कर्मवाली [एव] कोई कर्मवाली न हो तो ॥ यदि सकर्मक धातुओं को कर्मवद्भाव तप को ही हो ऐसा द्वितीय नियम भी महाभाष्य में योगविभाग से निकाला है ॥

सत्याचरणादि तप कर्म हैं। तपांसि तापसं तपन्ति सदाचारादि व्रत के पालनरूपी तप कर्म दुःख दे रहे हैं। धातु का तपांसि कर्त्ता तथा तापसं कर्म है, यही तापस पूर्वोक्त रीति से कर्त्ता बन जाता है तो तप्यते तपस्तापसः (तपमेव स्वर्गादि कामना के लिए तप को प्राप्त करता है) यहाँ हो जाता है ॥ कर्मावस्था में "तपन्ति" का अर्थ "दुःख देना" कर्मकर्त्ता बन जाने पर "प्राप्त होना" है, अतः तुल्यक्रियत्व न होने से पूर्व सूत्र से कर्मवद्भाव प्राप्त नहीं था, विधान है ॥ 'तप्यते' में कर्मवद्भाव होने से पूर्ववत् यक् और पद हो गये हैं, तथा 'अतप्त' में *चिण् भावकर्मणोः* (३।१।६६) चिण् का *तपोऽनुतापे च* (३।१।६५) से निषेध हो जाने से जाता है, जिसका *झलो झलि* (८।२।२६) से लोप हो जाता सिद्धियाँ पूर्ववत् ही हैं ॥

न दुहस्नुनमां यक्चिणौ ॥३।१।८९॥

न अ० ॥ दुहस्नुनमाम् ६।३॥ यक्चिणौ १।२॥ स०—दुहस्नुनम् च दुहस्नुनमस्तेषां·····इतरेतरद्वन्द्वः। यक् च चिण् च इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मवत् ॥ अर्थः—दुह, स्नु, नम् धातूनां कर्मकर्त्तरि कर्मवद्भावापदिष्टौ यक्चिणौ न भवतः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तिष्यते, चिण् तु दुहश्च (३।१।६३) इत्यनेन पूर्वमेव विभाषितः ॥
उ०—दुग्धे गौः स्वयमेव, अदोहि गौः स्वयमेव। प्रस्नुते शोणितं
यमेव, प्रास्नोष्ट शोणितं स्वयमेव। नमते दण्डः स्वयमेव, अनंस्त दण्डः
यमेव ॥

भाषार्थः—[दुहस्नुनमाम्] दुह, स्नु, नम इन धातुओं को कर्मवद्भाव कहे हुए कार्य [यक्चिणौ] यक् और चिण् [न] नहीं होते हैं ॥ विद्भाव = कर्मकर्त्ता में यक्, चिण्, आत्मनेपद, चिण्वद्भाव यह चार हैं होते हैं, उनमें से यक् और चिण् का प्रकृत सूत्र से प्रतिषेध हो ने से यहाँ आत्मनेपद और चिण्वद्भाव हो होता है। चिण्वद्भाव भी न्त (६।४।६२) अङ्ग को ही कहा है, अतः दुह् नम् के अजन्त अङ्ग न ने से इनको चिण्वद्भाव नहीं होता, केवल स्नु जो कि अजन्त हैं, उसे में चिण्वद्भाव होकर लुङ् लकार में "प्रास्नाविष्ट" रूप भी ता है ॥

'गां दोग्धि पयः' यहाँ गां कर्म है, जब गौ स्वयमेव दोहन क्रिया लने की इच्छा से खड़ी हो जाती है, तब सौकर्यातिशय विवक्षा में कर्म, कर्त्ता बन जाता है. उस अवस्था में कर्मवत्कर्मणा० (३।१।८७) कर्मवद्भाव होकर सब कार्य प्राप्त थे, निषेध कर दिया है। इसी र औरों में भी समझें ॥ दुह धातु को कर्मकर्त्ता में केवल यक् का ध ही इस सूत्र से होता है, चिण् तो दुहश्च से विकल्प करके त ही है। यक् का निषेध होने पर यथाप्राप्त शप् हो जाता है, चिण् का निषेध होने पर सिच् हो जाता है ॥

कुषिरजोः प्राचां श्यन्परस्मैपदं च ॥३।१।९०॥

कुषिरजोः ६।२॥ प्राचाम् ६।३॥ श्यन् १।१॥ परस्मैपदम् १।१॥ च ॥ स०—कुषिश्च रज् च कुषिरजौ तयोः कुषिरजोः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ ०—कर्मवत् धातोः प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—कुष निष्कर्षे, रञ्ज रागे, योर्धात्वोः कर्मकर्त्तरि श्यन् प्रत्ययो भवति, परस्मैपदं च प्राचामाचा- मतेन ॥ कर्मवद्भावेन यक्प्राप्तस्तस्यापवादः श्यन्, एवमात्मने- पापवादः परस्मैपदम् ॥ प्राचां ग्रहणं विकल्पार्थमन्येषां मते यगात्मने- भवत एव ॥ उदा०—कुष्यति पादः स्वयमेव, रज्यति वस्त्रं स्वय- अन्येषां मते कुष्यते, रज्यते ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[कुषिरजोः] कुष और रज धातु को कर्मवद्भाव श्यन् प्रत्यय [च] और [परस्मैपदम्] परस्मैपद होता है, प्राचीन आचार्यों के मत में॥ *कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः* (३।१।८७) वद्भाव होकर कर्मकर्त्ता में यक् और आत्मनेपद प्राप्त था, वाद यह श्यन् और परस्मैपद का विधान है॥ प्राचाम् विकल्पार्थ है, अर्थात् प्राचीन आचार्यों के मत में श्यन् होगा, अन्यों के मत में यक् एवं आत्मनेपद ही होगा॥

उदा०—कुष्यति पादः स्वयमेव (पैर स्वयं खिचता वस्त्रं स्वयमेव (कपड़ा स्वयं रँगा जा रहा है) पक्ष में—कुष्य सिद्धियों में कुछ भी विशेष नहीं है॥

धातोः ॥३।१।९१॥

धातोः ५।१॥ *अर्थः*—आ तृतीयाध्यायपरिसमाप्तेः (३।४।७७) रित्ययमधिकारो वेदितव्यः॥ *तव्यत्तव्यानीयरः* (३।१।९६) वक्ष्यति, ते धातोरेवोत्पत्स्यन्ते॥

भाषार्थः—यहाँ से [*धातोः*] धातोः का अधिकार समाप्ति पर्यन्त जायेगा, ऐसा जानना चाहिये। अतः समाप्ति पर्यन्त तव्यत् तव्य अनीयर् आदि जो प्रत्यय से ही होंगे॥

तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ॥३।१।९२॥

तत्र अ०॥ उपपदम् १।१॥ सप्तमीस्थम् १।१॥ समीपो उपपदम्। स०—सप्तम्यां विभक्तौ तिष्ठतीति सप्तमीस्थम्, अनु०—धातोः॥ *अर्थः*—तत्र = एतस्मिन् धात्वधिकारे, सप्तमीनिर्दिष्टं यत्पदं तदुपपदसंज्ञं भवति॥ उदा०—कुम्भ कारः॥

भाषार्थः—[तत्र] इस धातु के अधिकार में जो [स सप्तमी विभक्ति से निर्दिष्ट पद हैं, उनकी [*उपपदम्*] है॥ *कर्मण्यण्* (३।२।१) में 'कर्मणि' सप्तमी निर्दिष्ट पद है उपपद संज्ञा होने से 'कर्म उपपद रहते' ऐसा सूत्र का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पदमतिङ् (२।२।१९) से समास हो गया है ॥ सप्तमीनिर्दिष्ट पद कहीं पद संज्ञक तथा कहीं अर्थवाचक भी है सो यह भेद तत्तत् सूत्र में ही दित होगा ॥ सिद्धियाँ २।२।१६ सूत्र में देखें ॥

यहाँ से 'तत्र' की अनुवृत्ति ३।१।९४ तक जायेगी ॥

कृदतिङ् ॥३।१।९३॥

कृत् १।१॥ अतिङ् १।१॥ अनु०–तत्र, धातोः प्रत्ययः ॥ अर्थः–अस्मिन् त्यधिकारे तिङ् भिन्नाः प्रत्ययाः कृत्संज्ञका भवन्ति ॥ उदा०—कर्त्ता, रकः, कर्त्तव्यम् ॥

भाषार्थः—इस धातु के अधिकार में [अतिङ्] तिङ् भिन्न जो प्रत्यय की [कृत्] कृत्संज्ञा होती है ॥ कृत् संज्ञा होने से 'कृत्तद्धितसमा० १।२।४६) से कृत्प्रत्ययान्त शब्दों की भी प्रातिपदिक संज्ञा हो ती है, जो कि अर्थवदधातु० (१।२।४५) में 'अप्रत्ययः' निषेध करने से ह नहीं थी, एवं कर्त्ता, कारकः में ण्वुल् तृच् प्रत्यय भी कृत् संज्ञक ने से कर्त्तरि कृत् (३।४।६७) से कर्त्ता में हो जाते हैं। कर्त्ता, कारकः सिद्धि परि० १।१।१–२ में देखें, तथा कर्त्तव्यम् की सिद्धि परि० १।३ में देखें ॥

वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ॥३।१।९४॥

वा अ० ॥ असरूपः १।१॥ अस्त्रियाम् ७।१॥ स०—समानं 'रूपं' स्य स सरूपः, बहुव्रीहिः । न सरूपः, असरूपः, नञ्तत्पुरुषः । न स्त्री स्त्री, तस्यां···नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—तत्र, धातोः, प्रत्ययः ॥ अर्थः—स्मिन्धात्वधिकारे असरूपः = असमानरूपः प्रत्ययः विकल्पेन बाधको ति स्त्र्यधिकारविहितप्रत्ययं वर्जयित्वा ॥ सर्वत्र अपवादैर्नित्यम् सर्गा बाध्यन्ते इति नियमः, तत्र योऽसरूपोऽपवादः प्रत्ययः स कल्पेन बाधकः स्यात् नतु नित्यम् एतदर्थं सूत्रमिदमारभ्यते ॥ ०—ण्वुल्तृचौ उत्सर्गौ "विक्षेपकः विक्षेप्ता" तयोः इगुपधज्ञाप्रीकिरः (३।१।१३५) इत्ययमपवादः स विकल्पेन बाधको भवति, विक्षिपः ॥

भाषार्थः—इस धातु के अधिकार में [असरूपः] असमानरूप वाले प्रत्यय [वा] विकल्प से बाधक होते हैं [अस्त्रियाम्] स्त्री अधिकार को छोड़कर ॥ अपवाद सूत्र उत्सर्ग सूत्रों को नित्य ही बाधकर हो जाते हैं,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अतः विकल्प से बाधक हों, पक्ष में औत्सर्गिक प्रत्यय
इसीलिए यह सूत्र बनाया है ॥ एवुल्तृचौ यह उत्सर्ग
इगुपधज्ञा० (३।१।१३५) यह उसका अपवाद है, सो इगुप
से क प्रत्यय भी हुआ, तथा ण्वुल् तृच् भी विकल्प से हो
ये परस्पर असरूप थे ॥

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि अनुबन्धों को
प्रत्ययों की असरूपता देखनी होगी। 'क' प्रत्यय अनु
है तथा ण्वुल् और तृच्, वु तथा तृ हैं, सो ये परस्प
समान रूप वाले नहीं हैं ॥ उदा०—विक्षेपकः, विक्षेपा
डालने वाला) ॥

कृत्याः ॥३।१।९५॥

कृत्याः १।३॥ अनु०—प्रत्ययः ॥ अर्थः—अधिकारोऽय
(३।१।१३३) इति यावत् ये प्रत्यया विधास्यन्ते
भविष्यन्तीति वेदितव्यम् ॥ उदा०—गन्तव्यो ग्रामो
देवदत्तेन वा ॥

भाषार्थः—यहाँ से आगे 'ण्वुल्तृचौ' सूत्र तक जो भी
वे [कृत्याः] कृत्य संज्ञक होंगे, ऐसा अधिकार जानना
धातु से तव्य प्रत्यय हुआ है जिसकी कृत्य संज्ञा है
कर्तरि वा (२।३।७१) से देवदत्त में विकल्प से षष्ठी
है ॥ कृत्य संज्ञा करने से कृत् संज्ञा की निवृत्ति नहीं
कृत् संज्ञा भी कृत्यों की होती है, अतः कृत्तद्धित० (१
पदिक संज्ञा सिद्ध हो जाती है ॥

तव्यत्तव्यानीयरः ॥३।१।९६॥

तव्यत्तव्यानीयरः १।३॥ स०—तव्यच्च, तव्यच्च,
तव्यत्तव्यानीयरः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः,
अर्थः—धातोः तव्यत्, तव्य, अनीयर् इत्येते प्रत्यया
उदा०—कर्त्तव्यम्, कर्त्तव्यम् करणीयम् ॥

भाषार्थः—धातु से [तव्यत्तव्यानीयरः] तव्यत्, तव्य
प्रत्यय होते हैं ॥ तव्यत् में तित् स्वरार्थ है, अतः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

१।८६) से तव्य का 'य' स्वरित होता है, तथा तव्यप्रत्यय आदिर्ञिदाद्युदात्तश्च (३।१।३) से आद्युदात्त होता है, शेष अनुदात्त हो ही जायगा। अनीयर् उपोत्तमं रिति (६।१।२११) से मध्योदात्त करने के लिए है॥

अचो यत् ॥३।१।९७॥

अचः ५।१॥ यत् १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अजन्ताद्धातोर्यत् प्रत्ययः परश्च भवति॥ उदा०—गेयम्, पेयम्, चेयम्, जेयम्॥

भाषार्थः—[अचः] अजन्त धातु से [यत्] यत् प्रत्यय होता है, और वह परे होता है॥

यहाँ से 'यत्' की अनुवृत्ति ३।१।१०५ तक जायेगी॥

पोरदुपधात् ॥३।१।९८॥

पोः ५।१॥ अदुपधात् ५।१॥ स०—अत् उपधा यस्य स अदुपधस्तस्मात्.....बहुव्रीहिः॥ अनु०—यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अदुपधात् पवर्गान्ताद्धातोर्यत् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—शप्—शप्यम्। जप्—जप्यम्। रभ्—रभ्यम्। लुलभष्—लभ्यम्। गम्लृ—गम्यम्॥

भाषार्थः—[अदुपधात्] अकार उपधा वाली [पोः] पवर्गान्त धातु से यत् प्रत्यय होता है। उदा०—शप्यम् (शाप के योग्य), जप्यम् (जपने योग्य), रभ्यम् (शीघ्रता से करने योग्य) लभ्यम् (प्राप्त करने योग्य), गम्यम् (जाने योग्य)॥ उदाहरण में अकार अनुबन्ध हटा देने पर सब धातुएँ अदुपध तथा पवर्गान्त हैं, सो यत् प्रत्यय हो गया है॥ ऋहलोर्ण्यत् (३।१।१२४) से ण्यत् प्राप्त था, उसका यह अपवाद सूत्र है॥

शकिसहोश्च ॥३।१।९९॥

शकिसहोः ६।२॥ च अ०॥ स०—शकिश्च, सह् च शकिसहौ, तयोः.....इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—शक्लृ शक्तौ, 'षह मर्षणे' इत्येताभ्यां धातुभ्यां यत् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—शक्यम्, सह्यम्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*शकिसहोः*] शक्लृ शक्तौ, षह मर्षणे इ[illegible] [च] भी यत् प्रत्यय होता है ॥ यह भी ण्यत् का अपवाद[illegible] पञ्चम्यर्थ में षष्ठी का विधान है ॥ उदा०—शक्यम् (हो [illegible] सह्यम् (सहन करने योग्य) ॥

गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ॥३।१।१००॥

गदमदचरयमः ५।१॥ च अ० ॥ अनुपसर्गे ७।१॥ [illegible] मदश्च, चरश्च, यम् चेति गदमदचरयम् तस्मात्·····समाहा[illegible] विद्यते उपसर्गो यस्य सोऽनुपसर्गस्तस्मिन्·····बहुव्रीहिः॥ [illegible] धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—गद व्यक्तायां वाचि, [illegible] गतिभक्षणयोः, यम उपरमे, इत्येतेभ्य उपसर्गरहितेभ्यो [illegible] प्रत्ययो भवति। उदा०—गद्यम्, मद्यम्, चर्यम्, यम्यम्॥

भाषार्थः—[*गदमदचरयमः*] गद, मद, चर, यम [illegible] उपसर्ग रहित धातुओं से [च] भी यत् प्रत्यय होता है। पूर्ववत् ण्यत् का अपवाद है ॥ उदा०—गद्यम् (बोलने [illegible] (हर्ष करने योग्य) चर्यम् (खाने योग्य) यम्यम् (शान्त करने [illegible]

अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु ॥३।१।१०१॥

अवद्यपण्यवर्याः १।३॥ गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु ७।३॥ [illegible] पण्यवर्या, गर्ह्यपणितव्या०. उभयत्रापि, इतरेतरद्वन्द्वः॥ [illegible] धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—गर्ह्यम्=निन्द्यम्, [illegible] क्रेतव्यम्, अनिरोधः=अप्रतिबन्धः, इत्येतेष्वर्थेषु यथासङ्ख्य[illegible] पण्यवर्या इत्येते शब्दा यत्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। उदा[illegible] पापम्। पण्यः कम्बलः, पण्या गौः। शतेन वर्या, सहस्रेण वर्या।

भाषार्थः—[*अवद्यपण्यवर्याः*] अवद्य, पण्य, वर्या (वृह [illegible] ये शब्द यथासङ्ख्य करके [*गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु*] गर्ह्य, [illegible] अनिरोध अर्थों में यत्प्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं ॥ उदा[illegible] पापम् (निन्दनीय, न करने योग्य), पण्यः कम्बलः (खरीदने योग्य कम्बल) पण्या गौः (खरीदने योग्य गौ), शतेन वर्या, सहस्रेण वर्या सहस्र से सेवन करने योग्य) ॥ अवद्यम् में वदः सुपि क्यप् [illegible]

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वद धातु से क्यप् की प्राप्ति में यत् निपातन किया है, रोध से भिन्न अर्थों में वृञ् धातु से *एतिस्तुशास्वृ०* (३।१।१०९) क्यप् प्रत्यय होगा ॥

वह्यं करणम् ॥३।१।१०२॥

वह्यम् १।१॥ करणम् १।१॥ अनु०—यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ —वह्यम् इत्यत्र वह धातोः करणे यत् प्रत्ययो निपात्यते ॥ उदा०—नेनेति = वह्यं शकटम् ॥

भाषार्थः—[*वह्यम्*] वह्य शब्द में वह धातु से [*करणम्*] करण कारक त् प्रत्यय का निपातन किया जाता है ॥ कृत्य प्रत्यय भाव तथा कर्म ३।३७०) में ही होते हैं, सो यहाँ करण में भी निपातन कर दिया है ॥

उदा०—वह्यं शकटम् (जिसके द्वारा भार ढोया जाता है, ऐसी) ॥

अर्यः स्वामिवैश्ययोः ॥३।१।१०३॥

अर्यः १।१॥ स्वामिवैश्ययोः ७।२॥ स०—स्वामी च वैश्यश्च स्वामिवैश्यौ स्वामिवैश्ययोः इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ —अर्य इत्यत्र स्वामिवैश्ययोरभिधेययोः 'ऋ गतौ' अस्मात् धातोर्यत् यो निपात्यते ॥ उदा०—अर्यः स्वामी, अर्यो वैश्यः ॥

भाषार्थः—[*स्वामिवैश्ययोः*] स्वामी और वैश्य अभिधेय हों तो] अर्य शब्द ऋ धातु से यत्प्रत्ययान्त निपातन है ॥ *ऋहलोर्ण्यत्* १२४) से ण्यत् प्राप्त था, उसका यह अपवाद है ॥

उपसर्या काल्या प्रजने ॥३।१।१०४॥

उपसर्या १।१॥ काल्या १।१॥ प्रजने ७।१॥ अनु०—यत्, धातोः, , परश्च ॥ अर्थः—उपपूर्वात् सृ गतौ धातोर्यत्प्रत्ययान्तः स्त्रीलिङ्गः, र्या' शब्दो निपात्यते, प्रजनेऽर्थे, काल्या चेत् सा (उपसर्या) प्रजने ॥ कालः प्राप्तोऽस्याः सा काल्या, *कालाद्यत्* (५।१।१०६) इति यत् ॥ उपसर्या गौः, उपसर्या वडवा ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[उपसर्या] उपसर्या शब्द उपपूर्वक सृ धातु से [क्यप्] यान्त निपातन किया जाता है [प्रजने] प्रजन अर्थात् प्रसव का [काल्या] समय जिसका हो गया है इस अर्थ में। [ण्यादि] प्राप्त था, उसका यह अपवाद है ॥ उदा०—उपसर्या [सत्य] गर्भग्रहण का समय जिसका आ गया हो ऐसी गौ), [उपसर्या]

अजर्यं सङ्गतम् ॥३।१।१०५॥

अजर्यम् १।१॥ सङ्गतम् १।१॥ अनु०—यत्, धातोः, [ऋदुवः] अर्थः—अजर्यमित्यत्र नञ्पूर्वात् जॄष् वयोहानौ, धातोः, [सर्गे] यत्प्रत्ययो निपात्यते कर्तरि वाच्ये ॥ उदा०—अजर्यमार्यसङ्गतम् नोऽस्तु सङ्गतम् ॥

भाषार्थः—नञ् पूर्वक जॄष् धातु से [अजर्यम्] अजर्य [हुआ] सङ्गत अभिधेय हो तो, कर्तृवाच्य में यत्प्रत्ययान्त [यहाँ से] जाता है ॥ उदा०—अजर्यमार्यसङ्गतम् (कभी पुरानी न [हो] सङ्गति)। अजर्यं नोऽस्तु सङ्गतम् (हमारी सङ्गति कभी पु[राने] पूर्ववत् ण्यत् प्राप्त था, यत् निपातन कर दिया है, तथा [क्यप्] से *तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः* (३।४।७०) से भावकर्म में [हो] कर्त्ता में निपातन कर दिया है ॥

वदः सुपि क्यप् च ॥३।१।१०६॥

वदः ५।१॥ सुपि ७।१॥ क्यप् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—[धातोः] प्रत्ययः, परश्च। *गदमदचर०* इत्यतः 'अनुपसर्गे' अप्यनुवर्त[ते] तगत्या ॥ अर्थः—वद धातोरुपसर्गरहिते सुबन्त उपपदे [क्यप्] भवति, चकाराद् यत् च। उदा०—ब्रह्मणः वदनम्=[ब्रह्मवद्यम्] द्यम्। सत्योद्यम्, सत्यवद्यम् ॥

भाषार्थः—अनुपसर्ग [वदः] वद धातु से [सुपि] सुब[न्त] पर [क्यप्] क्यप् प्रत्यय होता है, तथा [च] [यत्] होता है ॥ क्यप् होने पर *वचिस्वपि०* (६।१।१५) से [वद] गया है। *कुम्भकारः* की सिद्धि के समान यहाँ भी [क्यप्]

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ादि कार्य हो गए हैं ॥ उदा०—ब्रह्मोद्यम् (ब्रह्म का कथन), ब्रह्म-
। सत्योद्यम् (सत्य कथन) सत्यवद्यम् ॥
यहाँ से 'सुपि' की अनुवृत्ति ३।१।१०८ तथा 'क्यप्' की अनुवृत्ति
१२१ तक जायेगी ॥

भुवो भावे ॥३।१।१०७॥

भुवः ५।१॥ भावे ७।१॥ अनु०—सुपि, क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च,
सर्गे ॥ अर्थः—अनुपसर्गे सुप्युपपदे भूधातोर्भावे क्यप् प्रत्ययो
॥ उदा०—ब्रह्मभूयं गतः, देवभूयं गतः ॥

षार्थः—अनुपसर्ग [भुवः] भू धातु से सुबन्त उपपद होने पर
] भाव में क्यप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—ब्रह्मभूयं गतः (ब्रह्मता
प्त हुआ), देवभूयं गतः (देवत्व को प्राप्त हुआ) ॥
यहाँ से 'भावे' की अनुवृत्ति ३।१।१०८ तक जायेगी ॥

हनस्त च ॥३।१।१०८॥

नः ६।१॥ त लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ अनु०—भावे,
क्यप् अनुपसर्गे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनुपसर्गे सुबन्त
हन्धातोर्भावे क्यप् प्रत्ययो भवति, तकारश्चान्तादेशः ॥ उदा०—
हननं = ब्रह्महत्या, दस्युहत्या ॥

षार्थः—अनुपसर्ग [हनः] हन् धातु से सुबन्त उपपद रहते
क्यप् प्रत्यय होता है, [च] तथा [त] तकार अन्तादेश भी
त्यस्य १।१।५१ से हो जाता है ॥ उदा०—ब्रह्महत्या (ईश्वर वा
आज्ञा का उल्लङ्घन करना), दस्युहत्या (दस्यु का हनन) ॥

एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ॥३।१।१०९॥

तिस्तुशास्वृदृजुषः ५।१॥ क्यप् १।१॥ स०—एतिश्च, स्तुश्च, शास् च
च, जुष् च, एतिस्तुशास्वृदृजुष् तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः ॥
क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—इण्, ष्टुञ्, शासु,
दृङ्, जुषी इत्येतेभ्यो धातुभ्यः क्यप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—
स्तुत्यः, शिष्यः, वृत्यः, आदृत्यः, जुष्यः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*एतिस्तुशास्वृदजुषः*] इण्, ष्टुञ्, शासु जुषी इन धातुओं से [*क्यप्*] क्यप् प्रत्यय होता है॥ उ होने योग्य), स्तुत्यः (स्तुति के योग्य), शिष्यः (शासन (स्वीकार करने योग्य), आदृत्यः (आदर करने योग्य) करने योग्य)॥ 'इत्यः' आदि में *ह्रस्वस्य पिति०* (६।१।६ हो जायेगा, शेष पूर्ववत् है। 'शिष्यः' में *शास इदङ्* से उपधा को इत्व एवं *शासिवसिघ०* (८।३।६०) से

ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः ॥३।१।११०॥

ऋदुपधात् ५।१॥ च अ०॥ अक्लृपिचृतेः ५॥ उपधा यस्य स ऋदुपधस्तस्मात्·····बहुव्रीहिः। क्लृप पिचृतिः, न क्लृपिचृतिः, अक्लृपिचृतिस्तस्मात्···द्वन्द्वगर्भ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः क्यप् प्रत्ययो भवति, क्लृपिचृती वर्जयित्वा॥ उदा० वृधु—वृध्यम्॥

भाषार्थः—[*ऋदुपधात्*] ऋकार उपधा वाली धातु क्यप् प्रत्यय होता है [*अक्लृपिचृतेः*] क्लृपि और चृति कर॥ हलन्त धातु होने से पूर्ववत् एयत् प्राप्त था, है। क्लृप्, चृत् धातुएँ भी ऋदुपध हैं सो इस सूत्र से पर उनका निषेध कर दिया है॥ उदा०—वृत्यम् (बरतने (बढ़ने योग्य)॥

ई च खनः ॥३।१।१११॥

ई १।१॥ च अ०॥ खनः ६।१॥ अनु०—क्यप्, परश्च॥ अर्थः—'खन्' धातोः क्यप् प्रत्ययो भवति उदा०—खेयम्॥

भाषार्थः—[*खनः*] खनु अवदारणे धातु से क्यप् [*च*] तथा [*ई*] ईकारादेश भी अन्त्य अल् 'न्' को उदा०—खेयम् (खोदने योग्य)॥ ख ई क्यप् = से पूर्व पर को गुण एकादेश होकर खेयम् बन गया है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Initiative

भृञोऽसंज्ञायाम् ॥३।१।११२॥

भृञः ५।१॥ असंज्ञायाम् ७।१॥ स०—असंज्ञायामित्यत्र नञ्तत्पु-
॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—असंज्ञायां
भृञ् धातोः क्यप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—भृत्याः कर्मकराः ॥

भाषार्थः—[भृञः] भृञ् धातु से [असंज्ञायाम्] असंज्ञाविषय
यप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—भृत्याः कर्मकराः (पालने योग्य
) ॥ पूर्ववत् उदाहरण में तुक् आगम हो जायेगा ॥

मृजेर्विभाषा ॥३।१।११३॥

मृजेः ५।१॥ विभाषा १।१॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥
—मृजूष् शुद्धौ धातोः, विकल्पेन क्यप् प्रत्ययो भवति। पक्षे ण्यद्
॥ उदा०—परिमृज्यः, परिमार्ग्यः ॥

भाषार्थः—[मृजेः] मृज् धातु से [विभाषा] विकल्प से क्यप् प्रत्यय
है ॥ ऋदुपध होने से नित्य ऋदुपधाच्चा० (३।१।११०) से क्यप्
ता, यहाँ विकल्प विधान कर दिया है ॥ उदा०—परिमृज्यः (शुद्ध
योग्य), परिमार्ग्यः। ऋदुपधाच्चा० सूत्र भी ऋहलोर्ण्यत् (३।१।
का अपवाद है, अतः पक्ष में यहाँ ण्यत् होता है। जिस पक्ष में
होगा उस पक्ष में मृजेर्वृद्धिः (७।२।११४) से वृद्धि तथा चजोः कु०
२) से कुत्व भी हो जाता है ॥

राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ॥३।१।११४॥

राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः १।३॥ स०—राजसूय०
इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—
य, सूर्य, मृषोद्य, रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य, अव्यथ्य इत्येते शब्दाः
प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ॥ 'राजसूय'—राजन्शब्दपूर्वात् षुञ् धातोः
अधिकरणे वा क्यप् तुगभावो दीर्घत्वञ्च निपात्यते। 'सूर्य' इति, षू
सू गतौ इत्येतस्माद्वा कर्तरि क्यप् निपात्यते। सू गतौ इत्येतस्मात्
परत उत्वम्, एवं षू प्रेरणे अस्मात् क्यपि परतो रुडागमो निपा-
मृषोद्य इति मृषापूर्वस्य वद धातोः क्यप् निपात्यते। वदः सुपि०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(३।१।१०६) इति यत्क्यपौ प्राप्तयोः नित्यं क्यप् विधि
इति रुच् धातोः कर्तरि क्यप् निपात्यते। ण्यतोऽपवादः।
गुप् धातोः क्यप् आदेः गकारस्य च कत्वं निपात्यते, छः
तोऽपवादः। 'कृष्टपच्य' इति कृष्टपूर्वात् पच् धातोः संज्ञायां
क्यन् निपात्यते। 'अव्यथ्य' इति नञ्पूर्वाद् व्यथ धातोः
त्यते ॥ उदा०—राज्ञा सोतव्यो—राजसूयो यज्ञः। सरति
गच्छतीति = सूर्यः, अथवा कर्मणि—स्रियते विज्ञायते
(यजुः ७।४१) सूर्यः। यद्वा—षू धातोः सुवति प्रेरयतीति
वाक्यम्। रोचतेऽसौ रुच्यः। कुप्यम्। कृष्टे पच्यते,
व्यथते अव्यथ्यः ॥

भाषार्थः—[राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः]
मृषोद्य, रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य, अव्यथ्य ये शब्द
निपातन हैं। 'राजसूय' (राजसूय नामक यज्ञ) यहाँ
षुञ् धातु से कर्म या अधिकरण में क्यप् प्रत्यय, तुक्
दीर्घत्व का निपातन है। 'सूर्य' षू प्रेरणे तथा सृ गतौ
बन सकता है। सृ धातु से क्यप् परे रहते
से कर दिया है, तत्पश्चात् हलि च (८।२।७७) से
अथवा षू धातु से करें तो रुट् आगम
होगा। मृषा उपपद रहते वद् धातु से ण्यत् की प्राप्ति
तन करके 'मृषोद्यम्' (झूठा वचन) बना है। 'रुच्य'
रुच् धातु से क्यप् का निपातन है। 'कुप्यम्' (सोने
जो धातु) में संज्ञा विषय में गुप् धातु से क्यप्
'ग्' को 'क्' निपातन किया है। 'कृष्टपच्या' (हल
स्वयं जो पक जाते हैं) में कृष्ट पूर्वक पच् धातु से संज्ञा
में क्यप् निपातन है। 'अव्यथ्य' (जो व्यथित नहीं
पूर्वक व्यथ धातु से क्यप् निपातन है॥ सब शब्दों
उदाहरण के साथ हैं॥

भिद्योद्धौ नदे ॥३।१।११५॥

भिद्योद्धौ १।२॥ नदे ७।१॥ स०—भिद्यश्च,
इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च
उद्धश्च इत्येतौ शब्दौ नदेऽभिधेये कर्त्तरि वाच्ये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

त्येते ॥ उदा०—भिद् धातोः—कूलानि भिनत्ति = भिद्यः। उज्झ र्ग, उन्दी क्लेदने इत्येतस्माद्वा—उज्झति, उत्सृजति जलानीत्युद्ध्यो ॥

भाषार्थः—[भिदोद्ध्यौ] भिद्य, उद्ध्य शब्दों में [नदे] नद (नदी) अभिधेय हो तो कर्त्ता में क्यप् प्रत्यय भिद् तथा उन्दी धातु से निपातन किया जाता है ॥ उद्ध्यः में उन्दी धातु से नकार का लोप तथा धकार निपातन से हो जाता है अथवा 'उज्झ उत्सर्गे' धातु से क्यप् परे रहते, ज्झ को धत्व भी निपातन से होता है ॥ उदा०—भिद्यः (किनारों को तोड़ने वाली नदी)। उद्ध्यो नदः (तटों को गीला करने वाला नद) ॥

पुष्यसिद्ध्यौ नक्षत्रे ॥३।१।११६॥

पुष्यसिद्ध्यौ १।२॥ नक्षत्रे ७।१॥ स०—'पुष्यसिद्ध्यौ' इत्यत्रेतरेतरद्वः ॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः-नक्षत्रेऽभिधेये सिधेश्च धातोः क्यप् निपात्यतेऽधिकरणे कारके ॥ उदा०—पुष्यस्मिन् कार्याणि स पुष्यः, सिद्ध्यन्त्यस्मिन् कार्याणि स सिद्ध्यः ॥

भाषार्थः-[नक्षत्रे] नक्षत्र अभिधेय हो तो, अधिकरण कारक में पुष, सिध धातुओं से क्यप् प्रत्ययान्त [पुष्यसिद्ध्यौ] पुष्य सिद्ध्य शब्द निपातन किये गए हैं ॥ उदा०—पुष्यः (नक्षत्रविशेष)। सिद्ध्यः (नक्षत्र-विशेष) ॥

विपूयविनीयजित्या मुज्जकल्कहलिषु ॥३।१।११७॥

विपूयविनीयजित्याः १।३॥ मुज्जकल्कहलिषु ७।३॥ स०—उभयत्रेतरेतरद्वः ॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—विपूय, विनीय, जित्य इत्येते शब्दा यथासङ्ख्यं मुञ्ज कल्क हलि इत्येतेष्वर्थेषु निपात्यन्ते ॥ विपूयेत्यत्र विपूर्वात् पूञ् पवने इत्येतस्माद्धातोः कर्मणि क्यप्, विनीयेत्यत्र विपूर्वान्नीधातोः क्यप्, जित्येत्यत्र च 'जि जये' इत्यस्मात् क्यप् निपात्यते ॥ उदा०—विपूयो मुञ्जः, विनीयः कल्कः, जित्यो हलिः ॥

भाषार्थः—[विपूयविनीयजित्या, मुञ्जकल्कहलिषु] वि पूर्वक पूञ् धातु से मुञ्ज अर्थ में 'विपूय' विपूर्वक नी धातु से कल्क = मैल अर्थ में 'विनीय' जि धातु से हलि अर्थ में जित्य शब्द निपातन किये जाते हैं ॥ जित्यः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

में तुक् आगम ह्रस्वस्य *पिति०* (६।१।६९) से होता है॥ मुञ्जः (मूंज)। विनीयः कल्कः (मैल)। जित्यो हलिः [illegible] जब मुञ्ज, कल्क, हलि ये अर्थ नहीं होंगे, तब इन [illegible] होने से *अचो यत्* (३।१।९७) से यत् प्रत्यय होता है॥

प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः ॥३।१।११८॥

प्रत्यपिभ्यां ५।२॥ ग्रहेः ५।१॥ *स०*—प्रति च, [illegible] ताभ्याम्.....इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—क्यप्, धातोः, [illegible] *अर्थः*—प्रति, अपि इत्येवं पूर्वाद् ग्रहेर्धातोः क्यप् [illegible] *उदा०*—मत्तस्य न प्रतिगृह्यम् (तै० ब्रा० १।३।२।७) [illegible] (का० सं० १४।५)॥

भाषार्थः—[*प्रत्यपिभ्याम्*] प्रति, अपि पूर्वक [*ग्रहेः*] [illegible] प्रत्यय होता है॥ *प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि* (वा० ३।१।११९ [illegible] वार्तिक से छन्द में ही ये प्रयोग बनेंगे॥

यहां से 'ग्रहेः' की अनुवृत्ति ३।१।११९ तक जायेगी॥

पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च ॥३।१।११९॥

पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु ७।३॥ च अ०॥ *स०*—पदञ्च, [illegible] च, पक्ष्यश्च, पदास्वैरिबाह्यापक्ष्यास्तेषु.....इतरेतरद्वन्द्वः॥ ग्रहेः, क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—पदम्, अस्वै [illegible] बाह्या = बहिर्भूता, पक्षे भवः पक्ष्यः, इत्येतेष्वर्थेषु ग्रहधातो [illegible] भवति॥ *उदा०*—पदं—प्रगृह्यं पदम्, अवगृह्यं पदम्। [illegible] इमे। बाह्या—ग्रामगृह्या सेना, नगरगृह्या सेना। पक्ष्य—[illegible] अर्जुनगृह्याः॥

भाषार्थः—[*पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु*] पद, अस्वैरी, बाह्य [illegible] अर्थों में [च] भी ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय होता है॥ [illegible] प्रगृह्यं पदम् (प्रगृह्यसंज्ञक पद), अवगृह्यं पदम् (अवग्रह [illegible] अस्वैरी—गृह्यका इमे (ये पराधीन हैं)। बाह्य—ग्राम [illegible] से बाहर की सेना), नगरगृह्या सेना। पक्ष्य—[illegible] के पक्ष वाले), अर्जुनगृह्याः॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

विभाषा कृवृषोः ॥३।१।१२०॥

विभाषा १।१॥ कृवृषोः ६।२॥ स०—कृ च, वृष् च कृवृषौ तयोः..... रेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—क्यप् धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कृ इत्येताभ्यां धातुभ्यां विकल्पेन क्यप् प्रत्ययो भवति, पक्षे ण्यदेव ॥ दा०—कृत्यम्, कार्यम्। वृष्यम्, वर्ष्यम् ॥

भाषार्थः—[कृवृषोः] कृ तथा वृष् धातुओं से [विभाषा] विकल्प से क्यप् प्रत्यय होता है, पक्ष में ण्यत् होता है ॥ कृ धातु से ऋहलोर्ण्यत् ण्यत् प्राप्त था, क्यप् विकल्प से विधान कर दिया है, सो पक्ष में ण्यत् होगा। इसी प्रकार वृष् धातु से ऋदुपधाच्चा० से नित्य क्यप् प्राप्त था, यहाँ विकल्प कर दिया है ॥ कृत्यम् (करने योग्य) में तुक् आगम, एवं कार्यम् में अचो ञ्णिति (७।२।११५) से वृद्धि होती है। वृष्यम् (सन्तानोत्पत्ति के योग्य) यहाँ क्यप् तथा वर्ष्यम् में ण्यत् हुआ है ॥

युग्यं च पत्रे ॥३।१।१२१॥

युग्यम् १।१॥ च अ० ॥ पत्रे ७।१॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ पतति गच्छति अनेनेति पत्रं वाहनमुच्यते ॥ अर्थः—युग्यमिति पत्रे वाच्ये युज्धातोः क्यप्, जकारस्य च कुत्वं निपात्यते ॥ उदा०—वक्तुमर्हः = युग्यो गौः, युग्योऽश्वः ॥

भाषार्थः—[पत्रे] पत्र अर्थात् वाहन को कहना हो तो युज् धातु [च] भी क्यप् प्रत्यय तथा जकार को कुत्व [युग्यम्] युग्य शब्द में निपातन किया गया है ॥ उदा०—युग्यो गौः (जोतने योग्य बैल), युग्योऽश्वः (चलने योग्य घोड़ा) ॥

अमावस्यदन्यतरस्याम् ॥३।१।१२२॥

अमावस्यत् १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ अनु०—धातोः प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—अमावस्यदित्यत्र अमापूर्वात् वस् धातोः कालेऽधिकरणे वर्तमानाद् अति परतो विभाषा वृद्ध्यभावो निपात्यते ॥ उदा०—सह वसतोऽस्मिन् काले सूर्यचन्द्रमसौ—अमावस्या, अमावास्या ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[अमावस्यत्] अमावस्या में अमापूर्वक वस् के अधिकरण में वर्तमान होने पर ण्यत् प्रत्यय परे रहते [...] विकल्प से वृद्धि निपातन किया है ॥ ण्यत् परे रहते [...] थी, विकल्प कर दिया है ॥ अमा शब्द सह अर्थ में वर्तमान [...] काल में सूर्य चन्द्रमा साथ-साथ रहते हैं, वह काल अमावास्या [...] का अभाव निपातन करने से अमावस्या भी बन जाता है॥

छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्या खान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्य स्ताव्योपचाय्यपृडानि ॥३।१।१२३॥

छन्दसि ७।१॥ निष्टर्क्य·····पृडानि १।३॥ स०—[...] इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः प्रत्ययः परश्च ॥ [...] विषये निष्टर्क्यं, देवहूय, प्रणीय, उन्नीय, उच्छिष्य, [...] ध्वर्य, खन्य खान्य, देवयज्या, आपृच्छ्य, प्रतिषीव्य, [...] भाव्य, स्ताव्य, उपचाय्यपृड इत्येते शब्दा निपात्यन्ते [...] 'निष्टर्क्य' इत्यत्र निस्पूर्वात् 'कृती छेदने' अस्माद्धातोः [...] (३।१।११०) क्यपि प्राप्ते ण्यद् निपात्यते, कृतेः आ[...] निसः षत्वञ्चापि निपात्यते। निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकाम[...] पर्यस्योर्ध्वग्रन्थिं निष्टर्क्यं बध्नाति (ऐ० आ० ५।१।३), गर्भाणां [...] बध्नाति प्रजानाम् (तै० सं ६।१।७।२), गर्भाणां धृत्या अप्रपा[...] बध्नाति (का० २४।५)। 'देवहूय' इत्यत्र देवशब्द उपपदे हु [...] त्येतस्माद्धातोः क्यप् प्रत्ययो दीर्घत्वं तुगभावश्च निपात्यते। [...] धातोः क्यपि कृते संप्रसारणं कृत्वा उकारस्य दीर्घत्वं निपात्यते [...] वा उ देवहूये (ऋ० ७।८५।२)। प्रपूर्वान्नयतेः क्यप्=प्रणीयः [...] नयतेः क्यप्=उन्नीयः। त्रिभ्यो धातुभ्योऽजन्तत्वाद्यति प्राप्ते [...] त्यते। उत् पूर्वात् 'शासु अनुशिष्टौ' इत्येतस्माद् धातोर्ण्यति [...] निपात्यते। उच्छिष्यः (आ० श्रौ० ११।७।३)। मर्य, स्तर्या [...] इति चत्वारो यदन्ताः शब्दाः। 'मृङ् प्राणत्यागे' 'स्तृञ् आच्छा[...] हूर्च्छने', खनु अवदारणे इत्येतेभ्यो धातुभ्यो यथाक्रमं [...] निपात्यते। स्तर्या स्त्रियामेव। खनु धातोर्ण्यदपि भवति [...] 'देवयज्या' इति देवपूर्वाद् यजधातोर्ण्यति प्राप्ते यन्निपात्यते [...]

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

निपातनमेतत्। 'आपृच्छ्यः, प्रतिषीव्यः' एतौ क्यबन्तौ। आङ्पूर्वात् प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्, प्रतिपूर्वात् 'षिवु तन्तुसन्ताने' इत्येताभ्यां यथाक्रमं क्यप् भवति। ब्रह्मणि उपपदे वदतेर्ण्यत् ब्रह्मवाद्यः। भवतेः स्तौतेश्च ण्यत् निपात्यते, आवादेशश्च भवति वान्तो यि० (६।१।७६) इत्यनेन, भाव्यः, स्ताव्यः। उप पूर्वात् चिन्वधातोर्ण्यत् निपात्यते। पृड उत्तरपदे वृद्धौ स्तायाम् आयादेशश्च निपातनाद्भवति, उपचाय्यपृडम्॥

भाषार्थः—[*छन्दसि*] वेद विषय में [*निष्टर्क्य*·····*पृडानि*] निष्टर्क्यादि शब्दों का निपातन किया जाता है॥ किस शब्द में क्या निपातन है यह आगे दिखाते हैं—'*निष्टर्क्य*' में निस् पूर्वक कृती छेदने धातु से ण्यत् प्रत्यय निपातन से करके, लघूपधगुण होकर 'निस्, कर्त् य' बना। कर्त् को आद्यन्तविपर्यय तथा निस् के स् को ष् निपातन से होकर निष् तर्क्य' बना, ष्टुत्व होकर 'निष्टर्क्य' बना है। 'देवहूय' में देव शब्द उपपद रहते हु धातु से क्यप् निपातन करते हैं, तथा तुक् आगम का अभाव और धातु को दीर्घ भी निपातन से होता है। अथवा ह्वेञ् धातु से क्यप् निपातन से करके संप्रसारण कर लेने के पश्चात् धातु को दीर्घ निपातन से होगा। '*प्रणीयः*', '*उन्नीयः*' में प्रपूर्वक तथा उत्पूर्वक नी धातु से क्यप् निपातन है। *यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा* (८।४।४४) से 'त्' को 'न्' हो ही जायेगा। *उच्छिष्यः* में उत्पूर्वक शासु धातु से क्यप् निपातन है। यहाँ *शास इदङ्हलोः*(६।४।३४) से उपधा को इत्व तथा *शासिवसिघसीनां च* (८।३।६०) से षत्व होकर उत्शिष्य बना। *शश्छोऽटि* (८।४।६२) से 'श' को 'छ' एवं *स्तोः श्चुना०* (८।४।३९) से श्चुत्व होकर 'उच्छिष्यः' बनता है। मृड्, स्तृञ्, ध्वृ, खनु इन चारों धातुओं से ण्यत् की प्राप्ति में यत्प्रत्यय निपातन करके यथाक्रम से ४ शब्द *मर्य्य, स्तर्य्या, ध्वर्य्य, खन्य* शब्द बनते हैं। स्तर्य्या में यत्प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में ही निपातन है। खनु से ण्यत् प्रत्यय करके 'खान्य' भी बनेगा। 'देवयज्या' में देव उपपद रहते यज् धातु से 'य' प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में निपातन है। आङ्पूर्वक प्रच्छ धातु से क्यप् निपातन करके 'आपृच्छ्यः' बनता है। यहाँ *ग्रहिज्यावि०* (६।१।१६) से सम्प्रसारण होकर 'पृच्छ्' बनता है। प्रति पूर्वक षिवु धातु से भी क्यप् तथा षत्व निपातन से करके '*प्रतिषीव्यः*' बनता है। यहाँ *धात्वादेः षः सः* (६।१।६२) से षिवु के 'ष' को 'स' तथा *हलि च* (८।२।७७) से प्रतिषीव्य में दीर्घ भी होता है। ब्रह्म उपपद रहते वद धातु से ण्यत् करके '*ब्रह्म-*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वाद्यः' बनता है। यहाँ वदः सुपि क्यप् च (३।१।१०६) से वद
भू तथा स्तु धातु से ण्यत् प्रत्यय निपातन से करके, अचो
११५) से वृद्धि होकर 'भौ य, स्तौ य' बना, पुनः वान्तो
आवादेश करके भाव्यः, स्ताव्यः बना है। उप पूर्वक चि
उत्तरपद होने पर ण्यत् प्रत्यय निपातन से किया है, पूर्वक
आयादेश निपातन से करके 'उपचाय्यपृडं हिरण्यम् बनता

ऋहलोर्ण्यत् ॥३।१।१२४॥

ऋहलोः ६।२॥ ण्यत् १।१॥ स०—ऋ च हल् च ऋहलौ, तयोः इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—धातोः प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—ऋ॥ लन्ताच्च धातोर्ण्यत् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—कृ—कार्यम्, हृ—हार्यम्, धृ—धार्यम्, स्मृ—स्मार्यम्। हलन्तात्—पठ्—पाठ्यम्, पाक्यम्॥

भाषार्थः—[ऋहलोः] ऋवर्णान्त तथा हलन्त धातुओं से ण्यत् प्रत्यय होता है॥ उदा०—कार्यम्, हार्यम् (हरण क धार्यम् (धारण करने योग्य), स्मार्यम् (स्मरण करने योग्य)। ह पाठ्यम् (पढ़ने योग्य), पाक्यम् (पकने योग्य), वाक्यम् (व ऋकारान्त धातुओं को अचो ञ्णिति (७।२।११५) से वृद्धि हो हलन्त धातुओं को अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि हो तथा वच् धातुओं को चजोः कु० (७।३।५२) से कुत्व हो जाय

विशेषः—ऋहलोः में पञ्चम्यर्थ में षष्ठी है॥

यहां से 'ण्यत्' की अनुवृत्ति ३।१।१३१ तक जायेगी॥

ओरावश्यके ॥३।१।१२५॥

ओः ५।१॥ आवश्यके ७।१॥ अनु०—ण्यत्, धातोः, परश्च॥ अर्थः—उवर्णान्ताद्धातोरावश्यके द्योत्ये ण्यत् प्रत्यय उदा०—लाव्यम्, पाव्यम्॥

भाषार्थः—[ओः] उवर्णान्त धातुओं से [आवश्यके] द्योतित होने पर ण्यत् प्रत्यय होता है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च ॥३।१।१२६॥

आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमः ५।१॥च अ० ॥ स०—आसुश्च, युश्च, वपिश्च, रपिश्च, लपिश्च, त्रपिश्च, चम् च आसुयुवपिरपिलपित्रपिचम् समात्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ अर्थः—आङ् पूर्वात् सुनोतेः, वपि, रपि, लपि, त्रपि, चम् इत्येतेभ्यो धातुभ्यश्च ण्यत् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—आसाव्यम्, याव्यम्, वाप्यम्, राप्यम्, लाप्यम्, त्राप्यम्, आचाम्यम् ॥

भाषार्थः—[*आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमः*] आङ् पूर्वक षुञ्, यु, वप्, रप्, लप्, त्रप्, और चम् इन धातुओं से [च] भी ण्यत् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—आसाव्यम् (उत्पन्न करने योग्य), याव्यम् (मिलाने योग्य) वाप्यम् (बीज बोने योग्य), राप्यम् (बोलने योग्य) लाप्यम् (बोलने योग्य), त्राप्यम् (लज्जा करने योग्य), आचाम्यम् (आचमन करने योग्य) ॥ आसाव्यम्, याव्यम् में वृद्धि होकर, *वान्तो यि प्रत्यये* (६।१।७६) से वान्तादेश होता है। अन्यत्र *अत उपधायाः* (७।२।११६) से वृद्धि होगी ॥

आनाय्योऽनित्ये ३।१।१२७॥

आनाय्यः १।१॥ अनित्ये ७।१॥ स०—न नित्योऽनित्यस्तस्मिन्.....नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—ण्यत्, धातोः प्रत्ययः, परश्च। अर्थः—आनाय्य इति निपात्यतेऽनित्येऽभिधेये। आङ् पूर्वान्नयतेः 'ण्यत्' आयादेशश्च भवति, निपातनात् ॥ उदा०—आनाय्यो दक्षिणाग्निः[1] ॥

भाषार्थः—[*आनाय्यः*] आनाय्य शब्द आङ् पूर्वक णीञ् धातु से ण्यत् प्रत्ययान्त [*अनित्ये*] अनित्य अर्थ को कहना हो तो निपातन किया जाता है ॥ वृद्धि करने पर आयादेश भी निपातन से हो जाता है ॥

प्रणाय्योऽसंमतौ ॥३।१।१२८॥

प्रणाय्यः १।१॥ असंमतौ ७।१॥ संमननं संमतिः ॥ स०—अविद्यमाना संमतिरस्मिन् सोऽसंमतिस्तस्मिन्.....बहुव्रीहिः ॥ अनु०—

१. यज्ञ की अग्नियाँ तीन होती हैं—गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, सो दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य कुण्ड से लाकर प्रज्वलित की जाती है, अतः वह अनित्य कहलाती है, क्योंकि वह हर समय नहीं जलती। इस प्रकार आनाय्य निपातन दक्षिणाग्नि को कहने में ही हुआ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वाद्यः' बनता है। यहाँ वदः सुपि क्यप् च (३।१।१०६) से क्यप्, भू तथा स्तु धातु से ण्यत् प्रत्यय निपातन से करके, अचो ञ्णि ११५) से वृद्धि होकर 'भौ य, स्तौ य' बना, पुनः वान्तो आवादेश करके भाव्यः, स्ताव्यः बना है। उप पूर्वक चिञ् उत्तरपद होने पर ण्यत् प्रत्यय निपातन से किया है, पूर्वक आयादेश निपातन से करके 'उपचाय्यपृडं हिरण्यम्' बनता है।

ऋहलोर्ण्यत् ॥३।१।१२४॥

ऋहलोः ६।२॥ ण्यत् १।१॥ स०—ऋ च हल् च ऋहल्, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—धातोः प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—ऋ॥ लन्ताच्च धातोर्ण्यत् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—कृ—कार्यम्, हृ—हार्यम्, धृ—धार्यम्, स्मृ—स्मार्यम्। हलन्तात्—पठ्—पाठ्यम्, पाक्यम्॥

भाषार्थः—[ऋहलोः] ऋवर्णान्त तथा हलन्त धातुओं से ण्यत् प्रत्यय होता है॥ उदा०—कार्यम्, हार्यम् (हरण करने धार्यम् (धारण करने योग्य), स्मार्यम् (स्मरण करने योग्य)। पाठ्यम् (पढ़ने योग्य), पाक्यम् (पकने योग्य), वाक्यम् (कहने ऋकारान्त धातुओं को अचो ञ्णिति (७।२।११५) से वृद्धि होती हलन्त धातुओं को अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि होती तथा वच् धातुओं को चजोः कु० (७।३।५२) से कुत्व हो जाता

विशेषः—ऋहलोः में पञ्चम्यर्थ में षष्ठी है॥

यहां से 'एयत्' की अनुवृत्ति ३।१।१३१ तक जायेगी॥

ओरावश्यके ॥३।१।१२५॥

ओः ५।१॥ आवश्यके ७।१॥ अनु०—ण्यत्, धातोः परश्च॥ अर्थः—उवर्णान्ताद्धातोरावश्यके द्योत्ये ण्यत् प्रत्ययो उदा०—लाव्यम्, पाव्यम्॥

भाषार्थः—[ओः] उवर्णान्त धातुओं से [आवश्यके] द्योतित होने पर एयत् प्रत्यय होता है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च ॥३।१।१२६॥

आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमः ५।१॥च अ० ॥ स०—आसुश्च, युश्च, पिश्च, रपिश्च, लपिश्च, त्रपिश्च, चम् च आसुयुवपिरपिलपित्रपिचम् समात्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ अर्थः—आङ् पूर्वात् सुनोतेः, वपि, रपि, लपि, त्रपि, चम् इत्येतेभ्यो धातुभ्यश्च ण्यत् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—आसाव्यम्, याव्यम्, वाप्यम्, राप्यम्, लाप्यम्, त्राप्यम्, आचाम्यम् ॥

भाषार्थः—[*आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमः*] आङ् पूर्वक षुञ्, यु, वप्, रप्, लप्, त्रप्, और चम् इन धातुओं से [च] भी ण्यत् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—आसाव्यम् (उत्पन्न करने योग्य), याव्यम् (मिलाने योग्य) वाप्यम् (बीज बोने योग्य), राप्यम् (बोलने योग्य) लाप्यम् (बोलने योग्य), त्राप्यम् (लज्जा करने योग्य), आचाम्यम् (आचमन करने योग्य) ॥ आसाव्यम्, याव्यम् में वृद्धि होकर, *वान्तो यि प्रत्यये* (६।१।७६) से वान्तादेश होता है। अन्यत्र *अत उपधायाः* (७।२।११६) से वृद्धि होगी ॥

आनाय्योऽनित्ये ३।१।१२७॥

आनाय्यः १।१॥ अनित्ये ७।१॥ स०—न नित्योऽनित्यस्तस्मिन्.....नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—ण्यत्, धातोः प्रत्ययः, परश्च। अर्थः—आनाय्य इति निपात्यतेऽनित्येऽभिधेये। आङ् पूर्वान्नयतेः 'ण्यत्' आयादेशश्च भवति, निपातनात् ॥ उदा०—आनाय्यो दक्षिणाग्निः[1] ॥

भाषार्थः—[*आनाय्यः*] आनाय्य शब्द आङ् पूर्वक णीञ् धातु से ण्यत् प्रत्ययान्त [*अनित्ये*] अनित्य अर्थ को कहना हो तो निपातन किया जाता है ॥ वृद्धि करने पर आयादेश भी निपातन से हो जाता है ॥

प्रणाय्योऽसंमतौ ॥३।१।१२८॥

प्रणाय्यः १।१॥ असंमतौ ७।१॥ संमननं संमतिः ॥ स०—अविद्यमाना संमतिरस्मिन् सोऽसंमतिस्तस्मिन्.....बहुव्रीहिः ॥ अनु०—

१. यज्ञ की अग्नियाँ तीन होती हैं—गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, सो दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य कुण्ड से लाकर प्रज्वलित की जाती है, अतः वह अनित्य कहलाती है, क्योंकि वह हर समय नहीं जलती। इस प्रकार आनाय्य निपातन दक्षिणाग्नि को कहने में ही हुआ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

धातोः प्रत्ययः परश्च ॥ *अर्थः*—संमतिः = पूजा। असंमतावि-
न्नयतेः ण्यत् प्रत्ययः, आयादेशश्च निपात्यते ॥ उदा०—प्र

भाषार्थः—प्र पूर्वक णीञ् धातु से [*असंमतौ*] अपूजा
तो ण्यत् प्रत्यय तथा वृद्धि कर लेने पर आयादेश [*प्रणाय्य*
शब्द में निपातन किया जाता है ॥ चोर निन्दित है अतः
कहा गया है। *अट्कुप्वाङ्०* (८।४।२) से प्रणाय्य में णत्व हो

पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवास
सामिधेनीषु ॥३।१।१२९॥

पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्याः १।३॥ मानहविर्निवाससामिधे
स०—पाय्यश्च, सान्नाय्यश्च, निकाय्यश्च धाय्या च इति पाय्य
काय्यधाय्याः, इतरेतरद्वन्द्वः। मानञ्च, हविश्च, निवासश्च, सा
मानहविर्निवाससामिधेन्यस्तासु···इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—प्र
प्रत्ययः परश्च ॥ *अर्थः*—पाय्य, सान्नाय्य, निकाय्य धाय्या इ
यथाक्रमं मान, हविः, निवास, सामिधेनी इत्येतेष्वभिधेयेषु नि
पाय्य इति माङ् धातोः 'ण्यत्' प्रत्ययः, आदेर्मकारस्य पत्वञ्च
धेये निपात्यते। *'सान्नाय्यः'* इति संपूर्वान्नयतेः, ण्यत् प्र
कृतायाम् आयादेशः, उपसर्गस्य दीर्घत्वञ्च निपात्यते ह
'निकाय्यः' इति निपूर्वाच्चिञ् धातोः ण्यत् प्रत्ययः, वृद्धौ कृता
आदेशचकारस्य कुत्वञ्च निपात्यते, निवासेऽभिधेये। ध
डुधाञ् धातोर्ण्यत् प्रत्ययो निपात्यते सामिधेन्यभिधेये ॥

भाषार्थः—[*पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्याः*] पाय्य, सान्नाय्य
धाय्या शब्द यथासङ्ख्य करके [*मानहविर्निवाससामिधेनीषु*]
निवास तथा सामिधेनी अभिधेय हों तो निपातन किये जाते हैं।
माङ् माने धातु से ण्यत्, तथा आदि मकार को पकार निपात
है, मान कहना हो तो। *'सान्नाय्य'* में सम् पूर्वक णीञ् धातु
उपसर्ग को दीर्घ, तथा वृद्धि करने के पश्चात आयादेश निपात
है, हवि को कहने में। *निकाय्य* में चिञ् धातु से ण्यत् तथा
को 'क्' एवं आयादेश निवास अभिधेय होने पर निपातन हो
'धाय्या' में डुधाञ् धातु से ण्यत् निपातन किया है,

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

होने में। पाय्य एवं धाय्या में *आतो युक्०* (७।३।३३) से युक् आगम हो जायगा॥ सब उदाहरणों में अजन्त धातुओं के होने से यत् प्रत्यय की प्राप्ति थी, ण्यत् निपातन कर दिया है, मान, हवि आदि अर्थों में, इन अर्थों से अतिरिक्त स्थल में यत् ही होगा॥ उदा०—पाय्यं मानम् (तोलने के बाट), मेयम् अन्य अर्थों में बनेगा। सान्नाय्यं हविः (हवि का नाम), 'सन्नेयम्' अन्यत्र बनेगा। निकाय्यो निवासः (निकाय्य निवास को कहते हैं), निचेयम् अन्यत्र बनेगा। धाय्या सामिधेनी (ऋचा का नाम) धेयम् अन्यत्र बनेगा॥

क्रतौ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ ॥३।१।१३०॥

क्रतौ ७।१॥ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ १।२॥ स०—कुण्डपाय्यश्च सञ्चाय्यश्च, कुण्डपाय्यसञ्चाय्यौ, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—ण्यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—कुण्डपाय्य, संचाय्य इत्येतौ शब्दौ क्रतावभिधेये निपात्येते कुण्डपाय्येत्यत्र कुण्डशब्दे तृतीयान्त उपपदे पिबतेर्धातोरधिकरणे यत्प्रत्ययो निपात्यते, युक् चागमः। संचाय्य इत्यत्र सम् पूर्वात् चिञ्धातोः 'ण्यत्' प्रत्ययः, आयादेशश्च निपात्यते, अधिकरणे च॥ उदा०—कुण्डेन पीयतेऽस्मिन् सोम इति कुण्डपाय्यः क्रतुः। संचीयतेऽस्मिन् सोम इति संचाय्यः क्रतुः॥

भाषार्थः—क्रतु यज्ञ विशेषों की संज्ञा है॥ [*क्रतौ*] क्रतु अभिधेय में [*कुण्डपाय्यसंचाय्यौ*] कुण्डपाय्य, तथा संचाय्य शब्द निपातन से जाते हैं॥ कुण्ड शब्द तृतीयान्त उपपद रहते पा पाने धातु से अधिकरण में यत् प्रत्यय तथा युक् का आगम निपातन करके कुण्डपाय्य शब्द बनाते हैं। सम् पूर्वक चिञ् धातु से ण्यत् प्रत्यय तथा वृद्धि कर के पर आयादेश निपातन करके 'संचाय्य' शब्द बनता है॥

उदा०—कुण्डपाय्यः क्रतुः (कुण्ड के द्वारा सोम पिया जाता है, ऐसा यज्ञ में)। संचाय्यः क्रतुः (जिसमें सोम का सङ्ग्रह किया जाता है, ऐसा यज्ञ)॥

अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः ३।१।१३१॥

अग्नौ ७।१॥ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः १।३॥ स०—परिचाय्य० इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—एयत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परिचाय्य, उपचाय्य समूह्य इत्येते शब्दा निपात्यन्ते, अग्नौ परिचाय्य उपचाय्य इत्यत्र परिपूर्वाद् उपपूर्वाच्च चिञ् धातोः ण्यत् प्रत्यय आयादेशश्च निपात्यते। समूह्य इत्यत्र समपूर्वाद् ऊह् धातोः ण्यर्थति सम्प्रसारणं दीर्घत्वञ्च निपात्यते ॥

भाषार्थः—[*परिचा·····ह्याः*] परिचाय्य उपचाय्य और समूह्य [*अग्नौ*] अग्नि अभिधेय हो तो निपातन किये जाते हैं। परि उप पूर्वक चिञ् धातु से ण्यत् प्रत्यय तथा आयादेश निपातन करके परिचाय्य उपचाय्य शब्द बनते हैं ॥ सम् पूर्वक ऊह् धातु से ण्यत् प्रत्यय एवं सम्प्रसारण निपातन से करके 'सम् ऊह् य' बनता है पुनः निपातन से ही दीर्घ करके 'सम् ऊह् य' = समूह्य बनता है। उदा०—परिचीयतेऽस्मिन् परिचाय्यः (यज्ञ की अग्नि चयन की जाती है)। उपचीयते असौ उपचाय्यः (यज्ञ में चयन की आग) समूह्यं चिन्वीत पशुकामः (पशु की कामना करने वाला यज्ञ की अग्नि का चयन करे) ॥

यहाँ से '*अग्नौ*' की अनुवृत्ति ३।१।१३२ तक जायेगी।

चित्याग्निचित्ये च ॥३।१।१३२॥

चित्याग्निचित्ये १।२॥ च अ० ॥ *स०*—चित्यश्च, अग्निश्च चित्याग्निचित्ये, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अग्नौ, धातोः, ण्यत् ॥ *अर्थः*—चित्यशब्दः अग्निचित्याशब्दश्च निपात्येते अग्नौ चिञ्धातोः कर्मणि क्यप् प्रत्ययो निपात्यते चित्य इति। चिञ्धातोः भावे यकारप्रत्ययः गुणाभावः, तुगागमश्च निपात्यते। *उदा०*—चीयतेऽसौ चित्यः। अग्निचयनमेव अग्निचित्या।

भाषार्थः—[*चित्याग्निचित्ये*] चित्य तथा अग्निचित्या शब्द भी निपातन किये जाते हैं, अग्नि अभिधेय हो तो ॥ चिञ् धातु से कर्म में क्यप् प्रत्यय निपातन है, तुक् आगम हस्वस्य पिति कृति तुक् से हो ही जायगा। अग्निचित्या शब्द में अग्नि शब्द उपपद है। चिञ् धातु से भाव में यकार प्रत्यय, तुक् आगम एवं गुणाभाव निपातन है। क्यप् प्रत्यय निपातन करने से *आद्युदात्तश्च* (३।१।३) से भी आद्युदात्त है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ण्वुल्तृचौ ॥३।१।१३३॥

ण्वुल्तृचौ १।२॥ स०—ण्वुल् च तृच्च ण्वुल्तृचौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥
०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—धातोः ण्वुल्तृचौ प्रत्ययौ भवतः ॥
०—कारकः, हारकः पाठकः, कर्ता, हर्ता, पठिता ॥

भाषार्थः—धातुमात्र से [ण्वुल्तृचौ] ण्वुल् तथा तृच् प्रत्यय होते सिद्धियाँ परिशिष्ट १।१।१, २ में देखें ॥

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ॥३।१।१३४॥

नन्दिग्रहिपचादिभ्यः ५।३॥ ल्युणिन्यचः १।३॥ स०—नन्दिश्च, श्च, पच् च, नन्दिग्रहिपच्, नन्दिग्रहिपच् आदिर्येषां ते नन्दिग्रहि-दयः, तेभ्यः.....द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। आदिशब्दः प्रत्येकमभि-ध्यते। ल्युश्च, णिनिश्च, अच्च ल्युणिन्यचः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥
०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—नन्द्यादिभ्यो ग्रहादिभ्यः पचा-यश्च धातुभ्यो यथासङ्ख्यं ल्यु, णिनि, अच् इत्येते प्रत्यया भवन्ति ॥
०—नन्द्यादि—नन्दयतीति नन्दनः। वाशयतीति वाशनः। ग्रहादि—तीति ग्राही, उत्साही, उद्वासी। पचादि—पचतीति पचः, वपतीति वदः ॥

भाषार्थः—[नन्दिग्रहिपचादिभ्यः] नन्द्यादि, ग्रहादि तथा पचादि ओं से यथासङ्ख्य करके [ल्युणिन्यचः] ल्यु, णिनि तथा अच् प्रत्यय हैं ॥ इस प्रकार तीनों गणों से तीन प्रत्यय यथासङ्ख्य करके, अर्थात् ादियों से ल्यु, ग्रहादियों से णिनि, तथा पचादियों से अच् प्रत्यय हैं ॥ उदा०—नन्द्यादियों से—नन्दनः (प्रसन्न करने वाला), वाशनः ब्द करने वाला पक्षी)। ग्रहादियों से—ग्राही (ग्रहण करनेवाला) उत्साही साह करने वाला), उद्वासी (निकलने वाला)। पचादियों से—पचः ाने वाला), वपः (बोने वाला), वदः (बोलने वाला) ॥ नन्दनः वाशनः नन्दिवाशिमदि० (वा० ३।१।१३४) इस वार्त्तिक के कारण हेतुमति च १।२६) से णिच् लाकर ही ल्यु प्रत्यय होता है, पुनः उस णिच् का नेटि (६।४।५१) से लोप हो जाता है। ग्रह से णिनि प्रत्यय करके हिन् बना, स्वाद्युत्पत्ति होकर ग्राहिन् सु बना। अब सौ च (६।४।१३) दीर्घ तथा हलङ्याब्भ्यो० (६।१।६६) से सुलोप, एवं नलोपः प्रा०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(८।२।७) से न् का लोप होकर 'ग्राही' बन गया है। अ
(भा० वा० ३।१।१३४) इस महाभाष्य की वार्तिक से पचादि
माना जाता है ॥

इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ॥३।१।१३५॥

इगुपधज्ञाप्रीकिरः ५।१॥ कः १।१॥ स०—इक् उपधा
पधः, बहुव्रीहिः। इगुपधश्च, ज्ञा च, प्रीञ् च कॄ च इ
तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः
अर्थः—इगुपधेभ्यो, ज्ञा, प्रीञ्, कॄ (तुदादि) इत्येतेभ्यो
प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—विक्षिपतीति विक्षिपः, वि
जानातीति ज्ञः। प्रियः। किरः ॥

भाषार्थः—[*इगुपधज्ञाप्रीकिरः*] इक् (प्रत्याहार) उपधा
तथा ज्ञा, प्रीञ्, कॄ इन धातुओं से [कः] क प्रत्यय होता है
विक्षिपः (विघ्न डालने वाला) विलिखः (कुरेदने
(विद्वान्) ज्ञः (जानने वाला) प्रियः (प्रेम करने वाला) कि
आतो लोप० (६।४।६४) से ज्ञा के आ का लोप होकर ज्ञ
प्रियः में अचि श्नु० (६।४।७७) से इयङ् होता है ॥

यहाँ से 'कः' की अनुवृत्ति ३।१।१३६ तक जायेगी ॥

आतश्चोपसर्गे ॥३।१।१३६॥

आतः ५।१॥ च अ० ॥ उपसर्गे ७।१॥ अनु०—कः, धा
परश्च ॥ अर्थः—आकारान्तेभ्यो धातुभ्य उपसर्ग उपपदे
भवति ॥ उदा०—प्रतिष्ठत इति प्रस्थः। सुष्ठु ग्लायतीति सु

भाषार्थः—[*आतः*] आकारान्त धातुओं से [च] भी
उपसर्ग उपपद रहते क प्रत्यय होता है ॥ उदा०—प्रस्थः (
(बहुत ग्लानि करने वाला), सुम्लः (उदास होनेवाला)
ग्लै, म्लै धातुओं को आदेच उपदेशे० (६।१।४४) से आत्व
आतो लोप इटि च (६।४।६४) से स्था, ग्ला म्ला धातुओं के
लोप कित् प्रत्यय परे रहते हो ही जायेगा ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पाघ्राध्माधेट्दृशः शः ॥३।१।१३७॥

पाघ्राध्माधेट्दृशः ५।१॥ शः १।१॥ स०—पाश्च, घ्राश्च, ध्माश्च धेट् च, दृश् च, पाघ्रा···दृश्, तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, यः, परश्च ॥ अर्थः—पा, घ्रा, ध्मा, धेट्, दृश् इत्येतेभ्यो धातुभ्यः (सर्गे, अनुपसर्गे चोपपदे) शः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उत्पिबः, बः। उज्जिघ्रः, विजिघ्रः। उद्ध्मः, विध्मः। उद्धयः, विधयः। यः, विपश्यः। अनुपसर्गेऽपि—जिघ्रः, धयः पश्यः ॥

भाषार्थः—[पाघ्राध्माधेट्दृशः] पा पाने, घ्रा, ध्मा, धेट्, दृशिर्, इन धातुओं से (उपसर्ग उपपद हो या न हो तो भी) [शः] श प्रत्यय होता है। सोपसर्ग पा, घ्रा, ध्मा, धेट् से पूर्वसूत्र से क प्रत्यय प्राप्त था, तथा सोपसर्ग पा, घ्रा, ध्मा, धेट् से *श्याद्व्यधास्नु०* (३।१।१४१) से आकार मानकर ण प्रत्यय प्राप्त था, एवं दृश् धातु के इगुपध होने से *अकर्त्रा०* (३।१।१३५) से क प्रत्यय प्राप्त था उनका यह अपवाद है ॥

यहाँ से 'शः' की अनुवृत्ति ३।१।१३९ तक जावेगी ॥

अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेति-सातिसाहिभ्यश्च ॥३।१।१३८॥

अनुपसर्गात् ५।१॥ लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यः च अ० ॥ स०—लिम्पविन्द० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—शः प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्गरहितेभ्यो लिप उपदेहे, विद्लृ धृञ् धारणे, पॄ पालनपूरणयोः, विद चेतनाख्याननिवासेषु, (उत्पूर्वात् एजृ कम्पने, चिती संज्ञाने, सातिः (सौत्रो धातुः), षहि मर्षणे, इत्येतेभ्यो धातुभ्यः शः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—लिम्पतीति विन्दतीति विन्दः, धारयः, पारयः, वेदयः, उदेजयः, चेतयः, साहयः ॥

भाषार्थः—[अनुपसर्गात्] उपसर्ग रहित [लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिसातिसाहिभ्यः] लिप, विद्लृ धृञ् पॄ विद, उत्पूर्वक एजृ, चिती, षह मर्षणे इन धातुओं से [च] भी श प्रत्यय होता है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से '*अनुपसर्गात्*' की अनुवृत्ति ३।१।१४० तक जा

ददातिदधात्योर्विभाषा ॥३।१।१३९॥

ददातिदधात्योः ६।२॥ विभाषा १।१॥ स०—ददाति ददातिदधाती तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अनुप धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनुपसर्गाभ्यां डुदाञ्, ताभ्यां धातुभ्यां शः प्रत्ययो विकल्पेन भवति ॥ णस्याप सोऽपि भवति ॥ उदा०—ददः, दायः । दधः, धायः ॥

भाषार्थः—अनुपसर्ग [*ददातिदधात्योः*] डुदाञ् और डु से [*विभाषा*] विकल्प से श प्रत्यय होता है ॥ आका *श्याद्व्यधास्रु०* (३।१।१४१) से 'ण' नित्य प्राप्त था, सो प हो जायेगा ॥

यहाँ से '*विभाषा*' की अनुवृत्ति ३।१।१४० तक जायेगी

ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ॥३।१।१४०॥

ज्वलितिकसन्तेभ्यः ५।३॥ णः १।१॥ स०—ज्वल् इति ते ज्वलितयः, बहुव्रीहिः । कस अन्ते येषां ते कसन्ताः, बहु तयश्च ते कसन्ताश्चेति ज्वलितिकसन्तास्तेभ्यः ··· त्पुरुषः ॥ अनु०—विभाषा, अनुपसर्गात्, धातोः, प्रत्य अर्थः—इतिशब्दोऽत्राद्यर्थवाची ॥ ज्वल् इति = ज्वल दी कस् अन्तः = कस गतौ इत्यन्तेभ्योऽनुपसर्गेभ्यो धातुभ्यो णः प्रत्ययो भवति, पक्षे सामान्यविहितोऽच् ॥ उदा०—ज्व ज्वलः । चालः, चलः ॥

भाषार्थः—[*ज्वलितिकसन्तेभ्यः*] ज्वल दीप्तौ धातु से गतौ पर्यन्त जितनी धातुएँ हैं, उनसे [*णः*] ण प्रत्यय हो 'ज्वल् इति' में इति शब्द आदि अर्थ का वाचक है, सो अर्थ हुआ, 'ज्वल जिनके आदि में है' तथा कसन्त का अर्थ गतौ पर्यन्त' । इस प्रकार ज्वल से लेकर कस पर्यन्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कल्प से ण प्रत्यय होगा। पक्ष में अच् प्रत्यय अजपि सर्वधातुभ्यः ० ३।१।१३४) इस वार्तिक से हो गया है॥ उदा०—ज्वालः (जलने ला), ज्वलः। चालः (चलने वाला), चलः॥

यहाँ से 'णः' की अनुवृत्ति ३।१।१४३ तक जायेगी॥

ाद्व्यधास्रुसंस्रवतीणवसावहलिहश्लिषश्वसश्च ॥३।१।१४१॥

श्याद्व्यधास्रुसंस्रवतीणवसावहलिहश्लिषश्वसः ५।१॥ च अ०॥ —श्याश्च आश्च, व्यधश्च, आस्रुश्च, संस्रुश्च, अतीण् च, अवसाश्च, ह च, लिहश्च, श्लिषश्च, श्वस् च = श्याद्व्य····श्वस् तस्मात्··· ाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—णः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः— ङ गतौ आकारान्तेभ्यश्च धातुभ्यः, व्यध ताडने, आङ्पूर्वात् र्वाच्च स्रु गतौ, अतिपूर्वात् इण, अवपूर्वात् षोऽन्तकर्मणि, अवपूर्वाद् ह्, लिह आस्वादने, श्लिष आलिङ्गने, श्वस प्राणने, इत्येतेभ्यश्च तुभ्यो णः प्रत्ययो भवति॥ उदा०—अवश्यायः। प्रतिश्यायः। कारान्तेभ्यः— दायः, धायः। व्याधः। आस्रावः। संस्रावः अत्यायः। सायः। अवहारः। लेहः। श्लेषः। श्वासः॥

भाषार्थः—[श्याद्व्य·····श्वसः] श्यैङ्, आत् = आकारान्त, ध्रु आङ् और संपूर्वक स्रु, अति पूर्वक इण्, अवपूर्वक षो, अवपूर्वक लिह्, श्लिष्, श्वस् इन धातुओं से [च] भी ण प्रत्यय होता है॥

दुन्योरनुपसर्गे ॥३।१।१४२॥

दुन्योः ६।२॥ अनुपसर्गे ७।१॥ स०—दुश्च, नी च दुन्यौ तयोः··· तरद्वन्द्वः। न उपसर्गः, अनुपसर्गः, तस्मिन्·····नञ्तत्पुरुषः॥ ०—णः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—टुदु उपतापे, णीञ् णे इत्येताभ्यामुपसर्गरहिताभ्यां धातुभ्यां णः प्रत्ययो भवति॥ ०—दुनोतीति दावः, नयतीति नायः॥

भाषार्थः—[अनुपसर्गे] उपसर्ग रहित [दुन्योः] टुदु उपतापे तथा ञ् प्रापणे धातुओं से ण प्रत्यय होता है॥ अचो ञ्णिति से वृद्धि वादेशादि पूर्ववत् होकर दावः (वन), नायः (नेता) की सिद्धि जानें॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

विभाषा ग्रहः ॥३।१।१४३॥

विभाषा १।१॥ ग्रहः ५।१॥ अनु०—णः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—ग्रह धातोर्विकल्पेन णः प्रत्ययो भवति। पक्षे सामान्यविहितः उदा०—ग्राहः, ग्रहः ॥

भाषार्थः—[ग्रहः] ग्रह धातु से [विभाषा] विकल्प होता है, पक्ष में सामान्यविहित पचाद्यच् (३।१।१३४) उदा०—ग्राहः (मकर), ग्रहः (नक्षत्र) ॥

यहाँ से 'ग्रहः' की अनुवृत्ति ३।१।१४४ तक जायेगी॥

गेहे कः ॥३।१।१४४॥

गेहे ७।१॥ कः १।१॥ अनु०—ग्रहः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—ग्रहधातोर्गेहे कर्तरि वाच्ये कः प्रत्ययो भवति॥ उदा०—ग्रहः गृहाः दाराः ॥

भाषार्थः—ग्रह धातु से [गेहे] गेह = गृह कर्त्ता वाच्य हो तो क प्रत्यय होता है॥ उदा०—गृहम् (घर) गृहाः दाराः (स्त्रियाँ)॥

शिल्पिनि ष्वुन् ॥३।१।१४५॥

शिल्पिनि ७।१॥ ष्वुन् १।१॥ अनु०-धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—धातोः ष्वुन् प्रत्ययो भवति शिल्पिनि कर्तरि वाच्ये॥ उदा०—खनकः, रजकः। नर्तकी, रजकी, खनकी ॥

भाषार्थः—धातु से [शिल्पिनि] शिल्प कर्त्ता अभिधेय हो तो ष्वुन् प्रत्यय होता है॥ परिशिष्ट १।३।६ में नर्तकी, रजकी, खनकी सिद्धि की है, सो उसी, प्रकार पुल्लिङ्ग में ङीष् न होकर खनकः बनेगा ॥

यहाँ से 'शिल्पिनि' की अनुवृत्ति ३।१।१४७ तक जायेगी॥

गस्थकन् ॥३।१।१४६॥

गः ५।१॥ थकन् १।१॥ अनु०—शिल्पिनि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—गायतेर्धातोस्थकन् प्रत्ययो भवति, शिल्पिनि कर्तरि॥ उदा०—गाथकः, गाथिका ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[गः] गै धातु से [थकन्] थकन् प्रत्यय होता है, शिल्पी वाच्य हो तो ॥ उदा०—गाथकः (गवैया) गाथिका ॥ स्त्रीलिङ्ग टाप् प्रत्यय होकर, प्रत्ययस्थात् कात्० (७।३।४४) से इत्व होकर गाथिका बना है ॥

यहाँ से 'गः' की अनुवृत्ति ३।१।१४७ तक जायेगी ॥

ण्युट् च ॥३।१।१४७॥

ण्युट् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—गः, शिल्पिनि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—शिल्पिन्यभिधेये गा धातोर्ण्युट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—गायनः, गायनी ॥

भाषार्थः—शिल्पी कर्ता वाच्य हो तो [च] गा धातु से [ण्युट्] ण्युट् प्रत्यय होता है। यहाँ चकार से गा धातु का अनुकर्षण है ॥ ण्युट् के णित् होने से स्त्रीलिङ्ग में *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होकर गायनी (गाने वाली) बना है ॥

यहाँ से 'ण्युट्' की अनुवृत्ति ३।१।१४८ तक जायेगी ॥

हश्च व्रीहिकालयोः ॥३।१।१४८॥

हः ५।१॥ च अ० ॥ व्रीहिकालयोः ७।२॥ स०—व्रीहिश्च, कालश्च व्रीहिकालौ तयोः····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—ण्युट्, धातोः प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—व्रीहिकालयोरभिधेययोः 'हः' धातोर्ण्युट् प्रत्ययो भवति ॥ 'हा' ग्रहणेन सामान्यग्रहणात् ओहाङ् गतौ, ओहाक् त्यागे इति द्वयोरपि णां भवति। उदा०—हायना। हायनः ॥

भाषार्थः—[व्रीहिकालयोः] व्रीहि और काल अभिधेय हों तो [हः] 'हा' धातु से [च] ण्युट् प्रत्यय होता है। हा से ओहाक् तथा ओहाङ् दोनों धातुओं का ग्रहण है, क्योंकि अनुबन्ध हटा देने पर दोनों का 'हा' रूप बन जाता है ॥ चकार से यहाँ ण्युट् का अनुकर्षण है ॥ उदा०—हायना (हायना नाम की व्रीहि = धान्य विशेष)। हायनः (संवत्सर = वर्ष) ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रुसृल्वः समभिहारे वुन् ॥३।१।१४९॥

प्रुसृल्वः १।३, अत्र पञ्चम्याः स्थाने जस्॥ समभिहारे १।१॥ स०—प्रुश्च, सृ च, लू च प्रुसृल्वः……इतरेतरद्वन्द्वः धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ इह सम्यग्विचारेण क्रियाकरः शब्देन गृह्यते ॥ अर्थः—प्रु, सृ, लू इत्येतेभ्यो धातुभ्यो भवति, समभिहारे गम्यमाने ॥ उदा०—प्रवतीति = प्रवकः सरकः। लुनातीति = लवकः ॥

भाषार्थः—[प्रुसृल्वः] प्रु, सृ, लू इन धातुओं से [समभिहार गम्यमान होने पर [वुन्] वुन् प्रत्यय होता है॥ शब्द से ठीक-ठीक कार्य करने वाला लिया गया है, न कि बार करना, सो जो अच्छी प्रकार क्रिया न करे वहाँ प्रत्यय उदा०—प्रवकः (अच्छे प्रकार चलने वाला)॥ सरकः सरकने वाला) लवकः (अच्छी प्रकार काटने वाला)॥

यहाँ से 'वुन्' की अनुवृत्ति ३।१।१५० तक जायेगी॥

आशिषि च ॥३।१।१५०॥

आशिषि ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—वुन्, धातोः, प्रत्ययो अर्थः—आशिषि गम्यमाने धातुमात्राद् वुन् प्रत्ययो भवति। अनुकृष्यते ॥ उदा०—जीवतात् = जीवकः। नन्दतात् = नन्दकः

भाषार्थः—[आशिषि] आशीर्वाद अर्थ गम्यमान हो तो [च] वुन् प्रत्यय होता है। यहाँ चकार से वुन् का उदा०—जीवकः (जो चिरकाल तक जीवे)। नन्दकः (जो सिद्धियाँ ण्वुल् की सिद्धियों (देखो परिशिष्ट १।१।१) के

॥ इति प्रथमः पादः ॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

द्वितीयः पादः

कर्मण्यण् ॥३।२।१॥

कर्मणि ७।१॥ अण् १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कुम्भं करोतीति = भकारः, नगरकारः । काण्डं लुनातीति = काण्डलावः, शरलावः । वेदतीति = वेदाध्यायः, चर्चां पठतीति = चर्चापाठः ॥

भाषार्थः—[कर्मणि] कर्म उपपद रहते धातु मात्र से [अण्] अण् प्रत्यय होता है ॥ उदाहरण में कुम्भ आदि कर्म उपपद में हैं सो 'कृ' आदि धातुओं से अण् प्रत्यय हो गया है ॥ उदा०—कुम्भकारः, नगरकारः, काण्डलावः (शाखा को काटने वाला) शरलावः, वेदाध्यायः (वेद को पढ़ने वाला), चर्चापाठः (पदच्छेद विभक्ति पढ़ने वाला) ॥ परिशिष्ट ३।२।३८ के स्वादुङ्कारम् के समान ही सब सिद्धियाँ हैं। यहाँ उपपदमतिङ् (२।२।१९) से समास होता है, यही विशेष है । वेदान् कर्म उपपद रहते अधि पूर्वक इङ् धातु से अण् होकर वृद्धि आयादेश, यणादेश होकर वेदाध्यायः बन गया है ॥

यहाँ से 'कर्मणि' की अनुवृत्ति ३।२।५८ तक तथा 'अण्' की ३।२।२ तक जायेगी ॥

ह्लावामश्च ॥३।२।२॥

ह्लावामः ५।१॥ च अ० ॥ स०—ह्लेञ् च वेञ् च माश्च ह्लावामम् तस्मात् ··· समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मण्यण्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ह्लेञ् स्पर्द्धायां शब्दे च, वेञ् तन्तुसन्ताने, माङ् माने एतेभ्यश्च धातुभ्यः कर्मण्युपपदे अण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पुत्रं ह्लयति = पुत्रह्लायः, तन्तुवायः, धान्यमायः ॥

भाषार्थः—[ह्लावामः] ह्लेञ्, वेञ्, माङ् इन धातुओं से [च] भी कर्म उपपद रहते अण् प्रत्यय होता है ॥ ह्लेञ्, वेञ् इन धातुओं को आत्व करके सूत्र में निर्देश किया है । उदा०—पुत्रह्लायः (पुत्र को बुलाने वाला) तन्तुवायः (जुलाहा), धान्यमायः (धान मापने वाला) ॥ आतोऽनुपसर्गे कः (३।२।३) से क प्रत्यय प्राप्त था उसका यह अपवाद है। आतो युक्चिण्कृतोः (७।३।३३) से पुत्रह्लायः आदि में युक् का आगम हुआ है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

आतोऽनुपसर्गे कः ॥३।२।३॥

आतः ५।१॥ अनुपसर्गे ७।१॥ कः १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—अनुपसर्गेभ्य आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः परो यः पपदे कः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—गां ददातीति = गोदः, अ त्रायते = पार्ष्णित्रम् , अङ्गुलित्रम् ॥

भाषार्थः—[अनुपसर्गे] अनुपसर्ग [आतः] आकारान्त कर्म उपपद रहते [कः] क प्रत्यय होता है ॥ उदा०—गोदः कम्बलदः (कम्बल देने वाला) पार्ष्णित्रम् (मोजा) अङ्गुलि दा के आकार का लोप *आतो लोप इटि च* (६।४।६४) से हो कुम्भकारः के समान ही सिद्धि जानें ॥

यहाँ से 'कः' की अनुवृत्ति ३।२।७ तक जायेगी ॥

सुपि स्थः ॥३।२।४॥

सुपि ७।१॥ स्थः ५।१॥ अनु०—कः धातोः प्रत्ययः परश्च सुबन्त उपपदे स्था धातोः कः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सम समस्थः । विषमस्थः ॥

भाषार्थः—[*सुपि*] सुबन्त उपपद रहते [स्थः] स्था धातु होता है ॥ उदा०—समस्थः (बराबर ठहरता है) । विषम से ठहरता है) ॥ उदाहरण में *आतो लोप इटि च* (६।४।६ आकार का लोप हो जायेगा ॥

विशेषः—यहाँ से आगे 'सुपि' तथा 'कर्मणि' दोनों पदों चलती है, सो जिन सूत्रों में सकर्मक धातुओं का सम्बन्ध कर्मणि की अनुवृत्ति लगानी होगी, तथा जहाँ अकर्मक धातु न्ध होगा वहाँ 'सुपि' की अनुवृत्ति लगानी होगी, ऐसा जैसा कि सूत्रों में सर्वत्र दिखाया भी है ॥

यहाँ से '*सुपि*' की अनुवृत्ति ३।२।८३ तक जायेगी ॥

तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ॥३।२।५॥

तुन्दशोकयोः ७।२॥ परिमृजापनुदोः ६।२॥ स०—उभयत्र द्वन्द्वः ॥ अनु०—कः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इत्येतयोः कर्मोपपदयोः, परिपूर्वात् 'मृज' धातोः, अपपूर्वाच्च 'नुद' धातोः, यथासङ्ख्यं कः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—तुन्दं परिमार्ष्टि = तुन्दपरिमृज आस्ते । शोकम् अपनुदति = शोकापनुदः पुत्रो जातः ॥

भाषार्थः—[तुन्दशोकयोः] तुन्द तथा शोक कर्म उपपद रहते यथासङ्ख्य करके [परिमृजापनुदोः] परि पूर्वक मृज, तथा अप पूर्वक नुद धातु से क प्रत्यय होता है ॥ उदा०—तुन्दपरिमृज आस्ते (आलसी बैठता है)। शोकापनुदः पुत्रो जातः (शोक दूर करने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ) ॥

प्रे दाज्ञः ॥३।२।६॥

प्रे ७।१॥ दाज्ञः ५।१॥ स०—दाश्च ज्ञाश्च, दाज्ञाः, तस्मात्..... इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—कः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रपूर्वाभ्यां ददाति, जानाति इत्येताभ्यां धातुभ्यां कर्मण्युपपदे कः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—विद्यां प्रददाति = विद्याप्रदः । शास्त्राणि प्रकर्षेण जानातीति = शास्त्रप्रज्ञः । पथिप्रज्ञः ॥

भाषार्थः—[प्रे] प्र पूर्वक [दाज्ञः] दा तथा ज्ञा धातु से कर्म उपपद रहते क प्रत्यय होता है ॥ उदा०—विद्याप्रदः (विद्या को देनेवाला)। शास्त्रप्रज्ञः (शास्त्र को जानने वाला)। पथिप्रज्ञः (पथप्रदर्शक) ॥ पूर्ववत् उदाहरणों में दा तथा ज्ञा के आकार का लोप हो जायगा ॥

समि ख्यः ॥३।२।७॥

समि ७।१॥ ख्यः ५।१॥ अनु०—कः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—समपूर्वात् ख्याञ् धातोः कर्मण्युपपदे कः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—गां सञ्चष्टे = गोसंख्यः । अविसंख्यः ॥

भाषार्थः—कर्म उपपद रहते [समि] सम् पूर्वक [ख्यः] ख्याञ् धातु से क प्रत्यय होता है ॥ उदा०—गोसंख्यः (गौओं को गिनने वाला)। अविसंख्यः (भेड़ों को गिनने वाला) ॥ सिद्धि में आकार का लोप पूर्ववत् होगा ।

गापोष्टक् ॥३।२।८॥

गापोः ६।२॥ टक् १।१॥ स०—गाश्च पाश्च गापौ, तयोः = इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्मण्युपपदे गा, पा इत्येताभ्यां धातुभ्यां टक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शक्रं गायति =

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शक्रगः। साम गायति = सामगः। शक्रगी, सामगी। सुरापः, शीधुपः। सुरापी, शीधुपी ॥

भाषार्थः—कर्म उपपद रहते [*गापोः*] गा, तथा [टक्] टक् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—शक्रगः (इन्द्र का गान करने वाला)। सामगः (साम को गाने वाला)। सुरापः (सुरा को पीने वाला) शीधुपः (ईख का रस पीने वाला) शीधुपी ॥ टक् प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीलिङ्ग में टिड्ढाणञ् से ङीप् हो जायेगा ॥

हरतेरनुद्यमनेऽच् ॥३।२।९॥

हरतेः ५।१॥ अनुद्यमने ७।१॥ अच् १।१॥ सः—ष० नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ पुरुषार्थेन कार्याऽसम्पादनम् ॥ अर्थः—हरतेर्धातोः, अनुद्यमानात् कर्मण्युपपदेऽच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—भागं हरः। रिक्थहरः। अंशहरः ॥

भाषार्थः—[अनुद्यमने] अनुद्यमन अर्थ में वर्त्तमान धातु से कर्म उपपद रहते [अच्] अच् प्रत्यय होता है। भागहरः (अपने हिस्से को ले जाने वाला)। रिक्थहरः (धन ले जाने वाला) ॥ अंशहरः (अपना हिस्सा ले जाने वाला) ॥

यहाँ से 'हरतेः' की अनुवृत्ति ३।२।११ तक तथा अनुवृत्ति ३।२।१५ तक जायेगी ॥

वयसि च ॥३।२।१०॥

वयसि ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—हरतेः, अच्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—हरतेर्धातोः कर्मण्युपपदे, वयसि गम्यमाने अच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अस्थिहरः[1] क्षत्रियकुमारः[2] ॥

---

१. कुत्ते के हड्डी ले जाने से उसकी अवस्था की प्रतीति होती है वह मांस खाने योग्य हो गया है॥

२. यहाँ भी क्षत्रिय के कवच धारण करने से उसकी अवस्था की प्रतीति हो रही है, अर्थात् वह कवच धारण करने योग्य हो गया है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*वयसि*] वयस् = अवस्था, आयु गम्यमान हो तो, [च] कर्म उपपद रहते हृञ् धातु से अच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—श्वहरः श्वा (हड्डी ले जाने वाला कुत्ता)। कवचहरः क्षत्रियकुमारः (कवच धारण करने वाला क्षत्रियकुमार) ॥

आङि ताच्छील्ये ॥३।२।११॥

आङि ७।१॥ ताच्छील्ये ७।१॥ अनु०—हरतेः, अच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ तच्छीलस्य भावः, ताच्छील्यम् = तत्स्वभावता ॥ अर्थः—ताच्छील्ये गम्यमान आङ् पूर्वाद् हृञ्धातोः, कर्मण्युपपदेऽच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा० —फलानि आहरति = फलाहरः। पुष्पाहरः ॥

भाषार्थः—[*आङि*] आङ् पूर्वक हृञ् धातु से कर्म उपपद रहते, [*ताच्छील्ये*] ताच्छील्य = तत्स्वभावता (ऐसा उसका स्वभाव ही है) गम्यमान हो तो अच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—फलाहरः (फलों को लाने वाला)। पुष्पाहरः (पुष्पों को लाने वाला) ॥

अर्हः ॥३।२।१२॥

अर्हः ५।१॥ अनु०—अच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अर्ह 'पूजायाम्' अस्माद् धातोः कर्मण्युपपदेऽच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पूजाम् अर्हति = पूजार्हा। गन्धार्हा। मालार्हा। आदरार्हा ॥

भाषार्थः—[*अर्हः*] अर्ह पूजायाम् धातु से कर्म उपपद रहते 'अच्' प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पूजार्हा (पूजा के योग्य)। गन्धार्हा (सुगन्धित द्रव्य प्रयोग करने योग्य)। मालार्हा (माला डालने योग्य)। आदरार्हा (आदर के योग्य) ॥ स्त्रीलिङ्ग में सर्वत्र 'टाप्' प्रत्यय हो गया है, अण् प्रत्यय होता तो *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होता, अच् प्रत्यय का यही फल है ॥

स्तम्बकर्णयोः रमिजपोः ॥३।२।१३॥

स्तम्बकर्णयोः ७।२॥ रमिजपोः ६।२॥ स०—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अच्, सुपि धातोः, प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—स्तम्ब, कर्ण, इत्येतयोः सुबन्तयोरुपपदयोः, यथासङ्ख्यं रम जप इत्येताभ्यां धातुभ्या-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

मच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—स्तम्बे रमते = स्तम्बेरमः[1] कर्णे जपति = कर्णेजपः ॥

भाषार्थः—[*स्तम्बकर्णयोः*] स्तम्ब और कर्ण सुबन्त [*रमिजपोः*] रम तथा जप धातुओं से अच् प्रत्यय होता है। स्तम्बेरमः (हाथी) कर्णेजपः (जो कान में कुछ कहने वाला 'चुगलखोर') उदाहरण में *हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्* से सप्तमी विभक्ति का अलुक् हो गया है ॥ इस सूत्र में कर्म अकर्मक धातुओं के होने से नहीं सम्भव थी, सो 'सुपि' लगाया है ॥

शमि धातोः संज्ञायाम् ॥३।२।१४॥

शमि ७।१॥ धातोः ५।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ अत्र [illegible] तस्मात् प्रातिपदिकानुकरणत्वाद् विभक्तेरुत्पत्तिः। एवम् [illegible] स्थले बोध्यम् ॥ अनु०—अच्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अव्यय उपपदे धातुमात्रात् संज्ञायाम् विषयेऽच् प्रत्ययो भवति। शम् करोति = शङ्करः। शंभवः। शंवदः ॥

भाषार्थः—[*शमि*] शम् अव्यय के उपपद रहते [धातोः] मात्र से [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में अच् प्रत्यय होता है। शङ्करः (कल्याण करने वाला) शंभवः (कल्याण वाला) शंवदः (कल्याण की बातें करने वाला) ॥ इस सूत्र में शम् अव्यय है सो यहाँ अनुकरण में सप्तमी विभक्ति हुई है ॥

अधिकरणे शेतेः ॥३।२।१५॥

अधिकरणे ७।१॥ शेतेः ५।१॥ अनु०—अच्, सुपि, धातोः परश्च ॥ अर्थः—शीङ्धातोः, अधिकरणे सुबन्त उपपदे अच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०— खे शेते = खशयः। गर्त्ते शेते = गर्त्तशयः।

---

१. स्तम्ब घास को कहते हैं, जो घास में घूमने से सुख मानते हैं सो है। हाथी विशेषतया घूमने पर ही सुखी रहता है, सो हाथी को रमा रूढि रूप से कहते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[अधिकरणे] अधिकरण सुबन्त उपपद रहते [शेतेः] धातु से अच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—खशयः (आकाश में सोने = पक्षी)। गर्त्तशयः (गड्ढे में सोने वाला) ॥

यहाँ से 'अधिकरणे' की अनुवृत्ति ३।२।१६ तक जायेगी ॥

चरेष्टः ॥३।२।१६॥

चरेः ५।१॥ टः १।१॥ अनु०—अधिकरणे, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, च ॥ अर्थः—चरधातोरधिकरणे सुबन्त उपपदे टः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कुरुषु चरति = कुरुचरः। मद्रचरः। कुरुचरी। मद्रचरी ॥

भाषार्थः—अधिकरण सुबन्त उपपद रहते [चरेः] चर धातु से [टः] प्रत्यय होता है ॥ उदा०—कुरुचरः (कुरु देश में भ्रमण करने वाला)। मद्रचरः (मद्र देश में घूमने वाला)। कुरुचरी, मद्रचरी ॥ 'ट' इत् होने से स्त्रीलिङ्ग में *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होकर चरी आदि भी बनेगा ॥

यहाँ से 'टः' की अनुवृत्ति ३।२।२३ तथा 'चरेः' की ३।२।१७ तक जायेगी ॥

भिक्षासेनादायेषु च ॥३।२।१७॥

भिक्षासेनादायेषु ७।३॥ च अ०॥ स०—भिक्षा च सेना च, आदाय च, भिक्षा·····दायास्तेषु·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—चरेष्टः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भिक्षा, सेना, आदाय, इत्येतेषु सुबुपपदेषु चरधातोः टः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—भिक्षया चरति, भिक्षाचरः। सेनया चरति, सेनाचरः। आदाय चरति = आदायचरः ॥

भाषार्थः—[भिक्षासेनादायेषु] भिक्षा, सेना, आदाय शब्द उपपद रहते [च] भी चर धातु से ट प्रत्यय होता है ॥ ऊपर सूत्र में अधिकरण सुबन्त उपपद रहते ट प्रत्यय किया था, यहाँ सामान्य कोई सुबन्त उपपद रहते कह दिया है ॥ उदा०—भिक्षाचरः (भिक्षा के लिये घूमता है)। सेनाचरः (सेना के हेतु से घूमता है)। आदाचरः (ले करके घूमता है)। सिद्धियाँ तो सर्वत्र कुम्भकारः के समान

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ही समझते जायें, केवल अनुबन्ध विशेष देखकर, वृद्धि पर ही ध्यान देना है ॥

पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः ॥३।२।१८॥

पुरोऽग्रतोऽग्रेषु ७।३॥ सर्त्तेः ५।१॥ स०—पुरश्च, अग्र पुरोऽग्रतोऽग्रयस्तेषु····· इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—टः, कर्म परश्च ॥ अर्थः—पुरस्, अग्रतस्, अग्रे इत्येतेषूपपदेषु सृ प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पुरः सरति = पुरस्सरः। अग्रतः तस्सरः, अग्रेसरः ॥

भाषार्थः—[पुरोऽग्रतोऽग्रेषु] पुरस्, अग्रतस्, अ उपपद रहते [सर्त्तेः] सृ धातु से ट प्रत्यय होता है॥ (आगे चलने वाला)। अग्रतस्सरः (आगे चलने वा (आगे जाने वाला) ॥

यहाँ से 'सर्त्तेः' की अनुवृत्ति ३।२।१९ तक जायेगी।

पूर्वे कर्त्तरि ॥३।२।१९॥

पूर्वे ७।१॥ कर्त्तरि ७।१॥ अनु०—सर्त्तेः, टः, सुपि परश्च ॥ अर्थः—कर्त्तृवाचिनि पूर्वसुबन्त उपपदे सृ भवति ॥ उदा०—पूर्वः सरति, पूर्वसरः ॥

भाषार्थः—[कर्त्तरि] कर्त्तावाची [पूर्वे] पूर्व सुबन्त उप धातु से ट प्रत्यय होता है। पूर्व शब्द प्रथमान्त होने है ॥ उदा०—पूर्वसरः (पहला सरकने वाला) ॥

कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ॥३।२।२०॥

कृञः ५।१॥ हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ७।३॥ स०—हे ल्यञ्च, आनुलोम्यञ्च हेतुताच्छील्यानुलोम्यानि, तेषु अनु०—टः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थ ताच्छील्यम् = तत्स्वभावता, आनुलोम्यम् = अनुकूलता कर्मण्युपपदे कृञ्धातोः 'टः' प्रत्ययो भवति ॥ उदा० अविद्या, यशस्करी विद्या। ताच्छील्ये—धर्मं करोति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

आनुलोम्ये—वचनं करोति = वचनकरः पुत्रः आज्ञाकरः शिष्यः,
रः ॥

भाषार्थः—कर्म उपपद रहते [कृञः] कृञ् धातु से [हेतु·····षु] ताच्छील्य, आनुलोम्य गम्यमान हो तो ट प्रत्यय होता है ॥ टित् से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् हो जाता है ॥ उदा०—हेतु में—शोककरी अविद्या क करने वाली अविद्या)। यशस्करी विद्या (यश देने वाली विद्या)। ील्य में—धर्मकरः (धर्म करने के स्वभाव वाला)। अर्थकरः (धन ने के स्वभाव वाला)। आनुलोम्य में—वचनकरः पुत्रः (अनुकूल बोलने वाला पुत्र)। आज्ञाकरः शिष्यः (आज्ञाकारी शिष्य)। प्रैषकरः ा के अनुकूल करने वाला) ॥

यहाँ से 'कृञः' की अनुवृत्ति ३।२।२४ तक जायेगी ॥

दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलि-
पिलिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबा-
ह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु ॥३।२।२१॥

दिवाविभा·····धनुररुष्षु ७।३॥ स०—दिवाविभा० इत्यत्रेतरेतर- ॥ अनु०—कर्मणि, सुपि, इति च द्वयमभिसम्बध्यतेऽत्र यथायथम्। टः, धातोः प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—दिवा, विभा, निशा, प्रभा, , कार, अन्त, अनन्त, आदि, बहु, नान्दी, किम्, लिपि, लिबि, बलि, कर्तृ, चित्र, क्षेत्र, संख्या, जङ्घा, बाहु, अहन्, यत्, तत्, धनुस्, इत्येतेषु सुबन्तेषु, अथवा कर्मसूपपदेषु कृञ्धातोः 'ट' प्रत्ययो भवति ॥ ०—दिवा करोति = दिवाकरः। विभां करोति = विभाकरः। निशां ति = निशाकरः। प्रभाकरः। भासं करोति = भास्करः। कारकरः। करः। अनन्तकरः। आदिकरः। बहुकरः। नान्दीकरः। किङ्करः। करः। लिबिकरः। बलिकरः। भक्तिकरः। कर्तृकरः। चित्रकरः। करः। सङ्ख्या—एककरः। द्विकरः। त्रिकरः। जङ्घाकरः। बाहुकरः। करः। यत्करः। तत्करः। धनुष्करः। अरुष्करः ॥

भाषार्थः—[दिवावि·····रुष्षु] दिवा, विभा, निशा इत्यादि सुबन्त वा कर्म उपपद रहते कृञ् धातु से ट प्रत्यय होता है ॥ उदा०—दिवा-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

करः (सूर्य)। विभाकरः (सूर्य) निशाकरः (चन्द्रमा) भास्करः(सूर्य) कारकरः(काम करने वाला)। अन्तकरः(क अनन्तकरः (अनन्त कार्य करने वाला) आदिकरः (आर बहुकरः(बहुत करने वाला)। नान्दीकरः (मङ्गलाचरण कर (नौकर)। लिपिकरः (प्रतिलिपि करने वाला)। लिविक वाला)। बलिकरः (बलि देने वाला)। भक्तिकरः (भक्ति क करः (कर्त्ता को बनाने वाला)। चित्रकरः (चित्र बनाने (किसान)। सङ्ख्यावाची—एककरः (एक बनाने वाला)। जङ्घाकरः (दौड़ने वाला)। बाहुकरः (पुरुषार्थी)। अहस्क (जिसको करने वाला)। तत्करः (उसको करने वाला)। अथवा धनुष बनाने वाला)। अरुष्करः (घाव बनाने वा में अहन् के नकार को रेफ *रोऽसुपि* (८।२।६९) से होक *खरवसानयोर्वि०* से विसर्जनीय हो गया है, पुनः *अतः कृकमि०* (८।३।४६) से सत्व होकर अहस्करः बना है अरुस् के स् को षत्व *नित्यं समासेऽनु०* (८।३।४५) से पूर्ववत् ही है ॥

कर्मणि भृतौ ॥३।२।२२॥

कर्मणि ७।१॥ भृतौ ७।१॥ अनु०—कृञः, टः, कर्मणि परश्च ॥ अर्थः—कर्मवाचिनि कर्मशब्द उपपदे कृञ् भवति, भृतौ गम्यमानायाम् ॥ उदा०—कर्म करोतीति

भाषार्थः—कर्मवाची [*कर्मणि*] कर्म शब्द उपपद रहे ट प्रत्यय होता है [*भृतौ*] भृति (वेतन) गम्यमान हो 'कर्मणि' शब्द का स्वरूप से ग्रहण है ॥ उदा०—कर्म

न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु

न अ० ॥ शब्दश्लोक·····पदेषु ७।३॥ स०—शब्दश्ल तरद्वन्द्वः ॥ अनु०—कृञः, टः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, शब्द, श्लोक, कलह, गाथा, वैर, चाटु, सूत्र, मन्त्र, पद पदेषु कृञ् धातोष्टः प्रत्ययो न भवति ॥ कृञो हेतु टप्रत्यये प्राप्ते प्रतिषिध्यते, तत औत्सर्गिकोऽण् (३।२।१

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दं करोति = शब्दकारः। श्लोकं करोति = श्लोककारः। कलहकारः। ाकारः। वैरकारः। चाटुकारः। सूत्रकारः। मन्त्रकारः। पदकारः॥

भाषार्थः—[शब्द·····पदेषु] शब्द श्लोक आदि कर्म उपपद रहते ातु से ट प्रत्यय [न] नहीं होता है॥ हेत्वादि अर्थों में 'ट' प्रत्यय था प्रतिषेध कर दिया। उसके प्रतिषेध हो जाने पर कर्मण्यण् से सर्गिक 'अण्' हो जाता है॥ उदा०—शब्दकारः (शब्द बनाने वाला, करण)। श्लोककारः (श्लोक बनाने वाला)। कलहकारः (झगड़ालू)। ाकारः (आख्यायिका बनाने वाला)। वैरकारः (शत्रु)। चाटुकारः पलूस)। सूत्रकारः (सूत्र बनाने वाला)। मन्त्रकारः (मन्त्र द्रष्टा)। कारः (पद विभाग करने वाला)॥

स्तम्बशकृतोरिन् ॥३।२।२४॥

स्तम्बशकृतोः ७।२॥ इन् १।१॥ स०—स्तम्बश्च शकृत् च, स्तम्बशकृतौ, ····· इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—कृञः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ —स्तम्ब, शकृत् इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः कृञ्धातोरिन् प्रत्ययो ति॥ उदा०—स्तम्बकरिः, शकृत्करिः॥

भाषार्थः—[स्तम्बशकृतोः] स्तम्ब तथा शकृत् कर्म उपपद हों तो कृञ् से [इन्] इन् प्रत्यय होता है॥ व्रीहिवत्सयोरिति वक्तव्यम् (वा० २४) इस वार्त्तिक से व्रीहि और वत्स कहना हो तभी यथाक्रम से प्रत्यय होगा॥ उदा०—स्तम्बकरिः (धान विशेष)। शकृत्करिः ड़ा)॥

यहाँ से 'इन्' की अनुवृत्ति ३।२।२७ तक जायेगी॥

हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ ॥३।२।२५॥

हरतेः ५।१॥ दृतिनाथयोः ७।२॥ पशौ ७।१॥ अनु०—इन्, कर्मणि, ः, प्रत्ययः, परश्च॥ स०—दृति० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अर्थः—दृति इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोर्हृञ्धातोः पशौ कर्त्तरि इन् प्रत्ययो ति॥ उदा०—दृतिं हरति = दृतिहरिः पशुः। नाथहरिः पशुः॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*दतिनाथयोः*] दति तथा नाथ कर्म उपपद हृञ् धातु से [*पशौ*] पशु कर्त्ता होने पर इन् प्रत्यय होता दतिहरिः पशुः (मशक ले जाने वाला पशु)। नाथहरिः पु

फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च ॥३।२।२६॥

फलेग्रहिः १।१॥ आत्मम्भरिः १।१॥ च अ०॥ अनु धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—फलेग्रहिः, आत्मम्भरिः इन्प्रत्ययान्तौ निपात्येते। फलशब्दस्योपपदस्यैकारान्तः प्रत्ययो निपात्यते। फलानि गृह्णाति फलेग्रहिर्वृक्षः। आत्मनः स्य मुमागमो डुभृञ् धातोरिन् प्रत्ययश्च निपात्यते। आत्म आत्मम्भरिः ॥

भाषार्थः—[*फलेग्रहिः*] फलेग्रहि [च] और [आत्म म्भरिः शब्द इन् प्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं॥ शब्द उपपद रहते फल को एकारान्तत्व तथा इन् प्रत्य तथा आत्मम्भरिः में आत्मन् आगम तथा डुभृञ् धातु से इन् प्रत्यय निपातन उदा०—फलेग्रहिर्वृक्षः (फलों को ग्रहण करने वाला वृक्ष) (जो अपना भरण पोषण करता है) ॥

छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् ॥३।२।२७॥

छन्दसि ७।१॥ वनसनरक्षिमथाम् ६।३॥ स०—वनसन रक्षश्च द्वन्द्वः ॥ अनु०—इन्, कर्मणि धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ सम्भक्तौ, रक्ष पालने, मथि विलोडने इत्येतेभ्यो धातुभ्य छन्दसि विषय इन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ब्रह्मवनिं (य० १।१७)। गोसनिः (य० ८।१२)। यौ पथिरक्षी धातौ हविर्मथीनाम् (ऋ०७।१०४।२१) ॥

भाषार्थः—[*छन्दसि*] वेद विषय में [वनसनरक्षिम रक्ष, मथि इन धातुओं से कर्म उपपद रहते इन् प्रत्य धात्वादेः षः सः (६।१।६२) से 'षण' धातु के 'ष' को 'स' अब रषाभ्यां० (८।४।१) से जो ष के योग से णत्व हुआ था

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

जाने से हट गया तो सन धातु बन गई। शेष सिद्धि में कुछ भी ष नहीं है॥

एजेः खश् ॥३।२।२८॥

एजेः ५।१॥ खश् १।१॥ अनु०—कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ :—'एजृ कम्पने' इत्येतस्मात् (एयन्तात्) धातोः कर्मण्युपपदे खश् यो भवति॥ उदा०—अङ्गमेजयति=अङ्गमेजयः। जनान् एज- -जनमेजयः। वृक्षमेजयः॥

भाषार्थः—[एजेः] एजृ कम्पने (ण्यन्त) धातु से कर्म उपपद रहते श्] खश् प्रत्यय होता है॥

यहाँ से 'खश्' की अनुवृत्ति ३।२।३७ तक जायेगी॥

नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः ॥३।२।२९॥

नासिकास्तनयोः ७।२॥ ध्माधेटोः ६।२॥ स०—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ ०—खश्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—नासिका, स्तन तयोः कर्मणोरुपपदयोः ध्मा, धेट् इत्येतयोर् धात्वोः खश् प्रत्ययो ति॥ उदा०—नासिकन्धमः। नासिकन्धयः। स्तनन्धयः॥

भाषार्थः—[नासिकास्तनयोः] नासिका तथा स्तन कर्म उपपद रहते ाधेटोः] ध्मा तथा धेट् धातुओं से खश् प्रत्यय होता है॥ यथा- ल्य यहाँ इष्ट नहीं है, अतः नासिका उपपद रहते ध्मा तथा धेट् ी धातुओं से प्रत्यय होगा, पर स्तन उपपद रहते केवल धेट् से ही ा है॥

यहाँ से 'ध्माधेटोः' की अनुवृत्ति ३।२।३० तक जायेगी॥

नाडीमुष्टयोश्च ॥३।२।३०॥

नाडीमुष्टयोः ७।२॥ च अ०॥ स०—नाडी च मुष्टिश्च, नाडीमुष्टयौ, ...इतरेतरद्वन्द्वः। अनु०—ध्माधेटोः खश्, कर्मणि, धातोः, त्ययः, परश्च॥ अर्थः—ध्मा, धेट् इत्येताभ्यां धातुभ्यां नाडीमुष्टयोः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कर्मणोरुपपदयोः खश् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—नाडिन्धयः । मुष्टिन्धमः । मुष्टिन्धयः ॥

भाषार्थः—[नाडीमुष्ट्योः] नाडी और मुष्टि कर्म उपपद रहते भी ध्मा तथा धेट् धातुओं से खश् प्रत्यय होता है ॥ यहां भी इष्ट नहीं है ॥ उदा०—नाडिन्धमः (नाडी को फूंकने वाला) । नाडिन्धयः (नाडी को पीने वाला) । मुष्टिन्धमः (मुट्ठी को फूंकने वाला) । मुष्टिन्धयः (मुट्ठी को पीने वाला) ॥ पूर्ववत् ही मुम् का आगम और धम आदेश सिद्धि में समझें ॥

उदि कूले रुजिवहोः ॥३।२।३१॥

उदि ७।१॥ कूले ७।१॥ रुजिवहोः ६।२॥ स०—रुजिश्च वहश्च रुजिवहौ, तयोः द्वन्द्वः ॥ अनु०—खश्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उत्पूर्वाभ्यां रुजि, वह इत्येताभ्यां धातुभ्यां कूले कर्मण्युपपदे खश् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कूलमुद्रुजति = कूलमुद्रुजो रथः । कूलमुद्वहः ।

भाषार्थः—[उदि] उत् पूर्वक [रुजिवहोः] रुज् तथा वह धातु से [कूले] कूल कर्म उपपद रहते खश् प्रत्यय होता है ॥ कूलमुद्रुजो रथः (किनारों को काटने वाला = रथ) । कूलमुद्वहः (किनारों को प्राप्त कराने वाला) । मुम् का आगम पूर्ववत् हो ही जायेगा । शित् होने से सर्वत्र शप् होकर अतो गुणे (६।१।९७) से पररूप जायेगा । रुज् धातु तुदादि गण की है, सो उससे शप् न होकर 'श' प्रत्यय होगा ॥

वहाभ्रे लिहः ॥३।२।३२॥

वहाभ्रे ७।१॥ लिहः ५।१ ॥ स०—वहश्च अभ्रश्च, वहाभ्रौ, तयोः समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—खश्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—वह, अभ्र इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः लिहधातोः खश् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—वहं लेढि = वहंलिहो गौः । अभ्रंलिहः ॥

भाषार्थः—[वहाभ्रे] वह तथा अभ्र कर्म उपपद रहते लिह धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—वहंलिहो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वाली गौ)। अभ्रंलिहः (बादल तक पहुँचने वाला = वायु)॥
त् मुम् आगम होकर ही सिद्धियाँ जानें॥

परिमाणे पचः ॥३।२।३३॥

परिमाणे ७।१॥ पचः ५।१॥ अनु०—खश्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, च॥ अर्थः—परिमाणं प्रस्थादिः। परिमाणवाचिनि कर्मण्युपपदे पच-धातोः खश् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—प्रस्थं पचति = प्रस्थंपचा स्थाली। म्पचः। खारिम्पचः कटाहः॥

भाषार्थः—[परिमाणे] परिमाणवाची कर्म उपपद हो तो, [पचः] धातु से खश् प्रत्यय होता है॥ प्रस्थ द्रोणादि परिमाणवाची शब्द उदा०—प्रस्थंपचा स्थाली (सेर भर अन्न पका सकने वाली, ोई)। द्रोणम्पचः (द्रोण भर पका सकने वाला बर्त्तन)। खारिम्पचः हः (खारी भर पका सकने वाली कड़ाही)॥

यहाँ से 'पचः' की अनुवृत्ति ३।२।३४ तक जायेगी॥

मितनखे च ॥३।२।३४॥

मितनखे ७।१॥ च अ०॥ स०—मितं च नखं च, मितनखं, तस्मिन् समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—पचः, खश्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, च॥ अर्थः—मित, नख इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः पचधातोः खश् यो भवति॥ उदा०—मितं पचति = मितम्पचा ब्राह्मणी। नखम्पचा यवागूः॥

भाषार्थः—[मितनखे] मित और नख कर्म उपपद हों तो [च] भी धातु से खश् प्रत्यय होता है॥ उदा०—मितम्पचा ब्राह्मणी (मित अन्न पकाने वाली ब्राह्मणी)। नखम्पचा यवागूः (गरम-गरम ी लप्सी)॥

विध्वरुषोस्तुदः ॥३।२।३५॥

विध्वरुषोः ७।२॥ तुदः ५।१॥ स०—विधुश्च अरुश्च, विध्वरुषौ, ... इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—खश्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परश्च ॥ अर्थः—विधु अरुस् इत्येतयोः कर्मणोरुपपदे खश् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—विधुन्तुदः । अरुन्तुदः ॥

भाषार्थः—[विध्वरुषोः] विधु और अरुस् कर्म उपपद तुद धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—विधुन्तुदः व्यथित करने वाला, कोई ग्रह आदि)। अरुन्तुदः अरुन्तुद में पूर्ववत् मुम् आगम होकर 'अरु मुम् स् तुद् म् स् तुद् अ अ' रहा पुनः *संयोगान्तस्य* लोपः (८।२।२३) लोप होकर अरुम् तुद् अ अ रहा । *मोऽनुस्वारः* (८।३।२३) *ययि०* (८।४।५७) लगकर अरुन्तुदः बन गया ॥

असूर्यललाटयोर्दृशितपोः ॥३।२।३६॥

असूर्यललाटयोः ७।२॥ दृशितपोः ६।२॥ स०—दृ च असूर्यललाटौ तयोः···इतरेतरद्वन्द्वः । दृशिश्च त तयोः, दृशितपोः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—खश् प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—असूर्य ललाट इत्येतयो यथासंख्यं दृशि तप इत्येताभ्यां धातुभ्यां खश् प्रत्ययो भ असूर्यम्पश्या राजदाराः । ललाटन्तप आदित्यः ॥

भाषार्थः—[असूर्यललाटयोः] असूर्य तथा ललाट तो यथासङ्ख्य करके [दृशितपोः] दृशिर् तथा त खश् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—असूर्यम्पश्या राजदाराः भी नहीं देखतीं ऐसी पर्देनशीन राजाओं की स्त्रियाँ)। आदित्यः (माथे को तपा देने वाला सूर्य) ॥ सिद्धि में होने से सार्वधातुक संज्ञा होकर दृश् को *पाघ्राध्मा०* (अ आदेश भी हो जाता है, शेष पूर्ववत् ही है ॥

उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च ॥३।२।३७॥

उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाः १।३॥ च अ० ॥ स०—उग्र तरद्वन्द्वः ॥ अनु०—खश्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ इरम्मद, पाणिन्धम इत्येते शब्दाः खशप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पश्यतीति उग्रम्पश्यः, उग्रम्पश्येन सुग्रीवस्तेन भ्रात्रा निराकृतः। इरया
ति = इरम्मदः। पाणयो ध्मायन्ते एष्विति पाणिन्धमाः पन्थानः॥

भाषार्थः—[उग्र·····धमाः] उग्रम्पश्य, इरम्मद, तथा पाणिन्धम ये
द [च] भी खश् प्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं॥ उदा०—
म्पश्यः (घूर कर देखने वाला)। इरम्मदः (मेघ की ज्योति, बिजली)
न्धमाः पन्थानः (अन्धकार पूर्ण ऐसे रास्ते जहाँ जीव जन्तुओं से
ने के लिए ताली बजा कर या आवाज करके चला जाता है)।
न्धम में अधिकरण कारक में करणाधिक० (३।३।११७) से ल्युट् प्राप्त
अतः खश् निपातन कर दिया है। शेष मुम् आगमादि सिद्धि में
वत् हैं॥

प्रियवशे वदः खच् ॥३।२।३८॥

प्रियवशे ७।१॥ वदः ५।१॥ खच् १।१॥ स०—प्रियश्च वशश्च,
वशं, तस्मिन्·····समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—कर्मणि, धातोः,
यः, परश्च॥ अर्थः—प्रिय वश इत्येतयोः कर्मोपपदयोर्वदधातोः
प्रत्ययो भवति॥ उदा०—प्रियं वदतीति प्रियंवदः। वशंवदः॥

भाषार्थः—[प्रियवशे] प्रिय तथा वश कर्म उपपद हों तो [वदः] वद
से [खच्] खच् प्रत्यय होता है॥ सिद्धि परि० १।३।८ में देखें॥

यहाँ से 'खच्' की अनुवृत्ति ३।२।४७ तक जायेगी॥

द्विषत्परयोस्तापेः ॥३।२।३९॥

द्विषत्परयोः ७।२॥ तापेः ५।१॥ स०—द्विषच्च परश्च, द्विषत्परौ,
·····इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—खच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः,
॥ अर्थः—द्विषत्, पर इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः तपः (ण्यन्तात्)
ः खच्प्रत्ययो भवति॥ उदा०—द्विषन्तं तापयति = द्विषन्तपः।
तपः॥

भाषार्थः—[द्विषत्परयोः] द्विषत् तथा पर कर्म उपपद हों तो ण्यन्त
पेः] तप धातु से खच् प्रत्यय होता है॥ 'तापेः' णिजन्त निर्देश है
णिजन्त तप धातु से ही खच् प्रत्यय होता है॥ उदा०—द्विषन्तपः
ुओं को तपाने = जलाने वाला) परन्तपः (दूसरों को तपाने वाला)॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

द्विष मुम् त् तप् णिच् खच् = 'द्विष म् त् तप् इत्' गान्तस्य० (८।२।२३) से त् का लोप तथा रोरनिटि (८।३,
का लोप होकर द्विषन्तपः बन गया है ॥

वाचि यमो व्रते ॥३।२।४०॥

वाचि ७।१॥ यमः ५।१॥ व्रते ७।१॥ अनु०—खच्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—वाक्शब्दे कर्मण्युपपदे यमधातो माने खच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—वाचंयम आस्ते ॥

भाषार्थः—[वाचि] वाच् कर्म उपपद हो तो [यमः] [व्रते] व्रत गम्यमान होने पर खच् प्रत्यय होता है ॥ यम आस्ते (वाणी को संयम में करने वाला व्रती बैठा है) पुरन्दरौ च (६।३।६७) से निपातन से मुम् आगम यहाँ पूर्ववत् है ॥

पूःसर्वयोर्दारिसहोः ॥३।२।४१॥

पूःसर्वयोः ७।२॥ दारिसहोः ६।२॥ स०—पूश्च तयोः.....इतरेतरद्वन्द्वः । दारि० इत्यत्रापि, इतरेतरद्वन्द्वः खच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पूर् कर्मोपपदयोः, यथासंख्यं दारि सह इत्येताभ्यां धातुभ्यां भवति ॥ उदा०—पुरं दारयति = पुरन्दरः । सर्वसहः ॥

भाषार्थः—[पूःसर्वयोः] पुर्, सर्व ये कर्म उपपद हों तो दृ विदारणे, ण्यन्त धातु से तथा सह धातु से यथासंख्य प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पुरन्दरः (किले को तोड़ने वाला) (सब सहन करने वाला) ॥ वाचंयमपुरन्दरौ च (६।३।६७) शब्द में मुम् आगम निपातन किया है । सर्वसहः में (६।३।६५) से अजन्त मानकर मुम् आगम हो ही जाता (६।४।५१) से णिच् का लोप पुरन्दरः में पूर्ववत् हो जाता

सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः ॥३।२।४२॥

सर्वकूलाभ्रकरीषेषु ७।३॥ कषः ५।१॥ स०—सर्वश्च द्वन्द्वः ॥ अनु०—खच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अभ्र, करीष इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु कषधातोः खच्प्रत्ययो भवति ॥ —सर्वं कषति = सर्वंकषः खलः । कूलंकषा नदी । अभ्रंकषो गिरिः । कषा वात्या ॥

भाषार्थः—[सर्वकूलाभ्रकरीषेषु] सर्व, कूल, अभ्र, करीष ये कर्म रहते [कषः] कष धातु से खच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—सर्वंखलः (सबको पीड़ा देनेवाला = दुष्ट) । कूलंकषा नदी (किनारे तोड़ने वाली नदी) । अभ्रंकषो गिरिः (गगनचुम्बी पर्वत) । करीषंकषा (सूखे गोबर को भी उड़ा ले जाने वाली आँधी) ॥

मेघर्त्तिभयेषु कृञः ॥३।२।४३॥

मेघर्त्तिभयेषु ७।३॥ कृञः ५।१॥ स०—मेघश्च ऋतिश्च भयञ्च, र्त्तिभयानि, तेषु..... इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—खच्, कर्मणि, धातोः, यः, परश्च ॥ अर्थः—मेघ, ऋति, भय इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु कृञ् : खच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मेघं करोति = मेघंकरः । ऋतिं-भयंकरः ॥

भाषार्थः—[मेघर्त्तिभयेषु] मेघ, ऋति, भय ये कर्म उपपद हों तो ः] कृञ् धातु से खच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—मेघंकरः (बादल वाला) । ऋतिंकरः (स्पर्धा करने वाला) । भयंकरः (भीषण) ॥

यहाँ से 'कृञः' की अनुवृत्ति ३।२।४४ तक जायेगी ॥

क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ॥३।२।४४॥

क्षेमप्रियमद्रे ७।१॥ अण् १।१॥ च अ० ॥ स०—क्षेमश्च प्रियश्च च क्षेमप्रियमद्रं, तस्मिन्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—कृञः, खच्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—क्षेम, प्रिय, मद्र इत्येतेषु कर्म-देषु कृञ्धातोः अण् प्रत्ययो भवति चकारात् खच् च ॥ उदा०—करोति = क्षेमकारः, क्षेमंकरः । प्रियकारः, प्रियंकरः । मद्रकारः, रः ॥

भाषार्थः—[क्षेमप्रियमद्रे] क्षेम, प्रिय, मद्र ये कर्म उपपद रहते कृञ् से [अण्] अण् प्रत्यय होता है, तथा [च] चकार से खच् भी होता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

है ॥ उदा०—क्षेमकारः (कुशलता करने वाला) क्षेमंकरः। प्रियंकरः (प्रिय करने वाला) प्रियंकरः। मद्रकारः (भला करने वाला) मद्रंकरः। इन में वृद्धि तथा खच् पक्ष में मुम् आगम होकर पूर्ववत् ही है।

आशिते भुवः करणभावयोः ॥३।२।४५॥

आशिते ७।१॥ भुवः ५।१॥ करणभावयोः ७।२॥ सः-इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०-खच्, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अन्वयः-सुबन्त उपपदे भूधातोः करणे, भावे चार्थे खच् प्रत्ययो भवति कृत् (३।४।६७) इत्यनेन कर्त्तरि प्राप्ते, करणे भावे च॥ उदा०—आशितः = तृप्तो भवत्यनेन, आशितंभवः ओदनः (जिसके आशितस्य भवनम् = आशितंभवं वर्त्तते ॥

भाषार्थः—[*आशिते*] आशित सुबन्त उपपद हो तो [भुवः] से [*करणभावयोः*] करण और भाव में खच् प्रत्यय होता कृत् से कर्त्ता में ही खच् प्रत्यय प्राप्त था, अतः करण और कर दिया है ॥ उदा०—आशितंभवः ओदनः (जिसके जाता है ऐसा चावल)। भाव में—आशितंभवं वर्त्तते रहा है)॥

संज्ञायां भृतृवृजिधारिसहितपिदमः ॥३।२।४६॥

संज्ञायाम् ७।१॥ भृतृवृजिधारिसहितपिदमः ५।१॥ सः-वृश्च जिश्च धारिश्च सहिश्च तपिश्च दम् च, भृतृ···· समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—खच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, अर्थः—कर्मण्युपपदे भृ, तृ, वृ, जि, धारि, सहि, तपि, दमि धातुभ्यः खच् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां विषये ॥ उदा०—विश्वम्भरः परमेश्वरः। रथन्तरं साम। स्वयं वृणुते = स्वयंवरः। शत्रुं जयति = शत्रुञ्जयः। युगं धारयति = युगन्धरः। सहः। शत्रुं तपति = शत्रुंतपः। अरिं दाम्यति = अरिंदमः।

भाषार्थः—[*संज्ञायाम्*] संज्ञा गम्यमान हो तो, [*भृतृ·····दमः*] भृ, तृ, वृ, जि, धारि, सहि, तपि, दमि खच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—विश्वम्भरः परमेश्वरः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वाला = परमेश्वर)। रथन्तरं साम (साम गान विशेष)। स्वयंवरा (स्वयं पति का वरण करने वाली कन्या)। शत्रञ्जयः (हाथी)। युग- (पर्वत) शत्रुंसहः (शत्रु को सहन करने वाला)॥ शत्रुंतपः (शत्रु पाने वाला)। अरिंदमः (शत्रु का दमन करने वाला)॥ सिद्धियां न् हैं। धृ धातु का ण्यन्त से निर्देश किया है अतः ण्यन्त से ही होगा, पुनः णिच् का *णेरनिटि* (५।४।५१) से लोप हो जायेगा॥

यहाँ से '*संज्ञायाम्*' की अनुवृत्ति ३।२।४७ तक जायेगी॥

गमश्च ॥३।२।४७॥

गमः ५।१॥ च अ०॥ अनु०—संज्ञायाम्, खच्, सुपि, धातोः, यः, परश्च॥ अर्थः—संज्ञायां गम्यमानायां कर्मण्युपपदे गम धातोः प्रत्ययो भवति॥ उदा०—सुतं गच्छति = सुतङ्गमः॥

भाषार्थः—संज्ञा गम्यमान होने पर कर्म उपपद रहते [गमः] गम से [च] भी खच् प्रत्यय होता है॥ उदा०—सुतङ्गमः (यह किसी क विशेष का नाम है)॥

यहाँ से '*गमः*' की अनुवृत्ति ३।२।४८ तक जायेगी॥

अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः ॥३।२।४८॥

अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु ७।३॥ डः १।१॥ स०—अन्तश्च, अत्यन्तं अध्वा च, दूरं, च पारश्च, सर्वश्च, अनन्तश्च, अन्त···तः, तेषु··· तरद्वन्द्वः॥ अनु०—गमः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ —अन्त, अत्यन्त, अध्व, दूर, पार, सर्व, अनन्त इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु धातोर्डः प्रत्ययो भवति॥ उदा०—अन्तं गच्छति = अन्तगः। अत्य- । अध्वगः। दूरगः। पारगः। सर्वगः। अनन्तगः॥

भाषार्थः—[अन्ता·····षु] अन्त, अत्यन्त, अध्व इत्यादि कर्म उपपद गम धातु से [डः] ड प्रत्यय होता है॥ उदा०—अन्तगः (अन्त को होने वाला)। अत्यन्तगः (अत्यन्त जाने वाला)। अध्वगः (रास्ते में ने वाला)। दूरगः (दूर जाने वाला)। पारगः (पार जाने वाला)। सर्वगः को प्राप्त होने वाला)। अनन्तगः (अनन्त को प्राप्त होने वाला)॥ प्रत्यय के डित् होने से *डित्यभस्याप्यनुबन्धकरणसामर्थ्यात्* (वा०६।४।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

१४३) इस भाष्य वार्त्तिक से गम धातु के टि भाग (अ
लोप हो जायेगा, शेष सिद्धि में कुछ भी विशेष नहीं है।

यहाँ से 'डः' की अनुवृत्ति ३।२।५० तक जायेगी॥

आशिषि हनः ॥३।२।४९॥

आशिषि ७।१॥ हनः ५।१॥ अनु०—डः, कर्मणि, धातोः,
अर्थः—आशिषि गम्यमाने कर्मण्युपपदे हनधातोर्डः प्र
उदा०—शत्रून् वध्यात् = शत्रुहस्ते पुत्रो भूयात्। दुखहन्

भाषार्थः—[आशिषि] आशीर्वचन गम्यमान होने
धातु से कर्म उपपद रहते ड प्रत्यय होता है॥ उदा०—
शत्रुहस्ते पुत्रो भूयात् (तेरा पुत्र शत्रु को मारने वाला
भूयाः (तुम दुःख को नष्ट करने वाले बनो)। यहाँ भी
पूर्ववत् हन् धातु के टि भाग का लोप हो जायेगा॥

यहाँ से 'हनः' की अनुवृत्ति ३।२।५५ तक जायेगी॥

अपे क्लेशतमसोः ॥३।२।५०॥

अपे ७।१॥ क्लेशतमसोः ७।२॥ स०—क्लेशश्च, तम
मसी तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—हनः, डः,
प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—क्लेश, तमस् इत्येतयोः कर्मो
पूर्वात् हनधातोर्डः प्रत्ययो भवति॥ उदा०—क्लेशापहः पु

भाषार्थः—[क्लेशतमसोः] क्लेश तथा तमस् कर्म उ
अप पूर्वक हन धातु से ड प्रत्यय होता है॥ उदा०—
(क्लेश को दूर करने वाला पुत्र) तमोपहः (सूर्यः)॥ यहाँ भी
लोप समझें। तमस् के 'स्' को ससजुषो रुः (८।२।६६) से
बना, पुनः अतो रोर० (६।१।१०९) से र् को 'उ' हो
(६।१।८४) से पररूप होकर 'तमो अपहः' बना। एङः पदा
से 'अपहः' के अकार का भी पररूप होकर तमोपहः बना
सिद्धि पूर्ववत् ही है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कुमारशीर्षयोर्णिनिः ॥३।२।५१॥

कुमारशीर्षयोः ७।२॥ णिनिः १।१॥ स०—कुमारश्च शीर्षश्च, कुमार-तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः। अनु०—हनः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, च ॥ अर्थः—कुमार, शीर्ष इत्येतयोः कर्मोपपदयोः हनधातोः णिनिः यो भवति ॥ उदा०—कुमारघाती, शीर्षघाती ॥

भाषार्थः—[*कुमारशीर्षयोः*] कुमार तथा शीर्ष कर्म उपपद हों तो हन से [*णिनिः*] णिनि प्रत्यय होता है ॥

लक्षणे जायापत्योष्टक् ॥३।२।५२॥

लक्षणे ७।१॥ जायापत्योः ७।२॥ टक् १।१॥ स०—जाया च पतिश्च, पती, तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—हनः, कर्मणि, धातोः, यः, परश्च ॥ लक्षणमस्यास्तीति लक्षणस्तस्मिन् लक्षणे, *अर्शआदि-*ऽच् (५।२।१२७) इत्यनेन मतुबर्थेऽच् प्रत्ययः ॥ अर्थः—जाया, पति तयोः कर्मोपपदयोः 'हन्' धातोः लक्षणवति कर्त्तरि वाच्ये टक् प्रत्ययो ति ॥ उदा०—जायाघ्नो वृषलः। पतिघ्नी वृषली ॥

भाषार्थः—[*जायापत्योः*] जाया तथा पति कर्म उपपद हों तो [*लक्षणे*] णवान् कर्त्ता अभिधेय होने पर हन् धातु से [*टक्*] टक् प्रत्यय है ॥ उदा०—जायाघ्नो वृषलः (स्त्री को मारने के लक्षण वाला नीच) । पतिघ्नी वृषली (पति को मारने के लक्षण वाली नीच स्त्री)। हरण में हन् धातु के 'ह' को हो *हन्तेर्ञ्णिन्नेषु* (७।३।५४) से 'घ' गमहनजन० (६।४।९८) से उपधा का लोप होकर 'पति घ्न् अ' बना। होने से स्त्रीलिङ्ग में *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होकर पतिघ्नी है ॥

यहाँ से 'टक्' की अनुवृत्ति ३।२।५४ तक जायेगी ॥

अमनुष्यकर्तृके च ॥३।२।५३॥

अमनुष्यकर्तृके ७।१॥ च अ० ॥ स०—मनुष्यः कर्त्ता यस्य स मनुष्यकर्तृकः, बहुव्रीहिः। न मनुष्यकर्तृकः अमनुष्यकर्तृकः, तस्मिन्·····

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

नञ्सूतत्पुरुषः ॥ अनु०—टक्, हनः, कर्मणि, धातोः, अर्थः—मनुष्यभिन्ने कर्त्तर्यभिधेये कर्मण्युपपदे हनः भवति ॥ उदा०—श्लेष्मघ्नं मधु । पित्तघ्नं घृतम् ॥

भाषार्थः—[अमनुष्यकर्तृके] मनुष्य भिन्न कर्त्ता अभि भी कर्म उपपद रहते हन धातु से टक् प्रत्यय होता है ॥ घ्नं मधु (कफ को नष्ट करने वाला मधु) । पित्तघ्नं घृतम् वाला घी) ॥ पूर्ववत् ही सिद्धि समझें ॥

शक्तौ हस्तिकपाटयोः ॥३।२।५४॥

शक्तौ ७।१॥ हस्तिकपाटयोः ७।२॥ स०—हस्ती च क कपाटे तयोः···इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—टक्, हनः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—हस्ति, कपाट इत्येतयोः कर्मोपपद टक्प्रत्ययो भवति, शक्तौ गम्यमानायाम् ॥ उदा०—हस्तिघ्नो हस्तिघ्नो मनुष्यः । कपाटं हन्तुं शक्नोति = कपाटघ्नश्चौरः ॥

भाषार्थः—[हस्तिकपाटयोः] हस्ति तथा कपाट कर्म [शक्तौ] शक्ति गम्यमान हो तो हन धातु से टक् प्रत्यय सूत्र में अमनुष्य कर्त्ता अभिधेय होने पर प्रत्यय विधान कर्त्ता अभिधेय होने पर भी, प्रत्यय हो जाये इसलिये उदा०—हस्तिघ्नो मनुष्यः (हाथी को मार सकने वाला घ्नश्चौरः (किवाड़ तोड़ने में समर्थ चोर) ॥

पाणिघताडघौ शिल्पिनि ॥३।२।५५॥

पाणिघताडघौ १।२॥ शिल्पिनि ७।१॥ स०—पाणिः द्वन्द्वः ॥ अनु०—हनः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ ताड इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोर्हनधातोः कः प्रत्ययस्तालि धातोष्टलोपो घत्वं च निपात्यते, पाणिघताडघशब्दयोः, वाच्ये ॥

भाषार्थः—[पाणिघताडघौ] पाणिघ ताडघ शब्दों कर्म उपपद रहते हन् धातु से क प्रत्यय तथा हन् धातु भाग का लोप एवं 'हू' को 'घ्' निपातन किया जाता है

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. eGangotri Initiative

कर्त्ता वाच्य हो तो ॥ उदा०—पाणिघः (मृदङ्ग बजानेवाला)। (शिल्पी) ॥

आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन् ॥३।२।५६॥

आढ्यसुभग·····प्रियेषु ७।३॥ च्व्यर्थेषु ७।३॥ अच्वौ ७।१॥ कृञः करणे ७।१॥ ख्युन् १।१॥ स०—आढ्यश्च सुभगश्च स्थूलश्च पलितश्च नग्नश्च अन्धश्च प्रियश्च आढ्यसुभग·····प्रियाः, तेषु··· इतरेतरद्वन्द्वः। च्वेः अर्थः, च्व्यर्थः, षष्ठीतत्पुरुषः। च्व्यर्थ इव अर्थो येषां ते च्व्यर्थाः, तेषु·····बहुव्रीहिः। न च्विः अच्विस्तस्मिन्···नञ्तत्पुरुषः॥ अनुवृत्ति—कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—आढ्य, सुभग, स्थूल, पलित, नग्न, अन्ध, प्रिय इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु च्व्यर्थेष्वच्व्यर्थेषु करणे कारके कृञ् धातोः ख्युन् प्रत्ययो भवति॥ अभूततद्भावश्च्व्यर्थः॥ उदा०—अनाढ्यम् आढ्यं कुर्वन्त्यनेन = आढ्यंकरणम्। सुभगंकरणम्। स्थूलंकरणम्। पलितंकरणम्। नग्नंकरणम्। अन्धंकरणम्। प्रियंकरणम्॥

पदार्थः—[*आढ्य·····प्रियेषु*] आढ्य, सुभगादि [च्व्यर्थेषु] च्व्यर्थों में वर्त्तमान किन्तु [अच्वौ] च्वि प्रत्ययान्त न हों, ऐसे कर्म उपपदके होते [कृञः] कृञ् धातु से [करणे] करण कारक में [ख्युन्] ख्युन् प्रत्यय होता है॥ च्वि का अर्थ अभूततद्भाव (जो नहीं था वह होना) है। यहाँ सर्वत्र अभूततद्भाव होने से कृभ्वस्तियोगे० (५।४।५०) से च्वि प्राप्त था अतः यहाँ कह दिया, कि च्व्यर्थ = अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय न आया हो तब ख्युन् प्रत्यय हो॥ उदा०—आढ्यंकरणम् (जो धनवान् नहीं उसको धनवान् बनाया जाता है जिसके द्वारा)। सुभगंकरणम् (जो कल्याणयुक्त नहीं उसको कल्याणयुक्त बनाया जाता है जिसके द्वारा)। स्थूलंकरणम् (जो स्थूल नहीं उसको स्थूल बनाया जाता है जिसके द्वारा)। पलितंकरणम् (जो बूढ़ा नहीं उसको बूढ़ा बनाया जाता है जिसके द्वारा)। नग्नंकरणम् (जो नग्न नहीं उसको नग्न बनाया जाता है जिसके द्वारा)। अन्धंकरणम् (जो अन्धा नहीं उसको अन्धा बनाया जाता है जिसके द्वारा)। प्रियंकरणम् (जो प्रिय नहीं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उसको प्रिय बनाया जाता है जिसके द्वारा)॥ विशेष आगम (६।३।६५) ही विशेष है॥

यहाँ से "आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेषु" वृत्ति ३।२।५७ तक जायेगी॥

कर्त्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ ॥३।२।५६॥

कर्त्तरि ७।१॥ भुवः ५।१॥ खिष्णुच्खुकञौ १।२॥ स०—खिष्णुच्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेषु च्वौ, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—च्व्यर्थेषु वर्त्तमानेष्वाढ्यादिषु सुबन्तेषूपपदेषु भूधातोः कर्त्तरि कारके प्रत्ययौ भवतः॥ उदा०—अनाढ्य आढ्यो भवति=आढ्यंभावुकः। सुभगंभविष्णुः, सुभगंभावुकः। स्थूलंभविष्णुः, स्थूलंभावुकः। पलितंभविष्णुः, पलितंभावुकः। नग्नंभविष्णुः, नग्नंभावुकः। अन्धंभविष्णुः, अन्धंभावुकः। प्रियंभविष्णुः, प्रियंभावुकः।

भाषार्थः—च्व्यर्थ में वर्त्तमान अच्व्यन्त आढ्यादि शब्द हों तो [कर्त्तरि] कर्त्ता कारक में [भुवः] भू धातु से [खिष्णुच्] खिष्णुच् तथा खुकञ् प्रत्यय होते हैं॥ कर्त्तरि कहने से सभी कृत् कर्त्ता में ही होते हैं। पुनः यहाँ 'कर्त्तरि' जो करणे कहा है, उसकी अनुवृत्ति आकर यहाँ भी लग जाये इसलिए विस्पष्टार्थ है॥ खित् होने से सर्वत्र खुकञ् के ञित् होने से भू धातु को वृद्धि हो जाती रहते गुण ही होता है। आढ्यंभविष्णुः का अर्थ "जो आढ्य होता है" ऐसा है इसी प्रकार औरों में भी जानें।

स्पृशोऽनुदके क्विन् ॥३।२।५८॥

स्पृशः ५।१॥ अनुदके ७।१॥ क्विन् १।१॥ स०—अनुदके तत्पुरुषः॥ अनु०—सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अनुदके सुबन्त उपपदे स्पृशधातोः क्विन् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—मन्त्रेण स्पृशति=मन्त्रस्पृक्। जलेन स्पृशति=जलस्पृक्। घृतस्पृक्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पदार्थः—[अनुदके] उदक भिन्न सुबन्त उपपद हो तो [स्पृशः] धातु से [क्विन्] क्विन् प्रत्यय होता है॥ क्विन् में इकार उच्चारणार्थ है॥ उदा०—मन्त्रस्पृक् (मन्त्र बोलकर स्पर्श करने वाला)। जलस्पृक् (जल के द्वारा स्पर्श करनेवाला)। घृतस्पृक् (घी वाला)॥ अनुबन्ध हटा कर क्विन् का 'व्' रहता है, उस वकार का *वेरपृक्तस्य* (६।१।६५) से लोप हो जाता है। *क्विन्प्रत्ययस्य कुः* (८।२।६२) से स्पृश् के श् को कुत्व होता है। *हल्ङ्याब्भ्यो०* (६।१।६६) से 'क्विन्' का लोप हो ही जायेगा॥

यहाँ से 'क्विन्' की अनुवृत्ति ३।२।६० तक जायेगी॥

ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च॥३।२।५९॥

ऋत्विग्.....क्रुञ्चाम् ६।३॥ च अ०॥ स०—ऋत्विग्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—क्विन्, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—ऋत्विक्, दधृक्, स्रक्, दिक्, उष्णिक् इत्येते पञ्चशब्दाः प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। अञ्चु, युजि, क्रुञ्च धातुभ्यश्च प्रत्ययो भवति॥ ऋतुशब्द उपपदे यजतेः क्विन् निपात्यते—ऋतौ यजति, ऋतुं वा यजति ऋतुप्रयुक्तो वा यजति ऋत्विक्। धृषेः क्विन् प्रत्ययः, द्विर्वचनमन्तोदात्तत्वं च निपात्यते—दधृक्। सृज धातोः कर्मणि कारके क्विन् प्रत्ययोऽमागमश्च निपात्यते। 'सृ ज् क्विन्' यणादेशं कृत्वा, सृजन्ति यां सा—स्रक्। दिशेः क्विन् निपात्यते। दिशन्ति यां सा दिक्। उत्पूर्वात् स्निहधातोः उपसर्गस्यान्त्यतकारस्य च लोपः षत्वञ्च निपात्यते, अत्र णत्वं तु *णो०* (८।४।१) इत्यनेन भवति, उष्णिक्। अञ्चु, युजि, क्रुञ्च धातुभ्यः क्विन् भवति—प्राङ्, प्रत्यङ्, उदङ्। युनक्तीति युङ् युजः। क्रुङ्, क्रुञ्चौ, क्रुञ्चः॥

पदार्थः—[ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चाम्] ऋत्विक्, दधृक्, स्रक्, दिक्, उष्णिक् ये पाँच शब्द क्विन् प्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं, तथा अञ्चु युजि क्रुञ्च धातुओं से भी क्विन् प्रत्यय होता है। ऋत्विक् शब्द में—ऋतु शब्द उपपद रहते यज धातु से क्विन् निपातन से हुआ है। पीछे *वचिस्वपियजादीनां०* (६।१।१५)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

से 'य' को सम्प्रसारण होकर 'ऋतु इज्' बना, यणादेश
बना। पुनः सु विभक्ति परे रहते क्विन्प्रत्ययस्य कु
को 'ग्' और वाऽवसाने (८।४।५५) से ग् को क् होकर
है। दधृक् (शत्रु को परास्त करने वाला) यहाँ धृष्
तथा धृष् को द्वित्व और अन्तोदात्तत्व निपातन से
करके अभ्यास कार्य उरत् (७।४।६६) आदि हो हो
(माला) यहाँ सृज् धातु से कर्म कारक में क्विन्
आगम निपातन किया है। मिदचोन्त्या० (१।१।४६)
अन्त्य अच् से परे होकर 'सृ अम् ज् क्विन्' बना।
क्विन् का सर्वापहारी लोप होकर 'स्रज्' बना, पूर्ववत्
और वाऽवसाने लगकर स्रक् बना है। दिक् (दिशा)
कारक में क्विन् प्रत्यय निपातन है। पूर्ववत् ही कुत्व
उष्णिक् (छन्द विशेष) यहाँ उत् पूर्वक स्निह धातु
उपसर्ग के अन्त तकार का लोप तथा षत्व निपातन
षत्व किये पीछे रषाभ्यां० (८।४।१) से णत्व भी हो जाए
यहाँ भी कुत्व जानें। अब अञ्चु, युज्, क्रुञ्च् धातु
प्रत्यय इस सूत्र से कहा है, सो उनकी सिद्धियाँ पूर्ववत्

त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च ॥३१८॥

त्यदादिषु ७।३॥ दृशः ५।१॥ अनालोचने ७।१॥ कञ्
स०—त्यद् आदिर्येषां ते त्यदादयस्तेषु ·····बहुव्रीहिः।
अनालोचनं तस्मिन् ·····नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—क्विप्
प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—त्यदादिषु सुबन्तेषूपपदेषु
मानाद् दृश्धातोः कञ् प्रत्ययो भवति चकारात् क्विप्
त्यादृक्, त्यादृशः। तादृक्, तादृशः। यादृक्, यादृशः।

भाषार्थः—[त्यदादिषु] त्यदादि शब्द उपपद रहते
अनालोचन (न देखना) अर्थ में वर्त्तमान [दृशः] दृश
कञ् प्रत्यय होता है [च] तथा चकार से क्विप्
उदा०—त्यादृक् (इस जैसा) त्यादृशः। तादृक् (वैसा)
(जैसा) यादृशः॥ आ सर्वनाम्नः (६।३।९१) से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सर्वनाम शब्दों के अन्त्य (१।१।५१) अल् को आत्व हो गया है। पक्ष में *क्विन्प्रत्ययस्य कुः* से कुत्व होकर त्यादृक् बना। कन् पक्ष त्यादृश् कन् = त्यादृश् अ = त्यादृशः बन गया है॥

सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुप-सर्गेऽपि क्विप् ॥३।२।६१॥

सत्सूद्विष ····राजाम् ६।३॥ उपसर्गे ७।१॥ अपि अ०॥ क्विप् स०—सत्सू० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—सुपि, धातोः, प्रत्ययः, ॥ अर्थः—सद्, सू, द्विष, द्रुह, दुह, युज, विद, भिद, छिद, जीन्, राजृ इत्येतेभ्यः सोपसर्गेभ्यो निरुपसर्गेभ्योऽपि धातुभ्यः उपपदे क्विप् प्रत्ययो भवति॥ षूङ् प्राणिगर्भविमोचने इति दिकस्यात्र ग्रहणं न तु सुवतेस्तौदादिकस्य। युजिर् योगे युज समाधौ पि ग्रहणम्, एवं विद ज्ञाने, विद सत्तायाम्, विद विचारणे ां ग्रहणम्, न तु विद्लृ लाभे इत्यस्य॥ उदा०—सद्-वेद्यां त = वेदिषत्। शुचिषत्। अन्तरिक्षे सीदति = अन्तरिक्षसत्। । सू—वत्सं सुते = वत्ससूः गौः। अण्डसूः। शतसूः। प्रसूः। द्विष-द्वेष्टि = मित्रद्विट्। प्रद्विट्। द्रुह—मित्रध्रुक्। प्रध्रुक्। दुह-गोधुक्। । युज = अश्वयुक्। प्रयुक्। विद—वेदान् वेत्ति = वेदवित्। वित्। प्रवित्। भिद्-काष्ठं भिनत्ति = काष्ठभित्। प्रभित्। रज्जुच्छिद्। प्रच्छिद्। जि-शत्रून् जयति - शत्रुजित्। प्रजित्। सेनां नयति = सेनानीः। प्रणीः। अग्रणीः। ग्रामणीः। राजृ—विश्वं राति = विश्वराट्। विराट्। सम्राट्॥

भाषार्थः—[सत्सू·····राजाम्] षद्, सू, द्विष इत्यादि धातुएँ सर्ग] सोपसर्ग हों तो [अपि] तथा निरुपसर्ग हों तो भी सुबन्त रहते [क्विप्] क्विप् प्रत्यय होता है॥

यहाँ से 'उपसर्गेऽपि' की अनुवृत्ति ३।२।७७ तक जायेगी॥

भजो ण्विः ॥३।२।६२॥

भजः ५।१॥ ण्विः १।१॥ अनु०—उपसर्गेऽपि, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, ॥ अर्थः—भज्धातोः सुबन्त उपपदे उपसर्गेऽप्यनुपसर्गेऽप्युपपदे ण्विः भवति॥ उदा०—अर्धं भजते अर्धभाक्। प्रभाक्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*भजः*] भज धातु से सुबन्त उपपद रहते सो
या निरुपसर्ग तो भी [*ण्विः*] ण्वि प्रत्यय होता है॥ अर्धभाक् दे
परि० १।२।४१ में देखें॥

यहाँ से '*ण्विः*' की अनुवृत्ति ३।२।६४ तक जायेगी॥

छन्दसि सहः ॥३।२।६३॥

छन्दसि ७।१॥ सहः ५।१॥ अनु०—ण्विः, सुपि, धातोः, प्र
परश्च॥ अर्थः—छन्दसि विषये सुबन्त उपपदे सहधातोण्विः
भवति॥ उदा०—तुराषाट् (ऋ० ३।४८।४)॥

भाषार्थः—[*छन्दसि*] वेद विषय में सुबन्त उपपद रहते [सहः
धातु से ण्वि प्रत्यय होता है॥ सिद्धि में *सहेः साडः सः* (८।३।
सह के 'स' को षत्व होता है। *अन्येषामपि०* (६।३।१३५) से तुरं
होकर तुरा बना। *झलां जशोऽन्ते* (८।२।३९) से ह् को ड् तथा
(८।४।५५) से चर्त्व होकर तुराषाट् बना है, शेष पूर्ववत् है॥

यहाँ से '*छन्दसि*' की अनुवृत्ति ३।२।६७ तक जायेगी॥

वहश्च ॥३।२।६४॥

वहः ५।१॥ च अ०॥ अनु०—छन्दसि, ण्विः, सुपि, धातोः, प्र
परश्च॥ अर्थः—वेदविषये सुबन्त उपपदे वहधातोण्विः
भवति॥ उदा०—प्रष्ठं वहति प्रष्ठवाट्। दित्यवाट् (यजु० १४।१०

भाषार्थः—[*वहः*] वह धातु से [*च*] भी वेद विषय में सुबन्त
रहते ण्वि प्रत्यय होता है॥

यहाँ से '*वहः*' की अनुवृत्ति ३।२।६६ तक जायेगी॥

कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् ॥३।२।६५॥

कव्यपुरीषपुरीष्येषु ७।३॥ ञ्युट् १।१॥ स०—कव्य० इत्येते
द्वन्द्वः॥ अनु०—वहः, छन्दसि, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, प
अर्थः—कव्य, पुरीष, पुरीष्य इत्येतेषु सुबन्तेषूपपदेषु छन्दसि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[...]

...धातोर्ञ्युट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कव्यवाहनः (यजु०१९।६५)। ...रीषवाहनः। पुरीष्यवाहनः ॥

भाषार्थः—[कव्यपुरीषपुरीष्येष] कव्य, पुरीष; पुरीष्य ये सुबन्त ...पपद हों तो वेद विषय में वह धातु से [ञ्युट्] ञ्युट् प्रत्यय होता है ॥ ...कार अनुबन्ध वृद्धि के लिये है। युवोरनाकौ (७।१।१) से यु को 'अन' ...गया है ॥

यहाँ से 'ञ्युट्' की अनुवृत्ति ३।२।६६ तक जायेगी ॥

हव्येऽनन्तःपादम् ॥३।२।६६॥

हव्ये ७।१॥ अनन्तःपादम् १।१॥ स०—अन्तः = मध्ये पादस्येति, ...न्तःपादम्, अव्ययं विभक्ति० (२।१।६) इत्यनेन अव्ययीभावसमासः ॥ ...अन्तःपादम्, अनन्तःपादम्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—वहः, छन्दसि, ...ञ्युट्, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—हव्यसुबन्त उपपदे ...न्दसि विषयेऽनन्तःपादं वर्त्तमानात् वहधातोर्ञ्युट् प्रत्ययो भवति ॥ ...दा०—दूतश्च हव्यवाहनः (ऋ० ६।१६।२३) ॥

भाषार्थः—[हव्ये] हव्य सुबन्त उपपद रहते वेद विषय में वह धातु ...ञ्युट् प्रत्यय होता है, यदि 'वह' धातु [अनन्तःपादम्] पाद के अन्तर् ...र्थात् मध्य में वर्त्तमान न हो तो ॥ यहाँ पाद शब्द से ऋचा का पाद ...भिप्रेत है। उदाहरण में वह धातु ऋचा के पाद के अन्त में है, मध्य ...नहीं, सो ञ्युट् प्रत्यय हो गया है। पाद के मध्य में 'वह' धातु होती ...तो वहश्च (३।२।६४) से ण्वि प्रत्यय ही होता है ॥

जनसनखनक्रमगमो विट् ॥३।२।६७॥

जनसनखनक्रमगमः ५।१॥ विट् १।१॥ स०—जनश्च सनश्च खनश्च ...क्रमश्च गम् च, जन..... गम्, तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०— ...न्दसि, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—जन, सन, खन, क्रम, ...गम् इत्येतेभ्यो धातुभ्यो सुबन्त उपपदे छन्दसि विषये विट्प्रत्ययो ...भवति ॥ जन जनने, जनी प्रादुर्भावे द्वयोरपि ग्रहणम्। एवं षणु दाने ...षण सम्भक्तौ द्वयोरपि ग्रहणम् ॥ उदा०—अप्सु जायते = अब्जाः। उप- ...स्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश (यजु० ३२।११)। गोषु ...जायते = गोजाः। सन—गां (इन्द्रियाणि) सनोति = गोषा इन्द्रो नृषा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

असि। नॄन् सनोतीति नृषाः। खन—विसखाः कूपखाः। क्रम—
(ऋ० ४।३८।९) गम-अग्रेगाः (यजु० २७।३१)॥

भाषार्थः—[*जनसनखनक्रमगमः*] जन, सन, खन, क्रम, ग
धातुओं से सुबन्त उपपद रहते वेद विषय में [*विट्*] विट् प्रत्य
है॥ *विड्वनोरनु०* (६।४।४१) से अनुनासिक नकार को आत्व
जाता है। विट् प्रत्यय के व् का भी *वैरपृक्तस्य* (६।१।६५) स्था
पहारी लोप हो जाता है। 'अप् ज आ सु' यहाँ *झलां जशोन्ते* (८
से 'प्' को 'ब्' होकर तथा सवर्णदीर्घ होकर पूर्ववत् अब्जाः
प्रथमजाम् द्वितीयान्त पद है। *सनोतेरनः* (८।३।१०८) से गोषः
धातु को षत्व हो गया है, शेष सब पूर्ववत् ही समझें॥

यहाँ से '*विट्*' की अनुवृत्ति ३।२।६९ तक जायेगी॥

अदोऽनन्ने ॥३।२।६८॥

अदः ५।१॥ अनन्ने ७।१॥ *स०*—न अन्नम् अनन्नं, तस्मिन्
नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—विट्, सुपि, धातोः प्रत्ययः परश्च॥ *अर्थः*
धातोरनन्ने सुबन्त उपपदे विट्प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—आमम् अ
आमात्। सस्यम् अत्ति = सस्यात्॥

भाषार्थः—[*अनन्ने*] अनन्न सुबन्त उपपद रहते [*अदः*] अ
से विट् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—आमात् (कच्चा खानेवाला)।
(पौधे को खाने वाला)॥

यहाँ से '*अदः*' की अनुवृत्ति ३।२।६९ तक जायेगी॥

क्रव्ये च ॥३।२।६९॥

क्रव्ये ७।१॥ च अ०॥ *अनु०*—अदः, विट्, सुपि, धातोः
परश्च॥ *अर्थः*—क्रव्ये सुबन्त उपपदे, अदधातोर्विट् प्रत्ययो
उदा०—क्रव्यम् अत्ति = क्रव्यात्॥

भाषार्थः—[*क्रव्ये*] क्रव्य सुबन्त उपपद रहते [*च*] भी अद
विट् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—क्रव्यात् (मांस खानेवाला, राक्षस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दुहः कब् घश्च ॥३।२।७०॥

दुहः ६।१॥ कप् १।१॥ घः १।१॥ च अ० ॥ अनु०—सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—दुहेर्धातोः सुबन्त उपपदे कप् प्रत्ययो भवति तस्यान्तादेशो भवति ॥ उदा०—कामदुघा धेनुः। धर्मदुघा ॥

भाषार्थः—[दुहः] दुह धातु से सुबन्त उपपद रहते [कप्] कप् प्रत्यय होता है, [च] तथा अन्त्य हकार को (१।१।५१) [घः] घकारादेश होता है ॥ उदा०—कामदुघा धेनुः (इच्छा पूर्ण करने वाली गौ)। धर्मदुघ (धर्म को ग्रहण करनेवाली) ॥ स्त्रीलिङ्ग में टाप् (४।१।४) हो गया है ॥

मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् ॥३।२।७१॥

मन्त्रे ७।१॥ श्वेतवहो·····डाशः ५।१॥ ण्विन् १।१॥ स०—श्वेतवह च उक्थशाश्च पुरोडाश्च श्वेत·····डाश्, तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—श्वेतवह, उक्थशस्, पुरोडाश् इत्येते शब्दाः ण्विन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते, मन्त्रे = वैदिके प्रयोगे ॥ श्वेतशब्दे कर्तृवाचिन्युपपदे वहेर्धातोः कर्मणि कारके ण्विन् प्रत्ययो भवति। श्वेता एनं वहन्ति, श्वेतवा इन्द्रः। उक्थशस् इत्यत्र उक्थ शब्दे कर्मणि करणे वा कारके उपपदे शंसुधातोर्ण्विन् भवति नलोपश्च निपात्यते। उक्थानि शंसति, उक्थैर्वा शंसति उक्थशाः। पुरोडाश् इत्यत्र पुरः पूर्वस्य दाश् दाने धातोः कर्मणि ण्विन् प्रत्ययो धातोरादेः दकारस्य च डत्वं निपात्यते। पुरो दाशन्त एनम् = पुरोडाः ॥

भाषार्थः—[मन्त्रे] वैदिक प्रयोग विषय में [श्वेत···शः] श्वेतवह, उक्थशस् पुरोडाश् ये शब्द [ण्विन्] ण्विन् प्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं ॥ कर्त्तावाची श्वेत शब्द उपपद रहते वह धातु से कर्मकारक में ण्विन् प्रत्यय श्वेतवह शब्द में हुआ है। पीछे *श्वेतवहादीनां डस्* वक्तव्य च (भा० वा० ३।२।७१) इस महाभाष्य वार्त्तिक से ण्विन् के स्थान में डस् आदेश होकर श्वेतवह् डस् रहा। *डित्यभस्यापि टेर्लोपः* इस वार्त्तिक से टि भाग का लोप होकर 'श्वेतव् अस् = श्वेतवस् सु' रहा, *अत्वसन्तस्य चाधातोः* (६।४।१४) से दीर्घ होकर श्वेतवास् स् रहा। *हल्ङ्याब्भ्यो०* से सु का लोप एवं रुत्व विसर्जनीय होकर श्वेतवाः बना।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उक्थशस् शब्द में कर्म या करणवाची उक्थ शब्द उपपद हो तो धातु से ण्विन् प्रत्यय होता है, तथा शंसु के नकार का लोप यहाँ निपातन से ही होता है। शेष सिद्धि डस् आदेश होकर पूर्ववत् ही जानें। पुरोडाश् शब्द में भी पुरस् उपपद रहते दाशृ धातु से कारक में ण्विन् प्रत्यय तथा धातु के आदि दकार को डत्व निपातन है। शेष सिद्धि डस् आदेश होकर पूर्ववत् ही है॥

यहाँ से 'मन्त्रे ण्विन्' की अनुवृत्ति ३।२।७२ तक जायेगी॥

अवे यजः ॥३।२।७२॥

अवे ७।१॥ यजः ५।१॥ अनु०—मन्त्रे, ण्विन्, धातोः, प्रत्ययः परश्च॥ अर्थः—अव उपपदे यजधातोर्मन्त्रविषये ण्विन् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—त्वं यज्ञे वरुणस्यावया असि॥

भाषार्थः—[अवे] अव उपपद रहते [यजः] यज धातु से ण्विन् प्रत्यय होता है मन्त्र विषय में॥ ण्विन् को डस् आदेश होकर पूर्ववत् ही सब सूत्र लगाकर सिद्धि जानें॥

यहाँ से 'यजः' की अनुवृत्ति ३।२।७३ तक जायेगी॥

विजुपे छन्दसि ॥३।२।७३॥

विच् १।१॥ उपे ७।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—यजः, धातोः, प्रत्ययः परश्च॥ अर्थः—उप उपपदे यजधातोः छन्दसि विषये विच् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—उपयड् भीरूर्ध्वं वहन्ति। उपयड्भ्यः (श०३।८।३।१८)॥

भाषार्थः—[उपे] उप उपपद रहते यज धातु से [छन्दसि] वेद विषय में [विच्] विच् प्रत्यय होता है॥ विच् का सर्वापहारी लोप हो जाता है। व्रश्चभ्रस्ज० (८।२।३६) से यज् के ज् को ष् तथा झलां जशोन्ते (८।२।३९) से ष् को ड् हो गया है॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।२।७४ तक तथा 'विच्' की अनुवृत्ति ३।२।७५ तक जायेगी॥

आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च ॥३।२।७४॥

आतः ५।१॥ मनिन्क्वनिब्वनिपः १।३॥ च अ०॥ स०—मनिन्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—छन्दसि, विच्, सुपि, धातोः, प्रत्ययः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परश्च ॥ अर्थः—आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः, सुबन्त उपपदे छन्दसि विषये मनिन्, क्वनिप्, वनिप् चकारात् विच् च प्रत्यया भवन्ति ॥ उदा०—शोभनं ददातीति = सुदामा । सुधामा । क्वनिप्—सुधीवा । सुपीवा । वनिप्—अन्नदावा । दुग्धपावा । विच—कीलालं पिबति = कीलालपाः । शुभंयाः ॥

भाषार्थः—[आतः] आकारान्त धातुओं से सुबन्त उपपद रहते वेद विषय में [मनि·····पः] मनिन्, क्वनिप्, वनिप् [च] तथा विच् प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—सुदामा (अच्छा देने वाला)। सुधामा (अच्छा धारण करने वाला) ॥ क्वनिप्—सुधीवा । सुपीवा (अच्छा पान करने वाला)। वनिप्- अन्नदावा(अन्न देने वाला) । दुग्धपावा (दूध पीने वाला)। विच्—कीलालपाः (खून पीने वाला = राक्षस) । शुभंयाः (कल्याण को प्राप्त होने वाला)॥ सुदामन् सु बनकर *सर्वनामस्थाने०* (६।४।८) से दीर्घ तथा *नलोपः०* (८।२।७) से नकार लोप *हल्ङ्याब्भ्यो०* से सु लोपादि सब होकर सुदामा बनेगा, इसी प्रकार सबमें समझें। सुधीवा सुपीवा में क्वनिप् के कित् होने से *घुमास्थागा०* (६।४।६६) से ईत्व हो गया है। यहाँ भी विच् का पूर्ववत् सर्वापहारी लोप होकर 'सु' को रुत्व विसर्जनीय हो गया है ॥

यहाँ से '*मनिनक्वनिब्वनिपः*' की अनुवृत्ति ३।२।७५ तक जायेगी ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥३।२।७५॥

अन्येभ्यः ५।३॥ अपि अ० ॥ दृश्यन्ते, क्रियापदम् ॥ अनु०—मनिन्-क्वनिब्वनिपः, विच्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अन्येभ्योऽपि धातुभ्यो मनिन्, क्वनिप् वनिप् विच् इत्येते प्रत्यया दृश्यन्ते ॥ उदा०—सुशर्मा । प्रातरित्वा । वनिप्—विजावा । प्रजावा । अग्रेगावा । रेडसि पर्णं नयेः ॥

भाषार्थः—[अन्येभ्यः] आकारान्त धातुओं से जो अन्य धातुएँ उनसे [अपि] भी मनिन्, क्वनिप्, वनिप् तथा विच् ये प्रत्यय [दृश्यन्ते] देखे जाते हैं ॥ पूर्व सूत्र से आकारान्त, धातुओं से ही ये प्रत्यय प्राप्त थे यहाँ अन्यों से भी देखे जाते हैं ऐसा कह दिया। 'दृश्यन्ते' इस क्रियापद से यहाँ यह जाना जाता है कि प्राचीन शिष्ट ऋषि मुनिकृत ग्रन्थों में यदि उक्त प्रत्ययान्त शब्द दीखें तो उन्हें साधु अर्थात् शुद्ध समझना ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

क्विप् च ॥३।२।७६॥

क्विप् १।१॥ च अ० ॥ अनु०— सुपि, उपसर्गेऽपि, धातोः, प्र परश्च ॥ अर्थः—सुबन्त उपपदे सर्वेभ्यो धातुभ्यः सोपसर्गेभ्यो नि भ्यश्च क्विप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उखायाः स्रंसते = उख पर्णध्वत्। वाहाद् भ्रश्यति वाहाभ्रट् ॥

भाषार्थः—सब धातुओं से सोपसर्ग हों चाहे निरुपसर्ग उपपद रहते [क्विप्] क्विप् प्रत्यय [च] भी होता है ॥

यहाँ से 'क्विप्' की अनुवृत्ति ३।२।७७ तक जायेगी ॥

स्थः क च ॥३।२।७७॥

स्थः ५।१॥ क, लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ अनु०—लि सुपि, उपसर्गेऽपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सुपि उपपदे स्था सोपसर्गात् निरुपसर्गाच्च कः प्रत्ययो भवति, चकारात् क्विप् च ॥ उदा शंस्थः, शंस्थाः ॥

भाषार्थः—सुबन्त उपपद रहते सोपसर्ग या निरुपसर्ग [स्था] धातु से [क] क [च] तथा क्विप् प्रत्यय होता है ॥ शम् अव्यय उ रहते स्था धातु से क प्रत्यय करने पर आतो लोप० (६।४।६४) से का लोप होकर शंस्थः (कल्याण वाला) बना, क्विप् पक्ष में शंस्थाः

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ॥३।२।७८॥

सुपि ७।१॥ अजातौ ७।१॥ णिनिः १।१॥ ताच्छील्ये ७।१॥ न जातिरजातिः, तस्याम्·····नञ्तत्पुरुषः। तस्य शीलं तच्छील तत्पुरुषः। तच्छीलस्य भावः ताच्छील्यं, तस्मिन्····॥ अनु०— प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अजातिवाचिनि सुबन्त उपपदे ता (तत्स्वभावता) गम्यमाने धातुमात्रात् णिनिः प्रत्ययो भवति ॥ उदा उष्णं भोक्तुं शीलमस्य = उष्णभोजी। शीतभोजी। प्रिय धर्मोपदेशी ॥

भाषार्थः—[अजातौ] अजातिवाची [सुपि] सुबन्त उपपद हो [ताच्छील्ये] ताच्छील्य (ऐसा उसका स्वभाव है) गम्यमान होने पर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

धातुओं से णिनि प्रत्यय होता है ॥ उदा०—उष्णभोजी (गरम-गरम खाने के स्वभाव वाला)। शीतभोजी। प्रियवादी (जिसका स्वभाव ही प्रिय बोलने का हो)। धर्मोपदेशी (धर्म का उपदेश करने का जिसका स्वभाव हो)॥ णिनि में णित्करण वृद्धि के लिये है। उष्ण भुज् णिनि = उष्ण भुज् इन् सु, ऐसी अवस्था में गुण, तथा सौ च (६।४।१३) से दीर्घ होकर 'उष्णभोजीन् सु' बन गया, शेष नकार लोप, तथा हल्ङ्यादि लोप पूर्व के समान ही होकर उष्णभोजी बन गया। इसी प्रकार सब में समझें॥

यहाँ से *'णिनिः'* की अनुवृत्ति ३।२।८६ तक जायेगी॥

कर्त्तर्युपमाने ॥३।२।७९॥

कर्त्तरि ७।१॥ उपमाने ७।१॥ अनु०—णिनिः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—उपमानवाचिनि कर्त्तर्युपपदे, धातुमात्रात् णिनिः प्रत्ययो भवति॥ उदा०—उष्ट्र इव क्रोशति = उष्ट्रक्रोशी। काक इव वदति = काकवादी। ध्वाङ्क्ष इव रौति = ध्वाङ्क्षरावी॥

भाषार्थः—[उपमाने] उपमानवाची [कर्त्तरि] कर्त्ता उपपद हो तो धातुमात्र से णिनि प्रत्यय होता है॥ उदा०—उष्ट्रक्रोशी (ऊँट के समान आवाज करने वाला) काकवादी (कौवे के समान बोलने वाला)। ध्वाङ्क्षरावी (कौवे के समान आवाज करने वाला)॥ उदाहरण में उष्ट्र इत्यादि उपमानवाची कर्त्ता उपपद हैं, सो क्रुश आदि धातुओं से णिनि प्रत्यय हो गया है॥

व्रते ॥३।२।८०॥

व्रते ७।१॥ अनु०—सुपि, णिनिः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—व्रते गम्यमाने सुबन्त उपपदे धातुमात्रात् णिनिप्रत्ययो भवति॥ उदा०—स्थण्डिले शयितुं व्रतमस्य = स्थण्डिलशायी। अश्राद्धभोजी॥

भाषार्थः—[व्रते] व्रत गम्यमान हो तो सुबन्त उपपद रहते धातु से णिनि प्रत्यय होता है॥ उदा०—स्थण्डिलशायी (चबूतरे पर सोने का व्रत जिसका है)। अश्राद्धभोजी (श्राद्ध को न खाने का व्रत जिसका है)॥ अचो ञ्णिति (७।२।११५) से शीङ् धातु को वृद्धि, तथा आयादेश होता है, शेष सिद्धि पूर्ववत् है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

बहुलमाभीक्ष्ण्ये ॥३।२।८१॥

बहुलम् १।१॥ आभीक्ष्ण्ये ७।१॥ अनु०—सुपि, णिनिः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आभीक्ष्ण्यं = पौनःपुन्यं तस्मिन् गम्यमाने धातोः णिनिप्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कषायपायिणो गान्धाराः। क्षीरपायिण उशीनराः। सौवीरपायिणो बाह्लीकाः। बहुलग्रहणात् कुल्माषखादः अत्र णिनिर्न भवति ॥

भाषार्थः—[आभीक्ष्ण्ये] आभीक्ष्ण्य अर्थात् पौनःपुन्य गम्यमान हो तो धातु से [बहुलम्] बहुल करके णिनि प्रत्यय होता है ॥ उदा०—कषायपायिणो गान्धाराः (बार-बार एक विशेष रस को पीने वाले गान्धार)। क्षीरपायिण उशीनराः (बार-बार दूध पीने वाले उशीनर लोग)। सौवीरपायिणो बाह्लीकाः (काँजी विशेष के पीने वाले बाह्लीक लोग)। बहुल ग्रहण करने से—कुल्माषखादः (जौ को खाने वाला) यहाँ णिनि नहीं होता ॥

मनः ॥३।२।८२॥

मनः ५।१॥ अनु०—सुपि, णिनिः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सुबन्त उपपदे मन्धातोः णिनिप्रत्ययो भवति ॥ उदा०—दर्शनीयं मन्यते = दर्शनीयमानी। शोभनमानी। सुरूपमानी ॥

भाषार्थः—सुबन्त उपपद रहते [मनः] मन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है ॥ मन धातु यहाँ दिवादि गण की ली गई है, तनादि 'मनु' नहीं ॥ उदा०—दर्शनीयमानी (देखने योग्य मानने वाला)। शोभनमानी (शोभन मानने वाला)। सुरूपमानी (सुरूप मानने वाला) ॥

यहाँ से 'मनः' की अनुवृत्ति ३।२।८३ तक जायेगी ॥

आत्ममाने खश्च ॥३।२।८३॥

आत्ममाने ७।१॥ खश् १।१॥ च अ० ॥ स०—आत्मनः = स्वस्य आत्मा आत्मानः तस्मिन् ·····षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—मनः, णिनिः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आत्ममानेऽर्थे वर्त्तमानात् सुबन्तात् उपपदात् मन्यतेर्धातोः खश् प्रत्ययो भवति, चकारात् णिनिश्च ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[द्वितीय:]

आत्मानं पण्डितं मन्यते = पण्डितंमन्यः। पण्डितमानी। दर्शनीयंमन्यः। दर्शनीयमानी ॥

भाषार्थः—[आत्ममाने] 'अपने आप को मानना, इस अर्थ में वर्तमान धातु से [खश्] खश् प्रत्यय होता है [च] चकार से णिनि होता है ॥ उदा०—पण्डितंमन्यः (अपने आपको पण्डित मानने वाला)। पण्डितमानी। दर्शनीयंमन्यः (अपने आपको दर्शनीय मानने के स्वभाव वाला)। दर्शनीयमानी ॥ खश् पक्ष में शित् होने से सार्वधातुक संज्ञा को मानकर *दिवादिभ्यः श्यन्* (३।१।६९) से श्यन् विकरण भी होगा तथा मुम् आगम भी खित् होने से (६।३।६५) से होगा सो 'पण्डित अम् मन् श्यन् खश्' अनुबन्ध लोप होकर 'पण्डितंमन्य् अ सु' रहा, सकार को रुत्व सब होकर पण्डितंमन्यः बना ॥

भूते ॥३।२।८४॥

भूते ७।१॥ अर्थः—वर्त्तमाने लट् (३।२।१२३) इत्यतः पूर्वं पूर्वं ये प्रत्ययाः विधीयन्ते ते भूते काले भवन्ति, इत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ कथं उदाहरिष्यामः ॥

भाषार्थः—यहाँ से आगे ३।२।१२३ तक [भूते] भूते का अधिकार चला है, अर्थात् वहाँ तक जितने प्रत्यय विधान करेंगे वे सब भूतकाल में होंगे ऐसा जानना चाहिये ॥

करणे यजः ॥३।२।८५॥

करणे ७।१॥ यजः ५।१॥ अनु०—भूते, णिनिः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—करणे कारके उपपदे यजधातोर्णिनिप्रत्ययो भवति, भूते काले ॥ उदा०—अग्निष्टोमेन इष्टवान् = अग्निष्टोमयाजी ॥

भाषार्थः—[करणे] करण कारक उपपद होने पर [यजः] यज धातु से णिनि प्रत्यय भूतकाल में होता है ॥ उदा०—अग्निष्टोमयाजी (अग्निष्टोम के द्वारा यज्ञ किया) ॥ सिद्धि पूर्ववत् ही है ॥

कर्मणि हनः ॥३।२।८६॥

कर्मणि ७।१॥ हनः ५।१॥ अनु०—भूते, णिनिः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्मणि कारक उपपदे हनधातोर्णिनिप्रत्ययो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भवति, भूते काले ॥ उदा०—पितृव्यं हतवान् = पितृव्यघाती मातुलघाती ॥

भाषार्थः—[*कर्मणि*] कर्म उपपद रहते [*हनः*] हन् धातु से प्रत्यय भूतकाल में होता है ॥ उदा०—पितृव्यघाती (जिसने चा मारा)। मातुलघाती (जिसने मामा को मारा) ॥ सिद्धि के लि ३।२।५१ देखें, उसी तरह यहाँ है ॥

यहाँ से 'हनः' की अनुवृत्ति ३।२।८८ तक तथा 'कर्मणि' की वृत्ति ३।२।९५ तक जायेगी ॥

ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् ॥३।२।८७॥

ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु ७।३॥ क्विप् १।१॥ स०—ब्रह्म० इत्यत्रेतरेतर अनु०—कर्मणि, हनः, भूते, धातोः प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः- भ्रूण, वृत्र इत्येतेष्वेव कर्मसूपपदेषु हनधातोः भूते काले क्विबेव भवति । नियमार्थोऽयमारम्भः ॥ उदा०—ब्रह्महा । भ्रूणहा । वृत्रहा

भाषार्थः—[*ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु*] ब्रह्म, भ्रूण, वृत्र ये ही कर्म उपपद ह धातु से भूतकाल में [*क्विप्*] क्विप् प्रत्यय ही होता है॥ य नियमार्थ है, इससे दो प्रकार का नियम निकलता है धातु नि काल नियम जो कि अर्थ में प्रदर्शित कर ही दिया है ॥ उदा०— (ब्राह्मण को मारने वाला)। भ्रूणहा (गर्भ को गिराने वाला)। (वृत्र को मारने वाला) ॥ सिद्धि में ब्रह्मन् हन् क्विप् = ब्रह्म पूर्ववत् ही होकर सौ च (६।४।१३) से दीर्घ तथा नलोपः (८ से न लोप एवं अन्य कार्य पूर्ववत् ही जानें ॥

यहाँ से 'क्विप्' की अनुवृत्ति ३।२।९२ तक जायेगी ॥

बहुलं छन्दसि ॥३।२।८८॥

बहुलम् १।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—क्विप्, कर्मणि, हनः धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये कर्मण्युपपदे ह भूते काले क्विप् प्रत्ययो बहुलं भवति ॥ उदा०—मातृहा सप्तमं प्रविशेत् । पितृहा । न च भवति—पितृघातः, मातृघातः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[तृतीयः पादः]

भाषार्थः—[छन्दसि] वेद विषय में कर्म उपपद रहते भूतकाल में हन धातु से [बहुलम्] बहुल करके क्विप् प्रत्यय होता है॥ पितृघातः में अन्येभ्योऽपि से अण् प्रत्यय होता है। सिद्धि में परि० ३।२।५१ के समान हन् के 'ह्' को 'घ्' तथा 'न्' को 'त्' इत्यादि जानें। पितृघात् सु=पितृघातः बना॥

सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ॥३।२।८९॥

सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु ७।३॥ कृञः ५।१॥ स०—सु च कर्म च पापञ्च मन्त्रश्च पुण्यञ्च सु·····पुण्यानि, तेषु····इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—क्विप्, कर्मणि, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—सु, कर्म, पाप, मन्त्र, पुण्य इत्येतेष्वेव कर्मसूपपदेषु कृञ्धातोः भूते काले क्विबेव प्रत्ययो भवति॥ उदा०—सुष्ठु करोति=सुकृत्। कर्मकृत्। पापकृत्। मन्त्रकृत्। पुण्यकृत्॥

भाषार्थः—[सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु] सु, कर्म, पाप, मन्त्र, पुण्य ये ही शब्द उपपद हों तो [कृञः] कृञ् धातु से भूत काल में क्विप् प्रत्यय ही होता है॥ यहाँ भी धातु नियम और काल नियम दोनों समझने चाहिये॥ क्विप् हलन्तस्य पिति० (६।१।६९) से तुक् आगम हुआ है॥ उदा०—सुकृत् (अच्छा करने वाला)। कर्मकृत् (कर्म करने वाला)। पापकृत् (पाप करने वाला)। मन्त्रकृत् (मन्त्र द्रष्टा) पुण्यकृत् (पुण्य करने वाला)॥ परि० १।१।६१ की तरह सिद्धि समझें॥

सोमे सुञः ॥३।२।९०॥

सोमे ७।१॥ सुञः ५।१॥ अनु०—क्विप्, कर्मणि, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—सोमे कर्मण्युपपदे षुञ् अभिषवे धातोः क्विप् प्रत्ययो भवति, भूते काले॥ उदा०—सोमसुत्, सोमसुतौ॥

भाषार्थः—[सोमे] सोम कर्म उपपद रहते [सुञः] षुञ् धातु से भूतकाल में क्विप् प्रत्यय होता है॥ सिद्धि परि० १।१।६१ में देखें॥

अग्नौ चेः ॥३।२।९१॥

अग्नौ ७।१॥ चेः ५।१॥ अनु०—क्विप्, कर्मणि, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अग्नौ कर्मण्युपपदे चिञ्धातोः क्विप् प्रत्ययो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भवति भूते काले ॥ उदा०—अग्निम् अचैषीत् = अग्निचित् चितौ ॥

भाषार्थः—[*अग्नौ*] अग्नि कर्म उपपद रहते [*चेः*] चिञ् धा भूतकाल में क्विप् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि परि० १।१।६१ में

यहाँ से 'चेः' की अनुवृत्ति ३।२।९२ तक जायेगी ॥

कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ॥३।२।९२॥

कर्मणि ७।१॥ अग्न्याख्यायाम् ७।१॥ स०—अग्नेराख्या, अग्न्या तस्याम्·····षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—चेः, क्विप्, कर्मणि, धातो, परश्च ॥ अर्थः—कर्मण्युपपदे चिञ्धातोः कर्मणि कारके क्विप् प्र भवति, अग्न्याख्यायाम् ॥ उदा०—श्येन इव चीयतेऽग्निः = श्येनचि कङ्कचित् ॥

भाषार्थः—[*कर्मणि*] कर्म उपपद रहते चिञ् धातु से कर्म में क्विप् प्रत्यय होता है [*अग्न्याख्यायाम्*] अग्नि की आख्या हो तो ॥ उदा०—श्येनचित् (श्येन के आकार की तरह जो वेदी ईंटों से चुनी गई है)। कङ्कचित् (कंक पक्षी के आकार जो अग्नि की वेदी चुनी गई है) ॥ इस सूत्र में 'भूते' की अनुवृ सम्बन्ध नहीं लगता है, इसमें "श्येनचितं चिन्वीत" आदि श्रौत के वचन प्रमाण हैं, अतः सामान्य करके तीनों कालों में होगा ॥

कर्मणीनि विक्रियः ॥३।२।९३॥

कर्मणि ७।१॥ इनि, लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ विक्रियः ५।१॥ क्री विक्री तस्मात्·····पञ्चमीतत्पुरुषः ॥ अनु०—भूते, धातोः, परश्च ॥ अर्थः—कर्मण्युपपदे विपूर्वात् क्रीञ्धातोः इनिप्रत्ययो उदा०—सोमं विक्रीणाति = सोमविक्रयी[1] । रसविक्रयी । मद्यविक्र

भाषार्थः—[*कर्मणि*] कर्म उपपद रहते [*विक्रियः*] वि पूर्वक धातु से [*इनि*] इनि प्रत्यय होता है ॥ उदा०—सोमविक्रयी (

१. सोम, रस तथा मद्य बेचना बुरा समझा जाता है, अतः ये सब कुत्सा = निन्दा में हैं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वाला)। रसविक्रयी (रस को बेचने वाला)। मद्यविक्रयी (शराब बेचने वाला)॥ सिद्धि में क्री धातु को इनि प्रत्यय परे रहते गुण (७।३।८४) अयादेश जानें, शेष दीर्घत्व नलोपादि पूर्ववत् ही णिनि प्रत्यान्त की सिद्धि के समान हैं॥

दृशेः क्वनिप् ॥३।२।९४॥

दृशेः ५।१॥ क्वनिप् १।१॥ अनु०—कर्मणि, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—कर्मण्युपपदे दृशधातोः भूते काले क्वनिप् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—परलोकं दृष्टवान् = परलोकदृश्वा। पाटलिपुत्रदृश्वा। वाराणसीं दृष्टवान् = वाराणसीदृश्वा॥

भाषार्थः—कर्म उपपद रहते भूत काल में [दृशेः] दृश धातु से [क्वनिप्] क्वनिप् प्रत्यय होता है॥ उदा०—परलोकदृश्वा (जिसने परलोक को देखा)। पाटलिपुत्रदृश्वा (जिसने पाटलिपुत्र को देखा)। वाराणसीदृश्वा॥ क्वनिप् का 'वन्' शेष रहेगा, पुनः दीर्घादि (६।४।८) सूत्र होंगे॥

यहाँ से 'क्वनिप्' की अनुवृत्ति ३।२।९६ तक जायेगी॥

राजनि युधिकृञः ॥३।२।९५॥

राजनि ७।१॥ युधिकृञः ५।१॥ स०—युधिश्च कृञ् च युधिकृञ्, तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—क्वनिप्, कर्मणि, भूते, धातोः, परश्च॥ अर्थः—राजन्कर्मोपपदे युध्-कृञ् इत्येताभ्यां धातुभ्यां भूते काले क्वनिप् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—राजानं योधितवान्, राजयुध्वा। राजकृत्वा॥

भाषार्थः—[राजनि] राजन् कर्म उपपद रहते [युधिकृञः] युध् तथा कृञ् धातुओं से भूत काल में क्वनिप् प्रत्यय होता है॥ उदा०—राजयुध्वा (राजा को जिसने लड़वाया)। राजकृत्वा (राजा को जिसने बनाया)॥ सिद्धि ३।२।७४ सूत्र के समान ही दीर्घत्व नलोपादि होकर

यहाँ से 'युधिकृञः' की अनुवृत्ति ३।२।९६ तक जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सहे च ॥३।२।९६॥

सहे ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—युधिकृञः, क्तिप्, भूते, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सहशब्द उपपदे युधि, कृञ् धातुभ्यां क्तिप् प्रत्ययो भवति भूते काले ॥ उदा०—सहयुद्धा सहकृत्वा ॥

भाषार्थः—[सहे] सह शब्द उपपद रहते [च] भी युध् तथा धातुओं से भूत काल में क्तिप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—सहयुद्धा (साथ साथ जिसने युद्ध किया)। सहकृत्वा (साथ साथ जिसने किया) ॥

सप्तम्यां जनेर्डः ॥३।२।९७॥

सप्तम्याम् ७।१॥ जनेः ५।१॥ डः १।१॥ अनु०—भूते, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सप्तम्यामुपपदे जनेर्धातोर्डः प्रत्ययो भूते काले ॥ उदा०—उपसरे जातः = उपसरजः। मन्दुरायां जातः = मन्दुरजः। कटजः। वारिणि जातः = वारिजः ॥

भाषार्थः—[सप्तम्याम्] सप्तम्यन्त (पद) उपपद हो तो [जन धातु से [डः] ड प्रत्यय होता है ॥ उदा०—उपसरजः (प्रथम में गर्भ धारण से उत्पन्न हुआ)। मन्दुरजः (घोड़ों की शाला में होने वाला)। कटजः (चटाई में पैदा होने वाला)। वारिजः (कमल) प्रत्यय के डित् होने से *डित्यभस्यापि टेर्लोपः* इस वार्त्तिक से जन के टि भाग (अन्) का लोप हो जायगा, मन्दुरा को ह्रस्व इत्वादि (६।३।६१) से होता है। सिद्धि में यही विशेष है ॥

यहाँ से 'जनेर्डः' की अनुवृत्ति ३।२।१०१ तक जायेगी ॥

पञ्चम्यामजातौ ॥३।२।९८॥

पञ्चम्याम् ७।१॥ अजातौ ७।१॥ स०—न जातिः, अजातिः, तस्याम् नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—जनेर्डः, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अजातिवाचिनि पञ्चम्यन्त उपपदे जनेर्धातोर्डः प्रत्ययो भवति भूते काले ॥ उदा०—शोकात् जातः = शोकजो रोगः। संस्कारजः। बुद्धेः जातः = बुद्धिजः। गोमयजः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वादः]

भाषार्थः—[अजातौ] अजातिवाची [पञ्चम्याम्] पञ्चम्यन्त (पद) उपपद हो तो जन धातु से ड प्रत्यय होता है, भूत काल में ॥ उदा०—शोकजो रोगः (शोक से उत्पन्न होने वाला रोग)। संस्कारजः (संस्कार से उत्पन्न होने वाला)। दुःखजः (दुःख से उत्पन्न होने वाला)। बुद्धिजः। गोमयजः (गोबर से पैदा हुआ = बिच्छू)॥ पूर्ववत् सिद्धि में टि भाग का लोप होगा॥

उपसर्गे च संज्ञायाम् ॥३।२।९९॥

उपसर्गे ७।१॥ च अ० ॥ संज्ञायाम् ७।१॥ अनु०—जनेर्डः, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्गे चोपपदे जनेर्धातोः भूते काले डः प्रत्ययो भवति, संज्ञायां विषये ॥ उदा०—अथेमा मानवीः प्रजाः। वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम। प्रजाता इति प्रजाः ॥

भाषार्थः—[उपसर्गे] उपसर्ग उपपद रहते [च] भी [संज्ञायाम्] संज्ञा विषय में जन धातु से भूतकाल में ड प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अथेमा मानवीः प्रजाः (यह मानवी प्रजा है) वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम (हम प्रजापति की प्रजा होवें) ॥

अनौ कर्मणि ॥३।२।१००॥

अनौ ७।१॥ कर्मणि ७।१॥ अनु०—जनेर्डः, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्मण्युपपदे अनुपूर्वात् जनेर्डः प्रत्ययो भवति भूते काले ॥ उदा०—पुमांसमनुजातः = पुमनुजः। स्त्र्यनुजः। रामानुजो भरतः ॥

भाषार्थः—[कर्मणि] कर्म उपपद रहते [अनौ] अनु पूर्वक जन धातु से ड प्रत्यय भूतकाल में होता है ॥ उदा०—पुमनुजः (भाई के पश्चात् पैदा हुआ भाई)। स्त्र्यनुजः (बहन के पश्चात् पैदा हुआ भाई)। रामानुजो भरतः (राम के छोटे भाई, भरत) ॥

अन्येष्वपि दृश्यते ॥३।२।१०१॥

अन्येषु ७।३॥ अपि अ० ॥ दृश्यते क्रियापदम् ॥ अनु०—जनेर्डः, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अन्येषु कारकेषूपपदेष्वपि जनेर्डः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रत्ययो दृश्यते ॥ उदा०—सप्तम्यामुपपदे उक्तम्, असप्तम्य
भवति, न जायते इति अजः । द्विर्जाता द्विजाः । पञ्चम्यामजातौ
जातावपि दृश्यते—ब्राह्मणजो धर्मः । क्षत्रियजं युद्धम् । उप
संज्ञायामित्युक्तम् असंज्ञायामपि दृश्यते—अभिजाः । परिजाः ।
कर्मणि इत्युक्तम् अकर्मण्यपि दृश्यते = अनुजातः = अनुजः । अपि
दन्येभ्यो धातुभ्योऽपि भवति—परितः खाता परिखा ॥

भाषार्थः—पूर्व सूत्रों में जिनके उपपद रहते जन धातु से ड
किया है, उनसे [*अन्येषु*] अन्य कोई उपपद में हों तो [*अपि*]
धातु से ड प्रत्यय [*दृश्यते*] देखा जाता है ॥ यहाँ सूत्र में 'अपि'
है अतः जन धातु से अन्य धातुओं से भी ड प्रत्यय होता है
निकलती है ॥ उदा०—सप्तमी उपपद रहते कहा है, पर सप्तमी
में भी देखा जाता है—अजः (परमेश्वर) । द्विजाः (ब्राह्मण,
वैश्य) । *पञ्चम्यामजातौ* में अजाति कहा है, पर जाति में भी देख
है—ब्राह्मणजो धर्मः (ब्राह्मण से पैदा हुआ धर्म) । क्षत्रियं
(क्षत्रिय से उत्पन्न होने वाला युद्ध) । *उपसर्गे च संज्ञायाम्* में संज्ञा
है पर असंज्ञा में भी देखा जाता है—अभिजाः (पैदा होने
परिजाः (केश) । *अनौ कर्मणि* में कर्म उपपद रहते कहा है, पर
में भी देखा जाता है—अनुजः (छोटा भाई) । 'अपि' ग्रहण
अन्य धातुओं से भी देखा जाता है—परिखा (खाई) ॥

निष्ठा ॥३।२।१०२॥

निष्ठा १।१॥ अनु०—भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—
भूते (काले) निष्ठा प्रत्ययः परश्च भवति ॥ क्तक्तवतू *निष्ठा* (१।१।२५)
निष्ठा संज्ञा कृता, तौ निष्ठासंज्ञकौ प्रत्ययौ भूते काले भवतः ॥
भिन्नः भिन्नवान् । भुक्तः भुक्तवान् । कृतः कृतवान् ॥

भाषार्थः—धातु मात्र से भूतकाल में [*निष्ठा*] निष्ठा संज्ञक
(क्त क्तवतु) होते हैं, और वे परे होते हैं ॥ सिद्धियाँ परि० १।१
देखें ॥ भुज् धातु के ज् को क् चोः कुः (८।२।३०) तथा खरि च (८।
से हो गया है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सुयजोर्ङ्वनिप् ॥३।२।१०३॥

सुयजोः ६।२॥ ङ्वनिप् १।१॥ स०—सुयजोः इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—षुञ्, यज् इत्येताभ्यां धातुभ्यां ङ्वनिप् प्रत्ययो भवति भूते काले ॥ उदा०—सुतवान् इति सुत्वा। इष्टवान् इति यज्वा ॥

भाषार्थः—[सुयजोः] षुञ् तथा यज् धातु से भूतकाल में [ङ्वनिप्] ङ्वनिप् प्रत्यय होता है ॥ ङ्वनिप् का अनुबन्ध हटने पर 'वन्' रह जाता है। सुवन् सु = पूर्ववत् ह्रस्वस्य० (६।१।६९) से तुक् आगम तथा दीर्घत्व लोपादि होकर सुत्वा (जिसने सोमरस निचोड़ा)। यज्वा (जिसने यज्ञ किया) बना है ॥

जीर्यतेरतृन् ॥३।२।१०४॥

जीर्यतेः ५।१॥ अतृन् १।१॥ अनु०—भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—जॄष् वयोहानौ इत्यस्माद् धातोः भूते काले अतृन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—जरन्। जरन्तौ ॥

भाषार्थः—[जीर्यतेः] जॄष् वयोहानौ धातु से भूतकाल में [अतृन्] अतृन् प्रत्यय होता है ॥ अतृन् का अनुबन्ध हटकर अत् रह जाता है, जॄसृधृ० (७।१।७०) से नुम् आगम १।१।४६ से अन्त्य अच् से परे होकर जर् अ नुम् त् = जरन्त् बना, संयोगान्त लोप होकर जरन् (वृद्ध) बन गया ॥

छन्दसि लिट् ॥३।२।१०५॥

छन्दसि ७।१॥ लिट् १।१॥ अनु०—भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये धातोः भूते काले लिट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ततं मे पूर्यमुभयतो ददर्श (य० ८।९) यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान (ऋ० १०।८८।३) ॥

भाषार्थः—[छन्दसि] वेद विषय में भूतकाल सामान्य में धातुमात्र से [लिट्] लिट् प्रत्यय होता है ॥ आङ् पूर्वक तनु विस्तारे धातु से आततान बना तथा दृश् धातु से ददर्श बना है। लिट् लकार में सिद्धियाँ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

हम बहुत बार दिखा आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी समझें। पु
परि० १।१।५७ देखें॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।२।१०७ तक जायेगी॥

लिटः कानज् वा ॥३।२।१०६॥

लिटः ६।१॥ कानच् १।१॥ वा अ० ॥ अनु०—भूते, छन्दसि, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये लिटः स्थाने कानच् आदेशो भवति ॥ उदा०—अग्निं चिक्यानः (तै० सं० ५।२।३।६) सुषु (मै० सं० ३।४।३)। न च भवति—अहं सूर्यमुभयतो ददर्श॥

भाषार्थः—वेद विषय में भूतकाल में विहित जो [*लिटः*] लिट् स्थान में [*कानच्*] कानच् आदेश [*वा*] विकल्प से होता है॥

यहाँ से 'लिटः, वा' की अनुवृत्ति ३।२।१०९ तक जायेगी॥

क्वसुश्च ॥३।२।१०७॥

क्वसुः १।१॥ च अ० ॥ अनु०—भूते, लिटः, वा, छन्दसि, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये लिटः स्थाने क्वसुश्च वा भवति ॥ उदा०—जक्षिवान्। पपिवान् (ऋ० १।६१।७)। पक्षे भवति—अहं सूर्यमुभयतो ददर्श ॥

भाषार्थः—वेद विषय में लिट् के स्थान में [*क्वसुः*] क्वसु [च] भी विकल्प से होता है ॥ लिट् के स्थान में क्वसु आदि होते हैं, अतः यहाँ क्वसु को स्थानिवत् (१।१।५५) मानकर द्वि कार्य होते ही हैं। जक्षिवान् अद् धातु से बना है। अतः परि० १। के जक्षतुः की सिद्धि के समान जक्ष् बना, इडागम वस्वेकाजाद (७।२।६७) से करके जक्षिवस् बना, शेष क्तवतु प्रत्ययान्त की सि समान जानें, जो कि परि० १।१।५ में दर्शाई है। पपिवान् पा धा बना है, यहाँ भी पूर्ववत् इडागम होकर *आतो लोप इटि च* (६।४ से आकार लोप होगा, पश्चात् *द्विर्वचनेऽचि* (१।१।५८) से रूपा होकर 'पा प् इ वस्' बना, ह्रस्वः (७।४।५९) आदि होकर पपिवान् ब

यहाँ से 'क्वसुः' की अनुवृत्ति ३।२।१०८ तक जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषायां सदवसश्रुवः ॥३।२।१०८॥

भाषायाम् ७।१॥ सदवसश्रुवः ५।१॥ स०—सदश्च वसश्च श्रुश्च सदवसश्रु, तस्मात् ..... समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—लिटः, वा, क्वसुः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भाषायां = लौकिके प्रयोगे सद, वस, श्रु एतेभ्यो धातुभ्यः परो विकल्पेन लिट् प्रत्ययो भवति, लिटश्च स्थाने नित्यं क्वसुरादेशो भवति भूते काले ॥ लिट आदेशविधानादेव लिडपि भूतकालसामान्ये भाषायां विषये भवतीत्यनुमीयते, पक्षे यथायथं भूते विहिताः लुङ् लङ् लिट् इत्यादयो लकारा भवन्ति ॥ उदा०—उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम् । उपासदत् (लुङ) उपासीदत् (लङ्) उपससाद (लिट्)। अनूषिवान् कौत्सः पाणिनिम् । अन्ववात्सीत् (लुङ) अन्ववसत् (लङ्) अनूवास (लिट्)। उपशुश्रुवान् कौत्सः पाणिनिम् । उपाश्रौषीत् (लुङ्) उपाश्रृणोत् (लङ्) उपशुश्राव (लिट्) ॥

भाषार्थः—[भाषायाम्] लौकिक प्रयोग विषय में [सदवसश्रुवः] सद, वस, श्रु इन धातुओं से परे विकल्प से लिट् प्रत्यय होता है, और लिट् के स्थान में नित्य क्वसु आदेश हो जाता है भूतकाल मात्र में (सामान्य भूत लुङ् तथा विशेषभूत लङ्, लिट् में) यहाँ लिट् विधान किया है, अतः पक्ष में अपने-अपने विषय में लुङ् लङ्, लिट् तीनों होंगे ।

उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च ॥३।२।१०९॥

उपेयिवान् १।१॥ अनाश्वान् १।१॥ अनूचानः १।१॥ च अ० ॥ धातोः—लिटः, वा, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपेयिवान्, अनाश्वान्, अनूचान इत्येते शब्दा विकल्पेन सामान्यभूतकाले निपात्यन्ते ॥ उपेयिवान्नित्यत्र उपपूर्वात् इण्धातोः क्वसुप्रत्यये परतो द्विर्वचनमभ्यासदीर्घत्वमभ्यासस्य हलादौ परतो यणादेशो निपात्यते । ततश्चैकाचत्वात् वस्वेकाजा० (७।२।६७) इत्यनेन 'इड्' भविष्यति । (इति महाभाष्यम्)॥ पक्षे पूर्ववल्लुङादयोऽपि भवन्ति—उपागात्, उपैत्, उपेयाय । अनाश्वान्—नञ् पूर्वात् 'अश् भोजने' इत्येतस्माद् धातोः क्वसुप्रत्ययः अभावश्च निपात्यते । पक्षे—नाशीत्, नाश्नात्, नाश । अनूचानः—अनुपूर्वात् वच् धातोः (ब्रूञ्स्थानिकः) कर्त्तरि कानच् निपात्यते, सम्प्रसारणं भवत्येव । पक्षे यथाप्राप्तम्—अन्ववोचत्, अन्वब्रवीत्, अनूवाच ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*उपेयि*·····*चानः*] उपेयिवान्, अनाश्वान्, अनू शब्द [च] भी निपातन किये जाते हैं। भूत सामान्य सब निपातनों में विकल्प से लिट् होकर, नित्य ही क्वसु आदि होते हैं, अतः पक्ष में यथाप्राप्त भूत काल के प्रत्यय लुङ् (सामान्य लङ् लिट् (विशेषभूत) हो जाते हैं॥ *उपेयिवान्* (वह वहाँ पहुँचा इण् गतौ धातु से क्वसु प्रत्यय के परे रहते द्विर्वचन, दीर्घ इणः ६९) से अभ्यास को दीर्घ होकर 'उप ई इ वस्' रहा। अब यहाँ के परे रहते यणादेश प्राप्त नहीं था सो वह निपातन से तत्पश्चात् 'ईय् वस्' होकर *वस्वेकाजाद्धसाम्* (७।२।६७) से तथा *आदृगुषः* (६।१।८४) लगकर उपेय् इ वस् सु रहा *उगितश्च* ७०) से नुम् आगम तथा पूर्ववत् दीर्घत्व एवं संयोगान्त लोप होकर उपेयिवान् बन गया। पक्ष में भूतकाल विहित लुङ् लकार होकर उपागात् (लुङ्) उपैत् (लङ्) उपेयाय (लिट्) *अनाश्वान्* में नञ् पूर्वक अश धातु से क्वसु प्रत्यय तथा निपातन है। 'नञ् अश् अश् वस् = अनुबन्ध लोप तथा शेष होकर 'अ अ अश् वस् *तस्मान्नुडचि* ((६।३।७२) से नुट् होकर 'अ नुट् अ अश् व नुम् स् सु' = अन् आश् व न् स् सु इस में एकाच् होने से पूर्ववत् इट् आगम प्राप्त था, निपातन से गया। शेष सब पूर्ववत् होकर अनाश्वान् बन गया। पक्ष में लिट् लकार हो ही जायेंगे॥ *अनूचान* में अनु पूर्वक वच् धातु में कानच् प्रत्यय निपातन है, सम्प्रसारण तो *वचिस्वपि०* (६।१।१ ही जायेगा, अनु उ च् कानच् = अनूच् आन सु = अनूचानः पक्ष में यथाप्राप्त भूतकाल के प्रत्यय हुए हैं सो अन्वबोचत् ब्रवीत्, अनूवाच रूप बनेंगे। इनकी सिद्धियाँ परिशिष्ट में देखें।

लुङ् ॥३।२।११०॥

लुङ् १।१॥ अनु०—भूते धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थ—भूते (सामान्ये) काले लुङ्प्रत्ययः परश्च भवति॥ उदा०—अहार्षीत्॥

भाषार्थः—धातु से सामान्य भूत काल में [लुङ्] लुङ् प्रत्यय है, और वह परे होता है॥ सिद्धि परि० १।१।१ में देखें॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अनद्यतने लङ् ॥३।२।१११॥

अनद्यतने ७।१॥ लङ् १।१॥ स०—न विद्यतेऽद्यतनो यस्मिन् सोऽनद्यतनः, तस्मिन्·····बहुव्रीहिः॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च, भूते॥ अर्थः—धातोरनद्यतने भूते काले लङ्प्रत्ययः परश्च भवति॥ उदा०—अकरोत्। अहरत्॥

भाषार्थः—धातु से [अनद्यतने] अनद्यतन (जो आज का नहीं) भूत काल में [लङ्] लङ् प्रत्यय होता है और वह परे होता है॥ 'अकुरु-त' की सिद्धि परि० १।१।५५ में की है, यहाँ भी उसी प्रकार 'अट् कृ तिप्' आकर कृ को 'उ' परे मानकर गुण तथा उरण्रपरः (१।१।५०) रपर हुआ एवं तिप् को मानकर 'उ' को 'ओ' गुण होकर अकरोत् (उसने किया) बना है॥

यहाँ से 'अनद्यतने' की अनुवृत्ति ३।२।११९ तक जायेगी॥

अभिज्ञावचने लृट् ॥३।२।११२॥

अभिज्ञावचने ७।१॥ लृट् १।१॥ स०—अभिज्ञायाः वचनम् अभिज्ञावचनम्, तस्मिन्·····षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—अनद्यतने, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अभिज्ञा = स्मृतिः। अभिज्ञावचन उपपदे सति धातोरनद्यतने भूते काले लृट् प्रत्ययो भवति॥ लङि प्राप्ते लृट् विधीयते॥ उदा०—अभिजानासि देवदत्त ? कश्मीरेषु वत्स्यामः। स्मरसि, बुध्यसे, चेतयसे वा देवदत्त कश्मीरेषु वत्स्यामः॥

भाषार्थः—[अभिज्ञावचने] अभिज्ञावचन अर्थात् स्मृति को कहने वाला कोई शब्द उपपद हो तो धातु से अनद्यतन भूत काल में [लृट्] लृट् प्रत्यय होता है॥ लङ् का अपवाद यह सूत्र है॥ उदा०—अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेषु वत्स्यामः (याद है देवदत्त कि पहले कश्मीर रहे थे)। स्मरसि, बुध्यसे, चेतयसे वा देवदत्त कश्मीरेषु वत्स्यामः॥ परि० १।४।१३ के करिष्यामः के समान वस् धातु से 'स्य' इत्यादि प्रत्यय आकर 'वस् स्य मस्' बना। सः स्यार्धधातुके (७।४।४९) से धातु के सकार को त् होकर वत् स्य मस् बना, अतो दीर्घो० (७।३।१०१) से दीर्घ तथा रुत्व विसर्जनीय होकर वत्स्यामः बन गया॥

यहाँ से 'अभिज्ञावचने लृट्' की अनुवृत्ति ३।२।११४ तक जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

न यदि ॥३।२।११३॥

न अ० ॥ यदि ७।१॥ अनु०—अभिज्ञावचने लृट्, अनद्यतने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यत्शब्दसहिते, अभिज्ञावचन अनद्यतने भूते, (काले) धातोर्लृट् प्रत्ययो न भवति ॥ पूर्वेण प्राप्ते षिध्यते ॥ उदा०—अभिजानासि देवदत्त ? यत् कश्मीरेषु, क स्मरसि देवदत्त यत् कश्मीरेषु, अगच्छाम ॥

भाषार्थः—[यदि] यत् शब्द सहित अभिज्ञावचन उपपद हो द्यतन भूत (काल) में धातु से लृट् प्रत्यय [न] नहीं होता ॥ से लृट् प्रत्यय प्राप्त था, इस सूत्र ने प्रतिषेध कर दिया, तो अनद्यतने लङ् (३।२।१११) से लङ् हो गया ॥ अट् वस् शप् स्थिति में पूर्ववत् दीर्घादि होकर, *नित्यं ङितः* (३।४।९९) से सकार का लोप होकर अवसाम बन गया ॥ अगच्छाम में इषुगमि (७।३।७७) से गम् के अन्त्य अल् को छ, तथा छे च (६।१।७१) आगम और श्चुत्व हुआ है, शेष पूर्ववत् है ॥

विभाषा साकाङ्क्षे ॥३।२।११४॥

विभाषा १।१॥ साकाङ्क्षे ७।१॥ अनु०—अभिज्ञावचने लृट्, तने, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ आकाङ्क्षया सह वर्त्तमानं, क्त्म् ॥ अर्थः—अभिज्ञावचन उपपदे, यद्योगे, अयद्योगे च भूत काले धातोर्विकल्पेन लृट् प्रत्ययो भवति, साकाङ्क्षश्चेत् भवेत्। पक्षे लङ् भवति ॥ उदा०—अभिजानासि देवदत्त ? क वत्स्यामस्तत्रौदनं भोक्ष्यामहे। स्मरसि देवदत्त ? मगधेषु वत्स सक्तून् पास्यामः ॥ यत् प्रयोगेऽपि—अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेषु वत्स्यामस्तत्रौदनं भोक्ष्यामहे। स्मरसि देवदत्त ? यत् वत्स्यामस्तत्र सक्तून् पास्यामः। पक्षे लङ्—अभिजानासि कश्मीरेष्ववसाम तत्रौदनमभुञ्ज्महि। अभिजानासि देवदत्त ? रेष्ववसाम तत्र सक्तून् अपिबाम। यत् प्रयोगेऽपि—अभि देवदत्त ? यत् कश्मीरेष्ववसाम, तत्रौदनमभुञ्ज्महि ॥

भाषार्थः—अभिज्ञावचन शब्द उपपद हो तो यत् का प्रयो न हो तो भी भूत अनद्यतन काल में धातु से लृट् प्रत्यय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

...] ...क्ष्ये] ...क्षा से होता है, यदि प्रयोक्ता की [साकाङ्क्षे] साकाङ्क्षता गम्य-...ता हो तो ॥ कश्मीर में रहते थे, और क्या करते थे यहाँ यह बतलाने ...साकाङ्क्षा प्रयोक्ता को है, अतः ये सब उदाहरणवाक्य साकाङ्क्ष हैं ...लृट् तथा पक्ष में लङ् भी हो गया है। यत् शब्द का प्रयोग हो या ...हो, दोनों में ही विकल्प से लृट् होगा, सो यहाँ उभयत्र विभाषा है ॥ ...रहते थे, (वत्स्यामः) तथा ओदन खाते थे (भोक्ष्यामहे) वाक्य की ...दोनों क्रियाओं में लट् और लङ् हुआ करेगा ॥

परोक्षे लिट् ॥३।२।११५॥

परोक्षे ७।१॥ लिट् १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च, भूते, ...नद्यतने ॥ अर्थः—धातोरनद्यतने परोक्षे भूते (काले) लिट् प्रत्ययः ...परश्च भवति ॥ उदा०—चकार कटं देवदत्तः। जहार सीतां रावणः ॥

भाषार्थः—धातु से अनद्यतन = जो आज का नहीं ऐसे [परोक्षे] ...क्ष (जो अपनी इन्द्रियों से न देखा गया हो ऐसे) भूत काल में [लिट्] ...प्रत्यय होता है, और वह परे होता है ॥ उदा०—चकार कटं ...त्तः (देवदत्त ने चटाई बनाई)। जहार सीतां रावणः (रावण ने ...ता का हरण किया)। चक्रतुः चक्रुः की सिद्धियाँ परि० १।१।५८ में ...ला चुके हैं, उसी प्रकार यहाँ णल् के परे रहते 'कृ' 'हृ' को वृद्धि ...र चकार जहार समझें ॥

अक्षि = इन्द्रिय को कहते हैं, पर अर्थात् परे, सो परोक्ष का अभि-...य है जो इन्द्रियों द्वारा जाना न गया हो ॥

यहाँ से 'परोक्षे' की अनुवृत्ति ३।२।११८ तथा 'लिट्' की अनुवृत्ति ...।११७ तक जायेगी।

हशश्वतोर्लङ् च ॥३।२।११६॥

हशश्वतोः ७।२॥ लङ् १।१॥ च अ०॥ स०—हश० इत्यत्रेतरेतर-...ः॥ अनु०—परोक्षे, अनद्यतने, भूते, लिट्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ ...—ह, शश्वत्, इत्येतयोरुपपदयोर्धातोः परोक्षे अनद्यतने भूते ...क्षे) लङ् प्रत्ययो भवति, चकारात् लिट् च ॥ नित्यं लिटि प्राप्ते ...पि विधीयते ॥ उदा०—इति हाकरोत्। इति ह चकार। शश्वद्-...त्। शश्वत् चकार ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*हशश्वतोः*] ह, शश्वत् ये शब्द उपपद हों तो अनद्यतन परोक्ष भूतकाल में [*लङ्*] लङ् प्रत्यय होता है, [च] चकार से लिट् भी होता है ॥ उदा०—इति हाकरोत् (उसने निश्चय से किया)। इति ह चकार। शश्वदकरोत् (उसने किया) शश्वत् चकार ॥

यहाँ से 'लङ्' की अनुवृत्ति ३।२।११७ तक जायेगी ॥

प्रश्ने चासन्नकाले ॥३।२।११७॥

प्रश्ने ७।१॥ च अ० ॥ आसन्नकाले ७।१॥ स०—आसन्नः कालश्च, आसन्नकालः, तस्मिन्···कर्मधारयस्तत्पुरुषः ॥ अनु०—भूते, लङ्, लिट्, धातोः, प्रत्ययः परश्च। अर्थः—आसन्नकाले गम्यमाने परोक्षे भूते (काले) धातोर्लङ्लिटौ प्रत्ययौ भवतः॥ उदा० देवदत्तो ऽगच्छत् किम्? देवदत्तो जगाम किम्?॥

भाषार्थः—[*आसन्नकाले*] आसन्न = समीपकालिक [प्रश्ने] गम्यमान हो तो [च] भी धातु से परोक्ष भूतकाल में लङ् लिट् प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—देवदत्तोऽगच्छत् किम्? देवदत्तो जगाम किम् (देवदत्त अभी गया क्या) ॥ सिद्धियाँ पूर्ववत् हैं ॥

लट् स्मे ॥३।२।११८॥

लट् १।१॥ स्मे ७।१॥ अनु०—परोक्षे, अनद्यतने, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—परोक्षेऽनद्यतने भूते काले वर्त्तमानाद् धातोः स्मशब्द उपपदे लट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—युधिष्ठिरो यजते स्म। धर्मेण कुरवो युध्यन्ते स्म ॥

भाषार्थः—परोक्ष अनद्यतन भूत काल में वर्त्तमान धातु से स्म शब्द उपपद रहते [लट्] लट् प्रत्यय होता है ॥ लिट् लकार था, लट् विधान कर दिया है ॥ उदा०—युधिष्ठिरो यजते स्म (यज्ञ करते थे)। धर्मेण कुरवो युध्यन्ते स्म (कौरव धर्म से युद्ध थे)। युध धातु दिवादि गण की है, सो श्यन् विकरण हो जायेगा।

यहाँ से 'लट्', की अनुवृत्ति ३।२।१२२ तक, तथा 'स्मे' की अनु तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अपरोक्षे च ॥३।२।११९॥

अपरोक्षे ७।१॥ च अ० ॥ स०—न परोक्षः, अपरोक्षः, तस्मिन्·····तत्पुरुषः॥ अनु०—अनद्यतने, भूते, लट् स्मे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अ०—अपरोक्षेऽनद्यतने भूते च (काले) वर्त्तमानाद् धातोः स्मशब्द परे सति लट् प्रत्ययो भवति ॥ पूर्वेण परोक्षेऽनद्यतने भूते लट् विधीयते ॥ उदा०—अध्यापयति स्म गुरुर्माम्। पिता मे ब्रवीति स्म। मया सह पुत्रो गच्छति स्म ॥

भाषार्थः—[अपरोक्षे] अपरोक्ष अनद्यतन भूतकाल में [च] भी विधान धातु से स्म उपपद रहते लट् प्रत्यय होता है। पूर्व सूत्र से अनद्यतन भूतकाल में लट् प्राप्त था, यहाँ अपरोक्ष में भी विधान कर दिया है॥ उदा०—अध्यापयति स्म गुरुर्माम् (मुझको गुरु जी पढ़ाया करते थे)। पिता मे ब्रवीति स्म (मेरे पिता कहा करते थे)। मया सह पुत्रो गच्छति स्म (मेरे साथ पुत्र जाता था) ॥ परि० २।४।५१ के अध्यापिपत् समान 'अध्यापि' धातु बनाकर अध्यापयति की सिद्धि जानें। 'ब्रवीति' में ब्रुव ईट् (७।३।९३) से 'ईट्' आगम होता है ॥

ननौ पृष्टप्रतिवचने ॥३।२।१२०॥

ननौ ७।१॥ पृष्टप्रतिवचने ७।१॥ स०—पृष्टस्य प्रतिवचनं, पृष्टप्रतिवचनं, तस्मिन्·····षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—लट्, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ननुशब्दोपपदे पृष्टप्रतिवचनेऽर्थे भूते (सामान्ये) काले लट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अकार्षीः कटं देवदत्त ? ननु करोमि भोः ॥

भाषार्थः—सामान्य भूतकाल में लुङ् प्राप्त था लट् विधान कर दिया है ॥ [पृष्टप्रतिवचने] पृष्टप्रतिवचन अर्थात् पूछे जाने पर जो उत्तर दिया जाये इस अर्थ में धातु से [ननौ] ननु शब्द उपपद रहते सामान्य भूतकाल में लट् प्रत्यय होता है ॥ देवदत्त तूने चटाई बना ली? यह पूछे जाने पर 'ननु करोमि भोः' (हाँ जी बनाई है) यह पृष्टप्रतिवचन हुआ, ननु उपपद में है ही अतः करोमि में लट् लकार हो गया है ॥

यहाँ से 'पृष्टप्रतिवचने' की अनुवृत्ति ३।२।१२१ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

नन्वोर्विभाषा ॥३।२।१२१॥

नन्वोः ७।२॥ विभाषा १।१॥ स०—न च नु च, ननू, तयो रेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—पृष्टप्रतिवचने, लट्, भूते, धातोः प्रत्ययः, अर्थः—न, नु इत्येतयोरुपपदयोः पृष्टप्रतिवचनेऽर्थे धातोर्भूते विकल्पेन लट् प्रत्ययो भवति ॥ लुङि प्राप्ते लट् विधीयते, तेन भवति ॥ उदा०—अकार्षीः कटं देवदत्त ? न करोमि भोः। अकार्षीः कटं देवदत्त ? अहं नु करोमि, अहं न्वकार्षम् ॥

भाषार्थः—पृष्टप्रतिवचन अर्थ में धातु से [*नन्वोः*] न, तथा नु रहते सामान्य भूतकाल में [*विभाषा*] विकल्प से लट् प्रत्यय हो सामान्य भूत में लुङ् लकार की प्राप्ति थी लट् विकल्प से वि दिया है, सो पक्ष में लुङ् भी होगा ॥ उदा०—अकार्षीः कटं देव करोमि भोः (देवदत्त ने चटाई बनाई क्या ? नहीं बनाई) अकार्षीः कटं देवदत्त ? अहं नु करोमि, अहं न्वकार्षम् (हाँ मैंने अकार्षीत् की सिद्धि परि० १।१।१ में की है उसी प्रकार जानें, यहाँ मिप् आकर उसको *तस्थस्थमिपां०* (३।४।१०१) से जायेगा ॥

यहाँ से '*विभाषा*' की अनुवृत्ति ३।२।१२२ तक जायेगी ॥

पुरि लुङ् चास्मे ॥३।२।१२२॥

पुरि ७।१॥ लुङ् १।१॥ च अ० ॥ अस्मे ७।१॥ स०—न स्म तस्मिन्…नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—विभाषा, लट्, भूते, प्रत्ययः, परश्च। मण्डूकप्लुतगत्या 'अनद्यतने' अप्यनुवर्त्तते ॥ स्मशब्दरहिते पुराशब्द उपपदे, अनद्यतने भूते काले धातोर्लुङ् विकल्पेन भवति, चकारात् लट् च। पक्षे लङ्लिटौ भवतः ॥ रथेनायं पुराऽयासीत् (लुङ्) रथेनायं पुरा याति। पक्षे पुराऽयात् (लङ्) रथेनायं पुरा ययौ (लिट्) ॥

भाषार्थः—[*अस्मे*] स्म शब्द रहित [*पुरि*] पुरा शब्द उपपद अनद्यतन भूत काल में धातु से [*लुङ्*] लुङ् प्रत्यय विकल्प से है [*च*] चकार से लट् भी होता है ॥ उदा०—रथेनायं पुराऽ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[तृ]

नायं पुरा याति (यह पहले रथ से गया था)। पक्ष में—रथेनायं
ऽयात्। रथेनायं पुरा ययौ ॥ लुङ् का विकल्प होने से पक्ष में
काल के प्रत्यय लङ् और लिट् भी होंगे ॥ अयासीत् की सिद्धि
०८ सूत्र में देखें। ययौ की सिद्धि परि० १।१।५८ के पपौ की तरह
हाँ। लङ् लकार में लुङ्लङ्लृङ्० (६।४।७१) से अट् आगम एवं
कार्य होकर 'अट् या शप् तिप्' = अयात् बना है ॥

वर्त्तमाने लट् ॥३।२।१२३॥

वर्त्तमाने ७।१॥ लट् १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥
अ०—धातोर्वर्त्तमाने (काले) लट् प्रत्ययः परश्च भवति ॥ उदा०—
ति, भवति, पठति ॥

भाषार्थः—धातु से [वर्त्तमाने] वर्त्तमान (काल) में [लट्] लट्
होता है, और वह परे होता है ॥

विशेषः—एक क्रिया के आरम्भ से लेकर समाप्ति पर्यन्त उस
का वर्त्तमान काल माना जाता है ॥

यहाँ से 'वर्त्तमाने' की अनुवृत्ति ३।३।१ तक जायेगी ॥

लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ॥३।२।१२४॥

लटः ६।१॥ शतृशानचौ १।२॥ अप्रथमासमानाधिकरणे ७।१॥ स०—
तृ च शानच् च, शतृशानचौ, इतरेतरद्वन्द्वः। प्रथमया समाना-
करणम्, प्रथमासमानाधिकरणम्, तृतीयातत्पुरुषः। न प्रथमासमाना-
करणम् अप्रथमासमानाधिकरणम्, तस्मिन्·····नञ्तत्पुरुषः ॥
अ०—वर्त्तमाने, धातोः ॥ अर्थः—धातोर्लटः स्थाने शतृशानचावादेशौ
माने काले भवतः, प्रथमान्तेन चेत् तस्य सामानाधिकरण्यं न स्यात् ॥
०—पचन्तं देवदत्तं पश्य। पचमानं देवदत्तं पश्य। पठता कृतम्।
धीनाय देहि ॥

भाषार्थः—[लटः] धातु से लट् के स्थान में [शतृशानचौ] शतृ तथा
च आदेश वर्त्तमान काल में होते हैं, यदि [अप्रथमासमानाधिकरणे]
ना के साथ समानाधिकरण न हो तो ॥ तङानावात्मनेपदम् (१।४।९९)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

से आन = शानच् की आत्मनेपद संज्ञा होती है, अतः शानच् आत्मनेपदी धातुओं से ही होगा, तथा शतृ परस्मैपदी धातुओं से ही होगा। उदा०—पचन्तं देवदत्तं पश्य (पकाते हुए देवदत्त को देखो)। पचन्तं देवदत्तं पश्य। पठता कृतम् (पढ़ते हुए ने किया)। आसीनाय (बैठे हुए के लिए दो)॥

यहाँ से 'लटः शतृशानचौ' की अनुवृत्ति ३।२।१२६ तक जायेगी।

सम्बोधने च ॥३।२।१२५॥

सम्बोधने ७।१॥ च अ०॥ अनु०—लटः, शतृशानचौ, धातोः॥ अर्थः—सम्बोधने च विषये धातोर्लटः स्थाने शतृशानचौ भवतः। उदा०—हे पचन्, हे पचमान॥

भाषार्थः—[सम्बोधने] सम्बोधन विषय में [च] भी धातु के स्थान में शतृ शानच् आदेश होते हैं॥ सम्बोधने च (२।३।४७) सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है, अतः प्रथमासमानाधिकरण होने से शतृ शानच् प्राप्त नहीं थे, विधान कर दिया है॥ उदा०—पचन् (हे पकाते हुए)। हे पचमान॥

लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ॥३।२।१२६॥

लक्षणहेत्वोः ७।२॥ क्रियायाः ६।१॥ स०—लक्षणश्च हेतुश्च हेतू तयोः····इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—लटः, शतृशानचौ, धातोः॥ लक्ष्यते चिह्नयते येन तल्लक्षणम्। हेतुः कारणम्॥ अर्थः—लक्षणहेत्वोरर्थयोर्वर्त्तमानाद् धातोर्लटः स्थाने शतृशानचौ भवतः॥ उदा०—लक्षणे—शयानो भुङ्क्ते बालः। तिष्ठन् मूत्रयति पाश्चात्यः। हेतौ—अधीयानो वसति। उपदिशन् भ्रमति॥

भाषार्थः—[क्रियायाः] क्रिया के [लक्षणहेत्वोः] लक्षण तथा हेतु अर्थों में वर्त्तमान धातु से लट् के स्थान में शतृ, शानच् आदेश होते हैं॥ उदा०—लक्षण में—शयानो भुङ्क्ते बालः (लेटा हुआ बालक खा रहा है)। तिष्ठन् मूत्रयति पाश्चात्यः (खड़ा हुआ पाश्चात्य लघुशङ्का कर रहा है)। हेतु में—अधीयानो वसति (पढ़ने के कारण से रहता है)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दिशन् भ्रमति (उपदेश करने के हेतु से घूमता है) ॥ उदाहरण में
नः क्रिया भुङ्क्ते क्रिया को लक्षित कर रही है, इसी प्रकार तिष्ठन्
मूत्रयति क्रिया, गच्छन् से भक्षयति क्रिया लक्षित हो रही है, अतः
क्रिया के लक्षण में वर्त्तमान शीङ् इत्यादि धातुएँ हैं, सो लट् के
न में शतृ, शानच् आदेश हुए हैं। इसी प्रकार वास करने का
पठन क्रिया है, घूमने का हेतु उपदेश करना है अतः अधीयानः
उपदिशन् हेतु अर्थ में वर्त्तमान हैं, सो शतृ शानच् हो गये हैं ॥

तौ सत् ॥३।२।१२७॥

तौ १।२॥ सत् १।१॥ तौ, इत्यनेन शतृशानचौ निर्दिश्येते ॥ अर्थः—
शतृशानचौ सत्संज्ञकौ भवतः ॥ उदा०—ब्राह्मणस्य कुर्वन् ।
ह्मणस्य कुर्वाणः । ब्राह्मणस्य करिष्यन् । ब्राह्मणस्य करिष्यमाणः ॥

भाषार्थः—[तौ] वे शतृ तथा शानच् [सत्] सत् संज्ञक होते
॥ सत् संज्ञा होने से *पूरणगुणसुहितार्थसद०* (२।२।११) से षष्ठी
स 'ब्राह्मणस्य कुर्वाणः' आदि में नहीं हुआ है। सारी सिद्धि यहाँ
० ३।२।१२४ के समान होगी, केवल करिष्यन्, करिष्यमाणः यहाँ
सद्वा (३।३।१४) से लृट् लकार के स्थान में शतृ शानच् हुए हैं,
लृट् लकार का प्रत्यय स्य (विकरण) भी आयेगा। शेष *सार्वधातुका०*
गुण इत्यादि पूर्ववत् ही होगा। कुर्वन् कुर्वाणः यहाँ 'उ' विकरण तथा
उत्० (६।४।११०) से उत्व हो जायेगा। कुरु आन, णत्व यणादेश
कुर्वाणः बन गया ॥

पूङ्यजोः शानन् ॥३।२।१२८॥

पूङ्यजोः ६।२॥ शानन् १।१॥ स०—पूङ्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥
०—वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पूङ्, यज इत्ये-
भ्यां धातुभ्यां वर्त्तमाने काले शानन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पव-
नः । यजमानः ॥

भाषार्थः—[पूङ्यजोः] पूङ् तथा यज धातुओं से वर्तमान काल में
नन्] शानन् प्रत्यय होता है ॥ शानन् आदि लट् के स्थान में
होते, अतः लादेश नहीं हैं ॥ उदा०—पवमानः (पवित्र करता
आ)। यजमानः (यज्ञ करता हुआ) ॥ सिद्धि परि० ३।२।१२४ की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तरह जानें। केवल यहाँ पूङ् धातु को गुण होकर अवादेश भी यही विशेष है ॥

ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ॥३।२।१२९॥

ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु ७।३॥ चानश् १।१॥ स०—ताच्छील्य वयोवचनञ्च शक्तिश्च, ताच्छील्यवयोवचनशक्तयः, तासु ····· द्वन्द्वः ॥ अनु०—वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ ताच्छील्यं = तत्स्वभावता, वयोवचनम् = शरीरावस्था यौवनादि, सामर्थ्यम्, इत्येतेष्वर्थेषु वर्त्तमानाद्धातोर्वर्त्तमाने काले चानश् भवति ॥ उदा०—कतीह मुण्डयमानाः। कतीह भूषयमाणाः। वयोवच कतीह कवचं पर्यस्यमानाः। कतीह शिखण्डं वहमानाः। शक्ति निघ्नानाः। कतीह पचमानाः ॥

भाषार्थः—[ताच्छी ····· षु] ताच्छील्य, वयोवचन शक्ति इन में वर्त्तमान धातु से वर्त्तमान काल में [चानश्] चानश् प्रत्यय होता उदा०—ताच्छील्य में—कतीह मुण्डयमानाः (कितने यहाँ मुण्डन हुए हैं)। कतीह भूषयमाणाः (कितने यहाँ सजे हुए हैं)। वयोवचन कतीह कवचं पर्यस्यमानाः (कितने यहाँ कवच धारण कर सकते हैं धारण करने से शरीर की अवस्था यौवन का पता चलता है बच्चे या बुड्ढे कवच नहीं धारण कर सकते)। कतीह शिखण्डं वहमानाः (कितने यहाँ चुटिया धारण करने वाले हैं)। शक्ति में— निघ्नानाः (कितने यहाँ मारने वाले हैं)। कतीह पचमानाः (कितने पकाने वाले हैं) ॥

इङ्धार्य्योः शत्रकृच्छ्रिणि ॥३।२।१३०॥

इङ्धार्य्योः ६।२॥ शतृ, लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ अकृच्छ्रिणि स०—इङ् च धारिश्च इङ्धारी तयोः ····· इतरेतरद्वन्द्वः। न अकृच्छ्री, तस्मिन् ····· नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—वर्त्तमाने, धातोः, परश्च ॥ अर्थः—इङ्, धारि इत्येताभ्यां धातुभ्यां वर्त्तमाने काले प्रत्ययो भवति, अकृच्छ्रिणि कर्त्तरि वाच्ये ॥ उदा०—अधीयन् यणम्। धारयन् भारम् ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[इङ्धार्य्योः] इङ् तथा धारि धातु से वर्त्तमान काल [शतृ] शतृ प्रत्यय होता है, यदि [अकृच्छ्रिणि] जिसके लिए क्रिया साध्य न हो ऐसा कर्त्ता वाच्य हो तो ॥ उदा०—अधीयन् पारायणम् पारायण ग्रंथ को सरलता से पढ़ता हुआ)। धारयन् भारम् (भार को न करता हुआ) ॥ अधि इङ् अ नुम् त् यहाँ इयङ् (६।४।७७) से सवर्णदीर्घ होकर, अधीय् अन् त् रहा, संयोगान्त लोप होकर अधी- बन गया। इसी प्रकार धृङ् अवस्थाने (तुदा०आ०) धातु से धारयन् बनेगा। हेतुमति च (३।१।२६) से यहाँ णिच् हो ही जायेगा ॥

यहाँ से 'शतृ' की अनुवृत्ति ३।२।१३३ तक जायेगी ॥

द्विषोऽमित्रे ॥३।२।१३१॥

द्विषः ५।१॥ अमित्रे ७।१॥ स०—न मित्रम् अमित्रं = शत्रुः, नञ्"नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—शतृ, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, ल ॥ अर्थः—अमित्रे कर्त्तरि वाच्ये द्विषधातोः शतृप्रत्ययो भवति, माने काले ॥ उदा०—द्विषन्। द्विषन्तौ ॥

भाषार्थः—[द्विषः] द्विष धातु से [अमित्रे] अमित्र = शत्रु कर्त्ता वाच्य हो शतृ प्रत्यय वर्त्तमान काल में होता है ॥ उदा०—द्विषन् (शत्रु)। न्तौ ॥

सुञो यज्ञसंयोगे ॥३।२।१३२॥

सुञः ५।१॥ यज्ञसंयोगे ७।१॥ स०—यज्ञेन संयोगः, यज्ञसंयोगस्त- र"तृतीयातत्पुरुषः ॥ अनु०—शतृ, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, ल ॥ अर्थः—यज्ञसंयोगे गम्यमाने 'षुञ् अभिषवे' धातोः शतृप्रत्ययो वि, वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—यजमानाः सुन्वन्तः ॥

भाषार्थः—[यज्ञसंयोगे] यज्ञ का संयोग गम्यमान हो तो [सुञः] धातु से वर्त्तमान काल में शतृ प्रत्यय होता है ॥ उदा०—यजमानाः सुन्वन्तः (सोमरस निचोड़ते हुए यजमान)। सिद्धि परि० १।१।५ के चिण्वन्ति की तरह जानें। शतृ के सार्वधातुक होने से श्नु विकरण होगा, भेद केवल इतना है कि यहाँ शतृ प्रत्यय है अतः पूर्व वर्णित की हुई सिद्धियों के समान नुम् आगम होकर 'सुन्वन्त' बन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

गया, अब 'जस्' विभक्ति आकर रुत्व विसर्जनीयादि होकर बन गया ॥

अर्हः प्रशंसायाम् ॥३।२।१३३॥

अर्हः ५।१॥ प्रशंसायाम् ७।१॥ अनु०—शतृ, वर्त्तमाने, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अर्हधातोः प्रशंसायां गम्यमानायां काले शतृप्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अर्हन् इह भवान् विद्याम् इह भवान् पूजाम् ॥

भाषार्थः—[अर्हः] अर्ह धातु से [प्रशंसायाम्] प्रशंसा गम्यमान हो तो वर्त्तमान काल में शतृ प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अर्हन् इह भवान् विद्याम् (आप विद्या पढ़ने के योग्य हैं)। अर्हन् इह भवान् पूजाम् (आप सत्कार के योग्य हैं)। सिद्धि पूर्ववत् है ॥

आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ॥३।२।१३४॥

आ अ० ॥ क्वेः ५।१॥ तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ७।३॥ धात्वर्थः शीलं यस्य स तच्छीलः, बहुव्रीहिः। स धात्वर्थो धर्मो यस्य तद्धर्म बहुव्रीहिः। साधु करोतीति, साधुकारी, तस्य धात्वर्थस्य कर्ता तत्साधुकारी, बहुव्रीहिः। तच्छीलश्च तद्धर्म च तत्साधुकारी तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिणः, तेषु ..... इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अधिकारसूत्रमिदम्। आ एतस्माद् क्विप्संज्ञाशब्दनाद्यान्ति क्रमिष्यामस्तच्छीलादिषु कर्तृषु ते वेदितव्याः ॥ तच्छीलः = फलनिरपेक्षस्तत्र प्रवर्त्तते। तद्धर्म = विनाऽपि स्वभावेन प्रवृत्तः। कारी = तत्कार्यकरणे शिल्पी ॥ उत्तरत्रैवोदाहरिष्यामः ॥

भाषार्थः—यह अधिकार सूत्र है। आजभास० (३।२।१७७) से विहित [आ क्वेः] क्विप् पर्यन्त जितने प्रत्यय कहे हैं, वे सब ....रिषु] तच्छीलादि कर्त्ता हों तो, इस अर्थ में जानने चाहिए। अभिविधि में आङ् है, सो अन्येभ्योऽपि० (३।२।१७८) तक यह जायेगा ॥ तच्छील = फल की आकाङ्क्षा बिना किये स्वभाव इस क्रिया में प्रवृत्त होने वाला। तद्धर्म = स्वभाव के बिना भी कार्य में प्रवृत्त होने वाला। तत्साधुकारी = किसी कार्य को सुन्दर करने वाला, शिल्पी = कारीगर ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तृन् ॥३।२।१३५॥

तृन् १।१॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले धातुमात्रात् तृन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—परुषं वदिता। मृदु वक्ता। तद्धर्म—वेदान् उपदेष्टा। धर्मम् उपदेष्टा। तत्साधुकारी—ओदनं पक्ता। कटं कर्त्ता ॥

भाषार्थः—तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में धातु मात्र से [तृन्] तृन् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—परुषं वदिता (कठोर बोलने के स्वभाव वाला), मृदु वक्ता (नरम बोलने के स्वभाव वाला)। तद्धर्म—वेदान् उपदेष्टा (वेदों का उपदेश करने वाला)। धर्मम् उपदेष्टा। तत्साधुकारी—ओदनं पक्ता (चावल अच्छी तरह पकाने वाला)। कटं कर्त्ता ॥ तृजन्त की सिद्धि हमने परि० १।१।२ में दिखाई है, उसी प्रकार वदिता आदि में जानें ॥ वक्ता में च् को क् होकर कुः (८।२।३०) से होता है। एकाच उपदेशे० (७।२।१०) से इट् आगम का निषेध होता है। उप पूर्वक दिश धातु से पूर्ववत् सब होकर तथा व्रश्चभ्रस्ज० (८।२।३६) से श् को ष् एवं ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से त् को ट् होकर उपदेष्टा भी इसी प्रकार बनेगा। कृदतिङ् (३।१।९३) से ये सब प्रत्ययों की कृत् संज्ञा है, अतः कर्त्तरि कृत् से सब कर्त्ता में होंगे। इसीलिए 'तच्छीलादि कर्त्ता हों तो' ऐसा सर्वत्र अर्थ किया जायेगा ॥

अलंकृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतु-वृधुसहचर इष्णुच् ॥३।२।१३६॥

अलंकृञ्.....चरः ५।१॥ इष्णुच् १।१॥ स०—अलंकृञ् इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अलंपूर्वात् कृञ्, निर् आङ् इत्येवं पूर्वात् कृञ्, प्रपूर्वात् जन, उत्पूर्वात् पच, उत्पूर्वात् पत, उत्पूर्वात् मद, रुचि, अपपूर्वात् त्रप, वृतु, वृधु, सह, चर इत्येतेभ्यो धातुभ्य इष्णुच् प्रत्ययो भवति, वर्त्तमाने काले तच्छीलादिषु कर्त्तृषु ॥ उदा०—अलंकरिष्णुः। निराकरिष्णुः। प्रजनिष्णुः। उत्पचिष्णुः। उत्पतिष्णुः। उन्मदिष्णुः। रोचिष्णुः। अपत्रपिष्णुः। वर्त्तिष्णुः। वर्धिष्णुः। सहिष्णुः। चरिष्णुः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[अलंकृ···चरः] अलं पूर्वक कृञ्, निर् आङ् पूर्वक प्र पूर्वक जन, उत् पूर्वक पच, उत् पूर्वक पत, उत् पूर्वक मद, वि पूर्वक त्रप, वृतु, वृधु, सह, चर इन धातुओं से वर्त्तमान तच्छीलादि कर्त्ता हों तो [इष्णुच्] इष्णुच् प्रत्यय होता है॥ उदा० अलंकरिष्णुः (सजाने के स्वभाव वाला) निराकरिष्णुः (हटाने प्रजनिष्णुः (पैदा करने के स्वभाव वाला)। उत्पचिष्णुः (अच्छा वाला)। उत्पतिष्णुः (ऊपर जाने के स्वभाव वाला)। उन्मा (उन्मादशील)। रोचिष्णुः (चमकने वाला)। अपत्रपिष्णुः रहित)। वर्त्तिष्णुः (रहने वाला)। वर्धिष्णुः (बढ़ने के स्वभाव सहिष्णुः (साहसी)। चरिष्णुः (घूमने के स्वभाव वाला)॥ इष्णु 'इष्णु' अनुबन्ध हटा देने पर रहेगा, जहाँ गुण सम्भव है होकर सारी सिद्धियाँ होंगी। अलंकृ इष्णु = अलंकर् इष्णु करिष्णुः बना॥

यहाँ से 'इष्णुच्' की अनुवृत्ति ३।२।१३८ तक जायेगी॥

णेश्छन्दसि ॥३।२।१३७॥

णेः ५।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—इष्णुच्, तच्छीलतद्धर्मतत्कारिषु, वर्त्तमाने, धातोः प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—ण्यन्तादु विषये तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काल इष्णुच् प्रत्ययो उदा०—दृषदं धारयिष्णवः। वीरुधः पारयिष्णवः (ऋ० १०।९७।३)

भाषार्थः—[णेः] ण्यन्त धातुओं से [छन्दसि] वेद विषय तच्छीलादि कर्त्ता हों तो, वर्त्तमान काल में इष्णुच् प्रत्यय होता है॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।२।१३८ तक जायेगी॥

भुवश्च ॥३।२।१३८॥

भुवः ५।१॥ च अ०॥ अनु०—छन्दसि, इष्णुच्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—भूधातोः उदा विषये, तच्छीलादिषु कर्तृषु वर्त्तमाने काले, इष्णुच् प्रत्ययो भवति उदा०—भविष्णुः॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[भुवः] भू धातु से [च] भी वेद विषय में तच्छीलादि कर्त्ता हों तो, वर्त्तमान काल में इष्णुच् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'भुवः' की अनुवृत्ति ३।२।१३९ तक जायेगी ॥

ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः ॥३।२।१३९॥

ग्लाजिस्थः ५।१॥ च अ० ॥ ग्स्नुः १।१॥ स०—ग्लाश्च, जिश्च, स्थाश्च, ग्लाजिस्थम्, तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—भुवः, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ग्ला, जि, स्था इत्येतेभ्यो धातुभ्यश्चकारात् भुवश्च ग्स्नुप्रत्ययो भवति तच्छीलादिषु कर्त्तृषु, वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—ग्लास्नुः । जिष्णुः । स्थास्नुः । भूष्णुः ॥

भाषार्थः—[ग्लाजिस्थः] ग्ला, जि, स्था तथा [च] चकार से भू धातु भी [ग्स्नुः] ग्स्नु प्रत्यय वर्त्तमान काल में होता है, तच्छीलादि कर्त्ता हों तो ॥ उदा०—ग्लास्नुः (ग्लानि करने वाला) । जिष्णुः । स्थास्नुः (ठहरने वाला) । भूष्णुः ॥ सिद्धियाँ परि० १।१।५ में देखें ॥

त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः ॥३।२।१४०॥

त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः ५।१॥ क्नुः १।१॥ स०—त्रसिश्च गृधिश्च धृषिश्च क्षिपिश्च त्रसि·····क्षिपि, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—त्रसी भयचलनयोः, गृधु अभिकाङ्क्षायाम्, ञिधृषा प्रागल्भ्ये, क्षिप प्रेरणे इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु क्नुः प्रत्ययो भवति वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—त्रस्नुः । गृध्नुः । धृष्णुः । क्षिप्नुः ॥

भाषार्थः—[त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः] त्रसि, गृधि धृषि तथा क्षिप धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो, वर्त्तमान काल में [क्नुः] क्नु प्रत्यय होता है ॥ उदा०—त्रस्नुः, (डरने वाला) । गृध्नुः (लालची) । धृष्णुः (ढीठ) । क्षिप्नुः (प्रेरक) ॥ अनुबन्ध हटने पर क्नु का 'नु' रह जायेगा । सिद्धियों में भी विशेष नहीं है । कित् होने से गुण का *क्ङिति च*(१।१।५) से निषेध हो जायेगा ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शमित्यष्टाभ्यो घिनुण् ॥३।२।१४१॥

शमिति अ० ॥ अष्टाभ्यः ५।३ ॥ घिनुण् १।१॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तच्छील... भ्योऽष्टाभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु घिनुण् प्रत्ययो वर्त्तमाने काले ॥ शमु उपशमे इत्यारभ्य, मदी हर्षे इतियावत् दिवादिषु वर्त्तन्ते ॥ अत्र 'इति' शब्द आद्यर्थकः, तेन शमादिभ्यो वक्तुं शक्यते ॥ उदा०—शमी । तमी । दमी । श्रमी । भ्रमी । क्षमी । प्रमादी । उन्मादी ॥

भाषार्थः—[शमिति] शमादि [अष्टाभ्यः] आठ धातुओं से [तच्छील...] घिनुण् प्रत्यय तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में होवे। 'शमिति' में इति शब्द आदि अर्थ का बोधक है, अतः शमिति आदि शमादि है ॥

यहाँ से घिनुण् की अनुवृत्ति ३।२।१४५ तक जायेगी ॥

सम्पृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीड-विविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहन श्च ॥३।२।१४२॥

सम्पृचा.....हनः ५।१॥ च अ० ॥ स०—सम्पृचश्च... समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—घिनुण्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सम् + पृच, अनु + रुध, आङ् + यम, आङ् + यस, परि + सृ, सम् + सृज, परि + देवि, सम् + ज्वर, परि + क्षिप, परि + रट, परि + वद, परि + दह, परि + मुह, दुष, द्विष, द्रुह, दुह, युज, आङ् + क्रीड, वि + विच, त्यज, रज, भज, अति + चर, अप + चर, आङ् + मुष, अभि आङ् + हन, इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सम्पर्की । अनुरोधी । आयामी । आयासी । परिसारी । संसर्गी । परिदेवी । संज्वारी । परिक्षेपी । परिराटी । परिवादी । परिदाही । परिमोही । दोषी । द्वेषी । द्रोही । दोही ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[शब्दः]

योगी। आक्रीडी। विवेकी। त्यागी। रागी। भागी। अतिचारी। अपचारी। आमोषी। अभ्याघाती॥

भाषार्थः—[सम्पृचा···हनः] सम् पूर्वक पृची सम्पर्के (रुधा० प०) वि पूर्वक रुधिर् आवरणे (रुधा० उ०) आङ् पूर्वक यम उपरमे (भ्वा० प०) आङ् पूर्वक यसु प्रयत्ने (दिवा० प०) परि पूर्वक सृ गतौ (भ्वा०प०) सम् पूर्वक सृज विसर्गे (दिवा० आ०) परि पूर्वक देवृ देवने (भ्वा०आ०) सम् पूर्वक ज्वर रोगे (भ्वा० प०)परि पूर्वक क्षिप प्रेरणे (तुदा०उ०, दिवा० प०) परि पूर्वक रट परिभाषणे (भ्वा०प०) परि पूर्वक वद (भ्वा०प०) परि पूर्वक दह भस्मीकरणे (भ्वा०प०) परि पूर्वक मुह वैचित्ये (दिवा०प०) दुष वैकृत्ये (दिवा० प०) द्विष अप्रीतौ (अदा० उ०) द्रुह जिघांसायाम् (दिवा० प०) दुह प्रपूरणे (अदा० उ०) युजिर् योगे अथवा युज समाधौ (रुधा० उ०, दिवा० आ०) आङ् पूर्वक क्रीड् विहारे (भ्वा०प०) वि पूर्वक विचिर् पृथग्भावे (रुधा० उ०) त्यज हानौ (भ्वा० प०) रञ्ज रागे (दिवा० प०) भज सेवायाम् (भ्वा० उ०) अति पूर्वक चर गतौ (भ्वा० प०) तथा उप पूर्वक चर, मुष स्तेये (क्र्या० प०) अभि तथा आङ् पूर्वक हन (अदा० प०) इन धातुओं से [च] भी तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में घिनुण् प्रत्यय होता है॥ उदा०—सम्पर्की (सम्पर्क करने वाला)। अनुरोधी (अनुरोध करने वाला)। आयामी (विस्तार करने वाला)। आयासी (प्रयत्न करने वाला)। परिसारी (सब जगह जाने वाला)। संसर्गी (संसर्ग करने वाला)। परिदेवी (शोक करने वाला)। संज्वारी (रोगी)। परिक्षेपी (चारों ओर फैंकने वाला)। परिराटी (खूब रटने वाला)। परिवादी (खूब बोलने वाला)। परिदाही (जलाने वाला)। परिमोही (खूब मोह करने वाला)। दोषी (दोष युक्त)। द्वेषी (द्वेष करने वाला)। द्रोही (द्रोह करने वाला)। दोही (दुहने वाला)। योगी (योग करने वाला) आक्रीडी (खूब खेलने वाला)। विवेकी (विवेकशील)। त्यागी (त्याग करने वाला)। रागी (राग करने वाला)। भागी (सेवन करने वाला)। अतिचारी (खूब घूमने वाला)। अभ्याघाती (हिंसक)॥ रञ्ज धातु के अनुनासिक का लोप निपातन से होकर रागी बनता है। सम्पर्की, रागी, त्यागी आदि में पूर्ववत् चजोः कु० (७।३।५२) से कुत्व हो जायेगा। अत उपधायाः (७।२।११६) से आयासी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

आदि में घिनुण् के णित् होने से वृद्धि भी हो जायेगी। सब हि
पूर्व सूत्र के समान ही जानें ॥

वौ कषलसकत्थस्तम्भः ॥३।२।१४३॥

वौ ७।१॥ कषलसकत्थस्तम्भः ५।१॥ स०—कष० इत्यत्र स
द्वन्द्वः ॥ अनु०—घिनुण्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, ह
प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—विशब्द उपपदे, कष हिंसार्थः (भ्वा०
लस श्लेषणक्रीडनयोः (भ्वा० प०) कत्थ श्लाघायाम् (भ्वा० आ०)
विश्वासे (भ्वा० आ०) इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु, व
काले घिनुण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—विकाषी। विलासी। वि
विस्तम्भी ॥

भाषार्थः—[वौ] वि पूर्वक [कषलसकत्थस्तम्भः] कष, लस, क
स्तम्भ इन धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में घि
प्रत्यय होता है ॥ उदा०—विकाषी (मारने वाला)। विलासी (वि
करने वाला)। विकत्थी (आत्मश्लाघा करने वाला)। विस्तम्भी (वि
करने वाला) ॥

यहाँ से 'वौ' की अनुवृत्ति ३।२।१४४ तक जायेगी ॥

अपे च लषः ॥३।२।१४४॥

अपे ७।१॥ च अ०॥ लषः ५।१॥ अनु०—वौ, घिनुण्, तच्छीलत
तत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अपपूर्व
चकारात् विपूर्वाच्च लष कान्तौ, इत्येतस्माद् धातोः वर्त्तमाने
घिनुण् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्त्तृषु ॥ उदा०—अपला
विलाषी ॥

भाषार्थः—[अपे] अप पूर्वक [च] तथा चकार से वि पूर्वक [ल
लष धातु से भी घिनुण् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अपलाषी (लालची
विलाषी (लालची) ॥

प्रे लपसृद्रुमथवदवसः ॥३।२।१४५॥

प्रे ७।१॥ लपसृद्रुमथवदवसः ५।१॥ स०—लप० इत्यत्र स
द्वन्द्वः ॥ अनु०—घिनुण् तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[ग्रः]
[प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्र उपपदे लप व्यक्तायां वाचि (भ्वा० प०) सृ, द्रु गतौ (भ्वा० प०) मथे विलोडने (भ्वा० प०) वद व्यक्तायां वाचि (भ्वा० प०) वस आच्छादने (अदा० आ०) इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्तृषु वर्त्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रलापी। प्रसारी। प्रद्रावी। प्रमाथी। प्रवादी। प्रवासी ॥

भाषार्थः—[प्रे] प्र पूर्वक [लपसृद्रुमथवदवसः] लप, सृ, द्रु, मथ, वद, वस इन धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में घिनुण् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—प्रलापी (प्रलाप करने वाला)। प्रसारी (घूमने वाला)। प्रद्रावी (दौड़ने वाला)। प्रमाथी (मथने वाला)। प्रवादी (खूब बोलने वाला)। प्रवासी (विदेश में रहनेवाला) ॥

निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादि-व्याभाषासूयो वुञ् ॥३।२।१४६॥

निन्द··· ···सूयः १।१, पञ्चम्यर्थे प्रथमा ॥ वुञ् १।१॥ स०—निन्द० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—णिदि कुत्सायाम् (भ्वा० प०) हिंसि हिंसायाम् (रुधा० प०) क्लिशू विबाधने (क्र्या० प०) खादृ भक्षणे (भ्वा० प०) विपूर्वात् णश अदर्शने (दिवा० प०) परि+क्षिप, परि+रट, परि+वादि, परि+आ+भाष व्यक्तायां वाचि, असूय (कण्ड्वा०) इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्तृषु वर्त्तमाने काले वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—निन्दकः। हिंसकः। क्लेशकः। खादकः। विनाशकः। परिक्षेपकः। परिरटकः। परिवादकः। व्याभाषकः। असूयकः ॥

भाषार्थः—[निन्द·····सूयः] निन्द, हिंस इत्यादि धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में [वुञ्] वुञ् प्रत्यय होता है ॥ वुञ् में नित्करण वृद्धि के लिये है ॥ उदा०—निन्दकः (निन्दा करने वाला)। हिंसकः (हिंसा करने वाला)। क्लेशकः (कष्ट देने वाला)। खादकः (खाने वाला)। विनाशकः (नाश करने वाला)। परिक्षेपकः (चारों ओर फैंकने वाला)। परिराटकः (अच्छी तरह रटने वाला)। परिवादकः (चारों ओर से बोलने वाला)। व्याभाषकः (विविध बोलने वाला)। असूयकः (निन्दक) ॥ लप तथा वद पर्यन्त धातुओं से वुञ् होता है, उस णि का णेरनिटि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(६।४।५१) से लोप हो जायेगा, निदि हिसि धातुओं को इदि
(७।१।५८) से नुम् आगम होकर निन्द हिंस बनता है ॥
यहाँ से 'वुञ्' की अनुवृत्ति ३।२।१४८ तक जायेगी ॥

देविक्रुशोश्चोपसर्गे ॥३।२।१४७॥

देविक्रुशोः ६।२॥ च अ० ॥ उपसर्गे ७।१॥ स०—देवि० इ
रेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—वुञ्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, व
धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—दिवु कूजने (चुरा० उ०) अथवा
क्रीडाद्यर्थकः (दिवा० प०) क्रुश आह्वाने, इत्येताभ्यां सोपस
धातुभ्यां तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले वुञ्प्रत्ययो भ
उदा०—आदेवकः । परिदेवकः । आक्रोशकः । परिक्रोशकः ॥

भाषार्थः—[उपसर्गे] सोपसर्ग [देविक्रुशोः] दिव तथा क्रुश
से [च] भी तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में वुञ्
होता है ॥ दिव धातु चुरादि अथवा दिवादि गण की ली गई है।
वाली से तो चुरादिभ्यो णिच् (३।१।२५) से णिच् हो ही जायेगा,
दिवादि वाली से हेतुमति च (३।१।२६) से णिच् लाकर णिजन्त से
लावेगें। पुनः णिच् का पूर्ववत् लोप हो जायेगा ॥ उदा०—आ
(जुआ खेलने वाला)। परिदेवकः (खेलने वाला)। आक्रोशकः (क्रुद्ध
चिल्लाने वाला)। परिक्रोशकः (सबसे चिल्लाने वाला) ॥

चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् ॥३।२।१४८॥

चलनशब्दार्थात् ५।१॥ अकर्मकात् ५।१॥ युच् १।१॥ स०—च
शब्दश्च चलनशब्दौ, तौ अर्थौ यस्य (जातौ एकवचनम्) स
शब्दार्थः (धातुः) तस्मात्.....द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ अनु०—तच्छी
द्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—
केभ्यश्चलनार्थेभ्यः शब्दार्थेभ्यश्च धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु व
काले युच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—चलनः । चोपनः । शब्दार्थेभ्यः
शब्दनः । रवणः ॥

भाषार्थः—[अकर्मकात्] अकर्मक जो [चलनशब्दार्थात्] चल
और शब्दार्थक धातुएँ उनसे तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

युच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—चलनः (चलने वाला)। चोपनः (गति करने वाला)। शब्दार्थकों से—शब्दनः (शब्द करने वाला)। रवः (शब्द करने वाला) ॥ यु को अन युवोरनाकौ (७।१।१) से हो ही जायेगा, रु को गुण तथा अवादेश होकर रवणः बनेगा ॥

यहाँ से 'अकर्मकात्' की अनुवृत्ति ३।२।१४९ तथा 'युच्' की ३।२।१५३ तक जायेगी ॥

अनुदात्तेतश्च हलादेः ॥३।२।१४९॥

अनुदात्तेतः ५।१॥ च अ० ॥ हलादेः ५।१॥ स०—अनुदात्त इत् यस्य स अनुदात्तेत्, तस्मात्.....बहुव्रीहिः। हल् आदौ यस्य स हलादिः, तस्मात्.....बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अकर्मकात्, युच्, तच्छील-तद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनुदात्तेत् यो हलादिरकर्मको धातुस्तस्मात् युच् प्रत्ययो भवति तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—वर्त्तनः। वर्द्धनः। स्पर्द्धनः ॥

भाषार्थः—[अनुदात्तेतः] अनुदात्तेत् जो [हलादेः] हल् आदि वाली अकर्मक धातुएँ उनसे [च] भी तच्छीलादि कर्त्ता हों तो, वर्त्तमान काल में युच् प्रत्यय होता है ॥ वृतु वृधु तथा स्पर्ध धातुएँ, अनुदात्तेत् हलादि तथा अकर्मक हैं, अतः इनसे युच् प्रत्यय हो गया है ॥ उदा०—वर्त्तनः (बरतने वाला)। वर्द्धनः (बढ़ने वाला)। स्पर्द्धनः (स्पर्द्धा करने वाला) ॥

जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः ॥३।२।१५०॥

जुच.....पदः ५।१॥ स०—जुच० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—युच् तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—'जु' इति सौत्रो धातुः। चङ्क्रम्य दन्द्रम्य इति द्वौ धातू। जु, चङ्क्रम्य, दन्द्रम्य, सृ, गृधु अभिकाङ्क्षायां ज्वल सञ्च-लने, शुच शोके, लष कान्तौ, पत्लृ गतौ, पद गतौ इत्येतेभ्यो धातुभ्यः तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले युच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—जवनः। चङ्क्रमणः। द्रन्द्रमणः। सरणः। गर्द्धनः। ज्वलनः। शोचनः। लषणः। पतनः। पदनः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—'जु' यह सौत्र पाठ की धातु है। चङ्क्रम्य यह यङन्त धातुएँ हैं [जुचपदः] जु, चङ्क्रम्य, दन्द्रम्य, ज्वल, शुच, लष, पत, पद, इन धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता वर्त्तमान काल में युच् प्रत्यय होता है॥ उदा०—जवनः (गति वाला)। चङ्क्रमणः (टेढ़े मेढ़े गति करने वाला)। दन्द्रमणः (टेढ़े करने वाला)। सरणः (गति करने वाला)। गर्द्धनः (लालची)। (जलने वाला)। शोचनः (शोक करने वाला)। लषणः (लालची)। (गिरने वाला)। पदनः (गति करने वाला)॥ क्रम तथा द्रम धातु 'यङ्' होकर चङ्क्रम्य दन्द्रम्य नई धातुएँ बनेंगी, जिनकी सिद्धि ३।१।२३ पर देखें। आगे चङ्क्रम्य द्रन्द्रम्य से युच् होकर यु को हो जाता है। *यस्य हलः* (६।४।४९) से 'य' का लोप भी हो जायेगा॥

क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ॥३।२।१५१॥

क्रुधमण्डार्थेभ्यः ५।३॥ च अ०॥ स०—क्रुधश्च मण्डश्च, द्वन्द्वः तौ अर्थौ येषां, ते क्रुधमण्डार्थास्तेभ्यः द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः॥ युच्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—क्रुधार्थेभ्यो मण्डार्थेभ्यश्च धातुभ्यः, तच्छीलादिषु कर्त्तृषु माने काले युच् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—क्रोधनः। रोषणः। मण्डार्थेभ्यः—मण्डनः। भूषणः॥

भाषार्थः—[क्रुधमण्डार्थेभ्यः] क्रुधार्थक तथा मण्डार्थक धातु [च] भी तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में युच् प्रत्यय है॥ उदा०—क्रोधनः (क्रोध करने वाला)। रोषणः (रोष करने वाला)। मण्डार्थकों से—मण्डनः (सजाने वाला)। भूषणः (सजाने वाला)।

न यः ॥३।२।१५२॥

न अ०॥ यः ५।१॥ अनु०—युच्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—यकारान्ताद् धातोः प्रत्ययो न भवति तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले॥ उदा०—क्नूयिता। क्ष्मायिता॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[यः] यकारान्त धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में युच् प्रत्यय [न] नहीं होता है ॥ सामान्य करके अनुदात्तेः० (३।२।१४९) इत्यादि से युच् की प्राप्ति में यह निषेध है ॥ उदा०—क्नूयिता (शब्द करने वाला) क्ष्मायिता (कम्पित होने वाला)। उदाहरण में अनुदात्तेः० (३।२।१४९) से क्नूयी क्ष्मायी से युच् प्राप्त था, निषेध हुआ, तो औत्सर्गिक तृन् (३।२।१३५) से तृन् प्रत्यय हो गया। सेट् होने से इट् आगम हो ही जायेगा ॥ परि० १।१।२ की तरह सिद्धि जानें ॥

यहाँ से 'न' की अनुवृत्ति ३।२।१५३ तक जायेगी ॥

सूददीपदीक्षश्च ॥३।२।१५३॥

सूददीपदीक्षः ५।१॥ च अ०॥ स०—सूद० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—न, युच्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—षूद क्षरणे (भ्वा० आ०), दीपी दीप्तौ, (दिवा० आ०) दीक्ष मौण्ड्ये (भ्वा० आ०) इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्तृषु वर्त्तमाने काले युच् प्रत्ययो न भवति ॥ उदा०—सूदिता। दीपिता। दीक्षिता ॥

भाषार्थः—[सूददीपदीक्षः] षूद, दीपी, दीक्ष इन धातुओं से [च] तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में युच् प्रत्यय नहीं होता ॥ यह भी अनुदात्तेतश्च हलादेः का अपवाद सूत्र है, युच् का प्रतिषेध हो जाने पर पूर्ववत् औत्सर्गिक तृन् हो जाता है ॥ उदा०—सूदिता (क्षरित होने वाला)। दीपिता (प्रदीप्त होने वाला)। दीक्षिता (दीक्षित होने

लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ् ॥३।२।१५४॥

लषपत.....शॄभ्यः ५।१॥ उकञ् १।३॥ स०—लष० इत्यत्रेतरेतर-द्वन्द्वः॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—लष, पत, पद, स्था, भू, वृषु सेचने (भ्वा० प०) हन, कमु कान्तौ (भ्वा० आ०) गम, शॄ हिंसायाम् (क्र्या० प०) इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्तृषु वर्त्तमाने काले उकञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अपलाषुकं वृषलसङ्गतम्। प्रपातुका गर्भा भवन्ति। उपपादुकं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सत्वम्। उपस्थायुका एनं पशवो भवन्ति। प्रभावुकमन्नं भवति। प्र
पर्जन्याः। आघातुकः। कामुकः। आगामुकं वाराणसीं रच्च
किंशारुकं तीक्ष्णमाहुः॥

भाषार्थः—[लष·····शृभ्यः] लष, पत इत्यादि धातुओं से तच्छी
कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में [उकञ्] उकञ् प्रत्यय होता है॥
अपलाषुकं वृषलसङ्गतम् (वृषल की सङ्गति अनुचित होती है)।
गर्भा भवन्ति (गर्भ पतनशील होते हैं)। उपपादुकं सत्त्वम् (
करने वाला पदार्थ)। उपस्थायुका एनं पशवो भवन्ति (इसके
उपस्थित होते हैं)। प्रभावुकमन्नं भवति (प्रभाव करने वाला
प्रवर्षुकाः पर्जन्याः (बरसने वाले बादल)। आघातुकः (हिंसक)।
(काम से पीड़ित) आगामुकं वाराणसीं रच्च आहुः। किंशारुकं
(तीर को तीक्ष्ण कहते हैं)॥ उकञ् के ञित् होने से वृद्धि हो
उपस्थायुकः में *आतो युक्०* (७।३।३३) से युक् का आगम भी
स्त्रीलिङ्ग में टाप् भी होगा॥

जल्पभिक्षकुट्टलुण्ठवृङः षाकन्॥३।२।१५५॥

जल्प·····वृङः ५।१॥ षाकन् १।१॥ *स०*—जल्प० इत्यत्र
द्वन्द्वः॥ *अनु०*—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः
परश्च॥ *अर्थः*—जल्प व्यक्तायां वाचि (भ्वा० प०) भिक्ष
(भ्वा० आ०) कुट्ट छेदनभर्त्सनयोः (चुरा० प०) लुण्ठ स्तेये (
वृङ् सम्भक्तौ (क्र्या० आ०) इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादि
षाकन् प्रत्ययो भवति, वर्त्तमाने काले॥ उदा०—जल्पाकः।
कुट्टाकः। लुण्ठाकः, लुण्टाक इत्येके। वराकः॥

भाषार्थः—[जल्प·····वृङः] जल्पादि धातुओं से तच्छी
हों तो वर्त्तमान काल में [षाकन्] षाकन् प्रत्यय होता है॥
जल्पाकः (व्यर्थ बोलने वाला)। भिक्षाकः (भिक्षा माँगने वाला)।
(छेद करने वाला)। लुण्ठाकः (लूटने वाला) वराकः (बेचारा,
षाकन् का अनुबन्ध हट जाने पर 'आक' रह जाता है। षाकन्
होने से स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में, *षिद्गौरादिभ्यश्च* (४।१।४१)
होगा। वृ आक = वर् आक = वराकः बना है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रजोरिनिः ॥३।२।१५६॥

प्रजोः ५।१॥ इनिः १।१॥ अनुः—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रपूर्वाद् 'जु' (सौत्रो धातुः) धातोः तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काल इनिप्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रजवी, प्रजविनौ ॥

भाषार्थः—[प्रजोः] प्र पूर्वक जु धातु से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में [इनिः] इनि प्रत्यय होता है ॥ प्र जु इन् = प्र जो इन् = प्रजव् इन् सु पूर्ववत् होकर सौ च (६।४।१३) से दीर्घ तथा नकार-लोप आदि पूर्ववत् होकर प्रजवी (भागने वाला) बना है ॥

यहाँ से 'इनिः' की अनुवृत्ति ३।२।१५७ तक जायेगी ॥

जिदक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च ॥३।२।१५७॥

जिद·····सूभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—जिद० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—इनिः, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—जि जये, दृङ् आदरे क्षि क्षये, अथवा क्षि निवासगत्योरपि ग्रहणम्, वि पूर्वात् श्रिञ् सेवायाम्, अतिपूर्वाद् इण् गतौ, वम उद्गिरणे, नञ्पूर्वाद् व्यथ भयसञ्चलनयोः, अभिपूर्वात् अम रोगे, परिपूर्वाद् भू, प्रपूर्वात् षू प्रेरणे इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमानेऽर्थे इनिः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—जयी। दरी। क्षयी। विश्रयी। अत्ययी। वमी। अव्यथी। अभ्यमी। परिभवी। प्रसवी ॥

भाषार्थः—[जिद·····प्रसूभ्यः] जि, दृ, क्षि आदि धातुओं से [च] भी तच्छीलादि कर्त्ता हों तो, वर्त्तमान काल में इनि प्रत्यय होता है ॥ उदा०—जयी (जीतने वाला)। दरी (आदर करने वाला)। क्षयी (राज-यक्ष्मा का रोगी)। विश्रयी (सेवा करने वाला)। अत्ययी (उल्लङ्घन करने वाला)। वमी (वमन करने वाला)। अव्यथी (थोड़ा)। अभ्यमी (रोगी)। परिभवी (पैदा होने वाला)। प्रसवी (प्रेरणा देने वाला) ॥ जयी, क्षयी, आदि में गुण होकर अयादेश हो जायेगा शेष पूर्ववत् है। अति पूर्वक अय् धातु को गुण अयादेश करके 'अति अयी', यणादेश होकर अत्ययी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

बन गया है। अभि अम इनि यहाँ यणादेशादि होकर
बना है॥

स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच् ॥३।२।१५८॥

स्पृहि……द्धाभ्यः ५।३॥ आलुच् १।१॥ स०—स्पृहि० इत्येतेषां द्वन्द्वः॥ ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—स्पृह ईप्सायाम्, गृह, ग्रहणे पत्लृ गतौ, दय दानरक्षणेषु, निपूर्वात् तत्पूर्वाच्च द्रा कुत्सायां गतौ, श्रत्पूर्वाद् धा इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काल आलुच् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—स्पृहयालुः। गृहयालुः। पतयालुः। दयालुः। निद्रालुः। तन्द्रालुः। श्रद्धालुः॥

भाषार्थः—[स्पृहि……द्धाभ्यः] स्पृह, गृह आदि धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में [आलुच्] आलुच् प्रत्यय होता है॥ उदा०—स्पृहयालुः (इच्छा करने वाला)। गृहयालुः (ग्रहण करने वाला)। पतयालुः (पतनशील)। दयालुः (दयाशील)। निद्रालुः (सदा सोने वाला)। तन्द्रालुः (आलसी)। श्रद्धालुः (श्रद्धावान्)॥ स्पृह, गृह, पत ये तीन धातुऐं चुरादि गण में अदन्त पढ़ी हैं, सो णिच् प्रत्यय परे *सनाद्यन्ता धातवः* (३।१।३२) से नयी धातु बनकर आलुच् होगा। आलुच् आदि में णिच् परे रहते *अतो लोपः* (६।४।४८) से इन तीनों के अकार का लोप होगा, अतः *पुगन्तलघू०* (७।३।८६) से जब उपधा को गुण प्राप्त लगेगा, तब यह अकार स्थानिवत् हो जायेगा, तो लघु उपधा न रहने से गुण भी नहीं होगा। आलुच् परे रहते 'स्पृहि' आदि धातुओं को *सार्वधातुका०* (७।३।८४) से गुण एवं अयादेश होकर स्पृहयालु बनेगा॥

दाधेट्सिशदसदो रुः ॥३।२।१५९॥

दाधेट्……सदः ५।१॥ रुः १।१॥ स०—दाश्च धेट् च सिश्च शदश्च सद् च, दाधेट्सिशदसद्, तस्मात्……समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—दा, धेट्, षिञ् बन्धने, शद्लृ शातने, षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले रु प्रत्ययो भवति॥ उदा०—दारुः। धारुः। सेरुः। शद्रुः। सद्रुः॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

भाषार्थः—[दाधेट्सिशदसदः] दा, धेट्, सि, शद्, सद् इन धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में [रुः] रु प्रत्यय हो जाता है। षिन् तथा षदॢ के ष् को धात्वादेः० (६।१।६२) से स् हो जायगा॥ उदा०—दारुः (दानी)। धारुः (पान करने वाला)। सेरुः (बाँधने वाला)। सद्रुः (तेज करने वाला)। सद्रुः (दुःख मानने वाला)॥

सृघस्यदः क्मरच् ॥३।२।१६०॥

सृघस्यदः ५।१॥ क्मरच् १।१॥ स०—सृ० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ तच्छील०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—सृ, घसि, अद् इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले क्मरच् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—सृमरः। घस्मरः। अद्मरः॥

भाषार्थः—[सृघस्यदः] सृ, घसि, अद् इन धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में [क्मरच्] क्मरच् प्रत्यय होता है॥ उदा०—सृमरः (मृग विशेष)। घस्मरः (खाने के स्वभाव वाला, खाऊ) अद्मरः (खाने के स्वभाव वाला)॥ क्मरच् का अनुबन्ध हटने पर 'मर' रूप रह जाता है। कित् होने से गुण निषेध (१।१।५) होता है॥

भञ्जभासमिदो घुरच् ॥३।२।१६१॥

भञ्जभासमिदः ५।१॥ घुरच् १।१॥ स०—भञ्जश्च भासश्च मिद् च भञ्जभासमिद्, तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः॥ तच्छील०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—भञ्ज, भास, मिद् इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु, वर्त्तमाने काले घुरच् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—भङ्गुरं काष्ठम्। भासुरं ज्योतिः। मेदुरः पशुः॥

भाषार्थः—[भञ्जभासमिदः] भञ्ज, भास, मिद इन धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में [घुरच्] घुरच् प्रत्ययो होता है॥ उदा०—भङ्गुरं काष्ठम्। भासुरं ज्योतिः (दीप्तिशील ज्योति)। मेदुरः पशुः (मोटा चिकना पशु)॥ भङ्गुरम् की सिद्धि परि० १।३।८ में देखें। शेष सिद्धि में कुछ भी विशेष नहीं है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

विदिभिदिच्छिदेः कुरच् ॥३।२।१६२॥

विदिभिदिच्छिदेः ५।१॥ कुरच् १।१॥ स०—विदि० इत्यत्र स... द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, ... परश्च ॥ अर्थः—विद, भिद, छिद इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु ... वर्त्तमाने काले कुरच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—विदुरः। भिदुरं ... छिदुरा रज्जुः ॥

भाषार्थः—[*विदिभिदिच्छिदेः*] विद, भिदिर्, छिदिर् इन धातु... तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में [कुरच] कुरच् प्रत्यय ... है ॥ यहाँ विद से ज्ञानार्थक विद का ग्रहण है न कि विद्लृ लाभे ... उदा०—विदुरः (पण्डित)। भिदुरं काष्ठम् (फटने वाली लकड़ी)। छि... रज्जुः (टूटने वाली रस्सी) कुरच् का अनुबन्ध लोप होकर 'उर' ... जाता है ॥

इण्नशजिसर्त्तिभ्यः क्वरप् ॥३।२।१६३॥

इण्... सर्त्तिभ्यः ५।३॥ क्वरप् १।१॥ स०—इण्० इत्यत्रे... द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, ... परश्च ॥ अर्थः—इण्, णश, जि, सृ इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छी... कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले क्वरप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—इत्वरः, ... नश्वरः, नश्वरी। जित्वरः, जित्वरी। सृत्वरः, सृत्वरी ॥

भाषार्थः—[*इण्नशजिसर्त्तिभ्यः*] इण्, णश, जि, सृ इन धातु... तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में [क्वरप्] क्वरप् प्रत्यय ... है ॥ उदा०—इत्वरः (गमनशील) इत्वरी। नश्वरः (नाशवान्) ... जित्वरः (जयशील), जित्वरी। सृत्वरः (गमनशील), सृत्वरी ॥ ... का अनुबन्ध हटकर 'वर' शेष रहता है। इत्वरः जित्वरः, ... क्वरप् के पित् होने से ह्रस्वस्य *पिति कृति०* (६।१।६९) से तुक् ... होता है। कित् होने से उदाहरणों में गुण निषेध हो जा... स्त्रीलिङ्ग में *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होकर इत्वरी आदि ... भी जानें ॥

यहाँ से 'क्वरप्' की अनुवृत्ति ३।२।१६४ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

गत्वरश्च ॥३।२।१६४॥

गत्वरः १।१॥ च अ० ॥ अनु०—करप्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—गत्वर इति निपात्यते। गम-धातोः करप् प्रत्ययः, अनुनासिकलोपश्च निपात्यते तच्छीलादिष्वर्थेषु वर्त्तमाने काले ॥

भाषार्थः—[गत्वरः] गत्वर यह शब्द [च] भी करप् प्रत्ययान्त निपातन किया जाता है। गम्लृ धातु से करप् प्रत्यय तथा, अनुनासिक का लोप, तच्छीलादि अर्थों में वर्त्तमान काल में निपातन किया है॥ क् परे रहते अनुनासिक लोप (६।४।३७) से कहा है, सो करप् परे रहते क् था नहीं था अतः निपातन कर दिया। अनुनासिक लोप हो जाने पर तुक् तुक् आगम हो ही जायेगा। ग तुक् करप् = गत्वरः (गमनशील) ॥

जागरूकः ॥३।२।१६५॥

जागरूकः १।१॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले वर्त्तमानेभ्यो धातोः, 'ऊक' प्रत्ययान्तः जागरूक इति शब्दो निष्पद्यते ॥ कश्चित् जागुरूकः इति सूत्रं प्रतिपादयन्ति (अजमेर अष्टा० भा० पृष्ठे च) ॥

भाषार्थः—[जागरूकः] जागरूक शब्द जागृ धातु से ऊक प्रत्ययान्त बनाते हैं, तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में ॥ ऊक परे रहते जागृ को जागर् गुण होकर जागरूकः (जागरणशील) बना है ॥

यहाँ से 'ऊकः' की अनुवृत्ति ३।२।१६६ तक जायेगी ॥

यजजपदशां यङः ॥३।२।१६६॥

यजजपदशां ६।३॥ यङः ५।१॥ स०—यज० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—ऊकः, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यज, जप, दश, इत्येतेभ्यो यङन्तेभ्यो धातुभ्य ऊक-प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—यायजूकः। जाजपूकः। दन्दशूकः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[यजजपदशाम्] यज, जप, दश इन [यङः] धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में ऊक होता है ॥

यायज्य जञ्जप्य दन्दश्य यङन्त धातु बन कर आगे इनसे प्रत्यय होगा। जञ्जप्य दन्दश्य की सिद्धि परि० ३।१।२४ में देखें। ऊक प्रत्यय के परे रहते यस्य हलः (६।४।४९) से यङ् के य का लोप होकर यायजूकः (खूब यज्ञ करने वाला)। जञ्जपूकः (खूब जप करने वाला)। दन्दशूकः (काटने वाला) बना है। 'यायज्य' की सिद्धि ३।१।२२ के पापठ्यते की तरह जानें ॥

नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः ॥३।२।१६७॥

नमि०·····दीपः ५।१॥ रः १।१॥ स०—नमिश्च कम्पिश्च स्म्यजसश्च कमश्च हिंसश्च दीप् च इति नमि··· ···दीप् तस्मात्··· समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, ऊक प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—णम प्रह्वत्वे शब्दे च, कपि चलने, स्म ईषद्धसने, नञ्पूर्वाद् जसु मोक्षणे, कमु कान्तौ हिसि हिंसायाम्, (दिप० दीपी दीप्तौ इत्येतेभ्यो धातुभ्यो वर्त्तमाने काले तच्छीलादिषु 'रः' प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—नम्रं काष्ठम्। कम्प्रा शाखा। स्मेरं मुखम्। अजस्रं जुहोति। कम्रा युवतिः। हिंस्रो दस्युः। दीप्रं काष्ठम्॥

भाषार्थः—[नमि·····दीपः] नमि कम्पि इत्यादि धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो, वर्त्तमान काल में [रः] र प्रत्यय होता है॥ हिंसि धातुयें इदित् हैं सो इदितो नुम्धातोः (७।१।५८) से नुम् आगम होकर कम्प् हिंस् बनता है ॥ उदा०—नम्रं काष्ठम् (नरम काष्ठ)। कम्प्रा शाखा (हिलने वाली शाखा)। स्मेरं मुखम् (हँसने वाला मुख)। अजस्रं जुहोति (निरन्तर याग करता है)। कम्रा युवतिः (सुन्दर युवती)। हिंस्रो दस्युः (हिंसक दस्यु)। दीप्रं काष्ठम् (जलती हुई लकड़ी)॥

सनाशंसभिक्ष उः ॥३।२।१६८॥

सनाशंसभिक्षः ५।१॥ उः १।१॥ स०—सन् च आशंसश्च भिक्षश्च सनाशंसभिक्षः, तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्म

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[सूत्रः]

साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सन् इति सन्नन्तस्य ग्रहणं न तु सन् धातोः। सन्नन्तेभ्यो धातुभ्य आङः शसि च्छायाम् (भ्वा० आ०) भिक्ष भिक्षायां लाभे अलाभे च (भ्वा० आ०) धातुभ्याम् उः प्रत्ययो भवति तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने कर्त्तरि ॥ उदा०—चिकीर्षुः कटम्। वेदं जिज्ञासुः। व्याकरणं पिपठिषुः। आशंसुः। भिक्षुः ॥

भाषार्थः—[सनाशंसभिक्षः] सन्नन्त धातुओं से तथा आङ् पूर्वक शंस, एवं भिक्ष धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में [उः] उ प्रत्यय होता है ॥ उदा०—चिकीर्षुः कटम् (चटाई बनाने की इच्छा वाला)। वेदं जिज्ञासुः (वेद को जानने की इच्छा वाला)। व्याकरणं पिपठिषुः (व्याकरण पढ़ने की इच्छा वाला)। आशंसुः (इच्छा करने के स्वभाव वाला)। भिक्षुः (भिक्षा करने के स्वभाव वाला) ॥ परि० १।१।५७ की तरह 'चिकीर्ष' की सिद्धि होकर उ प्रत्यय होगा, इसी तरह ज्ञा धातु से, सन्नन्त जिज्ञास धातु परि० १।३।५७ की तरह होगी, पठ धातु से सन्नन्त में पिपठिष धातु बनकर पिपठिषुः बन जायेगा। सर्वत्र सन् के स के 'अ' का लोप 'उ' प्रत्यय के परे रहते अतो लोपः (६।४।४८) से होगा ॥ आङ् पूर्वक शसि धातु के इदित् होने से इदितो नुम्धातोः से नुम् होकर 'आशंस्' बना। आशंस् उ सु = आशंसुः, भिक्ष् उ सु = भिक्षुः बन गया ॥

यहाँ से 'उः' की अनुवृत्ति ३।२।१७० तक जायेगी ॥

विन्दुरिच्छुः ॥३।२।१६९॥

विन्दुः १।१॥ इच्छुः १।१॥ अनु०—उः, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—विन्दुरित्यत्र विद ज्ञाने इत्यस्य प्रत्ययस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले निपात्यते नुमागमश्च। इच्छुः इत्यत्र इषु इच्छायाम् (तुदा० प०) धातोः, उकारप्रत्ययः, छत्वं च निपात्यते, छत्वे कृते छे च (६।१।७१) इति तुगागमो श्चुत्वं च भवत्येव ॥

भाषार्थः—[विन्दुः] विन्दुः यहाँ विद् धातु से, तच्छीलादि अर्थों में, वर्त्तमान काल में उ प्रत्यय तथा विद को नुम् का आगम निपातन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

किया जाता है। इसी प्रकार [इच्छुः] इच्छु यहाँ भी इषु धातु से प्रत्यय तथा इष् के 'ष्' को 'छ्' निपातन से हुआ है। अत पश्चात् छे च से तुक् आगम तथा श्चुत्व ८।४।३९ से हो ही उदा०—वेदनशीलो विन्दुः (ज्ञानशील)। एषणशीलो इच्छुः (इच्

क्याच्छन्दसि ॥३।२।१७०॥

क्यात् ५।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—उः, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—क्य इत्येतेन (३।१।८) क्यङ् (३।१।११) क्यष् (३।१।१३) इत्येतेषां ग्रहणम्। क्यप्रत्ययान्ताद् धातोस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने छन्दसि विषये उः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—देवयुः (ऋ० सुम्नयुः (ऋ० १।७९।१०,२।३०।११,६।२।३)। अघायवः (य० ११।७९) ॥

भाषार्थः—[क्यात्] क्य प्रत्ययान्त धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता वर्त्तमान काल में [छन्दसि] वेद विषय में उ प्रत्यय होता है॥ यहाँ क्यच् क्यङ् क्यष् इन तीनों का ग्रहण है। देव सुम्न शब्द से सुप आत्मनः क्यच् (३।१।८) से क्यच् प्रत्यय होकर 'सुम्नय' अघाय सनाद्यन्ता धातवः (३।१।३२) से धातुयें बन गईं। प्रकृत सूत्र से देवयुः सुम्नयुः तथा बहुवचन में अघायवः बना। सुम्नय यहाँ क्यचि च (७।४।३३) से ईत्व प्राप्त था, पर न च्छन्दसि (७।४।३५) से निषेध हो गया। 'अघाय' यहाँ क्यच् परे अश्वाघस्यात् (७।४।३७) से 'अघ' के 'घ' को आत्व हो जाता है॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।२।१७१ तक जायेगी॥

आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च ॥३।२।१७१॥

आदृगमहनजनः ५।१॥ किकिनौ १।२॥ लिट् १।१॥ च अ० स०—आद० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः। किकिनौ, इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्व अनु०—छन्दसि, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषय आत् = आकारान्तेभ्यः, ऋ = रान्तेभ्यः, गम, हन, जन इत्येतेभ्यश्च धातुभ्यस्तच्छीलादिषु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[ह]न्]
मानाने काले किकिनौ प्रत्ययौ भवतः, लिड्वत् च तौ (प्रत्ययौ) भवतः ॥
दिति कार्यातिदेशः ॥ उदा०—पपिः सोमं ददिर्गाः (ऋ०
२१४)। मित्रावरुणौ ततुरिः। दूरे ह्यध्वा जगुरिः (ऋ० १०।१०८।१)।
मिर्युवा (ऋ० ७।२०।१) जघ्निर्वृत्रम् (ऋ० ९।६१।२०) जज्ञिर्बीजम् ॥

भाषार्थः—[आहगमहनजनः] आत् = आकारान्त, ऋ = ऋकारान्त,
गम, हन, जन धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वेद विषय में
मान काल में [किकिनौ] कि तथा किन् प्रत्यय होते हैं, [च] और
कि, किन् प्रत्ययों को [लिट्] लिट्वत् कार्य होता है। कि तथा
न् प्रत्ययों में स्वर में ही विशेष है रूप तो इनका एक जैसा ही बनेगा,
उदाहरण पृथक्-पृथक् नहीं दिखाये हैं ॥

स्वपितृषोर्नजिङ् ॥३।२।१७२॥

स्वपितृषोः ६।२॥ नजिङ् १।१॥ स०—स्वपि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥
नु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥
र्थः—ष्विप् शये, ञितृषा पिपासायाम् इत्येताभ्यां धातुभ्यां तच्छी-
रिषु कर्तृषु वर्त्तमाने काले नजिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—
प्नक्। तृष्णक् ॥

भाषार्थः—[स्वपितृषोः] स्वप् तथा तृष् धातुओं से तच्छीलादि
र्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में [नजिङ्] नजिङ् प्रत्यय होता है ॥
प्+नज्,' 'तृष्+नज्,' यहाँ चोः कुः (८।२।३०) से ज् को ग्
था वाऽवसाने (८।४।५५) से क् एवं रषाभ्यां नो० (८।४।१) से
त होकर स्वप्नक् (सोने के स्वभाव वाला) तृष्णक् (पिपासु)
ता है ॥

शृवन्द्योरारुः ॥३।२।१७३॥

शृवन्द्योः ६।२॥ आरुः १।१॥ स०—शृ च वन्दिश्च शृवन्दी, तयोः···
तरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः,
त्ययः, परश्च ॥ अर्थः—शृ हिंसायाम्, वदि अभिवादनस्तुत्योः, इत्ये-
भ्यां धातुभ्यां तच्छीलादिषु कर्तृषु वर्त्तमाने काले आरुः प्रत्ययो
वति ॥ उदा०—शरारुः। वन्दारुः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*शृवन्द्योः*] शृ तथा वदि धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो, वर्त्तमान काल में [*आरुः*] आरु प्रत्यय होता है॥ *इदितो नुम्०* (७।१।५८) से नुम् होकर वन्द् बनेगा। शृ को श् होकर शर् आरु = शरारुः (हिंसा करने वाला)। वन्द् आरु = वन्दारुः (वन्दना करने वाला) बनेगा॥

भियः क्रुक्लुकनौ ॥३।२।१७४॥

भियः ५।१॥ क्रुक्लुकनौ १।२॥ *स०*—क्रुश्च क्लुकन् च, क्रुक्लुकन् इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—भिभी भये इत्येतस्माद् धातोः तच्छीलादि कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले क्रु क्लुकन् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः॥ *उदा०*—भीरुः। भीलुकः॥

भाषार्थः—[*भियः*] भी धातु से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो, वर्त्तमान काल में [*क्रुक्लुकनौ*] क्रु तथा क्लुकन् प्रत्यय हो जाते हैं॥ *उदा०*—भीरुः (डरपोक) भीलुकः (डरपोक)॥ अनुबन्ध हटने पर क्रु का 'रु' और क्लुकन् का 'लुक' रूप शेष रहता है॥ उभयत्र कित् होने से गुण निषेध हो जाता है॥

स्थेशभासपिसकसो वरच् ॥३।२।१७५॥

स्थे·····कसः ५।१॥ वरच् १।१॥ *स०*—स्थाश्च, ईशश्च, भासश्च, पिसश्च, कस् च, स्थेशभासपिसकस्, तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—ष्ठा गतिनिवृत्तौ, ईश ऐश्वर्ये, भासृ दीप्तौ, पिसृ गतौ, कसृ गतौ इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने, काले वरच् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—स्थावरः। ईश्वरः। भास्वरः। पेस्वरः। कस्वरः॥

भाषार्थः—[*स्थेशभासपिसकसः*] स्था, ईश आदि धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में [*वरच्*] वरच् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—स्थावरः (जड़)। ईश्वरः (स्वामी)। भास्वरः (सूर्य)। पेस्वरः (गतिशील)। कस्वरः (गतिशील)॥ वरच् का 'वर' रूप शेष रहता है॥ स्थावरः यहाँ *एकाच उपदेशे०* (७।२।१०) से इट् निषेध होता है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[...]स्वरः इत्यादि शेष शब्दों में नेड् वशि कृति (७।२।८) से निषेध [...]ता है ॥

यहाँ से 'वरच्' की अनुवृत्ति ३।२।१७६ तक जायेगी ॥

यश्च यङः ॥३।२।१७६॥

यः ५।१॥ च अ० ॥ यङः ५।१॥ अनु०—वरच् तच्छीलतद्धर्म-[...]साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—या प्रापणे, [...]मात् यङन्ताद् धातोस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले वरच् [...]त्ययो भवति ॥ उदा०—यायावरः ॥

भाषार्थः—[यङः] यङन्त [यः] या प्रापणे धातु से [च] भी तच्छी-[...]दि कर्त्ता हों तो वर्त्तमान काल में वरच् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि [...]रि० १।१।५७ में देखें ॥

भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् ॥३।२।१७७॥

भ्राज०.....स्तुवः ५।१॥ क्विप् १।१॥ स०—भ्राज० इत्यत्र समा-[...]रो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, [...]त्ययः परश्च ॥ अर्थः—भ्राजृ दीप्तौ, भासृ दीप्तौ, धुर्वी हिंसार्थः, द्युत दीप्तौ, [...]र्ज बलप्राणनयोः, पॄ पालनपूरणयोः जु सौत्रो धातुः, ग्रावपूर्वात् ष्टुञ् [...]तुतौ इत्येतेभ्यो धातुभ्यः क्विप् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्त्तृषु [...]र्त्तमाने काले ॥ उदा०—विभ्राट्, विभ्राजौ । भाः, भासौ । धूः, धुरौ । [...]विद्युत् । ऊर्क्, ऊर्जौ । पूः, पुरौ । जूः, जुवौ । ग्रावस्तुत्, ग्रावस्तुतौ ॥

भाषार्थः—[भ्राजभा ·· स्तुवः] भ्राज, भास आदि धातुओं से तच्छी-[...]दि कर्त्ता हों तो, वर्त्तमान काल में [क्विप्] क्विप् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'क्विप्' की अनुवृत्ति ३।२।१७९ तक जायेगी ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥३।२।१७८॥

अन्येभ्यः ५।३॥ अपि अ० ॥ दृश्यते क्रियापदम् ॥ अनु०—क्विप्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अन्येभ्योऽपि धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले क्विप् प्रत्ययो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दृश्यते। यतो विहितस्ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥ उदा०—पक्तीति भिनत्तीति भित्। छित्। युक्॥

भाषार्थः—[*अन्येभ्यः*] अन्य धातुओं से [*अपि*] भी तच्चोदः हों तो वर्त्तमान काल में क्विप् प्रत्यय [*दृश्यते*] देखा जाता है। पूर्व सूत्र में जिन धातुओं से क्विप् विधान किया है, उनसे धातुओं से भी देखा जाता है॥ उदा०—पक् (पकाने वाला)। (तोड़ने वाला)। छित् (छेदने वाला)। युक् (जोड़ने वाला)॥ धातुओं को चोः कुः (८।२।३०) से कुत्व हो जायगा। भिदिर् द् को त् वावसाने (८।४।५५) से हो जायेगा॥

भुवः संज्ञान्तरयोः ॥३।२।१७९॥

भुवः ५।१॥ संज्ञान्तरयोः ७।२॥ स०—संज्ञा० इत्यत्रेतरेतर अनु०—क्विप्, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—[संज्ञायाम्, अन्तरे च गम्यमाने वर्त्तमाने काले क्विप् प्रत्ययो उदा०—विभूः। स्वयम्भूः। अन्तरे—प्रतिभूः॥

भाषार्थः—[*भुवः*] भू धातु से [*संज्ञान्तरयोः*] संज्ञा तथा अन्तर मान हो तो वर्त्तमान काल में क्विप् प्रत्यय होता है॥ अन्तर का बीचबिचाव करने वाला जामिन॥ उदा०—विभूः (किसी का नाम स्वयम्भूः (ईश्वर) अन्तर में—प्रतिभूः (जामिन)॥

यहाँ से 'भुवः' की अनुवृत्ति ३।२।१८० तक जायेगी॥

विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम् ॥३।२।१८०॥

विप्रसम्भ्यः ५।३॥ ड्वु १।१॥ असंज्ञायाम् ७।१॥ स०—विप्र० इत्ये रेतरद्वन्द्वः। न संज्ञा असंज्ञा, तस्याम्··· ···नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०— वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—वि, प्र, सम् इत्येतेभ्यः भूधातोः ड्वुः प्रत्ययो भवत्यसंज्ञायां गम्यमानायां वर्त्तमाने उदा०—विभुः। प्रभुः। सम्भुः॥

भाषार्थः—[*असंज्ञायाम्*] संज्ञा गम्यमान न हो तो, [*विप्रसंभ्यः*] प्र, तथा सम् पूर्वक भू धातु से [ड] ड्वु प्रत्यय होता है वर्त्तमान

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

॥ डित् होने से *डित्यभस्यापि टेर्लोपः* इस वार्त्तिक से भू के टि भाग (ऊ) का लोप होकर विभ् उ = विभुः (व्यापक)। प्रभुः (स्वामी)। प्रभुः (उत्पन्न होने वाला) आदि बन गया ॥

धः कर्मणि ष्ट्रन् ॥३।२।१८१॥

धः ५।१॥ कर्मणि ७।१॥ ष्ट्रन् १।१॥ अनु०—वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—'धः' इत्यनेन धेट् डुधाञ् इति द्वौ निर्दिश्येते। 'धा' धातोः कर्मणि कारके ष्ट्रन् प्रत्ययो भवति वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—धीयते असौ धात्री।

भाषार्थः—[धः] धा धातु से [*कर्मणि*] कर्म कारक में [ष्ट्रन्] ष्ट्रन् प्रत्यय होता है, वर्त्तमान काल में ॥ धा से यहाँ धेट् तथा डुधाञ् दोनों का ग्रहण है ॥ ष्ट्रन् में षित्करण *षिद्गौ०* (४।१।४१) से ङीष् करने के लिये है। ष्ट्रन् के षकार की इत् संज्ञा हो जाने पर ष्टुत्व होकर जो 'त्' को ट् हो गया था, वह भीं हटकर त् रह जाता है सो ष्ट्रन् का 'त्र' शेष रहता है। धेट् से धात्री बनाने पर *आदेच उपदे०* (६।१।४४) से 'धे' को आत्व हो जायेगा। धात्र ई, यहाँ *यस्येति च* (६।४।१४८) से त्र के अ का लोप होकर धात्री (स्तन पान कराने वाली तथा रोगी की परिचर्या करने वाली) बना है ॥

यहाँ से 'ष्ट्रन्' की अनुवृत्ति ३।२।१८३ तक जायेगी ॥

दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ॥३।२।१८२॥

दाम्नी·····नहः ५।१॥ करणे ७।१॥ स०—दाप् च नी च शसश्च-तुश्च युजश्च स्तुश्च तुदश्च सिश्च सिचश्च मिहश्च पतश्च दशश्च नह् च = दाप्·····नह्, तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—ष्ट्रन्, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—दाप् लवने, णीञ् प्रापणे, शसु हिंसायाम्, यु मिश्रणे, युजिर् योगे, ष्टुञ् स्तुतौ, तुद व्यथने, षिञ् बन्धने, षिच क्षरणे, मिह सेचने, पत्लृ गतौ, दंश दशने, णह बन्धने, इत्येतेभ्यो धातुभ्यः करणे कारके ष्ट्रन् प्रत्ययो भवति, वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—दान्त्यनेनेति दात्रम्। नयन्ति प्राप्नुवन्त्यनेनेति नेत्रम्। शस्त्रम्।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

योक्त्रम्। स्तोत्रम्। तोत्रम्। सेत्रम्। सेक्त्रम्। मेढ्रम्। पत्रम्। दंष्ट्रा। नद्ध्रम्॥

भाषार्थः—[दाम्नी·····नहः] दाप्, णी, शसु आदि धातु [करणे] करण कारक में ष्ट्रन् प्रत्यय वर्त्तमान काल में होता है उदा०—दात्रम् (दराँती) नेत्रम् (आँख)। शस्त्रम् (औजार) योक्त्रम् (जुए को हल से बाँधने की रस्सी) स्तोत्रम् (स्तुति) तोत्रम् (जिससे पीड़ा दिया जाय)। सेत्रम् (बन्धन)। सेक्त्रम् (सींचा जाय)। मेढ्रम् (बादल)। पत्रम् (वाहन)। दंष्ट्रा (दाढ़)। नद्ध्रम् (बन्धन)॥

यहाँ से 'करणे' की अनुवृत्ति ३।२।१८६ तक जायेगी॥

हलसूकरयोः पुवः ॥३।२।१८३॥

हलसूकरयोः ७।२॥ पुवः ५।१॥ स०—हल० इत्यत्रेतरेतर० अनु०—करणे, ष्ट्रन्, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—पूङ्पूञोः सामान्येन ग्रहणम्॥ पूधातोः करणे कारके ष्ट्रन् प्रत्ययो तच्चेत् करणं हलसूकरयोरवयवो भवति वर्त्तमाने काले॥ उदा० हलस्य पोत्रम् सूकरस्य पोत्रम्॥

भाषार्थः—[पुवः] पू धातु से करण कारक में ष्ट्रन् प्रत्यय वर्त्तमान काल में होता है यदि वह करण कारक [हलसूकरयोः] हल तथा सूकर का अवयव हो तो॥ पू से पूङ् पूञ् दोनों का ग्रहण है॥ उदा० हलस्य पोत्रम् (हल का अगला भाग)। सूकरस्य पोत्रम् (सुअर का अगला भाग)॥

अर्त्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ॥३।२।१८४॥

अर्त्ति·····चरः ५।१॥ इत्रः १।१॥ स०—अर्त्तिश्च, लूश्च, धूश्च, सूश्च, खनश्च, सहश्च, चर् च, अर्त्ति·····चर्, तस्मात्·····द्वन्द्वः॥ अनु०—करणे, वर्त्तमाने, धातोः प्रत्ययः, परश्च॥ ऋ गतौ, लूञ् छेदने, धू विधूनने, षू प्रेरणे, खनु अवदारणे, षह मर्षणे, गतिभक्षणयोः इत्येतेभ्यो धातुभ्यः करणे कारके इत्रप्रत्ययो भवति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[इत्रः]

काले ॥ उदा०—इयर्त्यनेन = अरित्रम् । लवित्रम् । धवित्रम् । वित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् ॥

भाषार्थः—[अर्तिलू……चरः] ऋ, लू, धू आदि धातुओं से करण कारक में, [इत्रः] इत्र प्रत्यय वर्त्तमान काल में होता है ॥ कृत् संज्ञक होने से ये सब प्रत्यय कर्त्ता (३।४।६७) में प्राप्त थे, करण में विधान कर दिये हैं ॥ उदा०—अरित्रम् (चप्पू) । लवित्रम् (चाकू) । धवित्रम् (धोबी)। सवित्रम् (प्रेरणा देने वाला) । खनित्रम् (रम्बा, फावड़ा) । सहित्रम् (सहने वाला) । चरित्रम् (चरित्र) ॥ यथाप्राप्त गुण अवादि आदेश होकर 'लवित्रम्' आदि की सिद्धि जानें ॥

यहाँ से 'इत्रः' की अनुवृत्ति ३।२।१८६ तक जायेगी ॥

पुवः संज्ञायाम् ॥३।२।१८५॥

पुवः ५।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ अनु०—इत्रः, करणे, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—संज्ञायां गम्यमानायां पूधातोः करणे कारके प्रत्ययो भवति वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—पवित्रं दर्भः । पवित्रं कुशानौ ॥

भाषार्थः—[पुवः] पू धातु से [संज्ञायाम्] संज्ञा गम्यमान हो तो करण कारक में वर्त्तमान काल में इत्र प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पवित्रं दर्भः (यज्ञ का विशेष दर्भ जो अँगूठे में पहना जाता है) । पवित्रं कुशानौ ॥

यहाँ से 'पुवः' की अनुवृत्ति ३।२।१८६ तक जायेगी ॥

कर्त्तरि चर्षिदेवतयोः ॥३।२।१८६॥

कर्त्तरि ७।१॥ च अ० ॥ ऋषिदेवतयोः ७।२॥ स०—ऋषि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—पुवः, इत्रः, करणे, वर्त्तमाने, धातोः प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पूधातोः 'ऋषौ' करणे, देवतायाञ्च कर्त्तरि, वर्त्तमाने काले इत्रप्रत्ययो भवति ॥ यथासङ्ख्यं ऋषिदेवतयोः सम्बन्धः ॥ उदा०—पूयतेऽनेनेति, पवित्रोऽयम् ऋषिः । देवतायाम्—अग्निः पवित्रं मां पुनातु ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—पू धातु से [*ऋषिदेवतयोः*] ऋषि को कहना हो तो कारक में [च] तथा देवता को कहना हो तो [*कर्त्तरि*] कर्त्ता प्रत्यय वर्त्तमान काल में होता है ॥ यहाँ करण तथा कर्त्ता के देवता का यथासङ्ख्य करके सम्बन्ध है ॥ उदा०—पवित्रोऽग्निः (जिसके द्वारा पवित्र किया जाय वह मन्त्र)। देवता में—अग्निः स मां पुनातु (अग्नि पवित्र है वह मेरी रक्षा करे)॥

जीतः क्तः ॥३।२।१८७॥

जीतः ५।१॥ क्तः १।१॥ *स०*—ञि इत् यस्य स जीत्, तस्मात् बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—धातोर्वर्त्तमाने काले क्तः प्रत्ययो भवति ॥ सर्वधातुभ्यो भूते विहितो वर्त्तमाने न प्राप्नोति, अतोऽयमारभ्यते ॥ उदा०—ञिक्ष्विदा—क्ष्विण्णः। ञिधृषा—धृष्टः॥

भाषार्थः—[*जीतः*] ञि जिसका इत् जाये ऐसी धातु से वर्त्तमान काल में [क्तः] क्त प्रत्यय होता है ॥ भूतकाल में सब धातुओं से (३।२।१०२) प्रत्यय कहा है, सो वर्त्तमान काल में नहीं प्राप्त था, यह सूत्र बनाया ॥ सिद्धियाँ परि० १।३।५ में देखें ॥

यहाँ से 'क्तः' की अनुवृत्ति ३।२।१८८ तक जायेगी ॥

मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ॥३।२।१८८॥

मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—मतिश्च, बुद्धिश्च च, मतिबुद्धिपूजाः, मतिबुद्धिपूजा अर्था येषां ते मतिबुद्धिपूजार्थास्तेभ्यः.....द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—क्तः, वर्त्तमाने, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—मतिः इच्छा, बुद्धिर्ज्ञानम्, पूजा सत्कारः, मत्यर्थेभ्यो बुद्ध्यर्थेभ्यः पूजार्थेभ्यश्च धातुभ्यो वर्त्तमाने काले क्तः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मत्यर्थेभ्यः—राज्ञां मतः। राज्ञाम् इष्टः। बुद्ध्यर्थेभ्यः—राज्ञां बुद्धः। राज्ञां ज्ञातः। पूजार्थेभ्यः—राज्ञां पूजितः ॥

भाषार्थः—[*मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः*] मत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक तथा पूजार्थक धातुओं से [च] भी वर्त्तमान काल में क्त प्रत्यय होता है। मति=इच्छा। बुद्धि=ज्ञान। पूजा=सत्कार ॥ राज्ञाम् में कर्तरि षष्ठी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Initiative

]
३।१७) से षष्ठी विभक्ति होती है, तथा क्तेन च पूजायाम् (२।२।१२)
ष्ठी समास का निषेध होता है। मन् धातु से क्त प्रत्यय होकर
च उपदेशे० (७।२।१०) से इट् निषेध तथा अनुदात्तोपदेश० (६।४।३७)
नुनासिक लोप होकर मतः बनेगा। इष्टः की सिद्धि परि० १।१।४४ में
, केवल इष्टः में इस सूत्र से क्त होगा, यही विशेष है। बुध
से क्त को, झषस्त० (८।२।४०) से धत्व तथा झलां जश् झशि
४।२) से ध् को द् होकर बुद्धः बना है। पूज् धातु से, पूज् इट्
=पूजितः, तथा ज्ञा धातु से ज्ञा क्त = ज्ञातः बन ही जायेगा॥

॥ इति द्वितीयः पादः ॥

—:०:—

॥ तृतीयः पादः ॥

उणादयो बहुलम् ॥३।३।१॥

उणादयः १।३॥ बहुलम् १।१॥ स०—उण् आदिर्येषां ते उणादयः, बहुव्रीहिः॥ अनु०—वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उणादयः प्रत्यया वर्त्तमाने काले, धातुभ्यो बहुलं भवन्ति॥ उदा०—करोतीति कारुः। वाति गच्छति जानाति वेति वायुः। पाति रक्षतीति पायुः। जायुः। मायुः। स्वादुः। साधुः। आशुः॥

भाषार्थः—धातुओं से [उणादयः] उणादि प्रत्यय वर्तमान काल में बहुलम्] बहुल करके होते हैं॥ उदा०—कारुः (शिल्पी)। वायुः (पवन अथवा परमेश्वर)। पायुः (गुदा)। जायुः (औषध)। मायुः (पित्त)। स्वादुः (खाने योग्य अन्न)। साधुः (सज्जन)। आशुः (शीघ्र चलने वाला)। उदाहरणों में कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् (उणा० १।१) से उण् प्रत्यय हुआ है। वा, पा, मा (मि) धातुओं को आतो युक्चिण्कृतोः (७।३।३३) से युक् आगम होकर वायुः पायुः, मायुः बना है। कृ, जि धातुओं को अचो ञ्णिति से वृद्धि एवं आयादेश होकर कारुः, जायुः बना है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उणादि प्रत्ययों का विधान थोड़ी सी धातुओं से किया है
औरों से भी है, अतः यहाँ बहुल कहा है, सो बहुल कहने
देख कर जिन धातुओं से किसी प्रत्यय का विधान नहीं भी
तो भी वह हो जायेगा। यथा *हृषेरुलच्* (*उणा०* १।९६) से
उलच् प्रत्यय कहा है, परन्तु बहुल कहने से शङ्कुला शब्द
के लिये, शकि धातु से भी उलच् प्रत्यय हो गया है। इसी
प्रत्यय नहीं भी कहे उनका भी प्रयोग (शिष्ट प्रयोग) देख
से विधान हो जायेगा। यथा—ऋ धातु से फिड और फिड
कहे तो भी ये प्रत्यय होकर ऋफिड, और ऋफिड्ड प्रयोग
महाभाष्य में इसका विशद रूप से व्याख्यान किया है॥

यहाँ से '*उणादयः*' की अनुवृत्ति ३।३।३ तक जायेगी॥

भूतेऽपि दृश्यन्ते ॥३।३।२॥

भूते ७।१॥ अपि अ० ॥ दृश्यन्ते क्रियापदम्॥ अनु०—
धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भूते कालेऽप्युणादयः प्रत्यया
पूर्वत्र वर्त्तमाने काले प्राप्ते भूतेऽपि विधीयन्ते ॥ उदा०—वृत्तं
चरितं तच्चर्म। भसितं तदिति भस्म ॥

भाषार्थः—उणादि प्रत्यय धातु से [भूते] भूत काल में
[दृश्यन्ते] देखे जाते हैं ॥ पूर्व सूत्र से वर्त्तमान काल में
भूत में भी हों, इसीलिये यह सूत्र बनाया ॥ उदा०—वृत्त
गया)। चर्म (चमड़ा)। भस्म (राख) ॥ *सर्वधातुभ्यो मनिन्*
४।१४५) से वृतु, चर आदि धातुओं से मनिन् प्रत्यय भूतकाल
है। वर्त्मन् सु *स्वमोर्नपुंसकात्* (७।१।२३) से सु का लोप तथा
(८।२।७) से नकार लोप हो जायेगा ॥

भविष्यति गम्यादयः ॥३।३।३॥

भविष्यति ७।१॥ गम्यादयः १।३॥ स०—गमी आदिर्येषां
दयः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—उणादयः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥
उणादिषु ये गम्यादयः शब्दास्ते भविष्यति काले साधवो भवन्ति
गम्यादयः शब्दा भविष्यति काले भवन्ति ॥ उदा०—गमी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

]
यी। प्रस्थायी। प्रतिरोधी। प्रतिबोधी। प्रतियोधी। प्रतियोगी।
यी। आयायी। भावी॥

अर्थः—उणादि प्रत्ययान्त [*गम्यादयः*] गम्यादि शब्दों में जो विधान किये हैं, वे [*भविष्यति*] भविष्यत् काल में होते हैं॥

यहाँ से '*भविष्यति*' की अनुवृत्ति ३।३।१५ तक जायेगी॥

यावत्पुरानिपातयोर्लट् ॥३।३।४॥

यावत्पुरानिपातयोः ७।२॥ लट् १।१॥ स०—यावत् च, पुरा च यावत्पुरौ च तौ निपातौ च = यावत्पुरानिपातौ तयोः····द्वन्द्वगर्भ-यावत्पुरुषः॥ अनु०—भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—त्पुराशब्दयोर्निपातयोरुपपदयोर्भविष्यति काले धातोर्लट् प्रत्ययो ति॥ उदा०—यावद् भुङ्क्ते। पुरा भुङ्क्ते॥

भाषार्थः—[*यावत्पुरानिपातयोः*] यावत् तथा पुरा निपात उपपद हों भविष्यत् काल में धातु से [लट्] लट् प्रत्यय होता है॥ भुङ्क्ते सिद्धि परिशिष्ट १।३।६४ के प्रयुङ्क्ते के समान ही जानें॥

यहाँ से 'लट्' की अनुवृत्ति ३।३।९ तक जायेगी॥

विभाषा कदाकर्ह्योः ॥३।३।५॥

विभाषा १।१॥ कदाकर्ह्योः ७।२॥ स०—कदा च कर्हि च कदाकर्ही, ····इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—लट्, भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, ति॥ अर्थः—कदा, कर्हि इत्येतयोरुपपदयोर्धातोर्भविष्यति काले भाषा लट् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—कदा भुङ्क्ते, कदा भोक्ष्यते, कदा क्ष्य। कर्हि भुङ्क्ते, कर्हि भोक्ष्यते, कर्हि भोक्ता॥

भाषार्थः—[*कदाकर्ह्योः*] कदा तथा कर्हि उपपद हों तो धातु से भवि-ल में [*विभाषा*] विकल्प से लट् प्रत्यय होता है॥ विभाषा कहने क्ष में भविष्यत् काल के लकार, लृट् तथा लुट् हो जायेंगे॥ उदा०- भुङ्क्ते (कब खायेगा), कदा भोक्ष्यते, कदा भोक्ता। कर्हि भुङ्क्ते ता खायेगा), कर्हि भोक्ष्यते, कर्हि भोक्ता॥ 'भोज् स्य ते' पूर्ववत् (३।१।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

३३) होकर चोः कुः (८।२।३०) *खरि च* (८।४।५४) से कुत्व [illegible] प्र० (८।३।५९) से षत्व होकर 'भोक्ष्यते' बनेगा। भोक्ता के लि[illegible] शिष्ट १।१।६ देखें॥

यहाँ से '*विभाषा*' की अनुवृत्ति ३।३।९ तक जायेगी॥

किंवृत्ते लिप्सायाम् ॥३।३।६॥

किंवृत्ते ७।१॥ लिप्सायाम् ७।१॥ *स०*—किमो वृत्तं किंवृत्तं [illegible] ...षष्ठीतत्पुरुषः॥ *अनु०*—विभाषा, लट्, भविष्यति, धातोः, [illegible] परश्च॥ *लब्धुमिच्छा = लिप्सा तस्याम्॥ अर्थः*—लिप्सायाम्-[illegible] लाषे गम्यमाने किंवृत्त उपपदे भविष्यति काले धातो[illegible] लट् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—कं, कतरं, कतमं वा भवान् [illegible] भोजयिष्यति, भोजयिता वा। कस्मै भवानिदं पुस्तकं ददाति, [illegible] दाता वा॥

भाषार्थः—[*लिप्सायाम्*] लिप्सा गम्यमान होने पर [किंवृत्त] [illegible] उपपद हो तो भविष्यत् काल में धातु से विकल्प करके लट् प्रत्य[illegible] है॥ किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा का नाम लिप्सा है॥ [illegible] किम् शब्द की सारी विभक्ति सहित तथा डतर डतम [illegible] जो कतर, कतम, (५।३।९२-९३) शब्द ये सब लिये जायेंगे॥ [illegible] कं, कतरं, कतमं वा भवान् भोजयति (किसको आप खिलायेंगे), [illegible] यिष्यति, भोजयिता वा। कस्मै भवानिदं पुस्तकं दास्यति, [illegible] दाता वा (किसको आप यह पुस्तक देंगे)॥ लेने की इच्छा वाला [illegible] पूछता है कि आप किसको देंगे वा किसे खिलायेंगे अर्थात् मुझे [illegible] सो यहाँ लिप्सा है। पक्ष में लृट् एवं लुट् होते हैं। भुज [illegible] धातु से लट् आदि लकार आए हैं॥

लिप्स्यमानसिद्धौ च ॥३।३।७॥

लिप्स्यमानसिद्धौ ७।१॥ च अ०॥ लिप्स्यते प्राप्तुमिष्यते [illegible] मानम्, कर्मणि शानच्॥ *स०*—लिप्स्यमानात् सिद्धिः लिप्स्यमान-[illegible] तस्मिन्... पञ्चमीतत्पुरुषः॥ *अनु०*—विभाषा, लट्, [illegible] धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—लिप्स्यमानात् (अभीप्सितपदार्थ-[illegible]

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[...]द्धौ गम्यमानायां धातोर्भविष्यति काले विकल्पेन लट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—यो भक्तं ददाति, स स्वर्गं गच्छति। यो भक्तं दास्यति दाता स स्वर्गं गमिष्यति गन्ता वा ॥

भाषार्थः—[*लिप्स्यमानसिद्धौ*] लिप्स्यमान = चाहे जाते हुए अभीष्ट पदार्थ से सिद्धि गम्यमान हो तो [च] भी भविष्यत् काल में धातु से विकल्प से लट् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—यो भक्तं ददाति स स्वर्गं गच्छति (जो चावल देगा वह स्वर्ग जायेगा)। यो भक्तं दास्यति दाता स स्वर्गं गमिष्यति गन्ता वा ॥ उदाहरण में अभीष्ट लिप्स्यमान पदार्थ भात है, उस से स्वर्ग की सिद्धि होगी ऐसा कोई भिक्षुक कह रहा है, कि मुझे लोग भात दे दें सो लिप्स्यमान से सिद्धि है। भविष्यत् काल में लृट् तथा लुट् लकार ही प्राप्त थे, लट् भी विधान कर दिया है ॥ लिप्स्यमान में कर्म में शानच् हुआ है ॥ *गमेरिट् परस्मैपदेषु* (७।२।५८) गमिष्यति में इट् हुआ है ॥

लोडर्थलक्षणे च ॥३।३।८॥

लोडर्थलक्षणे ७।१॥ च अ० ॥ स०—लोटोऽर्थः लोडर्थः = प्रैषादिः, षष्ठी-तत्पुरुषः। लोडर्थः = प्रैषादिर्लक्षितो भवत्यनेन, तत् लोडर्थलक्षणं तस्मिन्.....बहुव्रीहिः ॥ अनु०—विभाषा, लट्, भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—लोडर्थलक्षणे वर्त्तमानाद् धातोर्भविष्यति काले लट् प्रत्ययो भवति विकल्पेन ॥ उदा०—उपाध्यायश्चेदागच्छति, आगमिष्यति, आगन्ता वा—अथ त्वं छन्दोऽधीष्व, व्याकरणमधीष्व ॥

भाषार्थः—[*लोडर्थलक्षणे*] लोडर्थलक्षण में वर्त्तमान धातु से [च] भी भविष्यत् काल में विकल्प से लट् प्रत्यय होता है ॥ लोट् का अर्थ है प्रैषादि (करो, करो ऐसा प्रेरित करना) वह लोडर्थ = प्रैषादि लक्षित हो जिसके द्वारा वह लोडर्थलक्षण धातु हुई, सो ऐसी धातु से जो लोडर्थ को लक्षित करे उससे लट् प्रत्यय विकल्प से होगा। अतः उदाहरणों में लोडर्थ (प्रैष) अधीष्व है, वह आगमन क्रिया से लक्षित किया जा रहा है, सो गम धातु से पक्ष में लृट् तथा लुट् लकार हो गये हैं ॥ उदा०—उपाध्यायश्चेदागच्छति, आगमिष्यति आगन्ता वा—अथ त्वं छन्दोऽधीष्व, व्याकरणमधीष्व (उपाध्याय जी यदि आ जावेंगें तो तुम छन्द तथा व्याकरण पढ़ना) ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'लोडर्थलक्षणे' की अनुवृत्ति ३।३।९ तक जायगी॥

लिङ् चोर्ध्वमौहूर्त्तिके ॥३।३।९॥

लिङ् १।१॥ च अ० ॥ ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके ७।१॥ स०—मुहूर्त्तादूर्ध्वमुहूर्त्तम्, निपातनात् पञ्चमीतत्पुरुषः ॥ ऊर्ध्वमुहूर्त्ते भवम् ऊर्ध्वमौहूर्त्तिकं तस्मिन् *कालाट्ठञ्* (४।३।११) इति ठञ् प्रत्ययः, उत्तरपदवृद्धिर्निपातनात्॥ अनु०—लोडर्थलक्षणे, विभाषा, लट्, भविष्यति, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके भविष्यति काले लोडर्थे वर्त्तमानाद् धातोर्विकल्पेन लिङ् चकारात् लट् प्रत्ययो भवति॥ मुहूर्त्तस्य पश्चात् उपाध्यायश्चेद् आगच्छेत्, आगच्छति, आगमिष्यति आगन्ता वा, अथ त्वं छन्दोऽधीष्व ॥

भाषार्थः—[ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके] मुहूर्त्त = दो घड़ी से ऊपर के काल को कहना हो तो लोडर्थलक्षण में वर्त्तमान धातु से [लिङ्] प्रत्यय विकल्प से होता है, [च] चकार से लट् भी होता है॥ में मुहूर्त्त भर से ऊपर भविष्यत् काल को कहना है, अतः लिङ् में भविष्यत् काल के लृट् एवं लुट् प्रत्यय होंगे, चकार से होगा, अतः चारों लकार इस विषय में बोले जा सकते हैं॥ अधीष्व है सो वह आगमन क्रिया से लक्षित हो रहा है, अतः से लिङ् आदि लकार हो गये हैं ॥

तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ॥३।३।१०॥

तुमुन्ण्वुलौ १।२॥ क्रियायाम् ७।१॥ क्रियार्थायाम् ७।१॥ तुमुन् च ण्वुल् च तुमुन्ण्वुलौ, इतरेतरद्वन्द्वः। क्रियायै इयं क्रियार्था क्रियार्थायां चतुर्थीतत्पुरुषः ॥ अनु०—भविष्यति, धातोः, परश्च ॥ *अर्थः*—क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे धातोर्भविष्यति तुमुन्ण्वुलौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—भोक्तुं व्रजति, भोजको व्रजति

भाषार्थः—[*क्रियार्थायां, क्रियायाम्*] क्रियार्थ क्रिया उपपद हो तो से [तुमुन्ण्वुलौ] तुमुन् तथा ण्वुल् प्रत्यय भविष्यत् काल में होते हैं। के लिए जो क्रिया हो वह क्रियार्थ क्रिया होती है, उदाहरण में, लिए जा रहा है, सो जाना क्रिया इसलिए हो रही है कि वह खाये,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[प्रथमः]

व्रजति' क्रियार्थ क्रिया है, अब ऐसी क्रियार्थ क्रिया उपपद हो तो किसी अन्य धातु से तुमुन्, ण्वुल् प्रत्यय होंगे सो व्रजति क्रियार्थ क्रिया उपपद रहते भुज धातु से तुमुन् ण्वुल् प्रत्यय हो गये हैं ॥ उदा०—भोक्तुं व्रजति, भोजको व्रजति (खाने के लिए जाता है) ॥ भोक्तुं में भुजः कुः (८।२।३०) से कुत्व हो जाता है ॥

यहाँ से *'क्रियायां क्रियार्थायाम्'* की अनुवृत्ति ३।३।१४ तक जावेगी ॥

भाववचनाश्च ॥३।३।११॥

भाववचनाः १।३॥ च अ०॥ ब्रुवन्तीति वचनाः, निपातनात्कर्त्तरि ल्युट्। भावस्य वचनाः भाववचनाः, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—क्रियायां क्रियार्थायाम्, भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यति काले धातोर्भाववचनाः = भाववाचकाः (घञादयः) प्रत्यया भवन्ति ॥ *भावे* (३।३।१८) इति प्रकृत्य ये घञादयः प्रत्यया विहितास्ते भाववचनाः ॥ उदा०—पाकाय व्रजति, भूतये व्रजति, पुष्टये व्रजति ॥

भाषार्थः—क्रियार्थक्रिया उपपद हो तो भविष्यत्काल में धातु से [भाववचनाः] भाववचन, अर्थात् भाववाचक (भाव को कहने वाले) [च] भी होते हैं ॥ *भावे* के अधिकार में जो घञादि प्रत्यय कहे हैं वे भाववचन हैं। भाव को जो कहते हैं वे भाववचन प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—पाकाय व्रजति (भोजन बनाने के लिए जाता है)। भूतये व्रजति (संपत्ति के लिए जाता है)। पुष्टये व्रजति (पुष्टि के लिए जाता है) ॥ व्रजति यहाँ क्रियार्थ क्रिया उपपद है, सो पच् धातु से भविष्यत् काल में घञ् होकर, पाकः बना, सिद्धि परिशिष्ट १।१।१ में देखें, पाकाय इत्यादि में चतुर्थी विभक्ति 'तुमर्थाच्च०' (२।३।१५) से होगी। भू तथा पुष धातुओं से भाववचन क्तिन् प्रत्यय *स्त्रियां क्तिन्* (३।३। ९४) से होगा, सो भूतिः, तथा पुष क्तिन् = पुष् ति, ष्टुत्व होकर पुष्टिः बन गया ॥

अण्कर्मणि च ॥३।३।१२॥

अण् १।१॥ कर्मणि ७।१॥ च अ०॥ अनु०—क्रियायां क्रियार्थायाम्, भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—क्रियार्थायां क्रियायां कर्मणि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

चोपपदे धातोर्भविष्यति कालेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—व्रजति, काण्डलावो व्रजति, अश्वदायो व्रजति ॥

भाषार्थः—क्रियार्थ क्रिया [च] एवं [कर्मणि] कर्म उपपद रहते से भविष्यत् काल में [अण्] अण् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—व्रजति (गौ देगा इसलिए जाता है) काण्डलावो व्रजति (शाखा को इसलिए जाता है)। सर्वत्र गौ देगा, अश्व देगा इस अर्थ में दा के लिये व्रजि क्रियार्थ क्रिया उपपद है, सो ३।३।१० सूत्र से प्राप्त था, अण् कह दिया है। दा धातु के 'गो' कर्म उपपद में है इस लू के 'काण्ड' तथा दा के 'अश्व' उपपद में है, सो क्रियार्थ क्रिया कर्म दोनों उपपद हैं ॥ सिद्धि में दा को *आतो युक्*० (७।३।३३) आगम तथा लू को लौ वृद्धि एवं आवादेश हो जायेगा ॥

लृट् शेषे च ॥३।३।१३॥

लृट् १।१॥ शेषे ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—क्रियायाम्, क्रियार्थे भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—शेषे अर्थात् केवले ष्यति काले, चकारात् क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यति धातोर्लृट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शेषे—करिष्यति, हरिष्यति। मीति व्रजति, हरिष्यामीति व्रजति ॥

भाषार्थः—धातु से [शेषे] शेष = केवल भविष्यत् काल में तथा चकार से क्रियार्थ क्रिया उपपद रहते भी भविष्यत्काल में धातु से लृट् प्रत्यय होता है ॥ शेष कहने से बिना क्रियार्थ क्रिया उपपद रहे लृट् हो जाता है, सो करिष्यति, हरिष्यति बनता है ॥ उदा०—शेषे करिष्यति हरिष्यति। करिष्यामीति व्रजति (करूँगा इसलिये जाता हरिष्यामीति व्रजति (हरण करूँगा, इसलिए जाता है) ॥ सिद्धि १।४।१३ में देखें ॥

यहाँ से 'शेषे' की अनुवृत्ति ३।३।१४ तक जायेगी ॥

लटः सद्वा ॥३।३।१४॥

लृटः ६।१॥ सत् १।१॥ वा अ० ॥ अनु०—शेषे, क्रियायां, क्रियायाम्, भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—शेषे केवले

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[पादः]

काले क्रियार्थायां क्रियायाञ्चोपपदे यो लृट् विहितस्तस्य स्थाने शतृशानचावादेशौ वा भवतः ॥ उदा०—करिष्यन्तं देवदत्तं पश्य । करिष्यमाणं देवदत्तं पश्य । क्रियार्थोपपदे—पठिष्यन् वसति । अर्जयिष्यमाणो वसति ॥

भाषार्थः—क्रियार्थ क्रिया उपपद होने पर, तथा केवल भविष्यत् काल में भी विहित जो [लृटः] लृट् उसके स्थान में [सत्] सत् (३।२।१२७) संज्ञक (शतृ शानच्) प्रत्यय [वा] विकल्प से होते हैं ॥ उदा०—करिष्यन्तं देवदत्तं पश्य (जो करेगा ऐसे देवदत्त को देखो) करिष्यमाणं देवदत्तं पश्य । पठिष्यन् वसति (पढ़ेगा इसलिए रहता है) अर्जयिष्यमाणो वसति ॥ सिद्धि ३।२।१२७ सूत्र में देखें । अन्तर केवल यही है कि करिष्यन् वहाँ प्रथमान्त तथा यहाँ द्वितीयान्त, अम् विभक्ति में है। अर्ज धातु से णिजन्त में अर्जयिष्यमाणः बन गया है । 'वसति' यह क्रियार्थ क्रिया उपपद में है ॥

अनद्यतने लुट् ॥३।३।१५॥

अनद्यतने ७।१॥ लुट् १।१॥ स०—न विद्यतेऽद्यतनं यस्य तदनद्यतनं तस्मिन्···बहुव्रीहिः ॥ अनु०—भविष्यति धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनद्यतने भविष्यति काले धातोर्लुट् प्रत्ययः परश्च भवति ॥ उदा०—श्वः कर्त्ता, श्वो भोक्ता ॥

भाषार्थः—[अनद्यतने] अनद्यतन भविष्यत् काल में धातु से [लुट्] लुट् प्रत्यय होता है, और वह परे होता है ॥ उदा०—श्वः कर्त्ता (कल करेगा) श्वो भोक्ता (कल खायेगा) लुट् लकार में सिद्धि परिशिष्ट १।१।५ के तरह समझें । केवल यहाँ एकाच उपदे० (७।२।१०) से इट् निषेध होगा, भुज् को कुत्व चोः कुः (८।२।३०) से होता है ॥

पदरुजविशस्पृशो घञ् ॥३।३।१६॥

पदरुजविशस्पृशः ५।१॥ घञ् १।१॥ स०—पदश्च रुजश्च विशश्च स्पृश् च, पद···स्पृश्_तस्मात्···समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—पद, रुज, विश, स्पृश इत्येतेभ्यो धातुभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पद्यतेऽसौ पादः, रुजत्यसौ रोगः, विशत्यसौ वेशः, स्पृशतीति स्पर्शः ॥

भाषार्थः—[पदरुजविशस्पृशः] पद, रुज, विश, स्पृश इन धातुओं से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[घञ्] घञ् प्रत्यय होता है ॥ इस सूत्र में कोई काल नहीं कहा सामान्य करके तीनों कालों में घञ् होगा, तथा सामान्य विधान होने कर्त्तरि कृत् (३।४।६७) से कर्त्ता में ही होगा ॥ उदा०—पादः (पैर), (रोग), वेशः (प्रवेश करने वाला), स्पर्शः (रोग)। स्पृश उपतापे वक्तव्यम् (वा० ३।३।१६) इस वार्त्तिक से उपताप = रोग अर्थ में बनता है ॥ घञन्त की सिद्धि सर्वत्र परिशिष्ट १।१।१ के भागः समान जानें, जहाँ विशेष होगा लिखा जायेगा ॥

यहाँ से 'घञ्' की अनुवृत्ति ३।३।५५ तक जायेगी ॥

सृ स्थिरे ॥३।३।१७॥

सृ लुप्तपञ्चम्यन्तनिर्देशः ॥ स्थिरे ७।१॥ अनु०—घञ्, धातोः, परश्च ॥ अर्थः—सृ धातोः स्थिरे (स्थायी) कर्त्तरि घञ् प्रत्ययो भवति उदा०—चन्दनस्य सारः चन्दनसारः, खदिरसारः ॥

भाषार्थः—[सृ] सृ धातु से [स्थिरे] स्थिर अर्थात् चिरस्थायी वाच्य हो तो, घञ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—चन्दनसारः (चन्दन चूरा) खदिरसारः (कत्था) ॥ उदाहरण में चन्दन तथा खदिर के 'सार' का षष्ठी तत्पुरुष समास हुआ है। वृद्धि आदि कार्य के समान ही जानें ॥

भावे ॥३।३।१८॥

भावे ७।१॥ अनु०—घञ्, धातोः, प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पाकः, त्यागः, रागः

भाषार्थः—[भावे] भाव अर्थात् धात्वर्थ वाच्य हो तो धातु से घञ् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि परिशिष्ट १।१।१ में देखें ॥

यहाँ से 'भावे' का अधिकार ३।३।११२ तक जायेगा ॥

अकर्त्तरि[1] च कारके संज्ञायाम् ॥३।३।१९॥

अकर्त्तरि ७।१॥ च अ० ॥ कारके ७।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ तः—कर्त्ता अकर्त्ता, तस्मिन्···नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—घञ्, धातोः, प्रत्ययः

१. यहाँ से भावे तथा अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् दोनों की अनुवृत्ति जाती है, सो हमने अनुवृत्ति तथा अर्थ में दोनों को ही दिखाया है। पाठक उदाहरण देखकर यथासम्भव स्वयं ही लगा लें, क्योंकि यह उदाहरणाधीन विषय है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

वरश्च ॥ अर्थः—कर्त्तृवर्जिते कारके संज्ञायां विषये धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—आवाहः, विवाहः । प्रास्यन्ति तं प्रासः । प्रसीव्यन्ति तं प्रसेवः । आहरन्ति तस्माद् रसमिति आहारः ॥

भाषार्थः—[अकर्त्तरि] कर्त्ता भिन्न [कारके] कारक में [च] भी धातु से [संज्ञायाम्] संज्ञा विषय में घञ् प्रत्यय होता है ॥ यह भी अधिकार सूत्र है, ३।३।११२ तक जायेगा ॥ उदा०—आवाहः (कन्या को विवाह करके लाना), विवाहः । प्रासः (भाला) प्रसेवः (थैला) आहारः (भोजन) ॥

परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः ॥३।३।२०॥

परिमाणाख्यायाम् ७।१॥ सर्वेभ्यः ५।३॥ स०—परिमाणस्य आख्या, परिमाणाख्या तस्याम्.....षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—परिमाणाख्यायां गम्यमानायां सर्वेभ्यो धातुभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—एक-स्तण्डुलनिचायः । द्वौ शूर्पनिष्पावौ । द्वौ कारौ, त्रयः काराः ॥

भाषार्थः—[सर्वेभ्यः] सब धातुओं से [परिमाणाख्यायाम्] परिमाण की आख्या गम्यमान हो तो घञ् प्रत्यय होता है ॥ तण्डुलनिचायः आदि परिमाण विशेष की संज्ञाएँ हैं । निचायः में ग्रहवृदृनि० (३।३।५८) से अप् प्रत्यय प्राप्त था घञ् विधान कर दिया है । निचायः बनाकर तण्डुल के साथ षष्ठी समास हो गया है । निष्पावः में ऋदोरप् (३।३।५७) से अप् प्राप्त था इस प्रकार यह सूत्र पुरस्तादपवाद बनकर घञ् विधान करता है, 'निर् पावः' यहाँ खरवसानयोर्विसर्जनीयः (८।३।१५) से रेफ् को विसर्जनीय तथा इदुदुपधस्य० (८।३।४१) से षत्व होकर निष्पावः बना है ॥ कारः में भी ऋदोरप् की प्राप्ति में घञ् हुआ है ॥

इङश्च ॥३।३।२१॥

इङः ५।१॥ च अ० ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—इङ्धातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अध्ययनम् उपाध्यायः, उपेत्याधीते यस्मात् = उपाध्यायः ॥

भाषार्थः—[इङः] इङ् धातु से [च] भी कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अध्यायः, (अध्ययन-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An initiative of IGNCA.

यन) उपाध्यायः (जिसके समीप जाकर पढ़ा जाता है) ॥ अधि+इ
वृद्धि तथा आयादेश होकर अधि आय् अ, बना, यणादेश होकर अ
बन गया है ॥ एरच् (३।३।५६) से अच् प्रत्यय की प्राप्ति में यह सू

उपसर्गे रुवः ॥३।३।२२॥

उपसर्गे ७।१॥ रुवः ५।१॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञ
भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्ग उपपदे स
घञ् प्रत्ययो भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये, भावे च॥ उ
संरावः, उपरावः, विरावः ॥

भाषार्थः—[*उपसर्गे*] उपसर्ग उपपद रहते [रुवः] रु धातु से
प्रत्यय होता है, कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में। ऋ
र्णान्त होने से ऋदोरप् से अप् प्राप्त था तदपवाद यह सूत्र है॥ य
सूत्र, आगे के औत्सर्गिक सूत्रों से विधान किये हुए अप् अ
प्रत्ययों के ही अपवाद हैं, सो औत्सर्गिकों से पहले ही ये
विधान कर देने से ये सब पुरस्तादपवाद हैं, अन्यथा घञ् विधा
की आवश्यकता ही नहीं थी, *भावे, अकर्त्तरि च०* इन औत्सर्गि
ही सब धातुओं से घञ् हो ही जाता ॥ *उदा०*—संरावः (
उपरावः (आवाज) विरावः (आवाज) ॥

समि युद्रुदुवः ॥३।३।२३॥

समि ७।१॥ युद्रुदुवः ५।१॥ *स०*—युश्च द्रुश्च दुश्च, युद्रु तस्
समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे
धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सम्पूर्वेभ्यो यु मिश्रणे, द्रु द्रु गतौ
तेभ्यो धातुभ्यः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये, भावे च घञ्
भवति ॥ *उदा०*—संयूयते मिश्रीक्रियते, संयावः, सन्द्रावः, सन्दा
भाषार्थः—[*समि*] सम् पूर्वक [युद्रुदुवः] यु द्रु तथा दु धातु
कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में, तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता
ऋदोरप् (३।३।५७) से अप् प्राप्त था उसका यह अपवाद है ॥ उ
संयावः (हलुवा) सन्द्रावः (भागना) सन्दावः (भागना) ॥
तथा आवादि आदेश होकर सिद्धि जानें ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Initiative

श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे ॥३।३।२४॥

श्रिणीभुवः ५।१॥ अनुपसर्गे ७।१॥ स०—श्रिश्च णीश्च भूश्च श्रिणीभूः तस्मात्..... समाहारो द्वन्द्वः। न उपसर्गः, अनुपसर्गस्तस्मिन्.....नञ्-तत्पुरुषः॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—श्रि, णी, भू इत्येतेभ्योऽनुपसर्गेभ्यो धातुभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति, कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये, भावे च॥ उदा०—श्रायः, नायः, भावः॥

भाषार्थः—[अनुपसर्गे] उपसर्गरहित [श्रिणीभुवः] श्रि, णी, भू इन धातुओं से कर्त्ता भिन्न कारक संज्ञा में, तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है॥ उदा०—श्रायः (आश्रय) नायः (ले जाना) भावः (होना)॥ इवर्णान्तों से अच् प्रत्यय (३।३।५६) तथा उवर्णान्त से अप् प्राप्त था, सो उसका यह अपवाद है॥

वौ क्षुश्रुवः ॥३।३।२५॥

वौ ७।१॥ क्षुश्रुवः ५।१॥ स०—क्षुश्च श्रुश्च क्षुश्रु तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये, भावे च वि-पूर्वाभ्यां टुक्षु शब्दे, श्रु श्रवणे इत्येताभ्यां धातुभ्यां घञ् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—विक्षावः, विश्रावः॥

भाषार्थः—[वौ] वि पूर्वक [क्षुश्रुवः] क्षु तथा श्रु धातुओं से कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है॥ पूर्ववत् यहां भी अप् का अपवाद है॥ उदा०—विक्षावः (शब्द करना) विश्रावः (अति प्रसिद्धि होना)॥

अवोदोर्नियः ॥३।३।२६॥

अवोदोः ७।२॥ नियः ५।१॥ स०—अवश्च उत् च अवोदौ, तयोः.....इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च अव उत् इत्येतयोरुपसर्गोपपदयोर्णीञ् धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—अवनायः, उन्नायः॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*अवोदोः*] अव तथा उत् पूर्वक [*नियः*] णी धा कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता एरच् (३।३।५६) से अच् प्राप्त था, यह उसका अपवाद है॥ अव अवनायः (अवनति), उन्नायः (उन्नति)॥ उत् नाय ऐसी अवस्था थरोऽनु० (८।४।४४) लगकर उन्नायः बन गया है॥

प्रे द्रुस्तुस्रुवः ॥३।३।२७॥

प्रे ७।१॥ द्रुस्तुस्रुवः ५।१॥ *स०*—द्रुश्च स्तुश्च स्रुश्च, तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायां भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—प्रोपसर्ग उपपदे ष्टुञ् स्तुतौ, स्रु गतौ इत्येतेभ्यो धातुभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति, अकर्त्तरि कारके संज्ञायां विषये भावे च॥ *उदा०*—प्रद्रावः प्रस्तावः, प्रस्रावः

भाषार्थः—[*प्रे*] प्र पूर्वक [*द्रुस्तुस्रुवः*] द्रु स्तु, स्रु इन धातु कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता यह भी पूर्ववत् अप् प्रत्यय का अपवाद है॥ *उदा०*—प्रद्रावः (दौ प्रस्तावः (प्रस्ताव) प्रस्रावः (बहना, मूत्र)॥

निरभ्योः पूल्वोः ॥३।३।२८॥

निरभ्योः ७।२॥ पूल्वोः ६।२॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, पर *अर्थः*—निर् अभि पूर्वाभ्यां पू, लू, इत्येताभ्यां धातुभ्यां अ कारके, संज्ञायां विषये भावे च घञ् प्रत्ययो भवति॥ पू इत्यनेन पू सामान्येन ग्रहणम्॥ *उदा०*—निष्पावः, अभिलावः॥

भाषार्थः—[*निरभ्योः*] निर्, अभि पूर्वक [*पूल्वोः*] पू, लू धा कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में, तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता पू से सामान्य करके पूङ् तथा पूञ् दोनों धातुओं का ग्रहण है। सर्ग का सम्बन्ध यहाँ यथासंख्य करके लगेगा, अतः निर् पूर्वक अभि पूर्वक लू धातु का ग्रहण होगा॥ *उदा०*—निष्पावः (पवित्र अभिलावः (काटना)॥ निष्पावः में इदुदुपधस्य० (८।३।४१) से विसर्जनीय को षत्व हो गया है। यह सूत्र भी पूर्ववत् अप् का अपवा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उन्न्योर्ग्रः ॥३।३।२९॥

उन्न्योः ७।२॥ ग्रः ५।१॥ स०—उत् च नि चेति उन्न्यौ तयोः.... इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये, भावे उत् नि इत्येतयोरुपपदयोः 'गृ' धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उद्गारः, निगारः ॥

भाषार्थः—[उन्न्योः] उत् नि उपपद रहते [ग्रः] गृ धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ ऋवर्णान्त धातुओं से ३।३।५७ से अप् प्राप्त था, तदपवाद यह सूत्र है ॥ यहाँ गृ शब्दे तथा गृ निगरणे दोनों धातुओं का ग्रहण है ॥ उदा०—उद्गारः (वमन, आवाज) निगारः (भोजन) ॥

यहाँ से 'उन्न्योः' की अनुवृत्ति ३।३।३० तक जायेगी ॥

कॄ धान्ये ॥३।३।३०॥

कॄ तुप्तपञ्चम्यन्तनिर्देशः ॥ धान्ये ७।१॥ अनु०—उन्न्योः, अकर्त्तरि कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उत् नि इत्युपपदयोः कॄ विक्षेपे इत्यस्माद् धातोर्धान्येऽर्थे घञ् प्रत्ययो भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च ॥ उदा०—उत्कारो धान्यस्य, निकारो धान्यस्य ॥

भाषार्थः—उत् नि पूर्वक [कॄ] कॄ धातु से [धान्ये] धान्य अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में ॥ यहाँ भी अप् का अपवाद है ॥ उदा०—उत्कारो धान्यस्य (धानों को इकट्ठा करना, और ऊपर उछालना) निकारो धान्यस्य (धान का ऊपर फैंकना) ॥

यज्ञे समि स्तुवः ॥३।३।३१॥

यज्ञे ७।१॥ समि ७।१॥ स्तुवः ५।१॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यज्ञेऽभिधेये समि उपसर्गे स्तुधातोः, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—समेत्य संस्तुवन्ति यस्मिन् स, संस्तावो यज्ञः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. eGangotri Initiative

भाषार्थः—[यज्ञे] यज्ञ अभिधेय हो तो [सम्] सम् पूर्वक स्तृ धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में घञ् प्रत्यय होता है। वत् यह सूत्र भी अप् का अपवाद है ॥ उदा०—संस्तावो यज्ञः लोग मिलकर जिसमें प्रार्थना करें, ऐसा यज्ञ) ॥

प्रे स्त्रोऽयज्ञे ॥३।३।३२॥

प्रे ७।१॥ स्त्रः ५।१॥ अयज्ञे ७।१॥ स०—न यज्ञः, अयज्ञस्तस्मिन् नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ् प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रपूर्वात् स्तृञ् आच्छादने धातोः यज्ञ विषयं विहाय कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये, भावे च घञ् भवति ॥ उदा०—शङ्खप्रस्तारः, छन्दःप्रस्तारः ॥

भाषार्थः—[प्रे] प्र पूर्वक [स्त्रः] स्तृञ् आच्छादने धातु से यज्ञ विषय को छोड़कर कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ ऋवर्णान्त होने से अप् प्राप्त था तदपवाद उदा०—शङ्खप्रस्तारः (शङ्खों का फैलाव, विस्तार), छन्दःप्रस्तारः का विस्तार) ॥ प्रस्तारः में वृद्धि आदि करके पुनः शङ्ख आदि के साथ शङ्खानां प्रस्तारः छन्दसां प्रस्तारः, ऐसा विग्रह करके षष्ठी होगा ॥

यहाँ से 'स्त्रः' की अनुवृत्ति ३।३।३४ तक जायेगी ॥

प्रथने वावशब्दे ॥३।३।३३॥

प्रथने ७।१॥ वौ ७।१॥ अशब्दे ७।१॥ स०—न शब्दोऽशब्दस्तस्मिन् ……नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—स्त्रः, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—विशब्द उपपदे स्तृञ् धातोः प्रथनेऽभिधेये घञ् प्रत्ययो भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये च ॥ उदा०—पटस्य विस्तारः ॥

भाषार्थः—[वौ] वि पूर्वक स्तृञ् धातु से [अशब्दे] अशब्द [प्रथने] प्रथन = विस्तार अर्थात् शब्द विषयक विस्तार को छोड़ तो कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता उदा०—पटस्य विस्तारः (कपड़े का फैलाव) ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[प्रत्ययः]

यहाँ से 'वौ' की अनुवृत्ति ३।३।३४ तक जायेगी ॥

छन्दोनाम्नि च ॥३।३।३४॥

छन्दोनाम्नि ७।१॥ च अ० ॥ *स०*—छन्दसः नाम छन्दोनाम, तस्मिन्.....षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—वौ, स्नः, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विपूर्वात् स्तृञ्धातोः छन्दोनाम्नि सति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः, विष्टारबृहती छन्दः ॥

भाषार्थः—वि पूर्वक स्तृञ् धातु से [*छन्दोनाम्नि*] छन्द का नाम कहना हो तो [च] भी कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ छन्दोनाम से यहाँ विष्टारपङ्क्ति आदि छन्द लिए हैं, न कि विस्तार ॥ विस्तार बन कर *छन्दोनाम्नि च* (८।३।९४) से षत्व तथा ष्टुना ष्टुः से ष्टुत्व होकर विष्टारः बन गया है ॥

उदि ग्रहः ॥३।३।३५॥

उदि ७।१॥ ग्रहः ५।१॥ *अनु०*—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उत्पूर्वाद् ग्रहधातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—उद्ग्राहः ॥

भाषार्थः—[*उदि*] उत् पूर्वक [*ग्रहः*] ग्रह धातु से कर्तृभिन्न कारक का विषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ *ग्रहवृदृनिश्चि०* (३।३।५८) से अप् प्राप्त था, उसका अपवाद है ॥ *उदा०*—उद्ग्राहः (विग्रहवाक्य का विचार) ॥

यहाँ से 'ग्रहः' की अनुवृत्ति ३।३।३६ तक जायेगी ॥

समि मुष्टौ ॥३।३।३६॥

समि ७।१॥ मुष्टौ ७।१॥ *अनु०*-ग्रहः, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सम्पूर्वाद् ग्रहधातोर्मुष्टौ वाच्ये घञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—मुष्टेर्लक्षस्य संग्राहः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[समि] सम्पूर्वक ग्रह धातु से [मुष्टौ] मुष्टि=मुट्ठी हो तो भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ यह भी अप् का अपवाद उदा०—अहो ! मल्लस्य संग्राहः (ओहो ! पहलवान् का मुक्का)॥

परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः ॥३।३।३७॥

परिन्योः ७।२॥ नीणोः ६।२॥ द्यूताभ्रेषयोः ७।२॥ स०—परिश्च नी च परिनी तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः। नी च इण्च नीणौ तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः। द्यूतश्च अभ्रेषश्च द्यूताभ्रेषौ तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः॥ अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—परि शब्दे नि शब्दे चोपपदे यथासंख्यं नी इण् धातुभ्यां, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायां भावे च घञ् प्रत्ययो भवति, द्यूताभ्रेषयोरर्थयोः। अत्रापि यथासङ्ख्यमेव सम्बन्धः ॥ उदा०—द्यूते—परिणायेन शारान् हन्ति। अभ्रेषे—एषोऽत्र न्यायः ॥

भाषार्थः—[परिन्योः] परि तथा नि उपपद रहते यथासंख्य [नीणोः] नी तथा इण् धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में भाव में [द्यूताभ्रेषयोः] द्यूत तथा अभ्रेष अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है यहाँ भी यथासंख्य का सम्बन्ध लगता है, सो परि पूर्वक नी धातु से द्यूत अर्थ में, तथा नि पूर्वक इण् धातु से अभ्रेष (उचित न करना) अर्थ में घञ् होता है॥ उदा०—द्यूत में—परिणायेन शारान् हन्ति (चारों ओर से द्यूत क्रीडा के पासों को मारता है) अभ्रेष में—एषोऽत्र न्यायः (यही यहाँ उचित है) ॥ परिणायः में अट्कुप्वा० (नि०) णत्व होता है॥ 'नि इ अ' यहाँ वृद्धि होकर 'नि ऐ अ', आयादेश होकर नि आय् अ, पश्चात् यणादेश होकर न्यायः बन गया है॥

परावनुपात्यय इणः ॥३।३।३८॥

परौ ७।१॥ अनुपात्यये ७।१॥ इणः ५।१॥ अनु०—अकर्त्तरि कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—परि इण्धातोः, अनुपात्यये = क्रमप्राप्तस्यानतिपातेऽर्थे कर्तृभिन्ने संज्ञायां भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—तव पर्यायः॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[ध्यायः]

भाषार्थः—[परौ] परि पूर्वक [इणः] इण् धातु से [अनुपात्यये] अनुपात्यय = क्रम, परिपाटी अर्थ में कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—तव पर्यायः (तेरी बारी) मम पर्यायः (मेरी बारी) ॥ इवर्णान्त धातु होने से पूर्ववत् अच् (३।३।५६) का अपवाद यह सूत्र है ॥ पूर्ववत् वृद्धि आयादेश होकर 'परि आय् अच्' = यणादेश होकर पर्यायः बना है ॥

व्युपयोः शेतेः पर्याये ॥३।३।३९॥

व्युपयोः ७।२॥ शेतेः ५।१॥ पर्य्याये ७।१॥ स०—वि च उप च व्युपौ तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पर्याये गम्यमाने, वि उप इत्येतयोरुपपदयोः शीङ्धातोः, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—तव विशायः, ममोपशायः ॥

भाषार्थः—[व्युपयोः] वि उप पूर्वक [शेतेः] शीङ् धातु से [पर्याये] पर्याय गम्यमान होने पर कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ पूर्ववत् अच् प्राप्त था, तदपवाद है। सिद्धि में पूर्ववत् ही वृद्धि आदि जानें। मम उपशायः यहाँ आद् गुणः (६।१।८४) से पूर्व पर को गुण होकर ममोपशायः (मेरे सोने की बारी) तव विशायः (तेरे सोने की बारी) बना है ॥

हस्तादाने चेरस्तेये ॥३।३।४०॥

हस्तादाने ७।१॥ चेः ५।१॥ अस्तेये ७।१॥ स०—हस्तेन आदानं = ग्रहणं, हस्तादानं तस्मिन्·····तृतीयातत्पुरुषः। न स्तेयम्, अस्तेयं तस्मिन्·····नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अस्तेये = चौर्यरहिते हस्तादाने गम्यमाने चिञ्धातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पुष्पप्रचायः, फलप्रचायः ॥

भाषार्थः—[अस्तेये] चोरी रहित [हस्तादाने] हाथ से तोड़ना गम्यमान हो तो [चेः] चिञ् धातु से कर्तृभिन्न कारक और भाव में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

घञ् प्रत्यय होता है ॥ हस्तादान कहने से पुष्प या फल क्य
पर ही लगे हैं यह प्रतीत होता है, तभी हस्तादान सम
पूर्ववत् अच् का अपवाद यह सूत्र है ॥ उदा०—पुष्पप्रचा
से फूल तोड़ना) फलप्रचायः (हाथ से फल तोड़ना) ॥ सिद्धि
वृद्धि आयादेश होकर 'प्रचाय' बनकर पश्चात् पुष्प एवं फल
षष्ठी तत्पुरुष समास हुआ है ॥

यहाँ से 'चेः' की अनुवृत्ति ३।३।४२ तक जायेगी ॥

निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ॥३।३।४३॥

निवास·····धानेषु ७।३॥ आदेः ६।१॥ च अ०॥ कः १।१॥
निवासश्च चितिश्च शरीरं च उपसमाधानं च = निवा·····
तेषु·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—चेः, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्,
घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ निवसन्त्यस्मिन्निति निवासः। चि
चितिः। राशीकरणमुपसमाधानम्। अर्थः—निवास, चिति,
उपसमाधान इत्येतेष्वर्थेषु चिञ्धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति, धातोः
कारादेशो भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ॥ उदा०—नि
एषोऽस्य निकायः। चिति—आकायमग्निं चिन्वीत। शरीर—अनि
अकायं ब्रह्म। उपसमाधान—महान् फलनिकायः ॥

भाषार्थः—[निवास·····नेषु] निवास, चिति (जो चुन
शरीर, उपसमाधान इन अर्थों में चिञ् धातु से घञ् प्रत्य
है [च] तथा चिञ् के [आदेः] आदि चकार को [कः]
देश हो जाता है कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भा
उदा०—निवास—एषोऽस्य निकायः (यह इसका निवास
चिति—आकायमग्निं चिन्वीत (श्मशान की आग का चय
जाय)। शरीर—अनित्यकायः (शरीर अनित्य है) अकायं ब्रह्म (ब्र
रहित है)। उपसमाधान—महान् फलनिकायः (बड़ा भारी
ढेर) ॥ आकायम् में आङ् पूर्वक चिञ् धातु है। न कायम्
यहाँ नञ्समास है ॥ उपसमाधान ढेर को कहते हैं ॥

यहाँ से 'आदेश्च कः' की अनुवृत्ति ३।३।४२ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सङ्घे चानौत्तराधर्ये ॥३।३।४२॥

सङ्घे ७।१॥ च अ० ॥ अनौत्तराधर्ये ७।१॥ औत्तराधर्यम् एकस्योपरि द्वितीयस्य स्थापनम् ॥ स०—न औत्तराधर्यम् अनौत्तराधर्यं तस्मिन्...तत्पुरुषः ॥ अनु०—आदेश्च कः, चेः, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनौत्तराधर्ये सङ्घे वाच्ये, चिञ् धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति आदेश्चकारस्य स्थाने ककारादेशोऽपि भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च ॥ उदा०—भिक्षुकनिकायः, ब्राह्मणनिकायः, वैयाकरणनिकायः ॥

भाषार्थः—ऊपर नीचे बैठने को औत्तराधर्य कहते हैं उससे भिन्न एक प्रकार से समुदाय रूप में बैठने को अनौत्तराधर्य कहते हैं, सो [अनौत्तराधर्ये] अनौत्तराधर्य [सङ्घे] सङ्घ वाच्य हो तो [च] भी चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय होता है, तथा आदि चकार को ककारादेश हो जाता है कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में एवं भाव में ॥ उदा०—भिक्षुकनिकायः (भिक्षुकों का समुदाय) ब्राह्मणनिकायः (ब्राह्मणों का समुदाय) वैयाकरणनिकायः ॥ निकायः बनाकर पीछे षष्ठी समास भिक्षुक आदि के साथ होता है। सिद्धि पूर्ववत् है ॥

कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् ॥३।३।४३॥

कर्मव्यतिहारे ७।१॥ णच् १।१॥ स्त्रियाम् ७।१॥ स०—कर्मणो व्यतिहारः कर्मव्यतिहारस्तस्मिन्.....षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्मव्यतिहारे गम्यमाने स्त्रियामभिधेयायां धातोर्णच् प्रत्ययो भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ॥ उदा०—व्यावक्रोशी, व्यावलेखी, व्यावहासी ॥

भाषार्थः—[कर्मव्यतिहारे] कर्मव्यतिहार = क्रिया का अदल बदल गम्यमान हो तो [स्त्रियाम्] स्त्रीलिङ्ग में धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में [णच्] णच् प्रत्यय होता है ॥

अभिविधौ भाव इनुण् ॥३।३।४४॥

अभिविधौ ७।१॥ भावे ७।१॥ इनुण् १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अभिविधिः = अभिव्याप्तिः, तस्यां गम्यमानायां भावे धातोरिनुण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सांकूटिनम्, सांराविणम् ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*अभिविधौ*] अभिविधि अर्थात् अभिव्याप्ति [illegible] हो तो धातु से [*भावे*] भाव में [*इनुण्*] इनुण् प्रत्यय होता है

आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः ॥३।३।४५॥

आक्रोशे ७।१॥ अवन्योः ७।२॥ ग्रहः ५।१॥ स०—अवश्च नि[illegible] तरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अव नि इत्येतयोरुपपदयोरकर्त्रभि[illegible] माने धातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च घञ् [illegible] भवति ॥ उदा०—अवग्राहो दुष्ट ! ते भूयात् । निग्राहो दुष्ट ! ते [illegible]

भाषार्थः—आक्रोश, क्रोध से कुछ कहने को कहते हैं। [illegible] आक्रोश गम्यमान हो तो [*अवन्योः*] अव तथा नि पूर्वक [ग्रह] धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता उदा०—अवग्राहो दुष्ट ! ते भूयात् (ऐ दुष्ट तेरा अमंगल हो [illegible] निग्राहो दुष्ट ! ते भूयात् ॥

यहाँ से 'ग्रहः' की अनुवृत्ति ३।३।४७ तक जायेगी ॥

प्रे लिप्सायाम् ॥३।३।४६॥

प्रे ७।१॥ लिप्सायाम् ७।१॥ अनु०—ग्रहः, अकर्त्तरि च कारके [illegible] याम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—लिप्सायाम् [illegible] मिच्छायां गम्यमानायां प्रपूर्वात् ग्रहधातोर्घञ् प्रत्ययो भवति [illegible] कारके संज्ञायां विषये भावे च ॥ उदा०—पात्रप्रग्राहेण [illegible] भिक्षुकोऽन्नार्थी, स्रुवप्रग्राहेण चरति द्विजो दक्षिणार्थी ॥

भाषार्थः—[*लिप्सायाम्*] लिप्सा = प्राप्त करने की इच्छा [illegible] हो तो [*प्रे*] प्र पूर्वक ग्रह धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा [illegible] तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पात्रप्रग्राहेण [illegible] भिक्षुकोऽन्नार्थी (अन्न चाहने वाला भिक्षु अन्न का पात्र लिए [illegible] है) स्रुवप्रग्राहेण चरति द्विजो दक्षिणार्थी (दक्षिणा चाहने वाला [illegible] स्रुवा लेकर घूमता है) ॥ उदाहरण में वृद्धि आदि होकर प्रग्राह [illegible] पात्र तथा स्रुव शब्द के साथ षष्ठीतत्पुरुष समास हो गया है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परौ यज्ञे ॥३।३।४७॥

परौ ७।१॥ यज्ञे ७।१॥ अनु०—ग्रहः, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यज्ञेऽभिधेये परिपूर्वाद् ग्रहधातोर्घञ् प्रत्ययो भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च ॥ उदा०—उत्तरपरिग्राहः, अधरपरिग्राहः ॥

भाषार्थः—[यज्ञे] यज्ञ अभिधेय होने पर [परौ] परि पूर्वक ग्रह धातु से, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—उत्तरपरिग्राहः (दर्शपौर्णमास यज्ञ में उत्तर वेदि के निर्माण को उत्तरपरिग्राहः कहते हैं) अधरपरिग्राहः (नीचे का निर्माण) ॥ परिग्राहः पूर्ववत् बनकर उत्तर तथा अधर के साथ षष्ठीतत्पुरुष समास हो गया है ॥

नौ वृ धान्ये ॥३।३।४८॥

नौ ७।१॥ वृ लुप्तपञ्चम्यन्तनिर्देशः ॥ धान्ये ७।१॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—वृ इति वृङ्वृञोः सामान्येन ग्रहणम् । निपूर्वाद् वृ इत्येतस्माद् धातोः धान्येऽर्थे कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—नीवाराः व्रीहयः ॥

भाषार्थः—[नौ] नि पूर्वक [वृ] वृ धातु से [धान्ये] धान्य विशेष को कहना हो तो कर्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ वृ से यहाँ वृङ्, वृञ् दोनों का ग्रहण है ॥ *ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च* (३।३।५८) से अप् प्राप्त था, उसका यह अपवाद है ॥ उदा०—नीवाराः व्रीहयः (नीवार नाम का धान्य विशेष) ॥

उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः ॥३।३।४९॥

उदि ७।१॥ श्रयतियौतिपूद्रुवः ५।१॥ स०—श्रयतिश्च यौतिश्च पू च द्रुश्च श्रयति....द्रु, तस्मात्....समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उत्पूर्वेभ्यः श्रि, यु, पू, द्रु इत्येतेभ्यो धातुभ्यः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उच्छ्रायः, उद्यावः, उत्पावः, उद्द्रावः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*उदि*] उत् पूर्वक [*श्रयतियौतिपूद्रुवः*] श्रि धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होः उदा०—उच्छ्रायः (ऊँचाई) उद्यावः (इकट्ठा करना) उत्पावः पात्रों का संस्कार विशेष) उद्द्रावः (भागना) ॥ उत्श्राय यहाँ स श्चुः से श्चुत्व तथा *शश्छोऽटि* (८।४।६२) से छत्व होता है। पूर्ववत् ही है। श्रि धातु से एरच् (३।३।५६) से अच् प्राप्त था, अन्य धातुओं से ऋदोरप् (३।३।५७) से अप् प्राप्त था, उसका अपवाद है ॥

विभाषाङि रुप्लुवोः ॥३।३।५०॥

विभाषा १।१॥ आङि ७।१॥ रुप्लुवोः ६।२॥ स०—रुप्लु० इतरेत द्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ् प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आङ् युपपदे रु प्लु इत्येताभ्यां धातुभ्यां कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—रावः, आरवः। आप्लावः, आप्लवः॥

भाषार्थः—[*आङि*] आङ् पूर्वक [*रुप्लुवोः*] रु तथा प्लु धातु [*विभाषा*] विकल्प से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में घञ् होता है ॥ रु धातु से *उपसर्गे रुवः* (३।३।२२) से नित्य घञ् प्राप्त सो विकल्प से कह दिया, अतः पक्ष में ऋदोरप् से अप् ही होगा प्रकार प्लु धातु से भी पक्ष में (उवर्णान्त होने से) अप् होगा। पक्ष में रु तथा प्लु को गुण तथा अवादेश हो जायेगा, एवं घञ् वृद्धि तथा आवादेश होकर आरावः, आप्लावः बनेगा, ऐसा उदा०—आरावः (एक प्रकार की आवाज) आरवः, आप्लावः डुबकी मारना) आप्लवः ॥

यहाँ से '*विभाषा*' की अनुवृत्ति ३।३।५५ तक जायेगी ॥

अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे ॥३।३।५१॥

अवे ७।१॥ ग्रहः ५।१॥ वर्षप्रतिबन्धे ७।१॥ स०—वर्षस्य प्रति वर्षप्रतिबन्धस्तस्मिन् ·····षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—विभाषा, अकर्त्तरि कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—वर्ष बन्धेऽभिधेये, अवपूर्वाद् ग्रहधातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ग्रहः]

कल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अवग्राहो देवस्य, अवग्रहो देवस्य ॥

भाषार्थः—[वर्षप्रतिबन्धे] वर्षप्रतिबन्ध अभिधेय होने पर [अवे] अव पूर्वक [ग्रहः] ग्रह धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में विकल्प से घञ् प्रत्यय होता है ॥ वर्षा का समय हो जाने पर भी वर्षा का न होना वर्षप्रतिबन्ध कहाता है ॥ ग्रहवृद० (३।३।५८) से अप् प्राप्त था घञ् प्रत्यय विकल्प से कह दिया है, अतः पक्ष में अप् ही होगा ॥ उदा०—अवग्राहो देवस्य (देव का न बरसना), अवग्रहो देवस्य ॥

यहाँ से 'ग्रहः' की अनुवृत्ति ३।३।५३ तक जायेगी ॥

प्रे वणिजाम् ॥३।३।५२॥

प्रे ७।१॥ वणिजाम् ६।३॥ अनु०—ग्रहः, विभाषा, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रशब्द उपपदे ग्रहधातोर्वणिक्सम्बन्धे प्रत्ययार्थे, कर्तृभिन्ने कारके, संज्ञायां, भावे च विभाषा घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—तुलाप्रग्राहेण चरति, तुलाप्रग्रहः ॥

भाषार्थः—[वणिजाम्] वणिक् सम्बन्धी प्रत्ययार्थ हो तो [प्रे] प्र पूर्वक ग्रह धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में विकल्प से घञ् प्रत्यय होता है ॥ वणिजाम् में सम्बन्ध षष्ठी है, सो वणिक् सम्बन्धी तुला आदि लिये जायेंगे ॥ उदा०—तुलाप्रग्राहेण चरति (तराजू कपड़े घूमता है), तुलाप्रग्रहः ॥

यहाँ से 'प्रे' की अनुवृत्ति ३।३।५४ तक जायेगी ॥

रश्मौ च ॥३।३।५३॥

रश्मौ ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—प्रे, ग्रहः, विभाषा, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—रश्मौ प्रत्ययार्थे प्रपूर्वाद् ग्रहधातोर्विकल्पेन कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रग्राहः प्रग्रहः ॥

भाषार्थः—[रश्मौ] रश्मि अर्थात् घोड़े की लगाम वाच्य हो तो [च] भी प्र पूर्वक ग्रह धातु से विकल्प से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

में घञ् प्रत्यय होता है, पक्ष में अप् होता है ॥ उदा०—(लगाम, रस्सी) प्रग्रहः ॥

वृणोतेराच्छादने ॥३।३।५४॥

वृणोतेः ५।१॥ आच्छादने ७।१॥ अनु०—प्रे, विभाषा, कर्त्तरि कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आच्छादनेऽर्थे प्रपूर्वाद्, वृञ्धातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे विभाषा घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रावारः, प्रवरः ॥

भाषार्थः—[*आच्छादने*] आच्छादन अर्थ में वर्त्तमान [*वृणोतेः*] वृञ् धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में, तथा भाव में से घञ् प्रत्यय होता है ॥ ग्रहवृदृ० (३।३।५८) से अप् प्राप्त पक्ष में वह भी होता है ॥ उदा०—प्रावारः (चादर) प्रवरः ॥

परौ भुवोऽवज्ञाने ॥३।३।५५॥

परौ ७।१॥ भुवः ५।१॥ अवज्ञाने ७।१॥ अनु०—विभाषा, कर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अवज्ञानम्=तिरस्कारः, तस्मिन् वर्त्तमानात् परिपूर्वाद् भूधातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—परिभावः, परिभवः ॥

भाषार्थः—[*अवज्ञाने*] अवज्ञान = तिरस्कार अर्थ में, वर्त्तमान परिपूर्वक [*भुवः*] भू धातु से कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में विकल्प से घञ् प्रत्यय होता है ॥ अप् प्रत्यय ३।३।५७ से प्राप्त सो पक्ष में वही होगा ॥ उदा०—परिभावः (निरादर) परिभवः ॥

एरच् ॥३।३।५६॥

एः ५।१॥ अच् १।१॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—इवर्णान्ताद्धातोर्भावे अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् अच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—नयः, चयः, जयः, क्षयः,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दः]

भाषार्थः—[एः] इवर्णान्त धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [अच्] अच् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ *येन विधिस्त०* (१।१।७१) तदन्तविधि करके 'इवर्णान्त' ऐसा अर्थ हुआ है ॥ उदा०—जयः (जीतना) चयः (चुनना) नयः (ले जाना) क्षयः (नाश) अयः (ज्ञान) ॥

चि, जि धातु को *सार्वधातुका०* (७।३।८४) से गुण, तथा अयादेश होकर जयः आदि रूप बनेंगे। इण् धातु से अयः बना है ॥ यह औत्सर्गिक सूत्र है, इसके अपवाद पूर्व ही कह आये हैं ॥

ऋदोरप् ॥३।३।५७॥

ऋदोः ५।१॥ अप् १।१॥ स०—ऋत् च उश्च ऋदुः तस्मात्····· समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ऋकारान्तेभ्यः उवर्णान्तेभ्यश्च धातुभ्यः, कर्तृवर्जिते कारके संज्ञायां विषये भावे चाप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ऋकारान्तेभ्यः—करः, गरः, शरः। उवर्णान्तेभ्यः—यवः, लवः, पवः ॥

भाषार्थः—[ऋदोः] ऋकारान्त तथा उवर्णान्त धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [अप्] अप् प्रत्यय होता है ॥ यह भी औत्सर्गिक सूत्र है ॥ गुण इत्यादि पूर्ववत् होकर सिद्धि जानें। उदा०—करः (हाथ) गरः (विष) शरः (तीर)। उवर्णान्तों से—यवः (जौ) लवः (काटना) पवः (पवित्र करना) ॥

यहाँ से 'अप्' की अनुवृत्ति ३।३।८७ तक जाती है ॥

ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च ॥३।३।५८॥

ग्रह···गमः ५।१॥ च अ०॥ स०—ग्रहश्च वृ च दृ च निश्चिश्च गम् च=ग्रह··· ···गम्, तस्मात्····समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अप्, अकर्त्तरि कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ग्रह, वृ, दृ पूर्वात् चि, गम् इत्येतेभ्यो धातुभ्यः कर्त्तृवर्जिते कारके संज्ञायां भावे अप् प्रत्ययो भवति। पूर्वेणाप्राप्ते विधीयते। उदा०—ग्रहः, दरः, वरः, निश्चयः, गमः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च*] ग्रह, वृ, दृ तथा निर् पूर्वक गम इन धातुओं से [च] भी कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में अप् प्रत्यय होता है ॥ पूर्व सूत्र से अप्राप्तिपूर्वक यहाँ विधान उदा०—ग्रहः (नक्षत्र) दरः (डर, गड्ढा) वरः (श्रेष्ठ) निश्चयः (नि गमः (यात्रा) ॥ सिद्धि में यथासम्भव गुण इत्यादि जानें ॥

उपसर्गेऽदः ॥३।३।५९॥

उपसर्गे ७।१॥ अदः ५।१॥ अनु०—अप्, अकर्त्तरि च कारके याम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्ग उपपदे धातोरप् प्रत्ययो भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ॥ उदा० विघसः, प्रघसः ॥

भाषार्थः—[*उपसर्गे*] उपसर्ग उपपद रहते [अदः] अद धातु से प्रत्यय होता है कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में ॥ अद धातु परे रहते *घञपोश्च* (२।४।३८) से घस्लृ आदेश होता है ॥

यहाँ से '*अदः*' की अनुवृत्ति ३।३।६० तक जायेगी ॥

नौ ण च ॥३।३।६०॥

नौ ७।१॥ ण लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ अनु०—अदः, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—नि निशब्द उपपदे अदधातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च प्रत्ययो भवति, चकाराद् अप् च ॥ उदा०—न्यादः, निघसः ॥

भाषार्थः—[*नौ*] नि पूर्वक अदधातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में भाव में [*ण*] ण प्रत्यय होता है [च] चकार से अप् प्रत्यय भी है ॥ नि पूर्वक अद् धातु से ण प्रत्यय करने पर *अत उपधायाः* (७।११६) से वृद्धि तथा अप् पक्ष में पूर्ववत् २।४।३८ से घस्लृ होता है ॥ नि + आद् + ण = न्यादः (भोजन) नि + घस् + अप् = निघसः (भोजन) ॥

व्यधजपोरनुपसर्गे ॥३।३।६१॥

व्यधजपोः ६।२॥ अनुपसर्गे ७।१॥ स०—व्यधश्च० इत्येतयोर्द्वन्द्वः । अनुपसर्ग इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—अप् अकर्त्तरि च

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[आदः]

ज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्गरहिताभ्यां व्यधजप इत्येताभ्यां धातुभ्यां कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे चाप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—व्यधः, जपः ॥

भाषार्थः—[अनुपसर्गे] उपसर्ग रहित [व्यधजपोः] व्यध तथा जप धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—व्यधः (चोट) जपः (जपना) ॥

यहाँ से 'अनुपसर्गे' की अनुवृत्ति ३।३।६५ तक जायेगी ॥

स्वनहसोर्वा ॥३।३।६२॥

स्वनहसोः ६।२॥ वा अ० ॥ स०—स्वन० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अनुपसर्गे, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्गरहिताभ्यां स्वन, हस इत्येताभ्यां धातुभ्यां वाऽप् प्रत्ययो भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ॥ उदा०—स्वनः, स्वानः । हसः, हासः ॥

भाषार्थः—उपसर्ग रहित [स्वनहसोः] स्वन और हस धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [वा] विकल्प से अप् प्रत्यय होता है। पक्ष में *भावे* (३।३।१८) से घञ् हो गया है, क्योंकि भावे से घञ् की प्राप्ति में ही यह सब सूत्र हैं। घञ् पक्ष में *अत उपधायाः* (७।२।११६) से वृद्धि हो ही जायेगी ॥ उदा०—स्वनः (शब्द करना) स्वानः । हसः (हँसना) हासः ॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति ३।३।६५ तक जायेगी ॥

यमः समुपनिविषु च ॥३।३।६३॥

यमः ५।१॥ समुपनिविषु ७।३॥ च अ० ॥ स०—सम् च उप च नि च वि च = समु·····वयः तेषु····· इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—वा, अनुपसर्गे, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सम् उप नि वि इत्येतेषूपपदेषु अनुपसर्गेऽपि यम् धातोर्वाऽप् प्रत्ययो भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ॥ उदा०—संयमः संयामः, उपयमः, उपयामः, नियमः, नियामः, वियमः, वियामः, यमः, यामः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*समुपनिविषु*] सम् उप नि वि उपसर्ग पूर्वक [*यमः*] यम धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में [*च*] भी में विकल्प से अप् प्रत्यय होता है, पक्ष में यथाप्राप्त घञ् उदा०—संयमः (संयम) संयामः, उपयमः (विवाह) उपयामः, (नियम) नियामः, वियमः (दुःख) वियामः, यमः (संयम) यामः॥

नौ गदनदपठस्वनः ॥३।३।६४॥

नौ ७।१॥ गदनदपठस्वनः ५।१॥ स०—गदश्च नदश्च पठश्च स्व गद····स्वन् तस्मात्···समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—वा, अप्, च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—नि गदादिभ्यो धातुभ्यः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च विकल्पेना भवति॥ उदा०—निगदः, निगादः। निनदः, निनादः। निपठः, नि निस्वनः, निस्वानः॥

भाषार्थः—[*नौ*] नि पूर्वक [*गदनदपठस्वनः*] गद, नद, पठ, स्व धातुओं से विकल्प से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अप् होता है। पक्ष में घञ् प्रत्यय होगा॥ उदा०—निगदः (आवाज) निगादः, निनदः (आवाज) निनादः, निपठः (पढ़ना) निपाठः, (आवाज करना) निस्वानः॥

यहाँ से '*नौ*' की अनुवृत्ति ३।३।६५ तक जायेगी॥

क्वणो वीणायां च ॥३।३।६५॥

क्वणः ५।१॥ वीणायाम् ७।१॥ च अ०॥ अनु०—नौ, वा, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—क्वणधातोर्निपूर्वादनुपसर्गाच्च वीणायामभिधेयायां कर्तृ कारके संज्ञायां भावे च विकल्पेनाऽप् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—नि प्रक्वणा वीणा॥ निक्वणः, निक्वाणः॥ अनुपसर्गात्—क्वणः क्वाणः॥

भाषार्थः—नि पूर्वक अथवा अनुपसर्ग [*क्वणः*] क्वण धातु [*वीणायाम्*] वीणा अभिधेय होने पर [*च*] भी कर्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में विकल्प से अप् प्रत्यय होता है, पक्ष में घञ् भी हो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दः]

दा०—कल्याणप्रकणा वीणा (सप्ततन्त्री वीणा विशेष का भेद) निक्कणः वत् वीणा भेद) निक्वाणः। क्कणः (आवाज) क्काणः॥

यहाँ सोपसर्ग क्कण धातु से ही वीणा अभिधेय होने पर प्रत्यय ता है, अनुपसर्ग से नहीं, सो 'क्कणः' का केवल आवाज ही अर्थ ता। कहीं-कहीं कोषों में क्कणः का अर्थ 'वीणा का भेद' ही मिलता सो शब्दशक्तिस्वाभाव्य से यथासम्भव अर्थ लगा लेना चाहिये॥

नित्यं पणः परिमाणे ३।३।६६॥

नित्यम् १।१॥ पणः ५।१॥ परिमाणे ७।१॥ अनु०—अप् अकर्त्तरि ारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः-पण व्यवहारे ौ च, अस्माद् धातोः परिमाणे गम्यमाने कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां वे च नित्यम् अप् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—मूलकपणः, शाकपणः॥

भाषार्थः—[परिमाणे] परिमाण गम्यमान होने पर [पणः] पण तु से [नित्यम्] नित्य ही कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अप् य होता है॥ पण धातु से अप् प्रत्यय करके पणः बनाकर मूलक ाक के साथ षष्ठीतत्पुरुष समास हो गया है॥ उदा०—मूलक-ः (मूली के गट्ठे, जो बेचने के लिये गिनकर रखे जाते हैं) शाकपणः ाक का गट्ठा)॥

मदोऽनुपसर्गे ॥३।३।६७॥

मदः ५।१॥ अनुपसर्गे ७।१॥ स०—अनुप० इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः॥ ०—अप् अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, ा॥ अर्थः—अनुपसर्गाद् मदधातोः कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे प् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—विद्यया मदः=विद्यामदः। धनेन ः=धनमदः॥

भाषार्थः—[अनुपसर्गे] उपसर्ग रहित [मदः] मद धातु से कर्तृभिन्न रक संज्ञा में तथा भाव में अप् प्रत्यय होता है॥ उदा०—विद्या-ामदः (विद्या के कारण अभिमान) धनमदः (धन के कारण अभिमान)॥ ामदः आदि में कर्तृकरणे० (२।१।३१) से समास होता है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रमदसम्मदौ हर्षे ॥३।३।६८॥

प्रमदसम्मदौ १।२॥ हर्षे ७।१॥ स०—प्रम० इत्यनेनेटि अनु०—अप् अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, अर्थः—हर्षेऽभिधेये प्रमद सम्मद इत्येतौ शब्दौ अप्प्रत्ययान्तौ कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ॥ उदा०—कन्यानां प्रमदः लानां सम्मदः ॥

भाषार्थः—[हर्षे] हर्ष अभिधेय होने पर [प्रमदसम्मदौ] प्र सम्मद ये शब्द अप् प्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं, कर्तृभि संज्ञा में तथा भाव में ॥ पूर्व सूत्र से अनुपसर्ग मद धातु से था, यहाँ प्र तथा सम् पूर्वक मद धातु से भी अप् हो निपातन कर दिया है ॥ उदा०—कन्यानां प्रमदः (कन्याओं कोकिलानां सम्मदः (कोयलों का हर्षोत्पादक शब्द) ॥

समुदोरजः पशुषु ॥३।३।६९॥

समुदोः ७।२॥ अजः ५।१॥ पशुषु ७।३॥ स०—समु च समुदौ तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अप्, अकर्त्तरि च संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सम् उत् पूर्वयोः, अज धातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे चाप् प्रत्यय पशुविषये ॥ उदा०—समजः पशूनाम्; उदजः पशूनाम् ॥

भाषार्थः—[समुदोः] सम् उत् पूर्वक [अजः] अज धातु से कारक संज्ञा में तथा भाव में, समुदाय से [पशुषु] पशु विषय हो तो अप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—समजः पशूनाम् (पशु समूह) उदजः पशूनाम् (पशुओं का प्रेरक) ॥

अक्षेषु ग्लहः ॥३।३।७०॥

अक्षेषु ७।३। ग्लहः १।१॥ अनु०—अप्, अकर्त्तरि च कारके याम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ग्लह इति अप् प्र निपात्यते, अक्षविषये कर्तृभिन्ने कारके भावे च, लत्वं च धातोरन्न निपातनात् ॥ उदा०—अक्षस्य ग्लहः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[ः]

भाषार्थः—[ग्लहः] ग्लह शब्द में [अक्षेषु] अक्ष विषय हो तो ग्रह धातु से अप् प्रत्यय तथा लत्व निपातन से होता है, कर्तृभिन्न कारक तथा भाव में ॥ ग्रह धातु से ग्रहवृदृ० (३।३।५८) से अप् सिद्ध ही था, लत्वार्थ निपातन है ॥ उदा०—अक्षस्य ग्लहः (जुए के पासे) ॥

प्रजने सर्त्तेः ॥३।३।७१॥

प्रजने ७।१॥ सर्त्तेः ५।१॥ अनु०—अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रजनम् = प्रथमं गर्भग्रहणम् । प्रजनेऽर्थे वर्त्तमानात् सृधातोः कर्तृभिन्ने कारके भावे चाऽप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—गवामुपसरः, पशूनामुपसरः ॥

भाषार्थः—[प्रजने] प्रजन अर्थ में वर्त्तमान [सर्त्तेः] सृ धातु से अप् प्रत्यय होता है कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में ॥ उदा०—गवामुपसरः (गौओं का गर्भ ग्रहणाथ प्रथम बार गमन) पशूनामुपसरः (पशुओं का गर्भ ग्रहणार्थ प्रथम बार गमन) ॥

ह्वः सम्प्रसारणं च न्यभ्युपविषु ॥३।३।७२॥

ह्वः ५।१॥ सम्प्रसारणम् १।१॥ च अ० ॥ न्यभ्युपविषु ७।३॥ स०—न्यभ्यु० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अप्, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—नि अभि उप वि इत्येतेषूपपदेषु ह्वेञ् धातोः सम्प्रसारणम् अप् प्रत्ययश्च भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ॥ उदा०—निहवः, अभिहवः, उपहवः, विहवः ॥

भाषार्थः—[न्यभ्युपविषु] नि अभि उप तथा वि पूर्वक [ह्वः] ह्वेञ् धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अप् प्रत्यय होता है, [च] एवं ह्वेञ् को [सम्प्रसारणम्] सम्प्रसारण भी हो जाता है ॥ उदा०—निहवः (बुलाना) अभिहवः (सब ओर से बुलाना) उपहवः (समीप बुलाना) विहवः (प्रबलता से बुलाना) ॥ ह्वेञ् को आदेच उपदे० (६।१।४४) से ह्वा बन कर प्रकृत सूत्र से सम्प्रसारण तथा अप् प्रत्यय होकर 'नि ह् उ आ अप्' रहा, सम्प्रसारणाच्च (६।१।१०४) लगाकर 'नि ह् अ' बना, पूर्ववत् गुण तथा अवादेश होकर निहवः आदि रूप बन गये ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'ह्वः सम्प्रसारणम्' की अनुवृत्ति ३।३।७५ तक जाती

आङि युद्धे ॥३।३।७३॥

आङि ७।१॥ युद्धे ७।१॥ अनु०—ह्वः सम्प्रसारणम्, अप्, अ कारके संज्ञायाम्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—युद्धेऽभिधे उपपदे ह्वेञ्धातोः सम्प्रसारणमप् प्रत्ययश्च भवति कर्तृभिन्ने संज्ञायाम् ॥ उदा०—आहूयन्तेऽस्मिन् = आहवः ॥

भाषार्थः—[युद्धे] युद्ध अभिधेय हो तो [आङि] आङ् पू धातु को सम्प्रसारण तथा अप् प्रत्यय होता है कर्तृभिन्न का में ॥ उदा०—आहवः (युद्ध क्षेत्र) ॥

निपानमाहावः ॥३।३।७४॥

निपानम् १।१॥ आहावः १।१॥ अनु०—ह्वः सम्प्रसारणम्, अप्, च कारके संज्ञायाम्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आङ्पूर्व धातोः सम्प्रसारणम्, अप् प्रत्ययो वृद्धिश्च निपात्यते, निपानेऽभि भिन्ने, कारके संज्ञायाम् ॥ निपिबन्ति अस्मिन्निति निपानम्-

भाषार्थः—[निपानम्] निपान अभिधेय हो तो आङ् पू धातु से अप् प्रत्यय सम्प्रसारण तथा वृद्धि भी निपातन [आहावः] आहाव शब्द सिद्ध करते हैं कर्तृभिन्न कारक में ॥ निपान जलाधार को कहते हैं, जो कि कुओं के समीप के पानी पीने के लिए बनाया जाता है ॥ उदा०—आहावः के जल पीने का चबच्चा) ॥

भावेऽनुपसर्गस्य ॥३।३।७५॥

भावे ७।१॥ अनुपसर्गस्य ६।१॥ स०—अनुप० इत्यत्र नञ्तत्पु अनु०—ह्वः सम्प्रसारणम्, अप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ उपसर्गरहिताद् ह्वेञ् धातोर्भावेऽप् प्रत्ययो भवति, सम्प्रसारणञ्च ह्वेञ् धातोः ॥ उदा०—हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् । हवः ॥

भाषार्थः—[अनुपसर्गस्य] उपसर्ग रहित ह्वेञ् धातु से [भावे] में अप् प्रत्यय तथा सम्प्रसारण हो जाता है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[हनः]

यहाँ से 'भावेऽनुपसर्गस्य' की अनुवृत्ति ३।३।७६ तक जाती है ॥

हनश्च वधः ॥३।३।७६॥

हनः ५।१॥ च अ०॥ वधः १।१॥ अनु०—भावेऽनुपसर्गस्य, अप्, धोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्गरहिताद् हन्धातोर्भावेऽप् प्रत्ययो भवति, तत्संनियोगेन च हनो वध आदेशो भवति ॥ उदा०—वधश्चौराणाम्, कंसस्य वधः ॥

भाषार्थः—अनुपसर्ग [हनः] हन धातु से अप् प्रत्यय भाव में होता है [च] तथा प्रत्यय के साथ ही साथ हन को [वधः] वध आदेश भी हो जाता है, यह वध आदेश अन्तोदात्त होता है सो अनुदात्त (३।१।४) अप् परे रहते वध के अ का अतो लोपः (६।४।४८) से लोप करने पर तास्यनुदात्तेत्० च० (६।१।१५५) से अप् को उदात्त हो जाता है ॥ उदा०—चौराणाम् (चोरों की हत्या) कंसस्य वधः (कंस का मारा जाना) ॥

यहाँ से 'हनः' की अनुवृत्ति ३।३।८७ तक जाती है ॥

मूर्त्तौ घनः ॥३।३।७७॥

मूर्त्तौ ७।१॥ घनः १।१॥ अनु०—हनः, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—मूर्त्तिः=स्थूलता, काठिन्यम्। मूर्त्ताभिधेयायां हनधातोरप् प्रत्ययस्तस्य च हनः 'घन' आदेशो भवति ॥ उदा०—अभ्रघनः, दधिघनः, घनो मेघः, घनं वस्त्रम् ॥

भाषार्थः—[मूर्त्तौ] मूर्त्ति=काठिन्य अभिधेय हो तो हन धातु से अप् प्रत्यय होता है तथा हन को [घनः] घन आदेश भी हो जाता है ॥ उदा०—अभ्रघनः (बादल का घनापन) दधिघनः (दही का कड़ापन) घनो मेघः (घने बादल) घनं वस्त्रम् ॥

यहाँ से 'घनः' की अनुवृत्ति ३।३।८३ तक जायेगी ॥

अन्तर्घनो देशे ॥३।३।७८॥

अन्तर्घनः १।१॥ देशे ७।१॥ अनु०—घनः, हनः, अप् अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—देशोऽभिधेये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. eGangotri Initiative

अन्तः पूर्वाद् हन धातोरप् प्रत्ययो भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां च तस्य च हनः घनादेशो णत्वाभावश्चापि निपात्यते ॥ उदा०—घनो देशः ॥

भाषार्थः—[देशे] देश अभिधेय हो तो कर्तृभिन्न कारक तथा भाव में [अन्तर्घनः] अन्तर्घन शब्द में अन्तर् पूर्वक हन धातु से अप् प्रत्यय तथा हन को घन आदेश निपातन किया जाता है। *पूर्वपदात् संज्ञायामगः* (८।४।३) से णत्व प्राप्त था, यहाँ निपातन से नहीं कर दिया है ॥ उदा०—अन्तर्घनः (देश विशेष) ॥

अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च ॥३।३।७९॥

अगारैकदेशे ७।१॥ प्रघणः १।१॥ प्रघाणः १।१॥ च अ०॥ एकश्चासौ देशश्च एकदेशः कर्मधारयस्तत्पुरुषः। अगारस्य=गृहस्य देशः अगारैकदेशः, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—घनः, हनः, अप्, घञ् च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अगारैकदेशे वाच्ये प्रघण, प्रघाण इत्येतौ शब्दौ निपात्येते कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ॥ प्र पूर्वाद् हन् धातोरप् प्रत्ययः, हन्तेर्घनादेशो निपात्यते प्रघण इत्यत्र, प्रघाण इत्यत्रापि घञ् प्रत्ययः, हन्तेर्घनादेशो निपात्यते

भाषार्थः—[अगारैकदेशे] गृह का एक देश वाच्य हो तो [प्रघणः प्रघाणः] प्रघण और प्रघाण शब्द में प्र पूर्वक हन धातु से अप् तथा घञ् प्रत्यय और हन को घन आदेश कर्तृभिन्न कारक में तथा भाव में निपातन किये जाते हैं ॥ यहाँ *पूर्वपदात्* (८।४।३) से णत्व हो जाता है ॥ प्रघाण में घञ् प्रत्यय होने से वृद्धि हो जायेगी ॥ णत्व *अट्कु०* (८।४।२) से होता है ॥ उदा०—प्रघणः (ड्योढ़ी) प्रघाणः ॥

उद्घनोऽत्याधानम् ॥३।३।८०॥

उद्घनः १।१॥ अत्याधानम् १।१॥ अनु०—घनः, हनः, अप्, घञ् च कारके संज्ञायाम्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अति=उपरि आधानम् यस्मिन्निति अत्याधानम् ॥ अर्थः—अत्याधाने वाच्ये, उत्पूर्वाद् हन धातोरप् प्रत्ययो घन आदेशश्च निपात्यते कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च इति ॥ हन्यते यस्मिन् काष्ठानीति उद्घनः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[उद्घनः]

भाषार्थः—[उद्घनः] उद्घन शब्द में [अत्याधानम्] अत्याधान अर्थ हो तो उत् पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय तथा हन को घनादेश निपातन किया जाता है कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में ॥ जिस काष्ठ को फाड़ना होता है उसके नीचे एक काष्ठ और रखते हैं उसे अत्याधान कहते हैं ॥ उदा०—उद्घनः (जिस काष्ठ पर काष्ठ को रखकर बढ़ई लोग छीलते हैं वह) ॥

अपघनोऽङ्गम् ॥३।३।८१॥

अपघनः १।१॥ अङ्गम् १।१॥ अनु०—घनः, हनः, अप्, अकर्त्तरि कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अपपूर्वाद् हन धातोरप् प्रत्ययो घनादेशश्च निपात्यते, अङ्गं चेत् तद् भवति, तद्भिन्ने कारके संज्ञायां भावे च, 'अपघन' इति ॥

भाषार्थः—अप पूर्वक हन धातु से [अङ्गम्] अङ्ग = शरीर का अवयव अभिधेय हो तो अप् प्रत्यय तथा हन को घन आदेश [अपघनः] अपघन शब्द में निपातन किया जाता है, कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में ॥ 'अपघनः' हाथ या पैर को ही कहते हैं, सारे शरीर को नहीं ॥

करणेऽयोविद्रुषु ॥३।३।८२॥

करणे ७।१॥ अयोविद्रुषु ७।३॥ स०—अयश्च वि च द्रुश्च अयोविद्रवः तस्मिन्.....इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—घनः, हनः, अप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अयस्, वि, द्रु इत्येतेषूपपदेषु करणे कारके हनधातोः अप् प्रत्ययो भवति, तस्य हनः स्थाने घनादेशश्च भवति ॥ उदा०—अयो हन्यतेऽनेनेति अयोघनः, विघनः, द्रुघनः ॥

भाषार्थः—[अयोविद्रुषु] अयस्, वि तथा द्रु उपपद रहते हन धातु से [करणे] करण कारक में अप् प्रत्यय होता है, तथा हन के स्थान में घनादेश भी होता है ॥ उदा०—अयोघनः (हथौड़ी) विघनः (हथौड़ा) द्रुघनः (कुल्हाड़ा) ॥

यहाँ से 'करणे' की अनुवृत्ति ३।३।८४ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

स्तम्बे क च ॥३।३।८३॥

स्तम्बे ७।१॥ क लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ अनु०—हनः, अप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—स्तम्ब उपपदे करणे कारके हन-धातोः कः प्रत्ययो भवति, अप् च, सन्नियोगेन च हन्तेर्घनादेशो भवति ॥ उदा०—स्तम्बो हन्यते स्तम्बघ्नः, स्तम्बघनः ॥

भाषार्थः—[स्तम्बे] स्तम्ब शब्द उपपद रहते करण कारक में क प्रत्यय [च] तथा अप् प्रत्यय भी होता है, अप् प्रत्यय परे हन को घन आदेश भी हो जाता है ॥ करण कारक का सम्बन्ध तथा अप् दोनों के साथ लगेगा। क प्रत्यय परे रहते गमहन (६।४।९८) से उपधा लोप तथा हो हन्तेर्ञ्णि० (७।३।५४) से ह को ञ्णि हो जायेगा ॥ उदा०—स्तम्बघ्नः (घास जिससे काटी जाय, हँसिया) स्तम्बघनः ॥

परौ घः ॥३।३।८४॥

परौ ७।१॥ घः १।१॥ अनु०—करणे, हनः, अप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—परिपूर्वाद् हन धातोः करणे कारके 'अप्' प्रत्ययो भवति तस्य च हन्तेः 'घ' आदेशो भवति ॥ उदा०—परिहन्यतेऽनेनेति परिघः, पलिघः ॥

भाषार्थः—[परौ] परि पूर्वक हन् धातु से करण कारक में अप् प्रत्यय होता है, तथा हन के स्थान में [घः] घ आदेश भी होता है।

परेश्च घाङ्कयोः (८।२।२२) से र को विकल्प से ल्त्व होकर पलिघ भी बनेगा ॥ उदा०—परिघः (लोहे का मुद्गर) पलिघः ॥

उपघ्न आश्रये ॥३।३।८५॥

उपघ्नः १।१॥ आश्रये ७।१॥ अनु०—हनः अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपघ्न इत्येतत् पूर्वाद् हनधातोरप् प्रत्ययः उपधालोपश्च निपात्यते, आश्रयोऽकर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ॥ उदा०—पर्वतस्य उपघ्नः = पर्वतोपघ्नः। ग्रामस्य उपघ्नः = ग्रामोपघ्नः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[आदः]

भाषार्थः—[उपघ्नः] उपघ्न शब्द में उप पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय, हन् के उपधा का लोप निपातन किया जाता है [आश्रये] आश्रय = सामीप्य अभिधेय होने पर, कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में ॥ 'उप हन् अप्' यहाँ पूर्ववत् हन् के ह् को कुत्व होकर उपघ्न बना, एवं पर्वत तथा ग्राम के साथ षष्ठीतत्पुरुष समास हो गया है ॥ उदा०—ग्रामोपघ्नः (ग्राम के समीप) पर्वतोपघ्नः (पर्वत के समीप) ॥

संघोद्घौ गणप्रशंसयोः ॥३।३।८६॥

संघोद्घौ १।२॥ गणप्रशंसयोः ७।२॥ स०—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—हनः, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—संघ उद्घ इत्येतौ शब्दौ निपात्येते यथासंख्यं गणप्रशंसयोरभिधेययोः कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च। सम् उद् उपपदयोः हन्धातोरप् प्रत्ययः, टिलोपो घत्वञ्च निपात्यते ॥ उदा०—सङ्घः पशूनाम्, उद्घो मनुष्याणाम् ॥

भाषार्थः—[संघोद्घौ] संघ और उद्घ शब्द यथासंख्य करके [गणप्रशंसयोः] गण तथा प्रशंसा अभिधेय होने पर निपातन किये जाते हैं कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में। सम्पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय हन् के टि भाग का (अर्थात् अन् का) लोप तथा हकार को घत्व निपातन करके संघः शब्द बनाते हैं गण अभिधेय होने पर। इसी प्रकार उत् पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय, टि लोप तथा कुत्व प्रशंसा अभिधेय होने पर निपातन करके उद्घः शब्द बनाते हैं ॥ उदा०—संघः पशूनाम् (पशुओं का समूह) उद्घो मनुष्याणाम् (मनुष्यों की प्रशंसा) ॥

निघो निमितम् ॥३।३।१८७॥

निघः १।१॥ निमितम् १।१॥ अनु०—हनः, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ समन्तान् मितं निमितम् ॥ अर्थः—निमितेऽभिधेये निपूर्वाद् हन्धातोरप् प्रत्ययः, टिलोपो हन्तेः स्थाने घादेशश्च निपात्यते निघ इति ॥

भाषार्थः—सब प्रकार से जो मित बराबर वह निमित कहाता है [निमितम्] निमित अभिधेय हो तो [निघः] नि पूर्वक हन् धातु से अप्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रत्यय टि भाग का लोप, तथा हन् के स्थान में घ आदेश निपातन निघ शब्द सिद्ध करते हैं ॥ उदा०—निघाः शालयः (एक बराबर ऊँचाई के धान) निघा वृक्षाः (एक बराबर ऊँचाई के वृक्ष)॥

ड्वितः क्त्रिः ॥३।३।८८॥

ड्वितः ५।१॥ क्त्रिः १।१॥ स०—डु इत् यस्य स ड्वित्, तस्मात् ..... बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ड्वितो धातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां च क्त्रिः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—डुपचष्—पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम्, उप्त्रिमम्, कृत्रिमम् ॥

भाषार्थः—[ड्वितः] डु इत् गया है जिन धातुओं का उनसे कर्तृ कारक संज्ञा में तथा भाव में [क्त्रिः] क्त्रि प्रत्यय होता है॥ सिद्धि १।३।५ में देखें॥

ट्वितोऽथुच् ॥३।३।८९॥

ट्वितः ५।१॥ अथुच् १।१॥ स०—टु इत् यस्य स ट्वित्, तस्मात् बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ट्वितो धातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे 'अथुच्' प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—वेपथुः, श्वयथुः, ष्ठेवथुः—ष्ठेवथुः॥

भाषार्थः—[ट्वितः] टु इत् गया है जिन धातुओं का उनसे भिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [अथुच्] अथुच् प्रत्यय होता है॥ उदा०—वेपथुः, श्वयथुः, ष्ठेवथुः (खांसी)॥ सिद्धि परि० १।३।५ में देखें॥

यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ॥३।३।९०॥

यज ..... रक्षः ५।१॥ नङ् १।१॥ स०—यजश्च याचश्च यतश्च विच्छश्च प्रच्छश्च रक्ष् च इति यज ..... रक्ष्, तस्मात् ..... समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यज देवपूजादौ, टु याचृ याच्ञायाम्, यती प्रयत्ने, ञिइषि गतौ, प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्, रक्ष रक्षणे इत्येतेभ्यो धातुभ्यः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च नङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—यज्ञः, याच्ञा, यत्नः, विश्नः, प्रश्नः, रक्षणः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[द्वितीयः]

भाषार्थः—[यज……रक्षः] यज् याच आदि धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [नङ्] नङ् प्रत्यय होता है ॥

यज्+नङ् इस अवस्था में स्तोः श्चुना० (८।४।३९) से श्चुत्व होकर यज्+न = यज्ञः बना है। याच्+न यहाँ पर भी श्चुत्व तथा टाप् होकर याच्ञा (मांगना) बना है। यती प्रयत्ने से यत्नः बन ही जायेगा। प्रच्छ्+न, प्रच्छ्+न यहाँ च्छ्वोः शू० (६।४।१९) से च्छ् के स्थान पर श् होकर, विश्+न = विश्नः (नक्षत्र), प्रच्छ्+न = प्रश्नः बन गया। रक्ष्+न यहाँ ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से ष्टुत्व होकर रक्षणः (रक्षा करना) बना है ॥

स्वपो नन् ॥३।३।९१॥

स्वपः ५।१॥ नन् १।१॥ अनु०—भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—स्वप धातोर्भावे नन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—स्वप्नः ॥

भाषार्थः—[स्वपः] ष्विष्वप् धातु से भाव में [नन्] नन् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—स्वप्नः (सोना) ॥

उपसर्गे घोः किः ॥३।३।९२॥

उपसर्गे ७।१॥ घोः ५।१॥ किः १।१॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्ग उपपदे घुसंज्ञकेभ्यो धातुभ्यः किः प्रत्ययो भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ॥ उदा०—विधिः, निधिः, प्रतिनिधिः, प्रदिः, अन्तर्द्धिः ॥

भाषार्थः—[उपसर्गे] उपसर्ग उपपद रहते [घोः] घु संज्ञक धातुओं से [किः] कि प्रत्यय कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में होता है ॥ सिद्धि में दाधाघ्वदाप् (१।१।१९) से डुदाञ् डुधाञ् की घु संज्ञा होकर कि प्रत्यय हुआ है। आतो लोप इटि च (६।४।६४) से 'आ' का लोप होकर वि धा इ = विधिः आदि बन गये हैं ॥ उदा०—विधिः (विधान) निधिः (खजाना) प्रतिनिधिः (प्रतिनिधि) प्रदिः (प्रदान) अन्तर्द्धिः (छिपना) ॥

यहाँ से 'घोः किः' की अनुवृत्ति ३।३।९३ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कर्मण्यधिकरणे च ॥३।३।९३॥

कर्मणि ७।१॥ अधिकरणे ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—धोः, किः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्मण्युपपदेऽधिकरणे कारके धुसंज्ञकेभ्यो धातुभ्यः किः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—जलं धीयतेऽस्मिन्निति जलधिः। शरो धीयतेऽस्मिन्निति शरधिः। उदकं धीयतेऽस्मिन्निति उदधिः ॥

भाषार्थः—[कर्मणि] कर्म उपपद रहते [अधिकरणे] अधिकरण कारक में [च] भी धुसंज्ञक धातुओं से कि प्रत्यय होता है ॥ उदा० जलधिः (समुद्र) शरधिः (तूणीर = तरकश) उदधिः (सागर) ॥ उदधि में उदक को 'उद' आदेश उदकस्योदः संज्ञायाम् (६।३।५५) से होता है।

स्त्रियां क्तिन् ॥३।३।९४॥

स्त्रियाम् ७।१॥ क्तिन् १।१॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायां भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—धातोः स्त्रीलिङ्गे कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च क्तिन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कृतिः, चितिः, [illegible]

भाषार्थः—धातु मात्र से [स्त्रियाम्] स्त्रीलिङ्ग में [क्तिन्] क्तिन् प्रत्यय होता है, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में ॥ मन् धातु से [illegible] अनुदात्तोपदेश० (६।४।३७) से नकार लोप होकर बनेगा। क्तिन् होने पर कृतिः चितिः में गुण नहीं हुआ है ॥

यहां से 'स्त्रियाम्' की अनुवृत्ति ३।३।११२ तथा 'क्तिन्' की [illegible] तक जाती है ॥

स्थागापापचो भावे ॥३।३।९५॥

स्था……पचः ५।१॥ भावे ७।१॥ स०—स्थाश्च गाश्च पाश्च पच् च स्थागापापच् तस्मात् समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—स्त्रियाम् क्तिन्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—स्था, गा, पा, पच् इत्येतेभ्यो धातुभ्यः स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् प्रत्ययो भवति ॥ पूर्वेणैव सिद्धे पुनर्वचनं स्थाद्यर्थम्। आतश्चोपसर्गे (३।३।१०६) इत्यनेनाङ् मा भूत् इत्येवमर्थम्। पक्षे [illegible] षिद्भिदादिभ्यो० (३।३।१०४) इत्यनेनाङि प्राप्ते क्तिन् विधीयते ॥ उदा०—प्रस्थितिः, उद्गीतिः, संगीतिः, प्रपीतिः, सम्पीतिः, पक्तिः।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[पादः]

भाषार्थः—[स्थागापापचः] स्था गा पा पच् इन धातुओं से स्त्रीलिङ्ग [भावे] भाव में क्तिन् प्रत्यय होता है ॥ पूर्व सूत्र से ही क्तिन् सिद्ध था, पुनर्वचन स्था गा पा के आकारान्त होने से *आतश्चोपसर्गे* से जो अङ् प्रत्यय प्राप्त था उसके बाधनार्थ है, तथा पच् को भी *षिद्भिदादिभ्यो०*, से अङ् प्राप्त था उसके बाधनार्थ है ॥ उदा०—प्रस्थितिः (अवस्था) उद्गीतिः (साम गान) संगीतिः (संगीत) प्रपीतिः (पीना) सम्पीतिः (इकट्ठा मिलकर पीना) पक्तिः (पकाना) ॥

घतिस्यतिमा० (७।४।४०) से स्था के अन्त्य अल् (१।१।५१) आ के स्थान में इत्व होकर प्रस्थितिः बना है, उद्गीतिः आदि में *घुमास्थागा०* (६।४।६६) से पूर्ववत् अन्त्य अल् को ईत्व हुआ है ॥ पच् को *चोः कुः* (८।२।३०) से कुत्व होकर पक्तिः बना है ॥

यहाँ से '*भावे*' की अनुवृत्ति ३।३।९६ तक जायेगी ॥

मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः ॥३।३।९६॥

मन्त्रे ७।१॥ वृषे·····राः १।३, अत्र पञ्चम्यर्थे 'प्रथमा' इति विपरिणम्य ॥ उदात्तः १।१॥ स०—वृषश्च इषश्च पचश्च मनश्च विदश्च भूश्च वीश्च राश्च, वृष···राः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—भावे, स्त्रियाम्, क्तिन्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—मन्त्रे विषये वृषु सेचने, इषु इच्छायाम्, डुपचष् पाके, मन ज्ञाने, विद ज्ञाने, भू सत्तायाम्, वी गतिव्याप्तिप्रजनादिषु, रा दाने इत्येतेभ्यो धातुभ्यः क्तिन् प्रत्ययो भवति स च उदात्तः, स्त्रीलिङ्गे भावे ॥ उदा०—वृष्टिः (ऋक् १।३८।८) इष्टिः (ऋक० ४।४।७) पक्तिः (ऋक० ४।२४।५) मतिः (ऋक्० १।१४१।१) वित्तिः भूतिः, यन्ति वीतये (अथ० २०।६९।३) रातिः (ऋक्० १।३४।१) ॥

भाषार्थः—[मन्त्रे] मन्त्र विषय में [वृषे...राः] वृष इष् आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग भाव में क्तिन् प्रत्यय होता है [उदात्तः] और वह उदात्त होता है ॥ *क्तित्यादिर्निं०* (६।१।१९१) से क्तिन् प्रत्ययान्त शब्द को आद्युदात्त प्राप्त था यहाँ प्रत्यय को उदात्त कर दिया है ॥ मतिः की सिद्धि ३।३।९४ सूत्र पर देखें ॥

यहाँ से 'उदात्तः' की अनुवृत्ति ३।३।१०० तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च ॥३।३।९७॥

ऊति·····कीर्त्तयः १।३॥ च अ०॥ *स०*—ऊति० इत्यत्रेतरेतरद्व अनु०—उदात्तः, स्त्रियां क्तिन्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ऊत्यादयः शब्दा अन्तोदात्ता निप अव धातोः क्तिन्, *ज्वरत्वर०* (६।४।२०) इत्यनेन वकारस्य उ स्थाने ऊठ् भवति, ऊतिः इत्यत्र। स्वरार्थं निपात्यते, प्रत्यय ऊ एव ॥ यूतिः इत्यत्र यु धातोर्दीर्घत्वं निपात्यते, क्तिन् तु सिद्ध जूतिः इत्यत्र जु धातोः दीर्घत्वं निपात्यते ॥ षोऽन्तकर्मणि धातोः परतः *द्यतिस्यति०* (७।४।४०) इत्यनेन इत्वे प्राप्ते तदभावार्थं क्ति अथवा सनधातोः *जनसनखनां सञ्झलोः* (६।४।४२) इति 'आत्वे' कृ इति रूपम्। तत्र स्वरार्थमेव निपातनं स्यात्॥ हनधातोर्हि हेतिः रूपम्। यदा हन्तेस्तदा हकारस्य एत्वं निपात्यते, अनु लोपस्तु *अनुदात्तोप०* (६।४।३७) इत्यनेन सिद्ध एव। यदा 'हि' धा गुणो निपात्यते। कीर्त्तिः इत्यत्र कृत संशब्दने धातोश्चुरादि कृते *ण्यासश्रन्थो युच्* (३।३।१०७) इति युचि प्राप्ते क्तिन् निपात्यते ॥

भाषार्थः—[*ऊति·····कीर्त्तयः*] ऊत्यादि शब्द [च] भी अन्त निपातन किये जाते हैं। क्तिन् प्रत्यय तो सामान्य (३।३।९४) सू से सिद्ध ही था, विशेष कार्य निपातन से करते हैं॥ ऊतिः में अव से क्तिन् प्रत्यय *ज्वरत्वर०* से उपधा तथा वकार के स्थान में ऊठ् ऊठ् + ति = ऊतिः (रक्षा) रूप सिद्ध ही था, पुनः अन्तोदात्त स्वर के वचन है, अन्यथा क्तिन् के नित् होने से *ञ्नित्यादि०* (६।१।१९ आद्युदात्त होता॥ यूतिः (मिलाना) जूतिः (भागना) में यु, जु धातुओं से दीर्घत्व तथा अन्तोदात्त स्वर निपातन है प्रत्यय ही था॥ सातिः (अन्त होना) षोऽन्तकर्मणि धातु से बनाएँ तो परे रहते जो *द्यतिस्यति०* से इत्व प्राप्त था, उसका अभाव निपात अथवा षणु दाने धातु से बनावें तो *जनसन०* से आत्व हो ही केवल स्वरार्थ वचन है॥ हेतिः (गति) हन् या हि धातु से बनेगा से बनाएँ तो हकार को एत्व निपातन करेंगे, अनुनासिक लोप पदेश० से सिद्ध ही है। हि से सिद्ध करें तो गुण निपातन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[आदः]

क्योंकि क्तिन् के कित् होने से *क्ङिति च* (१।१।५) से गुण निषेध प्राप्त ही था॥ कीर्तिः में कृत धातु के चुरादि गण की होने से ण्यन्त होकर सनाद्यन्तो० से युच् प्रत्यय प्राप्त था क्तिन् निपातन से कर दिया है॥ कृ ण्यन्त णि ति' यहाँ *उपधायाश्च* (७।१।१०१) से इत्व रपरत्व होकर किर्, रहा *हलि च* (८।२।७७) से दीर्घ होकर कीर्तिः बन गया है॥ *णेरनिटि* (६।४।५१) से णि का लोप हो ही जावेगा॥

व्रजयजोर्भावे क्यप् ॥३।३।९८॥

व्रजयजोः ६।२॥ भावे ७।१॥ क्यप् १।१॥ स०—व्रजश्च यज् च व्रजयजौ तयोः व्रजयजोः, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—उदात्तः, स्त्रियाम्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—व्रज, यज इत्येताभ्यां धातुभ्यां स्त्रीलिङ्गे भावे क्यप् प्रत्ययो भवति स च उदात्तः॥ उदा०—व्रज्या, इज्या॥

भाषार्थः—[व्रजयजोः] व्रज तथा यज धातुओं से स्त्रीलिङ्ग [भावे] भाव में [क्यप्] क्यप् प्रत्यय होता है, और वह उदात्त होता है॥ उदा०—व्रज्या (गमन) इज्या (यज्ञ करना)॥ यज् को *वचिस्वपियजा०* (६।१।१५) से सम्प्रसारण हो जायेगा। क्यप् के पित् होने से *अनुदात्तौ सुप्पितौ* (३।१।४) से क्यप् को अनुदात्त प्राप्त था, उदात्त विधान कर दिया है॥

यहाँ से 'क्यप्' की अनुवृत्ति ३।३।१०० तक जाती है॥

संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः ॥३।३।९९॥

संज्ञायाम् ७।१॥ सम···ञिणः ५।१॥ स०—समजश्च निषदश्च निपतश्च मनश्च विदश्च षुञ् च शीङ् च भृञ् च इण् च = समज···भृञिण् तस्मात्···समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—क्यप्, उदात्तः, स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—संज्ञायां विषये समूपूर्वाद् अज, निपूर्वात् षद, एवं पत, मन विद षुञ् शीङ् भृञ् इण् इत्येतेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियां कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च क्यप् प्रत्ययो भवति, स च क्यप् उदात्तो भवति॥ उदा०—समजन्त्यस्याम् = समज्या। निषीदन्त्यस्याम् = निषद्या। निपत्या। मन्यते तया मन्या। विद्यन्ति तया = विद्या, सुन्वन्ति तस्यां सुत्या। शेरते तस्यां शय्या। भरणं = भृत्या। ईयते गम्यते यया इत्या॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में [*सम*.....*विषः*] सम् अज, नि पूर्वक षद् तथा पत आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में कारक संज्ञा में तथा भाव में क्यप् प्रत्यय होता है, और वह उदात्त है ॥ उदा०—समज्या (सभा) निषद्या (बाजार) निपत्या (घर) मन्या (गले के पास की नाड़ी, जिससे व्यक्ति क्रुद्ध है ऐसा जाना है) विद्या, सुत्या (जिस वेला = काल में रस निकालते हैं, वह) शय्या (खाट) भृत्या (नौकरानी) इत्या (जिसके द्वारा जाते हैं, लालटेन) ॥ सुत्या, इत्या में *हस्वस्य पिति०* (६।१।६९) से तुक् हुआ है ॥ शय्या में शीङ् धातु के ई को (१।१।५२) *अयङ्यि* (७।४।२२) से अयङ् होकर शयङ्+क्यप्, शय्+य शय्या गया है ॥

कृञः श च ॥३।३।१००॥

कृञः ५।१॥ श लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ अनु०—उदात्तः, स्त्रियां, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, परश्च ॥ अर्थः—कृञ् धातोः स्त्रियां कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च शः प्रत्ययो भवति चकारात् क्यप् च ॥ भाष्येऽत्र "*वा वचनं कर्त्तव्यं क्तिन्नर्थम्*" इति वार्तिकमस्ति तेन पक्षे क्तिन् प्रत्ययोऽपि भवति उदा०—क्रिया, कृत्या, कृतिः ॥

भाषार्थः—[*कृञः*] कृञ् धातु से स्त्रीलिङ्ग में कर्तृभिन्न कारक में तथा भाव में [*श*] श प्रत्यय होता है, तथा [*च*] चकार से क्यप् होता है ॥ महाभाष्य में यहाँ *वा वचनं कर्त्तव्यं क्तिन्नर्थम्* ऐसा कहा है, पक्ष में क्तिन् प्रत्यय भी किया है, सो श क्यप् तथा क्तिन् तीन होते हैं ॥

यहाँ से '*श*' की अनुवृत्ति ३।३।१०१ तक जायेगी ॥

इच्छा ॥३।३।१०१॥

इच्छा १।१॥ अनु०—शः, स्त्रियाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—इषेर्धातोः शप्रत्ययो भावे स्त्रियां निपात्यते। भावे क्तिन् (३।१।६७) इत्यनेन यकि प्राप्ते तदभावो निपातनाद् भवति॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

भाषार्थः—[इच्छा] इच्छा शब्द भाव स्त्रीलिङ्ग में श प्रत्ययान्त निपातन किया जाता है॥ भाव में श प्रत्यय निपातन करने से सार्व-धातुके यक् से यक् प्राप्त था उसका अभाव भी यहाँ निपातन है। इषुग-मियमां० (७।३।७७) से इष् के षकार को छत्व, तथा छे च (६।१।७१) से तुक् होकर 'इत् छ् अ' बना। स्तोः श्चुना श्चुः (८।४।३९) से श्चुत्व तथा टाप् होकर इच्छा (अभिलाषा) शब्द बन गया है॥

अ प्रत्ययात् ॥३।३।१०२॥

अ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः॥ प्रत्ययात् ५।१॥ अनु०—स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रीलिङ्गे कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च 'अ' प्रत्ययो भवति॥ उदा०—चिकीर्षा, जिहीर्षा, पुत्रीया, पुत्रकाम्या, लोलूया, कण्डूया॥

भाषार्थः—[प्रत्ययात्] प्रत्ययान्त धातुओं से स्त्रीलिङ्ग कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [अ] अ प्रत्यय होता है॥ उदा०—चिकीर्षा (करने की इच्छा) जिहीर्षा (हरण करने की इच्छा) पुत्रीया (अपने पुत्र की इच्छा) पुत्रकाम्या, लोलूया (बार-बार काटने की क्रिया) कण्डूया (खुजली)॥ परिशिष्ट १।१।५७ के समान चिकीर्ष, जिहीर्ष धातु बनाकर इस सूत्र से अ प्रत्यय हो गया है। अ प्रत्यय करने का यही लाभ है कि कृत्तद्धितसमा० (१।२।४६) से इन सबकी प्रातिपदिक संज्ञा होकर सुप् चलेंगे॥ इसी प्रकार पुत्रीय धातु परि० २।४।७१ के समान बनकर अ प्रत्यय होगा। पुत्रकाम्या में पुत्रकाम्य धातु काम्यच (३।१।९) से काम्यच् प्रत्यय होकर बना है। लोलूय धातु परि० १।१।४ के समान बनेगा। कण्डू शब्द से कण्ड्वादिभ्यो यक् (३।१।२७) से यक् प्रत्यय होकर 'कण्डूय' धातु बना है, पुनः अकार प्रत्यय हो ही जायेगा। यह सब प्रत्ययान्त धातुएँ हैं, सन्, क्यच्, यङ् आदि प्रत्यय आकर पुनः आवन्ता० (३।१।३२) से धातु संज्ञा सब की होती है। सर्वत्र अजाद्य-तष्टाप् (४।१।४) से टाप् होगा॥ क्तिन् का अपवाद यह सूत्र है। अ प्रत्यय के परे रहते अतो लोपः (६।४।४८) से धातुओं के अकार का लोप हो जाता है॥

यहाँ से 'अ' की अनुवृत्ति ३।३।१०३ तक जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

गुरोश्च हलः ॥३।३।१०३॥

गुरोः ५।१॥ च अ० ॥ हलः ५।१॥ अनु०—अ, स्त्रियाम्, क्ति च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यो गुरुमान् धातुस्तस्मात् स्त्रीलिङ्गे कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां 'अ' प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कुण्डा, हुण्डा, ईहा, ऊहा ॥

भाषार्थः—[*हलः*] हलन्त जो [*गुरोः*] गुरुमान् धातु उससे भी स्त्रीलिङ्ग कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अ प्रत्यय जाता है ॥ सिद्धि परि० १।४।११ में देखें। ईह ऊह धातुओं में च (१।४।१२) से गुरु संज्ञा हुई है, हलन्त हैं ही सो प्रकृत सूत्र से प्रत्यय तथा टाप् होकर ईहा ऊहा बन गया है। *हल्ङ्याब्भ्यो* (६।१।६६) से सु का लोप हो ही जायेगा ॥

षिद्भिदादिभ्योऽङ् ॥३।३।१०४॥

षिद्भिदादिभ्यः ५।३॥ अङ् १।१॥ स०—ष् इत् यस्य स बहुव्रीहिः। भिद् आदिर्येषां ते भिदादयः, बहुव्रीहिः। षित् च भिदादयश्च षिद्भिदादयस्तेभ्यः·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—स्त्रियाम् अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—षिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च धातुभ्यः स्त्रीलिङ्गे कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे चाङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—जृष्—जरा। त्रपूष्—त्रपा। भिदिभ्यः, भिदा, छिदा, विदा ॥

भाषार्थः—[*षिद्भिदादिभ्यः*] षकार इत् गया है ऐसी धातु तथा भिदादि गण पठित धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में [अङ्] अङ् प्रत्यय होता है, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में ॥ उदा०—जरा (वृद्धावस्था) त्रपा (लज्जा)। भिदादियों से—भिदा (फाड़ना) छिदा (काटना) विदा (जानना) ॥ जृष्, त्रपूष् षित् धातुएँ हैं सो जृ अङ्, बनकर जृ को गुण रपरत्व होकर 'जर् अ रहा', टाप् होकर जरा बना। सु का लोप *हल्ङ्याब्भ्यो०* (६।१।६६) से हो गया है। इसी सब में जानें ॥

यहाँ से 'अङ्' की अनुवृत्ति ३।३।१०६ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च ॥३।३।१०५॥

चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चः ५।१॥ च अ० ॥ स०—चिन्तिश्च पूजिश्च कथिश्च कुम्बिश्च चर्चश्च चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चः तस्मात्..... समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अङ्, स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—चिति स्मृत्याम्, पूजायाम्, कथ वाक्यप्रबन्धे, कुबि आच्छादने, चर्च अध्ययने इत्येतेभ्यो धातुभ्यः स्त्रीलिङ्गे कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे चाङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—चिन्ता, पूजा, कथा, कुम्बा, चर्चा ॥

भाषार्थः—[चिन्ति.....चर्चः] चिन्त पूज आदि धातुओं से [च] भी स्त्रीलिङ्ग कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अङ् प्रत्यय होता है। उदा०—चिन्ता, पूजा, कथा, कुम्बा (मोटा पेटीकोट) चर्चा (पढ़ना)॥ चिन्ति आदि सब धातुएं चुरादि गण की हैं, सो ण्यन्त होने से सासश्रन्थो० (३।३।१०७) से युच् प्राप्त था अङ् विधान कर दिया है, अतः णेरनिटि (६।४।५१) से णि का लोप हो ही जायेगा। चिति धातु इदित् होने से इदितो नुम्० (७।१।५८) से नुमागम हो जाता है। शेष पूर्ववत् ही जानें ॥

आतश्चोपसर्गे ॥३।३।१०६॥

आतः ५।१॥ च अ० ॥ उपसर्गे ७।१॥ अनु०—अङ्, स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्ग उपपद आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियां अङ् प्रत्ययो भवति, कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ॥ उदा०—संज्ञायतेऽनेनेति = संज्ञा। उपधा। प्रधा। अन्तर्द्धा ॥

भाषार्थः—[उपसर्गे] उपसर्ग उपपद रहते [आतः] आकारान्त धातुओं से [च] भी स्त्रीलिङ्ग कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अङ् प्रत्यय होता है, औत्सर्गिक क्तिन् प्राप्त था उसका यह अपवाद है ॥ उदा०—संज्ञा (नाम) उपधा (स्थापन करना) प्रदा (भेंट) प्रधा (धारण करना) अन्तर्द्धा (छिपना) ॥

ण्यासश्रन्थो युच् ॥३।३।१०७॥

ण्यासश्रन्थः ५।१॥ युच् १।१॥ स०—णिश्च आसश्च श्रन्थ् च ण्यासश्रन्थ् तस्मात्...समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ण्यन्तेभ्यो आस अन्थ इत्येताभ्यां च धातुभ्यां स्त्रियां युच् प्रत्ययो भवति कारके संज्ञायां भावे च ॥ उदा०—णि—कारणा, हारणा। आसना। अन्थ्—अन्थना ॥

भाषार्थः—[*ण्यासश्रन्थः*] ण्यन्त धातुओं से तथा आस (अदा० आ०) श्रन्थ विमोचनप्रतिहर्षयोः (क्रया० प०) इन स्त्रीलिङ्ग में [युच्]युच् प्रत्यय होता है, कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा भाव में ॥ उदा०—कारणा (कराना) हारणा (हराना) आसना श्रन्थना (ढीलापन)॥ सिद्धि में *हेतुमति च* (३।१।२६) से णिच् आ णि रहा, वृद्धि होकर कारि की *सनाद्यन्ता०* (३।१।३२) से धातु कारि से पुनः प्रकृत सूत्र से युच् प्रत्यय आकर *युवोरनाकौ* (७ अन तथा *णेरनिटि* (६।४।५१) से णि का लोप होकर 'आर् अट् कुप्वाङ्० (८।४।२) से णत्व तथा टाप् होकर, कारणा बना प्रकार ह्र धातु से हारणा में भी समझें। आस श्रन्थ से भि आये ही युच् प्रत्यय होगा ॥

रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् ॥३।३।१०८॥

रोगाख्यायाम् ७।१॥ ण्वुल् १।१॥ बहुलम् १।१॥ स०—रोगा रोगाख्या तस्याम्··· ·· षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—स्त्रियाम्, क कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—रोगाख्य रोगविशेषस्य संज्ञायां सत्यां भावे च ण्वुल् प्रत्ययो बहुलं क्तिनादीनां सर्वेषामपवादः ॥ उदा०—प्रच्छर्दिका, प्रवाहिका, वि बहुलग्रहणात् क्वचिन्न भवति = शिरोक्तिः, क्तिन्नेव भवत्यत्र ॥

भाषार्थः—[*रोगाख्यायाम्*] रोग विशेष की संज्ञा विषय धातु से स्त्रीलिङ्ग कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [ण्व प्रत्यय [बहुलम्] बहुल करके होता है ॥ क्तिन् आदि सबका यह सूत्र है ॥

यहाँ से 'ण्वुल्' की अनुवृत्ति ३।३।११० तक जायेगी ॥

संज्ञायाम् ॥३।३।१०९॥

संज्ञायाम् ७।१॥ अनु०—ण्वुल्, स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—संज्ञायां विषये धातोः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

र्तृभिन्ने कारके भावे च ण्वुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उद्दालक-पुष्पभञ्जिका, वारणपुष्पप्रचायिका, अभ्यूषखादिका, शालभञ्जिका, ताल-भञ्जिका ॥

भाषार्थः—[संज्ञायाम्] संज्ञा विषय में धातु से स्त्रीलिङ्ग में, ण्वुल् प्रत्यय होता है, कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में ॥ *नित्यं क्रीडा-जीविकयोः* (२।२।१७) से उद्दालकपुष्पभञ्जिका आदि में षष्ठी समास हुआ है ॥ सिद्धि भी वहीं २।२।१७ सूत्र पर देख लें ॥ उदा०—उद्दालकपुष्प-भञ्जिका, वारणपुष्पप्रचायिका, अभ्यूषखादिका (लिट्टि[1] खाने की विशेष क्रीडा) आचोषखादिका (चूस कर खाने की क्रीडा) शालभञ्जिका (शाल[1] वृक्ष के पुष्पों की तोड़ने की क्रीडा विशेष) तालभञ्जिका (ताल वृक्ष के पुष्पों के तोड़ने की क्रीडा विशेष) ॥

विभाषाऽऽख्यानपरिप्रश्नयोरिञ्च ॥३।३।११०॥

विभाषा १।१॥ आख्यानपरिप्रश्नयोः ७।२॥ इञ् १।१॥ च अ० ॥ —आख्यानञ्च परिप्रश्नश्च आख्यानपरिप्रश्नौ तयोः……इतरेतर-द्वन्द्वः ॥ अनु०—ण्वुल्, स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पूर्वं परिप्रश्नो भवति पश्चादाख्यानम् । आख्याने परिप्रश्ने च गम्यमाने धातोः कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च स्त्रीलिङ्गे विभाषा 'इञ्' प्रत्ययो भवति चकाराद् ण्वुल् च । पक्षे यथा-प्राप्तं सर्वे प्रत्यया भवन्ति ॥ उदा०—परिप्रश्ने—कां कारिकामकार्षीः, कां क्रियामकार्षीः, कां क्रियामकार्षीः, कां कृत्यामकार्षीः, कां कृतिमकार्षीः । आख्याने—सर्वां कारिं कारिकां क्रियां कृत्यां कृतिं वा अकार्षम् । कां गणिं, गणिकां, गणनां वा अजीगणः । आख्याने—सर्वां गणिं, गणिकां, गणनां, अजीगणम् । एवम्—कां पाठिम् कां पाठिकाम्, कां पठितिम्, कां याजिम्, कां याजिकाम्, काम् इष्टिम् इत्यादिषूदाहार्यम् ॥

भाषार्थः—[आख्यानपरिप्रश्नयोः] उत्तर तथा परिप्रश्न अर्थ में धातु से स्त्रीलिङ्ग कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [विभाषा] विकल्प से [इञ्]

---

१. इस विषय में अधिक 'पाणिनि कालीन भारतवर्ष' पृ० १६३ हिन्दी संस्करण में ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इञ् प्रत्यय होता है, तथा [च] चकार से ण्वुल् भी होता है। प्र
प्रश्न, अर्थात् पूछना पश्चात् उसका आख्यान उत्तर होता है॥ प
प्राप्त भाव के सब प्रत्यय होंगे॥ उदा०—परिप्रश्न में—कं क
(तुमने क्या काम किया), कां कारिकामकार्षीः, कां क्रियाम
कृत्यामकार्षीः, कां कृतिमकार्षीः। आख्याने—सर्वां कारिं, सर्वां
कृत्यां कृतिं वा अकार्षम् (मैंने सब काम कर लिया)। कां गणि
गणनां वा अजीगणः (तुमने क्या गिनती की)। आख्याने—स
गणिकां गणनां वाऽजीगणम् (मैंने सब गिनती कर ली)। इसी
पाठिं, कां पाठिकां, कां पठितिं, कां याजिं, कां याजिकां, काम्
उदाहरण भी समझने चाहिए॥ कारिं में इञ् प्रत्यय परे
ञ्णिति (७।२।११५) से वृद्धि हुई है, कारिकाम् में ण्वुल् परे
हुई है। पक्ष में श प्रत्यय होकर 'क्रियां' क्यप् होकर 'कृत्यां
होकर 'कृतिम्' बना है, सिद्धि परि० ३।३।१०० में देखें॥
गण धातु से प्रकृत सूत्र से इञ् तथा ण्वुल् एवं पक्ष में
(३।३।१०७) युच् प्रत्यय हुआ है। गण धातु अकारान्त चुरा
पढ़ी है, अतः गण + णिच् इस अवस्था में *अतो लोपः* (६
अकार लोप हुआ है, सो *अत उपधायाः* से वृद्धि करते समय
स्थानिवत् (१।१।५५) हो गया, तो वृद्धि नहीं हुई अब इञ्
णेरनिटि (६।४।५१) से णि लोप कर गणिं गणिकाम् आदि बन

यहाँ से '*विभाषा*' की अनुवृत्ति ३।३।१११ तक जायेगी॥

पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच् ॥३।३।१११॥

पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ७।३॥ ण्वुच् १।१॥ स०—पर्याय
ऋणं च उत्पत्तिश्च, पर्याय……त्तयः, तासु,……इतरेत
अनु०—विभाषा, स्त्रियाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥
पर्याय, अर्ह, ऋण, उत्पत्ति इत्येतेष्वर्थेषु धातोः स्त्रियां भावे
ण्वुच् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—पर्याये तावत्—भवतः प्रति
तोऽप्रप्रासिका। अर्हे—इक्षुभक्षिकामर्हति भवान्, पयःपा
भवान्। ऋणे—इक्षुभक्षिकां मे धारयसि, ओदनभोजिकाम्।
इक्षुभक्षिकां मे उदपादि भवान्, ओदनभोजिकाम्,
पत्ते—तव चिकीर्षा, मम चिकीर्षा॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पदः]

भाषार्थः—[पर्यायार्हणोत्पत्तिषु] पर्याय, अर्ह, ऋण, उत्पत्ति इन अर्थों में धातु से स्त्रीलिङ्ग भाव में विकल्प से [ण्वुच्] ण्वुच् प्रत्यय होता है॥ उदा०—पर्याय में—भवतः शायिका, भवतोऽग्रग्रासिका (आपके प्रथम भोजन की बारी) अर्ह में—इक्षुभक्षिकामर्हति भवान् (आप गन्ना खाने के योग्य हैं) पयःपायिकामर्हति भवान् (आप दूध पीने के योग्य हैं)। ऋण में—इक्षुभक्षिकां मे धारयसि (मुझको गन्ना खिलाने का ऋण आपके ऊपर है) ओदनभोजिकाम् (चावल खिलाने का ऋण है) उत्पत्ति में—इक्षुभक्षिका मे उदपादि भवान् (आपने गन्ने का खाना, मेरे लिए उत्पन्न किया) ओदनभोजिकां, पयःपायिका। पक्ष में—तव चिकीर्षा (तुम्हारे करना चाहने की बारी) मम चिकीर्षा॥ परि० २।२।१६ में शायिका की सिद्धि देखें। इसी प्रकार अग्रग्रासिका आदि में भी समझें। ग्रासिका आदि बनकर अग्र आदि के साथ षष्ठी तत्पुरुष समास होगा। विकल्प कहने से पक्ष में *अ प्रत्ययात्* (३।३।१०२) से अ प्रत्यय हुआ है॥

आक्रोशे नञ्यनिः ॥३।३।११२॥

आक्रोशे ७।१॥ नञि ७।१॥ अनिः १।१॥ अनु०—स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—आक्रोशे गम्यमाने नञ्युपपदे धातोरनिः प्रत्ययो भवति स्त्रीलिङ्गे कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च॥ उदा०—अकरणिस्ते वृषल! भूयात्॥

भाषार्थः—[आक्रोशे] आक्रोश = क्रोधपूर्वक चिल्लाना गम्यमान हो तो [नञि] नञ् उपपद रहते धातु से स्त्रीलिङ्ग कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [अनिः] अनि प्रत्यय होता है॥ उदा०—अकरणिस्ते वृषल भूयात् (ऐ नीच तेरी करणी का नाश हो जाये) नञ् पूर्वक कृञ् धातु से 'अनि' प्रत्यय होकर तथा कृ को अनि परे रहते गुण एवं *नलोपो नञः* (६।३।७१) से नञ् के नकार का लोप होकर अकरणिः बन गया है। *अट्कुप्वाङ्०* (८।४।२) से अनि के न को णत्व हो ही जायेगा॥

कृत्यल्युटो बहुलम् ॥३।३।११३॥

कृत्यल्युटः १।३॥ बहुलम् १।१॥ स०—कृत्याश्च ल्युट् च कृत्यल्युटः, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—कृत्यसंज्ञकाः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रत्ययाः ल्युट् च बहुलमर्थेषु भवन्ति। यत्र विहितास्ततोऽन्य
भवन्ति॥ *तयोरेव कृत्यक्त०* (३।४।७०) इत्यनेन भावकर्मणोः
विधीयन्ते, कारकान्तरेष्वपि भवन्ति। भावे, करणे, अधिकरणे च
विहितस्ततोऽन्यत्राऽपि भवति॥ उदा०—स्नाति अनेनेति स्नानी
चूर्णम्, अत्र करणे कृत्यसंज्ञकोऽनीयर्। दीयते तस्मै दानीयो ब्रा
अत्र सम्प्रदानेऽनीयर्। ल्युट्—अपसिच्यते तद् इति अपसेच
अवस्राव्यते तदिति अवस्रावणम्। भुज्यन्ते इति भोजनाः, राज्ञां
नाः राजभोजनाः शालयः। आच्छाद्यन्ते इति आच्छादनानि।
कर्मणि ल्युट्। प्रस्कन्दत्यस्मात्, प्रस्कन्दनम्, अत्रापादाने ल्युट्।
त्यस्मात्=प्रपतनम्, अत्रापि अपादाने ल्युट्॥

भाषार्थः—[*कृत्यल्युटः*] कृत्य संज्ञक प्रत्यय तथा ल्युट्
[*बहुलम्*] बहुल करके होते हैं॥ *तयोरेव कृत्यक्त०* से भाव कर्म
कृत्य संज्ञक प्रत्ययों का विधान है। यहाँ कहने से उससे अन्यत्र
में भी होते हैं। जैसे स्नानीयम् में करण में कृत्य संज्ञक अनीयर्
दानीयः में सम्प्रदान में अनीयर् हुआ है। इसी प्रकार करण अधि
(३।३।११७) तथा भाव (३।३।११४) में ल्युट् प्रत्यय कहा है,
अन्यत्र कर्म अपादानादि में भी ल्युट् हो जाता है, जैसे अपसेच
प्रपतनम् आदि में देखें॥ स्रु णयन्त धातु से वृद्धि आवादेश
'स्रावि' धातु बनकर ल्युट् प्रत्यय हुआ है, *णेरनिटि* (६।४।५१) से
होकर अवस्रावणम् बन गया है। प्रस्कन्दनम् में प्र पूर्वक स्कन्दिर्
तथा प्रपतनम् में प्र पूर्वक पत्लृ धातु है॥ उदा०—स्नानीयं
(उबटन) दानीयो ब्राह्मणः (देने योग्य ब्राह्मण) अपसेचनम् (जो
तरह न सींचा जाय) अवस्रावणम् (जो बुरी तरह बहाया जाता
राजभोजनाः शालयः (राजा लोगों के भोजन करने योग्य) आच्छा
नानि, प्रस्कन्दनम् (खींचा जाता है, जिससे) प्रपतनम् (जहाँ से
गिरते हैं)॥

नपुंसके भावे क्तः ॥३।३।११४॥

नपुंसके ७।१॥ भावे ७।१॥ क्तः १।१॥ अनु०—धातोः, प्र
परश्च॥ अर्थः—नपुंसकलिङ्गे भावे धातोः क्तः प्रत्ययो भवति॥ उदा०
हसितम्, सुप्तम्, जल्पितम्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[पादः]

भाषार्थः—[नपुंसके] नपुंसक लिङ्ग [भावे] भाव में धातु मात्र से [क्तः] क्त प्रत्यय होता है ॥ उदा०—हसितम् (हंसना) सुप्तम् (सोना) जल्पितम् (बकना) ॥

यहाँ से 'नपुंसके भावे' की अनुवृत्ति ३।३।११६ तक जायेगी ॥

ल्युट् च ॥३।३।११५॥

ल्युट् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—नपुंसके भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—नपुंसके लिङ्गे भावे ल्युट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—हसनं छात्रस्य शोभनम्, शयनम्, आसनम् ॥

भाषार्थः—नपुंसक लिङ्ग भाव में धातु से [ल्युट्] ल्युट् प्रत्यय [च] भी होता है ॥ सिद्धि में 'यु' को अन युवोरनाकौ (७।१।१) से हो ही जायेगा तथा अतोऽम् (७।१।२४) से सु को अम् हो जायेगा ॥

यहाँ से 'ल्युट्' की अनुवृत्ति ३।३।११७ तक जायेगी ॥

कर्मणि च येन संस्पर्शात्कर्त्तुः शरीरसुखम् ॥३।३।११६॥

कर्मणि ७।१॥ च अ० ॥ येन ३।१॥ संस्पर्शात् ५।१॥ कर्त्तुः ६।१॥ शरीरसुखम् १।१॥ स०—शरीरस्य सुखम् = शरीरसुखं षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—ल्युट्, नपुंसके, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—येन (कर्मणा) संस्पर्शात् कर्त्तुः शरीरस्य सुखमुत्पद्यते तस्मिन् कर्मण्युपपदे धातोर्ल्युट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ओदनभोजनं सुखम्, पयःपानं सुखम् ॥

भाषार्थः—[येन] जिस (कर्म के) [संस्पर्शात्] संस्पर्श से [कर्त्तुः] कर्त्ता को [शरीरसुखम्] शरीर का सुख उत्पन्न हो ऐसे [कर्मणि] कर्म के उपपद रहते [च] भी धातु से ल्युट् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—ओदनभोजनं सुखम् (चावल खाने का सुख) पयःपानं सुखम् (दूध पीने का सुख) ओदन या दूध के संस्पर्श से कर्त्ता = खाने वाले के शरीर, जिह्वा को सुख होता है, अतः ओदन एवं पयः कर्म उपपद रहते भुज तथा पा धातु से ल्युट् हो गया है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

करणाधिकरणयोश्च ॥३।३।११७॥

करणाधिकरणयोः ७।२॥ च अ० ॥ *स०*—करणश्च अधि... करणाधिकरणे, तयोः....इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—ल्युट्, धातोः, प्र... परश्च ॥ *अर्थः*—धातोः करणेऽधिकरणे च कारके उपपदे ल्युट् प्र... भवति ॥ *उदा०*—प्रवृश्चत्यनेन = प्रव्रश्चनः। इध्मानां प्रव्र... इध्मप्रव्रश्चनः। शात्यतेऽनेनेति शातनः, पलाशस्य शातनः = प... तनः। अधिकरणे—गावो दुह्यन्ते अस्याम् = गोदोहनी। सक्तु... अस्याम् = सक्तुधानी ॥

भाषार्थः—धातु से [*करणाधिकरणयोः*] करण और अधिकरण... में [च] भी ल्युट् प्रत्यय होता है ॥ प्र पूर्वक ओव्रश्चू छेदने... प्रव्रश्चनः बना है, पश्चात् इध्म के साथ षष्ठीसमास होकर इध्मप्र... (कुल्हाड़ी) बना है। शातनः में *शदेरगतौ तः* (७।३।४२) से त... के द् को त् हुआ है। यहाँ शद्लृ णिजन्त से ल्युट् हुआ है। पला... समास होकर पलाशशातनः (जिस डण्डे से वृक्ष के पत्ते गिराये जा... बनेगा। गो + दोहन का पूर्ववत् समास तथा *टिड्ढाणञ्*० (४।१।... ङीप् होकर गोदोहनी (गौ दुहने का पात्र) बना है। इसी प्रकार स... धानी (सत्तु रखने का पात्र) में भी जानें ॥

यहाँ से '*करणाधिकरणयोः*' की अनुवृत्ति ३।३।१२५ तक जा...

पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ॥३।३।११८॥

पुंसि ७।१॥ संज्ञायां ७।१॥ घः १।१॥ प्रायेण ३।१॥ *अनु०*—क... धिकरणयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—संज्ञायां विषये पुल्लि... करणाधिकरणयोरभिधेययोः धातोः, घः प्रत्ययः प्रायेण भवति ॥ *उदा०*... दन्ताः छाद्यन्तेऽनेनेति दन्तच्छदः। उरः छाद्यतेऽनेनेति उरश्छ... अधिकरणे—एत्य तस्मिन् कुर्वन्तीति = आकरः, आलीयतेऽस्मि... आलयः ॥

भाषार्थः—[*संज्ञायाम्*] संज्ञा गम्यमान हो तो धातु से करण... अधिकरण कारक में [*पुंसि*] पुल्लिङ्ग में [*प्रायेण*] प्रायः करके [घ] घ प्रत्यय होता है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

यहाँ से 'घः' की अनुवृत्ति ३।३।११९ तक तथा पुंसि संज्ञायाम्' की अनुवृत्ति ३।३।१२५ तक एवं 'प्रायेण' की ३।३।१२१ तक जाती है। ३।३।११९ में प्रायेण नहीं सम्बन्धित होता है॥

गोचरसञ्चरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च ॥३।३।११९॥

गोचर···निगमाः १।३॥ च अ०॥ स०—गोचर० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—पुंसि, संज्ञायां, घः, करणाधिकरणयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—गोचर, सञ्चर, वह, व्रज व्यज, आपण, निगम इत्येते शब्दाः पुल्लिङ्गे संज्ञायां विषये घप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते करणेऽधिकरणे कारके। गावश्चरन्ति अस्मिन्निति गोचरः। सञ्चरन्तेऽनेनेति सञ्चरः। वहन्ति तेन वहः। व्रजन्ति तेन व्रजः। व्यजन्ति तेन व्यजः। अत्र निपातनात् अज धातोः अजेर्व्य० (२।४।५६) इत्यनेन वीभावो न भवति, एत्य तस्मिन् आपणन्ते इति आपणः। निगच्छन्ति अस्मिन्निति निगमः॥

भाषार्थः—[गोचर·····निगमाः] गोचर आदि शब्द [च] भी घ प्रत्ययान्त पुल्लिङ्ग करण या अधिकरण कारक में संज्ञा विषय में निपातन किये जाते हैं। वि + अजः = व्यजः यहाँ अज धातु को अजेर्व्य० से वी भाव भी निपातन से नहीं होता॥ उदा०—गोचरः (गायें जहाँ चरती हैं) सञ्चरः (जिसके द्वारा घूमते हैं) वहः (गाड़ी) व्रजः (जिसके द्वारा जाते हैं) व्यजः (पङ्खा) आपणः (बाजार) निगमः (वेद)॥

अवे तॄस्त्रोर्घञ् ॥३।३।१२०॥

अवे ७।१॥ तॄस्त्रोः ६।२॥ घञ् १।१॥ स०—तॄ च स्तृ च तॄ स्त्रौ तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—पुंसि संज्ञायां प्रायेण, करणाधिकरणयोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अव उपपदे तॄ, स्तृञ् इत्येताभ्यां धातुभ्यां करणेऽधिकरणे च कारके संज्ञायां प्रायेण घञ् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—अवतारः। अवस्तारः॥

भाषार्थः—[अवे] अव पूर्वक [तॄस्त्रोः] तॄ, स्तृञ् धातुओं से करण और अधिकरण कारक में संज्ञा विषय में प्रायः करके [घञ्] घञ् प्रत्यय होता है॥ उदा०—अवतारः (उतरना)। अवस्तारः (कनात)॥

यहाँ से 'घञ्' की अनुवृत्ति ३।३।१२५ तक जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

हलश्च ॥३।३।१२१॥

हलः ५।१॥ च अ० ॥ अनु०—घञ्, पुंसि संज्ञायां प्रायेण, करणाधिकरणयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—हलन्ताद् धातोः पुंसि करणाधिकरणयोः कारकयोः संज्ञायां विषये प्रायेण घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—लेखः । वेदः । वेष्टः । बन्धः । मार्गः । अपामार्गः । वीमार्गः ॥

भाषार्थः—[*हलः*] हलन्त धातु से [च] भी संज्ञा विषय होने पर तथा अधिकरण कारक में पुल्लिङ्ग में प्रायः करके घञ् प्रत्यय होता है। वेष्ट वेष्टने धातु से घञ् होकर वेष्टः (कनात) तथा मृजूष् शुद्धौ से अपामार्गः (चिरचिटा) बनेगा। वि उपपद रहते 'मृजूष्' धातु से वीमार्गः (वृक्ष विशेष) भी बनेगा। यहाँ *उपसर्गस्य घञ्य०* (६।३।१२०) से [illegible] को दीर्घ हो जाता है ॥ *चजोः कु०* (७।३।५२) से कुत्व तथा *मृजेर्वृद्धिः* (७।२।११४) से यहाँ वृद्धि भी होती है ॥

अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च ॥३।३।१२२॥

अ.....हाराः १।३॥ च अ० ॥ *स०*—अध्या० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः। अनु०—घञ्, पुंसि संज्ञायां, करणाधिकरणयोः, धातोः प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अध्याय, न्याय, उद्याव, संहार इत्येते घञन्ताः शब्दाः पुल्लिङ्गयोः करणाधिकरणयोः कारकयोः संज्ञायां निपात्यन्ते ॥ अधीयतेऽस्मिन् = अध्यायः । नीयन्तेऽनेन कार्याणीति न्यायः । उद्यवन्ति अस्मिन् उद्यावः । संहियन्तेऽनेन = संहारः ॥

भाषार्थः—[*अध्या.....हाराः*] अधि पूर्वक इङ् धातु से अध्याय, नि पूर्वक इण् धातु से न्याय, उत् पूर्वक यु धातु से उद्याव, तथा सम् पूर्वक हृ धातुसे संहार, ये घञन्त शब्द [च] भी पुल्लिङ्ग में करण तथा अधिकरण कारक संज्ञा में निपातन किये जाते हैं ॥ यहाँ भी वृद्धि आयादेशादि यथाप्राप्त जानें ॥ अधि इ अ, अधि ऐ अ, आयादेश तथा यणादेश होकर अध्यायः बना है। उदा०—अध्यायः । न्यायः । उद्यावः (जहाँ सब इकट्ठे होते हैं)। संहारः (नाश, प्रलय) ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदङ्कोऽनुदके ॥३।३।१२३॥

उदङ्कः १।१॥ अनुदके ७।१॥ स०—न उदकः अनुदकः, तस्मिन्, नञ्-तत्पुरुषः॥ अनु०—घञ्, पुंसि संज्ञायां, करणाधिकरणयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—उदङ्क इति पुंसि निपात्यते, अनुदके विषये करणेऽधिकरणे कारके। उत् पूर्वाद् अञ्चु धातोः घञ् निपातनाद् भवति॥ उदा०—तैलस्य उदङ्कः, तैलोदङ्कः। घृतोदङ्कः॥

भाषार्थः—[अनुदके]उदक विषय न हो तो पुल्लिङ्ग में उत् पूर्वक अञ्चु धातु से घञ् प्रत्ययान्त [उदङ्कः] उदङ्क शब्द निपातन किया जाता है, करण और अधिकरण कारक में संज्ञा विषय होने पर॥ उदा०—तैलोदङ्कः (तिल का कुप्पा)। घृतोदङ्कः (घी का कुप्पा)॥ अञ्चु के च् को चजोः कु घि०(७।३।५२) से कुत्व हो गया है। च को कुत्व कर लेने पर ञ को न खतः हो जायगा। तत्पश्चात् न को *नश्चापदान्तस्य झलि* (८।३।२४) से अनुस्वार हो गया तथा *अनुस्वारस्य ययि०* (८।४।५७) से अनुस्वार को ङ् बन कर उदङ्कः बन गया। तैल तथा घृत के साथ उदङ्क का षष्ठीतत्पुरुष समास हुआ है॥

जालमानायः ॥३।३।१२४॥

जालम् १।१॥ आनायः १।१॥ अनु०—घञ्, पुंसि, संज्ञायां, करणे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—जालेऽभिधेये पुल्लिङ्गे करणे कारके संज्ञायाम् आङ्पूर्वात् णीञ्धातोः, घञ् निपात्यते 'आनाय' इति॥ उदा०—आनयन्त्यनेनेति आनायो मत्स्यानाम्। आनायो मृगाणाम्॥

भाषार्थः—[जालम्] जाल अभिधेय हो तो आङ् पूर्वक नी धातु से करण कारक तथा संज्ञा में [आनायः] आनाय शब्द घञ् प्रत्ययान्त निपातन किया जाता है॥ उदा०—आनायो मत्स्यानाम् (मछलियों का जाल)। आनायो मृगाणाम् (मृगों का जाल)॥

खनो घ च ॥३।३।१२५॥

खनः ५।१॥ घ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः॥ च अ०॥ अनु०—घञ्, पुंसि संज्ञायां, करणाधिकरणयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—'खन,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

धातोः पुल्लिङ्गे करणाधिकरणयोः कारकयोः घःप्रत्ययो भवति, चकारात् घञ् च ॥ उदा०—आखनत्यनेन, अस्मिन् वा आखानः ॥

भाषार्थः—[खनः] खन धातु से पुलिङ्ग करणाधिकरण कारक में [घ] घ प्रत्यय होता है तथा [च] चकार से घञ् भी होता है। उदा०—आखनः (फावड़ा)। आखानः ॥ घञ् पक्ष में अत उपधा (७।२।११६) से वृद्धि होगी ॥

ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ॥३।३।१२६॥

ईषद्दुःसुषु ७।३॥ कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ७।३॥ खल् १।१॥ स०—ईषच्च दुश्च सु च, ईषद्दुःसवस्तेषु·····इतरेतरद्वन्द्वः। न कृच्छ्रम्, अकृच्छ्रम्, नञ्तत्पुरुषः। कृच्छ्रञ्च, अकृच्छ्रञ्च, कृच्छ्राकृच्छ्रे, कृच्छ्रार्थौ येषां ते कृच्छ्राकृच्छ्रार्थाः, तेषु·····द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ईषद्, दुर्, सु इत्येतेषूपपदेषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु धातोः खल् प्रत्ययो भवति ॥ कृच्छ्रम्=कष्टम्। अकृच्छ्रं=सुखम् ॥ उदा०—ईषत्करो भवता कटः, दुष्करः, सुकरः, ईषद्भोजः, दुर्भोजः, सुभोजः ॥

भाषार्थः—[कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु] कृच्छ्र अर्थ वाले तथा अकृच्छ्र अर्थ वाले [ईषद्दुःसुषु] ईषत्, दुर् तथा सु ये उपपद हों तो धातु से [खल्] खल् प्रत्यय होता है ॥ *तयोरेव कृत्य०* (३।४।७०) से भाव कर्म में ही खलर्थ प्रत्यय होते हैं ॥ दुर् शब्द कृच्छ्र तथा ईषत् और सु अकृच्छ्र अर्थ में होते हैं ॥ उदा०—ईषत्करो भवता कटः (आपके द्वारा चटाई सुगमता से बनती है)। दुष्करः (कठिन) सुकरः। ईषद्भोजः (सुगमता से खाना)। दुर्भोजः। सुभोजः ॥

यहाँ से 'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु' की अनुवृत्ति ३।३।१२७, तथा 'खल्' की ३।३।१२७ तक जायेगी ॥

कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः ॥३।३।१२७॥

कर्तृकर्मणोः ७।२॥ च अ० ॥ भूकृञोः ६।२॥ स०—कर्त्ता च कर्म च कर्तृकर्मणी, तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः। भूश्च कृञ् च भूकृञौ, तयोः·····

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दः]
तरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्, धातोः, त्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भू, कृञ् इत्येताभ्यां धातुभ्यां यथासङ्ख्यं र्त्तरि कर्मणि चोपपदे चकाराद् कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद् दुर् सु इत्येतेषु पपदेषु खल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अनाढ्येन भवता ईषदाढ्येन ढ्यं भवितुं, ईषदाढ्यंभवं भवता। अनाढ्येन भवता दुराढ्येन ढ्यं भवितुं, दुराढ्यंभवं भवता। स्वाढ्यंभवं भवता। कर्मणि—नाढ्यः ईषदाढ्यः क्रियते इति ईषदाढ्यंकरो देवदत्तः। दुराढ्यंकरः। ढ्यंकरो देवदत्तः ॥

भाषार्थः—[भूकृञोः] भू तथा कृञ् धातु से यथासङ्ख्य करके र्त्तृकर्मणोः] कर्त्ता एवं कर्म उपपद रहते [च] चकार से कृच्छ्र अकृच्छ्र र्थ में वर्त्तमान ईषद्, दुः, सु उपपद हों तो भी खल् प्रत्यय होता है ॥ दा०—ईषदाढ्यंभवं भवता (धनाढ्य सुगमता से होने योग्य आप हो) दुराढ्यंभवं भवता (कठिनाई से धनाढ्य होने योग्य आप हो)। स्वाढ्यं-वं भवता। कर्मणि—ईषदाढ्यंकरो देवदत्तः (सुगमता से धनवान् नाये जाने वाला देवदत्त) ॥ दुराढ्यंकरः (कठिनाई से धनवान् बनाया जाने वाला)। स्वाढ्यंकरो देवदत्तः ॥ ईषद् आढ्य भू खल्=ईषदाढ्य यो अ, अरुर्द्विषद० (६।३।६५) से पूर्वपद को मुम् आगम तथा अवादेश होकर ईषदाढ्य मुम् भव सु = ईषदाढ्यंभवम् बना है। इसी प्रकार 'ईष-दाढ्यंकरः' में कृ को गुण होकर सिद्धि जानें ॥

आतो युच् ॥३।३।१२८॥

आतः ५।१॥ युच् १।१॥ अनु०—ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः कृच्छ्राकृच्छ्रा-र्थेष्वीषदादिषूपपदेषु युच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ईषत्पानः सोमो भवता। दुष्पानः। सुपानः। ईषद्दानो गौर्भवता। दुर्दानः। सुदानः ॥

भाषार्थः—[आतः] आकारान्त धातुओं से कृच्छ्र अकृच्छ्र अर्थ में ईषदादि उपपद रहते [युच्] युच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—ईषत्पानः सोमो भवता (आपके द्वारा सोम पान करना आसान है)। दुष्पानः (पीना कठिन है)। सुपानः। ईषद्दानो गौर्भवता (आपके द्वारा गोदान करना आसान है)। दुर्दानः (गोदान कठिन है)। सुदानः ॥ पा तथा दा धातुयें आकारान्त हैं सो सिद्धि में युच् प्रत्यय हो कर 'यु' को अन हो गया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ये सब खलर्थ प्रत्यय हैं सो तयोरेव० (३।४।७०) से भाव अर्थ होंगे, अतः भवता में कर्तृकरण० (२।३।१८) से अनभिहित तृतीया हो गई है ॥

यहाँ से 'युच्' की अनुवृत्ति ३।३।१३० तक जायेगी ॥

छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ॥३।३।१२९॥

छन्दसि ७।१॥ गत्यर्थेभ्यः ५।३॥ स०—गतिरर्थो येषां ते गत्यर्थास्तेभ्यः··· ···बहुव्रीहिः ॥ अनु०—युच्, ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेष्वीषदादिषूपपदेषु गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये युच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा० सूपसदनोऽग्निः। सूपसदनमन्तरिक्षम्। ईषत्सदनः। दुःसदनः। सुसदनः

भाषार्थः—[छन्दसि] वेद विषय में [गत्यर्थेभ्यः] गत्यर्थक धातुओं से कृच्छ्र अकृच्छ्र अर्थों में ईषदादि उपपद हों तो, युच् प्रत्यय होता है। 'सु+उप षद्लृ यु=यु को अन, सु+उप को सवर्ण दीर्घ होकर सूपसदनः बन गया ॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।३।१३० तक जायेगी ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥३।३।१३०॥

अन्येभ्यः ५।३॥ अपि अ० ॥ दृश्यते क्रियापदम् ॥ अनु०—छन्दसि युच्, ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—गत्यर्थेभ्योऽन्ये ये धातवस्तेभ्यः छन्दसि विषये कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेष्वीषदादिषूपपदेषु युच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सुदोहनाम् अकृणोद् गाम्। सुवेदनाम् अकृणोद् ब्रह्मणे गाम् ॥

भाषार्थः—वेद विषय में [अन्येभ्यः] गत्यर्थक धातुओं से भिन्न जो धातुयें उनसे [अपि] भी कृच्छ्राकृच्छ्र अर्थ में ईषदादि उपपद रहते युच् प्रत्यय [दृश्यते] देखा जाता है ॥ सु दुह अन टाप्=सुदोहना सु विद अन टाप्=सुवेदना बन कर द्वितीया में सुदोहनाम् सुवेदनाम् बन गया है ॥ ये गत्यर्थक धातुएँ नहीं हैं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा ॥३।३।१३१॥

वर्त्तमानसामीप्ये ७।१॥ वर्त्तमानवत् अ० ॥ वा अ० ॥ समीपमेव सामीप्यम्। *चातुर्वर्ण्यादीनाम्०* (वा० ५।१।१२४) इत्यनेन वार्त्तिकेन स्वार्थे ष्यञ् प्रत्ययः॥ स०—वर्त्तमानस्य सामीप्यं वर्त्तमानसामीप्यं, तस्मिन् ...षष्ठीतत्पुरुषः ॥ वर्त्तमानस्य इव वर्त्तमानवत्, *तत्र तस्येव* (५।१।११५) इति वतिः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—वर्त्तमानस्य समीपे, यो भूतकालः, भविष्यत्कालश्च तस्मिन् वर्त्तमानाद्धातोर्वर्त्तमान-प्रत्यया वा भवन्ति ॥ *वर्त्तमाने लट्* (३।२।१२३) इत्यारभ्य *उणादयो बहुलम्* (३।३।१) इति यावद् ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्त्तमानसमीपे भूते भवि-ष्यति च भवन्ति ॥ उदा०—देवदत्त कदाऽगतोऽसि ? अयमागच्छामि। आगच्छन्तमेव मां विद्धि। पक्षे—अयमागमम्। एषोऽस्मि—आगतः, एष आगतवान्। भविष्यति—कदा देवदत्त गमिष्यसि ? एष गच्छामि। गच्छन्तमेव मां विद्धि। पक्षे—एष गमिष्यामि, एष गन्ताऽस्मि ॥

भाषार्थः—[*वर्त्तमानसामीप्ये*] वर्त्तमान के समीप, अर्थात् निकट के निकट के भविष्यत् काल में वर्त्तमान धातु से [*वर्त्तमानवत्*] वर्त्तमान काल के समान [*वा*] विकल्प से प्रत्यय होते हैं ॥ *वर्त्तमाने लट्* से लेकर *उणादयो०* तक वर्त्तमाने के अधिकार में जो प्रत्यय कहे हैं, वे वर्त्तमान के निकट के भूत या भविष्यत् को कहने में विकल्प से विधान किये जाते हैं ॥ पक्ष में भूत भविष्यत् के प्रत्यय भी हो जाते हैं ॥ भूत अर्थ में आगच्छामि में लट् लकार तथा आगच्छन्तम् में शतृ प्रत्यय हुआ है। लकार भविष्यत् अर्थ में गच्छामि गच्छन्तम् वर्त्तमान काल के हुये हैं ॥ पक्ष में लुङ् लकार, निष्ठा प्रत्यय, भूत काल के तथा लृट् लकार भविष्यत् काल के हो जाते हैं ॥ तात्पर्य यह हुआ कि निकट भूत वा निकट के भविष्यत् में वक्ता वर्त्तमानकालिक प्रत्ययों का भी प्रयोग कर सकता है ॥ उदा०—देवदत्त ! कदाऽगतोऽसि ? अयमाग-च्छामि (अभी आया था)॥ आगच्छन्तमेव मां विद्धि (मुझको आया ही समझो)। पक्ष में—अयमागमम् (अभी आया हूँ)। एषोऽस्मि आगतः, आगतवान्। भविष्यत् में—कदा देवदत्त ! गमिष्यसि ? एष गच्छामि (अभी जाऊँगा)। गच्छन्तमेव मां विद्धि (मुझे गया हुआ ही समझें)। पक्ष में—एष गमिष्यामि (अभी जाऊँगा)। एष गन्ताऽस्मि ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'वर्त्तमानवद्वा' की अनुवृत्ति ३।३।१३२ तक जावेगी।

आशंसायां भूतवच्च ॥३।३।१३२॥

आशंसायाम् ७।१॥ भूतवत् अ० ॥ च अ० ॥ अनु०—वर्त्त धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ आशंसनम् = आशंसा ॥ अर्थः—अ पदार्थस्य, प्राप्तुमिच्छा आशंसा, सा च भविष्यत्कालविषया तत्र भविष्यति काले आशंसायां गम्यमानायां धातोर्विकल्पे प्रत्यया भवन्ति, चकाराद् वर्त्तमानवच्च ॥ उदा०—उपाध्यायश्चे मत् , आगतः, आगच्छति वा। वयं व्याकरणमध्यगीष्महि, अ धीमहे वा। पक्षे—उपाध्यायश्चेदागमिष्यति वयं व्याकरणम

भाषार्थः—[*आशंसायाम्*] आशंसा गम्यमान होने प [*भूतवत्*] भूत काल के समान [च] तथा वर्त्तमान काल के विकल्प से प्रत्यय हो जाते हैं ॥ अप्राप्त जो प्रिय पदार्थ करने की इच्छा को आशंसा कहते हैं ॥ वह भविष्यत् काल होती है, सो आशंसा गम्यमान होने पर भविष्यत् काल होने चाहियें, यहाँ विकल्प से भूतवत् प्रत्यय विधान कर पक्ष में भविष्यत् काल के समान प्रत्यय भी होंगे, चकार से भी कर दिये हैं ॥ भूतवत् कहने से आगमत् अध्यगीष्महि में तथा आगतः में निष्ठा प्रत्यय क्त हो गया है। वर्त्तमानवत् लकार में आगच्छति, अधीमहे बनेंगे, तथा विकल्प कहने से काल में आगमिष्यति अध्येष्यामहे प्रयोग भी बन गये हैं॥

परि० १।२।१ में अध्यगीष्ट की सिद्धि की है, उसी प्रकार ष्महि बन गया ॥ आङ् अट् गम् च्लि त् ऐसा पूर्ववत् होकर (३।१।५५) से च्लि को अङ् होकर आगमत् बन गया है। आदि की सिद्धि पूर्व कई बार दिखा चुके हैं, उसी प्रकार आगतः में क्त प्रत्यय हुआ है। गम् के अनुनासिक का लोप (६।४।३७) से हो जाता है। (१) उपाध्याय जी यदि आवें हम व्याकरण पढ़ लेंगे ये दो वाक्य आशंसा दिखाने के लिये दोनों वाक्यों की क्रियाओं में पूर्वोक्त प्रत्यय हो गये हैं॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

यहाँ से 'आशंसायाम्' की अनुवृत्ति ३।३।१३३ तक जायेगी ॥

क्षिप्रवचने लृट् ॥३।३।१३३॥

क्षिप्रवचने ७।१॥ लृट् १।१॥ स०—क्षिप्रस्य वचनम्, क्षिप्रवचनम्, तस्मिन्.....षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—आशंसायाम्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आशंसायां गम्यमानायां क्षिप्रवचन उपपदे धातोर्लृट् प्रत्ययो भवति ॥ पूर्वेण भूतवत् प्राप्ते, लृङ् विधीयते ॥ उदा०—उपाध्यायश्चेत् क्षिप्रं, त्वरितं, आशु, शीघ्रं वाऽगमिष्यति, क्षिप्रं, त्वरितं, शीघ्रं, व्याकरणमध्येष्यामहे ॥

भाषार्थः—[क्षिप्रवचने] क्षिप्रवचन = शीघ्रवाची शब्द उपपद हो तो आशंसा गम्यमान होने पर धातु से [लृट्] लृट् प्रत्यय होता है ॥ पूर्व सूत्र से आशंसा गम्यमान होने पर भूतवत् प्रत्यय प्राप्त थे, यहाँ भविष्यत् काल का लृट् प्रत्यय हो गया है ॥ उदा०—उपाध्यायश्चेत् क्षिप्रं, त्वरितं, आशु, शीघ्रं वाऽगमिष्यति, क्षिप्रं, त्वरितं, शीघ्रं वा व्याकरणमध्येष्यामहे, (उपाध्याय जी यदि शीघ्र आ जायेंगे तो हम व्याकरण शीघ्र पढ़ेंगे) ॥

आशंसावचने लिङ् ॥३।३।१३४॥

आशंसावचने ७।१॥ लिङ् १।१॥ आशंसा उच्यतेऽनेन, आशंसावचनम् ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आशंसावचन उपपदे धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उपाध्यायश्चेदागच्छेत्, आशंसे, अवकल्पये वा युक्तोऽधीयीय ॥

भाषार्थः—[आशंसावचने] आशंसावाची शब्द उपपद हो तो धातु से [लिङ्] लिङ् प्रत्यय होता है ॥ आशंसा भविष्यत् काल विषय वाली है ॥ यह सूत्र आशंसायां० (३।३।१३२) का अपवाद है ॥ उदा०—उपाध्यायश्चेदागच्छेत्, आशंसे अवकल्पये वा युक्तोऽधीयीय (उपाध्याय जी यदि आ जायेंगे तो आशा है लगकर पढ़ेंगे)। अधि पूर्वक इङ् धातु से उत्तम पुरुष का 'इट्' आकर लिङः सीयुट् (३।४।१०२) से सीयुट् आगम तथा इटोऽत् (३।४।१०६) से इट् को 'अत्' आदेश होकर 'अधि इ सीय् अ' रहा। लिङः सलोपो० (७।२।७९) से सकार का लोप तथा अचि श्नुधातु० (६।४।७७) से धातु को इयङ् आदेश होकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

'अधि इयङ् ईय् अ' सवर्ण दीर्घ होकर अधीय् ईय् अ=[illegible] बन गया ॥

नानद्यतनवत् क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः ॥३।३।१३५॥

न अ० ॥ अनद्यतनवत् अ० ॥ क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः ५।२॥ अनद्य० इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः ॥ क्रियाणां प्रबन्धः, क्रियाप्रबन्ध, रुषः। क्रियाप्रबन्धश्च, सामीप्यञ्च, क्रियाप्रबन्धसामीप्ये, तयोः द्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—क्रियाप्रबन्धे च गम्यमानेऽनद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्न भवति ॥ भूतानद्यतने, लङ् (३।२।१११) इत्यनेन लङ् विहितः भविष्यत्यनद्यतने, लुट् (३।३।१५) इत्यनेन लुट् विहितस्तयोरयं प्रतिषेधः ॥ क्रिया नैरन्तर्येण क्रियाया अनुष्ठानम् ॥ उदा०—क्रियाप्रबन्धे—यावज्जीवं भृशमन्नम् अदात्। भृशमन्नं दास्यति। सामीप्ये—येयं प्रतिपद् अतिक्रान्ता तस्यां विद्युद् अपप्तत्। वृक्षमभैत्सीत्। मार्गमरौत्सीत्। योऽयं रविवासर आगामी तस्मिन् नगरान्तरं यास्यामः। धनं दास्यामः। पुस्तकं ग्रहीष्यामः ॥

भाषार्थः—भूत अनद्यतन काल में लङ् तथा भविष्यत् अनद्यतन काल में लुट् विधान किया है, उनका यह निषेध सूत्र है ॥ [क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः] क्रियाप्रबन्ध तथा सामीप्य गम्यमान हो तो धातु से [अनद्यतनवत्] अनद्यतनवत् प्रत्ययविधि [न] नहीं होती है ॥ क्रियाप्रबन्ध = निरन्तर किसी क्रिया का अनुष्ठान। सामीप्य = तुल्यजातीय का व्यवधान न होना ॥ अनद्यतनवत् निषेध होने से सामान्य भूत में कहा हुआ लुङ्, तथा सामान्य भविष्यत् काल में कहे हुए लृट् हो गये हैं ॥ उदा०—क्रियाप्रबन्ध में—यावज्जीवं भृशमन्नं (जब तक जिया निरन्तर अन्न का दान किया)। भृशमन्नं [illegible] सामीप्य में—येयं प्रतिपद् अतिक्रान्ता तस्यां विद्युद् अ[illegible] यह प्रतिपद् बीत गई, उसमें बिजली गिरी थी)। वृक्षमभैत्सीत् फट गया था)। मार्गमरौत्सीत् (मार्ग रुक गया था)। योऽयं [illegible] आगामी तस्मिन् नगरान्तरं यास्यामः (जो यह आगामी [illegible] उसमें दूसरे शहर को जायेंगे)। धनं दास्यामः (धन देंगे)। ग्रहीष्यामः (पुस्तक खरीदेंगे) ॥ अपप्तत् में परि० ३।१।५२ के [illegible]

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[प्रथम]

अट् त्' होकर *पतः पुम्* (७।४।१६) *मिदचोऽन्त्यात्०* (१।१।४६) से अन्त्य अच् से परे पुम् होकर 'अ प पुम् त् अङ् त्' = अपप्तत् बन गया। यहाँ च्लि के स्थान में अङ् *पुषादिद्यु०* (३।१।५५) से होगा॥ अभैत्सीत् च्लौसीत् की सिद्धि परि० ३।१।५७ में देखें। अदात् में सिच् का लुक् *अतिस्थाघु०* (२।४।७७) से हुआ है॥

यहाँ से '*नानद्यतनवत्*' की अनुवृत्ति ३।३।१३८ तक जायेगी॥

भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् ॥३।३।१३६॥

भविष्यति ७।१॥ मर्यादावचने ७।१॥ अवरस्मिन् ७।१॥ मर्यादाऽभिव्यतेऽनेन, मर्यादावचनम्॥ अनु०—नानद्यतनवत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—मर्यादावचनेऽवरस्मिन् प्रविभागे भविष्यति काले धातोरनद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्न भवति॥ उदा०—योऽयमध्वा गन्तव्य आपाटलिपुत्रात् तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र द्विरोदनं भोक्ष्यामहे। तत्र सक्तून् पास्यामः॥

भाषार्थः—[*अवरस्मिन्*] अवर प्रविभाग अर्थात् इधर के भाग को कहना [*मर्यादावचने*] मर्यादावचन कहना हो तो [*भविष्यति*] भविष्यत् काल में धातु से अनद्यतनवत् प्रत्यय विधि नहीं होती है॥ अनद्यतन भविष्यत् काल में लुट् प्रत्यय प्राप्त था उसका ही यहाँ निषेध है, अतः सामान्य भविष्यत् काल विहित लृट् हो गया है॥ उदा०—योऽयमध्वा गन्तव्यः, आपाटलिपुत्रात् तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र द्विरोदनं भोक्ष्यामहे (जो यह मार्ग पाटलिपुत्र तक है, उसका जो कौशाम्बी से इधर का भाग है, उसमें दो बार चावल खायेंगे)। तत्र सक्तून् पास्यामः (वहाँ सत्तू पीयेंगे)॥ सिद्धि में कुछ भी विशेष नहीं है॥ भुज् के ज् को *खरि च* (८।२।३०) से कुत्व हुआ है। 'भुक् स्य महिङ्' अतो दीर्घो यञि (७।३।१०१) से दीर्घत्व तथा षत्वादि होकर भोक्ष्यामहे बना है॥

यहाँ से '*भविष्यति*' की अनुवृत्ति ३।३।१३६ तक '*मर्यादावचने*' ३।३।१३८ तक एवं '*अवरस्मिन्*' की ३।३।१३७ तक जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कालविभागे चानहोरात्राणाम् ॥३।३।१३७॥

कालविभागे ७।१॥ च अ० ॥ अनहोरात्राणाम् ६।३॥ स०-न विभागः कालविभागस्तस्मिन्..... षष्ठीतत्पुरुषः। अहानि च रात्रयश्च अहोरात्राणि, न अहोरात्राणि, अनहोरात्राणि, तेषाम्..... नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—भविष्यति, मर्यादावचनेऽवरस्मिन्, नानद्यतनवत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—कालमर्यादायामवरस्मिन् प्रविभागे भविष्यति काले धातोरनद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्न भवति, न चेद् रात्र्यहः सम्बन्धी विभागः, तत्र त्वनद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्भवत्येव॥ उदा०—योऽयं संवत्सर आगामी, तत्र यदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे। तत्रौदनं भोक्ष्यामहे॥

भाषार्थः—[*कालविभागे*] कालकृत मर्यादा में अवर भाग की विवक्षा हो तो [च] भी भविष्यत् काल में धातु से अनद्यतनवत् प्रत्यय विधि नहीं होती, यदि वह काल का मर्यादा विभाग [*अनहोरात्राणाम्*] रात्रि दिन रात सम्बन्धी न हो॥ पूर्व सूत्र से ही निषेध सिद्ध था, यहाँ 'अनहोरात्राणाम्' निषेध करने के लिये यह वचन है॥ उदा०—योऽयं संवत्सर आगामी तत्र यदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे (जो आगामी वर्ष है, उसका जो अगहन पूर्णमासी से इधर का भाग उसमें लग कर पढ़ेंगे)। तत्रौदनं भोक्ष्यामहे॥

उदाहरण में आग्रहायणी कालवाची शब्द से अवर भाग की विवक्षा बाँधी है, सो अध्येष्यामहे में अनद्यतन भविष्यत् काल के लुट् का निषेध होकर पूर्ववत् लृट् प्रत्यय हो गया है॥

यहाँ से '*कालविभागे चानहोरात्राणाम्*' की अनुवृत्ति ३।३।१३८ तक जायेगी॥

परस्मिन् विभाषा ॥३।३।१३८॥

परस्मिन् ७।१॥ विभाषा १।१॥ अनु०—कालविभागे चानहोरात्राणाम्, भविष्यति मर्यादावचने, नानद्यतनवत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—भविष्यति काले मर्यादावचने कालस्य परस्मिन् प्रविभागे, धातोर्विकल्पेनानद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्न भवति, न चेद् रात्र्यहः सम्बन्धी प्रविभागः॥ उदा०—योऽयं संवत्सर आगामी तत्र यत्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ष्यास्तत्र युक्ताऽध्येष्यामहे। पक्षे—अध्येतास्महे। तत्र सक्तून् पास्यामः, पातास्मो वा ॥

भाषार्थः—भविष्यत् काल में काल के [परस्मिन्] परले भाग की मर्यादा को कहना हो तो अनद्यतनवत् प्रत्ययविधि [*विभाषा*] विकल्प से नहीं होती यदि वह काल विभाग अहोरात्र सम्बन्धी न हो तो ॥ इस सूत्र में कालकृत अवरप्रविभाग की मर्यादा में अनद्यतनवत् प्रत्यय का निषेध था, यहाँ परप्रविभाग को कहने में विकल्प से निषेध कर दिया है ॥ उदा०—योऽयं संवत्सर आगामी तत्र यत् परमाग्रहायण्यास्तत्र वयमध्येष्यामहे (जो यह आने वाला साल है, उसका जो अगहन पूर्णमासी से परला भाग है, उसमें लगकर पढ़ेंगे)। पक्ष में—अध्येतास्महे। सक्तून् पास्यामः, पातास्मो वा (तब सत्तू पीवेंगे) ॥ विकल्प कहने से पक्ष में भविष्यत् काल का लुट् प्रत्यय होकर, 'अधि इ तास् महिङ्' = अधि प तास् महे = अध्येतास्महे, पातास्मः बन गया है ॥

लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ॥३।३।१३९॥

लिङ्निमित्ते ७।१॥ लृङ् १।१॥ क्रियातिपत्तौ ७।१॥ स०-लिङो निमित्तं लिङ्निमित्तं, तस्मिन्·····षष्ठीतत्पुरुषः। क्रियायाः अतिपत्तिः, क्रियातिपत्तिः, तस्यां·····षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भविष्यति काले लिङ्निमित्ते, क्रियातिपत्तौ सत्यां धातोर्लृङ् प्रत्ययो भवति ॥ *हेतुहेतुमतोर्लिङ्* (३।३।१५६) इत्येवमादिकं लिङो निमित्तम् ॥ उदा०—दक्षिणेन चेदागमिष्यत्, न शकटं पर्याभविष्यत्। अभोक्ष्यद् भवान् घृतेन यदि मत्समीपमासिष्यत् ॥

भाषार्थः—भविष्यत् काल में [*लिङ्निमित्ते*] लिङ् का निमित्त होने पर [*क्रियातिपत्तौ*] क्रिया की अतिपत्ति = उल्लङ्घन अथवा क्रिया का सिद्ध न होना गम्यमान हो तो धातु से [लृङ्] लृङ् प्रत्यय होता है ॥ हेतु (कारण) और हेतुमत् (फल = कार्य) लिङ् के निमित्त होते हैं, सो लिङ् के निमित्त का अर्थ हुआ हेतु, हेतुमद्भाव ॥ उदा०—दक्षिणेन चेदागमिष्यत्, न शकटं पर्याभविष्यत् (यदि दक्षिण के रास्ते से आओगे, तो गाड़ी नहीं उल्टेगी)। अभोक्ष्यत भवान् घृतेन यदि मत्समीपमासिष्यत (यदि आप मेरे पास बैठोगे तो घी से भोजन करोगे) ॥ उदाहरण में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दक्षिण से आना तथा मेरे पास बैठना, यह हेतु है, छकड़े का टूटना, तथा घी से खाना, यह हेतुमत् है। वह दक्षिण से आयेगा, अतः छकड़ा टूट जायेगा, एवं मेरे पास रहेगा ही नहीं अतः घी कैसे खा सकेगा, (यह बात वक्ता ने किसी प्रकार जान ली) यह क्रियातिपत्ति क्रिया का उल्लङ्घन है। सो उदाहरण आगमिष्यत् पर्याभविष्यत् में लृङ् लकार हो गया है॥ आगमिष्यत् में गमेरिट् प० (अर्थात् इट् आगम होता है। 'परि आङ् अट् भू इट् स्य त्=पर्याभविष्यत्=पर्याभविष्यत् पूर्ववत् बन गया है। आत्मनेपद में भी अभोक्ष्यत आसिष्यत भी इसी प्रकार समझें॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ३।३।१४१ तक जायेगी॥

भूते च ॥३।३।१४०॥

भूते ७।१॥ च अ०॥ अनु०—लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—पूर्वेण भविष्यति विहितोऽत्र लृङ् विधीयते। भूते लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ सत्यां लृङ् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—दृष्टो मया भवत्पुत्रोऽन्नार्थी चङ्क्रम्यमाणः, अपश्यं ब्राह्मणार्थी, यदि स तेन दृष्टोऽभविष्यत्, तदा अभोक्ष्यत, न तु भुक्तवान् अन्येन पथा स गतः॥

भाषार्थः—लिङ् का निमित्त हेतु-हेतुमत् हो तो क्रियातिपत्ति पर [भूते] भूत काल में [च] भी धातु से लृङ् प्रत्यय होता है। पूर्व सूत्र से भविष्यत् काल में ही लृङ् प्राप्त था यहाँ भूतकाल में भी विधान कर दिया है॥ उदा०—दृष्टो मया भवत्पुत्रोऽन्नार्थी चङ्क्रम्यमाणः, अपश्यं द्विजो ब्राह्मणार्थी, यदि स तेन दृष्टोऽभविष्यत्, तदा अभोक्ष्यत, न तु भुक्तवान्, अन्येन पथा स गतः (अन्न के लिये इधर उधर घूमते मैंने आपके पुत्र को देखा था, तथा एक द्विज को जो कि ब्राह्मण भोजन कराने के लिये ढूँढ़ रहा था, मैंने देखा। यदि वह आपके पुत्र को देख लेता, तो खिला देता। पर नहीं खा सका क्योंकि वह और ही चला गया, देखा नहीं गया)॥ उदाहरण में यदि 'वह उसके पास जाता', यह हेतु है 'तो खिला देता' यह हेतुमत् है, उसने हेतु अतः खिलाया नहीं, यह क्रियातिपत्ति है॥ भूतकालता प्रदर्शित करने लिये ही 'दृष्टो मया'.....'आदि इतना बड़ा वाक्य दिखाया है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'भूते' की अनुवृत्ति ३।३।१४१ तक जायेगी ॥

वोताप्योः ॥३।३।१४१॥

वा अ० ॥ आ अ० ॥ उताप्योः ७।२॥ अनु०—लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उताप्योः समर्थयोर्लिङ् (३।३।१५२) इति यावत्, लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ भूते विभाषा लृङ् भवतीत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ उदा०—विभाषा कथमि लिङ् चेत्यत्र-कथं नाम तत्र भवान् ब्राह्मणम् अक्रोक्ष्यत्। यथाप्राप्तं 'क्रोशेत्' इति च ॥

भाषार्थः—[उताप्योः] उताप्योःसमर्थयोर्लिङ् से [आ] पहले पहले जितने सूत्र हैं उनमें लिङ् का निमित्त होने पर क्रिया की अतिपत्ति में, भूतकाल में [वा] विकल्प से लृङ् प्रत्यय होता है, अर्थात् जहाँ २ हेतु, हेतुमद्भाव में लिङ् का विधान उताप्योः समर्थयोर्लिङ् सूत्र से पहले २ करेंगे वहाँ २ लृङ् प्रत्यय भी विकल्प से होता जायेगा, ऐसा अधिकार समझना चाहिये ॥

विभाषा कथमि लिङ् च सूत्र में लिङ् का विधान है, अतः यहाँ प्रकृत सूत्र का अधिकार होने से पक्ष में भूतकाल क्रियातिपत्ति विवक्षा होने पर लृङ् भी हो गया। जहाँ लिङ् का सम्बन्ध नहीं होगा, वहाँ इस सूत्र का अधिकार नहीं बैठेगा ॥

'वा + आ' को सवर्णदीर्घ होकर 'वा' बना पुनः वा + उताप्योः यहाँ आद् गुणः (६।१।८४) लगकर वोताप्योः बना है ॥ यहाँ पर आङ् मर्यादा में है, अभिविधि में नहीं ॥

गर्हायां लडपिजात्वोः ॥३।३।१४२॥

गर्हायाम् ७।१॥ लट् १।१॥ अपिजात्वोः ७।२॥ स०—अपि च जातु च, अपिजातू, तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—गर्हायां गम्यमानायां, अपि, जातु इत्येतयोरुपपदयोः, धातोर्लट् प्रत्ययो भवति ॥ कालत्रये लट् विधीयते ॥ उदा०—अपि तत्र भवान् मांसं खादति, जातु तत्र भवान् मांसं खादति, गर्हितमेतत् ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—वर्त्तमान काल में लट् प्रत्यय कहा है, अब [illegible] (तीन कालों में) प्राप्त नहीं था, अतः विधान कर दिया है॥ [illegible] याम्] निन्दा गम्यमान हो तो [*अपिजात्वोः*] अपि तथा जातु [illegible] रहते धातु से तीनों कालों में सब लकारों का अपवाद [लट्] प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—अपि तत्र भवान् मांसं खादति, [illegible] भवान् मांसं खादति, गर्हितमेतद् (क्या आप मांस खाते हैं, खाते वा खायेंगे, यह बड़ा निन्दित कर्म है)॥

किसी काल विशेष में ये लकार नहीं कहे गये है अतः [illegible] प्रकरण में कहे गये प्रत्यय भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों ही [illegible] में होते हैं, सो विवक्षाधीन उदाहरणों के अर्थ लगा लेना चाहिये।

यहाँ से '*गर्हायाम्*' की अनुवृत्ति ३।३।१४४, तथा '*लट्*' की अनु [illegible] ३।३।१४३ तक जायेगी॥

विभाषा कथमि लिङ् च॥३।३।१४३॥

विभाषा १।१॥ कथमि ७।१॥ लिङ् १।१॥ च अ०॥ अनु [illegible] गर्हायाम्, लट्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—गर्हायां सत्यां [illegible] उपपदे धातोः कालत्रये लिङ् प्रत्ययो विकल्पेन भवति, चकारात् च। पक्षे स्व स्व काले विहिताः सर्वे लकारा भवन्ति॥ उदा०— नाम भवान् ब्राह्मणं क्रोशेत्। चकाराद् लट्—कथं नाम भवान् ब्राह्मणं क्रोशति। पक्षे स्व स्व काले सर्वे लकाराः—कथं नाम भवान् ब्राह्मणं क्रोक्ष्यति (लृट्), कथं नाम भवान् ब्राह्मणं क्रोष्टा (लुट्)। नाम भवान् ब्राह्मणमक्रोशत् (लङ्), कथं नाम भवान् ब्राह्मणं [illegible] (लिट्), कथं नाम भवान् ब्राह्मणमक्रुक्षत् (लुङ्)। अस्यिन् लिङ्निमित्तमस्त्यतो भूतविवक्षायां क्रियातिपत्तौ सत्यां वीताधोः [illegible] १४१) इत्यनेन लृङपि भविष्यति॥

भाषार्थः—गर्हा गम्यमान हो तो [*कथमि*] कथम् शब्द उपपद [illegible] [*विभाषा*] विकल्प करके [*लिङ्*] लिङ् प्रत्यय होता है, तथा [च] से लट् प्रत्यय भी तीनों कालों में होता है। पक्ष में अपने-अपने में विहित सारे ही लकार होते हैं॥ *उदा०*—कथं नाम भवान्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शेत् (कैसे आप ब्राह्मण को डाँटते हैं, डाँटा, वा डाँटेंगे) शेष उदाहरण संस्कृत भाग के अनुसार जान लें। इस सूत्र में लिङ् का निमित्त अतः क्रियातिपत्ति भूत विवक्षा में लृङ् भी पक्ष में होगा, सो क्रोक्ष्यत् बनेगा ॥

किंवृत्ते लिङ्लृटौ ३।३।१४४॥

किंवृत्ते ७।१॥ लिङ्लृटौ १।२॥ स०—किमो वृत्तं किंवृत्तं तस्मिन्.... तत्पुरुषः। लिङ् च लृट् च लिङ्लृटौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—गर्हायाम्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—किंवृत्त उपपदे धातोः गर्हायां गम्यमानायां लिङ्लृटौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—को नाम यो विद्यां निन्देत्, को नाम यो विद्यां निन्दिष्यति। कतरो विद्यां निन्देत्, कतरो निन्दिष्यति ॥ क्रियातिपत्तौ सत्यां लृङपि भवति वोताप्योः इत्यनेन ॥

भाषार्थः—[किंवृत्ते] किंवृत्त उपपद हो तो गर्हा गम्यमान होने पर धातु से [लिङ्लृटौ] लिङ् तथा लृट् प्रत्यय सामान्य करके तीनों कालों में होते हैं ॥ किंवृत्त से यहाँ सर्वविभक्त्यन्त किम् शब्द तथा इतर डतम प्रत्ययान्त किम् शब्द लिया जायेगा ॥ उदा०—को नाम यो विद्यां निन्देत् (कौन है जो विद्या की निन्दा करता है, करेगा वा की) शेष उदाहरण संस्कृतानुसार जान लें। लिङ् प्रत्यय होने से भूतकाल क्रियातिपत्ति विवक्षा में वोताप्योः से लृङ् भी होगा, सो 'अनिन्दिष्यत्' भी बनेगा ॥

यहाँ से 'लिङ्लृटौ' की अनुवृत्ति ३।३।१४५ तक जायेगी ॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि ॥३।३।१४५॥

अनव...योः ७।२॥ अकिंवृत्ते ७।१॥ अपि अ०॥ स०—अनवक्लृप्तिः, अमर्ष इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः। अनवक्लृप्तिश्च, अमर्षश्च, अनवक्लृप्त्यमर्षौ, तयोः...इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—लिङ्लृटौ, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनवक्लृप्ति, अमर्ष इत्येतयोरभिधेययोः किंवृत्तेऽकिंवृत्ते चोपपदे धातोः कालसामान्ये लिङ्लृटौ प्रत्ययौ भवतः ॥ अनवक्लृप्तिः = असंभावना। अमर्षः = अक्षमा ॥ उदा०—नावकल्पयामि, न संभावयामि यद् भवान् मांसं भुञ्जीत, मांसं भोक्ष्यते। किंवृत्तेऽपि—कथंचित्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भवान् मांसं भुञ्जीत नावकल्पयामि, कथञ्चिन् मांसं भोक्ष्यते। न मर्षयामि न श्रद्दधे यद् भवान् विद्यां निन्देत्, यद् भवान् निन्दिष्यति। किंवृत्तेऽपि—कदाचित् भवान् विद्यां निन्देत् न न श्रद्दधे, कदाचिन् निन्दिष्यति वा। भूतविवक्षायां वोताण्योः लृङपि भवति ॥

भाषार्थः—[*अन*·····*र्षयोः*] अनवक्लृप्ति = असम्भावना, सहन न करना, गम्यमान हो तो [*अकिंवृत्ते*] अकिंवृत्त उपपद [*अपि*] या हो तो भी धातु से काल सामान्य में सब लकारों के लिङ् तथा लृट् प्रत्यय होते हैं ॥ भूत क्रियातिपत्ति विवक्षा में पक्ष में होगा ॥ *उदा०*—नावकल्पयामि न सम्भावयामि यद् मांसं भुञ्जीत, मांसं भोक्ष्यते (मैं सोच भी नहीं सकता कि आप खाते हैं)। अमर्ष में—न मर्षयामि न श्रद्दधे यद् भवान् विद्यां (मैं सहन नहीं कर सकता कि आप विद्या की निन्दा करते हैं उदाहरण संस्कृत भाग के अनुसार जान लें ॥

भुज धातु रुधादि गण की है, सो श्नम् होकर 'भु श्नम् त्' सुट् त' बनकर *श्नसोरल्लोपः* (६।४।१११) से श्नम् के अ का लोप *लिङः सलोपोऽन०* (७।२।७९) से दोनों सकारों का लोप होकर 'ईय् त' रहा। *लोपो व्यो०* (६।१।६४) से ईय् के य् का लोप होकर बना। *नश्चापदा०* (८।३।२४) एवं *अनुस्वारस्य ययि०* (८।४।५७) को ञ् होकर भुञ्जीत बना है ॥

यहाँ से '*अनवक्लृप्त्यमर्षयोः*' की अनुवृत्ति ३।३।१४८ तक जाती

किंकिलास्त्यर्थेषु लृट् ॥३।३।१४६॥

किंकिलास्त्यर्थेषु ७।३॥ लृट् १।१॥ *स०*—अस्ति अर्थो येऽस्त्यर्थाः, बहुव्रीहिः। किंकिलश्च अस्त्यर्थश्च, किंकिलास्त्यर्थौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अनवक्लृप्त्यमर्षयोः, धातोः, प्रत्ययः, *अर्थः*—अनवक्लृप्त्यमर्षयोरभिधेययोः, किंकिल, अस्त्यर्थेषु धातोः कालत्रये लृट् प्रत्ययो भवति ॥ 'किंकिल' इति समुदायो गृह्यते ॥ *उदा०*—न संभावयामि किंकिल भवान्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[पादः]

त्यति। न मर्षयामि किंकिल भवान् धान्यं न दास्यति। अस्त्यर्थेषु—सम्भावयामि न मर्षयामि, अस्ति नाम भवान् मां त्यक्ष्यति, विद्यते वा नाम तत्र भवान् मां त्यक्ष्यति ॥

भाषार्थः—अनवक्लृप्ति तथा अमर्ष अभिधेय हों तो [*किंकिलास्त्यर्थेषु*] किंकिल तथा अस्ति अर्थ वाले पदों के उपपद रहते धातु से सामान्य करके तीनों कालों में [*लृट्*] लृट् प्रत्यय होता है॥ अस्ति, वर्तति, विद्यते यह सब अस्त्यर्थक पद हैं। किंकिल यह क्रोध का द्योतन करने अर्थ में वर्त्तमान समुदाय रूप शब्द है॥ उदा०—न सम्भावयामि किंकिल भवान् धान्यं न दास्यति (मैं सोच भी नहीं सकता कि आप धान्य नहीं देंगे, दिया, वा देते हैं) न सम्भावयामि न मर्षयामि वा, अस्ति नाम भवान् मां त्यक्ष्यति (मैं सोच नहीं सकता वा सहन नहीं कर सकता कि आप मुझे छोड़ देंगे)। शेष उदाहरण संस्कृतानुसार जान लें॥ उदाहरण में दा तथा त्यज् धातु से लृट् प्रत्यय हुआ है। त्यज् + ष्य् को कुत्व होकर त्यक् + स्य ति = षत्व होकर त्यक्ष्यति बना है॥

जातुयदोर्लिङ् ॥३।३।१४७॥

जातुयदोः ७।२॥ लिङ् १।१॥ स०—जातु च यत् च, जातुयदौ, जातुयदोः...इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—अनवक्लृप्त्यमर्षयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अनवक्लृप्त्यमर्षयोरभिधेययोः जातुयदोरुपपदयोः धातोः कालसामान्ये लिङ् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—न संभावयामि जातु भवान् धर्मं त्यजेत्, यद् भवान् धर्मं त्यजेत्। अमर्षे—न मर्षयामि न सहे, जातु भवान् ब्राह्मणं सदाचारिणं हन्यात्, यद् भवान् ब्राह्मणं सदाचारिणं हन्यात्। भूते क्रियातिपत्तेर्विवक्षायां पक्षे लृङपि भविष्यति॥

भाषार्थः—अनवक्लृप्ति अमर्ष अभिधेय हो तो [*जातुयदोः*] जातु तथा यद् उपपद रहते धातु से सामान्य करके तीनों कालों में [*लिङ्*] लिङ् प्रत्यय होता है॥ उदा०—न संभावयामि जातु भवान् धर्मं त्यजेत्, यद् भवान् धर्मं त्यजेत् (मैं सोच नहीं सकता कि आप कभी धर्म छोड़ देंगे)। अमर्ष में—न मर्षयामि न सहे, जातु भवान् ब्राह्मणं सदाचारिणं हन्यात्, यद् भवान् ब्राह्मणं सदाचारिणं हन्यात् (मैं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सहन नहीं कर सकता कि आप सदाचारी ब्राह्मण को मारें। क्रियातिपत्ति विवक्षा में पक्ष में वोताप्योः से लृङ् भी होगा अत्यक्ष्यत् बनेगा ॥

यहाँ से 'लिङ्' की अनुवृत्ति ३।३।१५० तक जायेगी ॥

यच्चयत्रयोः ॥३।३।१४८॥

यच्चयत्रयोः ७।२॥ स०— यच्च च, यत्र च यच्चयत्रौ, तयोः, इतरेतर द्वन्द्वः ॥ अनु०—लिङ्, अनवक्लृप्त्यमर्षयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनवक्लृप्त्यमर्षयोरभिधेययोः यच्च यत्र इत्येतयोरुपपदयोः धातोः कालसामान्ये लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—न संभावयामि यच्च भवद्विधोऽनृतं वदेत्, यत्र भवद्विधोऽनृतं वदेत्। न मर्षयामि सहे, यच्च भवद्विधोऽनृतं वदेत्, यत्र भवद्विधोऽनृतं वदेत्। भूते क्रियातिपत्तौ वा लृङपि भविष्यति ॥

भाषार्थः—अनवक्लृप्ति अमर्ष गम्यमान हो तो [यच्चयत्रयोः] यत्र ये अव्यय उपपद रहते, धातु से लिङ् प्रत्यय सामान्य काल में होता है ॥ भूत क्रियातिपत्ति विवक्षा में पक्ष में लृङ् भी होगा। उदा०—न संभावयामि यच्च भवद्विधोऽनृतं वदेत्, यत्र भवद्विधोऽनृतं वदेत् (मैं सोच भी नहीं सकता कि आप जैसे झूठ बोल देंगे)। वदेत् की सिद्धि परि० ३।१।६८ के पठेत् के समान जानें ॥

यहाँ से 'यच्चयत्रयोः' की अनुवृत्ति ३।३।१५० तक जायेगी ॥

गर्हायाञ्च ॥३।३।१४९॥

गर्हायाम् ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—यच्चयत्रयोः, लिङ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—गर्हायां = निन्दायां गम्यमानायां यच्च यत्र इत्येतयोरुपपदयोः, धातोः कालसामान्ये लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा० यच्च भवान् मांसं खादेत्, यत्र भवान् मांसं खादेत्, अहो गर्हितमेतत्। भूते क्रियातिपत्तौ वा लृङपि भविष्यति ॥

भाषार्थः—[गर्हायाम्] गर्हा गम्यमान हो तो [च] भी यत्र उपपद रहते धातु से सामान्य करके सब काल में लिङ् प्रत्यय होता है। पूर्ववत् भूत क्रियातिपत्ति विवक्षा में विकल्प से लृङ भी होगा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[प्रयोगः]

उदा०—यच्च भवान् मांसं खादेत्, यत्र भवान् मांसं खादेत्, अहो गर्हितमेतत् (जो आप मांस खाते हैं, यह बड़ी निन्दित बात है)। खादेत् की सिद्धि परि ३।१।६८ पठेत् के समान जानें॥

चित्रीकरणे च ॥३।३।१५०॥

चित्रीकरणे ७।१॥ च अ०॥ अनु०—यच्चयत्रयोः, लिङ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—चित्रीकरणम् आश्चर्यं, तस्मिन् गम्यमाने यच्च यत्र, इत्येतयोरुपपदयोः, धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति कालसामान्ये॥ उदा०—यच्च भवान् वेदविद्यां निन्देत्, यत्र भवान् वेदविद्यां निन्देत्, आश्चर्यमेतत्, बुद्धिमान् सज्जनोऽपि सन्। भूते क्रियातिपत्तौ वा लृङपि भविष्यति॥

भाषार्थः—[चित्रीकरणे] चित्रीकरण = आश्चर्य गम्यमान हो तो [च] भी यच्च, यत्र उपपद रहते धातु से सामान्य काल में लिङ् प्रत्यय होता है॥ भूत क्रियातिपत्ति विवक्षा में पक्ष में लृङ् भी होगा॥ उदा०—यच्च भवान् वेदविद्यां निन्देत्, यत्र भवान् वेदविद्यां निन्देत्, आश्चर्यमेतत् बुद्धिमान् सज्जनोऽपि सन् (बुद्धिमान् और सज्जन होते हुये भी जो आप वेद विद्या की निन्दा करते हैं, यह आश्चर्य है)॥

यहाँ से 'चित्रीकरणे' की अनुवृत्ति ३।३।१५१ तक जायेगी॥

शेषे लृङयदौ ॥३।३।१५१॥

शेषे ७।१॥ लृट् १।१॥ अयदौ ७।१॥ स०—न यदि अयदि, तस्मिन् नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—चित्रीकरणे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—यच्चयत्राभ्यामन्यत्र यः स शेषः तस्मिन्नुपपदे चित्रीकरणे गम्यमाने, धातोः कालसामान्ये लृट् प्रत्ययो भवति, यदि शब्दश्चेत् न प्रयुज्यते॥ उदा०—अन्धो नाम मार्गं क्षिप्रं यास्यति, बधिरो नाम व्याकरणं पठिष्यति, आश्चर्यमेतत्॥

भाषार्थः—यच्च यत्र की अपेक्षा से यहाँ शेष लिया गया है॥ [अयदौ] यदि भिन्न [शेषे] शेष उपपद हो तो चित्रीकरण गम्यमान होने पर धातु से [लृट्] लृट् प्रत्यय होता है॥ उदा०—अन्धो नाम मार्गं क्षिप्रं यास्यति, बधिरो नाम व्याकरणं पठिष्यति, आश्चर्यमेतत्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(अन्धा जल्दी-जल्दी मार्ग में चलेगा, तथा बहरा व्याकरण पढ़ेगा, [illegible] है, अथवा पढ़ा, यह आश्चर्य की बात है) ॥

उताप्योः समर्थयोर्लिङ् ॥३।३।१५२॥

उताप्योः ७।२॥ समर्थयोः ७।२॥ लिङ् १।१॥ स०—उत च [illegible] उतापी, तयोः···इतरेतरद्वन्द्वः । समानः अर्थो ययोः, तौ समर्थौ, [illegible] ·····बहुव्रीहिः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—[illegible] इत्येतयोः समर्थयोः = समानार्थयोरुपपदयोः धातोर्लिङ् प्रत्ययो [illegible] उदा०—उत कुर्यात्, अपि कुर्यात् । उत पठेत्, अपि पठेत् ॥

भाषार्थः—[*उताप्योः*] उत, अपि [*समर्थयोः*] समानार्थक [illegible] तो धातु से [*लिङ्*] लिङ् प्रत्यय होता है ॥ बाढम् = हाँ अर्थ [illegible] अपि समानार्थक होते हैं, *वोताप्योः* का अधिकार यहाँ समाप्त हो [illegible] से अब वह सम्बन्धित नहीं होगा । *अत उत् सार्वधातुके* (६।४।११०) [illegible] लगकर कुर्यात् बन गया, शेष पूर्ववत् समझें ॥ उदा०—उत [illegible] (हाँ करे) । अपि कुर्यात् (हाँ करे) । उत पठेत् (हाँ पढ़े) । अपि [illegible] (हाँ पढ़े) ॥

यहाँ से '*लिङ्*' की अनुवृत्ति ३।३।१५५ तक जायेगी ॥

कामप्रवेदनेऽकच्चिति ॥३।३।१५३॥

कामप्रवेदने ७।१॥ अकच्चिति ७।१॥ स०—कामस्य = इच्छा [illegible] प्रवेदनं = प्रकाशनं, कामप्रवेदनं, तस्मिन्···षष्ठीतत्पुरुषः । न कच्चित् [illegible] अकच्चित्, तस्मिन्···नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—लिङ्, धातोः, [illegible] परश्च ॥ अर्थः—कामप्रवेदने = स्वाभिप्रायप्रकाशने गम्यमाने धातोर्लिङ् [illegible] शब्द उपपदे लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कामो मे भुञ्जीत [illegible] अभिलाषो मे भुञ्जीत भवान् ॥

भाषार्थः—[*कामप्रवेदने*] अपने अभिप्राय का प्रकाशन [illegible] गम्यमान हो तो [*अकच्चिति*] कच्चित् शब्द उपपद में न हो [illegible] धातु से लिङ् प्रत्यय होता है ॥ काम = इच्छा, प्रवेदन = प्रकाशन [illegible] उदा०—कामो मे भुञ्जीत भवान् (मेरी इच्छा है, कि आप भोजन [illegible]

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भिलाषो मे भुञ्जीत भवान् ॥ ३।३।१४५ सूत्र में भुञ्जीत की सिद्धि

सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे ॥३।३।१५४॥

सम्भावने ७।१॥ अलम् अ० ॥ इति अ० ॥ चेत् अ० ॥ सिद्धा-प्रयोगे ७।१॥ स०—न प्रयोगः, अप्रयोगः नञ्तत्पुरुषः। सिद्धश्चासौ प्रयोगश्च सिद्धाप्रयोगस्तस्मिन्.....कर्मधारयस्तत्पुरुषः ॥ अनु०—लिङ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सम्भावनम् = अनुमानम्। अलंशब्दोऽत्र समर्थवाची। सम्भावनम् अलमर्थेन विशेष्यते। अलं पर्याप्तम् इति सम्भावनेऽर्थे वर्त्तमानाद् धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति, सिद्धश्चेद् अलमोऽप्रयोगः ॥ यत्र गम्यते चार्थो न चासौ प्रयुज्यते स सिद्धाप्रयोगः ॥ एवं यत्र अलं शब्दस्य प्रयोगो मा भूत्, परं वाक्येन समर्थतायाः प्रतीतिर्भवेत् तत्र लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अपि पर्वतं शिरसा भिन्द्यात्। अपि वृक्षं हस्तेन त्रोटयेत् ॥

भाषार्थः—[*सम्भावने*] सम्भावन अर्थ में वर्त्तमान धातु से लिङ् प्रत्यय होता है, [*चेत्*] यदि [*अलमिति*] अलम् शब्द का [*सिद्धाप्रयोगे*] सिद्ध अप्रयोग हो रहा हो तो, अर्थात् अलम् समर्थवाची शब्द के प्रयोग बिना ही समर्थता की प्रतीति हो रही हो तो। सम्भावना = अनुमान कहते हैं ॥ अलं शब्द यहाँ समर्थवाची है ॥ जहाँ किसी अर्थ की प्रतीति तो हो रही हो पर उस शब्द का प्रयोग न हो रहा हो, उसे सिद्ध + अप्रयोग = सिद्धाप्रयोग कहते हैं ॥ उदा०—अपि पर्वतं शिरसा भिन्द्यात् (यह तो सिर से पर्वत तोड़ सकता है) अपि वृक्षं हस्तेन त्रोटयेत् (यह तो हाथ से वृक्ष तोड़ सकता है)। उदाहरण में अलं शब्द का प्रयोग नहीं है, पर अर्थ की प्रतीति हो रही है, सम्भावना की हो रही है सो भिद् धातु से लिङ् प्रत्यय हो गया है। *रुधादिभ्यः श्नम्* (३।१।७८) से भिन्द्यात् में श्नम् विकरण होता है ॥

यहाँ से सारे सूत्र की अनुवृत्ति ३।३।१५५ तक जायेगी ॥

विभाषा धातौ सम्भावनवचनेऽयदि ॥३।३।१५५॥

विभाषा १।१॥ धातौ ७।१॥ सम्भावनवचने ७।१॥ अयदि ७।१॥ स०—न यत् अयत् तस्मिन्.....नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—सम्भावने-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे, लिङ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ च्यतेऽनेन स सम्भावनवचनः, तस्मिन्·····॥ अर्थः—सम्भ धातावुपपदे, यच्छब्दवर्जिते सिद्धाप्रयोगेऽलमर्थे सति लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सम्भावयामि भुञ्जीत भवान्, यामि भुञ्जीत भवान्। पक्षे लृट्—सम्भावयामि भोक्ष्यते अवकल्पयामि भोक्ष्यते भवान् ॥

भाषार्थः—[सम्भावनवचने] सम्भावन अर्थ को कहने वा धातु उपपद में हो तो [अयदि] यत् शब्द पूर्व में न होने प अर्थ में वर्त्तमान धातु से [विभाषा] विकल्प से लिङ् प्रत्यय यदि अलम् शब्द का सिद्धाप्रयोग हो तो ॥ सम्भावना भवि विषय वाली होती है, अतः पक्ष में सामान्य भविष्यत् काल लृट् हो गया है ॥ उदा०—सम्भावयामि भुञ्जीत भवान् (मैं करता हूँ कि आप खावेंगे)। शेष उदाहरण संस्कृतानुसार उदाहरण में सम्भावयामि अवकल्पयामि सम्भावनवचन हैं, अलम् शब्द का सिद्धाप्रयोग है ही, सो भुज् धातु से पक्ष में लृट् प्रत्यय हुआ है ॥

यहाँ से 'विभाषा' की अनुवृत्ति ३।३।१५६ तक जायेगी॥

हेतुहेतुमतोर्लिङ् ॥३।३।१५६॥

हेतुहेतुमतोः ७।२॥ लिङ् १।१॥ स०—हेतुश्च हेतुमत् च, तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—विभाषा, धातोः, प्रत्ययः, अर्थः—हेतुः = कारणम्, हेतुमत् = फलम्, एतयोरर्थयोः लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—दक्षिणेन चेद् यायात्, न शकटं पर्याभवेत्। यदि कमलकमाह्वयेत् न शकटं पर्याभवेत्। पक्षे दक्षिणेन चेदायास्यति, न शकटं पर्याभविष्यति॥

भाषार्थः—[हेतुहेतुमतोः] हेतु और हेतुमत् अर्थ में [लिङ्] लिङ् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥ 'भविष्यदधिकारे' भाष्य की वार्त्तिक से लिङ् प्रत्यय (इस सूत्र से हेतु हेतुमत् भविष्यत् काल में ही होता है, अतः पक्ष में लृट् सामान्य ही उदाहरण दिया है ॥ उदा०—दक्षिणेन चेद् यायात्,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[ग्रहः]

वेत् (यदि दक्षिण के रास्ते से जाता, तो छकड़ा न टूटता)। यदि कमलकमाहृयेत् न शकटं पर्याभवेत् (यदि कमलक को बुला लेता, तो छकड़ा न टूटता)। पक्ष में लृट् का उदाहरण संस्कृतानुसार जानें॥ उदाहरण में दक्षिण से आना एवं कमलक को बुलाना हेतु है, तथा छकड़े का टूटना हेतुमत् है॥ सिद्धियाँ पूर्ववत् हैं॥

इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ॥३।३।१५७॥

इच्छार्थेषु ७।३॥ लिङ्लोटौ १।२॥ स०—इच्छा अर्थो येषां ते, इच्छार्थास्तेषु ·····बहुव्रीहिः। लिङ् च लोट् च लिङ्लोटौ, इतरेतरद्वः॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—इच्छार्थेषु धातुषूपपदेषु धातोर्लिङ्लोटौ प्रत्ययौ भवतः, सामान्ये काले॥ उदा०—इच्छामि भोजीत भवान्। इच्छामि भुङ्क्तां भवान्, कामये भुञ्जीत भवान्, कामये भुङ्क्तां भवान्॥

भाषार्थः—[इच्छार्थेषु] इच्छार्थक धातुओं के उपपद रहते सामान्य के सब कालों में [लिङ्लोटौ] लिङ् तथा लोट् प्रत्यय होते हैं॥ उदा०—इच्छामि भुञ्जीत भवान् (मैं चाहता हूँ कि आप भोजन करें)। इच्छामि भुङ्क्तां भवान्, कामये भुञ्जीत भवान्, कामये भुङ्क्ताम् भवान्॥ भुञ्जीत सिद्धि ३।३।१४५ सूत्र पर देखें॥ लोट् लकार में पूर्ववत् सब कार्य कर भुन्, ज् त, रहा। *टित आत्मने०* (३।४।७९) से टि को एत्व कर 'भुन्ज् ते' बना, पुनः *आमेतः* (३।४।९०) से ए को आम्, *चोः कुः* कुत्वादि पूर्ववत् होकर भुङ्क्ताम् बन गया॥

यहाँ से 'इच्छार्थेषु' की अनुवृत्ति ३।३।१५९ तक जायेगी॥

समानकर्तृकेषु तुमुन् ॥३।३।१५८॥

समानकर्तृकेषु ७।३॥ तुमुन् १।१॥ स०—समानः कर्त्ता ययोः, तौ समानकर्तृकौ तेषु ·····बहुव्रीहिः॥ अनु०—इच्छार्थेषु, धातोः, प्रत्ययः॥ अर्थः—समानकर्तृकेष्विच्छार्थेषु धातुषूपपदेषु धातोस्तुमुन् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—देवदत्त इच्छति भोक्तुम्। कामयते भोक्तुम्। वष्टि भोक्तुम्, वष्टि भोक्तुम्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*समानकर्तृकेषु*] समान है कर्त्ता जिनका, ऐसी धातुओं के उपपद रहते, धातु से [*तुमुन्*] तुमुन् प्रत्यय हो। उदा०—देवदत्त इच्छति भोक्तुम् (देवदत्त खाना चाहता है) यते भोक्तुम् (खाना चाहता है)। वाञ्छति भोक्तुम्, वष्टि उदाहरण में इच्छति, कामयते आदि इच्छार्थक धातुएँ इच्छा करने का कर्त्ता तथा खाने का कर्त्ता भी वही एक सो समानकर्तृक धातु उपपद है, अतः भुज् धातु से तुमुन् गया है। *चोः कुः* (८।२।३०) से ज् को ग् होकर तथा *खरि च* से क् होकर भोक्तुम् बना है। *कृन्मेजन्तः* (१।१।३८) से होने से *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२) से 'सु' का लुक् हो गया है।

यहाँ से '*समानकर्तृकेषु*' की अनुवृत्ति ३।३।१५९ तक जायेगी।

लिङ् च ॥३।३।१५९॥

लिङ् १।१॥ च अ०॥ *अनु०*—समानकर्तृकेषु, इच्छार्थेषु प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—समानकर्तृकेष्विच्छार्थेषु धातुपपदेषु लिङ् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—भुञ्जीय इति इच्छति। अधीयीय अभिलषति॥

भाषार्थः—समानकर्तृक इच्छार्थक धातुओं के उपपद रहते [*लिङ्*] लिङ् प्रत्यय [च] भी होता है॥ *उदा०*—भुञ्जीय इति (खाऊँ ऐसा चाहता है)। अधीयीय इति अभिलषति (पढ़ूँ ऐसा है)॥ भुञ्जीय में ३।३।१४५ सूत्र के समान सब कार्य होकर का इट् आकर *इटोऽत्* (३।४।१०६) लगकर भुञ् ईय् अ=भु गया॥ अधीयीय की सिद्धि ३।३।१३४ सूत्र पर देखें॥

यहाँ से '*लिङ्*' की अनुवृत्ति ३।३।१६० तक जायेगी॥

इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्त्तमाने ॥३।३।१६०॥

इच्छार्थेभ्यः ५।३॥ विभाषा १।१॥ वर्त्तमाने ७।१॥ अर्थो येषां ते इच्छार्थास्तेभ्यः……बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—लिङ्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—इच्छार्थेभ्यो धातुभ्यो वर्त्तमाने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ः]

प्रत्ययो भवति ॥ वर्त्तमाने काले नित्यं लटि प्राप्ते विकल्पेन लिङ् यते, अतः पक्षे लट् भवति ॥ उदा०—इच्छेत्, कामयेत, वाञ्छेत्। —इच्छति, कामयते, वाञ्छति ॥

भाषार्थः—[इच्छार्थेभ्यः] इच्छार्थक धातुओं से [वर्त्तमाने] वर्त्तमान में [विभाषा] विकल्प से लिङ् प्रत्यय होता है, पक्ष में वर्त्तमान का लट् प्रत्यय भी होता है ॥ उदा०—इच्छेत् (चाहता है) ॥ द्धि परि० ३।१।६८ के पठेत् के समान जानें। कामयेत में इतना है कि, कर्मणिङ् (३।१।३०) से, कमु धातु से णिङ् प्रत्यय तथा द आदि होकर 'कामि' धातु बनी। पुनः सब कार्य पूर्ववत् ही होकर गुण, अयादेशादि होकर 'कामय इ त = कामयेत बना। कामयते भी ऐसा ही समझें ॥

विनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ॥३।३।१६१॥

विधि·····प्रार्थनेषु ७।३॥ लिङ् १।१॥ स०—विधिश्च, निमन्त्रणञ्च, मन्त्रणञ्च अधीष्टश्च सम्प्रश्नश्च, प्रार्थनञ्च, विधिनि ··प्रार्थनानि, तेषु इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—विधिः= आज्ञादानं, प्रेरणम्। निमन्त्रणम्=नियतरूपेण आह्वानं, नियोगकरणम्। मन्त्रणं=कामचारेण आह्वानम्, आगच्छेत् वा न वा। अधीष्टः= सत्कारपूर्वकमाह्वानम्। सम्यक् प्रश्नः, सम्प्रश्नः। प्रार्थनं=याच्ञा। एष्वर्थेषु वर्त्तमानाद् धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—विधौ—ओदनं पचेत्, ग्रामं गच्छेत्। निमन्त्रणे—इहाद्य भवान् भुञ्जीत। इह भवान् आसीत। आमन्त्रणे—इह भवान् भुञ्जीत, इह भवान् आसीत। अधीष्टे—माणवकं मे भवान् उपनयेत्। सम्प्रश्ने—किन्नु खलु भो अधीयीय। प्रार्थने—भवति मे प्रार्थना व्याकरणमधीयीय ॥

भाषार्थः—[विधि·····नेष] विधि=आज्ञा देना। निमन्त्रण= इस रूप से बुलाना। आमन्त्रण=कामचार से बुलाना, आवे या न आवे। अधीष्ट=सत्कार पूर्वक व्यवहार करना। सम्प्रश्न=अच्छी प्रकार की बात कहना, जैसे कि "आप ऐसा करेंगे न"? प्रार्थना=प्रार्थना की बात कहना, इन अर्थों में वर्त्तमान धातु से [लिङ्] लिङ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—विधि में—ओदनं पचेत् (वह चावल पकाये)। ग्रामं

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

गच्छेत् (गाँव को जाये)। निमन्त्रण में—इहाद्य भवान् भुञ्जीत आप यहाँ भोजन करें)। इह भवान् आसीत (आप यहाँ आमन्त्रण में—इह भवान् भुञ्जीत, इह भवान् आसीत। माणवकं मे भवान् उपनयेत् (मेरे बालक का उपनयन आप सम्प्रश्न में—किन्नु खलु भो न्यायमधीयीय (क्या मैं न्याय पढ़ूँ)। प्रार्थना में—भवति मे प्रार्थना व्याकरणमधीयीय प्रार्थना है, कि मैं व्याकरण पढ़ूँ)॥ सिद्धियाँ कई बार पूर्व हैं, उसी प्रकार यहाँ भी जानें॥

यहाँ से *'विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु'* की ३।३।१६२ तक जायेगी॥

लोट् च ॥३।३।१६२॥

लोट् १।१॥ च अ०॥ अनु०—विधि·····'प्रार्थनेषु, धातो, परश्च॥ *अर्थः*—विधिनिमन्त्रणादिष्वर्थेषु वर्त्तमानाद् धातोर्लोट् परश्च भवति॥ उदा०—विधौ—वाराणसीं गच्छतु भवान्, करोतु। निमन्त्रणे—अद्येह भुङ्क्तां भवान्। आमन्त्रणे—इह भुङ्क्ताम्। अधीष्टे—अधीच्छामि इह भवान् मासं निवसतु। किं भवान् व्याकरणं पठतु? प्रार्थने—न्यायं पाठयतु भवान् पाठयतु भवान्॥

भाषार्थः—विधि आदि अर्थों में धातु से [लोट्] लोट् भी होता है॥ उदा०—विधि में—वाराणसीं गच्छतु भवान् वाराणसी जायें)। भोजनं करोतु (आप भोजन करें)। निमन्त्रण अद्येह भुङ्क्तां भवान् (आज आप यहाँ खायें)। आमन्त्रण भवान् भुङ्क्ताम् (यहाँ आप खायें)। अधीष्ट में—अधीच्छामि भवान् मासं निवसतु (मेरी इच्छा है कि आप यहाँ महीने भर सम्प्रश्न में—किं भवान् व्याकरणं पठतु (क्या आप व्याकरण प्रार्थना में—न्यायं पाठयतु भवान् (आप न्याय पढ़ायें यह प्रार्थ वेदं पाठयतु भवान्॥ भुङ्क्ताम् की सिद्धि ३।३।१५७ पुत्र गच्छतु में गम् शप् ति, पूर्ववत् होकर, इषुगमि० (७।३।७७) तथा छे च (६।१।७३) से तुक् आगम होकर 'ग तुक् छ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[...]

...त्व होकर गच्छ् अ ति, एरुः (३।४।८६) से इ को उ होकर गच्छतु ...गया। इसी प्रकार एरुः लगकर करोतु आदि समझें। पठ् णिजन्त से ...ट् आयेगा यही विशेष है ॥

यहाँ से 'लोट्' की अनुवृत्ति ३।३।१६३ तक जायेगी ॥

प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च ॥३।३।१६३॥

प्रैषा..... लेषु ७।३॥ कृत्याः १।३॥ च अ० ॥ स०—प्राप्तः कालः ...कालः, कर्मधारयस्तत्पुरुषः। प्रैषश्च, अतिसर्गश्च, प्राप्तकालश्च, ...कालाः, तेषु.....इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—लोट्, धातोः, ...यः, परश्च ॥ अर्थः—प्रैष, अतिसर्ग, प्राप्तकाल, इत्येतेष्वर्थेषु वर्त्त-...द् धातोः कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया भवन्ति, चकारात् लोट् च भवति ॥ ...—भवता कटः करणीयः। कटः कर्त्तव्यः, कृत्यः कार्यो वा। लोट्—...तो भवान् गच्छतु ग्रामम्। भवानतिसृष्टः गच्छतु ग्रामम्। भवतः ...कालः ग्रामं गच्छतु ॥

भाषार्थः—[प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु] प्रैष = प्रेरणा करना, अतिसर्ग = ...चार पूर्वक आज्ञा देना, प्राप्तकाल = समय आ जाना, इन अर्थों में ...तु से [कृत्याः] कृत्य संज्ञक प्रत्यय होते हैं, तथा [च] चकार से लोट् ...होता है ॥ कृत्याः (३।१।९५) से तव्य अनीयर् आदि प्रत्ययों की ...त्य संज्ञा होती है ॥ उदा०—भवता कटः करणीयः (आपको चटाई ...नी चाहिये, या आप चटाई बनावें, अथवा आपका चटाई बनाने का ...य आ गया है, आप करें)। कटः कर्त्तव्यः, कृत्यः, कार्यो वा ॥ लोट्—...तो भवान् गच्छतु ग्रामम् (हमारी प्रेरणा है कि आप ग्राम को ...वें)। भवानतिसृष्टः गच्छतु ग्रामम् (आप गाँव को जावें)। भवतः ...कालः, ग्रामं गच्छतु (आपका समय आ गया है, आप गाँव को ...वें) ॥ कार्यः में ऋहलोर्ण्यत् (३।१।१२४) से ण्यत् तथा कृत्यः में ...पा कृवृषोः (३।१।१२०) से क्यप् हुआ है, तुक् आगम ह्रस्वस्य पिति० ...१।६९) से हो ही जायेगा ॥

यहाँ से 'प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु' की अनुवृत्ति ३।३।१६५ तक ...येगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लिङ् चोर्ध्वमौहूर्त्तिके ॥३।३।१६४॥

लिङ् १।१॥ च अ० ॥ ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके ७।१॥ स०—ऊर्ध्वम् ऊर्ध्वमुहूर्त्तम्, पञ्चमीतत्पुरुषः ॥ ऊर्ध्वमुहूर्त्तं भवम्, ऊर्ध्वमौहूर्त्तिकं तस्मिन् ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके ॥ अनु०—प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रैषादिष्वर्थेषु, ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके काले कर्तरि धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति, चकाराद्यथाप्राप्तं कृत्यप्रत्ययाः, लोट् च ॥ उदा०—मुहूर्त्तस्य पश्चाद् भवान् ग्रामं गच्छेत्। मुहूर्त्तस्य पश्चाद् भवता खलु कटः करणीयः, कर्त्तव्यः, कार्यः, कृत्यो वा। मुहूर्त्तस्य पश्चाद् भवान् खलु करोतु कटम् ॥

भाषार्थः—प्रैष अतिसर्ग तथा प्राप्तकाल अर्थ गम्यमान हों [ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके] मुहूर्त्त भर से ऊपर के काल को कहने में [लिङ्] लिङ् प्रत्यय होता है, तथा [च] चकार से यथाप्राप्त कृत्य संज्ञक एवं लोट् प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—मुहूर्त्तस्य पश्चाद् भवान् ग्रामं गच्छेत् (मुहूर्त्त भर के पश्चात् आप ग्राम को जायें)। मुहूर्त्तस्य पश्चाद् भवता खलु कटः करणीयः (मुहूर्त्त भर के पश्चात् आप चटाई बनावें)। शेष उदाहरण संस्कृतानुसार जानें ॥ एक ही उदाहरण में प्रैष, अतिसर्ग प्राप्तकाल कोई भी अर्थ विवक्षा से लगाया जा सकता है, हमने एक ही अर्थ दिखा दिया है ॥

यहाँ से 'ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके' की अनुवृत्ति ३।३।१६५ तक जायेगी।

स्मे लोट् ॥३।३।१६५॥

स्मे ७।१॥ लोट् १।१॥ अनु०—ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके, प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—स्मशब्द उपपदे प्रैषादिष्वर्थेषु गम्यमानेषु, ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके काले, धातोर्लोट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मुहूर्त्तात् भवान् कटं करोतु स्म, ग्रामं गच्छतु स्म ॥

भाषार्थः—प्रैषादि अर्थ गम्यमान हों तो मुहूर्त्त भर से ऊपर के काल को कहने में [स्मे] स्म शब्द उपपद रहते धातु से [लोट्] प्रत्यय होता है ॥ उदा०—ऊर्ध्वं मुहूर्त्तात् भवान् कटं करोतु स्म (मुहूर्त्त भर के पश्चात् आप चटाई बनावें) ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'स्मे लोट्' की अनुवृत्ति ३।३।१६६ तक जायेगी ॥

अधीष्टे च ॥३।३।१६६॥

अधीष्टे ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—स्मे लोट्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अधीष्टे गम्यमाने स्मशब्द उपपदे धातोर्लोट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अधीच्छामि भवान् माणवकम् अध्यापयतु। अङ्ग स्म राजन् अग्निहोत्रं जुहुधि ॥

भाषार्थः—[अधीष्टे] अधीष्ट = सत्कार गम्यमान हो तो [च] भी स्म शब्द उपपद रहते धातु से लोट् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अधीच्छामि भवान् माणवकम् अध्यापयतु (मैं सत्कार पूर्वक इच्छा करता हूँ कि आप बालक को पढ़ावें)। अङ्ग स्म राजन् अग्निहोत्रं जुहुधि (हे राजन् आप अग्निहोत्र का अनुष्ठान करें) ॥

कालसमयवेलासु तुमुन् ॥३।३।१६७॥

कालसमयवेलासु ७।३॥ तुमुन् १।१॥ स०— कालश्च समयश्च वेला च = काल····· वेलास्तासु, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—काल, समय, वेला इत्येतेषूपपदेषु धातोस्तुमुन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कालो भोक्तुम्, समयो भोक्तुम्, वेला भोक्तुम् ॥

भाषार्थः—[कालसमयवेलासु] काल, समय, वेला ये शब्द उपपद रहते धातु से [तुमुन्] तुमुन् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—कालो भोक्तुम् (खाने का समय हो गया है)। समयो भोक्तुम्, वेला भोक्तुम् ॥

यहाँ से 'कालसमयवेलासु' की अनुवृत्ति ३।३।१६८ तक जायेगी ॥

लिङ् यदि ॥३।३।१६८॥

लिङ् १।१॥ यदि ७।१॥ अनु०—कालसमयवेलासु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कालादिषूपपदेषु यच्छब्दपूर्वाद् धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कालो यद् भुञ्जीत भवान्, समयो यद् भुञ्जीत भवान्, वेला यद् भुञ्जीत भवान् ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—काल, समय, वेला, शब्द उपपद रहते [यदि] क्रि पूर्व में हो तो धातु से [*लिङ्*] लिङ् प्रत्यय होता है॥ उदा०—य यद् भुञ्जीत भवान् (समय है कि आप भोजन करें)॥

यहाँ से '*लिङ्*' की अनुवृत्ति ३।३।१६९ तक जायेगी॥

अर्हे कृत्यतृचश्च ॥३।३।१६९॥

अर्हे ७।१॥ कृत्यतृचः १।३॥ च अ० ॥ *स०*—कृत्याश्च तृच् च कृ तृचः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—लिङ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ *अ* अर्हे = योग्ये कर्त्तरि वाच्ये धातोः कृत्यतृचः प्रत्यया भवन्ति, रा राद् लिङ् च ॥ *उदा०*—भवता खलु पठितव्या विद्या, पाठ्या, प वा। तृच्—पठिता विद्याया भवान्। भवान् विद्यां पठेत्॥

भाषार्थः—[अर्हे] अर्ह = योग्य कर्त्ता वाच्य हो तो धातु से [कृ तृचः] कृत्य संज्ञक तथा तृच् प्रत्यय हो जाते हैं, तथा [च] चकार से भी होता है॥ उदा०—कृत्य—भवता खलु पठितव्या विद्या (आप पढ़ने के योग्य हैं)। तृच्—पठिता विद्याया भवान् (आप विद्या के योग्य हैं)। भवान् विद्यां पठेत् ॥ पठिता की सिद्धि परि० शा चेता के समान जानें, शेष सिद्धियाँ पूर्व सूत्रों के अनुसार हैं॥

आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः ॥३।३।१७०॥

आवश्यकाधमर्ण्ययोः ७।२॥ णिनिः १।१॥ *स०*—आवश्य आधमर्ण्यञ्च आवश्यकाधमर्ण्ये, तयोः……इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु* धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अवश्यं भाव आवश्यकं, द्वन्द्वमनोज्ञादिभ (५।१।१३२) वुञ्॥ *अर्थः*—अवश्यंभावविशिष्टे, आधमर्ण्यविशि कर्त्तरि वाच्ये धातोर्णिनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—धर्मोपदेशी, स्नायी, अवश्यङ्कारी। आधमर्ण्ये—शतं दायी, सहस्रं दायी,

भाषार्थः—[*आवश्यकाधमर्ण्ययोः*] आवश्यक और आधमर्ण्य लेने वाला) विशिष्ट कर्त्ता वाच्य हो तो धातु से [*णिनिः*] णिनि होता है॥ उदा०—धर्मोपदेशी (अवश्य ही धर्म का उपदेश देने प्रातःस्नायी (नित्य प्रातः स्नान करने वाला) अवश्यङ्कारी (अवश्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

वाला)। आधमर्ण्य में—शतं दायी (सौ रुपये का ऋणी) सहस्रं दायी, निष्कं दायी (एक प्रकार के सिक्के का ऋणी) ॥

उदाहरण में णिनि प्रत्यय होकर सौ च (६।४।१३) से दीर्घ, हल्ङ्या-ब्भ्यो० (६।१।६६) से सु का लोप तथा नलोपः प्रा० (८।२।७) से नकार लोप हो जायगा। दायी में आतो युक् चिण्कृतोः (७।३।३३) से युक् आगम भी होता है ॥ सहस्रं शतं आदि में कर्त्तृकर्मणोः कृति (२।३।६५) से कर्म में षष्ठी प्राप्त थी, उसका अकेनोर्भ० (२।३।७०) से निषेध हो गया, तो कर्म में द्वितीया यथा प्राप्त हो गई है। षष्ठी विभक्ति न होने से षष्ठी समास भी नहीं हुआ ॥

यहाँ से 'आवश्यकाधमर्ण्ययोः' की अनुवृत्ति ३।३।१७१ तक जायेगी ॥

कृत्याश्च ॥३।३।१७१॥

कृत्याः १।३॥ च अ० ॥ अनु०—आवश्यकाधमर्ण्ययोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आवश्यकाधमर्ण्यविशिष्टेऽर्थे धातोः कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया अपि भवन्ति ॥ उदा०—भवता खलु अवश्यं कटः कर्त्तव्यः, करणीयः, कार्यः, कृत्यः। आधमर्ण्ये—भवता शतं दातव्यम्, सहस्रं देयम् ॥

भाषार्थः—आवश्यक और आधमर्ण्य विशिष्ट अर्थ हों तो धातु से [कृत्याः] कृत्यसंज्ञक प्रत्यय [च] भी हो जाते हैं ॥ उदा०—भवता खलु अवश्यं कटः कर्त्तव्यः (आपको अवश्य चटाई बनानी चाहिये)। आधमर्ण्य में—भवता शतं दातव्यम् (आपको सौ रुपये देने हैं) ॥

यहाँ से 'कृत्याः' की अनुवृत्ति ३।३।१७२ तक जायेगी ॥

शकि लिङ् च ॥३।३।१७२॥

शकि ७।१॥ लिङ् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—कृत्याः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—शक्यार्थविशिष्टे धात्वर्थे धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति, चकारात् कृत्याश्च ॥ उदा०—भवान् शत्रुं जयेत्, भवता शत्रुर्जेतव्यः ॥

भाषार्थः—[शकि] शक्यार्थ गम्यमान हो तो धातु से [लिङ्] लिङ् प्रत्यय होता है, तथा [च] चकार से कृत्य संज्ञक प्रत्यय भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

होते हैं ॥ उदा०—भवान् शत्रुं जयेत् (आप शत्रु को जीत सकें) भवता शत्रुर्जेतव्यः (आपके द्वारा शत्रु जीता जा सकता है)॥

आशिषि लिङ्लोटौ ॥ ३।३।१७३॥

आशिषि ७।१॥ लिङ्लोटौ १।२॥ स०—लिङ्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आशिषि गम्यमानायां धातोः परौ लिङ्लोटौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—चिरं जीव्याद् भवान्, चिरं जीवतु भवान् ॥

भाषार्थः—[आशिषि] आशीर्वाद गम्यमान हो तो धातु से [लिङ्लोटौ] लिङ् तथा लोट् प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—चिरं जीव्याद् भवान् (आप खूब जीवें) चिरं जीवतु भवान् ॥ जीव् यासुट् सुट् तिप्=जीव् यास् स् त् रहा। स्कोः संयोगाद्योरन्ते च (८।२।२९) से यास् के स् का लोप हुआ। पुनः इसी सूत्र से सुट् के स् का लोप होकर जीव्याद् बन गया ॥ जीवतु की सिद्धि सूत्र ३।३।१६२ के समान ही जानें॥

यहाँ से 'आशिषि' की अनुवृत्ति ३।३।१७५ तक जायेगी॥

क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् ॥३।३।१७४॥

क्तिच्क्तौ १।२॥ चं अ० ॥ संज्ञायाम् ७।१॥ स०—क्तिच्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—आशिषि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आशिषि विषये संज्ञायां सत्यां क्तिच्क्तौ च प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—हस्तिः (लोट्) तन्तिः, सनुतात् = सातिः, भवतात् = भूतिः। क्त—देयासुः (लिङ्) देवदत्तः ॥

भाषार्थः—आशीर्वाद विषय में [संज्ञायाम्] संज्ञा गम्यमान हो पर धातु से [क्तिच्क्तौ] क्तिच् और क्त प्रत्यय [च] भी होते हैं ॥

माङि लुङ् ॥३।३।१७५॥

माङि ७।१॥ लुङ् १।१ ॥ अनु०—आशिषि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ मण्डूकप्लुतगत्या 'लिङ्लोटौ' इत्यप्यनुवर्त्तते ॥ अर्थः- माङ्युपपदे धातोः परो लुङ् प्रत्ययः, आशिषि विषये लिङ्लोटौ च प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कार्षीत्। मा हार्षीत्। लिङ्—मा हन्यात्। लोट्—मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि (गी० अ० २ श्लोक ४७) ॥

भाषार्थः—[माङि] माङ् शब्द उपपद हो तो धातु से [लुङ्] लुङ् प्रत्यय तथा आशीर्वाद विषय में लिङ् लोट् प्रत्यय भी होते हैं॥ उदा०—मा कार्षीत् (मत करे) मा हार्षीत्। लिङ्—मा हन्यात् (मत मारे)। लोट्—मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि (तेरा अकर्म में सङ्ग न हो) ॥ *न माङ्योगे* (६।४।७४) से कार्षीत् हार्षीत् में अट् का आगम नहीं हुआ है, शेष सिद्धि परि० १।१।१ में देखें। हन्यात् की सिद्धि यासुट् आदि होकर पूर्ववत् ही जानें। अस्तु की सिद्धि अस् शप् तिप् होकर *एरुः* (३।४।८६) तथा *अदिप्रभृतिभ्यः शपः* (२।४।७२) लगकर जानें ॥

यहाँ से '*माङि लुङ्*' की अनुवृत्ति ३।३।१७६ तक जायेगी ॥

स्मोत्तरे लङ् च ॥३।३।१७६॥

स्मोत्तरे ७।१॥ लङ् १।१॥ च अ० ॥ *स०*—स्मशब्द उत्तरो यस्मात् स स्मोत्तरः, तस्मिन्·····बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—माङि लुङ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—स्मशब्दोत्तरे माङ् युपपदे धातोर्लङ् प्रत्ययो भवति, चकारात्लुङ् च ॥ उदा०—मा स्म करोत्, मा स्म कार्षीत्, मा स्म हरत्, मा स्म हार्षीत् ॥

भाषार्थः—[स्मोत्तरे] स्म शब्द परे हो ऐसे, माङ् शब्द के उपपद रहते धातु से [लुङ्] लङ् तथा [च] चकार से लुङ् प्रत्यय होते हैं॥ उदा०—मा स्म करोत् (वह न करे)। मा स्म कार्षीत्। मा स्म हरत् (वह मत ले जावे)। मा स्म हार्षीत् ॥ सिद्धियों में अट् आगम का अभाव भी पूर्ववत् ही जानें ॥

॥ *इति तृतीयः पादः* ॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

चतुर्थः पादः

धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः ॥३।४।१॥

धातुसम्बन्धे ७।१॥ प्रत्ययाः १।३॥ स०—धातोरर्थः धात्वर्थः, धात्वर्थानां सम्बन्धः, धातुसम्बन्धस्तस्मिन्·····मध्यमपदलोपी, षष्ठीतत्पुरुषः। अर्थशब्दस्य लोपोऽत्र भवति ॥ अर्थः—धात्वर्थसम्बन्धे सति, [ये] कालोक्ताः, भिन्नकालोक्ताः, प्रत्यया अपि कालान्तरे साधवो [भवन्ति]। उदा०—अग्निष्टोमयाजी, अस्य पुत्रो जनिता। कृतः कटः श्वो भविता।

भाषार्थः—[*धातुसम्बन्धे*] धातु के अर्थ मात्र का सम्बन्ध होने पर भिन्न काल में विहित [*प्रत्ययाः*] प्रत्यय भी कालान्तर में साधु होते हैं। अर्थ शब्द का लोप करके धातु शब्द से यहाँ धात्वर्थ का ग्रहण किया गया है ॥ उदाहरण 'अग्निष्टोमयाजी' में, यज धातु से भूत काल में करणे यजः (३।२।८५) से 'णिनि' प्रत्यय हुआ है (वहाँ भूते अर्थ की अनुवृत्ति है)। जनिता में जन धातु से अनद्यतन भविष्यत् काल में लुट् (३।३।१५) प्रत्यय हुआ है, सो णिनि तथा लुट् भिन्नकालोक्त प्रत्यय हैं, जो कि इस सूत्र से साधु माने गये। अग्निष्टोमयाजी और जनिता का विशेषण विशेष्य भाव से, यहाँ धात्वर्थ सम्बन्ध है, सो [ये] कालोक्त णिनि प्रत्ययान्त अग्निष्टोमयाजी (विशेषण होने से) अपने काल को छोड़कर 'जनिता' के भविष्यत् काल को ही कहने लगा, सो अर्थ हुआ, "अग्निष्टोम यज्ञ करेगा, ऐसा पुत्र उसका होगा"। इसी प्रकार कृतः में क्त भूत काल (३।२।८४) में तथा भविता में लुट् भविष्यत् काल में है, विशेषण-विशेष्य भाव से दोनों का धात्वर्थ सम्बन्ध है, सो भिन्नकालोक्त क्त और लुट् भी साधु माने गये। कृतः अपना भूत काल छोड़ कर भविता के भविष्यत् काल को ही कहने लगा, सो अर्थ हुआ, "चटाई बनी यह बात कल होगी" ॥

यहाँ से '*धातुसम्बन्धे*' की अनुवृत्ति ३।४।६ तक जायेगी ॥

क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः ॥३।४।२॥

क्रियासमभिहारे ७।१॥ लोट् १।१॥ लोटः ६।१॥ हिस्वौ १।२॥ वा अ० च अ०॥ तध्वमोः ६।२॥ समभिहरणं समभिहारः भावे (३।३।१८) घञ्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

ध्वम्॥ स०—क्रियायाः समभिहारः, क्रियासमभिहारः, तस्मिन्···षष्ठी-तत्पुरुषः। हि च स्व च, हिस्वौ, इतरेतरद्वन्द्वः। त च ध्वम् च तध्वमौ, तयोः···इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—धातुसम्बन्धे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—क्रियासमभिहारे गम्यमाने धात्वर्थसम्बन्धे सर्वस्मिन् काले, सर्वोपपदापवादो धातोर्लोट् प्रत्ययो भवति तस्य लोटः स्थाने नित्यं हिस्वौ, 'आदेशौ' भवतः, तध्वम्भाविनस्तु लोटः स्थाने वा हिस्वावादेशौ भवतः, पक्षे तध्वमावेव तिष्ठतः॥ उदा०—स भवान् लुनीहि लुनीहि इत्येवायं लुनाति। तौ भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इतीमौ लुनीतः। ते भवन्तो लुनीहि लुनीहि इतीमे लुनन्ति। त्वं लुनीहि लुनीहि इति लुनासि, युवां लुनीहि २ इति युवां लुनीथः। यूयं लुनीहि २ इति यूयं लुनीथ॥ *तध्वम्विषये* = लोट् मध्यमबहुवचनविषये हिस्वौ वा भवतः, अतः पक्षे—'यूयं लुनीत लुनीत इति यूयं लुनीथ' इत्यवतिष्ठते। अहं लुनीहि लुनीहि इत्येवाहं लुनामि, आवां लुनीहि २ इति लुनीवः, वयं लुनीहि लुनीहि इति लुनीमः॥ भूतविषये—स भवान् लुनीहि लुनीहि इति अलावीत्। तौ भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति अलाविष्टाम्। ते भवन्तो लुनीहि लुनीहि इति अलाविषुः। त्वं लुनीहि लुनीहि इति अलावीः। युवां लुनीहि लुनीहि इति अलाविष्टम्। यूयं लुनीहि लुनीहि इति अलाविष्ट॥ तध्वम् विषये हिस्वौ वा भवतः, अतः पक्षे 'त' अवतिष्ठते—यूयं लुनीत लुनीत इति यूयम् अलाविष्ट। अहं लुनीहि लुनीहि इति अलाविषम्। आवां लुनीहि लुनीहि इति अलाविष्व। वयं लुनीहि लुनीहि इति अलाविष्म॥ भविष्यद्विषये—स भवान् लुनीहि लुनीहि इति लविष्यति। तौ भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति लविष्यतः। ते भवन्तो लुनीहि लुनीहि इति लविष्यन्ति। त्वं लुनीहि लुनीहि इति लविष्यसि। युवाम् लुनीहि लुनीहि इति लविष्यथः। यूयं लुनीहि लुनीहि इति लविष्यथ॥ तध्वम् विषये पक्षे 'त' अवतिष्ठते—यूयं लुनीत लुनीत इति लविष्यथ। अहं लुनीहि लुनीहि इति लविष्यामि। आवां लुनीहि लुनीहि इति लविष्यावः। वयं लुनीहि लुनीहि इति लविष्यामः॥ लादेशविषये—स भवान् अधीष्व अधीष्व इत्येवायमधीते। तौ भवन्तौ अधीष्व अधीष्व इतीमावधीयाते। ते भवन्तोऽधीष्व अधीष्व इतीमे अधीयते। त्वमधीष्व अधीष्व इत्यधीषे। युवामधीष्व अधीष्व इत्य-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

धीयाथे। यूयम् अधीष्व अधीष्व इति अधीध्वे। त, ध्वम् विषये विकल्प्येते, अतोऽत्र पक्षे ध्वम्—यूयमधीध्वमधीध्वमिति अधीध्वे। मधीष्व अधीष्व इत्यधीये। आवामधीष्व अधीष्व इत्यधीवहे। वयमधीष्वाऽधीष्व इत्यधीमहे। *भूतविषये*—स भवान् अधीष्व अधीष्व इत्यध्यगीष्ट। एवं सर्वत्र सर्वेषु पुरुषेषु वचनेषु चोदाहार्यम्। पक्षे—यूयमधीध्वमधीध्वमिति अध्यगीषथ। *भविष्यद्विषये*—स अधीष्व अधीष्व इति अध्येष्यते। एवं सर्वत्र सर्वेषु पुरुषेषु चोदाहार्यम्। ध्वम्विषये पक्षे—यूयमधीध्वमधीध्वमिति अध्येष्यध्वे।

भाषार्थः—[*क्रियासमभिहारे*] क्रियासमभिहार=क्रिया का पुन्य गम्यमान हो तो धातु से धात्वर्थ सम्बन्ध होने पर सब सब लकारों का अपवाद [*लोट्*] लोट् प्रत्यय हो जाता है, और [*लोटः*] लोट् के स्थान में (सब पुरुषों तथा वचनों में) [*हि*] और स्व आदेश नित्य होते हैं, [*च*] तथा [*तध्वमोः*] त, ध्व लोट् के स्थान में [*वा*] विकल्प से हि, स्व आदेश होते हैं, त ध्वम् ही रहते हैं॥

यहाँ परस्मैपदी धातुओं के लोट् को 'हि' आदेश तथा आत्म धातुओं के लोट् को स्व आदेश होता है। सो कैसे? यह व्याख्या द्वितीयावृत्ति आदि में पता लगेगा॥

तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः (३।४।१०१) से थस् को त परस्मैप होता है, उस 'त' का प्रकृत सूत्र में ग्रहण है, सो इस सूत्र से परस्मैपद में विकल्प से हि आदेश होगा। पक्ष में 'त' का रूप ध्वम् आत्मनेपद का प्रत्यय है, सो आत्मनेपद में विकल्प से आदेश होकर पक्ष में ध्वम् का रूप भी रहेगा॥ क्रियासमभि दिखाने के लिए यहाँ सर्वत्र द्वित्व करके 'लुनीहि, लुनीहि' ऐसा नि है। लुनीहि लुनीहि या अधीष्व अधीष्व के पश्चात् 'इत्येवायं लु या इत्येवायमधीते' इत्यादि का अनुप्रयोग यह दर्शाने के लिये गया है, कि लुनीहि लुनीहि आदि किस काल किस पुरुष या लि के प्रयोग हैं, तथा धात्वर्थ का कैसे सम्बन्ध है॥ उदा०—स लुनीहि लुनीहि इत्येवायं लुनाति (वह या आप बार बार काटो इसी प्रकार सब पुरुषों एवं वचनों में संस्कृत भाग के अनुसार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

रण जानें ॥ *भूत विषय में*—स भवान् लुनीहि लुनीहि इत्यलावीत् (उसने या आपने बार बार काटा)। इसी प्रकार सब पुरुषों एवं वचनों में पूर्ववत् जानें ॥ *भविष्यद् विषय में*—स भवान् लुनीहि लुनीहि इति लविष्यति (वह या आप बार बार काटेंगे) इसी प्रकार औरों में जानें ॥

'स्व' आदेश विषय में—स भवान् अधीष्व अधीष्व इत्येवायमधीते (वह या आप बार बार पढ़ते हैं)। इसी प्रकार औरों में जान लें ॥ *भूत विषय में*—स भवान् अधीष्व अधीष्व इत्यध्यगीष्ट (उसने या आपने बार बार पढ़ा)। इसी प्रकार पूर्ववत् औरों में जानें ॥ *भविष्यद् विषय में*—स भवान् अधीष्व अधीष्व इत्यध्येष्यते (वह या आप बार बार पढ़ेंगे) ॥

यह लोट् प्रत्यय सब लकारों का अपवाद है, अतः सब लकारों के सब पुरुषों के सब वचनों में इनके उदाहरण समझने चाहियें, सम्पूर्ण उदाहरण दिखाना कठिन है। हि, स्व आदेश होकर रूप तो एक ही जैसे बनेंगे, सो समझ लें ॥ सिद्धि में भी कुछ विशेष नहीं है। 'लू लोट्' लोट् को हि आदेश होकर 'लू हि' रहा। शेष सिद्धि परि० ३।३।१४ में देख लें। अधि इङ् स्व = *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९) से षत्व, एवं सवर्ण दीर्घ होकर अधीष्व बन गया ॥

यहाँ से "*लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः*" की अनुवृत्ति ३।४।३ तक जायेगी ॥

समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ॥३।४।३॥

समुच्चये ७।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ अनु०—लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः, धातुसम्बन्धे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—समुच्चीयमानक्रियावचनाद् धातोः धातुसम्बन्धे काल सामान्ये सर्वलकाराणामपवादो लोट् प्रत्ययो विकल्पेन भवति, तस्य च लोटः स्थाने हिस्वावादेशौ भवतस्तध्वंभाविनस्तु वा हिस्वौ भवतः ॥ *उदा०*—भ्राष्ट्रमट, मठमट, खदूरमट, स्थाल्यपिधानमट, इत्येवायमटति। एवं सर्वेषु पुरुषेषु वचनेषु चोदाहार्यम्। तध्वम्भाविनस्तु मध्यमपुरुषबहुवचनपक्षे—भ्राष्ट्रमटत, मठमटत स्थाल्यपिधानमटत, इत्येव यूयमटथ। अन्यतरस्यां ग्रहणेन पक्षे सर्वे लकाराः स्वस्वविषये भवन्ति। तद्यथा—भ्राष्ट्रमटति, मठमटति, खदूरमटति स्था-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ल्यपिधानमटति, इत्येवायमटति। *भविष्यद् विषये*—भ्राष्ट्रमट, खदूरमट, स्थाल्यपिधानमट इत्येवाटिष्यसि। पक्षे—भ्राष्ट्र मठमटिष्यसि, इत्यादयः प्रयोगा ज्ञेयाः॥ एवं भूतविषयेऽपि

स्वादेशविषये—छन्दोऽधीष्व, व्याकरणमधीष्व, निरु इत्येवायमधीते। एवं सर्वेषु लकारेषु सर्वेषु पुरुषेषु सर्वेषु व दाहार्यम्। अन्यतरस्यां ग्रहणेन पक्षे सर्वे लकारा भवन्ति, तेन व्याकरणमधीते, निरुक्तमधीते इत्येवायमधीते, इत्यादयोऽपि *ध्वम्विषयेऽपि पक्षे*—छन्दोऽधीध्वं व्याकरणमधीध्वं निरुक्तमधी यूयमधीध्वे, इत्यादयः सर्वेषु लकारेषु ज्ञेयाः। एवं वेदावयव सेवस्व, मृदु वद, प्रातः स्नाहि इत्येवायं करोति, करिष्यति, वा इत्यादिकमपि ज्ञेयम्॥

भाषार्थः—[*समुच्चये*] समुच्चीयमान क्रिया को कहने से सामान्य काल में सब लकारों का अपवाद लोट् प्रत्यय [*रस्याम्*] विकल्प से होता है, और उस लोट् के स्थान में हि आदेश होते हैं, पर त ध्वम् भावी लोट् को विकल्प से हि, त होते हैं, पक्ष में त ध्वम् की ही श्रुति होती है॥

जहाँ अनेक क्रियाओं को कहा जाये कि यह भी कर, वह वह क्रियाओं का समुच्चय होता है॥ हि आदेश परस्मैपद में आदेश आत्मनेपद में होगा, यह सब पूर्ववत् ही जानें॥ उदा मट, मठमट, खदूरमट, स्थाल्यपिधानमट, इत्येवायमटति (भाड़ है, मठ को जाता है, कमरे में जाता है, बटलोई धोकर जहाँ वहाँ जाता है)। इसी प्रकार सारे उदाहरण संस्कृत भाग से जान लें॥ *स्व आदेश विषय में*—छन्दोऽधीष्व, व्याकरणमधी क्तमधीष्व इत्येवायमधीते (वेद पढ़ता है, व्याकरण पढ़ता है पढ़ता है, यह सब पढ़ता है)। इसी प्रकार अन्य उदाहरण विकल्प से लोट् विधान करने से यहाँ पक्ष में सब लकार होंगे, कालत्रय में होता है, सो सब लकारों में लोट् होगा। ये सब स्वयं जान लेना चाहिये, विस्तार भय से सारे नहीं दिखाये॥

सिद्धि में अट धातु से आये लोट् प्रत्यय को 'हि' आदेश होने *अतो हेः* (६।४।१०५) से लुक् हो गया है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् ॥३।४।४॥

यथाविधि अ० ॥ अनुप्रयोगः १।१॥ पूर्वस्मिन् ७।१॥ अनु०—तिङः ॥ *अर्थः*—पूर्वस्मिन् लोड्विधाने यथाविधि = यस्माद्धातोर्लोड् विधीयते तस्यैव धातोरनुप्रयोगः कर्त्तव्यः ॥ *उदा०*—स, भवान् लुनीहि इति लुनाति, इत्यत्र 'लुनातीति' अनुप्रयुज्यते, पर्यायवाची छिनत्तीति नानुप्रयुज्यते । एवं सर्वत्र ॥

भाषार्थः—[*पूर्वस्मिन्*] पूर्व के लोट् विधायक *क्रियासम०* (३।४।२) सूत्र में [*यथाविधि*] यथाविधि अर्थात् जिस धातु से लोट् विधान किया हो पीछे = पश्चात् उसी धातु का [*अनुप्रयोगः*] अनुप्रयोग होता है ॥ यथा लुनीहि में लू धातु से लोट् विहित है, तो पश्चात् लुनाति का ही अनुप्रयोग होगा, पर्यायवाची 'छिनत्ति' का नहीं, ऐसा सर्वत्र जानें ॥

यहाँ से '*अनुप्रयोगः*' की अनुवृत्ति ३।४।५ तक जायेगी ॥

समुच्चये सामान्यवचनस्य ॥३।४।५॥

समुच्चये ७।१॥ सामान्यवचनस्य ६।१॥ सर्वासां समुच्चितानां क्रियाणां येनैकेन प्रयोगेणार्थो गम्यते तत्सामान्यवचनम् ॥ अनु०—अनुप्रयोगः, धातोः ॥ *अर्थः*—समुच्चये सामान्यवचनस्य धातोरनुप्रयोगः कर्त्तव्यः ॥ *उदा०*—ओदनं भुङ्क्ष्व, सक्तून् पिब, धानाः खाद, इत्यभ्यवहरति । वेदानधीष्व, सत्यं वद, अग्निहोत्रं जुहुधि, सत्पुरुषान् सेवस्व, धर्मं करोति करिष्यति अकार्षीद् वा ॥

भाषार्थः—[*समुच्चये*] समुच्चय में, अर्थात् *समुच्चयेऽन्य०* से जहाँ [*सामान्यवचनस्य*] सामान्यवचन धातु का अनुप्रयोग होता है ॥ समुच्चय होने से उदाहरण में भुङ्क्ष्व, पिब, खाद आदि सभी धातुओं का अनुप्रयोग होना चाहिए था, सामान्यवचन अर्थात् किसी एक ऐसी धातु का अनुप्रयोग जिसमें समुच्चीयमान सारी धातुओं का अर्थ हो) धातु का अनुप्रयोग विधान कर दिया है ॥ *उदा०*—ओदनं भुङ्क्ष्व सक्तून् पिब, धानाः खाद इत्यभ्यवहरति (चावल खाता है, सत्तू पीता है, धान खाता है, यह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सब खाता है) वेदानधीष्व, सत्यं वद, अग्निहोत्रं जुहुधि सेवस्व, एवं धर्मं करोति, करिष्यति, अकार्षीद् वा (वेद पढ़ता बोलता है, हवन करता है, सत्पुरुषों का सेवन करता है, धर्म करता है, करेगा, या किया) ॥ उदाहरण में अभ्यवहरति खाना, पीना, चूसना, चाटना आदि सभी सामान्य रूप उसका अनुप्रयोग कर दिया, तो भुङ्क्ते पिबति इत्यादि के अनुप्रयोग की आवश्यकता नहीं रही। इसी प्रकार करोति सामान्य है, वह सभी क्रियाओं में रहती है सो अधीते अलग-अलग अनुप्रयोग न करके करोति सामान्य का कर दिया ॥

छन्दसि लुङ्लङ्लिटः ॥३।४।६॥

छन्दसि ७।१॥ लुङ्लङ्लिटः १।३॥ स०—लुङ्० इत्यत्रेतरेत अनु०—धातुसम्बन्धे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च। अन्यतरस्यांकि वर्त्तते मण्डूकप्लुतगत्या ॥ अर्थः—वेदविषये धात्वर्थसम्बन्धे तरस्यां कालसामान्ये लुङ् लङ् लिट् इत्येते प्रत्यया भवन्ति॥ देवो देवेभिरागमत् (ऋ० १।१।५) अत्र लडर्थे लुङ्। लङ्-अ कोऽकरत्। अहं तेभ्योऽकरं नमः (य० १६।८)। लिट्-अहन्नहिम (ऋ० १।३२।१) ततर्द इत्यत्र वर्त्तमानकाले लिट्। त्वष्टाऽसै ततक्ष (ऋ० १।३२।२)। अत्रापि वर्त्तमानकाले लिट्। पश्य देव न ममार न जीर्यति (अथ० १०।८।३२) ममार इत्यत्र लिट्। अद्या ममार स ह्यः समान (ऋ० १०।५५।५) स ह्यः (य० १३।४) पक्षे—अद्य म्रियते ॥

भाषार्थः—[छन्दसि] वेद विषय में धात्वर्थ सम्बन्ध विकल्प से [लुङ्लङ्लिटः] लुङ् लङ् तथा लिट् प्रत्यय लुङ् सामान्य भूत, लङ् अनद्यतन भूत तथा लिट् परोक्ष भूत होते हैं, परन्तु वेद में यह लकार सामान्य काल में जाते हैं ॥

विशेषः—वेद के अर्थ समझने में यह सूत्र विशेष का है लुङ् लङ् लिट् लकार देखकर भूतकाल का ही

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[द्वः]

लिया जा सकता, परन्तु ऊपर दिये उदाहरणों के समान वर्त्तमान, भविष्यत्, भूत सभी अर्थ निकलते हैं ॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।४।१७ तक जायेगी ॥

लिङर्थे लेट् ॥३।४।७॥

लिङर्थे ७।१॥ लेट् १।१॥ स०—लिङोऽर्थः, लिङर्थस्तस्मिन्·····षष्ठी-तत्पुरुषः ॥ अनु०—छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये धातोर्लिङर्थे लेट् प्रत्ययो भवति ॥ हेतुः हेतुमद् विध्यादयश्च (३।३।१५६, १६१) लिङोऽर्थाः ॥ उदा०—जोषिषत्, तारिषत्, मन्दिषत्। यो यो नः प्रचोदयात् (ऋ० ३।६२।१०) सविता धर्म साविषत् (यजु० ५,१८।३०) ॥

भाषार्थः—वेद विषय में [*लिङर्थे*] लिङ् के अर्थ में धातु से [द्वि] लेट् प्रत्यय होता है, और वह परे होता है ॥

लेट् लकार में सिद्धि विस्तार से परि० ३।१।३४ में देखें। प्र पूर्वक षू प्रेरणे ण्यन्त धातु से लेट् में प्रार्थना अर्थ में पूर्ववत् प्रचोदयात् की सिद्धि जानें। षू प्रेरणे से साविषत् बनेगा ॥

यहाँ से 'लेट्' की अनुवृत्ति ३।४।८ तक जायेगी ॥

उपसंवादाशङ्कयोश्च ॥३।४।८॥

उपसंवादाशङ्कयोः ७।२॥ च अ० ॥ स०—उपसंवादश्च आशङ्का च उपसंवादाशङ्के, तयोः·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—लेट्, छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसंवादः = पणबन्धः, व्यवहारे परस्परं पणम्। कारणं दृष्ट्वा कार्याद्भयमाशङ्का। उपसंवादे आशङ्कायाञ्च गम्यमानायां छन्दसि विषये धातोर्लेट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—हरां च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा (य० ३।५०)। आशङ्का-नेज्जिह्मायन्तो नरकं पताम (ऋ० खिल० १०।१०६।१)।

भाषार्थः—[*उपसंवादाशङ्कयोः*] उपसंवाद तथा आशङ्का गम्यमान हों [त्र] भी धातु से वेदविषय में लेट् प्रत्यय होता है ॥ उपसंवाद = पणबन्ध

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

को कहते हैं अर्थात् 'तू ऐसा करे तो मैं भी ऐसा करूँ' ऐसा परस्पर कहना ॥ उदा०—निहारञ्च हरासि मे निहारं निहरामि ते (तू मुझको क्रेतव्य वस्तु दे तो मैं तुझको भी दूँ) ॥ हरासि=हर [मे] मह्यं [निहारम्] पदार्थमूल्यम् [नि] नितराम् [ह प्रयच्छानि ॥ (देखो द० भा० य० ३।५०) ॥ आशङ्का में—नेज्जि नरकं पताम (कुटिल आचरण करते हुए कहीं हम नरक में गिरें) ॥ निहारञ्च हरासि उदाहरण में उपसंवाद गम्यमान है हर धातु से लेट् लकार हो गया है ॥ सिद्धि परि० ३।१।३४ में समान जानें ॥ इसी प्रकार नेज्जिह्मायन्तो (नि० १।११)=कुटिल से नरक पात की आशङ्का हो रही है, सो पत धातु से लेट् ल 'पताम' बन गया है ॥ सिद्धि उत्तम पुरुष में पूर्ववत् समझें ॥

तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन् शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः ॥३।४।९॥

तुमर्थे ७।१॥ से·····वेनः १।३॥ स०—तुमुनः अर्थ, ष षष्ठीतत्पुरुषः। सेसेन० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—छन्दसि, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—धातोः छन्दसि विषये तुमर्थे से असे, असेन्, क्से, कसेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यैन्, तवै, तवेङ्, तवेन् इत्येते प्रत्यया भवन्ति ॥ तुमर्थो उदा०—से-वक्षे रायः। सेन्-ता वामेषे रथानाम् (ऋ० १।६६।१) असेन्-क्रत्वे दक्षाय जीवसे (अथ० ६।१६।२) जीवसे। स्वरे क्से—प्रेषे भगाय (यजु० ५।७) कसेन्-गवामिव श्रियसे (ऋ० अध्यै, अध्यैन्—कर्मण्युपाचरध्यै, उपाचरध्यै। स्वरे विशेष। इन्द्राग्नी आहुवध्यै (यजु० ३।१३) कध्यैन्—श्रियध्यै। शध्यै (ऋ० ७।९२।२)। शध्यैन्-सह मादयध्यै (यजु० ३।१३)-तवै-सो पातवै। तवेङ्-दशमे मासि सूतवे (ऋ० १०।१८४।३) तवेन्-गन्तवे (यजु० १५।५५) कर्त्तवे, हर्त्तवे ॥

भाषार्थः—वेद विषय में [तुमर्थे] तुमर्थ में धातु से ···तवेनः] से, सेन् आदि प्रत्यय होते हैं ॥ तुमुन् प्रत्यय में होता है, सो तुमर्थ का अर्थ हुआ भाव, अतः भाव में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[प्रथमः]

प्रत्यय होंगे। सिद्धियाँ सब परि० १।१।३८ के जीवसे के समान जान ॥ से, सेन्, अध्यै, अध्यैन् आदि प्रत्ययों में केवल स्वर का भेद है, न् करने से *ञ्नित्यादिर्नित्यम्* (६।१।१९१) से आद्युदात्त होगा, अन्यत्र प्रत्यय स्वरं (३।१।३) होगा। षूङ् धातु से सूतवे प्रयोग में तवेङ् प्रत्यय के ङित् होने से गुणाभाव भी होगा॥

यहाँ से '*तुमर्थे*' की अनुवृत्ति ३।४।१७ तक जायेगी॥

प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै ॥३।४।१०॥

प्रयै अ० ॥ रोहिष्यै अ० ॥ अव्यथिष्यै अ० ॥ अनु०—तुमर्थे, छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै इमे शब्दास्तुमर्थे छन्दसि विषये निपात्यन्ते। प्रयै इति प्र पूर्वाद् या धातोः कै प्रत्ययो निपात्यते, प्रयातुं प्रयै (ऋ० १।१४२।६) रोहिष्यै इति रुहधातोः इष्यै प्रत्ययः, रोढुं रोहिष्यै। अव्यथिष्यै इति नञ्पूर्वाद् व्यथ धातोः इष्यै प्रत्ययः, अव्यथितुम् अव्यथिष्यै॥

भाषार्थः—[*प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै*] प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै यह शब्द वेदविषय में तुमर्थ में निपातन किये जाते हैं॥ प्र पूर्वक या धातु से प्रत्यय निपातन करके प्रयै बनाया है। 'कै' के कित् होने से या धातु के 'या' का लोप भी *आतो लोप इटि च* (६।४।६४) से हो जायेगा। रुह धातु से 'इष्यै' प्रत्यय करके रोहिष्यै बना है। नञ् पूर्वक व्यथ धातु से इष्यै प्रत्यय करके अव्यथिष्यै रूप बना है। सर्वत्र *कृन्मे०* (१।१।३८) से प्रत्यय संज्ञा होकर पूर्ववत् सु का लुक् होगा।

दृशे विख्ये च ॥३।४।११॥

दृशे अ० ॥ विख्ये अ० ॥ च अ० ॥ अनु०—तुमर्थे, छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—दृशे, विख्ये इत्येतौ शब्दौ तुमर्थे निपात्येते वैदिके प्रयोगे॥ 'दृशे' इत्यत्र दृश धातोः के प्रत्ययः। दृशे व्यख्यातुमर्थे, विख्ये त्वा हरामि॥

भाषार्थः—[*दृशे विख्ये*] दृशे, विख्ये ये दो शब्द [च] भी वेदविषय में तुमर्थ के अर्थ में निपातन किये जाते हैं। दृशिर् एवं वि पूर्वक ख्या

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

धातु से 'के' प्रत्यय निपातन करके दृशे, विख्ये ये शब्द सिद्ध होंगे। का आकार लोप पूर्ववत् ही होगा। पूर्ववत् अव्यय संज्ञा होने लुक् भी सिद्धि में जानें॥ द्रष्टुम् के अर्थ में दृशे, तथा विख्ये अर्थ में विख्ये बना है॥

शकि णमुल्कमुलौ ॥३।४।१२॥

शकि ७।१॥ णमुल्कमुलौ १।२॥ स०—णमु० इत्यत्रेतरेतर० अनु०—तुमर्थे, छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—छ धातावुपपदे, तुमर्थे, छन्दसि विषये धातोर्णमुल्कमुलौ प्रत्ययौ उदा०—अग्निं वै देवा विभाजं नाशक्नुवन्, विभक्तुमित्यर्थः। अपलुपं नाशक्नुवन्, अपलोप्तुमित्यर्थः॥

भाषार्थः—तुमर्थ में [*शकि*] शक्नोति धातु उपपद हो विषय में धातु से [*णमुल्कमुलौ*] णमुल् तथा कमुल् प्रत्यय णमुल् में णित् वृद्धि के लिये, तथा कमुल् में कित् गुण-वृद्धि षेधार्थ है॥ वि पूर्वक भज धातु से णमुल् होकर, विभज् विभाज् अम् = विभाजं, तथा अप पूर्वक लुप धातु से अपलुपं सिद्धि में पूर्ववत् मकारान्त मानकर, अव्यय संज्ञा होकर 'सु' होगा॥

ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ॥३।४।१३॥

ईश्वरे ७।१॥ तोसुन्कसुनौ १।२॥ स०—तोसु० इत्यत्रेतरेतर० अनु०—तुमर्थे, छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—ई उपपदे छन्दसि विषये तुमर्थे, धातोस्तोसुन्कसुनौ प्रत्ययौ उदा०—ईश्वरोऽभिचरितोः, अभिचरितुमित्यर्थः। ईश्वरो विलेखितुमित्यर्थः। ईश्वरो वितृदः॥

भाषार्थः—[*ईश्वरे*] ईश्वर शब्द के उपपद रहते, तुमर्थ विषय में धातु से [*तोसुन्कसुनौ*] तोसुन्, कसुन् प्रत्यय होते हैं॥ में कित्, गुण-वृद्धि प्रतिषेधार्थ है॥ सिद्धि में *क्त्वातोसुन्०* (१।४ अव्यय संज्ञा होकर सु का लुक् पूर्ववत् होगा॥ अभि चर् तोस् चर् इट् तोस् = अभिचरितोः बना है। वि लिख् कसुन् = वि अस = विलिखः बन गया॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः ॥३।४।१४॥

कृत्यार्थे ७।१॥ तवैकेन्केन्यत्वनः १।३॥ स०—कृत्यस्य अर्थः, कृत्यार्थः, तस्मिन्···षष्ठीतत्पुरुषः। तवै च केन् च केन्यश्च त्वन् च, तवै···त्वनः, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ कृत्यानामर्थौ भावकर्मणी, *तयोरेव कृत्य०* (३।४।७०) इत्यनेन॥ अर्थः—कृत्यार्थेऽभिधेये धातोश्छन्दसि विषये, तवै, केन्, केन्य, त्वन् इत्येते प्रत्यया भवन्ति॥ उदा०—तवै—अन्वेतवै, अन्वेतव्यमित्यर्थः। परिस्तरितवै, परिस्तरितव्यमित्यर्थः। परिधातवै, परिधातव्यमित्यर्थः। केन्—नावगाहे, नावगाहितव्यमित्यर्थः। केन्य—दिदृक्षेण्यः (तै० ब्रा० २।७।६।४) शुश्रूषेण्यः, दिदृक्षितव्यं शुश्रूषितव्यमित्यर्थः। त्वन्—कर्त्वं हविः (अथ० १९।३) कर्त्तव्यमित्यर्थः॥

भाषार्थः—[कृत्यार्थे] कृत्यार्थ में (*तयोरेव कृत्य०* से भाव कर्म में) वेद विषय में धातु से [*तवैकेन्केन्यत्वनः*] तवै, केन्, केन्य, त्वन् ये चार प्रत्यय होते हैं। दिदृक्षेण्यः शुश्रूषेण्यः में दिदृक्ष, शुश्रूष सन्नन्त धातुओं से केन्य प्रत्यय होकर सु आकर रुत्व विसर्जनीय हुआ है। तवै, केन् प्रत्ययान्त की अव्यय संज्ञा पूर्ववत् *कृन्मेजन्तः* (१।१।३८) से होगी॥ सिद्धियों में कुछ भी विशेष नहीं है॥

यहाँ से 'कृत्यार्थे' की अनुवृत्ति ३।४।१५ तक जायेगी॥

अवचक्षे च ॥३।४।१५॥

अवचक्षे अ०॥ च अ०॥ अनु०—कृत्यार्थे, छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—छन्दसि विषये कृत्यार्थे, अवपूर्वात् चक्षिङ् धातोः शेन् प्रत्ययो निपात्यते, अवचक्षे इति (यजु० १७।६३) अवख्यातव्यमित्यर्थः॥

भाषार्थः—कृत्यार्थ अभिधेय हो तो वेद विषय में, अव पूर्वक चक्षिङ् धातु से शेन् प्रत्ययान्त [अवचक्षे] अवचक्षे शब्द [च] भी निपातन किया जाता है॥ शेन् के शित् होने से उसकी सार्वधातुक संज्ञा होकर चक्षिङः ख्याञ् (२।४।५४) से चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश नहीं होता॥ पूर्ववत् अव्यय संज्ञादि होकर सिद्धि जानें॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन् ॥३।४।१७॥

भावलक्षणे ७।१॥ स्थेण्···भ्यः ५।३॥ तोसुन् १।१॥ स०—अस्य तल्लक्षणम्, भावस्य लक्षणं भावलक्षणं तस्मिन्·····षष्ठीतत्पुरुषः। इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—छन्दसि, तुमर्थे धातोः, प्रत्ययः, परश्च। अर्थः—भावलक्षणे वर्त्तमानेभ्यः स्था, इण्, कृञ्, वदि, चरि, हु, जनि, इत्येतेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये तुमर्थे तोसुन् प्रत्ययो भवति। उदा०—आ संस्थातोर्वेद्यां सीदन्ति। इण्—पुरा सूर्यस्योदेतोरग्नेः (सं० ८।३)। कृञ्—पुरा वत्सानामपाकर्त्तोः। वदि—पुरा प्रवदितोः प्रहोतव्यम्। चरि—पुरा प्रचरितोराग्नीध्रे होतव्यम्। हु—आ होतोः तस्तिष्ठति। तमि—आ तमितोरासीत। जनि—आ विजनितोः वामेति ॥

भाषार्थः—[*भावलक्षणे*] भाव = क्रिया के लक्षण में वर्त्तमान [·····*भ्यः*] स्था, इण् आदि धातुओं से वेद विषय में तुमर्थ में [तोसुन् प्रत्यय होता है ॥

उदेतोः की सिद्धि परि० १।१।३९ में दिखा आये हैं, सो सर्वप्रकार जानना चाहिये ॥

सम्पूर्वक स्था धातु से 'संस्थातोः' बना है। आ संस्थातोः सीदन्ति का अर्थ है यज्ञ की समाप्ति पर्यन्त बैठते हैं, सो समाप्ति तक से बैठना क्रिया लक्षित हो रही है, अतः स्था धातु भावलक्षण के लक्षण में वर्त्तमान है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी लक्षण है ॥

यहाँ से '*भावलक्षणे*' की अनुवृत्ति ३।४।१७ तक जायगी ॥

सृपितृदोः कसुन् ॥३।४।१७॥

सृपितृदोः ६।२॥ कसुन् १।१॥ स०—सृपि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—भावलक्षणे, छन्दसि, तुमर्थे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भावलक्षणे वर्त्तमानाभ्यां सृपि, तृद इत्येताभ्यां धातुभ्यां छन्दसि विषये तुमर्थे कसुन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् (यजु० १।२८)। पुरा जर्तृभ्य आतृदः (ऋ० ८।१।१२) ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

भाषार्थः—भावलक्षण में वर्त्तमान [सृपितृदोः] सृपि तथा तृद् धातुओं से वेद विषय में तुमर्थ में [कसुन्] कसुन् प्रत्यय होता है॥ परि० १।१।३९ में विसृपः की सिद्धि दिखाई है, सो आतृदः में भी उसी प्रकार जानें॥ कसुन् में कित् करण गुण प्रतिषेधार्थ है॥

अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ॥३।४।१८॥

अलङ्खल्वोः ७।२॥ प्रतिषेधयोः ७।२॥ प्राचाम् ६।३॥ क्त्वा १।१॥ स०—अलं० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—प्रतिषेधवाचिनोः, अलं खलु इत्येतयोरुपपदयोः, धातोः प्राचाचार्याणां मतेन क्त्वा प्रत्ययो भवति॥ उदा०—अलं कृत्वा, अलं बाले रुदित्वा। खलु कृत्वा। अन्येषां मते क्त्वा न भवति—अलं करणेन, अलं दानेन, खलु करणेन इत्येव भवति॥

भाषार्थः—[प्रतिषेधयोः] प्रतिषेधवाची [अलङ्खल्वोः] अलं तथा खलु शब्द उपपद रहते [प्राचाम्] प्राचीन आचार्यों के मत में धातु से [क्त्वा] क्त्वा प्रत्यय होता है, अन्यों के मत में नहीं होता॥ उदा०—अलं कृत्वा (मत कर)। अलं बाले रुदित्वा (ऐ बालिके मत रो)। खलु कृत्वा (मत कर) अन्यों के मत में क्त्वा न होकर अलं करणेन (भाव में ३।३।११५ से ल्युट्) आदि प्रयोग बनेंगे॥ सिद्धि परि० १।१।३९ के जित्वा, जित्वा की तरह जानें॥

यहाँ से 'क्त्वा' की अनुवृत्ति ३।४।२४ तक जायेगी॥

उदीचां माङो व्यतीहारे ॥३।४।१९॥

उदीचाम् ६।३॥ माङः ५।१॥ व्यतीहारे ७।१॥ अनु०—क्त्वा, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—व्यतीहारेऽर्थे वर्त्तमानाद् मेङ्धातोः, उदीचामाचार्याणां मतेन क्त्वा प्रत्ययो भवति॥ अपूर्वकालत्वादप्राप्तोऽयं (३।४।२०) क्त्वा विधीयते॥ उदा०—अपमित्य याचते॥ अन्येषां मते प्राप्तं—याचित्वा अपमयते, भवति॥

भाषार्थः—[व्यतीहारे] व्यतीहार अर्थ वाली [माङः] मेङ् धातु से [उदीचाम्] उदीच्य आचार्यों के मत में क्त्वा प्रत्यय होता है॥ मेङ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

को आदेच उपदेशे० (६।१।४४) से आत्व करके सूत्र में 'माङ्' किया है ॥

समानकर्तृकयोः पूर्वकाले से पूर्वकालिक क्त्वा प्रत्यय प्राप्त था, कालिक क्रिया से भी क्त्वा हो जाये, अतः यह सूत्र बनाया है॥ में 'भिक्षुक पहले मांगता है पश्चात् परस्पर विनिमय करता है' सो क्रिया अपूर्वकालिक है ॥ उदीचाम् कहा है अतः अन्य आचार्यों में यथाप्राप्त पूर्वकालिक धातु से भी क्त्वा होकर याचित्वा बनेगा, अर्थ इसका पूर्ववत् ही होगा ॥ अपमित्य में *मयतेरिदन्यतरस्याम्* (६।४।७०) से 'मा' के आ को इत्व हुआ है, शेष सिद्धि परि० के प्रकृत्य के समान जानें ॥

परावरयोगे च ॥३।४।२०॥

परावरयोगे ७।१॥ च अ० ॥ *स०*—परश्च अवरश्च परावरौ, योगः, परावरयोगः, तस्मिन्·····द्वन्द्वगर्भो षष्ठीतत्पुरुषः॥ *अनु०*—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—परेणावरस्य (पूर्वस्य) योगे गम्य अवरेण च (पूर्वेण च) परस्य योगे गम्यमाने धातोः क्त्वा प्रत्ययो उदा०—परेण—अप्राप्य नदीं पर्वतः स्थितः। अवरेण—अतिक्र पर्वतं नदी स्थिता ॥

भाषार्थः—[*परावरयोगे*] जब पर का अवर (पूर्व) के साथ का पर के साथ योग गम्यमान हो तो [च] भी धातु से क्त्वा प्रत्य है ॥ उदा०—अप्राप्य नदीं पर्वतः स्थितः (पर भाग में स्थित पूर्व पर्वत स्थित है)। अवर के द्वारा—अतिक्रम्य तु पर्वतं नदी (पर्वत के पश्चात् पर भाग में नदी स्थित है)॥ प्र पूर्वक आप्ल अति पूर्वक क्रम धातु से क्त्वा प्रत्यय होकर प्राप्य एवं अति की सिद्धि पूर्ववत् जानें। प्राप्य बनाकर पुनः नञ् समास होकर बनेगा ॥

समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ॥३।४।२१॥

समानकर्तृकयोः ७।२॥ पूर्वकाले ७।१॥ *स०*—समानः कर्ता तौ समानकर्तृकौ, तयोः··· ···बहुव्रीहिः। पूर्वश्चासौ कालश्च स्तस्मिन्·····कर्मधारयतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—क्त्वा धातोः,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पदः]

परश्च ॥ अर्थः—समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले धात्वर्थे वर्त्तमानाद् धातोः क्त्वा प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—देवदत्तो भुक्त्वा व्रजति, पीत्वा व्रजति, स्नात्वा भुङ्क्ते ॥

भाषार्थः—[समानकर्तृकयोः] समान अर्थात् एक कर्त्ता है जिन दो क्रियाओं का उनमें जो [पूर्वकाले] पूर्वकाल में वर्त्तमान धातु है उससे क्त्वा प्रत्यय होता है ॥ उदा०—देवदत्तो भुक्त्वा व्रजति (देवदत्त खा-कर जाता है)। पीत्वा व्रजति (पीकर जाता है)। स्नात्वा भुङ्क्ते (स्नान करके खाता है) ॥ उदाहरण में जाने क्रिया का तथा खाने क्रिया का कर्त्ता देवदत्त ही है, सो भुज् एवं व्रज समानकर्तृक धातुएँ है, एवं पहले खाता है पीछे जाता है, अतः भुज धातु पूर्वकालिक है, सो इससे क्त्वा प्रत्यय हो गया है। इसी प्रकार सब में समझें। सिद्धियाँ परि० १।१।३९ में देखें। भुक्त्वा में चोः कुः (८।२।३०) से ज् को कुत्व हुआ है, तथा पीत्वा में घुमास्थागापा० (६।४।६६) से 'पा' के आ को ईत्व हुआ है ॥

यहाँ से "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" की अनुवृत्ति ३।४।२६ तक जायेगी ॥

आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ॥३।४।२२॥

आभीक्ष्ण्ये ७।१॥ णमुल् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—समानकर्तृकयोः पूर्वकाले, क्त्वा, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आभीक्ष्ण्ये गम्यमाने समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले धात्वर्थे वर्त्तमानाद् धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति, चकारात् क्त्वा च ॥ उदा०—भोजम् भोजं व्रजति। भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति ॥

भाषार्थः—[आभीक्ष्ण्ये] आभीक्ष्ण्य = पौनः पुन्य अर्थ में, समान-कर्तृक दो धातुओं में जो पूर्वकालिक धातु उससे [णमुल्] णमुल् प्रत्यय होता है, [च] चकार से क्त्वा भी होता है ॥ उदा०—भोजम् भोजं व्रजति (खा खा कर जाता है)। भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति ॥ सिद्धि पूर्ववत् जानें ॥

यहाँ से 'आभीक्ष्ण्ये' की अनुवृत्ति ३।४।२३ तक तथा 'णमुल्' की ३।४।२४ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

न यद्यनाकाङ्क्षे ॥३।४।२३॥

न अ० ॥ यदि ७।१॥ अनाकाङ्क्षे ७।१॥ स०—न विद्यते क्रि (अपेक्षा) यत्र स अनाकाङ्क्षस्तस्मिन्·····बहुव्रीहिः ॥ अनु०- क्त्वे, णमुल्, समानकर्तृकयोः पूर्वकाले, क्त्वा, धातोः, प्रत्यय, अर्थः—समानकर्त्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले वर्त्तमानाद् धातोः, योगे अनाकाङ्क्ष आभीक्ष्ण्ये वर्त्तमानात् क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ उदा०—यदयं भुङ्क्ते, ततः पचति । यदयमधीते ततः शेते ॥

भाषार्थः—समान कर्त्ता वाले धातुओं में से, पूर्वकालिक वर्त्तमान धातु से [*यदि*] यद् शब्द का प्रयोग होने पर [अन अनाकाङ्क्ष कर्त्ता वाच्य हो तो आभीक्ष्ण्य अर्थ में क्त्वा णमु [न] नहीं होते हैं ॥ उदा०—यदयं भुङ्क्ते ततः पचति (यह पहले खाता है, पीछे बार बार पकाता है)। यदयमधीते ततः शे पहले बार २ पढ़ता है, तब पुनः २ सोता है) ॥

विभाषाऽग्रेप्रथमपूर्वेषु ॥३।४।२४॥

विभाषा १।१॥ अग्रेप्रथमपूर्वेषु ७।३॥ स०—अग्रे च, प्रथमश्च, अग्रे····पूर्वाः, तेषु···इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—समानकर्तृकयोः क्त्वा, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अग्रे, प्रथम, पूर्व तेषूपपदेषु समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले धातोर्विभाषा क्त्वाणमुलौ भवतः ॥ उदा०—अग्रे भोजं व्रजति । अग्रे भुक्त्वा व्रजति । प्रथमं भुक्त्वा व्रजति । पूर्वं भोजं व्रजति । पूर्वं भुक्त्वा व्रजति । विभाषाग्रहणात् पक्षे लडादयोऽपि भवन्ति—अग्रे भुङ्क्ते ततो व्रजति । प्रथमं भुङ्क्ते व्रजति । पूर्वं भुङ्क्ते व्रजति ॥

भाषार्थः—[*अग्रेप्रथमपूर्वेषु*] अग्रे, प्रथम, पूर्व उपपद हों तो समान कर्त्तृक पूर्वकालिक धातु से [*विभाषा*] विकल्प से क्त्वा णमुल् होते हैं। पक्ष में लडादि लकार होते हैं ॥ उदा०—अग्रे भोजं व्रजति (आगे खा करके जाता है)। अग्रे भुक्त्वा व्रजति, इत्यादि भाग के अनुसार सारे उदाहरण जानें ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् ॥३।४।२५॥

कर्मणि ७।१॥ आक्रोशे ७।१॥ कृञः ५।१॥ खमुञ् १।१॥ अनु०—समानकर्तृकयोः पूर्वकाले, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्मण्युपपदे आक्रोशे गम्यमाने, समानकर्तृकयोः पूर्वकाले कृञ् धातोः खमुञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—चोरङ्कारमाक्रोशति । दस्युङ्कारमाक्रोशति ॥

भाषार्थः—[कर्मणि] कर्म उपपद रहते [आक्रोशे] आक्रोश गम्यमान हो तो समानकर्तृक पूर्वकालिक [कृञः] कृञ् धातु से [खमुञ्] खमुञ् प्रत्यय होता है ॥ प्रत्यय के खित् होने से अरुर्द्विषद० (६।३।६५) से मुम् आगम होकर चोर मुम् कार् अम् = चोरङ्कारमाक्रोशति (चोर है, ऐसा कहकर चिल्लाता है), बन गया है ॥

यहाँ से 'कृञः' की अनुवृत्ति ३।४।२८ तक जायेगी ॥

स्वादुमि णमुल् ॥३।४।२६॥

स्वादुमि ७।१॥ णमुल् १।१॥ अनु०—कृञः, समानकर्तृकयोः पूर्वकाले, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—स्वाद्वर्थेषु शब्देषूपपदेषु समानकर्तृकयोः पूर्वकाले कृञ् धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते । सम्पन्नङ्कारं भुङ्क्ते । लवणङ्कारं भुङ्क्ते ॥

भाषार्थः—[स्वादुमि] स्वादुवाची शब्दों के उपपद रहते समानकर्तृक पूर्वकालिक धातु से [णमुल्] णमुल् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि परि० १।१।३८ में देखें ॥

यहाँ से 'णमुल्' की अनुवृत्ति ३।४।५८ तक जायेगी ॥

अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ॥३।४।२७॥

अन्य··त्थंसु ७।३॥ सिद्धाप्रयोगः १।१॥ चेत् अ० ॥ स०—अन्यथा एवं च कथं च इत्थं च = अन्य··त्थमस्तेषु इतरेतरद्वन्द्वः । न प्रयोगः, अप्रयोगः, नञ्तत्पुरुषः । सिद्धः अप्रयोगो यस्य स सिद्धाप्रयोगः, बहुव्रीहिः ॥

---

१. यहाँ 'स्वादु' शब्द को वोतो गुणवचनात् (४।१।४४) से ङीष् प्राप्त था। वह न हो जाये इसलिए मकारान्त निपातन करके 'स्वादुम्' शब्द माना है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अनु०—णमुल्, कृञः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अन्यथा कथम्, इत्थम् इत्येतेषूपपदेषु कृञ्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति प्रयोगश्चेत् करोतिर्भवेत् ॥ उदा०—अन्यथाकारं भुङ्क्ते। भुङ्क्ते। कथङ्कारं भुङ्क्ते। इत्थंकारं भुङ्क्ते ॥

भाषार्थः—[*अन्य*·····*त्थंसु*] अन्यथा, एवं, कथं, इत्थम् इन उपपद रहते कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है [चेत्] यदि का [*सिद्धाप्रयोगः*] अप्रयोग सिद्ध हो तो ॥ उदा०—अन्यथा भुङ्क्ते (बिगाड़ कर खाता है)। एवंकारं भुङ्क्ते (इस प्रकार है)। कथंकारं भुङ्क्ते (किस प्रकार खाता है)। इत्थंकारं (इस प्रकार खाता है) ॥ यहाँ उदाहरणों में अन्यथा भुङ्क्ते जो अर्थ है, वही अन्यथाकारं भुङ्क्ते का है, अर्थात् अर्थ बिना कृञ् धातु (कारं) के प्रयोग के ही कहा जा रहा है कृञ् का प्रयोग भी अप्रयोग के समान है। इस प्रकार सिद्ध प्रयोग को यहाँ सिद्धाप्रयोग कहा है। उदाहरणों में सर्वत्र से अव्यय संज्ञा होगी ॥

यहाँ से '*सिद्धाप्रयोगः*' की अनुवृत्ति ३।४।२८ तक जायेगी ॥

यथातथयोरसूयाप्रतिवचने ॥३।४।२८॥

यथातथयोः ७।२॥ असूयाप्रतिवचने ७।१॥ स०—यथा च तथा यथातथे, तयोः···इतरेतरद्वन्द्वः। असूयया, = निन्दया प्रतिवचनं असूयाप्रतिवचनम्, असूयाप्रतिवचनं तस्मिन्···तृतीयातत्पुरुषः ॥ अनु०—णमुल्, प्रयोगः, कृञः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—असूयाप्रतिवचने गम्यमाने, यथातथयोरुपपदयोः कृञो णमुल् प्रत्ययो भवति सिद्धाप्रयोगश्चेत् करोतेर्भवति ॥ उदा०—यथाकारमहं भोक्ष्ये। किं कारं किं तवानेन ॥

भाषार्थः—[*यथातथयोः*] यथा तथा शब्द उपपद रहते [*असूयाप्रतिवचने*] असूयाप्रतिवचन = निन्दा से प्रत्युत्तर गम्यमान हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय होता है, यदि कृञ् का सिद्धाप्रयोग हो तो ॥

उदाहरण में जो यथा भोक्ष्ये का अर्थ है वही यथाकारं भोक्ष्ये है, अतः कृञ् का सिद्धाप्रयोग है। किसीने किसी से पूछा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[...]दः]

...से खाते हो ? तो उसने निन्दा से उत्तर दिया कि *यथाकारमहं भोक्ष्ये* ...याकारं किं तवानेन, अर्थात् मैं जैसे खाता हूँ, वैसे खाता हूँ इससे ...मको क्या ? सो यहाँ असूयाप्रतिवचन है ॥

कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये ॥३।४।२९॥

कर्मणि ७।१॥ दृशिविदोः ६।२॥ साकल्ये ७।१॥ स०—दृशि० ...त्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—...साकल्ये = सम्पूर्णताविशिष्टे कर्मण्युपपदे दृशि, विद् इत्येताभ्यां धातुभ्यां ...मुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—यवनदर्शं घातयति। ब्राह्मणवेदं ...भोजयति ॥

भाषार्थः—[*साकल्ये*] साकल्य = सम्पूर्णताविशिष्ट [*कर्मणि*] कर्म ...पपद हो तो [*दृशिविदोः*] दृशिर् तथा विद धातुओं से णमुल् प्रत्यय ...ता है ॥ यवनदर्शं, ब्राह्मणवेदं में "जिन-जिन (सब) यवनों को देखता ...मारता है, एवं जिन-जिन ब्राह्मणों को जानता है खिलाता है" यह ...र्थ होने से यवन तथा ब्राह्मण साकल्यविशिष्ट कर्म हैं, सो णमुल् हुआ ...॥ सिद्धि सारी परि० १।१।३८ की तरह जानें ॥

यहाँ से '*कर्मणि*' की अनुवृत्ति ३।४।३६ तक जायेगी ॥

यावति विन्दजीवोः ॥३।४।३०॥

यावति ७।१॥ विन्दजीवोः ६।२॥ स०—विन्द० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ ...नु०—णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यावच्छब्द उपपदे विन्द, ...जीव इत्येताभ्यां धातुभ्यां णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—यावद्वेदं ...भोजयति यावज्जीवमधीते ॥

भाषार्थः—[*यावति*] यावत् शब्द उपपद रहते [*विन्दजीवोः*] विद्लृ ...लाभे, एवं जीव प्राणधारणे धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—...यावद्वेदं भोजयति (जितना पाता है, उतना खिलाता है) यावज्जीवमधीते (मरणपर्यन्त पढ़ता है) ॥

चर्मोदरयोः पूरेः ॥३।४।३१॥

चर्मोदरयोः ७।२॥ पूरेः ५।१॥ स०—चर्म० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ ...अनु०—कर्मणि, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—चर्म, उदर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोर्ण्यन्तात् पूरी आप्यायने धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—चर्मपूरं स्तृणाति, उदरपूरं भुङ्क्ते ॥

भाषार्थः—[*चर्मोदरयोः*] चर्म तथा उदर कर्म उपपद रहते ण्यन्त पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ पूरी का पूर हो जाता है। तत्पश्चात् णिच् लाकर 'पूरि' ऐसा ण्यन्त का ग्रहण है ॥ उदा०—चर्मपूरं स्तृणाति (सब चमड़े को ढांपता है) पूरं भुङ्क्ते (पेट भरकर खाता है) ॥

यहाँ से 'पूरेः' की अनुवृत्ति ३।४।३२ तक जायेगी ॥

वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम् ॥३।४।३२॥

वर्षप्रमाणे ७।१॥ ऊलोपः १।१॥ च अ० ॥ अस्य ६।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ स०—वर्षस्य प्रमाणं, वर्षप्रमाणं तस्मिन्···षष्ठीतत्पुरुषः। ऊ इति रस्य लोप ऊलोपः, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—पूरेः, कर्मणि, णमुल्, ण्यन्तात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—वर्षप्रमाणे गम्यमाने कर्मण्युपपदे ण्यन्तात् पूरी धातोर्णमुल् प्रत्ययो नित्यं भवति, तस्य च पूरेर्विकल्पेन ऊकारलोपो भवति ॥ उदा०—गोष्पदप्रं वृष्टो देवः, । गोष्पदपूरं वृष्टो देवः। सीताप्रं वृष्टो देवः, सीतापूरं वृष्टो देवः ॥

भाषार्थः—[*वर्षप्रमाणे*] वर्षा का प्रमाण गम्यमान हो (कि कितनी हुई है) तो कर्म उपपद रहते ण्यन्त पूरी धातु से नित्य णमुल् प्रत्यय होता है [*च*] तथा [*अस्य*] इस पूरी धातु के [*ऊलोपः*] ऊकार का लोप [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से होता है ॥ उदा०-गोष्पदप्रं वृष्टो देवः (गौ के खुर में गाय के खुर के द्वारा गड्ढे के भरने जितनी वर्षा हुई) गोष्पदपूरं वृष्टो देवः। सीताप्रं वृष्टो देवः (हल की फाली से हुए गड्ढे के भरने जितनी वर्षा हुई) सीतापूरं वृष्टो देवः ॥ 'गोष्पद' तथा 'सीता' कर्म पूरी धातु के कर्म में हैं, वर्षा का प्रमाण कहा ही जा रहा है, सो उदाहरण में णमुल् प्रत्यय तथा पक्ष में पूरी के ऊकार का लोप होकर गोष्पद पूर् अम् = गोष्पदप्रं बना है, पक्ष में ऊकार लोप न होकर गोष्पद्पूरं बनेगा ॥

यहाँ से 'वर्षप्रमाणे' की अनुवृत्ति ३।४।३३ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

चेले क्नोपेः ॥३।४।३३॥

चेले ७।१॥ क्नोपेः ५।१॥ अनु०—वर्षप्रमाणे, कर्मणि, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—चेलार्थेषु कर्मसूपपदेषु वर्षप्रमाणे समाने क्नूयी शब्दे उन्दे च ण्यन्ताद् धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—चेलक्नोपं वृष्टो देवः, वस्त्रक्नोपं, वसनक्नोपम् ॥

भाषार्थः—[चेले] चेलवाची कर्म उपपद हों तो वर्षा का प्रमाण समान होने पर [क्नोपेः] क्नूयी ण्यन्त धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ क्नोपि ण्यन्त निर्देश सूत्र में है, अतः ण्यन्त क्नोपि धातु से णमुल् प्रत्यय होता है। अतिहीव्ली० (७।३।३६) से पुक् आगम तथा लोपो व्योर्वलि (६।१।६४) से यकार लोप होकर क्नोपि धातु बना है ॥ उदा०—चेलक्नोपं वृष्टो देवः (कपड़ा गीला हो गया, इतनी वर्षा हुई)। वस्त्रक्नोपं, वसनक्नोपम् ॥

निमूलसमूलयोः कषः ॥३।४।३४॥

निमूलसमूलयोः ७।२॥ कषः ५।१॥ स०—निमू० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणि, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—निमूल समूल इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः कषधातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—निमूलकाषं कषति, समूलकाषं कषति ॥

भाषार्थः—[निमूलसमूलयोः] निमूल तथा समूल कर्म उपपद रहते [कषः] कष धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—निमूलकाषं कषति (जड़ को छोड़कर काटता है) समूलकाषं कषति (जड़ समेत काटता है)॥

शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः ॥३।४।३५॥

शुष्कचूर्णरूक्षेषु ७।३॥ पिषः ५।१॥ स०—शुष्कश्च चूर्णश्च रूक्षश्च = शुष्कचूर्णरूक्षास्तेषु···इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणि, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—शुष्क, चूर्ण, रूक्ष इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु पिषधातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शुष्कपेषं पिनष्टि, चूर्णपेषं पिनष्टि, रूक्षपेषं पिनष्टि ॥

भाषार्थः—[शुष्कचूर्णरूक्षेषु] शुष्क, चूर्ण, तथा रूक्ष कर्म उपपद रहते [पिषः] पिल्लृ सञ्चूर्णने धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—शुष्कपेषं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पिनष्टि (सूखे को पीसता है)। चूर्णपेषं पिनष्टि (चूर्ण को पीस
रूक्षपेषं पिनष्टि (रूखे को पीसता है)॥

समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः ॥३।४।३६॥

समूलाकृतजीवेषु ७।३॥ हन्कृञ्ग्रहः ५।१॥ स०—समू० कृ
द्वन्द्वः। हन् च कृञ् च ग्रह् च हन्कृञ्ग्रह् तस्मात् इ
द्वन्द्वः॥ अनु०—कर्मणि, णमुल्, धातोः प्रत्ययः, परश्च॥
समूल, अकृत, जीव इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु यथासङ्ख्यं हन् कृ
इत्येतेभ्यो धातुभ्यो णमुल् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—समूलघातं
अकृतकारं करोति। जीवग्राहं गृह्णाति॥

भाषार्थः—[*समूलाकृतजीवेषु*] समूल, अकृत तथा जीव कर्म
हों तो यथासङ्ख्य करके [*हन्कृञ्ग्रहः*] हन् कृञ् तथा ग्रह धा
णमुल् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—समूलघातं हन्ति (मूल समेत
है)। अकृतकारं करोति (न किये को करता है)। जीवग्राहं
(जीव को ग्रहण करता है)॥ परि० ३।२।५१ के शीर्षघाती के
समूलघातं की सिद्धि जानें, अन्तर केवल इतना है कि वहां
प्रत्यय हुआ है, तथा शीर्षघाती में णिनि हुआ है॥

करणे हनः ॥३।४।३७॥

करणे ७।१॥ हनः ५।१॥ अनु०—णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, प
अर्थः—करणे कारक उपपदे हन्धातोः 'णमुल्' प्रत्ययो भ
उदा०—पाणिभ्याम् उपहन्ति, पाण्युपघातं वेदिं हन्ति। पा
वेदिं हन्ति॥

भाषार्थः—[*करणे*] करण कारक उपपद हो तो [*हनः*] हन
णमुल् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—पाण्युपघातं वेदिं हन्ति (
वेदि को कूटता है)। पादोपघातं वेदिं हन्ति (पैर से वेदि को
है)॥ सिद्धि परि० ३।२।५१ के समान जानें॥

यहाँ से 'करणे' की अनुवृत्ति ३।४।४० तक जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Initiative

स्नेहने[1] पिषः ॥३।४।३८॥

स्नेहने ७।१॥ पिषः ५।१॥ अनु०—करणे, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—स्नेहनवाचिनि करण उपपदे पिषधातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति। उदा०—उदकेन पिनष्टि=उदपेषं पिनष्टि। तैलपेषं पिनष्टि ॥

भाषार्थः—[स्नेहने] स्नेहनवाची करण उपपद हो तो [पिषः] पिष धातु से णमुल् प्रत्यय होता है॥ उदा०—उदपेषं पिनष्टि (जल से पीसता है)। तैलपेषं पिनष्टि (तेल से पीसता है) ॥

उदपेषं में पेषंवासवाहनधिषु च (६।३।५६) से उदक को उद भाव हो गया है ॥

हस्ते वर्त्तिग्रहोः ॥३।४।३९॥

हस्ते ७।१॥ वर्त्तिग्रहोः ६।२॥ स०—वर्त्ति० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—करणे, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—हस्तवाचिनि करण उपपदे वर्त्ति ग्रह इत्येताभ्यां धातुभ्यां णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—हस्तेन वर्त्तयति=हस्तवर्त्तं वर्त्तयति, करवर्त्तम्। हस्तग्राहं गृह्णाति, करग्राहं गृह्णाति ॥

भाषार्थः—[हस्ते] हस्तवाची करण उपपद हो तो [वर्त्तिग्रहोः] वर्त्ति तथा ग्रह धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है॥ उदा०—हस्तवर्त्तं वर्त्तयति (हाथ से करता है) करवर्त्तम्। हस्तग्राहं गृह्णाति (हाथ से ग्रहण करता है) करग्राहम्॥ वृतु का वर्त्ति यहाँ णिजन्त निर्देश है, अतः णिजन्त से ही प्रत्यय होगा, पुनः णेरनिटि (६।४।५१) से णि का लोप हो जायेगा ॥

स्वे पुषः ॥३।४।४०॥

स्वे ७।१॥ पुषः ५।१॥ अनु०—करणे, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—स्ववाचिनि करण उपपदे पुषधातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—स्वपोषं पुष्णाति, आत्मपोषं, गोपोषं, धनपोषम्, रैपोषम्॥

---

१. स्नेहन द्रव पदार्थ, बहने वाली वस्तु को कहते हैं। यथा—पानी तैल एवं गलाया हुआ लोहा सोना चाँदी आदि ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[स्वै] स्ववाची करण उपपद रहते [पुषः] पुष् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ स्व शब्द यहाँ अपना, आत्मीय, ज्ञाति आदि का पर्यायवाची है ॥ *पित्पर्यायवच्च०* (वा० १।१।६७) इस वार्त्तिक से पर्यायों का यहाँ ग्रहण है ॥ उदा०—स्वपोषं पुष्णाति (अपने को पुष्ट करता है)। आत्मपोषं, गोपोषं, धनपोषम्, रैपोषम्॥

अधिकरणे बन्धः ॥३।४।४१॥

अधिकरणे ७।१॥ बन्धः ५।१॥ अनु०—णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अधिकरणवाचिनि शब्द उपपदे बन्धधातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—चक्रे बध्नाति = चक्रबन्धं बध्नाति, कूटे बध्नाति, मुष्टिबन्धं बध्नाति, चोरकबन्धं बध्नाति॥

भाषार्थः—[*अधिकरणे*] अधिकरणवाची शब्द उपपद हों तो [बन्धः] बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय होता है॥ उदा०—चक्रबन्धं बध्नाति (पहिये में बाँधता है)। कूटबन्धं बध्नाति (लोहे के मुद्गर में बाँधता है)। मुष्टिबन्धं बध्नाति (मुट्ठी में बाँधता है)। चोरकबन्धं बध्नाति (चोरक बन्ध विशेष में बाँधता है) ॥

यहाँ से '*बन्धः*' की अनुवृत्ति ३।४।४२ तक जायेगी॥

संज्ञायाम् ॥३।४।४२॥

संज्ञायाम् ७।१॥ अनु०—बन्धः, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—संज्ञायां विषये बन्धधातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कौञ्चबन्धं बध्नाति, मयूरिकाबन्धं, अट्टालिकाबन्धम् ॥

भाषार्थः—[*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ पूर्व सूत्र से अधिकरण उपपद रहते प्राप्त था, यहाँ से सामान्य उपपद रहते भी कह दिया ॥ 'क्रौञ्चबन्ध' आदि बन्ध-विशेष के नाम हैं ॥ सिद्धियाँ सब परि० १।१।३८ के समान जानें॥

कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः ॥३।४।४३॥

कर्त्रोः ७।२॥ जीवपुरुषयोः ७।२॥ नशिवहोः ६।२॥ स०—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कर्तृवाचिनि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[कृदः]

जीवपुरुषयोरुपपदयोः यथासङ्ख्यं नशि वह इत्येताभ्यां धातुभ्यां णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—जीवो नश्यति = जीवनाशं नश्यति । पुरुषवाहं वहति ॥

भाषार्थः—[कर्त्रोः] कर्त्तावाची [जीवपुरुषयोः] जीव तथा पुरुष शब्द उपपद हों तो यथासङ्ख्य करके [नशिवहोः] नश, वह धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—जीवनाशं नश्यति (जीव नष्ट होता है)। पुरुषवाहं वहति (पुरुष वहन करता है) ॥

यहाँ से 'कर्त्रोः' की अनुवृत्ति ३।४।४५ तक जायेगी ॥

ऊर्ध्वे शुषिपूरोः ॥३।४।४४॥

ऊर्ध्वे ७।१॥ शुषिपूरोः ६।२॥ स०—शुषि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्त्रोः, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्त्तृवाचिनि ऊर्ध्वशब्द उपपदे शुषि पूरी इत्येताभ्यां धातुभ्यां णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ऊर्ध्वशोषं शुष्यति । ऊर्ध्वपूरं पूर्य्यते ॥

भाषार्थः—कर्त्तावाची [ऊर्ध्वे] ऊर्ध्व शब्द उपपद हो तो [शुषिपूरोः] शुषि शोषणे तथा पूरी आप्यायने धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—ऊर्ध्वशोषं शुष्यति (ऊपर सूखता है) ऊर्ध्वपूरं पूर्यते (ऊपर तक जल आदि से पूरा होता है) ॥

उपमाने कर्मणि च ॥३।४।४५॥

उपमाने ७।१॥ कर्मणि ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—कर्त्रोः, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपमानवाचिनि कर्मणि, कर्त्तरि चोपपदे धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मातरमिव धयति, मातृधायं धयति । गुरुसेवं सेवते । कर्त्तरि—बाल इव रोदिति = बालरोदं रोदिति, सिंहराज गर्जति ॥

भाषार्थः—[उपमाने] उपमानवाची [कर्मणि] कर्म उपपद रहते [च] विकार से कर्त्ता उपपद रहते भी धातु मात्र से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ जिससे उपमा दी जाय वह उपमान होता है ॥ उदा०—मातृधायं धयति (जैसे माता पिलाती है वैसे पिलाती है) । गुरुसेवं सेवते (जैसे गुरु की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सेवा की जाती है वैसे सेवा करता है)। कर्त्ता में—वाल्मीकेः सिंहगर्जं गर्जति (जैसे सिंह गरजता है वैसे गरजता है)॥ यहाँ आतो यु० (६।३।३३) से युक् आगम होता है॥

कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ॥३।४।४६॥

कषादिषु ७।३॥ यथाविधि अ० ॥ अनुप्रयोगः १।१॥ कः आदिर्येषां ते कषादयस्तेषु·····बहुव्रीहिः ॥ अर्थः—निमूलसमूलयोः (३।४।३४) इत्यारभ्य ये धातवस्ते कषादयः, एतेषु यथाविधि भवति ॥ यस्माद् धातोर्णमुल् विहितस्तस्यैव धातोरनुप्रयोगः तथा चैवोदाहृतम्। निमूलकाषं कषति, अत्र कषयेवानुप्रयुज्यते, न प्रयोगो न भवति ॥

भाषार्थः—[कषादिषु] कषादि धातुओं में [यथाविधि] यथा [अनुप्रयोगः] अनुप्रयोग होता है, अर्थात् जिस धातु से णमुल् प्रत्यय करेंगे उसका ही पश्चात् प्रयोग होगा, उसके पर्यायवाची का नहीं। निमूलसमूलयोः कषः यहाँ से लेकर, इस सूत्र पर्यन्त जितनी धातु वे कषादि हैं ॥

उपदंशस्तृतीयायाम् ॥३।४।४७॥

उपदंशः ५।१॥ तृतीयायाम् ७।१॥ अनु०—णमुल्, धातोः, परश्च ॥ अर्थः—तृतीयान्त उपपदे उपपूर्वाद् दंश दशने धातोः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मूलकोपदंशं भुङ्क्ते, मूलकेनोपदंशम्। कोपदंशं भुङ्क्ते, आर्द्रकेणोपदंशम् ॥

भाषार्थः—[तृतीयायाम्] तृतीयान्त शब्द उपपद रहते [उपदंशः] पूर्वक दंश धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—मूलकोपदंशं भुङ्क्ते मूलकेनोपदंशम्। आर्द्रकोपदंशं भुङ्क्ते (अदरक से काट काट कर खाता है) आर्द्रकेणोपदंशं भुङ्क्ते ॥ मूलकोपदंशं आदि में 'तृतीयायाम्' (२।२।२१) से विकल्प से समास हुआ है। शेष पूर्ववत् ही जानें। से आगे जिन उपपदों के रहते, प्रत्यय कहेंगे, वहाँ सर्वत्र पूर्ववत् से विकल्प से समास हुआ करेगा ॥

यहाँ से 'तृतीयायाम्' की अनुवृत्ति ३।४।५१ तक जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

हिंसार्थानाञ्च समानकर्मकाणाम् ॥३।४।४८॥

हिंसार्थानाम् ६।३॥ च अ० ॥ समानकर्मकाणाम् ६।३॥ स०—हिंसा र्थो येषां ते हिंसार्थाः, तेषां·····बहुव्रीहिः। समानं कर्म येषां ते समानकर्मकाः, तेषां···बहुव्रीहिः ॥ अनु०—तृतीयायाम्, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तृतीयान्त उपपदे, अनुप्रयुक्तधातुना सह समानकर्मकेभ्यो हिंसार्थकधातुभ्यो णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—दण्डोपघातं गाः कालयति, दण्डेनोपघातम्। नखोपघातं यूकान् गृह्णाति, नखेनोपघातम् ॥

भाषार्थः—अनुप्रयोग की गई [*समानकर्मकाणाम्*] समान कर्म वाली [*हिंसार्थानाम्*] हिंसार्थक धातुओं से [च] भी तृतीयान्त उपपद रहते णमुल् प्रत्यय होता है। अनुप्रयोग की हुई धातु का तथा जिससे णमुल् हो रहा हो इन दोनों धातुओं का समान कर्म होना चाहिये, सो उदाहरण में 'कालयति' 'गृह्णाति' अनुप्रयुक्त धातु हैं, इन दोनों (कालयति और हन) धातुओं का गाः अथवा यूकान् कर्म हैं, सो इस प्रकार ये दोनों समान-कर्मक धातुएँ हुईं, अतः उप पूर्वक हन धातु से णमुल् प्रत्यय हुआ है ॥ हिंसार्थानां तथा समानकर्मकाणाम् पदों में पञ्चमी के अर्थ में षष्ठी हुई है ॥ उदा०—दण्डोपघातं गाः कालयति (डण्डे से मार कर गौ को हटाता है), दण्डेनोपघातं। नखोपघातं यूकान् गृह्णाति (नाखून से दबा कर जूँ को पकड़ता है), नखेनोपघातम् ॥ पूर्ववत् विकल्प से समास होकर सिद्धियाँ जानें ॥

सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ॥३।४।४९॥

सप्तम्याम् ७।१॥ च अ० ॥ उपपीडरुधकर्षः ५।१॥ स०—उपपीडश्च रुधश्च कर्ष् च, उपपीडरुधकर्ष्, तस्मात्···समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तृतीयायाम्, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तृतीयान्ते सप्तम्यन्ते चोपपद उपपूर्वेभ्यः पीड, रुध, कर्ष इत्येतेभ्यो धातुभ्यो णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पार्श्वोपपीडं शेते। पार्श्वयोरुपपीडम्, पार्श्वाभ्यामुप-पीडम्। पाण्युपरोधं चूर्णं पिनष्टि, पाणावुपरोधम्, पाणिनोपरोधम्। पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति, पाणावुपकर्षं, पाणिनोपकर्षम् ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—तृतीयान्त तथा [*सप्तम्याम्*] सप्तम्यन्त उपपद [*उपपीडरुधकर्षः*] उपपूर्वक पीड, रुध तथा कर्ष धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पार्श्वोपपीडं शेते (बगल में दबाकर सोता है) पार्श्वयोरुपपीडं, पार्श्वाभ्यामुप पाण्युपरोधं चूर्णं पिनष्टि (हाथ से दबाकर पीसता है)। पाणि पाणिनोपरोधम्। पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति (हाथ से पकड़ को इकट्ठा करता है) पाणावुपकर्षं, पाणिनोपकर्षम् ॥ सर्वत्र तृतीया से विकल्प से समास होकर पार्श्वयोरुपपीडम् आदि प्रयोग भी

यहाँ से '*सप्तम्याम्*' की अनुवृत्ति ३।४।५१ तक जायेगी॥

समासत्तौ ॥३।४।५०॥

समासत्तौ ७।१॥ अनु०—सप्तम्याम् तृतीयायाम्, णमुल् प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—समासत्तिः = सन्निकटता, तस्यां गम्य तृतीयासप्तम्योरुपपदयोर्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—के युध्यन्ते, केशैर्ग्राहम् , केशेषु ग्राहम्। हस्तग्राहम्, हस्तैर्ग्राहम् ग्राहम् ॥

भाषार्थः—[*समासत्तौ*] समासत्ति अर्थात् सन्निकटता ग हो तो तृतीयान्त तथा सप्तम्यन्त उपपद रहते धातु से णमुल् होता है ॥ उदा०—केशग्राहं युध्यन्ते (केशों से पकड़ कर शेष उदाहरण पूर्ववत् जान लें ॥ उदाहरणों में केश वा हाथ पक कर युद्ध हो रहा है, अतः यहाँ अति सन्निकटता है ॥ पूर्ववत् हरणों में विकल्प से समास हुआ है ॥

प्रमाणे च ॥३।४।५१॥

प्रमाणे ७।१॥ च अ०॥ अनु०—सप्तम्यां, तृतीयायां, णमुल् प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रमाणे गम्यमाने तृतीयासप्तम्योरु धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—द्व्यङ्गुलोत्कर्षं खण्डिकां द्व्यङ्गुलेनोत्कर्षम्। सप्तम्याम्—द्व्यङ्गुल उत्कर्षं, द्व्यङ्गुलोत्कर्षम्॥

भाषार्थः—[*प्रमाणे*] प्रमाण = आयाम, लम्बाई गम्यमान [च] भी सप्तम्यन्त तथा ततीयान्त उपपद रहते धातु से णमुल्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[सूत्रः]

ता है॥ उदा०—द्व्यङ्गुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति (दो-दो अङ्गुल ढ़कर लकड़ी काटता है) द्व्यङ्गुलेनोत्कर्षं, द्व्यङ्गुल उत्कर्षम्॥ र्ववत् समास का विकल्प यहाँ भी जानें॥

अपादाने परीप्सायाम् ॥३।४।५२॥

अपादाने ७।१॥ परीप्सायाम् ७।१॥ अनु०—णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, ब्र॥ अर्थः—परीप्सा=त्वरा, तस्यां गम्यमानायामपादान उपपदे तोर्णमुल् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—शय्योत्थायं धावति, शय्याया त्थायं धावति॥

भाषार्थः—[परीप्सायाम्] परीप्सा=शीघ्रता गम्यमान हो तो अपादाने] अपादान उपपद रहते धातु से णमुल् प्रत्यय होता है॥ दा०—शय्योत्थायं धावति (खाट से उठते ही भागता है)। शय्याया त्थायं धावति॥ 'उत् स्था अम्' यहाँ उदः स्थास्तम्भोः० (८।४।६०) से पूर्वसवर्ण स्था धातु को पूर्वसवर्ण आदेश होकर 'उत्था अम्' बना। आतो युक्० ७।३।३३) से युक् आगम होकर उत्थायं बन गया॥

यहाँ से 'परीप्सायाम्' की अनुवृत्ति ३।४।५३ तक जायेगी॥

द्वितीयायाञ्च ॥३।४।५३॥

द्वितीयायाम् ७।१॥ च अ०॥ अनु०—परीप्सायाम्, णमुल्, धातोः, त्ययः, परश्च॥ अर्थः—द्वितीयान्त उपपदे परीप्सायां गम्यमानायां तोर्णमुल् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—यष्टिग्राहं युध्यन्ते, यष्टिं ग्राहम्, सिग्राहं, असिं ग्राहम्, लोष्टग्राहं, लोष्टं ग्राहम्॥

भाषार्थः—[द्वितीयायाम्] द्वितीयान्त उपपद रहते [च] भी ीघ्रता गम्यमान हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय होता है॥ उदा०—ष्टिग्राहं युध्यन्ते (लाठी लेकर लड़ते हैं) यष्टिं ग्राहम्। असिग्राहं ध्यन्ते (तलवार लेकर लड़ते हैं) असिं ग्राहम्। लोष्टग्राहम् (ढेला कर लड़ते हैं) लोष्टं ग्राहम्॥ उदाहरण में शीघ्रता यही है कि जो ष्ट लाठी आदि सामने मिल जाती है उसी को लेकर लड़ने लगता कुछ नहीं सोचता कि शस्त्रादि तो ले लें॥ पूर्ववत् यहाँ भी समास ा विकल्प जानें॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'द्वितीयायाम्' की अनुवृत्ति ३।४।५८ तक जावेगी॥

स्वाङ्गेऽध्रुवे ॥३।४।५४॥

स्वाङ्गे ७।१॥ अध्रुवे ७।१॥ स०—अध्रुव० इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः। अङ्गं स्वाङ्गं, कर्मधारयस्तत्पुरुषः॥ अनु०—द्वितीयायाम्, णमुल्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अध्रुवे स्वाङ्गवाचिनि द्वितीयान्त धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति॥ यस्मिन्नङ्गे छिन्नेऽपि प्राणी न तदध्रुवम्॥ उदा०—अक्षिनिकाणं जल्पति, अक्षि निकाणं भ्रूविक्षेपं कथयति, भ्रूः विक्षेपं कथयति॥

भाषार्थः—[अध्रुवे] अध्रुव [स्वाङ्गे] स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त उपपद रहते धातु से णमुल् प्रत्यय होता है॥ अपने अङ्ग को कहते हैं॥ जिस अङ्ग के नष्ट हो जाने पर भी प्राणी मरता नहीं अध्रुव होता है। उदाहरण में अक्षि एवं भ्रू के नष्ट हो जाने प्राणी मरता नहीं अतः यह अध्रुव स्वाङ्गवाची शब्द है॥ उदा०—निकाणं जल्पति (आँख बन्द करके बड़बड़ाता है) अक्षि निकाणं भ्रूविक्षेपं कथयति (भौहें टेढ़ी करके कहता है)। भ्रूः विक्षेपं पूर्ववत् यहाँ भी समास का विकल्प जानें॥

यहाँ से 'स्वाङ्गे' की अनुवृत्ति ३।४।५५ तक जाती है॥

परिक्लिश्यमाने च ॥३।४।५५॥

परिक्लिश्यमाने ७।१॥ च अ०॥ अनु०—स्वाङ्गे, द्वितीयान्त, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ परितः = सर्वतः क्लिश्यमानः परिक्लिश्यमानः॥ अर्थः—परिक्लिश्यमाने स्वाङ्गवाचिनि द्वितीयान्त धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—उरःपेषं युध्यन्ते, उरःपेषं शिरःपेषं युध्यन्ते, शिरः पेषम्॥

भाषार्थः—[परिक्लिश्यमाने] चारों ओर से क्लेश को प्राप्त होता ऐसा साङ्गवाची द्वितीयान्त शब्द उपपद हो तो [च] भी धातु से प्रत्यय होता है॥ उदा०—उरःपेषं युध्यन्ते (दर्द करती हुई छाती दबा कर लड़ते हैं) उरः पेषम्, शिरःपेषम् (दर्द करते हुए शिर को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

...ड़ते हैं) शिरः पेषम् ॥ यहाँ विकल्प से समास करने का एक पद ...वं एक स्वर करना ही प्रयोजन है, रूप तो दोनों पक्षों में एक जैसा ...ी है ॥ उदाहरण में 'उरः' एवं 'शिरः' परिक्लिश्यमान साङ्गवाची ...द्वितीयान्त शब्द उपपद हैं ॥

विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः ॥३।४।५६॥

विशिपतिपदिस्कन्दाम् ६।३॥ व्याप्यमानासेव्यमानयोः ७।२॥ स०—...भयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—द्वितीयायाम्, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, ...रश्च॥ अर्थः—द्वितीयान्त उपपदे विशि, पति, पदि, स्कन्दिर् इत्येतेभ्यो ...धातुभ्यो व्याप्यमाने, आसेव्यमाने च गम्यमाने णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ ...क्रियया पदार्थानां साकल्येन सम्बन्धो व्याप्तिः। क्रियायाः पौनः-...पुन्यमासेवा ॥ उदा०—व्याप्तौ—गेहानुप्रवेशमास्ते। असमासपक्षे—...गेहं गेहमनुप्रवेशमास्ते। आसेवायाम्—गेहानुप्रवेशमास्ते। असमास-...पक्षे—गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशमास्ते। पति—गेहानुप्रपातमास्ते, गेहं गेह-...मनुप्रपातमास्ते। आसेवायाम्—गेहानुप्रपातमास्ते, गेहमनुप्रपातमनुप्रपात-...मास्ते। पदि—गेहानुप्रपादमास्ते, गेहं गेहमनुप्रपादमास्ते। आसेवा-...याम्—गेहानुप्रपादमास्ते, गेहमनुप्रपादमनुप्रपादमास्ते। स्कन्दि—गेहाव-...स्कन्दमास्ते, गेहं गेहमवस्कन्दमास्ते। आसेवायाम्—गेहावस्कन्दमास्ते, ...गेहमवस्कन्दमवस्कन्दमास्ते ॥

भाषार्थः—[*व्याप्यमानासेव्यमानयोः*] व्याप्यमान तथा आसेव्यमान ...गम्यमान हों तो द्वितीयान्त उपपद रहते [*विशिपतिपदिस्कन्दाम्*] विशि, ...पति, पदि तथा स्कन्द धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—...व्याप्ति में—गेहानुप्रवेशमास्ते (घर २ में प्रवेश करके रहता है) असमास ...पक्ष के सब उदाहरण संस्कृत भाग के अनुसार जानते जावें। आसेवा ...में—गेहानुप्रवेशमास्ते (घर में प्रवेश कर२ के रहता है) पति—गेहानु-...प्रपातमास्ते (घर २ में जाकर रहता है) आसेवा में—गेहानुप्रपातमास्ते ...(घर में जा २ करके रहता है)। शेष पदि स्कन्द धातुओं से णमुल् होकर ...भी 'गेहानुप्रपातमास्ते' के समान अर्थ जानें।

व्याप्ति सुपों का धर्म है, अतः व्याप्ति गम्यमान होने पर *नित्यवी-...प्सयोः* (८।१।४) से सुप् को (गेहम् को) द्वित्व हुआ है, तथा आसेवा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तिङ् का धर्म है सो आसेवा गम्यमान होने पर क्रिया को (कृ को) द्वित्व हुआ है, इसी प्रकार उदाहरण के अर्थों में भी व्याप्ति की वीप्सा (घर-घर को) तथा आसेवा में क्रिया की वीप्सा समझनी चाहिये ॥ पूर्ववत् यहाँ भी विकल्प से समास होत्र बना करेंगे। समास पक्ष में व्याप्ति एवं आसेवा समास के उक्त = कहे जाते हैं, अतः समास पक्ष में *नित्यवीप्सयोः* (सू द्वित्व नहीं होता ॥

अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु ॥३।४।५७॥

अस्यतितृषोः ६।२॥ क्रियान्तरे ७।१॥ कालेषु ७।३॥ स०—इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः। क्रियान्तरः क्रियामन्तरयति तस्मिन्... रुषः ॥ अनु०—द्वितीयायाम्, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ कालवाचिषु द्वितीयान्तेषूपपदेषु क्रियान्तरे वर्त्तमानाभ्यः 'असु तृषः' ञितृषा पिपासायाम्, इत्येताभ्यां धातुभ्यां णमुल् प्रत्ययो उदा०—द्व्यहात्यासं गाः पाययति। असमासे—द्व्यहमत्यासम्। त्यासं गाः पाययति, त्र्यहमत्यासम्। द्व्यहतर्षं गाः पाययति, तर्षम् ॥

भाषार्थः—[*क्रियान्तरे*] क्रिया के अन्तर = व्यवधान में [*अस्यतितृषोः*] असु तथा तृष धातुओं से [*कालेषु*] कालवाची द्वि शब्द उपपद रहते, णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदाहरण में द्व्यह द्व्यहतर्ष का अर्थ है, "दो दिन के अन्तर में एवं दो दिन व्यवधा पानी पिलाता है" सो दो दिन के अनन्तर पानी पिलाने की क्रि से क्रियान्तर है ही कालवाची द्वितीयान्त द्व्यह (दो दिन) त्र्यह दिन) भी उपपद हैं, सो अति पूर्वक असु तथा तृष धातु से णमु हो गया है। पूर्ववत् समास विकल्प से होकर द्व्यहम् अत्यासं प्रयोग भी बनेंगे ॥

नाम्न्यादिशिग्रहोः ॥३।४।५८॥

नाम्नि ७।१॥ आदिशिग्रहोः ६।२॥ स०—आदिश्च ग्रहश्च शिग्रहौ, तयोः...इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—द्वितीयायाम्, णमुल् प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—द्वितीयान्ते नामशब्द उपपदे आद

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[सूत्रः]

इत्येताभ्यां धातुभ्यां णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—नामादेशमाचष्टे। नामग्राहमाचष्टे ॥

भाषार्थः—द्वितीयान्त [नाम्नि] नाम शब्द उपपद रहते [आदिशिग्रहोः] आङ् पूर्वक दिश तथा ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—नामादेशमाचष्टे (नाम लेकर कहता है)। नामग्राहमाचष्टे (नाम लेकर कहता है) ॥

अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ ॥३।४।५९॥

अव्यये ७।१॥ अयथाभिप्रेताख्याने ७।१॥ कृञः ५।१॥ क्त्वाणमुलौ १।२॥ स०—अभिप्रेतस्य आख्यानम्, अभिप्रेताख्यानं, षष्ठीतत्पुरुषः। न अभिप्रेताख्यानं अयथाभिप्रेताख्यानं तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः। क्त्वा च णमुल् च क्त्वाणमुलौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अभिप्रेतस्य = इष्टस्य आख्यानं, कथनं यथा कर्त्तव्यं, तथा न भवति = अयथाभिप्रेताख्यानं, तस्मिन् गम्यमाने, अव्यय उपपदे कृञ्धातोः क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—हे ब्राह्मण ! तव पुत्रः शास्त्रार्थे विजयी अभूदिति, किं तर्हि मूर्ख ! नीचैः कृत्याचष्टे। नीचैः कृत्वा, नीचैः कारम्। हे ब्राह्मण तव पुत्रेण वधः कृतः, किं तर्हि मूर्ख ! उच्चैः कृत्याचष्टे। उच्चैः कृत्वा। उच्चैः कारम् ॥

भाषार्थः—[अयथाभिप्रेताख्याने] अयथाभिप्रेताख्यान अर्थात् इष्ट कथन जैसा होना चाहिये, वैसा न होना गम्यमान हो तो [अव्यये] अव्यय शब्द उपपद रहते [कृञः] कृञ् धातु से [क्त्वाणमुलौ] क्त्वा, णमुल् प्रत्यय होते हैं ॥ उदाहरण में कोई किसी से धीरे से कहता है, कि तुम्हारा पुत्र शास्त्रार्थ में विजयी हो गया, सो दूसरा कहता है कि मूर्ख तुम प्रसन्नता की बात को धीरे से क्यों कहते हो, इसी प्रकार किसी ने जोर से कहा कि तुम्हारे पुत्र ने हत्या कर दी, तो दूसरे ने कहा कि तुम निन्दित बात को इतने जोर से क्यों बोल रहे हो, अर्थात् अच्छी बात जोर से कहनी चाहिये, एवं निन्दनीय बात धीरे से कही जाती है, सो यदि हर्ष में जोर से उल्लसित हो कर न कहे तथा निन्दित बात को जोर से हर्ष से बोले तो यह अयथाभिप्रेताख्यान है यही उदाहरणों से प्रकट हो रहा है, अतः उच्चैः नीचैः अव्यय उपपद रहते कृ धातु से क्त्वा णमुल्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रत्यय हो गये हैं ॥ क्त्वा च (२।२।२२) से विकल्प से समा
नीचैःकृत्य नीचैः कृत्वा दो रूप बनेंगे। समास पक्ष में क्त्वा
हो ही जायेगा ॥ णमुल् प्रत्ययान्त नीचैःकारम् में भी
(२।२।२१) से विकल्प से समास होगा, सो पक्ष में नीचैः
बनेगा। ऐसा ही आगे के सूत्रों में समझते जावें ॥

यहाँ से 'कृञः' की अनुवृत्ति ३।४।६० तक तथा 'क्त्वा
की ३।४।६४ तक जायेगी ॥

तिर्यच्यपवर्गे ॥३।४।६०॥

तिर्यचि ७।१ ॥ अपवर्गे ७।१ ॥ अनु०—कृञः, क्त्वाणमुलौ
प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तिर्यक्शब्द उपपदे कृञ्धातोरपवर्गे
क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः। अपवर्गः = समाप्तिः ॥ उदा०—
गतः, तिर्यक् कृत्वा, तिर्यक्कारम् ॥

भाषार्थः—[*तिर्यचि*] तिर्यक् शब्द उपपद रहते [अपवर्गे]
गम्यमान होने पर कृञ् धातु से क्त्वा, णमुल् प्रत्यय होते हैं॥
तिर्यक्कृत्य गतः (सारा उलट पुलट करके चला गया, अर्थात्
वस्तुओं को पीछे फैंक दिया) तिर्यक् कृत्वा, तिर्यक्कारम्॥ अपव
को कहते हैं, सारा उलटना पलटना यही यहाँ अपवर्ग है।
क्त्वा च से विकल्प से समास यहाँ भी जानें। णमुल् में
(२।२।२१) से समास विकल्प से होगा ॥

स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः ॥३।४।६१॥

स्वाङ्गे ७।१ ॥ तस्प्रत्यये ७।१ ॥ कृभ्वोः ६।२ ॥ स०—तस्
यस्मात् स तस्प्रत्ययः शब्दः, तस्मिन्.....बहुव्रीहिः। कृ च भू च
तयोः.....इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—क्त्वाणमुलौ, धातोः, प्रत्ययः,
अर्थः—तस्प्रत्ययान्ते स्वाङ्गवाचिनि शब्द उपपदे कृ, भू
धातुभ्यां क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—मुखतःकृत्य गतः
कृत्वा, मुखतःकारम्। पाणितःकृत्य, पाणितः कृत्वा, पाणि
मुखतोभूय गतः, मुखतो भूत्वा, मुखतो भावम्। पाणितोभू
पाणितो भूत्वा, पाणितो भावम् ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

भाषार्थः—[तस्प्रत्यये] तस् प्रत्ययान्त [स्वाङ्गे] स्वाङ्गवाची शब्द उपपद हों तो [कृभ्वोः] कृ भू धातुओं से क्त्वा णमुल् प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—मुखतःकृत्य गतः (सामने करके चला गया) पाणितःकृत्य (हाथ से करके) मुखतोभूय गतः (सामने होकर चला गया) पाणितोभूय गतः (हाथ से करके चला गया)। शेष उदाहरण संस्कृत भाग के अनुसार जानें ॥ अपादाने चा० (५।४।४५) से मुखतः आदि में तसि प्रत्यय हुआ है, सो ये तस्प्रत्ययान्त स्वाङ्गवाची शब्द हैं। यहाँ भी समास का विकल्प पूर्ववत् जानें ॥

यहाँ से 'कृभ्वोः' की अनुवृत्ति ३।४।६२ तक जायेगी ॥

नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे ॥३।४।६२॥

नाधार्थप्रत्यये ७।१॥ च्व्यर्थे ७।१॥ स०—ना च धा च, नाधौ, तयोरर्थौ नाधार्थौ येषां ते नाधार्थाः (प्रत्ययाः) द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। नाधार्थाः प्रत्यया उत्पद्यन्ते यस्मात् स नाधार्थप्रत्ययः (शब्दः) तस्मिन् ..... बहुव्रीहिः। च्वेः अर्थः, च्व्यर्थः, तस्मिन् ..... षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—कृभ्वोः, क्त्वाणमुलौ, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—च्व्यर्थे नाधार्थः प्रत्ययः उपपदे कृभ्वोर्धात्वोः क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—अनाना नाना कृत्वा गतः = नानाकृत्य गतः, नाना कृत्वा, नानाकारम्। विनाकृत्य, विना कृत्वा, विनाकारम्। अनाना नाना भूत्वा गतः = नानाभूय, नाना भूत्वा, नाना भावं। विनाभूय, विना भूत्वा, विनाभावम्। धार्थ-प्रत्यये—अद्विधा द्विधा कृत्वा = द्विधाकृत्य, द्विधा कृत्वा, द्विधाकारम्। द्वैधंकृत्य, द्वैधं कृत्वा, द्वैधंकारम्। अद्विधा द्विधा भूत्वा गतः = द्विधाभूय, द्विधा भूत्वा द्विधाभावम्। द्वैधंभूय, द्वैधं भूत्वा, द्वैधंभावम् ॥

भाषार्थः—[च्व्यर्थे] च्व्यर्थ में वर्त्तमान [नाधार्थप्रत्यये] नाधार्थ-प्रत्ययान्त शब्द उपपद हों तो कृ भू धातुओं से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—नानाकृत्य गतः (जो अनेक प्रकार का नहीं उसे अनेक प्रकार का बनाकर चला गया)। विनाकृत्य (जो छोड़ने योग्य नहीं उसको छोड़ कर)। नानाभूय (जो भिन्न प्रकार का नहीं वह भिन्न प्रकार का हो करके)। धार्थप्रत्यय उपपद वाले—द्विधाकृत्य (जो दो प्रकार का नहीं उसे दो प्रकार का बनाकर)। द्वैधंकृत्य (जो दो प्रकार का नहीं उसे दो प्रकार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

का बनाकर)। शेष छोड़ दिये गये उदाहरण संस्कृत भाग से जानें। यहाँ केवल अर्थप्रदर्शनार्थ ही उदाहरण दिये हैं॥ चि अभूततद्भाव है, अर्थात् जो नहीं था वह हो गया॥ संख्याया (५।३।४२) से द्विधा में धा प्रत्यय हुआ है। द्वित्र्योश्च धमुञ् से द्वैधं में धमुञ् प्रत्यय हुआ है, सो यह द्वैधं आदि धा प्रत्यय हैं। इसी प्रकार विनञ्भ्यां नानाञौ न सह (५।२।२७) से नाना विन नाञ् प्रत्यय हुए हैं, सो यह नाप्रत्ययान्त शब्द हैं। इनके कृ, भू धातु से क्त्वा णमुल् हो गये हैं। णमुल् परे रहते भू वृद्धि तथा आवादेश होकर भाव् अम् = भावम् बना है॥

तूष्णीमि भुवः ॥३।४।६३॥

तूष्णीमि ७।१॥ भुवः ५।१॥ अनु०—क्त्वाणमुलौ, धातोः, परश्च॥ अर्थः—तूष्णींशब्द उपपदे भूधातोः क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ उदा०—तूष्णींभूय गतः, तूष्णीं भूत्वा, तूष्णींभावम्॥

भाषार्थः—[तूष्णीमि] तूष्णीम् शब्द उपपद हो तो [भुवः] से क्त्वा, णमुल् प्रत्यय होते हैं॥ उदा०—तूष्णींभूय गतः (चुप चला गया) तूष्णीं भूत्वा, तूष्णींभावम्॥ पूर्ववत् यहाँ भी क्त्वा तृतीयाप्रभृ० से समास का विकल्प जानें॥

यहाँ से 'भुवः' की अनुवृत्ति ३।४।६४ तक जायेगी॥

अन्वच्यानुलोम्ये ॥३।४।६४॥

अन्वचि ७।१॥ आनुलोम्ये ७।१॥ अनु०—भुवः क्त्वाणमुलौ, प्रत्ययः, परश्च॥ अनुलोमस्य भावः, आनुलोम्यम् गुणवचनब्राह्मण (५।१।१२३) इति ष्यञ्प्रत्ययः॥ अर्थः—अन्वक्शब्द उपपदे, लोम्ये = आनुकूल्ये गम्यमाने भूधातोः क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ उदा०—अन्वग्भूयास्ते, अन्वग्भूत्वा, अन्वग्भावम्॥

भाषार्थः—[आनुलोम्ये] आनुलोम्य = अनुकूलता गम्यमान हो [अन्वचि] अन्वक् शब्द उपपद रहते भू धातु से क्त्वा, णमुल् होते हैं॥ उदा०—अन्वग्भूयास्ते (अनुकूल बनकर रहता है) भूत्वा, अन्वग्भावम्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् ॥३।४।६५॥

शक……र्थेषु ७।३॥ तुमुन् १।१॥ स०—अस्ति अर्थो येषां तेऽस्त्यर्थाः, बहुव्रीहिः। शकश्च, धृषश्च, ज्ञाश्च, ग्लाश्च, घटश्च, रभश्च, लभश्च, क्रमश्च, सहश्च, अर्हश्च, अस्त्यर्थाश्च, शक……स्त्यर्थाः, तेषु —इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—शकादिषूदेषु धातुमात्रात् तुमुन् प्रत्ययो भवति॥ अक्रियार्थोपपदार्थोऽयमस्मः॥ उदा०—शक्नोति भोक्तुम्। धृष्णोति भोक्तुम्। जानाति क्तुम्। ग्लायति गन्तुम्। घटते शयितुम्। आरभते लेखितुम्। लभते दितुम्। प्रक्रमते रचयितुम्। उत्सहते भोक्तुम्। अर्हति पाठयितुम्। त्यर्थेषु—अस्ति भोक्तुम्। भवति कर्त्तुम्। विद्यते भोक्तुम्॥

भाषार्थः—[शकधृ……र्थेषु] शक, धृष, ज्ञा, ग्ला, घट, रभ, लभ, क्रम, सह, अर्ह तथा अस्ति अर्थ वाली धातुओं (भवति विद्यते आदि) उपपद रहते धातु मात्र से [तुमुन्] तुमुन् प्रत्यय होता है॥ यहाँ क्रियायां० (३।३।१०) से तुमुन् प्राप्त ही था पुनर्विधान क्रिया उपपद न हो तो भी तुमुन् हो जाये इसलिये है॥ उदा०—शक्नोति भोक्तुम् (खाने में कुशल = प्रवीण है)। धृष्णोति भोक्तुम् (खाने में कुशल है)। जानाति पठितुम् (पढ़ने में प्रवीण है)। ग्लायति क्तुम् (जाने में अशक्त है)। घटते शयितुम् (सोने में होशियार है)। रभते लेखितुम् (लिखना आरम्भ करता है)। लभते खादितुम् (भोजन करता है)। प्रक्रमते रचयितुम् (रचना आरम्भ करता है)। उत्सहते क्तुम् (भोजन करने में प्रवृत्त होता है)। अर्हति पाठयितुम् (पढ़ाने कुशल है)। अस्त्यर्थकों के उपपद रहते—अस्ति भोक्तुम् (भोजन । भवति कर्त्तुम् (करना है)। विद्यते भोक्तुम् (भोजन है)॥

यहाँ से 'तुमुन्' की अनुवृत्ति ३।४।६६ तक जायेगी॥

पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ॥३।४।६६॥

पर्याप्तिवचनेषु ७।३॥ अलमर्थेषु ७।३॥ स०—अलमर्थो येषां ते, अलमर्थाः……बहुव्रीहिः॥ पर्याप्तिरुच्यते यैस्ते पर्याप्तिवचनाः, (शब्दाः) क्तादयः॥ अनु०—तुमुन्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अल-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

मर्थेषु पर्याप्तिवचनेषूपपदेषु धातोस्तुमुन् प्रत्ययो भवति॥ पर्याप्तो भोक्तुम्। समर्थो भोक्तुम्। अलं भोक्तुम्॥

भाषार्थः—[*अलमर्थेषु*] अलम् अर्थ = सामर्थ्य अर्थ वाले [वचनेषु] परिपूर्णतावाची शब्दों के उपपद रहते धातु से तुमुन् होता है॥

पर्याप्ति अन्यूनता अर्थात् परिपूर्णता को कहते हैं। यह दो प्रकार से सम्भव है, भोजन के आधिक्य से, अथवा भोजन की समर्थता की अधिकता से। यहाँ 'भोजन के सामर्थ्य की का' ग्रहण हो, अतः 'अलमर्थेषु' को पर्याप्तिवचनेषु का विशेषण है॥ 'अलम्' शब्द के भी कई अर्थ हैं, सो पर्याप्ति अर्थ वाले ग्रहण हो, अतः 'पर्याप्तिवचनेषु' कहा है॥

उदा०—पर्याप्तो भोक्तुम् (खाने में समर्थ है)। समर्थो भोक्तुम्। अलं भोक्तुम्॥

कर्त्तरि कृत् ॥३।४।६७॥

कर्त्तरि ७।१॥ कृत् १।१॥ *अनु०*—धातोः, प्रत्ययः॥ अर्थः—धात्वधिकारे कृत्संज्ञकाः प्रत्ययाः कर्त्तरि कारके भवन्ति॥ उदा०—कारकः, नन्दनः, ग्राही, पचः॥

भाषार्थः—इस धातु के अधिकार में जो सामान्य विहित कृत् संज्ञक प्रत्यय वे [*कर्त्तरि*] कर्त्ता कारक में होते हैं॥

यह सूत्र सामान्य करके जहाँ कृत् प्रत्यय कहे हैं उनको विधान करता है, जहाँ किसी विशेष कारक में कोई कृत् प्रत्यय वहाँ यह सूत्र नहीं लगेगा। जैसे कि *आढ्यसुभग०* (३।२।५६) में ख्युन् कहा है, सो वह करण में ही होगा इस सूत्र से कर्त्ता में कृदतिङ् (३।१।९३) से धात्वधिकार में विहित प्रत्ययों की होती है॥ उदाहरण में तृच्, ण्वुल् आदि कर्त्ता में हुए हैं॥

यहाँ से '*कर्त्तरि*' की अनुवृत्ति ३।४।६९ तक जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[पादः]

भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा ॥३।४।६८॥

भव्य···पात्याः १।३॥ वा अ० ॥ स०—भव्य० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्त्तरि, प्रत्ययः ॥ अर्थः—भव्यादयः शब्दाः कृत्यप्रत्ययान्ताः कर्त्तरि वा निपात्यन्ते ॥ कृत्यप्रत्ययान्तत्वात् *तयोरेव* कृत्य०(३।४।७०) इत्यनेन भावकर्मणोः प्राप्तयोः कर्त्तरि वा निपात्यन्ते पक्षे यथाप्राप्तं भावे कर्मणि च भवतः ॥ उदा०—भवत्यसौ भव्यः, भव्यमनेन वा भव्यः। गेयो माणवकः साम्नाम्, गेयानि माणवकेन सामानि वा। प्रवचनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य, प्रवचनीयो गुरुणा वा। उपस्थानीयः शिष्यो गुरोः, उपस्थानीयः शिष्येण वा गुरुः। जायतेऽसौ जन्यः, जन्यमनेन वा। आप्लवतेऽसौ आप्लाव्यः, आप्लाव्यमनेन वा। आपतत्यसौ, आपात्यः, आपात्यमनेन वा ॥

भाषार्थः—[*भव्य···पात्याः*] भव्य गेयादि कृत्य प्रत्ययान्त शब्द कर्त्ता में [*वा*] विकल्प से निपातन किये जाते हैं। कृत्यसंज्ञक होने से ये शब्द तयोरेव कृत्य० से भाव कर्म में ही प्राप्त थे कर्त्ता में भी निपातन कर दिया है, सो पक्ष में भाव कर्म में ये शब्द होंगे। भव्यादि शब्दों में गेय, प्रवचनीय, उपस्थानीय सकर्मक हैं सो इनसे कर्म में कृत् प्रत्यय प्राप्त थे कर्त्ता में निपातन कर दिया है, अतः पक्ष में कर्म में होंगे, शेष भव्य जन्य आदि अकर्मक हैं, सो पक्ष में उनसे भाव में कृत् प्रत्यय होंगे ॥ उदा०—भव्यः (होने वाला, अथवा इसके द्वारा होने योग्य)। गेयो माणवकः साम्नाम्, गेयानि माणवकेन सामानि वा (सामवेद के मन्त्रों का गान करने वाला लड़का, अथवा लड़के के द्वारा गाये जाने वाले सामवेद के मन्त्र)। प्रवचनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य, प्रवचनीयो गुरुणा वा (वेद का प्रवचन करने वाला गुरु, अथवा गुरु के द्वारा पढ़ाये जाने वाले मन्त्र)। उपस्थानीयः शिष्यो गुरोः, उपस्थानीयः शिष्येण वा गुरुः (गुरु के समीप उपस्थित होने वाला शिष्य, अथवा शिष्य के द्वारा उपस्थित होने योग्य गुरु)। जन्यः (पैदा होनेवाला, अथवा इसके द्वारा पैदा होने योग्य)। आप्लाव्यः (कूद कर जाने वाला, अथवा इसके द्वारा कूदने योग्य)। आपात्यः (गिरने वाला, अथवा इसके द्वारा गिरने योग्य)। 'गेयो माणवकः साम्नाम्' यहाँ साम्नां में षष्ठी कर्तृकर्मणोः कृति (२।३।६५) से हुई है। सिद्धियाँ परिशिष्ट में देखें ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः ॥३।४।६९॥

लः १।३॥ कर्मणि ७।१॥ च अ०॥ भावे ७।१॥ अक ५।३॥ अनु०—कर्त्तरि, धातोः॥ अर्थः—लः=लकाराः धातुभ्यः कर्मणि कारके भवन्ति चकारात् कर्त्तरि च, अ धातुभ्यो लकारा, भावे भवन्ति चकारात् कर्त्तरि च॥ द्विश्च दुभयत्र 'कर्त्तरि' इति सम्बध्यते॥ अकर्मकग्रहणात् सक धातवो स्वयमेवाक्षिप्ता भवन्ति॥ उदा०—सकर्मकेभ्यः कर्मणि विद्या ब्राह्मणेन। कर्त्तरि—पठति विद्यां ब्राह्मणः। अकर्मकेभ्यो आस्यते देवदत्तेन, हस्यते देवदत्तेन। कर्त्तरि—आस्ते देवद देवदत्तः॥

भाषार्थः—सकर्मक धातुओं से [लः] लकार [*कर्मणि*] में होते हैं, [च] चकार से कर्त्ता में भी होते हैं, तथा [अक अकर्मक धातुओं से लकार [*भावे*] भाव में होते हैं तथा [च] कर्त्ता में भी होते हैं॥ दो चकार लगाने से दो बार 'कर्त्तरि' है, सो सकर्मक एवं अकर्मक दोनों धातुओं के साथ कर्त्तरि सापेक्ष होने से लगता है॥ सूत्र में अकर्मकेभ्यः कहा है, 'सकर्मकेभ्यः' का सम्बन्ध कर्मणि के साथ लगता है॥

भाववाच्य, कर्मवाच्य, कर्त्तृवाच्य क्या होता है यह (१।३।१३) सूत्र पर देखें। भाववाच्य कर्मवाच्य में विभक्ति व्यवस्था *अनभिहिते* (२।३।१) सूत्र पर देखें॥ पठ् धातु सक इसलिये उससे लकार कर्मवाच्य तथा कर्त्तृवाच्य में हुए हैं, तथा हस् धातु अकर्मक हैं, अतः भाव और कर्त्ता में लकार हुए हैं।

जिस धातु का कर्म के साथ सम्बन्ध नहीं है वह अकर्मक जिसका कर्म के साथ सम्बन्ध हैं वह सकर्मक धातु होती है। धातु का विद्या कर्म के साथ सम्बन्ध है अतः वह सकर्मक है। हस् का कर्म के साथ न सम्बन्ध है न हो सकता है अतः वह धातु हैं॥ उदा०—सकर्मकों से कर्म में—पठ्यते विद्या (ब्राह्मण के द्वारा विद्या पढ़ी जाती हैं)। कर्त्ता में—पठति विद्यां (ब्राह्मण विद्या पढ़ता है)। अकर्मकों से भाव में—आस्यते (देवदत्त के द्वारा बैठा जाता है)। हस्यते देवदत्तेन (देवदत्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

द:]

सा जाता है)। कर्त्ता में—आस्ते देवदत्तः (देवदत्त बैठता है)। सति देवदत्तः (देवदत्त हँसता है) ॥

यहाँ से 'कर्मणि भावे चाकर्मकेभ्यः' की अनुवृत्ति ३।४।७२ तक योगी ॥

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ॥३।४।७०॥

तयोः ७।२॥ एव अ० ॥ कृत्यक्तखलर्थाः १।३॥ स०—खल् अर्थो येषां खलर्थाः, बहुव्रीहिः। कृत्याश्च क्तश्च खलर्थाश्च, कृत्यक्तखलर्थाः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणि, भावे चाकर्मकेभ्यः, प्रत्ययः ॥ अर्थः—तयोरेव = भावकर्मणोरेव कृत्यसंज्ञकाः, क्त, खलर्थाश्च प्रत्यया भवन्ति, यतात् सकर्मकेभ्यो धातुभ्यो विहिता ये कृत्यसंज्ञकाः, क्त, खलर्थाश्च प्रत्ययास्ते कर्मणि, अकर्मकेभ्यो धातुभ्यो विहिता ये कृत्यक्तखलर्थास्ते भावे भवन्ति ॥ उदा०—कृत्याः कर्मणि—कर्त्तव्यो घटः कुलालेन, भवता ग्रामो गन्तव्यः। कृत्या भावे—आसितव्यं भवता, शयितव्यं भवता। क्त कर्मणि—कृतो घटः कुलालेन। क्तो भावे—आसितं भवता, शयितं भवता। खलर्थाः कर्मणि—ईषत्पच ओदनो देवदत्तेन, सुपचः, दुष्पचः, ईषत्पठा विद्या ब्राह्मणेन, सुपठा दुष्पठा। खलर्थाः भावे—ईषत्स्वपं भवता, सुस्वपम्, दुःस्वपम्, ईषदाढ्यंभवं भवता, स्वाढ्यंभवम्, दुराढ्यंभवम् ॥

भाषार्थः—[कृत्यक्तखलर्थाः] कृत्यसंज्ञक प्रत्यय, क्त तथा खल् अर्थ वाले प्रत्यय [तयोः] भाव और कर्म में [एव] ही होते हैं, अर्थात् सकर्मक धातुओं से विहित जो कृत्य क्त और खलर्थ प्रत्यय वे कर्म में होते हैं तथा अकर्मक धातुओं से विहित जो कृत्य क्त और खलर्थ प्रत्यय वे भाव में होते हैं ॥ क्त तथा खलर्थों के कृत्संज्ञक होने से कर्त्तरि कृत् (३।४।६७) से कर्त्ता में प्राप्त थे, भावकर्म में विधान कर दिया है। ईषद्दुःसुकृच्छ्र अकृच्छ्र अर्थ में खल् प्रत्यय होता है, सो ईषत्, सु, कृच्छ्र अकृच्छ्र अर्थ में विहित जो खल्, युच् प्रत्यय वे खलर्थ प्रत्यय हैं, जिनको यहाँ भाव कर्म में विधान कर दिया है ॥ उदा०—कृत्यों का कर्म में—कर्त्तव्यो घटः कुलालेन (कुम्हार के द्वारा घड़ा बनाया जाना चाहिये) भवता ग्रामो गन्तव्यः (आपके द्वारा ग्राम को जाया जाना चाहिये)। कृत्यों का भाव में—आसितव्यं भवता (आपके द्वारा बैठा जाना चाहिये),

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शयितव्यं भवता (आपके द्वारा सोया जाना चाहिये)। क
कृतो घटः कुलालेन (कुम्हार के द्वारा घड़ा बनाया गया)। क
में—आसितं भवता (आपके द्वारा बैठा गया), शयितं भवत
द्वारा सोया गया)। खलर्थों का कर्म में—ईषत्पच ओद
दत्तेन (देवदत्त के द्वारा चावल पकाया जाना आसान है)
दुष्पचः, ईषत्पठा विद्या ब्राह्मणेन (ब्राह्मण के द्वारा विद्या
आसान है) सुपठा, दुष्पठा। खलर्थों का भाव में—ईषत्
(आपके द्वारा सोना आसान है) सुस्वपम् दुःस्वपम्, ईषदाढ्यं
स्वाढ्यंभवम्, दुराढ्यंभवम्॥ ईषत्पचः आदि में ईषद्
तथा ईषदाढ्यंभवं में कर्त्तृकर्मणोश्च० (३।३।१२७) से 'खल्
है। आस् शीङ् भू तथा स्वप् अकर्मक धातुएँ हैं सो उनसे
प्रत्यय हुए हैं, तथा पच् पठ् आदि सकर्मक हैं, सो उनसे कर्म
हुए हैं। कर्त्तव्यम् में *तव्यत्तव्यानीयरः* (३।१।९६) से तव्य प्रत्यय
जिसकी कृत्य संज्ञा *कृत्याः* (३।१।९५) से हुई है॥ भाव कर्म में
वचन की व्यवस्था *अनभिहिते* (२।३।१) सूत्र पर देखें॥

आदिकर्मणि क्तः कर्त्तरि च ॥३।४।७१॥

आदिकर्मणि ७।१॥ क्तः १।१॥ कर्त्तरि ७।१॥ च अ०॥ स
चादः कर्म च आदिकर्म, तस्मिन्··· ···कर्मधारयस्तत्पुरुषः॥
कर्मणि भावे चाकर्मकेभ्यः, प्रत्ययः॥ *अर्थः*—आदिकर्मणि=क्रि
स्यादिक्तेऽर्थे विहितः क्तः प्रत्ययः कर्त्तरि भवति चकाराद्यथा
भवति॥ *उदा०*—प्रकृतः कटं देवदत्तः, प्रभुक्त ओदनं
कर्मणि—प्रकृतः कटो देवदत्तेन, प्रभुक्त ओदनो देवदत्तेन। भा
देवदत्तेन, प्रभुक्तं देवदत्तेन॥

भाषार्थः—[*आदिकर्मणि*] क्रिया के आरम्भ के आदि
विहित जो [क्तः] क्त प्रत्यय वह [*कर्त्तरि*] कर्त्ता में होता है, [
चकार से यथाप्राप्त भावकर्म में भी होता है। *तयोरेव कृत्यक्त*
'क्त' भाव और कर्म में ही प्राप्त था, कर्त्ता में भी विधान कर दि
आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या (वा० ३।२।१०२) इस वार्त्तिक से
में क्त प्रत्यय का विधान है, उसी को यहाँ कर्त्ता में कह दिया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[प्रत्ययः]

यहाँ भी पूर्ववत् सकर्मक धातुओं से कर्म में तथा अकर्मक से भाव में क्त होगा ऐसा जानें। जिस धातु में कर्म का सम्बन्ध नहीं होगा, वह अकर्मक ही होती है, अतः 'प्रकृतं देवदत्तेन, प्रभुक्तं देवदत्तेन' भाव में बनता है॥ उदा०—प्रकृतः कटं देवदत्तः (देवदत्त ने चटाई बनानी प्रारम्भ की) प्रभुक्त ओदनं देवदत्तः (देवदत्त ने चावल खाना प्रारम्भ किया) कर्म में—प्रकृतः कटो देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा चटाई बनाना प्रारम्भ किया गया) प्रभुक्त ओदनो देवदत्तेन। भाव में—प्रकृतं देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा प्रारम्भ किया गया) प्रभुक्तं देवदत्तेन॥

यहाँ से 'क्तः कर्त्तरि' की अनुवृत्ति ३।४।७२ तक जायेगी॥

गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ॥३।४।७२॥

गत्यर्था ·····भ्यः ५।३॥ च अ०॥ स०- गतिरर्थो येषां ते गत्यर्थाः, बहुव्रीहिः। गत्यर्थाश्च अकर्मकश्च श्लिषश्च शीङ् च स्थाश्च आसश्च वसश्च जनश्च रुहश्च जीर्यतिश्च, गत्यर्था··· जीर्यतयस्तेभ्यः····· इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—क्तः, कर्त्तरि, कर्मणि भावे चाकर्मकेभ्यः, धातोः, प्रत्ययः॥ अर्थः—गत्यर्थेभ्यो धातुभ्योऽकर्मकेभ्यः श्लिषादिभ्यश्च यः क्तो विहितः स कर्त्तरि भवति चकाराद् यथाप्राप्तं भावकर्मणोर्भवति॥ उदा०—गत्यर्थेभ्यः—गतो देवदत्तो ग्रामम्, गतो देवदत्तेन ग्रामः, गतं देवदत्तेन। व्रजितो देवदत्तो ग्रामम्, व्रजितो देवदत्तेन ग्रामः, व्रजितं देवदत्तेन। अकर्मकेभ्यः—ग्लानो देवदत्तः, ग्लानं देवदत्तेन। आसितो देवदत्तः, आसितं देवदत्तेन। श्लिष—उपश्लिष्टा कन्यां माता, उपश्लिष्टा कन्या मात्रा, उपश्लिष्टं भवता। शीङ्—उपशयितो गुरुं देवदत्तः, उपशयितो गुरुर्देवदत्तेन, उपशयितं भवता। स्था—उपस्थितो गुरुं देवदत्तः, उपस्थितो गुरुर्देवदत्तेन, उपस्थितं भवता। आस—उपासितो गुरुं देवदत्तः, उपासितो गुरुर्भवता, उपासितं भवता। वस—अनूषितो गुरुं देवदत्तः, अनूषितो गुरुर्देवदत्तेन, अनूषितं भवता। जन—अनुजातः पुत्रः कन्याम्, अनुजाता पुत्रेण कन्या, अनुजातं पुत्रेण। रुह—आरूढो वृक्षं देवदत्तः, आरूढो वृक्षो देवदत्तेन, आरूढं देवदत्तेन। जॄ—अनुजीर्णो देवदत्तो वृषलम्, अनुजीर्णो देवदत्तेन वृषलः, अनुजीर्णं देवदत्तेन॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भाषार्थः—[*गत्यर्था···जीर्यतिभ्यः*] गत्यर्थक अकर्मक एवं स्था, आस, वस, जन, रुह तथा जॄ धातुओं से विहित जो वह कर्त्ता में होता है, [च] चकार से यथाप्राप्त भाव, होता है। यहाँ भी सकर्मक धातुओं से विहित जो क्त वह अकर्मकों से भाव में होगा, ऐसा जानें, तदनुसार ही अकर्मक से कर्त्ता एवं भाव का उदाहरण दिखाया है॥

उदा०—गत्यर्थकों से—गतो देवदत्तो ग्रामम् (देवदत्त गया)। कर्म में—गतो देवदत्तेन ग्रामः (देवदत्त के द्वारा ग्राम गया)। भाव में—गतं देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा जाया अकर्मकों से—ग्लानो देवदत्तः (देवदत्त ने ग्लानि की) ग्लानं (देवदत्त के द्वारा ग्लानि की गई)। आसितो देवदत्तः (देवदत्त आसितं देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा बैठा गया) श्लिष—कन्यां माता (माता ने कन्या का आलिङ्गन किया)। उपश्लिष्टा मात्रा (माता के द्वारा कन्या का आलिङ्गन किया गया)। भवता (आपके द्वारा आलिङ्गन किया गया)। शीङ्—उप गुरुं देवदत्तः (देवदत्त गुरु जी के पास रहा) उपशायिको देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा गुरुजी के पास रहा गया) भवता (आपके द्वारा रहा गया)। स्था—उपस्थितो गुरुं देवदत्तः (देवदत्त गुरु के पास उपस्थित हुआ) कर्म एवं भाव में उदाहरण संस्कृत में देख लें, आगे से यहाँ अर्थप्रदर्शनार्थ कर्त्तृवाच्य ही दिखाया आस—उपासितो गुरुं देवदत्तः (देवदत्त ने गुरु की उपासना की) वस—अनूषितो गुरुं देवदत्तः (देवदत्त गुरु के पास रहा)। जन—अनुजातः पुत्रः कन्याम् (कन्या के पश्चात् पुत्र पैदा हुआ)। रुह—आरूढो वृक्षं देवदत्तः (देवदत्त पेड़ पर चढ़ा)। जॄ—अनुजीर्णो देवदत्तेन वृषलम् (देवदत्त ने वृषल=नीच को मार २ कर क्षीण कर दिया)॥

दाशगोघ्नौ संप्रदाने ॥३।४।७३॥

दाशगोघ्नौ १।२॥ सम्प्रदाने ७।१॥ *स०*—दाशश्च गोघ्नश्च गोघ्नौ, इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अर्थः*—दाश, गोघ्न इत्येतौ कृदन्तौ सम्प्रदाने कारके निपात्येते॥ कृत्संज्ञकत्वात् कर्त्तरि प्राप्ते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

निपात्येते ॥ दाशृ दानेऽस्माद् धातोः पचाद्यच् (३।१।१३४), दाशन्ति यस्मै इति दाशः। गोघ्न इति टक् प्रत्ययान्तो निपात्यते, गां = दुग्धा-दिकं घ्नन्ति = प्राप्नुवन्ति[1] यस्मै स गोघ्नोऽतिथिः ॥

भाषार्थः—[दाशगोघ्नौ] दाश तथा गोघ्न कृदन्त शब्द [सम्प्रदाने] सम्प्रदान कारक में निपातन किये जाते हैं ॥ कृदन्त होने से कर्त्तरि कृत् से कर्त्ता में प्राप्त थे सम्प्रदान में निपातन कर दिया है ॥ दाशः में दाशृ धातु से पचादि अच् सम्प्रदान कारक में हुआ है तथा गोघ्नः में गो पूर्वक हन् धातु से टक् प्रत्यय निपातन से हुआ है, जो कि प्रकृत सूत्र से सम्प्रदान में हुआ। हन् के 'ह' को कुत्व हो हन्तेर्ञि० (७।३।५४) से तथा उपधा का लोप गमहनजनखनघसां० (६।४।९८) से हुआ है ॥ उदा०—दाशः (जिसके लिए दिया जाता है)। गोघ्नः (गौ का विकार दूध आदि जिसके लिए प्राप्त किया जाता है, ऐसा अतिथि) ॥

भीमादयोऽपादाने ॥३।४।७४॥

भीमादयः १।३॥ अपादाने ७।१॥ स०—भीम आदिर्येषां ते भीमादयस्तेभ्यः.....बहुव्रीहिः ॥ अर्थः—भीमादयः शब्दा औणादिकास्तेऽपादाने कारके भवन्ति ॥ उदा०—बिभ्यति जना अस्मात् स भीमः, भीष्मो वा, बिभेत्यस्मादिति भयानकः ॥

भाषार्थः—[भीमादयः] भीमादि उणादि प्रत्ययान्त शब्द [अपादाने] अपादान कारक में निपातन किये जाते हैं ॥ पूर्ववत् कर्त्ता में प्राप्त होने पर अपादान में निपातन हैं ॥ भियः षुग् वा (उणा० १।१४८) इस उणादि सूत्र से ञिभी भये धातु से मक् प्रत्यय तथा विकल्प से षुक् आगम होकर भीमः (जिससे लोग डरते हैं) भीष्मः बना है। भयानकः में पूर्ववत् 'भी' धातु से आनकः शीङ्भियः (उणा० ३।८२) इस उणादि सूत्र से आनक प्रत्यय हुआ है। गुण अयादेश होकर भयानकः बना।

---

१. यहां 'हन हिंसागत्योः' धातुपाठ में पढ़े होने से घ्नन्ति का अर्थ प्राप्त करना है, क्योंकि गति के ज्ञान, गमन और प्राप्ति तीन अर्थ होते हैं। गौ का अर्थ भी यहां निरुक्त के प्रमाण से (नि० २।५) गौ का विकार दूध या चमड़ा आदि है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ताभ्यामन्यत्रोणादयः ॥३।४।७५॥

ताभ्याम् ५।२॥ अन्यत्र अ० ॥ उणादयः १।३॥ स०-[illegible] र्येषां ते उणादयः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—प्रत्ययः ॥ अर्थः-[illegible] प्रत्ययास्ताभ्याम् = सम्प्रदानापादानाभ्यामन्यत्र कारकेऽपि [illegible] कृत्संज्ञकत्वात् कर्त्तर्येव प्राप्ते कर्मादिष्वपि विधीयन्ते ॥ [illegible] कृष्यतेऽसौ = कृषिः, तन्यते इति तन्तुः, वृत्तमिति वर्त्म, [illegible] मिति चर्म ॥

भाषार्थः—ताभ्याम् पद से यहाँ उपर्युक्त सम्प्रदान और [illegible] लिये गये हैं ॥ [*उणादयः*] उणादि प्रत्यय [*ताभ्याम्*] संप्रद[illegible] अपादान कारकों से [*अन्यत्र*] अन्यत्र कर्मादि कारकों में भी हों [illegible] उणादि प्रत्यय *कृदतिङ्* (३।१।९३) से कृत्संज्ञक होते हैं, से [illegible] ही प्राप्त थे अन्य कारकों में भी विधान कर दिया ॥

कृषिः (खेती) में *इगुपधात् कित्* (उणा० ४।१२०) इस [illegible] सूत्र से कृष धातु से इन् प्रत्यय तथा इन् को कित्वत् कार्य हुआ [illegible] कि प्रकृत सूत्र से कर्त्ता में हुआ। तन्तुः (धागा) में तन् धातु [illegible] *निगमि०* (उणा० १।६९) से तुन् प्रत्यय हुआ है, जो कि [illegible] कर्म में हुआ। चर्म वर्त्म की सिद्धि ३।३।२ सूत्र पर देखें ॥

क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः ॥३।४।७६॥

क्तः १।१॥ अधिकरणे ७।१॥ च अ० ॥ ध्रौव्य···र्थेभ्यः ५।३॥ [illegible] ध्रौव्यञ्च गतिश्च प्रत्यवसानञ्च, ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानानि, [illegible] ते ध्रौव्य·····र्थास्तेभ्यः·····द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ अनु०—[illegible] प्रत्ययः ॥ अर्थः—ध्रौव्यार्थाः = स्थित्यर्थकाः (अकर्मकाः) प्रत्यवसान[illegible] अभ्यवहारार्थाः। स्थित्यर्थेभ्यः (अकर्मकेभ्यः) गत्यर्थेभ्यः प्रत्यवसान[illegible] धातुभ्यो यः क्तो विहितः सोऽधिकरणे कारके भवति, चकारा[illegible] प्राप्तं भावकर्मकर्त्तृषु ॥ *उदा०*—अकर्मकेभ्योऽधिकरणे-इदमेषा[illegible] इदमेषां स्थितम्। भावे—आसितं तेन, स्थितं तेन। कर्त्तरि—[illegible] देवदत्तः, स्थितो देवदत्तः। गत्यर्थेभ्योऽधिकरणे-इदमेषां यातम्, [illegible] गतम्। कर्मणि-यातो देवदत्तेन ग्रामः, गतो देवदत्तेन ग्रामः। भावे [illegible] देवदत्तेन, गतं देवदत्तेन। कर्त्तरि—यातो देवदत्तो ग्रामं, गतो [illegible]

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ग्रामम्। प्रत्यवसानार्थेभ्योऽधिकरणे—इदमेषां भुक्तम्, भुक्त ओदनो देवदत्तेन। भावे—देवदत्तेन भुक्तम्॥

भाषार्थः-[ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः] ध्रौव्यार्थक = स्थित्यर्थक (अकर्मक) गत्यर्थक तथा प्रत्यवसानार्थक धातुओं से विहित जो [क्तः] क्त प्रत्यय वह [अधिकरणे] अधिकरण कारक में होता है [च] तथा चकार से यथाप्राप्त भाव कर्म कर्त्ता में भी होता है॥ पूर्ववत् ही यहाँ भी अकर्मक धातुओं से क्त कर्त्ता एवं भाव में होगा, तथा सकर्मक से कर्त्ता एवं कर्म में होगा, ऐसा जानें॥ *गत्यर्थाकर्मकश्लिष०*(३।४।७२)से गत्यर्थक तथा अकर्मक धातुओं से विहित क्त कर्त्ता में भी होता है, सो आसितो देवदत्तः, यातो देवदत्तो ग्रामम् आदि कर्त्ता के उदाहरण भी दिये हैं। अकर्मक धातुओं से जब कर्म का सम्बन्ध नहीं होगा तब वे अकर्मक ही मानी जायेंगी तो भाव में क्त होगा, जैसे कि 'यातं देवदत्तेन' में है॥

ध्रौव्य अकर्मक धातुओं के उपलक्षण के लिये है, प्रत्यवसानार्थ अभ्यवहारार्थ (खाने पीने योग्य) को कहते हैं॥ इदमेषाम् आसितम् (यह इनके बैठने का स्थान) इदमेषां स्थितम् (यह इनके ठहरने का स्थान) यहाँ 'एषां' में *अधिकरणवाचिनश्च* (२।३।६८) से षष्ठी विभक्ति हुई है॥

लस्य ॥३।४।७७॥

लस्य ६।१॥ अर्थः—इतोऽग्रे आ तृतीयाध्यायपरिसमाप्तेः (३।४।११७) वक्ष्यमाणानि कार्याणि लकारस्यैव स्थाने भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्यः॥ लस्येति सामान्यस्य निर्देशस्तेन लकारमात्रस्य ग्रहणं भवति—लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ् इत्येतेषां दशलकाराणाम्॥ अग्र उदाहरिष्यामः॥

भाषार्थः—[लस्य] लस्य यह अधिकार सूत्र है, पादपर्यन्त जायेगा। यहाँ से आगे जो कार्य कहेंगे, वे लकार के स्थान में हुआ करेंगे, ऐसा जानना चाहिए॥ *लस्य* यहाँ 'ल' का सामान्य निर्देश है, अतः *लस्य* से लकार मात्र (दसों लकारों का) का ग्रहण होता है॥

तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिङ्वहिमहिङ् ॥३।४।७८॥

तिप्त·····महिङ् १।१॥ स०—तिप्तस्झि० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—लस्य, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—धातोः, तिप्-तस्-झि,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सिप्-थस्-थ, मिप्-वस्-मस्, (परस्मैपदम्), त-आताम्-झ, थास्-
ध्वम्, इट्-वहि-महिङ् (आत्मनेपदम्) इत्येते अष्टादश आदेशाः,
लकारस्य स्थाने भवन्ति ॥ तत्र नव आदेशाः परस्मैपदिनां धातू
च आत्मनेपदिनाम् ॥ उदा०—परस्मैपदिभ्यः—पठति, पठतः
पठसि पठथः पठथ, पठामि पठावः पठामः। आत्मनेपदिभ्यः—
एधेते एधन्ते, एधसे एधेथे एधध्वे, एधे एधावहे, एधामहे। एवं
लकारेषूदाहार्यम् ॥

भाषार्थः—लकार = लट्, लिट् आदि के स्थान में [तिप्...
तिप्तस् झि आदि १८ प्रत्यय होते हैं। इनमें ९ तिप् तस् आदि धातुओं से, तथा शेष ९ आत्मनेपदी धातुओं से होते हैं ॥ पठ् शप्
पठति बना। पठन्ति की सिद्धि परि० १।१।२ के पचन्ति के समान
पठामि आदि में *अतो दीर्घो यञि* (७।३।१०१) से दीर्घ होगा। ए
त = एधते बना। यहाँ सर्वत्र टित आत्म० (३।४।७९) से टि
एत्व होता है। एधेते, एधेथे की सिद्धि परि० १।१।११ के पचेते के
जानें। एधन्ते में पठन्ति के समान शप् को पररूप होगा। 'एध् अ
यहाँ *थासः से* (३।४।८०) से थास् को 'से' होकर एधसे बना है।
वहे में भी *अतो दीर्घो यञि* से दीर्घ होगा ॥

ये सब आदेश यहाँ लट् के स्थान में हुए हैं। इसी प्रकार
दसों लकारों के स्थान में भी ये आदेश होंगे, सो जानें ॥

टित आत्मनेपदानां टेरे ॥३।४।७९॥

टितः ६।१॥ आत्मनेपदानाम् ६।३॥ टेः ६।१॥ ए लुप्तप्रथमान्तनिर्दि
अनु०—लस्य, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—टितो लकारस्य
नेपदादेशास्तेषां टेः एकारादेशो भवति ॥ उदा०—एधते, एधेते ॥

---

१. इस लस्य प्रकरण के सारे उदाहरणों की सिद्धियों का अच्छा
करने के लिये पाठक हमारी बनाई 'सरलतम विधि' तृ० सं० पृष्ठ ७६ से
में की गई भू एध के दसों लकारों की सिद्धियाँ देख सकते हैं। प्रायः इस
के सम्पूर्ण सूत्र उसमें आ जाते हैं। यद्यपि यहाँ भी हमने पूर्व की गई
पता दिया है, एवं जो नहीं की गई उसे परि० में किया है। इन सबको
देख लेने पर सुदृढ़ अभ्यास हो जाने से पुनः नया संस्कार जागृत होकर
प्रकरण का तत्त्व समझ में आ जायेगा ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दः]

भाषार्थः—[टितः] टित् जो लकार अर्थात् लट् लिट् लुट् लृट् लेट् लृङ् इन छः लकारों के जो [आत्मनेपदानाम्] आत्मनेपद के आदेश 'त आताम् झ' आदि, उनके [टेः] टि भाग को [ए] एकार आदेश हो जाता है॥ टि संज्ञा *अचोऽन्त्यादि टि* (१।१।६३) से होती है॥

यहाँ से 'टितः' की अनुवृत्ति ३।४।८० तक जायेगी॥

थासस्से ॥३।४।८०॥

थासः ६।१॥ से लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः॥ अनु०—टितः, लस्य॥ अर्थः—यो लकारसम्बन्धिनो यः 'थास्' (आदेशः) तस्य स्थाने 'से' आदेशो भवति॥ उदा०—एधसे, पचसे॥

भाषार्थः—टित् ६ लकारों के स्थान में जो [थासः] थास् आदेश-के स्थान में [से] से आदेश होता है॥ यहाँ लट् लकार का ही उदा-हरण दिया है, ऐसे ही टित् छहों लकारों में 'से' आदेश होगा, ऐसा जानें॥ एधसे की सिद्धि ३।४।७८ सूत्र में देख लें॥

लिटस्तझयोरेशिरेच् ॥३।४।८१॥

लिटः ६।१॥ तझयोः ६।२॥ एशिरेच् १।१॥ स०—तझ० इत्यत्रेतरे-तरद्वन्द्वः। एश् च इरेच् च, एशिरेच् समाहारो द्वन्द्वः॥ अर्थः—लिडा-देशयोस्तझयोः स्थाने यथासङ्ख्यम् एश् इरेच् इत्येतावादेशौ भवतः॥ उदा०—त—पेचे, लेभे। झ—पेचिरे, लेभिरे॥

भाषार्थः—[लिटः] लिट् के स्थान में जो [तझयोः] त और झ आदेश उनको यथासङ्ख्य करके [एशिरेच्] एश् तथा इरेच् आदेश होते हैं॥ लिट् लकार में सिद्धि परि० १।२।६ के समान जानें। केवल यहाँ यही विशेष है कि *अत एकहल्मध्ये०* (६।४।१२०) से अभ्यास का लोप एवं अभ्यास से उत्तर 'अ' को एत्व हो जाता है॥

यहाँ से 'लिटः' की अनुवृत्ति ३।४।८२ तक जायेगी॥

परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ॥३।४।८२॥

परस्मैपदानाम् ६।३॥ णलतु……माः १।३॥ स०—णल० इत्यत्रेतरे-तरद्वन्द्वः॥ अनु०—लिटः॥ अर्थः—लिडादेशानां परस्मैपदसंज्ञकानां तिबा-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दीनां स्थाने यथासंख्यं णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस्, व, व, म इत्येते नव आदेशा भवन्ति ॥ उदा०—पपाठ पेठतुः पेठुः पेठिथ पेठथुः पेठ, पपाठ पपठ, पेठिव, पेठिम ॥

भाषार्थः—लिट् लकार के [परस्मैपदानाम्] परस्मैपदसंज्ञक तिबादि आदेश उनके स्थान में, यथासंख्य करके [णल्...] णल् अतुस् आदि ६ आदेश हो जाते हैं ॥ पेठतुः पेठुः, आदि में *अत एकहल्मध्ये अनां०* (६।४।१२०) से अभ्यास लोप तथा शेष पूर्व निर्दिष्ट सिद्धियों के अनुसार ही जानें। णलुत्तमो वा (से उत्तम पुरुष का णल् विकल्प से णित्वत् माना जाता है, पक्ष में *अत उपधायाः* (७।२।११६) से वृद्धि होकर पपाठ, में वृद्धि न होकर पपठ बन गया है ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ३।४।८४ तक जायेगी॥

विदो लटो वा ॥३।४।८३॥

विदः ५।१॥ लटः ६।१॥ वा अ० ॥ अनु०—परस्मैपदानां णल्... थुसणल्वमाः, धातोः ॥ *अर्थः*—विद ज्ञाने, इत्यस्माद्धातोः परो तस्य परस्मैपदसंज्ञकानां तिबादीनां स्थाने यथासंख्यं णलादयो वा विकल्पेन भवन्ति ॥ उदा०—वेद विदतुः विदुः वेत्थ विदथुः विद विद्व विद्म। पक्षे लडेव—वेत्ति, वित्तः, विदन्ति, वेत्सि, वित्थ, वेद्मि, विद्वः, विद्मः ॥

भाषार्थः—[*विदः*] विद ज्ञाने धातु से परे [*लटः*] (तिप् आदि) जो परस्मैपद संज्ञक उनके स्थान में क्रम से णल् आदि ६ आदेश [*वा*] विकल्प से होते हैं, अर्थात् वर्त्तमान वेद वेत्ति दोनों प्रयोग होंगे॥ वेत्ति में *खरि च* (८।४।५५) द् को है ॥ शेष पूर्ववत् ही जानें ॥ उदा०—वेद (जानता है) विदुः जानते हैं)। पक्ष में—वेत्ति (जानता है) वित्तः ॥

यहाँ से '*लटो वा*' की अनुवृत्ति ३।४।८४ तक जायेगी॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ॥३।४।८४॥

ब्रुवः ५।१॥ पञ्चानाम् ६।३॥ आदितः अ० ॥ आहः १।१॥ ब्रुवः ६।१॥ लुटो वा परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः, धातोः ॥ अर्थः—ब्रू धातोरुत्तरो यो लट्, तस्यादिभूतानां परस्मैपदसंज्ञकानां पञ्चानां वादीनां स्थाने यथाक्रमं पञ्चैव णलादय आदेशा विकल्पेन भवन्ति, तत् नियोगेन च ब्रुवः स्थाने आह इत्ययमादेशो भवति ॥ उदा०—आह आहतुः आहुः, आत्थ आहथुः । पक्षे लडेव—ब्रवीति ब्रूतः ब्रुवन्ति, ब्रवीषि ब्रूथः ॥

भाषार्थः—[ब्रुवः] ब्रू धातु से परे जो लट् लकार, उसके स्थान में परस्मैपद संज्ञक [आदितः] आदि के [पञ्चानाम्] पाँच आदेश (तिप् तस् झि सिप् थस्) उनके स्थान में क्रम से पाँच ही णल्, तुस्, उस्, थल्, अथुस् ये आदेश विकल्प से हो जाते हैं, तथा इन आदेशों के साथ साथ [ब्रुवः] ब्रूञ् धातु को [आहः] आह आदेश भी हो जाता है ॥

लोटो लङ्वत् ॥३।४।८५॥

लोटः ६।१॥ लङ्वत् अ०॥ लङ इव लङ्वत्, षष्ठ्यन्तात् (५।१।११५) वतिः ॥ अर्थः—लोट्लकारस्य लङ्वत् कार्यं भवति । अतिदेशसूत्रमिदम् ॥ उदा०—पचताम्, पचतम्, पचत, पचाव, पचाम ॥

भाषार्थः—यह अतिदेश सूत्र है ॥ [लोटः] लोट् लकार को [लङ्] लङ् के समान कार्य हो जाते हैं ॥ लङ्वत्, अतिदेश होने से लङ् के लकारों को कहे हुए *तस्थस्थमिपां०* (३।४।१०१) से ताम् तम् त अम् आदेश लोट् को भी हो जाते हैं, सो लोट् के तस् को ताम् होकर पचताम् लोट् के थस् को तम् होकर पचतम्, तथा थ को त होकर पचत, बना इसी प्रकार लङ्वत् अतिदेश होने से पचाव पचाम में *नित्यं ङितः* (३।४।९९) से ङित् लकारों को कहा हुआ सकार लोप यहाँ भी हो जाता है पच् शप् व यहाँ *आडुत्तमस्य पिच्च* (३।४।९२) से आट् आगम होकर पच् अ आट् व = पचाव, पचाम बन गया ॥

यहाँ से 'लोटः' की अनुवृत्ति ३।४।९३ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

एरुः ॥३।४।८६॥

एः ६।१॥ उः १।१॥ अनु०—लोटः॥ अर्थः—लोडादेशस्य स्थाने उकारादेशो भवति ॥ उदा०—पचतु पचन्तु ॥

भाषार्थः—लोट् लकार के जो तिप् आदि आदेश उनके [एः] को [उः] उकार आदेश होता है ॥ ति तथा अन्ति (झि) के सो इनके इ को उ हो गया है ॥ लोडादेश सिप् तथा मिप् को उकार नहीं होता क्योंकि इन्हें 'हि' और 'नि' आदेश किये हैं ॥

सेर्ह्यपिच्च ॥३।४।८७॥

सेः ६।१॥ हि लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ अपित् १।१॥ च स०—न पित् अपित्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—लोटः॥ अर्थः—तस्य सिपः स्थाने 'हि' इत्ययमादेशो भवति, अपिच्च भवति स च उदा०—लुनीहि, पुनीहि, राध्नुहि, तक्ष्णुहि ॥

भाषार्थः—लोडादेश जो [सेः] सिप् उसके स्थान में [हि] हि होता है [च] और वह [अपित्] अपित् भी होता है॥ सिप्ति उसके स्थान में हुआ आदेश 'हि' भी स्थानिवद्भाव से पित् था अतः अपित् कर दिया है ॥

यहाँ से 'सेर्ह्यपित्' की अनुवृत्ति ३।४।८८ तक जायेगी॥

वा छन्दसि ॥३।४।८८॥

वा अ० ॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—'सेर्ह्यपित्' लोटः॥ अर्थः—सूत्रेण सिपः स्थाने यो हिर्विधीयते, स वेदविषये विकल्पेन भवति। पूर्वेण नित्यमपिति प्राप्ते विकल्प्यते ॥ उदा०—युयोधि राणमेनः (यजु० ४।१६) जुहोधि, जुहुधि। प्रीणाहि प्रीणीहि ॥

भाषार्थः—पूर्व सूत्र से जो लोट् को हि विधान किया है [छन्दसि] वेद विषय में [वा] विकल्प से अपित् होता है॥ नित्य अपित् प्राप्त था विकल्प कर दिया है॥ युयोधि बहुलम् (३।१।८५) से व्यत्यय होने से शप् को श्लु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

...तः श्लौ (६।१।१०) से द्वित्व भी हो जायगा। जुहुधि की सिद्धि परि० ...३।१६६ में देखें। पित् पक्ष में जुहोधि युयोधि गुण होकर बनेगा, ...था अपित् पक्ष में जुहुधि बनेगा। प्रीणीहि में अपित् पक्ष में ङित्वत् ...१।२।४) होने से ई *हल्यघोः* (६।४।११३) से ईत्व हुआ है। पित् पक्ष ...ईत्व न होकर प्रीणाहि बनेगा॥

मेर्निः ॥३।४।८९॥

मेः ६।१॥ निः १।१॥ अनु०—लोटः॥ अर्थः—लोडादेशस्य मिपः ...ने 'नि' इत्ययमादेशो भवति॥ उदा०—पठानि पचानि॥

भाषार्थः—लोडादेश जो [*मेः*] मिप् उसके स्थान में [*निः*] नि ...देश हो जाता है॥ *आडुत्तमस्य०* (३।४।९२) से आट् आगम होकर ...द्धि जानें॥

आमेतः ॥३।४।९०॥

आम् १।१॥ एतः ६।१॥ अनु०—लोटः॥ अर्थः—लोट्सम्बन्धिन ...रस्य स्थाने 'आम्' आदेशो भवति॥ लोटष्टित्वात् *टित आत्मने-...०* (३।४।७९) इति सूत्रेण यदेत्वं भवति तस्येह 'आम्' विधीयते॥ ...०—पचताम् पचेताम् पचन्ताम्॥

भाषार्थः—लोट् सम्बन्धी जो [*एतः*] एकार उसे [*आम्*] आम् ...देश होता है॥ लोट् के टित् होने से *टित आत्मनेपदा०* से जो टि ...को एत्व प्राप्त था, उसी को यह सूत्र आम् करता है॥

यहाँ से 'एतः' की अनुवृत्ति ३।४।९१ तक जायेगी॥

सवाभ्यां वामौ ॥३।४।९१॥

सवाभ्यां ५।२॥ वामौ १।२॥ स०—सश्च वश्च सवौ, ताभ्याम्..... ...तरद्वन्द्वः। वश्च अम् च वामौ, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—एतः, लोटः॥ ...—सकारवकाराभ्यामुत्तरस्य लोट्सम्बन्धिन एकारस्य स्थाने यथा-...म् व, अम् इत्येतावादेशौ भवतः॥ उदा०—पचस्व पचध्वम्॥

भाषार्थः—[*सवाभ्याम्*] सकार वकार से उत्तर लोट् सम्बन्धी एकार ...स्थान में, यथासङ्ख्य करके [*वामौ*] व और अम् आदेश हो जाते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

हैं ॥ पच् शप् थास् यहाँ *थासः से* (३।४।८०) से थास् को से 'पचसे' बना, उस स् के ए को व होकर पचस्व (तू पका) बनता शप् ध्वम् यहाँ *टित आत्मने०* से टि भाग को ए होकर पचध्वे अब ए को इस सूत्र से अम् होकर पचध्वम् बन गया ॥

आडुत्तमस्य पिच्च ॥३।४।९२॥

आट् १।१॥ उत्तमस्य ६।१॥ पित् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—
अर्थः—लोट्सम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्याडागमो भवति स च पित् उदा०—करवाणि, करवाव, करवाम ॥

भाषार्थः—लोट् सम्बन्धी [उत्तमस्य] उत्तम पुरुष को [आट्] आगम हो जाता है, [च] और वह आट् [पित्] पित् हो जाता है ॥

यहाँ से 'उत्तमस्य' की अनुवृत्ति ३।४।९३ तक जायेगी ॥

एत ऐ ॥३।४।९३॥

एतः ६।१॥ ऐ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ अनु०—उत्तमस्य
अर्थः—लोटसम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्य य एकारस्तस्य स्थाने ऐ मादेशो भवति ॥ उदा०—करवै, करवावहै, करवामहै ॥

भाषार्थः—लोट् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष का जो [एतः] उसके स्थान में [ऐ] 'ऐ' आदेश होता है ॥ परि० ३।४।९२ से सब कार्य होकर 'करव् आट् इट्' रहा। *टित आत्म०* (३।४।७९) तथा उस 'ए' को प्रकृत सूत्र से ऐ एवं *आटश्च* (६।१।९०) वृद्धि होकर करवै आदि की सिद्धि जानें ॥

लेटोऽडाटौ ॥३।४।९४॥

लेटः ६।१॥ अडाटौ १।२॥ स०—अडाटौ इत्यत्रेतरेत
अर्थः—लेटोऽट्, आट् इत्येतौ आगमौ पर्यायेण भवतः ॥ जीवाति शरदः शतम्। भवति, भवाति, भविषति, भविषाति ॥

भाषार्थः—[लेटः] लेट् लकार को [अडाटौ] अट्, आट् पर्याय से होता है ॥ सिद्धि परि० ३।१।३४ में देखें ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ से 'लेटः' की अनुवृत्ति ३।४।९८ तक जायेगी ॥

आत ऐ ॥३।४।९५॥

आतः ६।१॥ ऐ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ अनु०—लेटः ॥ अर्थः—लेट्सम्बन्धिन आकारस्य स्थाने ऐकारादेशो भवति ॥ आत्मनेपदेषु आताम्, आथाम्, इत्यत्र आकारो विद्यते तस्येह कार्यमुच्यते ॥ उदा०—एधिषैते एधिषैते एधैते एधैते । एधिषैथे एधिषैथे, एधैथे एधैथे ॥

भाषार्थः—लेट् सम्बन्धी जो [आतः] आकार उसके स्थान में [ऐ] ऐकारादेश होता है ॥ आत्मनेपद के आताम्, आथाम् में आकार है, उसी आकार को यहाँ ऐ होता है ॥

यहाँ से 'ऐ' की अनुवृत्ति ३।४।९६ तक जायेगी ॥

वैतोऽन्यत्र ॥३।४।९६॥

वा अ० ॥ एतः ६।१॥ अन्यत्र अ० ॥ अनु०—ऐ, लेटः ॥ अर्थः—लेट्सम्बन्धिन एकारस्य स्थाने वा ऐकारादेशो भवत्यन्यत्र, अर्थात् 'आत ऐ' इत्येतत्सूत्रविषयं वर्जयित्वा ॥ उदा०—एधतै एधातै एधते एधाते । एधिषतै एधिषातै, एधिषते एधिषाते । एधन्तै एधान्तै एधन्ते एधान्ते एधिषन्तै एधिषान्तै, एधिषन्ते एधिषान्ते । एधसै एधासै, एधसे एधासे । एधिषसै, एधिषासै, एधिषसे एधिषासे । एधध्वै एधाध्वै एधध्वे एधाध्वे, एधिषध्वै एधिषाध्वै एधिषध्वे एधिषाध्वे । एधै, एधे, एधिषै, एधिषे । एधवहै एधावहै, एधवहे एधावहे । एधिषवहै एधिषावहै, एधिषवहे, एधिषावहे । एधमहै एधामहै, एधमहे एधामहे, एधिषमहै एधिषामहै एधिषमहे एधिषामहे । अहमेव पशूनामीशै सप्ताहानि शयै, मदग्रा एव वो ग्रहा गृह्यान्तै, मद्देवतान्येव वः पात्राणि उच्यान्तै । न च भवति—यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ॥

भाषार्थः—लेट् सम्बन्धी जो [एतः] एकार उसके स्थान में ऐकारादेश [वा] विकल्प से होता है [अन्यत्र] अन्यत्र अर्थात् आत ऐ सूत्र के विषय को छोड़कर ॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति ३।४।९८ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ॥३।४।९७॥

इतः ६।१॥ च अ० ॥ लोपः १।१॥ परस्मैपदेषु ७।३॥ वा लेटः ॥ अर्थः—परस्मैपदविषयस्य लेट्सम्बन्धिन इकारस्य भवति ॥ उदा०—भविषत् भविषात्, भाविषत् भाविषात् भाविषाति, भवत् भवात् । प्रचोदयात् । पक्षे—भवति भवाति । षत् । तारिषत् । पतति विद्युत् ॥

भाषार्थः—[*परस्मैपदेषु*] परस्मैपद विषय में लेट् लकार [*इतः*] इकार का [च] भी विकल्प से [*लोपः*] लोप हो जाता सिद्धि परि० ३।१।३४ में देखें ॥

यहाँ से '*लोपः*' की अनुवृत्ति ३।४।१०० तक जायेगी॥

स उत्तमस्य ॥३।४।९८॥

सः ६।१॥ उत्तमस्य ६।१॥ अनु०—लोपः, लेटः, वा॥ लेट्सम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्थस्य सकारस्य वा लोपो भवति॥ भविषाव, भविषाम । पक्षे भविषावः, भविषामः ॥

भाषार्थः—लेट् सम्बन्धी [*उत्तमस्य*] उत्तम पुरुष के [सः] का लोप विकल्प से हो जाता है ॥ विस्तार से लेट् के रूप सूत्र पर दर्शाये हैं, वहीं देख लें, सिद्धि भी परि० ३।१।३४ में देखें॥

यहाँ से '*स उत्तमस्य*' की अनुवृत्ति ३।४।९९ तक जायेगी॥

नित्यं ङितः ॥३।४।९९॥

नित्यम् १।१॥ ङितः ६।१॥ अनु०—स उत्तमस्य, लोपः, अर्थः—ङित्लकारसम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्य सकारस्य नित्यं लोपो उदा०—अपचाव अपचाम ॥

भाषार्थः—[*ङितः*] ङित् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष के [*नित्यम्*] नित्य ही लोप हो जाता है ॥ लङ् लिङ् लुङ् लुट् ङित् लकार हैं । वस्, मस् के सकार का नित्य लोप होकर में 'अट् पच् अ व' रहा । *अतो दीर्घो यञि* (७।३।१०१) से अपचाव अपचाम बना है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

यहाँ से 'नित्यम्' की अनुवृत्ति ३।४।१०० तक तथा 'ङितः' की ३।४।१०१ तक जायेगी ॥

इतश्च ॥३।४।१००॥

इतः ६।१॥ च अ० ॥ अनु०—नित्यं ङितः, लोपः, लस्य ॥ अर्थः—ङित्लकारसम्बन्धिन इकारस्य नित्यं लोपो भवति ॥ उदा०—अपचत्, अपचन्, अपचम्। अपठीत् ॥

भाषार्थः—ङित् लकार सम्बन्धी [इतः] इकार का [च] भी नित्य लोप हो जाता है ॥ अन्ति के इकार का लोप होकर 'अन्त्' रहा, खरः संयोगान्तस्य० (८।२।२३) से तकार लोप होकर 'अपचन्' लङ् लकार में बना है। अपठीत् की सिद्धि परि० १।१।१ में देखें ॥

तस्थस्थमिपां तांतंतामः ॥३।४।१०१॥

तस्थस्थमिपाम् ६।३॥ तांतंतामः १।३॥ स०—तश्च थस् च थश्च मिप् च, तस्थस्थमिपः, तेषां·····इतरेतरद्वन्द्वः। ताम् च तम् च तश्च अम् च, तांतंतामः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—ङितः लस्य ॥ अर्थः—ङित्-लकारसम्बन्धिनां तस्, थस्, थ, मिप् इत्येतेषां स्थाने यथासंख्यं ताम् तम् त अम् इत्येते आदेशा भवन्ति ॥ उदा०—अपचताम्, अपचतम्, अपचत, अपचम् ॥

भाषार्थः—ङित् लकार सम्बन्धी जो [तस्थस्थमिपाम्] तस्, थस्, थ, मिप् उनके स्थान में यथासंख्य करके [तांतंतामः] ताम्, तम् त और अम् आदेश होते हैं ॥ लङ् लकार में अपचताम् आदि बने हैं। सिद्धियों में कुछ भी विशेष नहीं है ॥

लिङः सीयुट् ॥३।४।१०२॥

लिङः ६।१॥ सीयुट् १।१॥ अर्थः—लिङ्लकारस्य सीयुट् आगमो भवति ॥ उदा०—पचेत, पचेयाताम्, पचेरन् ॥

भाषार्थः—[लिङः] लिङ् लकार को [सीयुट्] सीयुट् आगम होता है ॥ पच् शप् सीयुट् सुट् त=पच् अ सीय् स् त इस अवस्था में लिङः सलोपो० (७।२।७९) से दोनों सकारों का लोप होकर पच ईय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

त, रहा आद् गुणः (६।१।८४) लोपो व्यो० (६।१।६४) लोप
गया। पचेरन् में झस्य रन् (३।४।१०५) से झ के स्थान में र
हो गया है, शेष पूर्ववत् है॥

यहाँ से 'लिङः' की अनुवृत्ति ३।४।१०८ तक जायेगी॥

यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ॥३।४।१०३॥

यासुट् १।१॥ परस्मैपदेषु ७।३॥ उदात्तः १।१॥ ङित् १।१॥ च
अनु०—लिङः॥ अर्थः—परस्मैपदविषयस्य लिङो यासुडागमो
स चोदात्तो भवति, ङिच्च॥ उदा०—कुर्यात् कुर्याताम् कुर्युः॥

भाषार्थः—[परस्मैपदेषु] परस्मैपद विषयक लिङ् लकार को [
यासुट् का आगम होता है [च] और वह [उदात्तः] उदात्त तथा
ङित्वत् भी माना जाता है॥ आगम अनुदात्त होते हैं, अतः
अनुदात्त प्राप्त था, सो उदात्त कहा है॥

यहाँ से 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तः' की अनुवृत्ति ३।४।१०५
जायेगी॥

किदाशिषि ॥३।४।१०४॥

कित् १।१॥ आशिषि ७।१॥ अनु०—यासुट् परस्मैपदेषूदात्तः, लि
अर्थः—आशिषि विहितस्य परस्मैपदविषयस्य लिङो यासुट् विधी
किदुदात्तश्च भवति॥ उदा०—उच्यात् उच्यास्ताम्, इज्यात् इज्यास्
जागर्यात् जागर्यास्ताम्॥

भाषार्थः—[आशिषि] आशीर्वाद में विहित परस्मैपद संज्ञक
को जो यासुट् आगम कहा है, वह [कित्] कित् और उदात्त होता
कित् तथा ङित् दोनों में गुण प्रतिषेध कार्य समान हैं, किन्तु वहाँ
करने के विशेष प्रयोजन ये हैं कि कित् परे रहते संप्रसारण तथा
धातु को गुण हो जावे। वच् तथा यज् धातु को यासुट् के कित् हो
वचिस्वपियजा० (६।१।१५) से सम्प्रसारण होकर उच्यात् इज्यात्
है, तथा जागर्यात् में यासुट् के कित् करने से जाग्रोऽविचि० (
से गुण हो जाता है, क्योंकि वहाँ ङित् परे रहते गुण निषेध

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सो कित् परे रहते हो ही जायेगा ॥ उच्यास्ताम् आदि में *तस्थस्थमिपां०* (३।४।१०१) से तस् को ताम् हुआ है ॥

झस्य रन् ॥३।४।१०५॥

झस्य ६।१॥ रन् १।१॥ अनु०—लिङः ॥ अर्थः—लिङादेशस्य झस्य 'रन्' आदेशो भवति ॥ उदा०—पचेरन् यजेरन् ॥

भाषार्थः—लिङादेश जो [झस्य] झ उसको [रन्] रन् आदेश होता है ॥

इटोऽत् ॥३।४।१०६॥

इटः ६।१॥ अत् १।१॥ अनु०—लिङः ॥ अर्थः—लिङादेशस्य इटः स्थाने 'अत्' इत्ययमादेशो भवति ॥ उदा०—पचेय यजेय कृषीय ॥

भाषार्थः—लिङ् आदेश जो [इटः] 'इट्' (उत्तमपुरुष का) उसके स्थान में [अत्] 'अत्' आदेश होता है ॥ 'पच् शप् सीय् इट्' पूर्ववत् होकर *लिङः सलोपो०* (७।२।७९) से सकार लोप, तथा प्रकृत सूत्र से इट् के स्थान में अत् आदेश होकर, पच ईय् अ = पचेय बन गया ॥

सुट् तिथोः ॥३।४।१०७॥

सुट् १।१॥ तिथोः ६।२ ॥ स०—ति च थ च, तिथौ, तयोः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—लिङः ॥ अर्थः—लिङ्सम्बन्धिनोस्तकारथकारयोः 'सुट्' आगमो भवति ॥ उदा०—एधिषीष्ट एधिषीष्ठाः। भूयात् भूयास्ताम्। पचेत ॥

भाषार्थः—लिङ् सम्बन्धी जो [*तिथोः*] तकार और थकार उनको [सुट्] सुट् का आगम होता है ॥ ति में इकार उच्चारणार्थ है। परस्मैपद के थस् एवं थ को *तस्थस्थमिपां०* से क्रम से तम् त आदेश हो जाते हैं, अतः परस्मैपद के थकार के आगम का उदाहरण नहीं दिया जा सकता ॥ सुट् आगम तकार थकार मात्र को कहा है अतः विधिलिङ् एवं आशीर्लिङ् में आत्मनेपदी परस्मैपदी सभी धातुओं से सुट् होता है, पर विधिलिङ् के सार्वधातुक होने से *लिङः सलोपो०* (७।२।७९) से सकार लोप होकर श्रवण नहीं होता, आशीर्लिङ् में श्रवण होता है ॥ एधिषीष्ट की सिद्धि परि० १।२।११ के भित्सीष्ट के समान जानें। एधि-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

षीष्टाः थास् में बनेगा ॥ भूयात् में 'स्कोः संयोगाद्यो० (८।२।२९) सकार का लोप होगा, तथा पुनः इसी सूत्र से यासुट् के सकार भी हो जायेगा ॥ पचेत की सिद्धि परि० ३।१।६८ के पठेत् के जानें ॥

झेर्जुस् ॥३।४।१०८॥

झेः ६।१॥ जुस् १।१॥ अनु०—लिङः ॥ अर्थः—लिङादेश स्थाने जुस् आदेशो भवति ॥ उदा०—पचेयुः पच्यासुः। भूयासुः ॥

भाषार्थः—लिङादेश जो [झेः] 'झि' (परस्मैपद में) उसको जुस् आदेश हो जाता है ॥ विधिलिङ् आशीर्लिङ् दोनों में ही जुस् हो जायेगा ॥ पचेयुः भवेयुः में सूत्र ३।४।१०२ के समान सार्व० होकर, प्रकृत सूत्र से झि को जुस् हो जायेगा ॥ आशीर्लिङ् में यास् झि = पच् यास् उस् = रुत्व विसर्गादि होकर पच्यासुः बन जा विधिलिङ् में सार्वधातुक होने से शप् प्रत्यय होता है, पर आशी लिङाशिषि (३।४।११६) से आर्धधातुक संज्ञक होता है अतः वहाँ विकरण नहीं होता ॥

यहाँ से 'झेर्जुस्' की अनुवृत्ति ३।४।११२ तक जायेगी ॥

सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ॥३।४।१०९॥

सिजभ्यस्तविदिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—सिच् च अभ्यस्त विदिश्च, सिजभ्यस्तविदयस्तेभ्यः ·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—झेर्जुस् लस्य, मण्डूकप्लुतगत्या ङित इत्यप्यनुवर्त्तते, नित्यं ङित इत्यतः ॥ सिचः परस्य, अभ्यस्तसंज्ञकेभ्यो वेत्तेश्चोत्तरस्य ङितो झेर्जुस् भवति ॥ उदा०—सिच्—अकार्षुः, अहार्षुः। अभ्यस्तसंज्ञकेभ्यः—अबिभयुः, अजुहवुः, अजागरुः। वेत्तेः—अविदुः ॥

भाषार्थः—[सिजभ्यस्तविदिभ्यः] सिच् से उत्तर अभ्यस्तसंज्ञक उत्तर, तथा विद् धातु से उत्तर [च] भी झि को जुस् आदेश है ॥ अभ्यस्त और विदि का ग्रहण सिच् परे न रहने पर अर्थात् में भी झि को जुस् हो जावे इसलिए है ॥ यहाँ प्रश्न यह है कि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लकार में झि को जुस् क्यों नहीं होता ? इसका उत्तर यह है कि यहाँ 'ङितः' की अनुवृत्ति मण्डूकप्लुतगति से आती है सो ङित् लकार (लङ्) के ही झि को जुस् होगा ॥

यहाँ से 'सिचः' की अनुवृत्ति ३।४।११० तक जायेगी ॥

आतः ३।४।११०॥

आतः ५।१॥ अनु०—झेर्जुस्, सिचः ॥ अर्थः—पूर्वेणैव प्राप्ते, नियमार्थमिदं सूत्रम्। सिचः=सिजलुकि, आकारान्तादेव झेर्जुस् भवति ॥ उदा०—अदुः। अधुः। अस्थुः ॥

भाषार्थः—पूर्व सूत्र से ही झि को जुस् प्राप्त था, पुनः यह सूत्र नियमार्थ है॥ सिच् से उत्तर (सिच् लुगन्त से उत्तर) यदि झि को जुस् हो तो [आतः] आकारान्त धातु से उत्तर ही हो ॥ यहाँ 'सिचः' एवं 'आतः' दोनों में पञ्चमी है, सो दोनों से अनन्तर झि सम्भव नहीं, अतः सिचः से यहाँ सिच् लुगन्त, अर्थात् जहाँ सिच् का लुक् हो जावे वहीं का ग्रहण होता है। प्रत्ययलक्षण से वहाँ सिच् से उत्तर 'झि' होगा तथा श्रुति से आकारान्त धातु से उत्तर भी हो ही जायगा ॥ दा धा स्था इन धातुओं के सिच् का लुक् *गातिस्थाघुपाभूभ्यः०* (२।४।७७) से हुआ है ॥

यहाँ से 'आतः' की अनुवृत्ति ३।४।१११ तक जायेगी ॥

लङः शाकटायनस्यैव ॥३।४।१११॥

लङः ६।१॥ शाकटायनस्य ६।१॥ एव अ०॥ अनु०—आतः, झेर्जुस्॥ अर्थः—आकारान्तादुत्तरस्य लङादेशस्य झेर्जुस् आदेशो भवति, शाकटायनस्याचार्यस्य मतेन ॥ उदा०—अयुः, अवुः। अन्येषां मते—अयान्, अवान् ॥

भाषार्थः—आकारान्त धातुओं से उत्तर [लङः] लङ् के स्थान में जो झि आदेश उसको जुस् आदेश होता है [शाकटायनस्य] शाकटायन आचार्य के मत में [एव] ही ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ३।४।११२ तक जायेगी ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

द्विषश्च ॥३।४।११२॥

द्विषः ५।१॥ च अ० ॥ अनु०—लङः शाकटायनस्यैव, झेर्जुस् अर्थः—द्विष्धातोरुत्तरस्य लङादेशस्य झेर्जुस् आदेशो भवति, शाकटायनस्यैवाचार्यस्य मतेन ॥ उदा०—अद्विषुः । अन्येषां मते—अद्विषन्

भाषार्थः—[द्विषः] द्विष् धातु से परे [च] भी लङादेश को उसके स्थान में जुस् आदेश होता है, शाकटायन आचार्य के ही मत अन्यों के मत में नहीं होगा, सो अद्विषन् (उन्होंने द्वेष किया) बनेगा

तिङ्शित् सार्वधातुकम् ॥३।४।११३॥

तिङ्शित् १।१॥ सार्वधातुकम् १।१॥ स०—श् इत् यस्य सः बहुव्रीहिः ॥ तिङ् च शित् च, तिङ्शित्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु० धातोः प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—धातोः विहिताः तिङः शितश्च प्रत्ययाः सार्वधातुकसंज्ञका भवन्ति ॥ उदा०—नयति, स्वपिति रोदिति । यजमानः, यजमानः ॥

भाषार्थः—धातु से विहित जो [तिङ्शित्] तिङ् तथा शित् शकार जिनका इत् जाये, उन प्रत्ययों की [सार्वधातुकम्] सार्वधातुक संज्ञा होती है ॥ शप् के शित् होने से सार्वधातुक संज्ञा होकर सार्वधातुकाश्रित *सार्वधातु०* (७।३।८४) से 'नी' को गुण होता है। स्वपि रोदिति में तिप् की सार्वधातुक संज्ञा होने से *रुदादिभ्यः सार्वधातुके* (७।२।७६) से इट् आगम हो गया है। स्वप् इट् ति = स्वपिति बना *अदिप्रभृतिभ्यः०* (२।४।७२) से शप् का लुक् हो ही जायेगा। पचमानः की सिद्धि परि० ३।२।१२४ में देखें। यजमानः में भी इसी प्रकार केवल यहाँ पूङ्यजोः *शानन्* (३।२।१२८) से शानन् प्रत्यय होता है।

आर्धधातुकं शेषः ॥३।४।११४॥

आर्धधातुकम् १।१॥ शेषः १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परः अर्थः—धातोर्विहिताः शेषाः (तिङ्शिद्भिन्नाः) प्रत्यया आर्धधातुकसंज्ञका भवन्ति ॥ तिङशितं वर्जयित्वाऽन्यः प्रत्ययः शेषः ॥ उदा०—लविता, लवितुम्, लवितव्यम् ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

भाषार्थः—[शेषः] शेष, अर्थात् तिङ्शित् से जो शेष बचे, धातु से विहित प्रत्यय, उनकी [आर्द्धधातुकम्] आर्द्धधातुक संज्ञा होती है ॥ तृच् तुमुन् तव्य प्रत्यय तिङ्शित् से शेष हैं सो आर्द्धधातुक संज्ञक हैं। आर्धधातुक संज्ञा होने से सार्वधातु० (७।३।८४) से गुण तथा आर्धधातु-कस्ये० (७।२।३५) से इट् आगम हो जाता है ॥

यहाँ से 'आर्द्धधातुकम्' की अनुवृत्ति ३।४।११७ तक जायेगी ॥

लिट् च ॥३।४।११५॥

लिट् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—आर्द्धधातुकम् ॥ अर्थः—लिडादेशा ये तिबादयस्त आर्द्धधातुकसंज्ञका भवन्ति ॥ उदा०—पेचिथ शेकिथ उल्ले मम्ले ॥

भाषार्थः—[लिट्] लिडादेश जो तिबादि उनकी [च] भी आर्द्धधा-तुक संज्ञा होती है ॥

लिङाशिषि ॥३।४।११६॥

लिङ् १।१॥ आशिषि ७।१॥ अनु०—आर्द्धधातुकम् ॥ अर्थः—आशिषि विषये यो लिङ् स आर्धधातुकसंज्ञको भवति ॥ उदा०—लवि-षीष्ट, एधिषीष्ट ॥

भाषार्थः—[आशिषि] आशीर्वाद अर्थ में जो [लिङ्] लिङ् वह आर्धधातुक संज्ञक होता है ॥ परि० १।२।११ के समान सिद्धि जानें। पूर्ववत् यहाँ भी आर्धधातुक संज्ञा होने से इट् आगम होता है ॥

छन्दस्युभयथा ॥३।४।११७॥

छन्दसि ७।१॥ उभयथा अ० ॥ अर्थः—छन्दसि विषय उभयथा सार्वधातुकम् आर्धधातुकं च भवति, अर्थात् यस्य सार्वधातुकसंज्ञा विहिता तस्यार्द्धधातुकसंज्ञाऽपि भवति, यस्यार्द्धधातुकसंज्ञा कृता तस्य सार्वधातुकसंज्ञाऽपि भवति ॥ उदा०—वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयः (ऋ० ७।९९।७)। स्वस्तये नावमिवारुहेम। लिट् सार्वधातुकम्—ससृवांसो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

विश्रुण्विरे, सोममिन्द्राय सुन्विरे। लिङ् उभयथा भवति—दृष्टो शरणं बृहन्तम् ॥

भाषार्थः—[*छन्दसि*] वेद विषय में [*उभयथा*] दोनों सार्व आर्धधातुक संज्ञायें होती हैं, अर्थात् जिसकी सार्वधातुक संज्ञा हो उसकी आर्धधातुक संज्ञा भी होती है, तथा जिसकी आर्धधातुक कही है उसकी सार्वधातुक संज्ञा भी होती है, अथवा एक ही दोनों संज्ञायें हो जाती हैं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परिशिष्टम्

परि० वृद्धिरादैच् (१।१।१)

(१) सूत्र प्रयोजन—'भागः' इस उदाहरण में वृद्धिरादैच् सूत्र का बताना ही कार्य है, कि जब अत उपधायाः (७।३।११६) से भज् के उपधा अकार को वृद्धि प्राप्त हुई, तो प्रकृत सूत्र ने बताया कि वृद्धि किसे कहते हैं॥

(१) भागः (भजन = सेवन करना)

भज सेवायाम्, भूवादयो धातवः (१।३।१) से भू से लेकर चुरादि गण के (चु० पर०) अन्त तक जो धातुपाठ में पढ़े, क्रियावाची शब्द हैं, उनकी धातु संज्ञा होती है, सो 'भज' धातु संज्ञक हुआ। उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१।३।२) से उपदेश[1] में जो अनुनासिक अच् उसकी अर्थात् जँ[1] के अँ की इत् संज्ञा हो गई। मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः (१।१।८) से मुख और नासिका से बोले जाने वाले 'अं' की अनुनासिक संज्ञा हो गई। अब तस्य लोपः (१।३।९) से अँ की इत्संज्ञा होने से लोप हुआ। अदर्शनं लोपः (१।१।५९) ने अदर्शन = न दिखाई पड़ने, की लोप संज्ञा कही। सो शेष रहा—

भज्

घातोः (३।१।९१) यह अधिकार सूत्र है, भावे (३।३।१८) प्रत्ययः (३।१।१) परश्च (३।१।२) इनसे भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय परे (भज् से परे) होकर

भज् घञ्

हलन्त्यम् (१।३।३) से अन्तिम हल् 'ञ्' की इत् संज्ञा तथा लशकतद्धिते (१।३।८) से प्रत्यय के आदि 'घ्' की इत्

---

१. उपदेश ५ हैं—अष्टाध्यायी, धातुपाठ, उणादिसूत्र, गणपाठ, तथा लिङ्गानुशासनम्। भज वास्तव में 'भजँ' था, पर लगभग गत २००० वर्षों से ये अनुनासिक चिह्न सर्वथा लुप्त हो गये हैं, जो अब बताने ही पड़ते हैं॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

संज्ञा होकर, *तस्य लोपः* (१।३।९) अदर्शनं लोपः (
से दोनों (ञ्, घ्) का लोप हुआ, अब

भज् अ *यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्* (१।४।१३)
की अङ्ग संज्ञा हुई, क्योंकि जिससे प्रत्यय का वि
उस प्रत्यय के परे रहने पर, उससे पहले पहले
भाग है, उसकी अङ्ग संज्ञा होती है। अङ्गस
यह अधिकार सूत्र है। अब इस अङ्गाधिकार में
अत उपधायाः (७।२।११६) सूत्र से अङ्ग के उपधा
को वृद्धि प्राप्त हुई। उपधा किसे कहते हैं? वह
न्यात् पूर्वं उपधा (१।१।६४) ने बताया कि अन्त्य
पूर्व (वर्ण) की उपधा संज्ञा होती है, सो भज् के
उपधा संज्ञा हुई। प्रकृत सूत्र *वृद्धिरादैच्* ने आ, ऐ
तीनों वर्णों की वृद्धि संज्ञा की, अतः अकार के स्थ
तीनों वृद्धि संज्ञक आ, ऐ, औ प्राप्त हुए, तीनों में
करना है तो कौनसा वर्ण हो, इसका निर्णय स्थानेऽ
तमः (१।१।४९) परिभाषा सूत्र ने किया कि स्थानेय
अन्तरतम = सदृशतम हो, वह हो, सो 'अ' का सदृश
'आ' है, अतः, 'आ' वृद्धि होकर

भाज् अ पुनः अङ्गाधिकार में वर्त्तमान *चजोः कु घिण्ण्यतोः* (७
से घित् (घ् इत् संज्ञा वाले) अ के परे रहते ज
वर्ग आदेश प्राप्त हुआ, *स्थानेऽन्तरतमः* (१।१।५०)
को ग् हुआ

भाग् अ = भाग, अब *कृदतिङ्* (३।१।९३) से घञ् की कृत् संज्ञा
से *कृत्तद्धितसमासाश्च* (१।२।४६) से 'भाग' के कृदन्त
के कारण उसकी प्रातिपदिक संज्ञा हुई। *ङ्याप्प्रातिप*
(४।१।१) यह अधिकार सूत्र है। *स्वौजसमौट्छ*
भ्यांभ्यस्ङसिभ्यांभ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् (४
प्रत्ययः परश्च (३।१।१,२) प्रातिपदिक से २१ प्रत्यय

---

१. वर्णों का सादृश्य उनके स्थान, और प्रयत्न की समानता को लेकर है, जो वर्णोच्चारणशिक्षा से जान लेना चाहिए॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्राप्त हुये, हमें एक ही लाना है। तब *सुपः* (१।४।१०२) से इन २१ प्रत्ययों के तीन-तीन के जुट की क्रम से एक-वचन, द्विवचन, तथा बहुवचन संज्ञा हुई, *विभक्तिश्च* (१।४।१०३) से सबकी (२१ प्रत्ययों की) विभक्ति संज्ञा हुई, अब *प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा* (२।३।४६) से प्रथमा विभक्ति के एकवचन, द्विवचन, बहुवचन संज्ञक ३ प्रत्यय प्राप्त हुये शेष १८ हट गये। *द्व्येकयोर्द्विवचनैक-वचने* (१।४।२२) ने कहा कि एकवचन की विवक्षा (कहने की इच्छा) में एकवचन का प्रत्यय हो, सो 'भाग' से परे एकवचन का प्रत्यय 'सुँ' आया, शेष दो हट गये।

भाग सुँ *मुखनासिकावचनो०* (१।१।८) *उपदेशेऽजनुनासिक इत्* (१।३।२) से 'उँ' की इत् संज्ञा होकर *तस्य लोपः* (१।३।९) *अदर्शनं लोपः* (१।१।५९) से लोप हो गया।

भाग स् अब *सुप्तिङन्तं पदम्* (१।४।१४) से सुप् अन्त वाले, 'भागस्' की पद संज्ञा हुई। *पदस्य* (८।१।१६) यह अधिकार सूत्र है। सो अब पदाधिकार में वर्त्तमान, *ससजुषो रुः* (८।२।६६) से पद के अन्त के स् को 'रुँ' हो गया।

भाग रुँ तथा पूर्ववत् रुँ के उँ की इत् संज्ञा होकर लोप हो गया।

भाग र् *विरामोऽवसानम्* (१।४।१०९) से विराम की अवसान संज्ञा होकर *खरवसानयोर्विसर्जनीयः* (८।३।१५) से अवसान 'र्' को विसर्जनीय होकर—

भागः बन गया॥

भागः के समान ही, यज धातु से यागः (यज्ञ करना), त्यज से त्यागः (त्याग करना) की सिद्धि भी समझनी चाहिये। पठ से पाठः, तप से तापः, पत से पातः, इत्यादि सैकड़ों शब्दों की सिद्धि भी इसी प्रकार कर लेनी चाहिए॥

नोटः—सिद्धि समझने के पश्चात् उपरिनिर्दिष्ट 'सूत्र प्रयोजन' पुनः समझना चाहिये, ताकि बुद्धि में दृढ़ हो जावे॥

———

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(२) सूत्र प्रयोजन—'नायकः' इस उदाहरण में जब नी [illegible] अचो ञ्णिति (७।२।११५) से वृद्धि होने लगी, तो वृद्धिरादैच् सूत्र [illegible] कि वृद्धि कहते किसे हैं। बस इस सूत्र का इस उदाहरण में [illegible] कार्य है॥

(२) नायकः (ले चलने वाला, नेता)

णीञ् प्रापणे	भूवादयो धातवः (१।३।१) से धातु संज्ञा होकर [illegible] (१।३।३) से अन्त्य 'ञ्' की इत् संज्ञा, तथा [illegible] (१।३।९) से पूर्ववत् लोप होकर
णी	णो नः (६।१।६३) से धातु के आदि ण् को न् होकर
नी	धातोः (३।१।९१) यह अधिकार सूत्र है। [illegible] धातोः अधिकार में वर्त्तमान ण्वुल्तृचौ (३।१।१३३) [illegible] परश्च (३।१।१,२) से धातु (नी) से परे ण्वुल् प्रत्यय [illegible]
नी ण्वुल्	कर्त्तरि कृत् (३।४।६७) से यह ण्वुल्, कर्त्ता [illegible] वाच्य में होता है। अब चुटू (१।३।७) से प्रत्यय के 'ण्' की इत् संज्ञा, तथा हलन्त्यम् (१।३।३) से [illegible] की इत् संज्ञा, एवं पूर्ववत् लोप हो गया। यस्मात् प्र
नी वु	ध्यिस्तदादि० (१।४।१३) अङ्गस्य (६।४।१) से 'नी' [illegible] संज्ञा हुई। युवोरनाकौ (७।१।१) से अङ्ग के वु [illegible] अन तथा अक आदेश प्राप्त हुए, सो यु, वु [illegible] (जिसके स्थान में आदेश हो) भी दो हैं, एवं अक [illegible] आदेश भी दो हैं, तो किसके स्थान में कौनसा [illegible] हो? तब इसका निर्णय यथासङ्ख्यमनुदेशः समाः [illegible] ३।१०) इस परिभाषा सूत्र ने किया, कि समान [illegible] वाले आदेशों को यथाक्रम अनुदेश होते हैं, अर्थात् [illegible] के स्थान में पहला, दूसरे के स्थान में दूसरा [illegible] होते हैं, अतः यहाँ भी यु के स्थान में अन, वु के [illegible] अक प्राप्त होने से 'वु' को अक हो गया।
नी अक	पुनः अङ्गाधिकार में वर्त्तमान अचो ञ्णिति (७ [illegible] से अजन्त अङ्ग 'नी' को णित् परे मानकर, वृद्धि [illegible] हुई। वृद्धिरादैच् से आ, ऐ, औ तीनों की वृद्धि [illegible]

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

स्थानेऽन्तरतमः (१।१।४९) से 'ई' का सदृशतम ऐ हुआ। *संहितायाम्* (६।१।७२) यह अधिकार सूत्र है। *एचोऽयवायावः* (६।१।७५) से एच् (ए, ओ, ऐ, औ) के स्थान में अय्, अव् आय् आव् आदेश प्राप्त हुये। यहाँ भी सम सङ्ख्या वाले ४ ही आदेश एवं ४ ही अनुदेश हैं, सो *यथासङ्ख्यमनुदेशः०* (१।३।१०) लगकर 'ऐ' के स्थान में आय् आदेश हुआ।

आय् अक पूर्ववत् *कृदतिङ्* (३।१।९३) *कृत्तद्धितसमासाश्च* (१।२।४६) से 'नायक' की कृदन्त मान कर प्रातिपदिक संज्ञा हुई, पुनः पूर्ववत् सु आकर विसर्जनीय हो गया।

नायकः बना॥

इसी प्रकार चिञ् चयने धातु से चायकः (चुनने वाला), ष्टुञ् स्तुतौ से स्तावकः (स्तुति करने वाला) बनेगा। स्तावकः में इतना ही विशेष है कि *धात्वादेः षः सः* (६।१।६२) से धातु के आदि ष् को स् होकर अन्त में ट् को भी त् होकर स्तु रह गया, शेष सब पूर्ववत् है। पूङ् पवने, पावकः (पवित्र करने वाला) बनता है। पठ व्यक्तायां वाचि तथा पचष् पाके धातु से *अत उपधायाः* (७।२।११६) से उपधा अकार को वृद्धि होकर पाठकः (पढ़ने वाला) पाचकः (पकाने वाला) बनते हैं॥

डुकृञ् करणे धातु से *कारकः* (करने वाला) बनता है, इसकी सिद्धि में जो विशेष है वह निम्नलिखित है—

कृञ् पूर्ववत् धातु संज्ञा होकर *आदिर्ञिटुडवः* (१।३।५) से 'डु' की इत् संज्ञा तथा *हलन्त्यम्* (१।३।३) से ञ् की इत् संज्ञा, एवं लोप होकर

कृ+ण्वुल = अक, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर *अचो ञ्णिति* (७।२।११५) से वृद्धि प्राप्त हुई *वृद्धिरादैच्* *स्थानेऽन्तरतमः* (१।१।४९) से 'ऋ' के स्थान में सदृशतम वृद्धि प्राप्त हुई, परन्तु ऋ के स्थान में आ, ऐ, औ में से किसी का भी सादृश्य (स्थान, प्रयत्न) नहीं मिलता, तब यह सूत्र असफल रह गया, ऐसी दशा में नया परिभाषा (निर्णय करने वाला) सूत्र. उरण्र-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परः (१।१।५०) लगा, इसने कहा कि ऋ के स्थान
(अ, इ, उ) होते होते रपर = रपरे वाला हो
'आर्' वृद्धि होकर

कार् अक शेष सब पूर्ववत् ही होकर
कारकः बना।

इसी प्रकार हृञ् हरणे धातु से हारकः (हरण करने
जानें॥

———

(३) सूत्र प्रयोजन—शालीयः इस उदाहरण में वृद्धिरादैच्
इतना ही कार्य है, कि शाला शब्द के आदि 'आ' की वृद्धिरादैच्
संज्ञा होकर वृद्धिर्यस्याचामा० (१।१।७२) से वृद्ध संज्ञा हो गई,
वृद्धाच्छः (४।२।११३) से वृद्ध संज्ञा होने से छ प्रत्यय हो गया।

(३) शालीयः (शालायां भवः, शाला में होने वाला, कोई पद

शाला अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् (१।२।४५) से
की प्रातिपदिक संज्ञा हुई, ङ्याप्प्रातिपदिकात्
आदि सब भागः के समान ही सूत्र लगाकर
करणम् (१।४।४५) सप्तम्यधिकरणे च (२।३।३६) से
विभक्ति की विवक्षा में 'ङि' प्रत्यय आया

शाला ङि अब समर्थानां प्रथमाद्वा (४।१।८२) से समर्थ
ङि' सुबन्त से आगे, प्रत्यय की उत्पत्ति हो
अनुमति मिल गयी, तब शेषे (४।२।९१) में
(४।२।५३) सूत्र से भव अर्थ में शैषिक प्रत्यय (
अण्) प्राप्त हुआ। अब प्रकृत वृद्धिरादैच् सूत्र से
के आदि 'आ' की वृद्धि संज्ञा हुई, वृद्धि
से, वृद्धिर्यस्याचामा० (१।१।७२) से वृद्ध संज्ञा
समुदाय की हो गई। शाला की वृद्ध संज्ञा हो
कारण शैषिक अधिकार में वर्त्तमान वृद्धाच्छः
प्रत्ययः परश्च (३।१।१,२) सूत्र से औत्सर्गिक
बाधकर 'छ' प्रत्यय भव अर्थ में हुआ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शब्द.]

शाला ङि छ, *तद्धिताः* (४।१।७६) से 'छ' की तद्धित संज्ञा हुई। *कृत्तद्धितसमासाश्च* (१।२।४६) से तद्धितान्त समुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा होकर, *सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१) से प्रातिपदिक के अन्तर्गत जो 'ङि' सुप् है, उसका लुक् हो गया। *प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः* (१।१।६०) से प्रत्यय के अदर्शन की लुक् संज्ञा होती है, सो ङि का लुक् अर्थात् अदर्शन हो गया।

शाला छ *यस्मात् प्रत्ययविधि०* (१।४।१३) *अङ्गस्य* (६।४।१) से शाला की अङ्ग संज्ञा होकर, अङ्गाधिकार में वर्त्तमान *आयनेयीनीयियः फढ०* (७।१।२) *यथासङ्ख्यमनुदेशः०* (१।३।१०) से छ को क्रम प्राप्त ईय् आदेश हो गया।

शाला ईय् अ *यचि भम्* (१।४।१८) से स्वादियों में यकारादि एवं अजादि प्रत्यय के परे रहते पूर्व की 'भ' संज्ञा होती है, सो ईय् अजादि प्रत्यय के परे रहते 'शाला' की भ संज्ञा हो गई। *भस्य* (६।४।१२९) यह अधिकार सूत्र है। अब भस्य अधिकार में वर्त्तमान *यस्येति च* (६।४।१४८) सूत्र से तद्धित संज्ञक ईय् परे रहते शाला के 'ला' के 'आ' का लोप हुआ, *अदर्शनं लोपः* (१।१।५९) से अदर्शन की लोप संज्ञा हुई।

शाल ईय् अ पूर्ववत् *कृत्तद्धितसमासाश्च* (१।२।४६) से शालीय की प्रातिपदिक संज्ञा होने से, स्वाद्युत्पत्ति के सब सूत्र लगकर 'सु' को विसर्जनीय हो गया। तब—

शालीयः बना।

इसी प्रकार माला शब्द से मालायां भवः = मालीयः (माला में होने वाला, मूंगा मोती आदि) की सिद्धि जानें॥

---

(४) सूत्र प्रयोजन—औपगवः इस उदाहरण में 'अण्' को मानकर उपगु शब्द के आदि अच् को जब *तद्धितेष्वचामा०* (७।२।११७) से वृद्धि प्राप्त हुई, तो *वृद्धिरादैच्* सूत्र ने बताया कि वृद्धि किसे होती है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(४) **औपगवः** (उपगोरपत्यम्, उपगु नाम वाले व्यक्ति की

उपगु ङस् समर्थानां प्रथमाद्वा (४।१।८२) तस्यापत्यम् (४।१।९२)
व्यतोऽण् (४।१।८३) प्रत्ययः, परश्च (३।१।१,२) से
'उपगु ङस्' सुबन्त से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय

उपगु ङस् अण्, तद्धिताः (४।१।७६) कृत्तद्धितसमा० (१।२।४६)
धातुप्रातिपदिकयोः (२।४।७१) प्रत्ययस्य लुक्

उपगु अण् हलन्त्यम् (१।३।३) तस्य लोपः (१।३।९) तथा यस्मा
(१।४।१३) से 'उपगु की अङ्ग संज्ञा होकर,

उपगु अ तद्धितेष्वचामादेः (७।२।११७) से उपगु अङ्ग के आदि
को वृद्धि प्राप्त हुई, वृद्धिरादैच् (१।१।१) स्थानेऽन्त
(१।१।४९) से 'उ' के स्थान में अन्तरतम 'औ' वृद्धि

औपगु अ यचि भम् (१।४।१८) से उपगु की भ संज्ञा हुई। स्वा
१२९) अब भस्याधिकार में वर्त्तमान ओर्गुणः (६।
से भ संज्ञक उवर्णान्त अङ्ग को तद्धित 'अण्'
गुण प्राप्त हुआ, अदेङ् गुणः (१।१।२) ने बताया
ए ओ को गुण कहते हैं, स्थानेन्तरतमः (१।१।४९)
को अन्तरतम 'ओ' गुण हुआ।

औपगो अ एचोऽयवायावः (६।१।७५) यथासङ्ख्यमनुदेशः
से अव् आदेश होकर,

औपगव् अ कृत्तद्धितसमासाश्च (१।२।४६) से तद्धितान्त औ
प्रातिपदिक संज्ञा होकर पूर्ववत् सु आया,

औपगव सु विसर्जनीय होकर

औपगवः बना॥

इसी प्रकार 'उपमन्यु' शब्द से उपमन्योरपत्यम् औपमन्य
मन्यु नामक व्यक्ति का पुत्र) की सिद्धि जानें॥

---

(५) **ऐतिकायनः** (इतिकस्य गोत्रापत्यं, इतिक नामक व्यक्ति

इतिक ङस् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, नडादिभ्यः फक् (४।
अपत्य अर्थ में अण् का अपवाद फक् प्रत्यय हुआ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

इतिक ङस् फक् पूर्ववत् ङस् का लुक् एवं इतिक की अङ्ग संज्ञा होकर,

इतिक फ *आयनेयीनीयियः फढख०* (७।१।२) *यथासङ्ख्य०* (१।३।१०) से फ् को आयन् आदेश होकर

इतिक आयन् अ, *किति च* (७।२।११८) *वृद्धिरादैच्, स्थानेन्तरतमः* (१।१।४९) से 'इ' को 'ऐ' वृद्धि हुई। *यचि भम्* (१।४।१८) *भस्य* (६।४।१२९) *यस्येति च* (६।४।१४८)

ऐतिक् आयन अब *कृत्तद्धितसमा०* (१।२।४६) आदि लगकर सु आया,

ऐतिकायन सु एवं विसर्जनीय हो गया।

ऐतिकायनः बना।

इसी प्रकार अश्वला शब्द से अश्वलायाः गोत्रापत्यं, आश्वलायनः (अश्वला का पौत्र) की सिद्धि जानें॥

---

(६) आरण्यः (अरण्ये भवः, जङ्गल में होने वाला)

पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति के सब सूत्र लगकर

अरण्य ङि *समर्थानां प्रथ०* (४।१।८२) *अरण्यायणो वक्तव्यः* (वा० ४।२।१०३), इस वार्त्तिक से प्रत्ययः *परश्च* (३।१।१,२) से भव अर्थ में ण प्रत्यय परे हुआ पश्चात् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

अरण्य अण् *तद्धितेष्वचामादेः* (७।२।११७) *वृद्धिरादैच् स्थानेऽन्तरतमः*

आरण्य अ *यचि भम्* (१।४।१८) *भस्य* (६।४।१२९) *यस्येति च* (६।४।१४८)

आरण्य् अ *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) पूर्ववत् सु आकर विसर्जनीय हो गया तो

आरण्यः बना।

---

(७) सूत्र प्रयोजन—अचैषीत् यहाँ चिञ् धातु को लुङ् लकार में सिच् परे रहते जब *सिचि वृद्धिः परः* (७।२।१) से वृद्धि प्राप्त हुई, तब इस सूत्र ने बताया कि आ, ऐ, औ की वृद्धि संज्ञा होती है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(७) अचैषीत् (उसने चुना)

चिञ् चयने भूवादयो धातवः (१।३।१) हलन्त्यम् (१।३।३) ल
लोपः (१।३।९) अदर्शनं० (१।१।५९) धातोः (३।

चि भूते (३।२।८४) लुङ् (३।२। ११०) प्रत्ययः परश्च (३।
से भूतकाल में लुङ् प्रत्यय हुआ। लः कर्मणि च भावे

चि लुङ् र्मकेभ्यः (३।४।६९) से लकार कर्त्ता = कर्तृवाच्य में
हलन्त्यम्, उपदेशेऽजनु० (१।३।२) तस्य लोपः (

चि च्लि लुङ् च्लि लुङि (३।१।४३) से लुङ् परे रहते च्लि प्रत्यय

चि च्लि ल् च्लेः सिच् (३।१।४४) से च्लि के स्थान में सिच्
हुआ,

चि सिच् ल् अब लस्य (३।४।७७) से लकारों के स्थान में, तिप्तस्
प्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ् (३।४
से १८ प्रत्यय परे प्राप्त हुये, चाहिये हमें एक, से
सूत्र लगा—लः परस्मैपदम् (१।४।९८) इससे १८ प्रत्ये
पहले परस्मैपद संज्ञा प्राप्त हुई, पुनः तङानावात्म
(१।४।९९) से 'त' से लेकर महिङ् के ङ पर्यन्त ९ प्र
की आत्मनेपद संज्ञा हुई, तो शेष पहिले के ९ प्र
संज्ञक रह गये। अब शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदम् (१।
से चि धातु से शेष ९ परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय प्राप्त
तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः (१।४।१००) से
के तीन तीन की, क्रम से प्रथम, मध्यम, उत्तम संज्ञा
हमें यहाँ प्रथम पुरुष का प्रत्यय चाहिये अतः आदे
लगा, शेषे प्रथमः (१।४।१०७) इससे प्रथम पुरुष के
प्रत्यय तिप्, तस्, झि प्राप्त हुये। तान्येकवचनद्वि
बहुवच० (१।४।१०१) से उन तीन तीन की क्रम से एक
द्विवचन, बहुवचन संज्ञा हुई। अब यहाँ द्व्येकयोर्द्वि
(१।४।२२) से एकवचन की विवक्षा में तिप् प्रत्यय
शेष दोनों हट गये।

चि सिच् तिप्, यस्मात् प्रत्ययविधि० (१।४।१३) अङ्गस्य (
लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः (६।४।७१) आद्यन्तौ टकितौ (१।
से अङ्ग के आदि में अट् आगम होकर, हलन्त्यम् (

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

से ट्, च् और प् की इत् संज्ञा एवं *उपदेशेऽजनुना०* (१।३।२) से 'सि' के इ की इत् संज्ञा तथा लोप पूर्ववत् हुआ।

चि स् ति *इतश्च* (३।४।१००) से ति के इ का लोप हुआ। अब—

चि स् त् *आर्धधातुकं शेषः* (३।४।११४) से सिच् के 'स्' की आर्धधातुक संज्ञा होकर *आर्धधातुकस्येड्वलादेः* (७।२।३५) से वलादि आर्धधातुक 'स्' को इट् आगम प्राप्त हुआ, पर *एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्* (७।२।१०) से चिच् के अनुदात्त होने (अनिट् होने) से इट् का निषेध हो गया। अब *तिङ्शित् सार्वधातुकम्* (३।४।११३) से 'त्' की सार्वधातुक संज्ञा, तथा *अपृक्त एकाल्प्रत्ययः* (१।२।४१) से अपृक्त संज्ञा हुई। तब *अस्तिसिचोऽपृक्ते* (७।३।९६) से ईट् आगम 'त्' को प्राप्त हुआ, *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५) ने कहा कि टित् आगम जिसको कहा हो, वह उसके आदि में हो, सो 'त्' के आदि में ईट् आगम हुआ,

चि स् ईट् त्, *हलन्त्यम्* (१।३।३) *तस्य लोपः* (१।३।९) तथा पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर

चि स् ई त्, *सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु* (७।२।१) से वृद्धि प्राप्त हुई, तब यह वृद्धि 'चि' अङ्ग के च् को हो या 'इ' को हो इस का निर्णय *इको गुणवृद्धी* (१।१।३) परिभाषा सूत्र ने किया, कि गुण वृद्धि जहाँ कहा हो वह इक् (इ, उ, ऋ, ऌ) के स्थान में हो, सो चि के 'इ' की वृद्धि प्राप्त हुई। *वृद्धिरादैच्, स्थानेऽन्तरतमः* (१।१।४९) से अन्तरतम ऐ वृद्धि हुई

चै स् ई त् *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९) से स् को मूर्धन्य ष् होकर

चै ष् ई त् = अचैषीत् बना।

इसी प्रकार णीच् धातु से अनैषीत् (वह ले गया) बना॥

———

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(८) अलावीत् (उसने काटा)

लूञ् छेदने पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
अट् लू सिच् ईट् त्, आर्धधातुकं शेषः (३।४।११४) आर्धधातु
(७।२।३५) से सिच् को इट् आगम प्राप्त, आर्धधा
(१।१।४५) तथा पूर्ववत् अनुबन्ध लोप एवं अट् छो
अट् लू इट् सिच् ईट् त्, सिचि वृद्धिः पर० (७।२।१) इको
(१।१।३)
अ लू इ स् ई त्, वृद्धिरादैच्, स्थानेऽन्तरतमः (१।१।४९)
अ लौ इ स् ई त्, इट ईटि (८।२।२८) से इट् से उत्तर ईट् परे ह
का लोप हो गया।
अ लौ इ ई त्, तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् (१।१।९) से 'इ ई' को
सवर्ण संज्ञा हो गई, तब अकः सवर्णे दीर्घः (६।१
दोनों 'इ ई' को दीर्घ एकादेश हुआ। एचोऽय
(६।१।७५) से आव् आदेश होकर,
अ लौ ई त् = अलावीत्, बन गया॥

इसी प्रकार 'पूञ्' पवने धातु से अपावीत् (उसने क
सिद्धि जानें॥

———

(९) अकार्षीत् (उसने किया)

डुकृञ् करणे, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
अट् कृ सिच् ईट् त्, आर्धधातुकं० (३।४।११४) आर्धधातु
(७।२।३५) एकाच उपदेशे० (७।२।१०) से इट् निषे
हो गया।
अ कृ स् ई त् सिचि वृद्धिः पर० (७।२।१) इको गुण० (१।१।३)
न्तरतमः (१।१।४९) से सदृशतम वृद्धि प्राप्त हुई,
का सदृशतम आ, ऐ, औ में से कोई न होने से
(१।१।५०) लगकर 'आर्' वृद्धि हुई।
अकार् स् ई त् आदेशप्रत्यययोः (८।३।५९) से षत्व होकर
अकार्षीत् बना।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[वादः]

इसी प्रकार 'हृञ् हरणे' धातु से *अहार्षीत्* (उसने हरण किया) की सिद्धि जानें॥ *अपाठीत्* (उसने पढ़ा) में पठ व्यक्तायां वाचि धातु से *अलावीत्* के समान ही सब कार्य हुये। केवल यहाँ *अतो हलादेर्लघोः* (७।२।७) से 'प' के अ को विकल्प से वृद्धि हुई है यही विशेष है। जिस पक्ष में वृद्धि हुई तो अपाठीत्, जब नहीं हुई तो अपठीत् बन गया॥

विशेषः— यहाँ तक *वृद्धिरादैच्* सूत्र के सब उदाहरणों की सिद्धियाँ पूर्ण हुईं। यदि विद्यार्थी इतनी सिद्धियाँ एक साथ ग्रहण करने में असमर्थ हो तो, अध्यापक उसको एक दो सिद्धियों पर ही समझाकर अभ्यास करा दें। यह भी विदित रहे कि इस सूत्र में हमने ७ प्रकार की सिद्धियों में से, कृदन्त, तद्धितान्त, सुबन्त तथा तिङन्त ४ प्रकार की सिद्धियाँ तो बतला दीं, शेष तीन प्रकार की, अर्थात् कृत्य प्रत्ययान्त, स्त्रीप्रत्ययान्त तथा समास की सिद्धियाँ भी आगे बतावेंगे। पाठक "एक साधे सब सधे" के सिद्धान्त को पूर्णतया समझने की चेष्टा करें। तभी महान् लाभ होगा। एक प्रकार की सिद्धि समझ में आ जाने पर उस प्रकार के सहस्रों शब्दों की सिद्धि समझ में आ जाती है। सिद्धि का यही मुख्य प्रयोजन है। आरम्भ में इसमें कुछ परिश्रम भी पड़े तो, घबराना नहीं चाहिए॥

—:o:—

परि० अदेङ् गुणः (१।१।२)

सूत्र प्रयोजन—'चेता' इस उदाहरण में चिञ् धातु को जब, तृच् को मानकर गुण होने लगा, तब *अदेङ् गुणः* ने बताया कि अ, ए, ओ को गुण कहते हैं॥

(१) चेता (चुनने वाला)

चिञ् — *भूवादयो धातवः* (१।३।१) से धातु संज्ञा हुई, *धातोः* (३।१।९१) अधिकार में वर्त्तमान *ण्वुल्तृचौ* (३।१।१३३) *प्रत्ययः, परश्च* (३।१।१,२) से तृच् प्रत्यय परे आ गया।

चिञ् तृच् — *हलन्त्यम्* (१।३।३) से इत् संज्ञा, तथा पूर्ववत् लोप होकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

चि तृ — *आर्धधातुकं शेषः* (३।४।११४) से तृच् की आर्धधातु हुई, अब *आर्धधातुकस्येड्०* (७।२।३५) से इट् को प्राप्त हुआ, उसका एकाच उपदेशे०(७।२।१०) से हो गया। *यस्मात् प्रत्यय०*(१।४।१३) से चि की अङ्ग *अङ्गस्य* (६।४।१) *सार्वधातुकार्धधातुकयोः* (७।३।८४) को गुण प्राप्त हुआ। *अदेङ् गुणः* ने अ, ए, ओ संज्ञा की, इको *गुणवृद्धी* (१।१।३) *स्थानेऽन्तरतमः* से 'इ' को अन्तरतम 'ए' गुण हुआ। *कृदतिङ्*

चे तृ — से 'तृच्' की कृत् संज्ञा हुई, *कृत्तद्धितसमा०* आदि सब सूत्र लगकर पूर्ववत् सु आया।

चे तृ सु — पूर्ववत् सु का अनुबन्ध लोप, एवं 'चे' की अङ्ग संज्ञा

चे तृ स् — *ऋदुशनस्पुरुदंशोनेहसां च* (७।१।९४) से ऋकारान्त उशनस्, पुरुदंशस्, अनेहस् इन अङ्गों को सम्बुद्धि सु परे रहते 'अनङ्' आदेश होता है, सो यहाँ ऋकारान्त अङ्ग मानकर 'अनङ्' आदेश पाया, अब यह 'अनङ्' आदेश कहाँ हो, तब *अनेकाल्शित्०* (१।१।५५) ने कहा कि अनङ् अनेकाल् है, सो सारे 'चेतृ' के स्थान में हो *ङिच्च* (१।१।५२) ने कहा कि, ङित् आदेश अन्त्य का हो, अतः अन्त्य अल् ऋकार के स्थान में अनङ् हुआ

चेत् अनङ् स् = चेतन् स्, — *सुडनपुंसकस्य* (१।१।४२) से सुट्=सु जस्, अम् औट्, इन पाँचों की सर्वनामस्थान संज्ञा हुई है, सो 'स्' की सर्वनामस्थान संज्ञा हुई। अब सर्वनाम *ह्रस्वनद्यापो नुट्* (७।१।५४) से 'स्' परे रहते नकारान्त 'चेतन्' की उपधा को दीर्घ प्राप्त, *अलोन्त्यात् पूर्व* (१।१।६४) से अन्त्य अल् से पूर्व की उपधा संज्ञा *ऊकालोऽज्झ्रस्वदी०* (१।२।२७) से द्विमात्रिक वाले की दीर्घ संज्ञा की,

चेतान् स् — अब *अपृक्त एकाल्प्रत्ययः* (१।२।४१) से 'स्' की संज्ञा होकर *हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिः०*(६।१।६६) से 'स्' का लोप हो गया।

चेतान् — *सुप्तिङन्तं पदम्* (१।४।१४) से 'चेतान्' की पद संज्ञा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

पदस्य (८।१।१६) नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य (८।२।७) से 'न्' का लोप होकर,

बना ॥

नेता इसी प्रकार 'णीञ्' धातु से पूर्ववत् सब सूत्र लगकर नेता (ले चलने वाला), ष्टुञ् स्तुतौ से स्तोता (स्तुति करने वाला) बनेगा। डुकृञ् करणे धातु से पूर्ववत् गुण प्राप्त होकर उरण्रपरः (१।१।५०) से 'अर्' गुण होकर कर्त्ता (करने वाला) तथा 'हृञ् हरणे' धातु से हर्त्ता (हरण करने वाला) बनेगा।

भविता यहाँ भू धातु से पूर्ववत् ही सब गुण आदि होगा। केवल सार्वधातुकस्ये० (७।२।३५) से भू धातु के सेट् होने से इट् आगम ही विशेष है, सो 'भो इट् तृ' बन कर एचोऽयवायावः (६।१।७५) से अव् आदेश होकर भवितृ = भविता (होने वाला) बन गया। तॄ प्लवनसंतरणयोः धातु से इसी प्रकार इट् आगम एवं उरण्रपरः (१।१।५०) से अर् गुण होकर तर् इट् तृ = तरिता (तैरने वाला) की सिद्धि जानें॥

---

(२) जयति (जीतता है)

जि जये भूवादयो धातवः (१।३।१) धातोः (३।१।९१) वर्त्तमाने लट् (३।२।१२३) प्रत्ययः परश्च (३।१।१,२) इनसे वर्त्तमान काल में लट् प्रत्यय हुआ।

जि लट् हलन्त्यम् (१।३।३) उपदेशेऽज० (१।३।२) तस्य लोपः (१।३।९) अदर्शनं० (१।१।५९)

जि ल् लः कर्मणि च भावे० (३।४।६९) से कर्त्ता में लकार आया। अब यहाँ पूर्ववत् अचैषीत् के समान सूत्र लगकर ल् के स्थान में 'तिप्' आया।

जि तिप् तिङ्शित् सार्व० (३।४।११३) से 'तिप्' की सार्वधातुक संज्ञा होकर कर्त्तरि शप् (३।१।६८) प्रत्ययः परश्च, से कर्त्तावाची सार्वधातुक 'तिप्' के परे रहते शप् प्रत्यय आया,

जि शप् तिप् लशकतद्धिते (१।३।८) हलन्त्यम् (१।३।३) तस्य लोपः (१।३।९)

जि अ ति अब पूर्ववत् 'जि' की अङ्ग संज्ञा होकर सार्वधातुकार्द्धधातु०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(७।३।८४) से गुण प्राप्त, अदेङ् गुणः ने अ, ए, ओ को गुण संज्ञा की। इको गुणवृद्धी (१।१।३) स्थानेऽन्तरतमः (१।१।४९) से 'इ' को अन्तरतम 'ए' गुण हुआ।

जे अ ति — एचोयवायावः (६।१।७५) से अय् आदेश होकर

जयति — बन गया॥

इसी प्रकार णीञ् धातु से *नयति* (ले जाता है) भू धातु से भवति की सिद्धि जानें। तॄ धातु को पूर्ववत् तर् गुण होकर *तरति* (तैरता है) बनेगा।

पचन्ति में जो विशेष है वह नीचे दर्शाते हैं।

---

(३) पचन्ति (सब पकाते हैं)

डुपचष् पाके पूर्ववत् सब सूत्र लगकर बहुवचन की विवक्षा से *द्व्येकयोर्द्विवचनै०* (१।४।२२) के स्थान में बहुष्वचनम् (१।४।२१) से 'झि' आया, तथा पूर्ववत् शप्

पच् शप् झि होकर, *झोऽन्तः* (७।१।३) से 'झ्' को अन्त् आदेश हुआ

पच् अ अन्त् इ, अब *अकः सवर्णे दीर्घः* (६।१।९७) से दोनों अकारों को सवर्ण दीर्घ प्राप्त हुआ, पर दोनों अकारों के अवयव पद के अन्त में न होने से सवर्ण दीर्घ का बाध *अतो गुणे* (६।१।९४) लगा, इसने कहा कि अपदान्त से उत्तर गुण परे रहते पूर्व और पर के स्थान में एकादेश हो। अदेङ् गुणः ने पर वाले अ की गुण संज्ञा की, तो दोनों अकारों को सवर्ण दीर्घ न होकर पररूप एकादेश हो गया,

पच् अन्ति = पचन्ति, बन गया।

इसी प्रकार पठन्ति (सब पढ़ते हैं), यजन्ति (यज्ञ करते हैं), भवन्ति (होते हैं) की सिद्धि जानें॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(४) पचे (मैं पकाता हूँ)

डुपचष् पाके पूर्ववत् ही यहाँ भी तिबाद्युत्पत्ति के सब सूत्र लगे। *स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले* (१।३।७२) से डुपचष् धातु के स्वरितेत् होने से आत्मनेपद हो गया। यहाँ उत्तम पुरुष का प्रत्यय लाना है, सो शेषे *प्रथमः* (१।४।१०७) के स्थान में *अस्मद्युत्तमः* (१।४।१०६) सूत्र लगा। शेष सब पूर्ववत् है।

पच् शप् इट् = पच् अ इ, *टित आत्मनेपदानां टेरे* (३।४।७९) से आत्मनेपदसंज्ञक 'इट्' प्रत्यय के टि भाग को 'ए' प्राप्त हुआ। *अचोऽन्त्यादि टि* (१।१।६३) से अचों में जो अन्त्य अच् 'इ' उसकी टि संज्ञा हुई, सो उसी को एत्व हुआ।

पच् अ ए अब *अतो गुणे* (६।१।९४) से गुण संज्ञक कोई अक्षर परे रहते पूर्व और पर के स्थान में पररूप ('ए' का रूप) एकादेश प्राप्त हुआ, तब *अदेङ् गुणः* ने 'ए' की गुण संज्ञा की।

पच् ए = पचे, बन गया।

इसी प्रकार 'यज' धातु से यजे (मैं यज्ञ करता हूँ) की सिद्धि बनें॥

———

(५) देवेन्द्रः (देवानाम् इन्द्रः, देवों का स्वामी)

देव आम् इन्द्र सु, षष्ठी (२।२।८) से यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास हुआ। *कृत्तद्धितसमासाश्च* (१।२।४६) से समास की प्रातिपदिक संज्ञा होकर, *सुपो धातुप्रातिपदिकयोः* (२।४।७१) से सुपों का लुक् हो गया।

देव+ इन्द्र अब *आद् गुणः* (६।१।८४) से पूर्व और पर, (अ, और इ) के स्थान में गुण एकादेश पाया, *अदेङ्-गुणः* ने अ, ए, ओ की गुण संज्ञा की। *स्थानेऽन्तरतमः* (१।१।४९) लगकर अन्तरतम 'अ' और 'इ' के स्थान में 'ए' गुण एकादेश हुआ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, An eGangotri Initiative

देव् एन्द्र = देवेन्द्र, पूर्ववत् कृत्तद्धित० (१।२।४६) से प्रातिपदिक होने से 'सु' आकर विसर्जनीय हो गया।

देवेन्द्रः बना ॥

इसी प्रकार सूर्यस्य उदयः सूर्योदयः (सूर्य का उदय) यहाँ 'ङस् उदय सु' इस स्थिति में पूर्ववत् सब होकर आद् गुणः से 'ओ' गुण एकादेश हुआ है ॥

———

महर्षिः (महांश्चासौ ऋषिश्च, महान् ऋषि)

महत् सु ऋषि सु, *सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः* (२।१।६०) से (२।१।२१) से महत् और ऋषि का समानाधिकरण समास हुआ। पूर्ववत् सुपों का लुक् होकर,

महत् ऋषि समानाधिकरण तत्पुरुष होने से *आन्महतः समानाधि* (६।३।४४) से महत् शब्द को आकारादेश *अलोन्त्यस्य* (१।१।५१) से अन्त्य अल् 'त्' को 'आ'

मह आ ऋषि, *अकः सवर्णे०* (६।१।९७) *तुल्यास्यप्रयत्नं* (१

महा ऋषि *आद् गुणः* (६।१।८४) से गुण एकादेश प्राप्त, से गुण संज्ञा हुई, *स्थानेऽन्तरतमः* (१।१।४९) (१।१।५०) लगकर 'अर्' गुण प्राप्त हुआ।

महर्षि पूर्ववत् समास की प्रातिपदिक संज्ञा होने से विसर्जनीय होकर

महर्षिः बना।

यहाँ तक अदेङ्गुणः की सब सिद्धियाँ समाप्त हुईं।

—:०:—

परि० इको गुणवृद्धी (१।१।३)

सूत्र प्रयोजन—मेद्यति इस उदाहरण में 'य' को मान कर *मिदेर्गुणः* (७।३।८२) से भिद् अङ्ग को गुण प्राप्त हुआ, तो वह गुण पर हो, 'द्' को हो, या 'म्' को हो, या 'इ' को हो, इसका निर्देश गुणवृद्धी सूत्र ने किया कि, अङ्ग के इक् के स्थान में गुण हो, को 'ए' गुण होकर मेद्यति बन गया ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(१) मेद्यति (स्नेह करता है)

मिदा स्नेहने, *भूवादयो०* (१।३।१) *आदिर्ञिटु०* (१।३।५) से ञि की इत् संज्ञा, *उपदेशेऽजनु०* (१।३।२) से 'आ' की इत् संज्ञा तथा पूर्ववत् लोप हुआ,

पूर्ववत् तिबाद्युत्पत्ति के सब सूत्र लगकर,

मिद् शप् तिप्, *दिवादिभ्यः श्यन्* (३।१।६९) से मिद् धातु के दिवादिगण में पढ़े होने से शप् के स्थान में श्यन् प्रत्यय आया।

मिद् श्यन् तिप्, अनुबन्धलोप तथा पूर्ववत् 'मिद्' की अङ्ग संज्ञा

मिद् य ति एवं *अलोन्त्यात् पूर्व उपधा* (१।१।६४) *ह्रस्वं लघु* (१।४।१०) से मिद् अङ्ग के 'इ' को लघु उपधा मानकर *पुगन्त-लघूपधस्य च* (७।३।८६) से श्यन् सार्वधातुक के परे रहते गुण प्राप्त हुआ, पर 'श्यन्' के अपित् होने से *सार्वधातु-कमपित्* (१।२।५) से श्यन् ङित्वत् = ङित् के समान माना गया, तो *क्ङिति च* (१।१।५) से गुण निषेध हो गया। तब *मिदेर्गुणः* (७।३।८२) ने पुनः मिद् अङ्ग को गुण प्राप्त कराया, अब यह गुण कहाँ पर हो, सो *इको गुणवृद्धी* ने कहा कि अङ्ग के इक् को हो, *अदेङ् गुणः* ने अ, ए, ओ की गुण संज्ञा की, *स्थानेऽन्तरतमः* (१।१।४९) लगकर 'ए' गुण हो गया।

मेद् य ति = मेद्यति, बना ॥

मार्ष्टि (शुद्ध करता है)

मृजूष् शुद्धौ पूर्ववत् अनुबन्ध लोप एवं सब सूत्र लगकर

मृज् शप् तिप् *अदिप्रभृतिभ्यः शपः* (२।४।७२) से मृजूष् के अदादि गण में पढ़े होने से शप् का लुक् प्राप्त हुआ, *प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः* (१।१।६०) से प्रत्यय के अदर्शन की लुक् संज्ञा हुई,

मृज् ति पूर्ववत् 'मृज्' की अङ्ग संज्ञा होकर *मृजेर्वृद्धिः* (७।२।११४) से मृज् अङ्ग को वृद्धि प्राप्त हुई। *इको गुणवृद्धी* परिभाषा सूत्र ने निर्णय किया कि अङ्ग के इक् अर्थात् ऋ को वृद्धि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

हो, वृद्धिरादैच् (१।१।१) स्थानेऽन्तरतमः (१।१।५०) परः (१।१।५०) से आर् वृद्धि हुई।

मार्ज् ति — व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः (८।२।३६) को षकारादेश प्राप्त, अलोऽन्त्यस्य (१।१।५१) से अल् ज् को ष् हुआ।

मार्ष् ति, मार्ष्टि — ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से त् को षकार के योग में ट् बना।

शेष सब उदाहरणों की सिद्धियाँ ऊपर के दोनों सूत्रों में आ गई हैं, पाठक वहीं देखें॥

—:०:—

परि० न धातुलोप आर्द्धधातुके (१।१।४)

सूत्र प्रयोजन—लोलुवः यहाँ पर लूञ् धातु से यङ् प्रत्यय हो पुनः 'लोलूय' की धातु संज्ञा हुई, तब 'लोलूय अ' इस अवस्था में यङ् लुक् होकर जब 'अ' आर्द्धधातुक को मानकर लू के 'ऊ' को गुण (७।३।८४) से गुण प्राप्त हुआ तो उसका निषेध न धातुलोप आर्द्धधातुके ने कर दिया॥

लोलुवः (बार बार काटने वाला)

लूञ् छेदने — भूवादयो० (१।३।१) हलन्त्यम् (१।३।३) तस्य लोपः (१।३।९)

लू — धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् (३।१।२२) प्रत्ययः, परश्च (३।१।१,२)

लू यङ् = य — एकाचो द्वे प्रथमस्य (६।१।१) सन्यङोः (६।१।९) से 'लूय' के प्रथम एकाच् 'लूय्' को द्वित्व हुआ।

लूय् लूय् + अ, पूर्वोऽभ्यासः (६।१।४) हलादिः शेषः (७।४।६०) यङ्लुकोः (७।४।८२) से अभ्यास को गुण प्राप्त हुआ।

गुणः (१।१।२) स्थानेऽन्तरतमः (१।१।४९)

लोलूय — सनाद्यन्ता धातवः (३।१।३२) से पुनः 'लोलूय' की संज्ञा हुई, धातोः (३।१।९१) नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युण्यः (३।१।१३४) प्रत्ययः, परश्च से 'लोलूय' को प्रत्यय हुआ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

लोलूय् अच् = अ, *यङोऽचि च* (२।४।७४) से अच् परे मानकर 'य' का लुक् प्राप्त हुआ, *प्रत्ययस्य लु०* (१।१।६०) अब पूर्ववत् 'लोलू' की अङ्ग संज्ञा होकर *सार्वधातुका०* (७।३।८४) से अच् आर्द्धधातुक परे मानकर 'लू' के 'ऊ' को गुण प्राप्त हुआ, उसका *न धातुलोप आर्द्धधातुके* से निषेध हो गया, क्योंकि उसी अच् आर्द्धधातुक को मान कर धातु के अवयव 'य' का लुक् हुआ था, और उसी अच् को मानकर अब गुण प्राप्त हो रहा है, सो न हुआ। अब *अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वो०* (६।४।७७) से उवङ् आदेश प्राप्त, *ङिच्च* (१।१।५२) से अन्त्य अल् 'ऊ' को उवङ् हुआ।

लोलुव् अ = लोलुव् अ, *कृदतिङ्* (३।१।९३) *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) आदि सब सूत्र लगकर, सु आया, एवं विसर्जनीय होकर

लोलुवः बना।

इसी प्रकार 'पूङ् पवने' धातु से *पोपुवः* (बार बार छानने वाला) की सिद्धि जानें।

———

मरीमृजः (बार बार शोधन करने वाला)

मृज् पूर्ववत् ही सब सूत्र लगकर यङ् का लुक् एवं अच् प्रत्यय हुआ

मृज् अ उरत् (७।४।६६) से अभ्यास के ऋ को अकार आदेश प्राप्त, *उरऋरपरः* (१।१।५०)

मर् मृज् अ मृज् अ *हलादिः शेषः* (७।४।६०) *रीगृदुपधस्य च* (७।४।९०) से अभ्यास को रीक् आगम प्राप्त, *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५) रीक् मृज् अ, पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर, *मृजेर्वृद्धिः* (७।२।११४) से अङ्ग को वृद्धि प्राप्त हुई, उसका *न धातुलोप आर्द्धधातुके* से निषेध हुआ, क्योंकि 'अ' को मानकर ही यङ् का लुक् हुआ है, एवं 'अ' को मानकर ही मरीमृज् की अङ्ग संज्ञा है, अर्थात् 'अ' निमित्तक वृद्धि प्राप्त है, सो न

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

हुई। आगे पूर्ववत् ही सब सूत्र लगकर
मरीमृजः बना।

इसी प्रकार सृप्ल् गतौ से *सरीसृपः* (बार बार सरकने वाला) की सिद्धि जानें। केवल यहाँ इतना विशेष है कि 'सरीसृप्' अवस्था में *पुगन्तलघूपधस्य च* (७।३।८६) से गुण प्राप्त होता है, पूर्ववत् निषेध हो जायेगा॥

—:०:—

परि० क्ङिति च (१।१।५)

सूत्र प्रयोजन—जिष्णुः इस उदाहरण में 'जि' अङ्ग को जा आर्धधातुक को मानकर *सार्वधातुका०* (७।३।८४) से गुण प्राप्त है, तो उसका निषेध *क्ङिति च* से हो जाता है, क्योंकि गित् है॥

जिष्णुः (जीतने के स्वभाव वाला, जयनशील)

जि जये	*भूवादयो०* (१।३।१) *धातोः* (३।१।९१) ग्लाजिस्थ
जि स्नु	(३।२।१३९) *प्रत्ययः, परश्च, लशक्वतद्धिते* (१।३।८)
	लोपः (१।३।९)
जि स्नु	*आर्धधातुकं शेषः* (३।४।११४) *आर्धधातुकस्येड्* (७।३।३५)
	से इट् आगम प्राप्त, *एकाच उपदेशे०* (७।२।१०) से नि
	हो गया। पूर्ववत् 'जि' की अङ्ग संज्ञा होकर *सार्वधातु*
	धातुकयोः (७।३।८४) से 'जि' अङ्ग को 'स्नु' को
	गुण प्राप्त, उसका *क्ङिति च* से स्नु के गित्
	निषेध हो गया। *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९) से
	सकार को षकार हुआ,
जि ष्नु	*रषाभ्यां नो णः समानपदे* (८।४।१)
जि ष्णु	*कृदतिङ* (३।१।९३) *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) पूर्ववत्
	लगकर
जिष्णुः	बन गया।

इसी प्रकार भू धातु से भूष्णुः (होने के स्वभाव वाला) पूर्ववत् ही समझें। केवल यहाँ इतना विशेष है कि, ७।३।३५ से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

धातु के सेट् होने से इट् आगम होने लगा, तब उसका निषेध अचकः *कृति* (७।२।११) से गित् परे होने से हो जाता है। शेष सब पूर्व सिद्धि में दिखा ही दिया है॥

चितः (चुना हुआ)

चिन्

चि

चि क्त

चि त

चितः

भूवादयो० (१।३।१) *हलन्त्यम्* (१।३।३) *तस्य लोपः* (१।३।९) *धातोः* (३।१।९१) *निष्ठा* (३।२।१०२) *क्तक्तवतू निष्ठा* (१।१।२५) *प्रत्ययः, परश्च* (३।१।१,२), *लशक्वतद्धिते तस्य लोपः आर्धधातुकं शेषः* (३।४।११४) से 'क्त' की आर्धधातुक संज्ञा हुई, एवं पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर, *सार्वधातुका०* (७।३।८४) से क्त को मानकर चि अङ्ग को गुण प्राप्त हुआ, सो *क्ङिति च* से क्त के कित् होने से निषेध हो गया, पूर्ववत् *एकाच उपदेशे०* (७।२।१०) से इट् आगम का निषेध भी हो गया। अब पूर्ववत् *कृदतिङ्* (३।१।९३) *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) आदि सब सूत्र लगकर स्वाद्युत्पत्ति एवं रुत्व विसर्जनीय होकर बना।

इसी प्रकार ष्टुञ् धातु से स्तुतः (स्तुति किया हुआ) की सिद्धि जानें। *धात्वादेः षः सः* (६।१।६२) से ष्टुञ् के ष् को स् हो ही जायगा। ष्टुञ् धातु से कृतः (किया हुआ) तथा भिदिर् से *भिन्नः* (टूटा हुआ) बनेगा। भिन्नः में इतना विशेष है कि 'भिद् त' इस अवस्था में *गुणान्तलघूप०* (७।३।८६) से गुण प्राप्त होता है, उसका प्रकृत सूत्र से निषेध होकर, *रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः* (८।२।४२) से द तथा निष्ठा के त को न होकर भिन् न = भिन्नः बन गया। मृजूष् धातु से शुद्धः (शुद्ध किया हुआ) की सिद्धि जानें। मार्ष्टि के समान ही ज् को ष् तथा त को ट यहाँ हुआ है। *मृजेर्वृद्धिः* (७।२।११४) से प्राप्त वृद्धि का भी यहाँ प्रतिषेध होता है। शेष पूर्ववत् ही समझें॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

चितवान् (उसने चुना)

चिञ् पूर्ववत् सारे सूत्र लगकर निष्ठासंज्ञक क्तवतु प्रत्यय
चि क्तवतु = तवत्, पूर्ववत् ही अङ्ग संज्ञा होकर गुण प्राप्त होता
सूत्र से निषेध हुआ, अब कृत्तद्धित० (१।२।४६)
सूत्र लगकर सु परे आया,
चितवत् सु = स्, सुडनपुंसकस्य (१।१।४२) से सु की सर्वधातु
संज्ञा होकर अत्वसन्तस्य चाधातोः (६।४।१४) से अन्त्य
पूर्व० (१।१।६४) से अत्वन्त की उपधा को दीर्घ
चितवात् स् अब उगिदचां सर्वनाम० (७।१।७०) से उगित् अङ्ग
वात्' को सर्वनामस्थान परे रहते 'नुम्' आगम
हुआ, मिदचोन्त्यात् परः (१।१।४६) से अन्त्य अच्
के आ से परे हुआ।
चितवा नुम् त् स्, पूर्ववत् अनुबन्ध लोप तथा अपृक्त एकाल्
चितवान्त् स्, (१।२।४१) से 'स्' की अपृक्त संज्ञा, होकर हल्ङ्या
दीर्घात्० (६।१।६६) से अपृक्त स् का लोप हुआ।
चितवान्त् सुप्तिङन्तं पदम् (१।४।१४) पदस्य (८।१।१६) से त्
की पद संज्ञा हुई। हलोऽनन्तराः संयोगः (१।१।७)
त्' की संयोग संज्ञा होने से संयोगान्तस्य लोपः (८।२।२३)
से 'त्' का लोप होकर
चितवान् बना।

इसी प्रकार स्तुतवान् (उसने स्तुति की) कृतवान् (उसने कि
भिन्नवान् (उसने तोड़ा) मृष्टवान् (उसने शुद्ध किया) की सिद्धियां
इनमें जो जो विशेष है वह पूर्व 'क्त' प्रत्ययान्त की सिद्धि में
आये हैं॥

चिनुतः (वे दोनों चुनते हैं)

चिञ् पूर्ववत् तिबाद्युत्पत्ति के सब सूत्र लगकर, प्रथम पु
द्विवचन का प्रत्यय आया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

चि तस्

स्वादिभ्यः श्नुः (३।१।७३) से शप् का अपवाद श्नु प्रत्यय हुआ,

चि श्नु तस्
चि नु तस्

यस्मात् प्रत्ययविधि० (१।४।१३) से 'चि' एवं तदादि पद से 'चि श्नु' की भी तस् परे रहते अङ्ग संज्ञा हुई। *अङ्गस्य* (६।४।१) *तिङ्शित् सार्व०* (३।४।११३) *सार्वधातुकार्धधातुकयोः* (७।३।८४) से 'श्नु' सार्वधातुक को मानकर 'चि' अङ्ग को गुण प्राप्त हुआ, *सार्वधातुकमपित्* (१।२।४) से श्नु ङित्वत् हो गया, तब *क्ङिति च* से गुण निषेध हो गया। अब तदादि पद से 'चि श्नु' की अङ्ग संज्ञा होने से पुनः तस् को मानकर 'नु' को गुण पाया, सो उसका भी इसी प्रकार ङित्वत् (१।२।४) होने से निषेध हो गया।

सुप्तिङन्तं पदम् (१।४।१४) *पदस्य* (८।१।१६) *ससजुषो रुः*

चिनुत रु = र्, (८।२।६६) *विरामोऽवसानम्* (१।४।१०९) *खरवसानयोर्विसर्जनीयः* (८।३।१५) लगकर

चिनुतः बना।

इसी प्रकार पुञ् अभिषवे' धातु से सुनुतः (वे दोनों सोमरस निचोड़ते हैं) बनेगा। *धात्वादेः षः सः* (६।१।६२) से ष् को स् हो ही जायेगा॥ *चिन्वन्ति* में जो विशेष है वह निम्न प्रकार है:—

चिन्वन्ति (वे सब चुनते हैं)

नु झि
नु अन्त्

पूर्ववत् ही सब सूत्र लगे। *झोऽन्तः* (७।१।३) से झ, अब यहाँ इको *यणचि* (६।१।७४) से यणादेश प्राप्त हुआ।

पर उसको बाधकर *अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरि०* (६।४।७७) से उवङ् आदेश श्नु प्रत्ययान्त अङ्ग को पाया, पर उस उवङ् को भी बाधकर *हुश्नुवोः सार्वधातुके* (६।४।८७) से असंयोगपूर्व श्नुप्रत्ययान्त अङ्ग होने के कारण पुनः यणादेश ही हुआ। पूर्ववत् गुण प्राप्ति एवं गुण निषेध कार्य भी यहाँ जानें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

चिन् व् अन्ति = चिन्वन्ति, बना।

इसी प्रकार सुन्वन्ति की सिद्धि भी जानें।

—:०:—

परि० दीधीवेवीटाम् (१।१।६)

आदीध्यनम् (अच्छी प्रकार से प्रकाशित होना)

दीधीङ् भूवादयो० (१।३।१) हलन्त्यम्, तस्य लोपः (१।३।९)
दीधी (३।१।९१) ल्युट् च (३।३।११५) प्रत्ययः, परश्च,
आङ् दीधी ल्युट् = यु, पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर युवोरनाकौ (७।१।१)
यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम् (१।३।१०)
आदीधी अन आर्धधातुकं शेषः (३।४।११४) सार्वधातुकार्धधा० (७।३।८४)
से 'धी' के 'ई' को गुण प्राप्त हुआ उसका क्ङिति च (१।१।५)
से निषेध हो गया। अत्र अचि श्नुधातुभ्रुवां० (६।४।७७)
इयङ् आदेश प्राप्त हुआ, तब उसको भी वान्तो यि प्रत्यये
एरनेकाचोऽसंयो० (६।४।८२) से यणादेश ही हुआ।
आदीध्यन कृत्तद्धितसमा० (१।२।४६) पूर्ववत् सु आकर,
आदीध्यन सु, अतोऽम् (७।१।२४) से नपुंसक लिङ्ग में होने से
आदीध्यन अम्, होकर, अमि पूर्वः, (६।१।१०३) से पूर्व रूप हुआ
आदीध्यनम् बना।

इसी प्रकार आङ् पूर्वक वेवीङ् धातु से आवेव्यनम् (अच्छी प्रकार जानना) की सिद्धि जानें।

———

आदीध्यकः (अच्छी प्रकार प्रकाश करने वाला)

आङ् दीधीङ् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, ण्वुल्तृचौ (३।१।१३३) से
प्रत्यय आया,
आ दीधी ण्वुल् = वु, पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर युवोरनाकौ (७।१।१)
'वु' को 'अक' आदेश हुआ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[प्रथमः पादः]

आ दीधी अक, अब यहाँ *अचो ञ्णिति* (७।२।११५) से धी के 'ई' को वृद्धि प्राप्त हुई, जिसका *दीधीवेवीटाम्* से निषेध हो गया शेष यणादेश एवं स्वाद्युत्पत्ति पूर्ववत् होकर

आदीध्यकः बन गया।

इसी प्रकार *आवेव्यकः* (अच्छी प्रकार जानने वाला) में भी जानें।

———

पठिता (वह कल पढ़ेगा)

पठ *भूवादयो०* (१।३।१) *उपदेशेऽज०* (१।३।२) *तस्य लोपः* (१।३।९) *धातोः* (३।१।९१) *अनद्यतने लुट्* (३।३।१५) *प्रत्ययः परश्च* (३।१।१,२)

पठ् लुट = ल्, *स्यतासी ललुटोः* (३।१।३३) *प्रत्ययः परश्च*, पूर्ववत् ल् के स्थान में तिप् प्रत्यय भी हुआ।

पठ् तास् तिप्, *लुटः प्रथमस्य डारौरसः* (२।४।८५) *यथासङ्ख्यम०*

पठ् तास् डा *आर्धधातुकं शेषः* (३।४।११४) *आर्धधातुकस्ये०* (७।२।३५) *आद्यन्तौ०* (१।१।४५)

पठ् इट् तास् डा, अब *डित्यभस्यापि*, *अनुबन्धकरणसामर्थ्यात्* (महा०

पठ् इ तास् आ, वा० ६।४।१४३) इस वार्त्तिक से तास् के टि भाग = आस् का लोप पाया, *अचोऽन्त्यादि टि* (१।१।६३)

पठ् इ त् आ = पठित् आ, पूर्ववत् 'पठित्' की अङ्ग संज्ञा होने से, *पुगन्तलघूपधस्य च* (७।३।८६) से लघु उपधा इट् को गुण पाया, उसका *दीधीवेवीटाम्* से निषेध होकर

पठिता बन गया।

इसी प्रकार कण धातु से *कणिता* (वह कल जायेगा) बनेगा।

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० हलोऽनन्तराः० (१।१।७)

गोमान् (गावः सन्ति यस्य = बहुत गौवों वाला)

गो	*अर्थवदधातु०* (१।२।४५) आदि सब सूत्र लगकर
गो जस्	*तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्* (५।२।९४)
गो जस् मतुप्,	*कृत्तद्धित०* (१।२।४६) सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (२
गो मतुप्	पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति एवं अनुबन्ध लोप भी होकर
गो मत् स्	*सुडनपुंसकस्य* (१।१।४२) *अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा* (१
	अत्वसन्तस्य चाधातोः (६।४।१४) से अत् की दीर्घ हुआ।
गोमात् सु	*उगिदचां सर्वनाम०* (७।१।७०) *मिदचोन्त्यात् परः* (१
गोमा नुम् त् स्	*अपृक्त एकाल्प्रत्ययः* (१।२।४१) *हल्ङ्याब्भ्यो दी*
	(६।१।६६) से स् का लोप हुआ।
गोमा न् त्	*सुप्तिङन्तं पदम्* (१।४।१४) *पदस्य* (८।१।१६) *अ*
	नन्तराः संयोगः से न् त् की संयोग संज्ञा होने से *न*
	न्तस्य लोपः (८।२।२३) से संयोग के अन्त तत्स
	होकर
गोमान्	बना ॥

इसी प्रकार *यवमान्* (जौ वाला) की सिद्धि जानें। *चितन्* की सिद्धि *परि०* १।१।५ में कर आये हैं। इन्द्र यहाँ न्, द्, र् की संज्ञा होने से *संयोगे गुरु* (१।४।११) से इन्द्र के इ की गुरु संज्ञा हो तब ८।२।८६ से 'इ' को प्लुत होकर इ३न्द्र बन गया।

—:०:—

परि० नाज्झलौ (१।१।१०)

दण्डहस्तः (जिसके हाथ में दण्ड हो, ऐसा मनुष्य)

दण्डहस्तः यहाँ दण्ड शब्द के अन्तिम 'अ' तथा हस्त के ह दोनों वर्णों का स्थान *अकुहविसर्जनीयाः कण्ठ्याः* (वर्णो० २२) से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[आदः]

है, तथा 'अ' का आभ्यन्तर प्रयत्न, *विवृतकरणाः स्वराः* (वर्णो० ५७) से विवृत, एवं 'ह' का *विवृतकरणा वा* (वर्णो० ५६) से विवृत हैं, सो दोनों वर्णों का स्थान और प्रयत्न तुल्य है, अतः *तुल्यास्यप्रयत्नं०* (१।१।९) से दोनों की परस्पर सवर्ण संज्ञा होकर *अकः सवर्णे दीर्घः* (६।१।९७) से 'अ' और 'ह' को दीर्घ एकादेश होकर 'दण्डास्तः' ऐसा अनिष्ट रूप पाता है। पर यह तुल्य स्थान और तुल्य प्रयत्न वाले अ और ह वर्ण, एक अच् तथा दूसरा हल् है, सो सवर्ण संज्ञा का ही *नाज्झलौ* से निषेध हो गया, तो सवर्णीय अच् परे न होने से दीर्घ नहीं हुआ।

दधि शीतलम् (ठण्डा दही) यहाँ भी दधि के 'इ' एवं शीतलम् के 'श' दोनों का स्थान *इचुयशास्तालव्याः* (वर्णो० २८) से तालु होने से समान है। प्रयत्न भी पूर्ववत् ही तुल्य है, सो सवर्ण संज्ञा होने से दीर्घ (६।१।९७) प्राप्त था, पर 'इ' के अच् एवं 'श' के हल् होने से प्रकृत सूत्र से सवर्ण संज्ञा का ही निषेध हो गया, तो दीर्घ नहीं हुआ।

कुमारी शेते (कुमारी सोती है) यहाँ भी इसी प्रकार 'ई' और 'श' की सवर्ण संज्ञा प्राप्त थी सो निषेध हो गया॥

वैपाशो मत्स्यः (विपाशि भवः = व्यास नदी में होने वाली मछली)

विपाश् — *अर्थवदधातु०* (१।२।४५) *ङ्याप्प्रातिः०* (४।१।१) सब सूत्र पूर्ववत् लगकर

विपाश् ङि — *समर्थानां०* (४।१।८२) *प्राग्दीव्यतोऽण्* (४।१।८३) *तत्र भवः* (४।३।५३) से अण् प्रत्यय होकर

विपाश् ङि अण् — *तद्धिताः* (४।१।७६) *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) *सुपो-धातुप्रा०* (२।४।७१)

वैपाश् अ — *तद्धितेष्वचामादेः* (७।२।११७) *वृद्धिरादैच्* (१।१।१) *स्थाने-ऽन्तरतमः* (१।१।४९)

वैपाश् अ — *यचि भम्* (१।४।१८) से 'वैपाश्' की भ संज्ञा हुई, *भस्य* (६।४।१२९), अब *यस्येति च* (६।४।१४८) से श् का लोप प्राप्त हुआ, क्योंकि *यस्येति च* से अवर्ण और इवर्ण का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लोप कहा है, सो जिस प्रकार ह्रस्व अ और 'इ' [illegible] कहने पर, दीर्घ एवं प्लुत अवर्ण तथा इवर्ण [illegible] संज्ञा होने से लोप हो जाता है, उसी प्रकार 'इ' [illegible] शकार का भी पूर्ववत् स्थान (वर्णो० २८) तथा [illegible] (वर्णो० ५५, ५७) मिलने से १।१।९ से सवर्ण [illegible] अणुदित्सवर्णस्य० से सवर्णीय शकार का ग्रहण [illegible] लोप पाया, पर इ, तथा श् के अच् और हल् [illegible] सवर्ण संज्ञा का ही नाज्झलौ से निषेध हो गया, [illegible] नहीं हुआ।

अब पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति होकर,

वैपाशः बन गया।

इसी प्रकार आनडुहं चर्म (बैल का चमड़ा) यहाँ अनडुह् [illegible] प्राणिरजतादिभ्योऽञ् (४।३।१५२) से अञ् एवं वृद्धि (७।२।११७) [illegible] होकर 'आनडुह् अ' रहा। यहाँ भी यस्येति च में कहे अवर्ण [illegible] ह् का स्थान और प्रयत्न मिलने से सवर्णीय का ग्रहण [illegible] होकर 'ह्' का लोप पाता है, जिसका सवर्ण संज्ञा के निषेध होने [illegible] होता। शेष पूर्ववत् ही जानें।

विशेष सूचना—ये अन्तिम दो उदाहरण अतिक्लिष्ट हैं, पढ़ाने [illegible] की दृष्टि से इन्हें दिखा दिया है। अध्यापक छात्रों को दधि [illegible] ही सूत्र प्रयोजन समझा दें। इन दोनों उदाहरणों को प्रथमा [illegible] बाद भी समझाया जा सकता है॥

—:०:—

परि० ईदूदेद्वि० (१।१।११)

अग्नी इति (दो प्रकार की अग्नियाँ)

अग्नि अर्थवदधातुर० (१।२।४५) आदि पूर्ववत् सब सूत्र [illegible] द्विवचन का 'औ' प्रत्यय हुआ।

अग्नि औ प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (६।१।९८) से 'इ' और 'औ' [illegible] सवर्ण दीर्घ हुआ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[सूत्र]

अग्नी+इति अब *अकः सवर्णे दीर्घः* (६।१।९७) से अग्नी के 'ई' तथा इति के 'इ' को दीर्घ पाया, पर *ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्* से द्विवचनान्त 'अग्नी' शब्द की प्रगृह्य संज्ञा होने से, *प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्* (६।१।१२१) से प्रकृति भाव रह गया, अर्थात् सन्धि (दीर्घ) नहीं हुई। बस यही प्रगृह्य संज्ञा का प्रयोजन है।

अग्नी+इति रहा।

इसी प्रकार *'वायू इति'* में भी *इको यणचि* (६।१।७४) से यणादेश प्राप्त था, पर वायू के ऊकारान्त द्विवचनान्त शब्द होने से, प्रगृह्य संज्ञा कर सन्धि पूर्ववत् नहीं हुई॥

———

माले+इति (दो मालायें)

माला+औ *अर्थवदधातु०* (१।२।४५) पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, *औङ आपः* (७।१।१८) से 'औ' के स्थान में शी आदेश प्राप्त, *अनेकाल्शित् सर्वस्य* (१।१।५४) से 'औ' सारे के स्थान में शी आदेश हुआ,

माला शी = ई, *आद् गुणः* (६।१।८४) *अदेङ् गुणः* (१।१।२)

माले+इति अब यहाँ *एचोऽयवायावः* (६।१।७५) से अयादेश प्राप्त हुआ उसका *ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्* से माले की प्रगृह्य संज्ञा होने से, *प्लुतप्रगृह्या अचि०* (६।१।१२१) से पूर्ववत् प्रकृति भाव हो गया, अर्थात् सन्धि न हुई।

माले+इति बना।

———

पचेते+इति (वे दोनों पकाते हैं)

डुपचष् *भूवादयो०* (१।३।१) *धातोः* (३।१।९१) *वर्त्तमाने लट्* (३।२।१२३) आदि सब सूत्र लगकर, *अनुदात्तङित आत्मनेपदम्* (१।३।१२) से आत्मनेपद का 'आताम्' आया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पच् शप् आताम्, पूर्ववत् 'पच् अ' की अङ्ग संज्ञा, तथा सार्वधातुक
(१।२।४) से आताम् को ङित्वत् होकर
पच् अ आताम्, आतो ङितः (७।२।८१) से अदन्त अङ्ग 'पच' के
'आ' को इय् आदेश हुआ।
पच इय् ताम् लोपो व्योर्वलि (६।१।६४)
पच इ ताम् अचोऽन्त्यादि टि (१।१।६३) टित आत्मनेपद
(३।४।७९) से ताम् के टि भाग 'आम्' को एत हुआ
पच इ त् ए आद् गुणः (६।१।८४) अदेङ् गुणः स्थानेऽन्त० (१
पचेते+इति अब यहाँ पूर्ववत् एचोयवायावः (६।१।७८) आव
सो प्रगृह्य संज्ञा होकर पूर्ववत् प्रकृति भाव हो गया।
पचेते+इति रहा ॥

इसी प्रकार पचेथे + इति में भी समझें।

—:०:—

परि० अदसो मात् (१।१।१२)

अमी अत्र (वे यहाँ हैं)

अदस् अर्थवदधातुरप्रत्ययः० (१।२।४५) इत्यादि सब सूत्र
लगकर जस् आया
अदस् जस् त्यदादीनामः (७।२।१०२) अलोन्त्यस्य (१।१।५१)
अद अ जस् अतो गुणे (६।१।९४) अदेङ् गुणः (१।१।२)
अद जस् जसः शी (७।१।१७) अनेकाल्शित्० (१।१।५४)
अद शी = ई, आद् गुणः (६।१।८४) अदेङ् गुणः, लगकर,
अदे एत ईद् बहुवचने (८।२।८१) से अदस् के दकार से
'ए' को 'ई' तथा 'द' को 'म' हो गया।
अमी+अत्र अब यहाँ इको यणचि (६।१।७४) से यणादेश प्राप्त
तब अदसो मात् से अदस् सम्बन्धी जो अमी का
उत्तर 'ई' की प्रगृह्य संज्ञा हो गई, तो पुनः
(६।१।१२१) से सन्धि नहीं हुई।
अमी+अत्र बना।

इसी प्रकार अमी + आसते (वे सब बैठते हैं) में भी समझें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अमू अत्र (वे दो व्यक्ति बैठते हैं)

पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
अब *प्रथमयोः पूर्वसवर्णः* (६।१।९८) से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश प्राप्त हुआ, पुनः *नादिचि* (६।१।१००) से निषेध होकर *वृद्धिरेचि* (६।१।८५) से वृद्धि एकादेश हो गया, *अदसोऽसेर्दादु दो मः* (८।२।८०) से अदस् के 'द' को 'म' तथा दकार से उत्तर 'औ' को उवर्ण आदेश पाया *स्थानेन्तरतमः* (१।१।४९) से औ के स्थान में दीर्घ ऊकार हो गया। यहाँ भी पूर्ववत् ही यणादेश प्राप्त हुआ, सो उसका निषेध प्रगृह्य संज्ञा होने से हो गया।

इसी प्रकार *अमू आसाते* (वे दो व्यक्ति बैठते हैं) में समझें॥

—:०:—

परि० शे (१।१।१३)

अस्मे इन्द्राबृहस्पती (हम सब के लिए इन्द्र और बृहस्पति)

अर्थवदधातु० (१।२।४५) पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
भ्यस् भ्यसोऽभ्यम् (७।१।३०) से भ्यस् को अभ्यम् आदेश हुआ, *शेषे लोपः* (७।२।९०) से मपर्यन्त आदेश से जो शेष अद् भाग उसका लोप हो गया।
अब *सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः* (७।१।३९) से अभ्यम् के स्थान में शे आदेश प्राप्त हुआ, *अनेकाल्शित् सर्वस्य* (१।१।५४)
लशक्वत० (१।३।८) *तस्य लोपः* (१।३।९)
अस्मे इन्द्राबृहस्पती, अब यहाँ *एचोऽयवायावः* (६।१।७५) से अय् आदेश प्राप्त हुआ, पर शे, से 'ए' की प्रगृह्य संज्ञा होकर सन्धि का पूर्ववत् (६।१।१२१) निषेध हो गया।
अस्मे इन्द्राबृहस्पती, बना।

इसी प्रकार *युष्मे इति* (तुम्हारा) इसमें षष्ठी बहुवचन 'आम्' के स्थान में शे आदेश हुआ। इसी प्रकार *अस्मे इति* (हमारे लिए) में भी समझें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

त्वे इति (तुझसे)

युष्मद् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर
युष्मद् ङसि *त्वमावेकवचने* (७।२।९७) *मपर्यन्तस्य* (७।२।९१)
त्व अद् ङसि *शेषे लोपः* (७।२।९०) *सुपां सुलुक्०* (७।१।३९)
त्व शे = ए *अतो गुणे* (६।१।९४) से पररूप एकादेश हुआ।
त्वे इति पूर्ववत् अयादेश (६।१।७५) पाया, तो उसका अचि होने से निषेध हो गया।
त्वे इति रहा ॥

इसी प्रकार अस्मद् शब्द के मपर्यन्त को *त्वमावेकवचने* से आदेश होकर एवं पूर्ववत् सूत्र लगकर मे इति बना। तब पूर्व सन्धि प्राप्ति होने से प्रगृह्य संज्ञा होकर निषेध हो गया। 'ते' में ङसि अथवा 'ङि' के स्थान में 'शे' होता है ॥

—:०:—

परि० सम्बुद्धौ शाक० (१।१।१६)

वायो इति (हे वायु)

वायु पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, तथा *सम्बोधने च* (२।३।४७) सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति का 'सु' आया।
वायु सु = स् *यस्मात् प्रत्यय०* (१।४।१३) *अङ्गस्य* (६।४।१) *हल्ङ्या०* (७।३।१०८) से गुण होकर
वायो स् *अपृक्त एकाल्प्रत्ययः* (१।२।४१) *एङ्ह्रस्वात्०* (६।१।६७) से 'स्' का लोप प्राप्त हुआ, *एकवर्णं वर्णस्य* (२।३।४९)
वायो इति अब यहाँ *एचोयवायावः* (६।१।७५) से अवादेश प्राप्त सो उसका सम्बुद्धि निमित्तक ओकार होने से से प्रगृह्य संज्ञा होकर, ६।१।१२१ से सन्धि का गया।
वायो + इति बना।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इसी प्रकार *भानो इति* (हे भानु) *अध्वर्यो इति* (हे अध्वर्यु) में भी
बनें। जब पाणिनि जी के मत में प्रगृह्य संज्ञा नहीं होगी तो अवादेश
कर वायविति, भानविति अध्वर्यविति ऐसे प्रयोग बनेंगे।

—:०:—

परि० ईदूतौ च स० (१।१।१८)

गौरी अधिश्रितः (ऋ० ९।११२।३)

पूर्ववत् सब सूत्र लगकर 'ङि' विभक्ति आई
अब यहाँ *सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छे०* (७।१।३९) से ङि विभक्ति
का लुक् होकर 'गौरी' ऐसा ही रूप रहा,
अधिश्रितः, अब यहाँ *इको यणचि* (६।१।७४) से गौरी के 'ई' को
यणादेश प्राप्त हुआ, पर सप्तम्यर्थ में वर्त्तमान 'ई' होने से
ईदूतौ च सप्तम्यर्थे से प्रगृह्य संज्ञा होकर सन्धि का
निषेध हो गया।
अधिश्रितः, रहा।

इसी प्रकार *अध्यस्यां मामकी तनू इति* यहाँ भी मामकी ङि,
के विभक्ति का पूर्ववत् लुक् होकर 'तनू' रहा। पदपाठ करते समय
तनू इति ऐसा रखा, तब इस अवस्था में *इको यणचि* (६।१।७४)
णादेश प्राप्त हुआ, सो उसकी प्रगृह्य संज्ञा होकर पूर्ववत् निषेध
या।

—:०:—

परि० दाधाघ्वदाप् (१।१।१९)

प्रयोजन—प्रणिददाति आदि उदाहरणों में 'दा' तथा 'धा' रूप
धातुओं की घु संज्ञा का मुख्य फल यही है कि *नेर्गदनदपतपदघु०*
१।३) से प्र उपसर्ग से उत्तर नि के 'न्' को 'ण्' घु संज्ञक धातु के
ते हो जाता है।

प्रणिददाति (अच्छी प्रकार निश्चय से देता है)
पूर्ववत् सब सूत्र लगकर शप् तिप् प्रत्यय आये,
तिप् *जुहोत्यादिभ्यः श्लुः* (२।४।७५) *प्रत्ययस्य०* (१।१।६०)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दा तिप् श्लौ (६।१।१०) एकाचो द्वे प्रथमस्य (६।१।१) से रहते द्वित्व हुआ

दा दा ति पूर्वोऽभ्यासः (६।१।४) ह्रस्वः (७।४।५९) से अभ्यास ह्रस्व हुआ।

प्र नि ददाति, प्रादय उपसर्गाः क्रियायोगे (१।४।५८) से प्र नि की संज्ञा हुई। अब दाधाघ्वदाप् से दा रूप वाले घु संज्ञा होकर, नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च से घु संज्ञक धातु के परे रहते नि को णि हो गया

प्रणिददाति बना।

इसी प्रकार डुधाञ् धातु से प्रणिदधाति (अच्छी प्रकार से धारण करता है) की सिद्धि जानें। अभ्यास के ध् को द् अभ्यास (८।४।५३) से होगा ऐसा जानें॥

प्रणिदीयते (अच्छी प्रकार निश्चय से दिया जाता है)

डुदाञ् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, लः कर्मणि च (३।४।६९) से कर्म में लकार हुए,

दा लट् भावकर्मणोः (१।३।१३) से आत्मनेपद का 'त' प्रत्यय के स्थान में हुआ।

दा त तिङ्शित् सार्वधातुकम् (३।४।११३) से 'त' की संज्ञा हुई तब सार्वधातुके यक् (३।१।६७) प्रत्यय से कर्म वाच्य में 'यक्' प्रत्यय हुआ।

दा य त पूर्ववत् 'दा' की अङ्ग संज्ञा तथा प्रकृत सूत्र से 'यु' जाने से घुमास्थागापाजहातिसां हलि (६।४।६६) से अङ्ग 'दा' को ईत्व प्राप्त हुआ, अलोऽन्त्यस्य से अन्त्य अल् 'आ' को 'ई' होकर,

प्र णि दी य त, अब पुनः घु संज्ञा होने से नेर्गदनदपतपदघु हो गया।

प्रणि दीयत टित आत्मनेप० (३।४।७९) अचोऽन्त्यादि टि (

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[पादः]

णिदीयते बना।

इसी प्रकार डुधाञ् धातु से *प्रणिधीयते* (अच्छी प्रकार निश्चय से धारण किया जाता है) की सिद्धि जानें। घु संज्ञा का फल यहाँ भी पूर्ववत् ६।४।६६ से ईत्व एवं णत्व करना ही है। श्लु परे न होने से यहाँ द्वित्वादि कार्य नहीं होते। डुदाञ् से तृच् प्रत्यय में *प्रणिदाता* (अच्छी प्रकार निश्चय से देने वाला) तथा डुधाञ् से *प्रणिधाता* (अच्छी प्रकार निश्चय से धारण करने वाला) की सिद्धि परि० १।१।२ के चेता के समान जानें। घु संज्ञा का फल यहाँ भी पूर्ववत् णत्व करना ही है॥

———

प्रणियच्छति (अच्छी प्रकार निश्चय से देता है)

प्र ण् — पूर्ववत् सब सूत्र लगकर घु संज्ञा होने से णत्व भी पूर्ववत् होकर

णि दा शप् तिप्, *पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः* (७।३।७८) से शित् प्रत्यय परे रहते 'दाण्' को 'यच्छ्' आदेश प्राप्त हुआ, *अनेकाल्शित् सर्वस्य* (१।१।५४)

णि यच्छ् अ ति = प्रणियच्छति, बना।

———

प्रणिद्यति (अच्छी प्रकार निश्चय से काटता है)

अवखण्डने, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

शप् तिप् *दिवादिभ्यः श्यन्* (३।१।६९) *प्रत्ययः, परश्च* (३।१।१,२)

श्यन् ति पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर *ओतः श्यनि* (७।३।७१) से श्यन् परे रहते ओकारान्त अङ्ग का लोप प्राप्त हुआ, *अलोन्त्यस्य* (१।१।५१)

नि द् य ति, पूर्ववत् घु संज्ञा होकर, णत्व होकर

प्रणिद्यति बना।

———

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रणिदयते (अच्छी प्रकार निश्चय से रक्षा करता है)

दे॰ङ् रक्षणे पूर्ववत् सब सूत्र लगकर अनुदात्तङित आत्मनेप
१२) से दे॰ङ् के ङित् होने से आत्मनेपद हुआ।
प्र नि दे शप् त, एचोयवायावः (६।१।७५) टित आत्मनेपदानां टे
प्र नि दय् अ ते पूर्ववत् घु संज्ञा होने से णत्व होकर,
प्रणिदयते बन गया।

इसी प्रकार धेट् पाने धातु से प्रणिधयति वत्सो मातरम् (बछड़ा
का दुग्ध पान करता है) की सिद्धि जानें॥

———

देहि (तू दे)

डुदाञ् भूवाद्यो० (१।३।१) धातोः (३।१।९१) लोट् च (३।
दा लोट् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
दा शप् सिप्, यहाँ शप् के स्थान में श्लु तथा द्वित्व (६।१।१०)
कार्य प्रणिददाति के समान होकर,
द दा सि सेर्ह्यपिच्च (३।४।८७) से लोट् सम्बन्धी 'सि' के
हो गया।
द दा हि अब दाधाघ्वदाप् से 'दा' की घु संज्ञा होने से,
वभ्यासलोपश्च (६।४।११९) से घु संज्ञक अङ्ग को
तथा अभ्यास का लोप 'हि' परे रहते प्राप्त हुआ
न्यस्य (१।१।५१) से अन्त्य अल् 'दा' के 'आ' को
देहि बना।

इसी प्रकार डुधाञ् धातु से धेहि (तू रख) की सिद्धि जानें।

—:०:—

परि० आद्यन्तवदे० (१।१।२०)

सूत्र प्रयोजन—औपगवः की सिद्धि परि० १।१।१ में कर आये हैं
पर जो विशेष है, वह आगे दर्शाते हैं—जिस प्रकार 'कर्तव्यः'
धातु से हुए 'तव्य' प्रत्यय को अनेक अच् होने से आद्युदात्तश्च
३) से आद्युदात्त हो जाता है, उसी प्रकार औपगवः में अण्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

होने पर भी प्रकृत सूत्र से आदिवत् व्यवहार होकर, *आद्युदात्तश्च* से प्रत्यय को आद्युदात्त हो जाता है, यही प्रकृत सूत्र का प्रयोजन है॥

औपगवः

अपगु अण् पूर्ववत् परि० (१।१।१) के समान सब जानें, *आद्युदात्तश्च* (३।१।३) *उच्चैरुदात्तः* (१।२।२९) *आद्यन्तवदेकस्मिन्* से एक 'अ' वर्ण में ही आदिवत् व्यवहार होकर उदात्त हो गया, *अनुदात्तं पदमेकवर्जम्* (६।१।१५२) से एक को (उदात्त या स्वरित को) छोड़कर शेष को अनुदात्त हो गया

औपगव् अ शेष पूर्ववत् सब होकर,

औपगवः बना।

———

सूत्र प्रयोजन—आभ्याम् इस उदाहरण में अ + भ्याम् इस अवस्था में *सुपि च* (७।३।१०२) से 'अ' के अकेले होने पर भी प्रकृत सूत्र से 'अ' को अन्तवद्भाव होकर अदन्त अङ्ग मानकर दीर्घ हो गया, जिस प्रकार पुरुषाभ्याम् आदि में होता है।

आभ्याम् (इन दोनों के द्वारा)

अदस् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

अदस् भ्याम् *त्यदादीनामः* (७।२।१०२) *अलोन्त्यस्य* (१।१।५१)

अद अ भ्याम् *अतो गुणे* (६।१।९४) से पररूप होकर,

अद् भ्याम् *हलि लोपः* (७।२।११३) से इद् भाग का लोप हो गया।

अ भ्याम् अब 'अ' की अङ्ग संज्ञा होकर *सुपि च* (७।३।१०२) से अदन्त अङ्ग 'अ' को दीर्घ प्राप्त हुआ, पर 'अ' तो अकेला ही है, तब *आद्यन्तवदे०* से अन्तवद्भाव होकर,

आभ्याम् बन गया। ३ छिदिरघुपू० ६।१। ते विभक्तौ उदात्त आनुदात्तं पदमेकवर्जम्० ते आ दो अनुदात्त हो गया।

आभ्याम्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० तरप्तमपौ घः (१।१।२१)

कुमारितरा (दो कुमारियों में से जो अधिक कुमारी)

कुमारी *द्विवचनविभज्योपपदे तरबी०* (५।३।५७) प्रत्ययः, परश्च,
कुमारी तरप्, *तद्धिताः* (४।१।७६) कृत्तद्धितसमासाश्च (१।२।४६)
अजाद्यतष्टाप् (४।१।४) प्रत्ययः, परश्च,
कुमारीतर टाप्, अब *तरप्तमपौ घः* से तरप् की घ संज्ञा होने से
चेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः (६।३।
ह्रस्व हो गया।
कुमारितर आ, *अकः सवर्णे दीर्घः* (६।१।९७)
कुमारितरा *ङ्याप्प्रातिपदिकात्* (४।१।१) आदि सब सूत्र
पूर्ववत् सु आकर, उसका *हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०*
से लोप हो गया तो,
कुमारितरा बना।

इसी प्रकार *ब्राह्मणितरा* (दो ब्राह्मणियों में जो, आचार
आदि में अधिक श्रेष्ठ) में भी पूर्ववत् ह्रस्वत्वादि कार्य समझें।

———

कुमारितमा (सबसे बड़ी कुमारी)

कुमारी सुप् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, *अतिशायने तमबिष्ठनौ*
से तमप् प्रत्यय हुआ।
कुमारी तमप्, *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) पूर्ववत् टाप् प्रत्यय
संज्ञा होकर ६।३।४२ से ह्रस्व हो गया।
कुमारि तम टाप्, शेष सब पूर्ववत् ही जानें।
कुमारितमा बना।

इसी प्रकार *ब्राह्मणितमा* (जो सबसे अधिक ब्राह्मणी) में भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० बहुगणवतु० (१।१।२२)

बहुकृत्वः (बहुत बार)

अर्थवदधातु० (१।२।४५) *बहुगणवतुडति सङ्ख्या* से 'बहु' की सङ्ख्या संज्ञा होने से *सङ्ख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने* कृत्वसुच् (५।४।१७) से कृत्वसुच् प्रत्यय हुआ,

कृत्वसुच्, *तद्धिताः* (४।१।७६) *कृत्तद्धितस०* (१।२।४६) आदि पूर्ववत् सूत्र लगकर 'सु' आया।

कृत्वस् सु, अब *तदिधतश्चासर्वविभक्तिः* (१।१।३७) से 'कृत्वस्' की अव्यय संज्ञा होकर, *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२) से 'सु' का लुक् हो गया।

कृत्वस् *सुप्तिङन्तं पदम्* (१।४।१४) *पदस्य* (८।१।१६) *ससजुषो रुः* (८।२।६६)

कृत्वस् रु=र्, *विरामोऽव०* (१।४।१०९) *खरवसानयोर्विस०* (८।३।१५) बना।

कृत्वः

इसी प्रकार गण शब्द से पूर्ववत् *गणकृत्वः* (समूहवार) बनेगा। गणकृत्वः में जो विशेष है वह दर्शाते हैं:—

तावत्कृत्वः (उतनी बार)

अर्थवदधातु०(१।२।४५) *यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्* (५।२।३९) प्रत्ययः, *परश्च*,

तद् सु वतुप्=वत्, *सर्वं दीनि सर्वनामानि* (१।१।२६) से तद् की सर्वनाम संज्ञा होने से *आ सर्वनाम्नः* (६।३।८९) से आकारादेश प्राप्त हुआ, *अलोऽन्त्यस्य* (१।१।५१) से अन्तिम अल् 'द्' को 'आ' हुआ।

त आ वत्

तावत् *अकः सवर्णे दीर्घः* (६।१।९७) *तुल्यास्यप्र०* (१।१।९) *कृत्तद्धितसमा०* (१।२।४६) पुनः पूर्ववत् 'तावत्' की सङ्ख्या संज्ञा होने से ५।४।१७ से कृत्वसुच् प्रत्यय हुआ,

तावत्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तावत् कृत्वसुच्, सुपो धातु० (२।४।७१), शेष पूर्ववत् जानें।
तावत्कृत्वः बना ॥

कतिकृत्वः में भी जो विशेष है, सो दर्शाते हैं—

कतिकृत्वः (कितनी बार)

किम् अर्थवदधातुर० (१।२।४५) किमः सङ्ख्यापरिमाणे डतिच् (५।२।४१) प्रत्ययः, परश्च
किम् डति = अति, यचि भम् (१।४।१८) भस्य (६।४।१२९) टेः (६।४।१५५) से 'किम्' के टि भाग = इम् का लोप हुआ, अनेकाल्० टि (१।१।६३)
क् अति = कति, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर कति की सङ्ख्या संज्ञा होने से ५।४।१७ से कृत्वसुच् प्रत्यय आया।
कति शस् कृत्वसुच्, शेष सब पूर्ववत् जानें।
कतिकृत्वः

———

बहुधा (बहुत प्रकार से)

बहु अर्थवदधातुरप्रत्ययः बहुगणवतुडति सङ्ख्या से सङ्ख्या संज्ञा होने से सङ्ख्याया विधार्थे धा (५।३।४२) से परश्च से धा प्रत्यय हुआ,
बहु शस् धा पूर्ववत् 'सु' आकर तदिदतश्चासर्व० (१।१।३७) से
बहुधा सु दाप्सुपः (२।४।८२) से सु का लुक् हो गया
बहुधा बना ॥

इसी प्रकार गण शब्द से गणधा (समुदाय से) तावत् से तावद्धा (उतनी प्रकार) कति शब्द से कतिधा (कितनी प्रकार) की सिद्धि जानें। तावत् एवं कति की सिद्धि पूर्ववत् ही समझ लें। तावद्धा में द् को 'द्' झलां जश् झशि (८।४।५२) से होगा।

———

बहुकः (बहुतों से क्रीत = खरीदा हुआ)

बहु पूर्ववत् बहु की सङ्ख्या संज्ञा होने से सङ्ख्याया

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

दन्तायाः कन् (५।१।२२) प्रत्ययः, परश्च से कन् प्रत्यय हुआ।

बहु कन् = क, तद्धिताः (४।१।७६) कृत्तद्धित० (१।२।४६) आदि सब सूत्र लगकर,

बहुक बना।

इसी प्रकार गणकः (समुदाय से क्रीत) तावत्कः (उतने से क्रीत) कतिकः (कितनों से क्रीत) की सिद्धि पूर्ववत् ही जानें। तावत् एवं कति की सिद्धि पूर्ववत् ही जानें।

———

बहुशः (बहुत बार)

बहु अर्थवदधा०(१।२।४५), पूर्ववत् सङ्ख्या संज्ञा होकर सङ्ख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् (५।४।४३) से शस् प्रत्यय हुआ।

बहु शस् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर 'सु' आया, उसकी पूर्ववत्

बहु शस् सु अव्यय संज्ञा होकर २।४।८२ से लुक् हो गया,

बहु शस् पुनः शस् के स् को पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय हो गया।

बहुशः बन गया।

इसी प्रकार गणशः (समुदाय २ बार) तावच्छः (उतनी उतनी बार) बनेगा। तावच्छः में शश्छोऽटि (८।४।६२) से 'श' को 'छ' तथा स्तोः श्चुना श्चुः (८।४।३६) से 'त्' को 'च्' हुआ है। कतिशः (कितनी कितनी बार) की सिद्धि भी पूर्ववत् ही जानें॥

—:०:—

परि० ष्णान्ता षट् (१।१।२३)

षट् तिष्ठन्ति (छः व्यक्ति बैठते हैं)

षष् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

षष् जस् ष्णान्ता षट् से षकारान्त जो सङ्ख्यावाची षष् शब्द उसकी, षट् संज्ञा होने से षड्भ्यो लुक् (७।१।२२) से जस् का लुक् पाया, प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः (१।१।६०)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

षष् सुप्तिङन्तं पदम् (१।४।१४) प्रत्ययलोपे प्रत्यय० (१।
झलां जशोऽन्ते(८।२।३९) से पदान्त में झल् को जश्
'ष्' को 'ड्' हो गया। विरामोऽवसानम् (१।४।११०)
षड् तिष्ठन्ति, वावसाने (८।४।५५) से पक्ष में चर् अर्थात् 'ड्' को
होकर,
षट् तिष्ठन्ति बन गया ॥

इसी प्रकार षट् पश्य (छः व्यक्तियों को देखो) में सम्बो
शस् विभक्ति का पूर्ववत् लुक् हुआ है। पञ्चन्, सप्तन्, नवन्,
प्रातिपदिकों की भी नकारान्त सङ्ख्यावाची शब्द होने से, पद
होकर इन प्रातिपदिकों से जो जस्, तथा शस् विभक्ति आई
पूर्ववत् लुक् हो गया, पीछे न लोपः प्रातिपदि० (८।२।७) से नका
लोप भी होकर पञ्च (पाँच) सप्त (सात) नव (नौ) दश (दस)
बनेंगे ॥

—:०:—

परि० क्तक्तवतू निष्ठा (१।१।२५)

चितः चितवान्, स्तुतः स्तुतवान्, भिन्नः भिन्नवान् की सिद्धि
१।१।५ में कर आये हैं वहीं देखें। पठितः पठितवान् में पठ्
के सेट् होने से आर्द्धधातुकस्येड्० (७।२।३५) से इट् आगम होक
इट् त = पठितः, पठ् इट् तवान् = पठितवान् बनेगा, यही विधि
डुपचष् धातु से पक्वः (पकाया हुआ) पक्ववान् (उसने पकाया) में
(८।२।३०) से 'च्' को 'क्' तथा यचो वः (८।२।५२) से निष्ठा के
को 'व्' होता है, शेष सब पूर्ववत् ही जानें।

क्त, क्तवतु की निष्ठा संज्ञा का यही फल है, कि निष्ठा (अर्थात्
कहने से क्त, क्तवतु प्रत्यय हो जावें ॥

—:०:—

परि० सर्वादीनि सर्व० (१।१।२६)

सर्वे (वे सब)

सर्व पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, जस् आया,
सर्व जस् सर्वादीनि सर्वनामानि से 'सर्व' की सर्वनाम संज्ञा

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

जसः शी (७।१।१७) से जस् को शी आदेश प्राप्त हुआ, अनेकाल्शित् सर्वस्य (१।१।५४)
आद् गुणः (६।१।८४) से गुण एकादेश होकर
बन गया।

इसी प्रकार विश्व शब्द से *विश्वे* (ये सारे) बनेगा।

———

सर्वस्मै (सब के लिये)

पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
सर्वादीनि सर्वनामानि से सर्वनाम संज्ञा होने से सर्वनाम्नः स्मै (७।१।१४) से ङि को स्मै आदेश प्राप्त हुआ, अनेकाल्शित्० (१।१।५४)
बन गया।

इसी प्रकार विश्व शब्द से *विश्वस्मै* (सब के लिये) भी समझें। सर्वस्मात् (सब से) *विश्वस्मात्* (सब से) *सर्वस्मिन्* (सब में) विश्वस्मिन् (सब में) यहाँ भी सर्व तथा विश्व शब्दों से सर्वनाम संज्ञा होने के कारण पञ्चमी विभक्ति ङसि, तथा सप्तमी विभक्ति ङि को, ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ (७।१।१५) से क्रमशः स्मात् एवं स्मिन् आदेश हो जाता है। यही सर्वनाम संज्ञा का प्रयोजन है॥

———

सर्वेषाम् (सबका)

पूर्ववत् सब सूत्र लगकर षष्ठी का बहुवचन 'आम्' आया,
सर्वादीनि सर्वनामानि, आमि सर्वनाम्नः सुट् (७।१।५२) आद्यन्तौ० (१।१।४५)
सुट् आम्, पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा, वा अनुबन्ध लोप होकर,
स् आम् बहुवचने झल्येत् (७।३।१०३) अलोऽन्त्यस्य (१।१।५१)
आदेशप्रत्यययोः (८।३।५९) से मूर्धन्य ष् होकर,
बन गया।

इसी प्रकार विश्वेषाम् (सबका) की सिद्धि जानें॥

———

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

सर्वकः (सब बेचारे)

सर्व	*अर्थवद०* (१।२।४५) *ङ्याप्प्रातिप०* (४।१।१) पूर्वक
	सूत्र लगकर
सर्व	*सर्वादीनि सर्वनामानि* से सर्वनाम संज्ञा होने से
	अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः (५।३।७१) से सर्व
	भाग 'अ' से पूर्व अकच् प्रत्यय हुआ,
सर्व् अकच् अ	*अतो गुणे* (६।१।९४) *कृत्तद्धितस०* (१।२।४६)
सर्वक अ सु	सूत्र पूर्ववत् लगकर 'सु' आया एवं विसर्जनीय हो
सर्वकः	बना।

इसी प्रकार *विश्वकः* (सब बेचारे) में भी समझें॥

—:०:—

परि० विभाषा दिक्समासे० (१।१।२७)

उत्तरपूर्वस्यै (उत्तर और पूर्व दिशा के बीच की दिशा के लिये

उत्तरस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालम्—

उत्तरा ङस् पूर्वा ङस्	*दिङ्नामान्यन्तराले* (२।२।२६) से बहुव्रीहि स
	होकर *सुपो धातुप्रातिपदिकयोः* (२।४।७१) *कृत्तद्धित*
उत्तरापूर्वा	२।४६) *ङ्याप्प्रातिपदिकात्* आदि सब सूत्र लगकर
उत्तरापूर्वा ङे	*सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावो वक्तव्यः* (वा० २।४।२७)
	वार्त्तिक से पूर्वपद को पुंवद्भाव अर्थात् ह्रस्व हुआ।
उत्तरपूर्वा ङे	*विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ* से उत्तरपूर्वा की पद में
	संज्ञा होने के कारण *सर्वनाम्नः स्याड् ढ्रस्वश्च* (अं
	से सर्वनाम को ह्रस्व तथा ङित् को स्याट् का आगम
	हुआ, *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५)
उत्तरपूर्व स्याट् ङे	= उत्तरपूर्व स्या ए, *वृद्धिरेचि* (६।१।८५)
उत्तरपूर्वस्यै	बना।

इसी प्रकार *दक्षिणपूर्वस्यै* (दक्षिण तथा पूर्व दिशा के कोण दिशा के लिये) में जानें। जिस पक्ष में प्रकृत सूत्र से सर्वनाम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दाः]

हुई, उस पक्ष में स्याट् आगम एवं सर्वनाम को ह्रस्व न होकर याडापः (७।३।११३) से याट् का आगम होकर, उत्तरपूर्वा याट् ङे = उत्तरपूर्वा या पूर्ववत् वृद्धिरेचि (६।१।८५) लगकर उत्तरपूर्वायै बन गया। इसी प्रकार दक्षिणपूर्वायै में जानें॥

उत्तरपूर्वस्याः (उत्तर और पूर्व की दिशा के कोने वाली दिशा का) में भी पूर्ववत् ही सब होकर, उत्तरपूर्वा ङस् रहा, पूर्ववत् सर्वनाम संज्ञा होने से स्याट् आगम एवं ह्रस्व होकर 'उत्तरपूर्व स्या अस्' रहा। अकः सवर्णे० (६।१।९७) से सवर्ण दीर्घ एवं स् को पूर्ववत् विसर्जनीय होकर उत्तरपूर्वस्याः बन गया। इसी प्रकार *दक्षिणपूर्वस्याः* में भी जानें। जिस पक्ष में सर्वनाम संज्ञा नहीं हुई तो पूर्ववत् याट् आगम होकर उत्तरपूर्वा याट् ङस् = उत्तरपूर्वायाः, दक्षिणपूर्वायाः बना॥

—:o:—

परि० न बहुव्रीहौ (१।१।२८)

प्रियविश्वाय (सब प्रिय हैं जिसके, उसके लिये)

प्रियाः विश्वे यस्य—

प्रिय जस् विश्व जस्, *शेषो बहुव्रीहिः* (२।२।२३) *अनेकमन्यपदार्थे* (२।२।२४) *सुपो धातुप्रातिपदिकयोः* (२।४।७१) *कृत्तद्धितसमा०* पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

प्रियविश्व

प्रियविश्व ङे अब *सर्वादीनि सर्वनामानि* (१।१।२६) से विश्व की सर्वनाम संज्ञा होने के कारण *सर्वनाम्नः स्मै* (७।१।१४) से 'ङे' को 'स्मै' आदेश पाया, पर *न बहुव्रीहौ* से सर्वनाम संज्ञा का ही प्रतिषेध हो जाने से स्मै आदेश नहीं हुआ, तब *ङेर्यः* (७।१।१३) से ङे को 'य' आदेश हो गया।

प्रियविश्व य

प्रियविश्वाय *सुपि च* (७।३।१०२) से दीर्घ होकर, बन गया।

इसी प्रकार प्रिया उभये यस्य = *प्रियोभयाय* (प्रिय हैं, दोनों जिसके उसके लिये) की सिद्धि जानें। *आद् गुणः* (६।१।८४) से उभय के 'उ' को गुण एकादेश हो ही जायगा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

द्वौ अन्यौ यस्य, स द्व्यन्यः, तस्मै द्व्यन्याय (दो हैं अन्य उसके लिये) त्रयः अन्ये यस्य स त्र्यन्यः तस्मै त्र्यन्याय (तीन हैं जिसके, उसके लिये) यहाँ भी पूर्ववत् ही सिद्धि जानें, सर्वादि का निषेध ङे को स्मै आदेश न हो इसलिये किया है। इको यण् १।७४) से यहाँ यणादेश होता है यही विशेष है॥

—:०:—

परि० तृतीयासमासे (१।१।२९)

मासपूर्वाय (मास भर पहले उत्पन्न हुये के लिये)

मासेन पूर्वः मासपूर्वः तस्मै—

मास टा पूर्व सु, *पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः* (२।१। तृतीया तत्पुरुष समास हुआ। *कृत्तद्धितसमा०* (१ *सुपो धातुप्रातिपदिकयोः* (२।४।७१)

मासपूर्व पूर्ववत् सब सूत्र लगकर

मासपूर्व ङे *सर्वादीनि सर्वनामानि* (१।१।२६) से 'पूर्व' की संज्ञा होने से पूर्ववत् 'ङे' को 'स्मै' आदेश प्राप्त पर *तृतीयासमासे* से सर्वनाम संज्ञा का ही निषेध से 'स्मै' आदेश न होकर, *ङेर्यः* (७।१।१३) से हो गया।

मासपूर्व य *सुपि च* (७।३।१०२) से दीर्घ होकर,

मासपूर्वाय बना।

इसी प्रकार *संवत्सरपूर्वाय* (वर्ष भर पूर्व उत्पन्न हुये के लिये) समझें।

———

द्व्यहपूर्वाय (दो दिन पूर्व वाले के लिये)

द्वे अहनी समाहृते, द्व्यहः—

द्वि औ अहन् औ, *तद्धितार्थोत्तरपदसमा०* (२।१।५०) से समास *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) *सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१)

द्विअहन् *राजाहः सखिभ्यष्टच्* (५।४।९१) प्रत्ययः, परश्च,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अहन् टच् = अ, अह्नोऽह्न एतेभ्यः (५।४।८८) से अहन् को अह्न आदेश प्राप्त हुआ, उसका न सङ्ख्यादेः समाहारे (५।४।८९) से निषेध हो गया। अह्नष्टखोरेव (६।४।१४५) से टि भाग का लोप हुआ, अचोऽन्त्यादिटि (१।१।६३) ने अन् की टि संज्ञा की

अह् अ इको यणचि (६।१।७४) से यणादेश हुआ,

द्व्यह् अ = द्व्यह, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, 'टा' विभक्ति आकर 'पूर्व' शब्द के साथ 'द्व्यह' का नया समास पूर्वसदृश० (२।१।३०) से हुआ। सुपो धातुप्रा० (२।४।७१)

द्व्यहेन पूर्वः

द्व्यहपूर्व ङे पूर्ववत् ही सब होकर,

द्व्यहपूर्वाय बना।

इसी प्रकार त्र्यहपूर्वाय (तीन दिन पूर्व वाले के लिये) की सिद्धि करें।

—:०:—

परि० द्वन्द्वे च (१।१।३०)

पूर्वपराणाम् (पूर्व और पर वालों का)

पूर्वाश्च पराश्च, पूर्वपरास्तेषाम्—

पूर्वपर जस् पर जस्, चार्थे द्वन्द्वः (२।२।२९) सुपो धातु० (२।४।७१)

पूर्वपर पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

पूर्वपर आम् अब यहाँ सर्वादीनि सर्व० (१।१।२६) से सर्वनाम संज्ञा होने से आमि सर्वनाम्नः सुट् (७।१।५२) से सुट् आगम प्राप्त होता है, पर द्वन्द्वे च से सर्वनाम संज्ञा का ही निषेध हो जाने से सुट् आगम नहीं हुआ, तब ह्रस्वनद्यापो नुट् (७।१।५४) से नुट् आगम प्राप्त हुआ, आद्यन्तौ० (१।१।४५)

पूर्वपर नुट् आम्, नामि (६।४।३) से अङ्ग को दीर्घ होकर,

पूर्वपरा न् आम्, अट् कुप्वाङ् नुम्व्यवायेऽपि (८।४।२) से णत्व होकर,

पूर्वपराणाम् बना।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इसी प्रकार दक्षिणश्च उत्तरश्च पूर्वश्च, दक्षिणोत्तरपूर्वाणां तरपूर्वाणाम् (दक्षिण, उत्तर, और पूर्व दिशाओं में रहने वालों कतरकतमानाम् (दो में से तथा बहुतों में से किन सबों को भी जानें।

—:o:—

परि० विभाषा जसि (१।१।३१)

सर्वनाम संज्ञा पक्ष में *कतरकतमे* (दो में से कौन से, तथा कौन से) की सिद्धि परि० १।१।२६ के सर्व के समान जानें। में सर्वनाम संज्ञा नहीं हुई तो *कतरकतमाः* बना॥

———

कतरकतमाः

कतर जस् कतम जस्, पूर्ववत् समास आदि सब होकर,

कतरकतम जस्, चुटू (१।३।७) *तस्य लोपः* (१।३।९) हलन्त्य से अन्तिम स् की भी इत् संज्ञा प्राप्त हुई, पर न *तुस्माः* (१।३।४) से विभक्ति का सकार होने से हो गया।

कतरकतम अस्, *प्रथमयोः पूर्वसवर्णः* (६।१।९८) से पूर्वसवर्ण हुआ।

कतरकतमास् यहाँ *विभाषा जसि* से पक्ष में सर्वनाम संज्ञा न हो *जसः शी* (७।१।१७) से शी आदेश नहीं होता, जहाँ नाम संज्ञा के विकल्प का फल है। अब पूर्वसवर्ण विसर्जनीय होकर,

कतरकतमाः बना।

इसी प्रकार *दक्षिणपूर्वे* (दक्षिण और पूर्व वाले) दक्षिणपूर्व सिद्धि भी समझें।

—:o:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० तद्धितश्चासर्व० (१।१।३७)

ततः (उससे)

अर्थवदधा० (१।२।४५) आदि सब सूत्र पूर्ववत् लगकर,
पञ्चम्यास्तसिल् (५।३।७) *प्रत्ययः, परश्च*,
कृत्तद्धितसमा० (१।२।४६) *तद्धिताः* (४।१।७६) *सुपो धातुप्रा०* (२।४।७१)
अब *प्राग्दिशो विभक्तिः* (५।३।१) से तसिल् की विभक्ति संज्ञा होने से *त्यदादीनामः* (७।२।१०२) से विभक्ति परे मानकर अकारादेश पाया, *अलोन्त्यस्य* (१।१।५१) से 'द्' को 'अ' हो गया।
अतो गुणे (६।१।९४) *अदेङ् गुणः* (१।१।२)
पूर्ववत् सब सूत्र लगकर 'सु' आया
अब *तद्धितश्चासर्वविभक्तिः* से ततस् की अव्यय संज्ञा होने से *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२) से सु का लुक् हो गया।
पूर्ववत् स् को रुत्व विसर्जनीय होकर बन गया।

इसी प्रकार यद् शब्द से यतः (यहाँ से) भी समझें॥

तत्र (वहाँ)

पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
सप्तम्यास्त्रल् (५।३।१०) *प्रत्ययः, परश्च*,
शेष सब सूत्र पूर्ववत् ही लगकर
तत्र = तत्र सु, पूर्ववत् ही अव्यय संज्ञा होने से सु का लुक् होकर बना।

इसी प्रकार यद् शब्द से यत्र (यहाँ) भी समझें॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तदा (तस्मिन् काले = तब)

तद् ङि — पूर्ववत् सब सूत्र लगकर सर्वैकान्यकिंयत्तदः (५।३।१५) प्रत्ययः, परश्च से दा प्रत्यय आया,
तद् ङि दा — शेष सूत्र सब पूर्ववत् लगाकर
त अ दा = तदा सु, तद्धितश्चा० अव्ययादाप्सुपः (२।४।८२)
तदा — बना ॥

इसी प्रकार 'यद्' शब्द से यस्मिन् काले = यदा (जब) बनेगा, जानें। सर्व शब्द को 'दा' प्रत्यय के परे रहते सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां (५।३।६) से 'स' आदेश पक्ष में होकर पूर्ववत् सदा भी बनेगा।

———

विना (छोड़कर)

वि — अर्थवदधातु० (१।२।४५) ङ्याप्प्रातिपदिकात् (२।४।७१) विनञ्भ्यां नानाञौ न सह (५।२।२७) प्रत्ययः, परश्च
वि ना — पूर्ववत् सु विभक्ति आकर,
विना सु — तद्धितश्चासर्व० अव्ययादाप्सुपः (२।४।८२) से लुक्
विना — बना ॥

इसी प्रकार नञ् निपात से विनञ्भ्यां नानाञौ० से नञ् होकर तथा तद्धितेष्वचामादेः (७।२।११७) से वृद्धि होकर 'ना' नाना सु, रहा, सो पूर्ववत् ही अव्यय संज्ञा होने से लुक् होने (भिन्न-भिन्न प्रकार के) बन गया ॥

—:o:—

परि० कृन्मेजन्तः (१।१।३८)

स्वादुंकारं भुङ्क्ते (स्वादुयुक्त बनाकर खाता है)

अस्वादुम् स्वादुम् कृत्वा भुङ्क्ते—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कृकृन् भूवादयो० (१।३।१) आदिर्ञिटु० (१।३।५) हलन्त्यम् (१।३।३) तस्य लोपः (१।३।९) अदर्शनं लोपः (१।१।५९)

स्वादुम् अम् कृ, तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् (३।१।९२) से स्वादु की उपपद संज्ञा हुई, तो धातोः (३।१।९१) स्वादुमि णमुल् (३।४।२६) से कृ धातु से स्वादुम् उपपद रहते णमुल् प्रत्यय हुआ। और उसको मकारान्तत्व निपातन से हो गया

स्वादुम् अम् कृ णमुल्, अचो ञ्णिति (७।२।११५) उरण्रपरः (१।१।५०)

स्वादुम् अम् कार् अम्, कृदतिङ् (३।१।९३) कृन्मेजन्तः से 'कारम्' की अव्यय संज्ञा होने से अमैवाव्ययेन (२।२।२०) से अमन्त अव्यय के साथ स्वादुम् उपपद का समास हो गया। कृत्तद्धितसमासाश्च (१।२।४६) सुपो धातुप्रा० (२।४।७१)

स्वादुम्कारम्, नश्चापदान्तस्य झलि (८।३।२४) शेष सब पूर्ववत् होकर,

स्वादुंकारम् सु, अब कृन्मेजन्तः से पुनः 'स्वादुंकारम्' की अव्यय संज्ञा होकर अव्ययादाप्सुपः (२।४।८२) से 'सु' का लुक् हो गया।

स्वादुंकारम् भुङ्क्ते बना।

इसी प्रकार सम्पन्नंकारं भुङ्क्ते (सम्पन्न करके खाता है) लवणङ्कारं भुङ्क्ते (लवणयुक्त करके खाता है) की सिद्धि भी जानें। स्वादुमि णमुल् स्वादुम् के अर्थवाची शब्दों का भी ग्रहण है, अतः सम्पन्नम् लवणम् उपपद रहते भी णमुल् प्रत्यय हो जाता है॥ उदरपूरं भुङ्क्ते की सिद्धि इसी प्रकार होगी, केवल यहाँ 'उदर' उपपद रहते पूरि धातु से उदरयोः पूरेः (३।४।३१) सूत्र से णमुल् होगा यही विशेष है॥

वक्षे रायः (धनों को कहने के लिए)

परिभाषणे, भूवादयो धातवः, धातोः (३।१।९१) तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्से० (३।४।९) से छन्द विषय में तुमुन् के अर्थ में 'से' प्रत्यय आया,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वच् से — चोः कुः (८।२।३०) से झल् परे रहते वच् के च् को कुत्व प्राप्त हुआ, स्थानेऽन्तरतमः (१।१।४९)

वक् से — आदेशप्रत्यययोः (८।३।५९) से षत्व तथा पूर्वक विभक्ति आकर,

वक् षे = वक्षे सु, कृन्मेजन्तः, अव्ययादाप्सुपः (२।४।८२) वक्षे रायः बना ॥ रै + शस् = रायः बनता है ॥

'से' तथा 'सेन्' दोनों प्रत्ययों में वक्षे यही रूप बनेगा, केवल स्वर का ही भेद है ॥

इसी प्रकार ता वाम् एषे रथानाम् (रथों को प्राप्त करने के लि इण् धातु से सेन् प्रत्यय, तथा धातु को ७।३।८४ से गुण होक बन गया है। जीव धातु से 'असे' प्रत्यय होकर जीव् अ = बनेगा। दृशिर् धातु से दृशे विख्ये च (३।४।११) सूत्र के नि 'के' प्रत्यय होकर दृश् के = दृश् ए = दृशे बन गया है। म्लेच्छ म्लेच्छ धातु से ३।४।९ सूत्र से तवै प्रत्यय तथा आर्धधातु (७।२।३५) से इट् आगम होकर म्लेच्छ् इट् तवै = म्लेच्छितवै सर्वत्र कृन्मेजन्तः से एजन्त कृत् मानकर अव्यय संज्ञा, तथा दाप्सुपः (२।४।८२) से सु का लुक् हो जायेगा ॥

—:o:—

परि० क्त्वातोसुन्कसुनः (१।१।३९)

पठित्वा (पढ़ करके)

पठ — भूवादयो० (१।३।१) आदि सब सूत्र लगकर

पठ् — समानकर्तृकयोः पूर्वकाले (३।४।२१) से क्त्वा प्रत्यय

पठ् क्त्वा = त्वा, आर्धधातुकं शेषः (३।४।११४) आर्धधातुकसंज्ञ ३५) आद्यन्तौ टकितौ (१।१।४५)

पठ् इट् त्वा — पूर्ववत् सब सूत्र लगकर 'सु' आया,

पठित्वा सु — क्त्वातोसुन्कसुनः, अव्ययादाप्सुपः (२।४।८२)

पठित्वा — बना ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इसी प्रकार अनिट् चिन् धातु से चित्वा, (चुन करके) जित्वा (जीत करके) कृत्वा (करके) हृत्वा (हरण करके) की सिद्धि जानें। सर्वत्र अव्यय संज्ञा का प्रयोजन 'सु' का लुक् करना है। चित्वा जित्वा आदि में *सार्व-धातुकार्ध०* (७।३।८४) से गुण की भी प्राप्ति है, सो उसका *क्ङिति च* (१।१।५) से निषेध हो जाता है, तथा *आर्धधातु०* (७।२।३५) से इट् आगम प्राप्त था उसका *एकाच उपदेशे०* (७।२।१०) से निषेध हो गया है॥

———

उदेतोः

उत् इण् *भूवादयो० प्रादय उपसर्गाः०* (१।४।५८) *धातोः* (३।१।९१)
उत् इ *भावलक्षणे स्थेशृङ्भ्वादिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन्* (३।४।१६)
उत् इ तोसुन् = तोस्, *झलां जशोऽन्ते* (८।२।३९) *स्थानेऽन्तरतमः*
उद् इ तोस् (१।१।४९) *आर्धधातुकं शेषः* (३।४।११४) *सार्वधातुकार्ध०* (७।३।८४)
उद् ए तोस्, पूर्ववत् सु आकर,
उदेतोस् सु *क्त्वातोसुन्कसुनः* से तोसुन् अन्त वाले 'उदेतोस' की अव्यय संज्ञा हुई तो *अव्ययादाप्सुपः* से सु का लुक् हो गया,
उदेतोस् *सुप्तिङन्तं पदम्* (१।४।१४) से पद संज्ञा होकर पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय हो गया।
पूर्वस्य उदेतोः, यहाँ *आद् गुणः* (६।१।८४) से गुण एकादेश होकर,
पूर्वस्योदेतोः बना।

———

विसृपो विरप्शिन्

विसृप् क्त *भूवादयो०* पूर्ववत् सब होकर, *सृपितृदोः कसुन्* (३।४।१७)
विसृप् कसुन् *पुगन्तलघूप०* (७।३।८६) *क्ङिति च* (१।१।५)
विसृप् अस् पूर्ववत् सु आकर,
विसृपस् स् *क्त्वातोसुन्कसुनः* से कसुन् प्रत्ययान्त की अव्यय संज्ञा होकर *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२) से सु का लुक् हो गया,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

विसृपस् पूर्ववत् 'स्' को 'र्' होकर
विसृपर्ँ + विरप्शिन्, हशि च (६।१।११०)
विसृप उ विरप्शिन्, आद्गुणः (६।१।८४)
विसृपो विरप्शिन्, बना ॥

—:०:—

परि० अव्ययीभावश्च (१।१।४०)

प्रत्यग्नि (अग्नि के सामने)

अग्नि अम् प्रति सु, *लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये* (२।१।१३) से अव्ययी
समास होकर, *कृत्तद्धितसमा०* (१।२।४६) सुपो धातु
अग्निप्रति *प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्* (१।२।४३) से
विधायक शास्त्र में जो प्रथमानिर्दिष्ट उसकी उपसर्जन
होती है, सो 'प्रति' की उपसर्जन संज्ञा होने से
पूर्वम् (२।२।३०) से 'प्रति' शब्द 'अग्नि' के पूर्व
प्रतिअग्नि *इको यणचि* (६।१।७४) से यणादेश होकर
प्रत्यग्नि पूर्ववत् सब सूत्र लगकर 'सु' आया,
प्रत्यग्नि सु *अव्ययीभावश्च* तथा *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२) लुक्
प्रत्यग्नि बना।

इसी प्रकार अग्नेः समीपम्=उपअग्नि ६।१।७४ से दीर्घ
उपाग्नि बना है, यहाँ *अव्ययं विभक्तिसमीप०* (२।१।६) से समीप
समास होगा शेष सब पूर्ववत् है ॥

———

अधिस्त्रि (स्त्रियों के विषय में जो कथा कही जाये)

स्त्रीषु अधिकृत्य या कथा प्रवर्त्तते—
स्त्री सुप् अधि सु *अव्ययं विभक्तिसमीप०* (२।१।६) से विभक्ति
'अधि' अव्यय के साथ समास हुआ, पूर्ववत् सब
स्त्रीअधि *प्रथमानिर्दिष्टं०* (१।२।४३) *उपसर्जनं पूर्वम्* (२।२।३०)
अधिस्त्री पूर्ववत् सु आकर,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

अधिस्त्री सु अधिस्त्री — *अव्ययीभावश्च*, *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२) *अव्ययीभावश्च* (२।४।१८) से नपुंसक लिङ्ग होकर ह्रस्वो नपुंसके *प्रातिपदिकस्य* (१।२।४७) से ह्रस्व प्राप्त हुआ, *ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः* (१।२।२७) *अचश्च* (१।२।२८)

अधिस्त्रि — बना ॥

—:०:—

परि० शि सर्वनामस्थानम् (१।१।४१)

कुण्डानि (बहुत से कुण्ड)

कुण्ड — पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

कुण्ड जस् — *जश्शसोः शिः* (७।१।२०) *अनेकाल्शित् सर्वस्य* (१।१।५४)

कुण्ड शि = इ, *शि सर्वनामस्थानम्*, *नपुंसकस्य झलचः* (७।१।७२) *मिदचोऽन्त्यात् परः* (१।१।४६) से अन्त्य अच् से परे नुम् का आगम हुआ।

कुण्ड नुम् इ = कुण्ड न् इ, *शि सर्वनामस्थानम्* से पुनः 'शि' की सर्वनाम-

कुण्ड न् इ — स्थान संज्ञा होने से, *सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ* (६।४।८) से दीर्घ होकर,

कुण्डा न् इ = कुण्डानि, बन गया।

इसी प्रकार वन शब्द से 'वनानि' (बहुत से वन)। दधि शब्द से दधीनि (बहुत प्रकार के दही) त्रपु शब्द से त्रपूणि, (बहुत से राँगा), जतु शब्द से जतूनि (बहुत सी लाखें) की सिद्धि भी जानें। त्रपूणि में 'न्' को 'ण्' अट्कुप्वाङ्नुम्० (८।४।२) से होगा। इन सब शब्दों के रूप 'जस्' विभक्ति में भी यही होंगे, तथा सिद्धि भी पूर्ववत् ही 'शस्' को 'शि' आदेश होकर इसी प्रकार होगी ॥

—:०:—

परि० सुडनपुंसकस्य (१।१।४२)

राजा (एक राजा)

राजन् — पूर्ववत् सब सूत्र लगकर

राजन् सु — *सुडनपुंसकस्य*, *सर्वनामस्थाने चा०* (६।४।८)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

राजान् स् अलोऽन्त्यात्० (१।१।६४) हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्० (६।१
राजान् सुप्तिङन्तं० (१।४।१४) न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य (८।२
राजा बना ॥

इसी प्रकार 'राजन् औ' यहाँ सर्वत्र सर्वनामस्थान संज्ञा होकर दीर्घ होकर, राजान् औ = राजानौ, राजन् जस् = राजान् अस् = राजानम् राजानौ बन गया ॥

आगे के उदाहरणों में न लोपः प्राति० (८।२।७) से नकार लोप नकार के पदान्त में न होने के कारण नहीं होता है। 'राजन्' तो 'सु' के लोप हो जाने पर नकार पदान्त में था, अतः 'न्' का हो गया है ॥

—:०:—

परि० न वेति विभाषा (१।१।४३)

शुशाव (वह गया)

टुओश्वि भूवादयो० (१।३।१), धातोः (३।१।९१), परोक्षे लिट् (३।२।११५) पूर्ववत् अनुबन्ध लोप होकर,

श्वि लिट् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, लिट् के स्थान में तिप् आया,

श्वि तिप् परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः (३।४।८२) तथा सङ्ख्यमनुदेशः समानाम् (१।३।१०)

श्वि णल् = अ, विभाषा श्वेः (६।१।३०) से विकल्प से सम्प्रसारण हुआ, तब न वेति विभाषा ने बताया कि निषेध और विधि अर्थों की विभाषा संज्ञा होती है। इग्यणः सम्प्रसारणम् (१।१।४४) से यण् के स्थान में जो इक् उसकी सम्प्रसारण संज्ञा हुई, सो यथासङ्ख्यमनु० (१।३।१०) से 'व्' को 'उ' सम्प्रसारण हो गया।

श् उ इ अ, सम्प्रसारणाच्च (६।१।१०४) से सम्प्रसारण को पूर्वरूप होकर
श् उ अ = शु अ, अचो ञ्णिति (७।२।११५) वृद्धिरादैच् (१।१।१) से
गुण० (१।१।३) स्थानेऽन्तरतमः (१।१।४९)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शौ अ — *लिटि धातोरनभ्यासस्य* (६।१।८) से एकाचो द्वे प्रथमस्य (६।१।१) द्विर्वचनेऽचि (१।१।५८) से रूपातिदेश होकर, द्विर्वचन हुआ।

शु शौ अ — *एचोयवायावः* (६।१।७५) लगकर

शुशाव — बना ॥

जिस पक्ष में सम्प्रसारण नहीं हुआ उस पक्ष में शिश्राय पूर्ववत् सब होकर बना। वृद्धि, द्विर्वचन (रूपातिदेश होकर) सब होकर 'श्रि श्रै अ' रहा। *हलादिः शेषः* (७।४।६०) तथा *एचोऽयवायावः* (६।१।७५) लगकर शिश्राय बन गया ॥ द्विवचन में 'तस्' के स्थान में पूर्ववत् 'अतुस्' आकर 'श्रि अतुस्' रहा। पूर्ववत् सम्प्रसारण होकर, शु अतुस्' रहा। *असंयोगाल्लिट् कित्* (१।२।५) से अतुस् के कित्वत् होने से *सार्वधातुकार्धधातुकयोः* (७।३।८४) से प्राप्त गुण का *क्ङिति च* (१।१।५) से निषेध हो गया। अब पूर्ववत् 'शु, शु' द्वित्व तथा *अचि श्नुधातुभ्रुवां०* (६।४।७७) से उवङ् आदेश प्राप्त हुआ, *ङिच्च* (१।१।५२) लगकर अन्तिम अल् उकार को उवङ् होकर शु शुवङ् अतुस् = शुशुव् अतुस् 'स्' को रुत्व विसर्जनीय होकर शुशुवतुः बन गया।

जब सम्प्रसारण पक्ष में नहीं हुआ तो पूर्ववत् सब होकर तथा इकार को पूर्ववत् ६।४।७७ से इयङ् होकर शिश्रियतुः बन गया ॥ *दक्षिणपूर्वस्यै दक्षिणपूर्वायै* की सिद्धि परि० १।१।२७ में देखें, वहाँ *विभाषा दिक्०* से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है ॥

—:o:—

परि० इग्यणः सम्प्रसारणम् (१।१।४४)

उक्तः (कहा गया)

वच — *भूवादयो०* (१।३।१) *धातोः* (३।१।९१) *निष्ठा* (३।२।१०२) *क्तक्तवतू निष्ठा* (१।१।२५) *प्रत्ययः, परश्च*

वच् क्त = त — *वचिस्वपियजादीनां किति* (६।१।१५) से सम्प्रसारण प्राप्त, हुआ, *इग्यणः सम्प्रसारणम्, यथासङ्ख्यमनु०* (१।३।१०)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उ अ च् त सम्प्रसारणाच्च (६।१।१०४) एकः पूर्वपरयोः (६।१।८४)
उच् त चोः कुः (८।२।३०) स्थानेऽन्तरतमः (१।१।४९)
उक् त कृदतिङ् (३।१।९३) कृत्तद्धितस० (१।२।४६) आदि
पूर्ववत् होकर 'सु' आकर विसर्जनीय हो गया,
उक्तः बना ॥

उक्तवान् (उसने कहा) की सिद्धि में पूर्ववत् वच् धातु से
आकर तथा सम्प्रसारणादि सब कार्य होकर, 'उक् तवत् सु' रहा,
यहाँ शेष कार्य परि० १।१।५ के 'चितवान्' के समान होकर उक्त
बन गया ॥ स्वप् धातु से सुप्तः (सोया हुआ) सुप्तवान् (वह
पूर्ववत् बनेंगे ॥

यज् धातु के 'य्' को क्त परे रहते 'इ' सम्प्रसारण होकर 'इज्'
रहा। व्रश्चभ्रस्ज० (८।२।३६) से 'ज्' को 'ष्' तथा ष्टुना ष्टुः (८।४।४०)
से 'त्' को ट् होकर इष्टः (यज्ञ किया हुआ) तथा इष्टवान् (उसने
किया) बनेगा ॥ गृहीतः (पकड़ा हुआ) गृहीतवान् (उसने पकड़ा)
पर भी पूर्ववत् ग्रह् धातु के 'र्' को 'ऋ' सम्प्रसारण तथा ग्रह
के सेट् होने से आर्धधातुकस्येड्० (७।२।३५) से इट् आगम एवं
इट् को ग्रहोऽलिटि दीर्घः (७।२।३७) से दीर्घ होकर गृह् ईट् त=गृहीत
गृहीतवान् बन गया है ॥

सर्वत्र यथासङ्ख्यम० (१।३।१०) लगकर यथासङ्ख्य करके 'इ'
इ, व् को उ, र् को ऋ, तथा ल् को ऌ सम्प्रसारण होता है ॥

—:०:—

परि० आद्यन्तौ टकितौ (१।१।४५)

भविता (वह कल होगा)। लविता (वह कल काटेगा) की सिद्धि
परि० १।१।६ के 'पठिता' के समान जानें। आर्धधातुकस्ये० (अचः
से वलादि आर्धधातुक तास् को कहा इट् आगम टित् होने से तास्
आदि में होगा। षष्ठी स्थानेयोगा (१।१।४८) से सारे तास् के स्थान
प्राप्त था सो न हुआ यही प्रकृत सूत्र का प्रयोजन है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

त्रापुषम् (त्रपुणो विकारः = राँगे का विकार)

त्रपु ङस् *समर्थानां प्रथमाद्वा* (४।१।८२) *तस्य विकारः* (४।३।१३२) *त्रपुजतुनोः षुक्* (४।३।१३६) से षष्ठी समर्थ त्रपु शब्द से अण् तथा षुक् का आगम प्राप्त हुआ, सो *प्रत्ययः परश्च* से अण् प्रत्यय परे हो गया, पर षुक् आगम कहाँ पर हो, इसका निर्णय *आद्यन्तौ टकितौ* ने किया कि वह कित् है अतः त्रपु के अन्त में बैठे, सो अन्त में बैठा,

त्रपु ङस् षुक् अण्, *तद्धिताः* (४।१।७६) *कृत्तद्धितसमा०* (१।२।४६) *सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१) से सुप् का लुक् तथा पूर्ववत् अनुबन्ध लोप होकर,

त्रपु ष् अ *तद्धितेष्वचा०* (७।२।११७) *वृद्धिरादैच्* (१।१।१) से वृद्धि होकर पूर्ववत् सु आकर

त्रापुष सु *अतोऽम्* (७।१।२४) से सु को नपुंसक लिङ्ग में अम् होकर,

त्रापुष अम् *अमि पूर्वः* (६।१।१०३)

त्रापुषम् बना।

इसी प्रकार जतु शब्द से *जातुषम्* (लाख का विकार = चूड़ी आदि) की सिद्धि जानें॥

भीषयते (डराता है)

ञिभी भये *भूवादयो०* (१।३।१) *आदिर्ञिटु०* (१।३।५) *तस्य लोपः*

भी *हेतुमति च* (३।१।२६) *प्रत्ययः, परश्च,*

भी णिच् *भियो हेतुभये षुक्* (७।३।४०) से णिच् परे रहते षुक् आगम प्राप्त हुआ, अब यह षुक् आगम कहाँ हो, सो पहले तो *षष्ठी स्थानेयोगा* (१।१।४८) से सारे 'भी' के स्थान में प्राप्त हुआ, पर उसके भी अपवाद *आद्यन्तौ टकितौ* ने कहा कि, कित् होने से यह अन्त में हो,

भी षुक् णिच् = भीष् इ, *सनाद्यन्ता धातवः* (३।१।३२) से 'भीषि' की नई धातु संज्ञा होकर, *धातोः* (३।१।९१) आदि सब पूर्ववत् सूत्र लगे, *भीस्म्योर्हेतुभये* (१।३।६८)

भीषि शप् त *सार्वधातुकार्ध०* (७।३।८४) *अदेङ् गुणः* (१।१।२)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भीषे अ त एचोऽयवायावः (६।१।७८) से अयादेश होकर,
भीषय् अ त अचोऽन्त्यादि टि (१।१।६३) टित आत्मनेपदा
(३।४।७९) से टि को एत्व होकर,
भीषयते बना ॥

—:०:—

परि० भिदचोऽन्त्यात् परः (१।१।४६)

भिनत्ति (काटता है)

भिदिर् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
भिद् तिप्, रुधादिभ्यः श्नम् (३।१।७८) प्रत्ययः, परश्च, भिदचोऽ
परः से श्नम् अन्त्य अच् से परे हुआ,
भि श्नम् द् तिप् = भि न द् ति, खरि च (८।४।५४) से द् को त् हो
भिनत् ति = भिनत्ति, बना ।

इसी प्रकार छिनत्ति (छेदता है) की सिद्धि भी जानें ॥

———

रुणद्धि (रोकता है)

रुधिर् पूर्ववत् ही सब होकर
रु श्नम् ध् ति = रुन ध् ति, अट् कुप्वाङ् नुम्व्यवा० (८।४।२) से न
'ण' होकर,
रु ण ध् ति झषस्तथोर्धोऽधः (८।२।४०) से तिप् के 'त्' को 'ध्' हो
रुणध् धि झलां जश् झशि (८।४।५२) से ध् को द् होकर,
रुणद्धि = रुणद्धि, बना ।

———

मुञ्चति (वह छोड़ता है)

मुच्ल् पूर्ववत् सब होकर,
मुच् शप् तिप्, तुदादिभ्यः शः (३।१।७७) से तुदादि गण की हो
शप् के स्थान में 'श' हुआ ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

मुच् श ति शे मुचादीनाम् (७।१।५९) से नुम् आगम प्राप्त मिदचोऽन्त्यात् परः, तथा अनुबन्ध लोप होकर,

मुन् च् अ ति = मुन्चति, नश्चापदान्तस्य झलि (८।३।२४)

मुंचति अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः (८।४।५७) से परसवर्ण होकर,

मुञ्चति बना ॥

———

वन्दे मातरम् (माता को नमस्कार करता हूँ)

वदि अभिवादनस्तुत्योः, भूवादयो०(१।३।१) उपदेशे० (१।३।२) तस्य लोपः

वद् इदितो नुम् धातोः (७।१।५८) से वद् धातु के इदित् होने से नुम् आगम प्राप्त, मिदचोन्त्यात् परः

व नुम् द् = वन्द्, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

वन्द् शप् इट् = वन्द् अ इ, टित आत्मनेपदानां० (३।४।७९) अचोऽन्त्यादि टि (१।१।६३)

वन्द ए अतो गुणे (६।१।९४) से पररूप होकर

वन्दे बना ॥

कुण्डानि, वनानि की सिद्धि परि० १।१।४१ में देखें ॥ यशांसि (बहुत से यश) पयांसि (बहुत से दूध) की सिद्धि में भी यशस् पयस् शब्द से जस् आकर, कुण्डानि के समान ही नुम् आगम प्राप्त हुआ सो वह नुम् अन्त्य अच् से परे होकर, यश नुम् स् जस्, पय नुम् स् जस् रहा। जस् को शि ७।१।२० से होकर, तथा दीर्घ भी सान्तमहतः० (६।४।१०) से होकर यशान्स् इ, पयान्स् इ, रहा। नश्चापदान्तस्य झलि (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार होकर, यशांसि पयांसि बन गया ॥

—:०:—

परि० एच इग्घ्रस्वादेशे (१।१।४७)

अतिरि कुलम् (जिस कुल ने धन का उल्लङ्घन किया है)

अतिक्रान्तं रायं यत् कुलम्—

रै अम् अति सु, अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया (वा० २।२।१८) कृत्तद्धितसमा० (१।२।४६) सुपो धातुप्रा० (२।४।७१)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

रैअति *प्रथमानिर्दिष्टं०* (१।२।४३) उपसर्जनं पूर्वम् (२।२।३०)
अतिरै ह्रस्वो नपुंसके *प्रातिः* (१।२।४७) अचश्च (१।२।२८)
अजन्त नपुंसक लिङ्ग 'ऐ' को ह्रस्व प्राप्त हुआ, पर
के तो ह्रस्व वर्ण होते नहीं उसे क्या ह्रस्व हो, तब
इग्घ्रस्वादेशे, परिभाषा सूत्र ने निर्णय किया कि, इ
ह्रस्वादेश करने में इक् ह्रस्व हो, *स्थानेऽन्तरतमः*(१।१।५०)
से 'ऐ' को 'इ' होकर पूर्ववत् सु आया,
अतिरि सु *स्वमोर्नपुंसकात्* (७।१।२३) *प्रत्ययस्य लु०* (१।१।६२)
अतिरि कुलम् बना।

इसी प्रकार नावम् अतिक्रान्तं यत् कुलम् = अतिनु कुलम् (जि
कुल ने नौका विहार की अति कर दी है) की सिद्धि भी जानें।
को 'उ' ह्रस्व *स्थानेऽन्त०* (१।१।४९) लगकर पूर्ववत् हुआ है।

गोः समीपम् उपगु (गाय के समीप) यहाँ पर 'गो ङस् उप
इस अवस्था में *अव्ययं विभक्ति०* (२।१।६) से समास तथा सब
पूर्ववत् होकर "उपगो सु" रहा। पूर्ववत् 'ओ' को 'उ' ह्रस्व, तथा
भावश्च (१।१।४०) से 'उपगु' की अव्यय संज्ञा होकर, *अव्ययादाप्*
(२।४।८२) से 'सु' का लुक् हो गया है॥

—:०:—

परि० षष्ठी स्थानेयोगा (१।१।४८)

सूत्र प्रयोजन—**भविता** (होने वाला) यहाँ आर्धधातुक विषय में
तृच् को मानकर 'अस्' धातु को *अस्तेर्भूः* (२।४।५२) से भू आदे
होता है। 'अस्तेः' षष्ठी विभक्ति के एकवचन का रूप है। षष्ठी का
सम्बन्ध सामान्य 'का, के, की, होता है, पर यहाँ तो "अस्ति
भू होता है" ऐसा कहने से कुछ पता नहीं लगता कि "किस
का भू" क्या है। अर्थात् यहाँ अनियतयोगा (जिसका सम्बन्ध निश्चि
नहीं) षष्ठी है, सो यहाँ *षष्ठी स्थानेयोगा* परिभाषा सूत्र से स्थानेयो
षष्ठी हो गई तब, अस्तेर्भूः का अर्थ हो गया—"अस् के स्थान
आदेश होता है, आर्धधातुक विषय में" यही इस सूत्र का प्रयोजन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भविता

६।१ १।१

भूवादयो० (१।३।१) *आर्धधातुके* (२।४।३५) *अस्तेर्भूः* षष्ठी *स्थानेयोगा* (१।१।४८) से अस् के स्थान में आर्धधातुक का विषय आगे उपस्थित होगा ऐसा मानकर, भू आदेश प्राप्त हुआ, पर यह भू अस् के कहाँ पर हो, इसका निर्णय *अनेकाल्शित् सर्वस्य* (१।१।५४) ने किया, कि सबके स्थान में हो,

अब यह भू तो धातु नहीं, यह तो आदेश है, सो *धातोः* (३।१।९१) के अधिकार में कहे प्रत्यय कैसे हों? तब *स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ* (१।१।५५) लगा, इससे स्थानिवत् होकर 'भू' आदेश 'अस्' के समान ही धातु माना गया, तो *ण्वुल्तृचौ* (३।१।१३३) *प्रत्ययः*, *परश्च* से तृच् प्रत्यय हुआ, *आर्धधातुकस्ये०* (७।२।३५) से इट् आगम होकर, शेष सिद्धि परि० १।१।२ के भविता के समान जानें॥

भू तृच् = तृ
भू इट् तृ
भविता

बना।

इसी प्रकार *भवितुम्* (होने के लिये) यहाँ भी पूर्ववत् ही सब होकर *भविष्यदाधमर्णेषु तुमुन्* (३।३।१५८) से तुमुन् प्रत्यय होकर, भू इट् तुमुन् = 'भो इ तुम् सु' रहा। *कृन्मेजन्तः* (१।१।३८) से तुमुन् की अव्यय संज्ञा एवं सु का लुक् होकर भवितुम् बन गया। *भवितव्यम्* में भी पूर्ववत् अस् को भू आदेश होकर, *तव्यत्तव्यानीयरः* (३।१।९६) से तव्य प्रत्यय हुआ है, पश्चात् सु को *अतोऽम्* (७।१।२४) से अम् होकर भवितव्यम् (होना चाहिये) की सिद्धि जानें॥

६।१

इसी प्रकार *ब्रुवो वचिः* (२।४।५३) में ब्रुवः, में अनियतयोगा षष्ठी है, सो स्थानेयोगा षष्ठी प्रकृत सूत्र से हो गई, तब "ब्रूञ् के स्थान में वच् आदेश हो, आर्धधातुक विषय में" ऐसा अर्थ होनेसे ब्रूञ् को वच् आदेश होकर, पूर्ववत् वक्ता (बोलने वाला) वक्तुम् (बोलने के लिये) वक्तव्यम् (बोलना चाहिये) बन गया। *चोः कुः* (८।२।३०) से च् को क् सर्वत्र यहाँ हुआ है, यही विशेष है॥ *इको यणचि* (६।१।७४) यहाँ भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इकः में स्थानेयोगा षष्ठी होकर, दधि+अत्र = दध्यत्र (
यहाँ 'इ' के स्थान में 'य्' मधु+अत्र = मध्वत्र यहाँ 'उ' के स्थान
पितृ+अर्थम् = पित्रर्थम् यहाँ 'ऋ' के स्थान में 'र्' तथा लृ+क
लाकृतिः यहाँ 'लृ' के' स्थान में 'ल्' हो जाता है॥

—:०:—

परि० स्थानेऽन्तरतमः (१।१।४९)

सूत्र प्रयोजन—जहाँ एक ही स्थानी (जिसके स्थान में आदे
के स्थान में कई आदेश प्राप्त हों, वहाँ कौन सा आदेश उस
हो इसका निर्णय प्रकृत सूत्र करता है, कि स्थान में सदृशतम
मिलता जुलता आदेश हो। यह समानता ४ प्रकार की होती है
स्थानकृत, (२) अर्थकृत, (३) गुणकृत, (४) प्रमाणकृत॥

(१) *स्थानकृताऽऽन्तर्ये*—दण्ड+अग्रम् = दण्डाग्रम्, दधि+इन्द्रः
दम्, भानु+उदयः = *भानूदयः*, यहाँ सर्वत्र अकः सवर्णे दीर्घः
से दीर्घ एकादेश प्राप्त होने पर, आ, ई, ऊ आदि में से कोई भी
दीर्घ हो सकता था, पर *स्थानेऽन्तरतमः* ने बताया कि स्थान में
मिलता जुलता दीर्घ हो, सो अ को आ, इ को ई, और 'उ' को
मिलता जुलता दीर्घ हुआ॥

———

अभवताम् (वे दोनों हुये)

अर्थकृतान्तर्ये

भू	पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, *अनद्यतने लङ्* (३।२।१११)
भू लङ्	पूर्ववत् लादेश तस् तथा अङ्ग संज्ञा होकर, लुङ्लङ्लृ
भू तस्	(६।४।७१) *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५)
अट् भू तस्	*तिङ्शित् सार्व०* (३।४।११३) *कर्त्तरि शप्* (३।१।६८)
अट् भू शप् तस्,	पूर्ववत् ७।३।८४ से गुण तथा एचोयवा० (६
	लगकर,
अ भव् अ तस्	*तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः* (३।४।१०१) से ताम
	आदि आदेश प्राप्त हुये, सो कौन सा हो तब भ
	ने अर्थकृत आन्तर्य से जिस अर्थ का बोधक स

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वादः]

उसी अर्थ का बोध कराने वाला आदेश प्राप्त कराया, अर्थात् यहाँ 'तस्' प्रथमपुरुष द्विवचन का बोधक है सो प्रथम पुरुष द्विवचन का बोधक 'ताम्' आदेश भी हो गया, तो.

भवताम् बना ॥

———

वातण्ड्ययुवतिः (वतण्ड व्यक्ति विशेष की युवती पुत्री)

तण्डी चासौ युवतिश्च—

तण्ड ङस् *अर्थवदधा०* (१।२।४५) इत्यादि पूर्ववत् सब सूत्र लगकर *समर्थानां प्रथमाद्वा* (४।१।८२) *तस्यापत्यम्* (४।१।९२) *वतण्डाच्च* (४।१।१०८) *प्रत्ययः, परश्च* से वतण्ड का जो स्त्री अपत्य, (अर्थात् पुत्री) इस अर्थ में *यञ्* प्रत्यय आया।

तण्ड ङस् यञ्, *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) *सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१)

तण्ड यञ् *लुक् स्त्रियाम्* (४।१।१०६) *स्त्रियाम्* (४।१।३)

तण्ड *शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्* (४।१।७३) *प्रत्ययः, परश्च,*

तण्ड ङीन् = ई, *यचि भम्* (१।४।१८) *भस्य* (६।४।१२९) *यस्येति च* (६।४।१४८)

तण्ड् ई = वतण्डी, बना।

अब वतण्डी शब्द का युवति शब्द के साथ कर्मधारय समास किया तो,

तण्डी सु युवति सु, *पोटायुवतिस्तोककतिपय०* (२।१।६४) *कृत्तद्धित० सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१)

तण्डीयुवति अब *पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु०* (६।३।४०) से वतण्डी को पुंवद्भाव अर्थात् पुंल्लिङ्ग के समान रूप पाया, सो वतण्डी को 'वतण्ड' शब्द भी पुंवद्भाव होकर हो सकता है, पर *स्थानेऽन्तरतमः* लगाकर अर्थकृत आन्तर्य से जिस प्रकार वतण्डी अपत्य अर्थ का बोधक है, उसी प्रकार पुंवद्भाव आदेश भी, अपत्य अर्थ का बोध कराने वाले शब्द को हुआ, अपत्य अर्थ का बोधक "*वातण्ड्य*" शब्द है, न कि वतण्ड, सो वातण्ड्य शब्द ही पुंवद्भाव होकर आया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वातण्ड्ययुवति पूर्ववत् 'सु' आकर एवं विसर्जनीय होकर, वातण्ड्ययुवतिः बना ॥

———

(३) *गुणकृतान्तर्ये*—*भागः यागः त्यागः* यहाँ सर्वत्र घञ् प्र परे रहते भज् यज् त्यज् इन धातुओं के 'ज्' को जब च (७।३।५२) से कु = कवर्गादेश करने लगे तो कवर्ग के ५ अक्षरों कौन अक्षर हो ? तो *स्थानेऽन्तरतमः* ने बताया कि अत्यन्त मि जुलता ही आदेश हो, सो यहाँ गुणकृत आन्तर्य से जिस अक्ष अल्पप्राण (देखो वर्णो० ६२, *एकेऽल्पप्राणा इतरे महाप्राणाः*) तथा गुणवाला (देखो वर्णो० ६३ *वर्गाणाम्०*) है, उसी प्रकार अल्पप्रा घोष गुणवाला 'ग' हो गया। अन्य क् घ् आदि वर्ण नहीं हुए, उनके साथ 'ज्' के पूरे पूरे गुण नहीं मिलते थे 'क्' केवल अल्प था, घोष नहीं था 'घ्' केवल घोष था अल्पप्राण नहीं था, उ के साथ ग् का ही गुण अत्यन्त मिल रहा था, सो वही हो गया। सिद्धि परि० १।१।१ में देखें ॥

———

(४) *प्रमाणकृतान्तर्ये*—प्रमाणकृत आन्तर्य का अभिप्राय यह है जहाँ जिस प्रमाण वाला (एकमात्रिक, द्विमात्रिक आदि) स्थानी वहाँ उसी प्रमाणवाला आदेश भी हो। यथा अमुष्मै यहाँ स्थानी प्रमाण वाले अकार के स्थान में एकमात्रिक ही उकार आदेश होकर अमुष्मै बना, तथा अमूभ्याम् यहाँ द्विमात्रिक आकार को द्वि त्रिक ही ऊकार होकर अमूभ्याम् बना है ॥

———

अमुष्मै (अमुक व्यक्ति के लिए)

परि० १।१।१२ के 'अमी' के समान सब कार्य होकर

अद ङे
अद स्मै

सर्वनाम्नः स्मै (७।१।१४) *सर्वादीनि सर्वनामानि* (१।१ *अदसोऽसेर्दादु दो मः* (८।२।८०) से 'द्' को 'उ' से उत्तर अवर्ण को उवर्णादेश प्राप्त हुआ, *वर्णस्य०* (१।१।६८) से उकार के सवर्णी दीर्घ भी ग्रहण होकर अकार के स्थान में ह्रस्व, दीर्घ तीनों प्रकार के 'उ' पाये, तब *स्थानेऽन्तरतमः*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

किया कि अकार के स्थान में सदृशतम उवर्ण हो, यहाँ अकार के साथ उवर्ण का स्थान अर्थ, एवं गुणकृत तो सदृशता है नहीं, सो प्रमाणकृत सादृश्य को लेकर एकमात्रिक अकार को एकमात्रिक ह्रस्व 'उ' हो गया।

अमुस्मै अमुष्मै *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९) से षत्व होकर, बना॥

अमूभ्याम्—यहाँ भी पूर्ववत् सब होकर 'अद + भ्याम्' रहा। *सुपि* (७।३।१०२) से दीर्घ होकर 'अदाभ्याम्' रहा। अब यहाँ जब पूर्ववत् आकार को उवर्ण होने लगा तो ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत में कौन सा 'उ' हो ऐसा सन्देह होने पर प्रकृत सूत्र ने प्रमाणकृत आन्तर्य से दीर्घ आ के स्थान में दीर्घ 'ऊ' आदेश कर दिया तो अमूभ्याम् बन गया॥

—:०:—

परि० उरण् रपरः (१।१।५०)

कारकः, हारकः, कर्त्ता, हर्त्ता की सिद्धि परि० १।१।१,२ में देखें। वहाँ इसी प्रकार उरण् रपरः की आवश्यकता समझाई है॥

किरति (बिखेरता है)

कॄ विक्षेपे पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

शप् तिप् *तुदादिभ्यः शः* (३।१।७७) *प्रत्ययः. परश्च*,

कॄ अ तिप्=कॄ अ ति, पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर *ऋत इद्धातोः* (७।१।१००) से ऋकारान्त अङ्ग को इकारादेश पाया, *उरण्रपरः* ने कहा कि यहाँ ऋकार को अण् (इ) हो रहा है सो 'र' परे को हो जावे,

किर् अ ति = किरति, बन गया।

इसी प्रकार गॄ निगरणे धातु से *गिरति* (निगलता है) बनेगा॥

—·—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

द्वैमातुरः (द्वयोः मात्रोरपत्यम्, दो माताओं का पुत्र)

द्वि ओस् मातृ ओस्, *तद्धितार्थोत्तर०* (२।१।५०) कृत्तद्धित० सुपो
द्विमातृ (२।४।७१) *तस्यापत्यम्* (४।१।९२) मातुरुत्सङ्ख्यासंभद्र
(४।१।११५) से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय तथा
उकारादेश प्राप्त हुआ, *अलोन्त्यस्य* (१।१।५१) से
'ऋ' को उकारादेश प्राप्त हुआ, अब उरण्रपरः से र्
होकर,
द्विमातुर् अ *तद्धितेष्वचामादेः* (७।२।११७) वृद्धिरादैच्, कृत्तद्धि
द्वैमातुर सु पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
द्वैमातुरः बना ॥

इसी प्रकार तिसृणां मातॄणामपत्यं त्रैमातुरः (तीन माताओं का
भी बनेगा ॥

—:०:—

परि० अलोऽन्त्यस्य (१।१।५१)

द्यौः (द्यु लोक)

दिव् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
दिव् सु *दिव औत्* (७।१।८४) से दिव् शब्द सारे को औकार
प्राप्त हुआ, तब *अलोऽन्त्यस्य* से अन्त्य अल् 'व्'
'औ' हुआ,
दि औ सु इको *यणचि* (६।१।७४) तथा पूर्ववत् रुत्व विसर्ग
होकर,
द्यौ सु = द्यौः, बना ।

———

सः (वह)

तद् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
तद् सु *त्यदादीनामः* (७।२।१०२) *अलोऽन्त्यस्य*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

तदोः सः सावनन्त्ययोः (७।२।१०६)
अतो गुणे (६।१।९४) अदेङ् गुणः (१।१।२)
पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर,
बना ॥

———

पञ्चगोणिः (पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीतः = पाँच गोणियों से खरीदा हुआ)

पञ्चन् भिस् गोणी भिस्, *तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च* (२।१।५०) कृत्तद्धित० (१।२।४६) सुपो धातुप्रातिपदि० (२।४।७१)
पञ्चन्गोणी *नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य* (८।२।७)
पञ्चगोणी *तेन क्रीतम्* (५।१।३६) *आर्हादगोपुच्छसंख्या०* (५।१।१९)
पञ्चगोणी ठक्, *सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः* (२।१।५१) *अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्* (५।१।२८) से प्रत्यय का लुक् होकर,
पञ्चगोणी *लुक्तद्धितलुकि* (१।२।४९) से तद्धित प्रत्यय ठक् के लुक् होने पर स्त्री प्रत्यय 'गोणी' के 'ई' का लुक् पाया, पर *इद् गोण्याः* (१।२।५०) ने कहा कि गोणी के स्त्री प्रत्यय का लुक् न होकर, इकारादेश हो, अब यह 'इकार' कहाँ पर हो, इसका निर्णय *अलोऽन्त्यस्य* ने किया कि अन्तिम अल् को हो,
पञ्चगोण् इ सु, पूर्ववत् सु आकर विसर्जनीय होकर,
पञ्चगोणिः बना ॥

—:०:—

परि० ङिच (१।१।५२)

चेता नेता की सिद्धि परि० १।१।२ में दिखा आये हैं। यहाँ *ङिच* का यही प्रयोजन है कि, अनेकाल् होते हुए भी अनङ् अन्त्य अल् चेतृ के ऋकार के स्थान में होता है, १।१।५४ से सबके स्थान में नहीं होता ॥

मातापितरौ (माता च पिता च = माता और पिता)

मातृ सु पितृ सु, *चार्थे द्वन्द्वः* (२।२।२९) *कृत्तद्धित० सुपो धातु०* (२।४।७१)
मातृपितृ *आनङ् ऋतो द्वन्द्वे* (६।३।२५) से उत्तरपद परे रहते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

आनङ् आदेश मातृ शब्द को प्राप्त हुआ, ङित् होने से अन्तिम अल् को हो, सो ऋकार को आदेश होकर

मात् आनङ् पितृ = मातान्पितृ, *नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य* (८।२।७) मातापितृ औ पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा तथा सुडनपुंसकस्य (१।१।४३) सर्वनामस्थान संज्ञा होकर, *ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः* (७।३।११०) से ऋकारान्त अङ्ग को गुण प्राप्त *उरण्रपरः* (१।१।५०) अदेङ् गुणः (१।१।२) से 'अर्'

मातापितर् औ = मातापितरौ, बना ॥

इसी प्रकार होता च पोता च *होतापोतारौ* (होता और पोता दोनों ऋत्विग् विशेष की संज्ञा हैं) की सिद्धि भी जानें॥

परि० आदेः परस्य (१।१।५३)

आसीनः (बैठा हुआ)

आस — *भूवादयो०* (१।३।१) *धातोः* (३।१।९१) *वर्त्तमाने लट्* (३।२।१२३)

आस् लट् — *अनुदात्तङित आत्मनेपदम्* (१।३।१२) से आस् के अनुदात्तेत् होने से, आत्मनेपद संज्ञक ही प्रत्यय प्राप्त हुए सो *तङानावात्मनेपदम्* (१।४।९९) से आत्मनेपद 'शानच्' आदेश *लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे* (३।२।१२४) से लट् के स्थान में हुआ, *अनेकाल्०* (१।१।५५)

आस् शानच् *तिङ्शित् सार्वधातुकम्* (३।४।११३) *कर्त्तरि शप्* (३।१।६८) प्रत्ययः, *परश्च*,

आस् शप् शानच्, *अदिप्रभृतिभ्यः शपः* (२।४।७२) से शप् का लुक् हो गया

आस् शानच् = आन, अब यहाँ *ईदासः* (७।२।८२) से आस् से परे आदेश प्राप्त हुआ, तब *तस्मादित्युत्तरस्य* (१।१।६७) ने कहा कि "पञ्चमीनिर्दिष्ट कार्य उत्तर को हो", ईदासः में आसः में पञ्चमी विभक्ति होने से उससे परे आन को ईत् प्राप्त हुआ, फिर भी यह ईत्, 'आत'

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

को हो या कहाँ हो ? इसका निर्णय कृत सूत्र आदेः परस्य ने किया कि पर = उत्तर को कहा हुआ कार्य उसके आदि अक्षर को हो, तब आन के आदि 'आ' को 'ई' होकर,

आस् ईन पूर्ववत् कृत्तद्धित० (१।२।४६) आदि लगकर,

आसीन सु = आसीनः, बना ॥

———

द्वीपम् (द्विर्गता आपो यस्मिन् = जिसमें दोनों ओर पानी हो)

द्वि औ अप् जस्, अनेकमन्यपदार्थे (२।२।२४) कृत्तद्धित० सुपो धातु०

द्विअप् समासान्ताः (५।४।६८) ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे (५।४।७४) से समासान्त 'अ' प्रत्यय हुआ,

द्विअप् अ द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत् (६।३।९५) से ईत् आदेश प्राप्त हुआ, सो पूर्ववत् द्वि से उत्तर अप् को कहाँ पर ईत् हो ? इसका निर्णय आदेः परस्य ने किया कि 'अप्' के आदि अक्षर को हो, तब ईत् होकर,

द्वीप् अ अकः सवर्णे दीर्घः (६।१।९७) से दीर्घ तथा पूर्ववत् सु आकर

द्वीप सु अतोऽम् (७।१।२४) अमि पूर्वः (६।१।१०३)

द्वीपम् बना ॥

इसी प्रकार अन्तर्गता आपो यस्मिन् = अन्तरीपम् (जिसमें पानी अन्दर तक चला गया है) सङ्गता आपो यस्मिन् = समीपम् (जहाँ पानी मिल जाता है) की सिद्धि भी जानें ॥

—:०:—

परि० अनेकाल्शित् सर्वस्य (१।१।५४)

भविता, भवितुम्, भवितव्यम् की सिद्धि परि० १।१।४८ में देखें। अतोर्भूः (२।४।५२) से हुआ 'भू' आदेश अनेकाल् होने से सारे अस् के स्थान में होता है यही इस सूत्र का प्रयोजन है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पुरुषैः (सब पुरुषों के द्वारा)

पुरुष पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
पुरुष भिस् *यस्मात् प्रत्ययविधि०* (१।४।१३) अङ्गस्य (६।४।१) *भिस ऐस्* (७।१।९) से भिस् को ऐस् आदेश आ *अनेकाल्शित् सर्वस्य* (१।१।५४) से सारे भिस् के में ऐस् हो गया।
पुरुष ऐस् *वृद्धिरेचि* (६।१।८५) से वृद्धि एकादेश हुआ,
पुरुषैस् पूर्ववत् विसर्जनीय होकर,
पुरुषैः बना॥

कुण्डानि वनानि की सिद्धि परि० १।१।४१ में देखें। यहाँ *शिः* (७।१।२०) से 'शि' आदेश शित् होने से, प्रकृत सूत्र से सर्व शस् के स्थान में होता है, यही प्रयोजन है॥

—:०:—

परि० स्थानिवदादेशो० (१।१।५५)

भविता, भवितुम्, भवितव्यम्। वक्ता, वक्तुम्, वक्तव्यम्, सिद्धियां परि० १।१।४८ में दिखाई जा चुकी हैं। प्रकृत सूत्र का यहाँ यह है, कि अस् धातु को हुआ भू आदेश (अस्तेर्भूः) स्थानिवत् अर्थात् अस् के समान ही धातुवत् माना जाता है। रहे कि अस् के स्थान में हुआ 'भू' धातुपाठ में पढ़े हुए 'भू' से पृथक् है। अब इस 'भू' के धातुवत् माने जाने से धातु में कहे हुये प्रत्यय, जिस प्रकार धातु होने से 'अस्' से आ सकते उसी प्रकार 'भू' से भी आ सकते हैं, यही प्रयोजन प्रकृत सूत्र का इस प्रकार भू से तृच् तुमुन् आदि प्रत्यय होकर परि० १।१।४८ के सिद्धियाँ हुईं। यही प्रक्रिया वक्ता, वक्तुम् में जानें॥

———

केन (किसके द्वारा)

(२) अङ्ग का आदेश अङ्गवत्—
किम् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यस्मात् प्रत्ययविधिस्त० (१।४।१३) *अङ्गस्य* (६।४।१) *किमः कः* (७।२।१०३) से किम् अङ्ग को 'क' आदेश हुआ,

अब यहाँ 'क' की अङ्ग संज्ञा करके *टाङसिङसामिनात्स्याः* (७।१।१२) से अदन्त अङ्ग से उत्तर 'टा' को 'इन' आदेश करना है, पर यहाँ टा प्रत्यय की विधि तो 'किम्' शब्द से हुई है, सो उसी की अङ्ग संज्ञा होगी 'क' की तो हो नहीं सकती, तब *स्थानिवदादेशः*०ने कहा कि 'स्थानिवत् हो जाय' सो किम् अङ्ग का आदेश 'क', अङ्गवत् माना गया तो टा को इन आदेश पूर्ववत् हो गया। *अनेकाल्०* (१।१।५४) *आद् गुणः* (६।१।९४) *अदेङ् गुणः* (१।१।२)

बना ॥

इसी प्रकार *काभ्यां*, कैः यहाँ भी पूर्ववत् स्थानिवत् कार्य समझें। शेष भ्यां की सिद्धि परि० १।१।२० के आभ्यां के समान, तथा कैः की सिद्धि परि० १।१।५४ के पुरुषैः के समान जानें ॥

———

प्रकृत्य (अच्छी प्रकार करके)

१) कृत् का आदेश कृत्वत्—

२) अव्यय का आदेश अव्ययवत्—

पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

धातोः (३।१।९१) *समानकर्तृकयोः पूर्वकाले* (३।४।२१) कृ क्त्वा = त्वा, *कुगतिप्रादयः* (२।२।१८) से 'कृत्वा', तथा 'प्र' का समास हो गया।

समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् (७।१।३७) से 'क्त्वा' के स्थान में 'ल्यप' आदेश प्राप्त हुआ, *षष्ठी स्थानेयोगा* (१।१।४८) कृ ल्यप् = य, अब *ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्* (६।१।६९) से ह्रस्व 'कृ' को पित् कृत् परे रहते तुक् आगम पाया, पर यहाँ ल्यप् पित् तो है, पर कृत् नहीं है, क्योंकि धातु के अधिकार में ३।४।११७ तक कहे प्रत्यय ही *कृदतिङ्* (३।१।९३) से कृत् संज्ञक होते हैं, सो 'क्त्वा' कृत् था, पर ल्यप् नहीं है,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तब प्रकृत सूत्र से 'क्त्वा' कृत् का आदेश 'ल्यप्' वत् होकर कृत्वत् माना गया, तो तुक् आगम से हो गया। *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५)

प्र कृ तुक् य — पुनः पूर्ववत् स्थानिवत् से ल्यप् को कृत् मानकर *समा०* (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा हो गई, सो सु आ गया,

प्रकृत्य सु — अब यहाँ पुनः 'क्त्वा' अव्यय का आदेश ल्यप् *स्थानिवदादेशः०* से माना जाकर 'ल्यप्' की अव्यय *क्त्वातोसुन्कसुनः* (१।१।३९) से मानी गयी, तो अव्ययस्य (२।४।८२) से सु का लुक् हो गया। इस प्रकार अव्यय

प्रकृत्य — कृत् दोनों का यह उदाहरण है।

इसी प्रकार *प्रहृत्य* (अच्छी प्रकार हरण करके) की सिद्धि करें।

दाधिकम् (दध्नि संस्कृतम् = दही में संस्कृत किया हुआ)

(५) तद्धित का आदेश तद्धितवत्—

दधि ङि — पूर्ववत् सब होकर, *समर्थानां प्रथमाद्वा* (४।१।८२) से (४।२।१७) *संस्कृतं भक्षाः* (४।२।१५)

दधि ङि ठक्, *कृत्तद्धितसमा०* (१।२।४६) *सुपो धातुप्रातिपदि०* (२।४।

दधि ठक् = ठ, पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर, *ठस्येकः* (७।३।५०) से 'इक' आदेश होकर,

दधि इक — अब यहाँ *किति च* (७।२।११८) से कित् तद्धित परे अङ्ग के आदि अच् को वृद्धि पाई, पर यहाँ ठक् तो तद्धित (४।१।७६) से तद्धित था, पर 'इक' तो तद्धित नहीं तब *स्थानिवदादेशः०* से स्थानिवत् होकर 'इक' भी वत् माना गया, सो वृद्धि हो गई।

दाधि इक — *यचि भम्* (१।४।१८) *भस्य* (६।४।१२९) *यस्येति च* (६।

दाध् इक = दाधिक, पूर्ववत् 'सु' आकर, *अतोऽम्* (७।१।२४) से अम् हो गया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

आधिक अम् *अमि पूर्वः* (६।१।१०३)

आधिकम् बना।

शालीयः यहाँ भी छ के स्थान में हुआ 'ईय्' स्थानिवत् होकर तद्धित माना जाता है, सो १।२।४६ से तद्धितान्त मानकर प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती है। पूरी सिद्धि परि० १।१।१ में देखें॥

———

अद्यतनम् (आज का)

अर्थवदधातुर० (१।२।४५) *ङ्याप्प्रातिपदिकात्* (४।१।१) *सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ०* (४।३।२३) से 'ट्यु' प्रत्यय तथा तुट् का आगम हुआ।

अद्य तुट् ट्यु पूर्ववत् अनुबन्ध लोप तथा अङ्ग संज्ञा होकर, *युवोरनाकौ* (७।१।१) से यु को अन आदेश हुआ।

अद्य त् अन पूर्ववत् 'अन' को स्थानिवत् करके 'यु' के समान तद्धित माना गया, तो १।२।४६ से प्रातिपदिक संज्ञा हो गई, पूर्ववत् सु आकर एवं सु को अम् होकर,

अद्यतनम् बन गया॥

———

पुरुषाय (एक पुरुष के लिये)

सुप् का आदेश सुप्वत्—

पुरुष ङे पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

पुरुष य *ङेर्यः* (७।१।१३) *षष्ठी स्थानेयोगा* (१।१।४८) पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर, *सुपि च* (७।३।१०२) से यञादि सुप् परे रहते दीर्घ प्राप्त हुआ, पर यहाँ ङे तो सुप् था पर 'य' सुप् नहीं था, सो *स्थानिवदादेशः०* से स्थानिवत् होकर सुप् का आदेश सुप्वत् माना गया, तब दीर्घ होकर,

पुरुषाय बन गया॥

इसी प्रकार वृक्षाय (एक वृक्ष के लिये) की सिद्धि जानें॥

———

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अकुरुताम् (उन दोनों ने किया)

(७) तिङ् का आदेश तिङ्वत्

डुकृञ् भूवादयो० धातोः (३।१।९१) अनद्यतने लङ् (३।३।
कृ लङ् पूर्ववत् लङ् लकार में सारे सूत्र लगकर,
अट् कृ शप् तस्, तनादिकृञ्भ्य उः (३।१।७९) से शप् के स्था
होकर
अ कृ उ तस् तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः (३।४।१०१) से तस् को त
अ कृ उ ताम् पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर, सार्वधातुकार्धधा० (
उरण्रपरः (१।१।५०) अदेङ् गुणः (१।१।२)
अकर् उ ताम्, अब यहाँ अत उत्सार्वधातुके (६।४।११०) से
परे रहते कर् के 'अ' को उकारादेश प्राप्त हुआ, प
'ताम्' के तिङ् या शित् न होने से सार्वधातु
नहीं है, तस् तो तिङ् होने से सार्वधातुक था। त
वदादेशः० से 'ताम्' स्थानिवत् होकर तस् के स
तिङ्वत् माना गया, अतः सार्वधातुक संज्ञा होन
देश हो गया सो—
अकुरुताम् बन गया ॥

ग्रामो वः स्वम् (ग्राम तुम्हारी सम्पत्ति है)

(८) पद का आदेश पदवत्—

ग्रामो युष्माकं स्वम्, बहुवचनस्य वस्नसौ (८।१।२१)
ग्रामो वस् स्वम्, अब यहाँ ससजुषो रुः (८।२।६६) से पद के सू को
पर वस् तो यहाँ सुबन्त न होने से पद है नहीं, उ
तो पद था, तब स्थानिवदादेशः० से वस् को
होकर पद के समान माना गया, अतः सू को
पूर्ववत् विसर्जनीय होकर
ग्रामो वः स्वम्, बना।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दः]

इसी प्रकार ग्रामो नः स्वम् (ग्राम हमारी मिल्कियत है) में भी अस्माकम् के स्थान में पूर्ववत् 'नस्' आदेश, तथा स्थानिवत् मानकर स्वादि कार्य हुये हैं ॥

अब यहाँ अलः विधि = अल् से परे विधि में कैसे स्थानिवत् नहीं होता, यह बताने के लिये द्यौः, पन्थाः, सः की सिद्धि दिखाते हैं। यद्यपि यह द्वितीयावृत्ति का विषय है तथापि आगे अचः परस्मिन् पूर्वविधौ (१।१।५६) सूत्र समझने के लिये यह समझना आवश्यक है, अतः इन को भी प्रदर्शित करते हैं ॥

द्यौः (द्यु लोक)

द्यौः की सिद्धि हम परि० १।१।५१ में दिखा चुके हैं। यहाँ दिव् के वकार के स्थान में सु परे रहते दिव औत् (७।१।८४) से 'औ' आदेश होता है। अब यदि यह औकारादेश स्थानिवत् होकर 'व्' माना जाय, तो हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्० (६।१।६६) से हलन्त से उत्तर मानकर 'सु' का लोप होने लगेगा, तो द्यौः रूप न बनकर 'द्यौ' अनिष्ट रूप बनेगा, सो आगे अचश्चिधौ' से स्थानिवत् का निषेध, 'हल्ङ्याब्भ्यः' में पञ्चमी विभक्ति होने के कारण, अलः विधि = अल् से परे विधि मानकर हो गया, तब हलन्त से उत्तर सु न होने से 'सु' का लोप नहीं हुआ, और रुत्व विसर्जनीय होकर द्यौः रूप बना ॥

पन्थाः (एक मार्ग)

अलः विधि का दूसरा उदाहरण—

पथिन् पूर्ववत् 'सु' विभक्ति आकर,

पथिन् सु पथिमथ्यृभुक्षामात् (७।१।८५) अलोन्त्यस्य (१।१।५१) से नकार के स्थान में आकारादेश हुआ,

पथि आ सु अब यदि यहाँ 'आ' स्थानिवत् होकर 'न्' माना जावे तो पूर्ववत् ही हल्ङ्याब्भ्यो० (६।१।६६) से सु का लोप होने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लगेगा, पर यहाँ अलः विधि होने से स्थानिवत् भ
पूर्ववत् ही हो गया, और सु का लोप नहीं हुआ।
पथि आ सु सुडनपुंसकस्य (१।१।४२) इतोऽत् सर्वनामस्थाने (
पथ् अ आ सु थोन्थः (७।१।८७) से थ् को 'न्थ' आदेश होकर,
पन्थ् अ आ सु, अकः सवर्णे दीर्घः (६।१।९७) से दीर्घ होकर
पन्थ् आ स् पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर,
पन्थाः बन गया ॥

———

सः (वह)

तृतीय उदाहरण अलः विधि का,

तद् पूर्ववत् 'सु' आकर,
तद् सु त्यदादीनामः (७।२।१०२) अलोन्त्यस्य (१।१।५१)
त अ सु अब यहाँ पूर्ववत् ही 'अ' को स्थानिवत् करके
माना जावे तो हल्ङ्याब्भ्यः (६।१।६६) से 'सु' को
लगे, पर यहाँ अलः विधि मानकर पूर्ववत् ही
का निषेध हो गया, तब 'सु' का लोप नहीं हो
त अ सु तदोः सः सावनन्त्ययोः (७।२।१०६)
स अ स् अतो गुणे (६।१।९४) से पररूप तथा पूर्ववत् रुत्व विस
होकर,
सः बना ॥

———

६।१

(२) अलः विधिः = अल् के स्थान में विधि, का उदाहरण-

द्युकामः (दिवि कामो यस्य स = द्युलोक में कामना है जिसकी
दिव् ङि काम सु, अनेकमन्यपदार्थे (२।२।२४) सुपो धातुप्रातिपदिकयो
दिव्काम कृत्तद्धितसमा० (१।२।४६) पूर्ववत् सु आकर,
दिव्काम सु दिव उत् (६।१।१२७) अलोन्त्यस्य (१।१।५१)
दि उ काम सु, यहाँ यदि वकार के स्थान में हुआ 'उ' स्थानिवत्
माना जावे, तो लोपो व्योर्वलि (६।१।६४) से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पाता है, पर यहाँ 'व्योः' में षष्ठी विभक्ति होने से अलः विधि = अल् के स्थान में विधि है, सो स्थानिवत् का निषेध *अनल्विधौ* से हो गया, तब उकार का लोप नहीं हुआ, और *इको यणचि* (६।१।७४) से यणादेश होकर, पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर, बन गया ॥

— —

क इष्टः (कौन इष्ट है)

(३) अलि (७।१) विधिः = अल् को परे मानकर विधि, का उदाहरण

पूर्ववत् सु आकर,

किमः कः (७।२।१०३) से किम् को 'क' आदेश हुआ,

पूर्ववत् स् को रुत्व हो गया।

इष्टः की सिद्धि हम परि० १।१।४४ में दिखा आये हैं। यहाँ स्थानिवत् से इष्टः के 'इ' को 'य्' माना गया, तो हश् परे होने से *हशि च* (६।१।११०) से 'रु' को 'उ' होने लगा, पर "*हशि*" में सप्तमी विभक्ति होने से यहाँ अलि विधि = अल् को परे मानकर विधि है, अतः *अनल्विधौ* से स्थानिवत् का निषेध हो गया, सो 'रु' को 'उ' नहीं हुआ अब

भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि (८।३।१७) से 'र्' को य् होकर

लोपः शाकल्यस्य (८।३।१९) से य् का लोप होकर

बना ॥

———

होरस्केन (महत् उरो यस्य, तेन = महान् है छाती जिसकी उसके द्वारा)

३।१

(४) अला विधिः = अल् के कारण विधि, का उदाहरण

सु, *अनेकमन्यपदार्थे* (२।२।२४) *सुपो धातुप्रा०* (२।४।७१) *आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः* (६।३।४४) *अलोन्त्यस्य*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

महः आ उरस् (१।१।५१) पूर्ववत् स् को विसर्जनीय होकर,
महः आ उरः, उरः प्रभृतिभ्यः कप् (५।४।१५१) से समासान्त क
हुआ,
महः आ उरः क, कृत्तद्धितसमा० (१।२।४६) पूर्ववत् 'टा' विभक्ति
महः आ उरः क टा, अकः सवर्णे दीर्घः (६।१।९७) आद् गुणः (३
महः उरः क टा = महोरः क टा, सोऽपदादौ (८।३।३८)
महोरस्क टा पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर, टाङसिङसामिनात्स्याः (
लगा।
महोरस्क इन आद् गुणः (६।१।८४) से गुण एकादेश हुआ,
महोरस्केन यहाँ यदि विसर्जनीय के स्थान में सोऽपदादौ
सकार स्थानिवत् होकर, विसर्जनीय माना
अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि (८।४।२) से 'न' को
है, क्योंकि भाष्य वचन से अयोगवाह (विसर्ज
भी प्रत्याहारों में आते हैं, सो अट् प्रत्याहार में
के माने-जाने से णत्व पाया। पर यहाँ 'विसर्ज
का व्यवधान मानकर णत्व विधि है, अतः 'अ
होने से अनल्विधौ से स्थानिवत् का निषेध
अर्थात् 'स्' को विसर्जनीय नहीं माना गया, सो
नहीं हुआ और इष्ट रूप 'महोरस्केन' बन गया।
महोरस्केन बना।

इसी प्रकार व्यूढोरस्केन (चौड़ी है छाती जिसकी, उसके
सिद्धि भी जानें॥

यहाँ तक अलविधि के चारों प्रकार के उदाहरण समाप्त हुए।

—:०:—

परि० अचः परस्मिन् पूर्वविधौ (१।१।५६)

पटयति (पटुमाचष्टे = कुशल को कहता है)
पटु अर्थवदधातुर० (१।२।४५) से प्रातिपदिक संज्ञा
तत्करोति तदाचष्टे (वा. ३।१।२६) इस वार्तिक से
प्रत्यय हुआ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य (वा. ६।४।१५५) इस वार्त्तिक से णि के परे रहते इष्ठन्वत् कार्य, अर्थात् जिस प्रकार इष्ठन् के परे रहते टेः (६।४।१५५) से टि भाग का लोप होता है, उसी प्रकार यहाँ हो गया।

अब यहाँ *अत उपधायाः* (७।२।११६) से णि को मानकर उपधा अकार 'प' के 'अ' को वृद्धि प्राप्त हुई, पर *स्थानिवदादेशः०* (१।१।५६) से उकार जो लोप हुआ था, उसके स्थानिवत् हो जाने से 'अकार' उपधा में न होकर टकार हुआ, तो वृद्धि न हो सकी। पश्चात् *अनल्विधौ* से अंलः (६।१) विधिः होने के कारण स्थानिवत् का निषेध हो गया, तो पुनः अकार के उपधा में होने से वृद्धि प्राप्त होकर 'पाटयति' अनिष्ट रूप बनने लगा। तब *अचः परस्मिन् पूर्वविधौ* सूत्र ने कहा कि 'यहाँ परनिमित्तक (णिच् को मानकर) अच् के स्थान में हुआ आदेश (उकार का लोप) है, तथा पूर्व को विधि (वृद्धि) करनी है, अतः यहाँ अनल्विधौ निषेध न लगकर स्थानिवत् हो जाये' सो स्थानिवत् हो जाने से पूर्ववत् ही वृद्धि न हो सकी।

सनाद्यन्ता धातवः (३।१।३२) से 'पटि' की धातु संज्ञा होकर पूर्ववत् सब सूत्र लगकर शप्, तिप् आये।

पटि शप् तिप्, *सार्वधातुकार्धं०* (७।३।८४) से शप् को मानकर गुण हुआ,
पटे अ ति *एचोऽयवायावः* (६।१।७८) लगकर,
पटयति बना॥

इसी प्रकार लघु शब्द से लघुमाचष्टे *लघयति* (छोटों को कहता है) की सिद्धि जानें॥

अवधीत् (उसने मारा)

भूवादयो० (१।३।१) *धातोः* (३।१।९१) लुङ् (३।२।११०) *लुङि च* (२।४।४३) से हन् को 'वध' आदेश हुआ, शेष सारे कार्य परि० १।१।१ के अपठीत् के समान होकर,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अ वध इ सिच् ई त्, आर्धधातुकं शेषः (३।४।११४) से
आर्धधातुक संज्ञा हुई। आर्धधातुके (६।४।४६)
(६।४।४८) से वध के 'ध' के 'अ' का लोप
को मानकर हो गया।

अ वध् इ स् ई त्, अब यहाँ पर भी पूर्ववत् ही अतो हलादे
(७।२।७) से 'वध्' के अकार को वृद्धि पाई, पर
दादेशः० से अकार के स्थानिवत् हो जाने से हल

नहीं रहा, सो वृद्धि अप्राप्त हो गई, पुनः
होने से स्थानिवत् का निषेध अनल्विधौ से
प्रकृत सूत्र ने परनिमित्तक अजादेश होने के
(आर्धधातुक को मानकर अकार लोप आदेश
पूर्वविधि (वृद्धि) करने में स्थानिवत् पुनः
दिया, सो हलन्त अङ्ग न होने से वृद्धि न हो सकी।
शेष परि० १।१।१ के अपठीत् के समान

अवधीत् बन गया।

बहुखट्वकः (बहुत सी खाटें हैं जिस स्थान में)

बहून्यः खट्वाः यस्मिन् प्रदेशे—

बह्वी जस् खट्वा जस्, अनेकमन्यपदार्थे (२।२।२४) सुपो
७१) स्त्रियाः पुंवद्भाषित० (६।३।३२) से पुंवद्भा

बहुखट्वा शेषाद्विभाषा (५।४।१५४) प्रत्ययः, परश्च (३।१।२

बहुखट्वा कप् आपोऽन्यतरस्याम् (७।४।१५) से आबन्त अङ्ग
होकर,

बहुखट्व क अब यहाँ बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि (६।२।१७४) से
का बहुत्व अभिधेय होने पर नञ्वत् स्वर, अर्था
प्रकार हस्वान्तेऽन्त्यात् पूर्वम् (६।२।१७३) से ह्रस्वान्त
पद में रहते अन्त्य से पूर्व को नञ् से उत्तर
हैं, उसी प्रकार यहाँ भी 'खट्व' ह्रस्वान्त पद
अन्त्य से पूर्व 'ख' के 'अ' को उदात्त प्राप्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

*स्थानिवदादेशः*० से ह्रस्व आदेश स्थानिवत् होकर दीर्घ ही माना गया, तब ह्रस्वान्त उत्तरपद न मिलने से अन्त्य से पूर्व उदात्त न हो सका, प्रत्युत *कपि पूर्वम्* (६।२।१७२) से कप् से पूर्व 'ट्व' के 'अ' को उदात्त प्राप्त हुआ। पुनः अलि विधि होने से *अनल्विधौ* से स्थानिवत् का निषेध होकर, अन्त्य से पूर्व 'ख' के 'अ' को उदात्त पाया, तब *अचः परस्मिन् पूर्वविधौ* ने पुनः परनिमित्तक अजादेश (कप् को मानकर ह्रस्व हुआ था) को पूर्व की विधि ('ख' के अ को उदात्त करने में) स्थानिवत् कर दिया, तब *बहोर्नञ्वत्*० से नञ्वत् स्वर (अन्त्य से पूर्व को उदात्त) नहीं हुआ, और *कपि पूर्वम्* से 'व' के 'अ' को उदात्त हो गया।

हुखट्व क — *अनुदात्तं पदमेकवर्जम्* (६।१।१५२) से अनुदात्त होकर *उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः* (८।४।६५) से उदात्त से उत्तर

खट्वकं — स्वरित हो गया। पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति एवं रुत्व विसर्जनीय होकर

हुखट्वकः — बना।

—:०—

परि० न पदान्तद्विर्वचन० (१।१।५७)

कौ स्तः (कौन दो हैं)

पदान्तविधि—

*भूवादयो*० (१।३।१) पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

---

१. विदित रहे कि अगला सूत्र *न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वर*० स्वर- में स्थानिवत् का निषेध करता है, पर वह निषेध 'बहुखट्वकः' में इसलिये होता कि वहाँ वचन है कि, "*स्वरदीर्घयलोपेषु लोपाजादेशो न स्थानि-* *वति*" अर्थात् स्वर, दीर्घ, तथा यलोप विधियों में लोप रूपी अजादेश स्थानि- नहीं होता, और अजादेश तो स्थानिवत् होंगे ही, सो यहाँ बहुखट्वकः में अजादेश नहीं है, अपितु ह्रस्व अजादेश है, अतः *न पदान्त*० निषेध नहीं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अस् शप् तस्, *अदिप्रभृतिभ्यः शपः* (२।४।७२) प्रत्ययस्य लुक्:
अस् तस् *तिङ्शित् सार्व०* (३।४।११३) सार्वधातुकसंज्ञम्
तस् को ङित्वत् होकर, *श्नसोरल्लोपः* (६।४।१११)
स् तस् पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर
स्तः बना।

इसी प्रकार किम् शब्द को 'औ' विभक्ति के परे रहते, (७।२।१०३) से 'क' आदेश होकर 'कौ' रूप बना है।

कौ स्तः अब यहाँ यदि 'अस्' धातु के अकार का लोप हो जाय, तो *एचोयवायावः*(६।१।७५)से 'कौ' के 'औ' को देश प्राप्त हो जावे, सो 'काव्स्तः' रूप करना इष्ट नहीं है, तब आगे *अनल्विधौ* से स्थानिवत् अलि विधि मानकर हुआ, परन्तु इसके भी अन्त *अचः परस्मिन्०* (१।१।५६) सूत्र ने पुनः स्थानि करा दिया अतः फिर अनिष्ट रूप बनने लगा, तब *द्विर्वचन०* से यहाँ पदान्त विधि (*सुप्तिङन्तं पदं* से कौ की पद संज्ञा की थी, सो 'औ' पदान्त में यहाँ पदान्त विधि है) होने के कारण, स्थानि निषेध हो गया, तो अच् परे न होने से, आगमे हुआ सो
कौ स्तः ही बना॥

इसी प्रकार *यौ स्तः* (जो दो हैं) में भी समझें। *यानि सन्ति* (जो हैं) में सन्ति के 'अ' का लोप पूर्ववत् यदि वह स्थानिवत् हो जाय तो *इको यणचि* (६।१।७७) यानि के 'इ' को यणादेश होने लगे, पर प्रकृत सूत्र से स्थानिवत् का निषेध हो जाने से यणादेश नहीं होता॥

———

दद्ध्यत्र

द्विर्वचनविधि—

दधि अत्र *इको यणचि* (६।१।७४) *संहितायाम्* (६।१।७०)
दध्यत्र यहाँ *अनचि च* (८।४।४६) से अनच् 'यू' परे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

को द्वित्व पाया, पर *स्थानिवदादेशः०* से स्थानिवत् होकर 'य्' 'इ' माना गया, तो अनच् परे न होने से द्वित्व नहीं हुआ, पुनः *अनल्विधौ* से अलि विधि मानकर स्थानिवत् का निषेध हो गया, तब पुनः द्वित्व पाया। तब *अचः परस्मिन्०* से पुनः स्थानिवत् हो गया, और द्वित्व की प्राप्ति नहीं हुई, अन्त में *न पदान्तद्विर्वचन०* से द्विर्वचन विधि में स्थानिवत् का निषेध हो गया, सो द्वित्व भी हो गया,

मद्ध्वत्र — *झलां जश् झशि* (८।४।५२) से ध् को 'द्' होकर,

मद्ध्वत्र — बना ॥

इसी प्रकार मद्ध्वत्र (शहद यहाँ) में भी जानें। सुधीभिरुपास्यः = सुधास्यः (विद्वानों के द्वारा उपासना के योग्य) में भी यही क्रम है ॥

———

यायावरः (घुमक्कड़, खानाबदोश)

वरे-विधि—

भूवादयो० (१।३।१) *धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्* (३।१।२२) *प्रत्ययः, परश्च*

यङ् — *सन्यङोः* (६।१।९) *एकाचो द्वे प्रथमस्य* (६।१।१)

या यङ् — *पूर्वोऽभ्यासः* (६।१।४) *ह्रस्वः* (७।४।५९)

या य — *दीर्घोऽकितः* (७।४।८३) से अभ्यास को पुनः दीर्घ हुआ,

याय — *सनाद्यन्ता धातवः* (३।१।३२) *धातोः* (३।१।९१)

याय वरच्, — *यश्च यङः* (३।२।१७६) *प्रत्ययः, परश्च* (३।१।१, २)

याय् वर — *आर्धधातुके* (६।४।४६) *अतो लोपः* (६।४।४८)

या वर — *लोपो व्योर्वलि* (६।१।६४) से 'य्' का लोप होकर

अब यहाँ यङ् का 'अ' स्थानिवत् हो गया, तो *आतो लोप इटि च* (६।४।६४) से अजादि कित् ङित् परे रहते 'या' के 'आ' का लोप प्राप्त हुआ, *अनल्विधौ* ने अलि विधि होने से, स्थानिवत् निषेध की प्राप्ति कराई, पर पुनः *अचः*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परस्मिन्० से परनिमित्तक अजादेश (वरच् के
अतो लोपः से अकार लोप हुआ था) होने से पू
में स्थानिवत् प्राप्त करा दिया। अन्त में न
चनवरे० से वरे विधि में स्थानिवत् का निषेध
तो आकार लोप नहीं हुआ। कृत्तद्धित० (१।२।४६)
सब सूत्र लगकर,

यायावरः बना।

यह उदाहरण यलोप विधि का भी हो सकता है। कण्डूति
हरण के समान यहाँ घटा लें।

———

कण्डूतिः (खाज, खुजली)

यलोपविधि—

कण्डूञ् गात्रविघर्षणे, भूवादयो० (१।३।१) कण्ड्वादिभ्यो यक् (३
कण्डू यक् सनाद्यन्ता धातवः (३।१।३२) धातोः (३।१।९१)
संज्ञायाम् (३.३।१७४) प्रत्ययः परश्च,
कण्डूय क्तिच् आर्धधातुकं० (३।४।११४) आर्धधातुके (६।४।४६)
(६।४।४८)
कण्डूय् ति यहाँ पर यदि अकार लोप स्थानिवत् हो जाये तो
व्योर्वलि (६।१।६४) से यकार लोप नहीं हो सक
यह है कि लोप हो जावे, तब अनल्विधौ से पुन
वत् निषेध, एवं अचः परस्मिन्० से स्थानिवत् अ
अन्त में न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोप० से स्थानिवत्
हो गया, तो यकार लोप हो गया।

कण्डूति कृत्तद्धित० (१।२।४६) सब पूर्ववत् होकर,

कण्डूतिः बन गया।

———

चिकीर्षकः (करने का इच्छुक)

स्वर विधि—

डुकृञ् करणे, भूवादयो० (१।३।१) आदिर्ञिटुडवः (१।३।५) हलन्त्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

लोपः (१।३।९) धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा (३।१।७), प्रत्ययः परश्च,

सन् आर्धधातुकं शेषः (३।४।११४) आर्धधातुकस्ये० (७।२।३५) से इट् आगम प्राप्त हुआ पर एकाच उपदेशे० (७।२।१०) से धातु के अनिट् होने से निषेध हो गया। अब सार्वधातुकार्धं० (७।३।८४) से गुण प्राप्त हुआ, पर इको झल् (१।२।९) से झलादि सन् के कित्वत् हो जाने से क्ङिति च (१।१।५) से निषेध हो गया।

कृ स अज्झनगमां सनि (६।४।१६) से दीर्घ होकर

कृ स ऋत इद्धातोः (७।१।१००) उरण्रपरः (१।१।५०)

किर् स सन्यङोः (६।१।९) एकाचो द्वे प्रथमस्य (६।१।१)

किर् किर् स, पूर्वोऽभ्यासः (६।१।४) हलादिः शेषः (७।४।६०)

कि किर् स कुहोश्चुः (७।४।६२) स्थानेऽन्तरतमः (१।१।४९)

चि किर् स हलि च (८।२।७७) आदेशप्रत्यययोः (८।३।५९)

चिकीर् ष सनाद्यन्ता० (३।१।३२) धातोः (३।१।९१) ण्वुल्तृचौ (३।१।१३३) प्रत्ययः, परश्च,

चिकीर्ष ण्वुल् पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर, युवोरनाकौ (७।१।१)

चिकीर्ष अक आर्धधातुके (६।४।४६) अतो लोपः (६।४।४८)

चिकीर्ष् अक यहाँ 'ण्वुल्' के लित् होने से, लिति (६।१।१८७) से लित् प्रत्यय, 'अक' के परे रहते, प्रत्यय से पूर्व 'की' के 'ई' को उदात्त पाया, परन्तु यदि अतो लोपः से किया हुआ अकार लोप स्थानिवत् माना जावे, तो 'अक प्रत्यय से पूर्व ष के अ को उदात्त होगा, अतः आगे अनल्विधौ से अलि विधि होने के कारण (लिति में सप्तमी होने से अलि विधि है) स्थानिवत् निषेध हो गया, तो 'की' के "ई" को उदात्त प्राप्त हुआ, पर पुनः अचः परस्मिन्० से परनिमित्तक अजादेश पूर्व की विधि में स्थानिवत् माना गया, तब अन्त में न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वर० ने कहा कि स्वर विधि में स्थानिवत् न हो, सो पूर्ववत् 'की' के "ई"

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

को उदात्त हो गया। अनुदात्तं पदमेक०(६।१।१५२) से
दनुदात्तस्य स्वरितः (८।४।६५)

चिकीर्षक् स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् (१।२।३९) से
को एकश्रुति हुई, एवं पूर्ववत् 'सु' आकर विसर्जनीय

चिकीर्षकः बना।

इसी प्रकार हृञ् हरणे धातु से जिहीर्षकः (हरण करने
इच्छुक) भी बनेगा॥

शिण्ढि (विशेषित करो)

सवर्ण विधि, अनुस्वारविधि

शिष्लृ भूवादयो० (१।३।१) उपदेशेऽजनु० (१।३।२) तस्
शिष् लोट् च (३।३।१६२) प्रत्ययः, परश्च,
शिष् लोट् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, मध्यम पुरुष के एक
शिष् सिप्, सिप् आया। रुधादिभ्यः श्नम् (३।१।७८)
ङ्त्यात्परः (१।१।४६)
शि श्नम् ष् सि, सेर्ह्यपिच्च (३।४।८७) से 'सि' को हि हुआ,
उसको अपित् भी माना गया,
शि न ष् हि अपित् होने से सार्वधातुकमपित् (१।२।४) से 'हि'
वत् माना गया, और श्नसोरल्लोपः (६।४।१११) से
सार्वधातुक परे रहते 'श्न' के अ का लोप हो गया।
शि न् ष् हि हुझल्भ्यो हेर्धिः (६।४।१०१) से 'हि' को 'धि' हुआ।
शि न् ष् धि ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से ष्टुत्व होकर
शि न् ष् ढि झलां जश्झशि (८।४।५२) स्थानेऽन्तरतमः (१।१।५०)
शिन्ड् ढि झरो झरि सवर्णे (८।४।६४) से 'ड' झर् का सवर्ण
परे रहते लोप हो गया,
शिन्ढि अब यहाँ पर 'न्' को नश्चापदान्तस्य झलि (८।३।२४)
से झल् परे रहते अनुस्वार पाया, पर यदि 'न्' के
का लोप स्थानिवत् हो जावे, तो झल् परे न होने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अनुस्वार नहीं हो सकता, तब पूर्ववत् ही *अनल्विधौ* से (अलि विधि होने से) स्थानिवत् निषेध, तथा *अचः परस्मिन्*० से प्राप्त होकर अन्त में *न पदान्तद्विर्वचन-वरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वार*० से स्थानिवत् निषेध होने से अनुस्वार हो गया।

अब पुनः इस अनुस्वार को *अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः* (८।४।५७) से *यय्* परे रहते परसवर्ण पाया, पर यदि वही 'श्न' के 'अ' का लोप स्थानिवत् हो जावे तो *यय्* प्रत्याहार परे नहीं मिलेगा और परसवर्ण नहीं हो सकता, तब पूर्वोक्त क्रम से *अनल्विधौ*, तथा *अचः परस्मिन्*० लगकर अन्त में *न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णा*० से स्थानिवत् का निषेध हो गया, सो परसवर्ण होकर,

बना ॥

इसी प्रकार पिष्लृ सञ्चूर्णने धातु से *पिण्ढि* (पीसो) भी समझें। उदाहरण अनुस्वार एवं सवर्ण दोनों विधियों के हो सकते थे, अतः दोनों ही दिखा दिये हैं।

शिंषन्ति (विशेषित करता है)

अनुस्वारविधि—

पूर्ववत् ही सब सूत्र लगकर,

श्नम् ष् झि, पूर्ववत् ही श्नम् के अ का लोप हुआ *झोऽन्तः* (७।१।३) न् ष् अन्ति यहाँ पर भी पूर्ववत् ही अकार लोप यदि स्थानिवत् हो जाय, तो *नश्चापदान्तस्य झलि* (८।३।२४) से झल् परे न होने से अनुस्वार नहीं प्राप्त होता, तब पुनः पूर्ववत् ही *अनल्विधौ*, *अचः परस्मिन्*० लगकर अन्त में प्रकृत सूत्र से अनुस्वार विधि में स्थानिवत् का निषेध हो गया, सो अनुस्वार हो गया।

बना।

इसी प्रकार पिष्लृ धातु से *पिंषन्ति* (पीसता है) में भी जानें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रतिदीव्ना (प्रतिदिवा के द्वारा)

दीर्घविधि—

प्रतिदिवन् अर्थवदधातु० (१।२।४५) पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
प्रतिदिवन् टा यचि भम् (१।४।१८) भस्य (६।४।१२९) अल्लोपो (६।४।१३४) से अन्नन्त भसंज्ञक प्रतिदिवन् के उपधा का लोप हुआ।
प्रतिदिव्न् आ अब यहाँ हलि च (८।२।७७) से वकार की उपधा को हल् परे रहते दीर्घ होने लगा, पर अकार के स्थानिवत् हो जाने से हल् परे नहीं मिला, सो दीर्घ प्राप्त हो सका, पुनः अनल्विधौ से स्थानिवत् निषेध, अचः परस्मिन्० से स्थानिवत् की प्राप्ति होकर न पदान्तर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घ० से दीर्घ विधि स्थानिवत्, का निषेध हो गया, सो हल् परे मिल से दीर्घ हो गया।
प्रतिदीव्न् आ = प्रतिदीव्ना, बना।

इसी प्रकार चतुर्थी के 'ङे' विभक्ति में प्रतिदीव्ने की सिद्धि भी

सग्धिः (समान भोजन)

जश्विधि—

अद् भूवादयो० बहुलं छन्दसि (२।४।२९) षष्ठी स्थाने० (१।१।
घस्लृ स्थानिवदादेशः० से घस्लृ स्थानिवत् माना गया, तो वत् होने से धातु के अधिकार में विहित स्त्रियां (३।३।९४) से क्तिन् प्रत्यय हुआ।
घस्लृ क्तिन् = घस् ति, घसिभसोर्हलि च (६।४।१००) अलोऽन्त्यस्य उपधा (१।१।६४) से उपधा का लोप होकर,
घ्स् ति झलो झलि (८।२।२६) से सकार लोप हुआ,
घ् ति झषस्तथोर्धोऽधः (८।२।४०)
घ् धि अब यहाँ झलां जश्झशि (८।४।५२) से 'घ्' को प्राप्त है, पर घसिभसो० से किया हुआ अकार लोप

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

स्थानिवत् हो जाय तो झश् परे न मिलने से जश्त्व नहीं हो सकता, तब पूर्ववत् ही *अनल्विधौ* एवं *अचः परस्मिन्*० लगकर *न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्*० से स्थानिवत् का निषेध हो गया, तो झश् परे मिल जाने से जश्त्व हो गया।

णिध

पूर्ववत् सु आकर, समाना चासौ ण्धिः ऐसा विग्रह करके—

समाना सु ण्धि सु, *पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च* (२।१।५७) से समानाधिकरण तत्पुरुष समास हुआ, *सुपो धातु*० (२।४।७१) से *पुंवत्कर्मधारय*० (६।३।४२) से समाना को पुंवद्भाव हुआ

समानण्धि *समानस्य छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु* (६।३।८२) से 'समान' को 'स' आदेश हुआ। *कृत्तद्धित*० (१।२।४६) पूर्ववत् सु आकर,

सण्धिः बन गया।

बध्धाम्

भस भर्त्सनदीप्त्योः *भूवादयो*० (१।३।१) *धातोः* (३।१।९१) *लोट् च* (३।३।१६२)

भस् लोट् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

भस् शप् तस् *जुहोत्यादिभ्यः श्लुः* (२।४।७५) *प्रत्ययस्य लुक्श्लु*० (१।१।६०)

भस् तस् लोटो लङ्वत् (३।४।८५) से लोट् को लङ् के समान कार्य होने से *तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः* (३।४।१०१) से तस् को 'ताम्' हो गया।

भस् ताम् *श्लौ* (६।१।१०) *एकाचो द्वे प्रथमस्य* (६।१।१)

भस् भस् ताम् *पूर्वोऽभ्यासः* (६।१।४) *हलादिः शेषः* (७।४।६०) *अभ्यासे चर्च* (८।४।५३)

बे भस् ताम् *सार्वधातुकमपित्* (१।२।४) *घसिभसोर्हलि च* (६।४।१००) से 'अ' लोप हुआ,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ब भस् ताम् झलो झलि (८।२।२६) झषस्तथोर्धोऽधः (८।२।४०)
बभ् धाम् अब यहाँ भी पूर्ववत् ही झलां जश्झशि (८।४।५३)
जश्त्व पाया, पर अकार लोप स्थानिवत् हो जाने से
हो ? तब पूर्वोक्त क्रम से अनल्विधौ, अचः परस्मि
लगकर न पदान्त० से जश्विधि में स्थानिवत् न
हो गया, सो जश्त्व होकर,
बन्धाम् बना ॥

———

जक्षतुः (उन दोनों ने खाया था)

चर्विधि—

अद् भूवादयो० (१।३।१) परोक्षे लिट् (३।२।११५)
अद् लिट् लिट् च (३।४।११५) आर्धधातुके (२।४।३५) लिट
रस्याम् (२।४।४०) से लिट् परे रहते 'अद्' को घ
आदेश हुआ,
घस्ल लिट् स्थानिवदादेशः० से घस्ल आदेश धातुवत् माना गया
पूर्ववत् ही लिट् के स्थान में 'तस्' प्रत्यय होकर तस्
परस्मैपदानां० (३।४।८२) से अतुस् हो गया।
घस् अतुस् असंयोगाल्लिट् कित् (१।२।५) से लिट् कित्वत् हो गया
घसिभसोर्हलि च (६।४।१००) से उपधा का लोप हुआ,
घ्स् अतुस् लिटि धातोरनभ्यासस्य (६।१।८) एकाचो द्वे प्रथमस्य (६।
द्विर्वचनेऽचि (१।१।५८) से स्थानिरूप अतिदेश (इस
का विशेष व्याख्यान उस सूत्र पर ही देखें) होकर
घस् घ्स् अतुस्, पूर्वोऽभ्यासः हलादिः शेषः (७।४।६०) कुहोश्चुः (७।४।
झ घ्स् अतुस्, अभ्यासे चर्च (८।४।५३) से अभ्यास को जश् हुआ,
ज घ्स् अतुस् अब यहाँ खरि च (८।४।५४) से 'घ' को चर् प्राप्त हु
पर यदि घसिभसो० से हुआ अकार लोप स्थानिवत्
जाय, तो खर् परे न होने चर्त्व नहीं हो सकता,
अनल्विधौ से स्थानिवत् निषेध, तथा, अचः परस्मि
कित् निमित्तक लोप अजादेश चर् करने में (पूर्व द्वि
में स्थानिवत् माना गया, अन्त में न पदान्तद्विर्वचनवरे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु से चर्विधि में स्थानिवत् का निषेध हो गया, तब चर्त्व हो गया।

अक्स् अतुस् *शासिवसिघसीनां च* (८।३।६०) से षत्व तथा रुत्व विसर्जनीय होकर,

अक्ष् अतुस् बना।

अक्षतुः

इसी प्रकार जक्षुः (उन सबने खाया) में भी जानें॥

अक्षन्

अद पूर्ववत् ही लुङ् (३।२।११०) से लुङ् प्रत्यय आया,

अद् लुङ् *आर्धधातुके* (२।४।३५) लुङ्सनोर्घस्लृ (२।४।३७)

घस्लृ लुङ् पूर्ववत् घस्लृ स्थानिवत् माना गया तो लुङ् लकार के सब कार्य होकर,

अट् घस् च्लि झि, *झोऽन्तः* (७।१।३) से 'झ्' को अन्तादेश हुआ,

अ घस् च्लि अन्ति, *इतश्च* (३।४।१००) *हलोऽनन्तराः*० (१।१।७) *संयोगान्त*० (८।२।२३)

अ घस् च्लि अन्, *मन्त्रे घसह्वरणश*०(२।४।८०) से च्लि का लुक् हो गया।

अघस् अन् *सार्वधातुकमपित्* (१।२।४) *घसिभसोर्हलि च* (६।४।१००)

अघ्स् अन् अब पूर्ववत् ही यहाँ *खरि च* (८।४।५४) से चर्त्व पाया, पर अकार लोप के स्थानिवत् हो जाने से खर् परे न होने के कारण न हो सका, तब *अनल्विधौ अचः परस्मिन्*० लगकर न *पदान्तद्विर्वचन*० सूत्र से स्थानिवत् निषेध हो गया, सो चर्त्व हो गया।

अक्स् अन् *शासिवसिघसीनां च* (८।३।६०)

अक् षन् = अक्षन्, बना।

—:०:—

परि० द्विर्वचनेऽचि (१।१।५८)

पपतुः (उन दोनों ने रक्षा की)

पा पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

पा अतुस् *असंयोगाल्लिट् कित्* (१।२।५) *आतो लोप इटि च* (६।४।६४)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प् अतुस् *लिटि धातोरनभ्यासस्य* (६।१।८) एकाचो हे
(६।१।१) से धातु के प्रथम एकाच् को लिट् परे
पाया, पर 'पा' के 'आ' का लोप करने पर, 'प्'
रह गया है, सो प्रथम एकाच् कैसे बने, यहाँ
'अच्' है नहीं, तब *द्विर्वचनेऽचि* ने कहा कि
निमित्तक अजादि प्रत्यय के परे रहते द्विर्वचन
रूप का अतिदेश हो जाये, अर्थात् स्थानी (पा)
रूप था, वैसा हो जाये, सो यहाँ द्विर्वचन
अजादि प्रत्यय 'अतुस्' (लिट् परे मानकर द्वित्व
परे था ही, अतः रूपातिदेश होकर स्थानी का
द्वित्व करने में हो गया।

पा प् अतुस् , *पूर्वोऽभ्यासः हलादिः शेषः* (७।४।६०) हस्वः
पपतुस् पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर,
पपतुः बना।

इसी प्रकार 'उस' परे रहते *पपुः* (उन सबने रक्षा की)
जानें।

जग्मतुः (वे दोनों गये)

गम्लृ पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
गम् अतुस् , *गमहनजनखनघसां०* (६।४।९८) से उपधा लोप हुआ,
ग्म् अतुस् *लिटि धातो०* (६।१।८) *एकाचो द्वे०* (६।१।१) यहाँ
पूर्ववत् ही अच् न होने से द्विर्वचन नहीं हो सका
तब *द्विर्वचनेऽचि* से रूपातिदेश होकर द्वित्व हो गया।
गम् गम् अतुस् , पूर्ववत् अभ्यास कार्य, तथा *कुहोश्चुः*
जग्मतुस् पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर
जग्मतुः बना।

इसी प्रकार जग्मुः (वे सब गये) की सिद्धि जानें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

चक्रतुः (उन दोनों ने किया)

पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
इको यणचि (६।१।७४) से यणादेश हुआ,
यहाँ भी पूर्ववत् ही द्वित्व प्राप्त हुआ, पर 'अच्' न होने से द्विर्वचनेऽचि से रूपातिदेश होकर द्वित्व हुआ,
पूर्वोऽभ्यासः (६।१।४) उरत् (७।४।६६) उरऋरपरः (१।१।५०)
हलादिः शेषः (७।४।६०) कुहोश्चुः (७।४।६२)
पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर,
बना।

इसी प्रकार चक्रुः में भी जानें।

निनय (मैं ले गया)

पूर्ववत् ही सब सूत्र लगकर, तथा णो नः (६।१।६३) से नत्व एवं अस्मद्युत्तमः (१।४।१०६) से उत्तम पुरुष का प्रत्यय आकर
णलुत्तमो वा (७।१।९१) से विकल्प से 'णल्' णित्वत् नहीं माना गया, सो जिस पक्ष में णित्वत् नहीं माना गया, उस पक्ष में अचो ञ्णिति (७।२।११५) से वृद्धि न होकर सार्वधातुकार्ध० (७।३।८४) से गुण हुआ।
एचोऽयवायावः (६।१।७५)
पूर्ववत् ही यहाँ भी द्वित्व प्राप्त हुआ, सो यहाँ यदि 'नय' को द्वित्व करें तो 'ननय' अनिष्ट रूप बनेगा, अतः द्विर्वचनेऽचि से रूपातिदेश होकर द्वित्व हुआ,
पूर्वोऽभ्यासः हलादिः शेषः (७।४।६०) ह्रस्वः (७।४।५९) बना।

जिस पक्ष में णलुत्तमो वा (७।१।९१) से णित्वत् माना गया, उस पक्ष में अचो ञ्णिति (७।२।११५) से 'नी' अङ्ग को वृद्धि होकर नै अ =

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

नाय् अ, रहा। पुनः *द्विर्वचनेऽचि* लगकर पूर्ववत् ही 'नी नाय्' हुआ। पूर्ववत् ही सब सूत्र लगकर '*निनाय*' बना॥

इसी प्रकार लूञ् छेदने धातु से पूर्ववत् ही सारे सूत्र लगकर पक्ष में गुण होकर 'लो अ' रहा। *द्विर्वचनेऽचि* से रूपातिदेश 'लू लो अ' रहा। ह्रस्वः (७।४।५९) से ह्रस्व, तथा पूर्ववत् सब होकर, लुलव (मैंने काटा) बना। वृद्धि पक्ष में 'लौ अ' रहा। नेऽचि लगकर लू लौ अ = लुलाव बना।

आटिटत् (उसने भ्रमण करवाया)

अट *भूवादयो०* (१।३।१) *हेतुमति च* (३।१।२६)

अट् णिच् *अत उपधायाः* (७।२।११६) *वृद्धिरादैच्* (१।१।१)

आट् इ *सनाद्यन्ता धातवः* (३।१।३२) *धातोः* (३।१।३

आट् लुङ् (३।२।११०) पूर्ववत् तिबाद्युत्पत्ति होकर

आटि तिप् *णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ्* (३।१।४८) प्रत्ययः, परश्च

आटि चङ् तिप्, *णेरनिटि* (६।४।५१) से णि का लोप हो गया,

आट चङ् तिप् = आट् अ ति, *इतश्च* (३।४।१००) से इकार लोप हो

आट् अ त् *णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः* (७।४।१) से उपधा ह्रस्व हुआ

अट् अ त्, *चङि* (६।१।११) *अजादेर्द्वितीयस्य* (६।१।२) से अजादि द्वितीय एकाच् 'ट्' को द्वित्व प्राप्त हुआ, पर द्वितीय अक्षर 'ट्' में तो कोई अच् ही नहीं है द्वित्व हो? तब *द्विर्वचनेऽचि* से रूपातिदेश होकर द्वित्व हुआ पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर आडजादीनां (६।४।७२) से आट् आगम प्राप्त हुआ आद्यन्तौ (१।१।४५) लगकर

आट् अ टि ट् अ त् = आ अ टि ट् अ त्, *अकः सवर्णे दीर्घः* (६ से दीर्घ एकादेश होकर

आटिटत् बन गया॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० अदर्शनं लोपः (१।१।५९)

शालीयः यहाँ पर *यस्येति च* (६।४।१४८) से शाला शब्द के 'आ' का, तथा *तस्य लोपः* (१।३।९) से सुँ के 'उँ' का लोप होने लगा, तो *अदर्शनं लोपः* ने बताया कि अदर्शन की लोप संज्ञा होती है। पूरी सिद्धि परि० १।१।१ में देखें॥

गौधेरः (गोधायाः अपत्यम्, गोह का बच्चा)

गोधा ङस् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर ङस् आया। *समर्थानां प्रथमाद्वा* (४।१।८२) *तस्यापत्यम्* (४।१।९२) *गोधाया ढ्रक्* (४।१।१२९)

गोधा ङस् ढ्रक्, *सुपो धातुप्रातिपदिकयोः* (२।४।७१)

गोधा ढ्रक्, पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर, *आयनेयीनीयियः फढखछघां०* (७।१।२) से 'ढ्' को 'एय्' आदेश हुआ,

गोधा एय् र् अ, *किति च* (७।२।११८) *यस्येति च* (६।४।१४८)

गोध् एय् र् अ, *लोपो व्योर्वलि* (६।१।६४) से 'य्' का लोप प्राप्त हुआ तब *अदर्शनं लोपः* ने अदर्शन की लोप संज्ञा बताई।

गौधेर *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) पूर्ववत् सु आकर,

गौधेरः बन गया।

पचेरन् (वे सब पकायें)

पच् पूर्ववत् धातु संज्ञा तथा इत्संज्ञा होकर,

विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् (३।३।१६१) *लिङः सीयुट्* (३।४।१०२) से सीयुट् आगम हुआ,

पच् सीयुट् लिङ्, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, आत्मनेपद का झ तथा शप् आया, *लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य* (७।२।७९) से सीयुट् के 'स्' का लोप हुआ।

पच् शप् सीयुट् झ, *झस्य रन्* (३।४।१०५) से 'झ' को 'रन्' आदेश हुआ,

पच् अ ईय् झ, *लोपो व्योर्वलि* (६।१।६४) *अदर्शनं लोपः*,

पच् अ ईय् रन् *आद् गुणः* (६।१।८४) *अदेङ् गुणः* (१।१।२)

पचेरन् बना।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

जीरदानुः (जीने वाला)

जीव भूवादयो० (१।३।१) जीवैरदानुक् (उणा० ३२३) से
नुक् प्रत्यय हुआ
जीव् रदानुक्, लोपो व्योर्वलि (६।१।६४) से 'व्' का लोप अदर्शनं लोपः
जीरदानु कृत्तद्धित० (१।२।४६) पूर्ववत् सु आकर
हो गया तो
जीरदानुः बना।

आस्रेमाणम् (गति वा शोषण करने वाले अ)

आङ् स्रिवु भूवादयो० (१।३।१) अनुबन्ध लोप होकर सर्वधातुभ्यः
आ स्रिव् (उणा० ४।१४५) प्रत्ययः, परश्च,
आ स्रिव् मनिन्, पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर, पुगन्तलघूपधस्य च(७।३
आस्रेव् मन्, लोपो व्योर्वलि (६।१।६४) अदर्शनं लोपः, पूर्ववत्
विभक्ति आकर
आस्रेमन् अम्, सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ (६।४।८) से दीर्घ हो कर
आस्रेमान् अम्, अट् कुप्वाङ्नुम्व्य० (८।४।२)
आस्रेमाण् अम् = आस्रेमाणम्, बना॥

—:०:—

परि० प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः (१।१।६०)

विशाखः (विशाखा नक्षत्र से युक्त काल में पैदा होनेवाला अर्थ

विशाखायां जातः, पूर्ववत् सब सूत्र लगाकर
विशाखा ङि समर्थानां प्रथमाद्वा (४।१।८२) प्रागदीव्यतोऽण् (४।
तत्र जातः (४।३।२५) प्रत्ययः, परश्च
विशाखा ङि अण्, सुपो धातुप्राति० (२।४।७१)
विशाखा अण् श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखा
लाल्लुक् (४।३।३४) से अण् प्रत्यय का लुक् हो गया
लुक् कहते किसे हैं? यह प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[पादः

विशाखा यहाँ लुक् कहकर अदर्शन करने से लुक्तद्धितलुकि (१।२।४९) से स्त्री प्रत्यय "टाप्" का भी लुक् हो गया, प्रत्ययस्य लुक्०

विशाख पूर्ववत् सु आकर विसर्जनीय हो गया।

विशाखाः बना।

———

स्तौति (स्तुति करता है)

लुक् का उदाहरण—

ष्टुञ् स्तुतौ भूवादयो० (१।३।१) धात्वादेः षः सः (६।१।६२) अनुबन्ध लोप होकर

टु पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

टु शप् तिप् अदिप्रभृतिभ्यः शपः (२।४।७२) प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः

टु तिप् = ति अब यहाँ लुक् कहकर प्रत्यय का अदर्शन किया गया है, अतः उतो वृद्धिर्लुकि हलि (७।३।८९) से हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते, उकारान्त 'स्तु' धातु को वृद्धि हो गई।

ौति बना।

———

जुहोति (हवन करता है)

श्लु का उदाहरण—

हानादनयोः पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

शप् तिप् जुहोत्यादिभ्यः श्लुः (२।४।७५) प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः

ति यहाँ श्लु कहकर प्रत्यय का अदर्शन हुआ है, अतः श्लौ (६।१।१०) से द्वित्व हो गया।

हु ति पूर्वोऽभ्यासः (७।४।६०) कुहोश्चुः (७।४।६२)

हु ति अभ्यासे चर्च (८।४।५३) से जश्त्व तथा पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर,

हु ति सार्वधातुकार्धधातुकयोः (७।३।८४) अदेङ् गुणः (१।१।२)

ोति बना।

———

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वरणाः (वरणानाम् अदूरभवो ग्रामः, वरण वृक्षों के समीप ग्राम

लुप् का उदाहरण— पूर्ववत् सब होकर

वरण आम् *समर्थानां प्रथमाद्वा* (४।१।८२) प्राग्दीव्यतोऽण् (४।
अदूरभवश्च (४।२।६९)

वरण आम् अण्, *सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१)

वरण अ *वरणादिभ्यश्च* (४।२।८१) से प्रत्यय का लुप् प्रा
तो *प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः* ने बताया कि लुप् प्रत्य
अदर्शन की संज्ञा है, पुनः *प्रत्ययलोपे०* (१।१।६१) अ
लक्षण वृद्धि न *लुमताङ्गस्य* (१।१।६२) के निषेध
नहीं हुई।

वरण यहाँ लुप् हो जाने से *लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने* (
से युक्तवत् अर्थात् पूर्ववत् व्यक्ति, वचन=द्वि
सङ्ख्या प्राप्त हुये, सो यहाँ वरण शब्द यद्यपि अ
वाची है परन्तु पहले बहुवचन वाला (विग्रह वाक्य
ही किया था) था, अतः यहाँ बहुवचन का प्रत्य
आया।

वरण जस् = अस्, *प्रथमयोः पूर्वसवर्णः* (६।१।९८) पूर्ववत् ही सब
वरणाः बना।

इसी प्रकार पञ्चालानां निवासो जनपदः = पञ्चालाः (पञ्चालों
का देश) में *तस्य निवासः* (४।२।६८) से अण् हुआ है, उसका
(४।२।८०) से लुप् हुआ है, शेष सब पूर्ववत् ही है। लुप् करने
करने के कारण यहाँ भी पञ्चाल देश के एक होते हुये भी पूर्व
बहुवचन का प्रत्यय 'जस्' हुआ है॥

—:०:—

परि० प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् (१।१।६१)

अग्निचित् (जिसने अग्नि का चयन किया)

अग्नि अम् चिञ्, *भूवादयो०* (१।३।१) से चिञ् की धातु संज्ञा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

धातोः(३।१।९१)लगा, *तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्* (३।१।९२) *अग्नौ चेः* (३।२।९१) *प्रत्ययः*, *परश्च* से क्विप् प्रत्यय परे हुआ।

अग्नि अम् चि क्विप्, *उपपदमतिङ्* (२।२।१९) *सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१)

अग्निचि व्

अग्निचि *अपृक्त एकाल्प्रत्ययः* (१।२।४१) *वेरपृक्तस्य* (६।१।६५)

अब यहाँ *ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्* (६।१।६९) से पित् कृत् प्रत्यय परे रहते, तुक् आगम प्राप्त था, पर यहाँ क्विप् जो कि पित् तथा कृत् था उसका तो लोप हो गया है, सो कृत् पित् परे न रहने से तुक् आगम कैसे हो? तब *प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्* ने कहा कि प्रत्यय के लोप हो जाने पर प्रत्ययलक्षण कार्य हो, अतः पहले जो प्रत्यय यहाँ था उसको मानकर तुक् आगम हो गया, *आद्यन्तौ०* (१।१।४५)

अग्निचि तुक्=त्, *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) पूर्ववत् सु आकर

अग्निचित् सु=स्, *हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिः* (६।१।६६) से सु का लोप हो गया,

अग्निचित् बना।

इसी प्रकार सोम उपपद रहते षुञ् अभिषवे धातु से *सोमे सुञः* (३।२।९०) से क्विप् प्रत्यय होकर, पूर्ववत् ही सोमं सुतवान्=सोमसुत् (जिसने सोमरस को निचोड़ा), बना है। यहाँ *धात्वादेः षः सः* (६।१।६२) से षुञ् के 'ष्' को 'स्' हो जाता है॥

अधोक् (उसने दुहा))

दुह प्रपूरणे पूर्ववत् लङ् लकार में सब सूत्र लगकर,

दुह् शप् तिप्, *अदिप्रभृतिभ्यः शपः* (२।४।७२) *प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः* (१।१।६०)

दुह् ति *पुगन्तलघूपधस्य च* (७।३।८६) से अङ्ग की उपधा को गुण हुआ,

दोह् ति *इतश्च* (३।४।१००) से 'ति' के इ का लोप हुआ,

दोह् त् *हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०* (६।१।६६)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अदोह् यहाँ *दादेर्धातोर्घः* (८।२।३२) से 'ह्' को पदान्त में 'घ' करना है, परन्तु *सुप्तिङन्तं पदम्* (१।४।१४) से या तिङ् अन्त में हो जिसके, उसकी पद संज्ञा हो। यहाँ तो 'तिप्' का लोप हो गया है, सो तिङ् नहीं है नहीं, सो कैसे पद संज्ञा हो? तब *प्रत्ययलोपे* लक्षणम् से प्रत्ययलक्षण कार्य मानकर पद संज्ञा हो और पदान्त में वर्त्तमान 'ह्' को 'घ्' हो गया।

अदोघ् *वशो भष्झषन्तस्य स्ध्वोः* (८।२।३७)

अधोघ् *झलां जशोऽन्ते* (८।२।३९) से जश्त्व तथा

अधोग् *वावसाने* (८।४।५५) से चर्त्व होकर,

अधोक् बना।

—:०:—

परि० न लुमताङ्गस्य (१।१।६२)

गर्गाः (गर्गस्य गोत्रापत्यानि बहूनि, गर्ग के बहुत से पौत्र

गर्ग ङस्, *समर्थानां प्रथमाद्वा* (४।१।८२) *तस्यापत्यम्* (४।१।९२) *दिभ्यो यञ्* (४।१।१०५) से बहुत अपत्यार्थ में यञ् प्रत्यय हुआ।

गर्ग ङस् यञ् *सुपो धातुप्रातिपदि०* (२।४।७१)

गर्ग य पूर्ववत् सब सूत्र लगकर 'जस्' आया

गर्ग य जस् *यञञोश्च* (२।४।६४) से बहुत्व अर्थ में वर्त्तमान जस् लुक् हो गया,

गर्ग जस् = अस्, अब यहाँ 'यञ्' प्रत्यय का लुक् हो जाने पर, लोपे० से प्रत्ययलक्षण कार्य माना गया, तो *त्यम्* (६।१।१९१) से आद्युदात्त तथा तद्धितेष्वचामादेः वृद्धि पाती है, सो यहाँ लुवाला अङ्ग (यञ् का लुक् अदर्शन हुआ था) होने से *न लुमताङ्गस्य* से उक्त का निषेध हो गया, वृद्धि एवं आद्युदात्त नहीं हुए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

गर्गा अस् प्रथमयोः पूर्व० (६।१।९८) तथा पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर,

गर्गाः बना।

मृष्टः (वे दोनों शुद्ध करते हैं)

मृजूष् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

मृज् शप् तस्, अदिप्रभृतिभ्यः शपः (२।४।७२) प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः (१।१।६०)

मृज् तस् यहाँ शप् को निमित्त मानकर प्रत्ययलोपे० (१।१।६१) मृजेर्वृद्धिः (७।२।११४) से प्रत्ययलक्षण वृद्धि प्राप्त थी, पर न लुमताङ्गस्य से प्रत्ययलक्षण का निषेध होकर वृद्धि नहीं हुई। पुनः तस् को सार्वधातु० (१।२।४) से ङित्वत् होने से तस् को मानकर भी वृद्धि नहीं होती।

मृज् तस् व्रश्चभ्रस्जसृज० (८।२।३६) से 'ज्' के स्थान में षत्व हुआ,

मृष् तस् ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से ष्टुत्व तथा रुत्व विसर्जनीय होकर,

मृष्टः बना।

श्लु का उदाहरण—जुहुतः यहाँ परि० १।१।६० के जुहोति के समान सब कार्य होकर, 'जु हु तस्' रहा। यहाँ श्लु को निमित्त मानकर 'हु' को गुण (७।३।८४) पाता है, पर लुमता अङ्ग होने से (श्लु कहकर शप् का अदर्शन हुआ था) न लुमताङ्गस्य से प्रत्ययलक्षण का निषेध हो गया सो गुण नहीं हो सका।

लुप् का उदाहरण—वरणाः की सिद्धि परि० १।१।६० में देखें। यहाँ प्रत्यय के लुप् होने पर प्रत्ययलक्षण मानकर तद्धितेष्व० (७।२।११७) से वृद्धि प्राप्त थी, पर न लुमताङ्गस्य से प्रत्ययलक्षण का निषेध होने से नहीं हुई॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० अचोऽन्त्यादि टि (१।१।६३)

अचोऽन्त्यादि टि के उदाहरण, पचेते पचेथे की सिद्धि १।१।११ में देखें यहाँ आताम् का अन्तिम अच् 'ता' का सो 'आम्' भाग की टि संज्ञा होकर उसको एत्व हुआ है, का प्रयोजन है। अग्निचित् में अन्तिम अच् 'इ' है सो 'इत् सोमसुत् में 'उ' है सो 'उत्' भाग की टि संज्ञा है। ये दोनों रूपोदाहरण मात्र हैं, टि संज्ञा का कार्य कोई नहीं है॥

—:o:—

परि० अलोऽन्त्यात् पूर्व० (१।१।६४)

भेत्ता (तोड़ने वाला)

भिदिर्	पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, *ण्वुल्तृचौ* (३।१।१३३) से प्रत्यय आया,
भिद् तृच्	पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर *पुगन्तलघूपधस्य च* (७।३।८६) लघु उपधा को गुण पाया, उपधा किसे कहते हैं *अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा* ने बताया कि अन्तिम अच् की उपधा संज्ञा हो, *ह्रस्वं लघु* (१।४।१०) से ह्रस्व संज्ञा हुई,
भेद् तृ	*खरि च* (८।४।५४) से चर्त्व हो गया।
भेत् तृ	शेष सिद्धि परि० १।१।२ के चेता के समान जानें।
भेत्ता	बना।

इसी प्रकार छिदिर् धातु से छेत्ता (छेदन करने वाला) की सिद्धि जानें॥

—:o:—

परि० तस्मादित्युत्तरस्य (१।१।६६)

आसीनः द्वीपम् आदि की सिद्धि परि० १।१।५३ में देखें॥

'ओदनं पचति' यहाँ पर *तिङ्ङतिङः* (८।१।२८) से 'पचति' के होता है। क्योंकि *तिङ्ङतिङः* सूत्र में 'अतिङः' पद में पञ्चमी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

है, सो *तस्मादित्युत्तरस्य* सूत्र के कारण 'अतिङः' पद का अर्थ "अतिङ् से उत्तर" ऐसा होगा, अतः यहाँ ओदनम् अतिङ् पद था, उससे उत्तर तिङ् (पचति) को निघात होकर *ओदनं पचति* (चावल पकाता है) बना ॥

—:०:—

प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः

परि० गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् (१।२।१)

सूत्र प्रयोजन—'अध्यगीष्ट' यहाँ पर प्रकृत सूत्र से गाङ् से उत्तर सिच् को ङित्वत् होने से गाङ् को *घुमास्थागापा०* (६।४।६६) से ङित् परे मानकर ईकारादेश हो जाता है, यही ङित्वत् करने का प्रयोजन है ॥

अध्यगीष्ट (उसने अध्ययन किया)

इङ् *भूवादयो०* (१।३।१) *धातोः* (३।१।९१) लुङ् (३।२।११०)
अधि इ लुङ् *विभाषा लुङ्लृङोः* (२।४।५०) से इङ् को गाङ् आदेश होकर,
अधि गाङ् ल् *च्लि लुङि* (३।१।४३) *च्लेः सिच्* (३।१।४४)
अधि गा सिच् ल् , *गाङ् कुटादिभ्यो०* से गाङ् से उत्तर सिच् ङित् माना गया, तो *घुमास्थागापाजहातिसां हलि* (६।४।६६) से हलादि एवं ङित् सिच् के परे रहते 'गा' को ईत्व प्राप्त हुआ, *अलोऽन्त्यस्य* (१।१।५१) से अन्त्य अल् के स्थान में होकर,
अधि गी स् ल् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर 'ल्' के स्थान में *अनुदात्तङित०* (१।३।१२) से आत्मनेपद का 'त' आया, *यस्मात् प्रत्यय०* (१।४।१३) *अङ्गस्य* (६।४।१) *लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः* (६।४।७१) से अट् आगम प्राप्त हुआ, *आद्यन्तौ०* (१।१।४५)
अधि अट् गी स् त , इको *यणचि* (६।१।७४) *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९)
अध्यगीषत् ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से ष्टुत्व होकर,
अध्यगीष्ट बना ॥

इसी प्रकार 'आताम्' में *अध्यगीषाताम्* तथा 'झ' में *आत्मनेपदेष्वनतः* (७।१।५) से झ को 'अत्' आदेश होकर अध्यगीष् अत् अ,=अध्यगीषत बनेगा ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कुटिता (कुटिलता करने वाला) कुटितुम् कुटितव्यम्, (अच्छी तरह मिलने वाला) उत्पुटितुम् उत्पुटितव्यम् की सिद्धि १।१।४८ के समान ही हैं। यहाँ कुटादियों से उत्तर तृच् आदि को ङित् करने का यही प्रयोजन है, कि पुगन्तलघूप० (७।३।८६) गुण का *क्ङिति च* (१।१।५) से निषेध हो जावे॥

—:०:—

परि० सार्वधातुकमपित् (१।२।४)

कुरुतः (वे दोनों करते हैं)

डुकृञ्	पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
कृ शप् तस्	*तनादिकृञ्भ्य उः* (३।१।७९) से शप् के स्थान में होकर,
कृ उ तस्	पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर, *सार्वधातुकार्ध०* (अङ्ग) 'कृ' अङ्ग को गुण हुआ, *उरण्रपरः* (१।१।५०)
कर् उ तस्	अब पुनः तस् सार्वधातुक को मानकर सार्वधातुक से 'उ' को गुण प्राप्त हुआ, उसका सार्वधातुक 'तस्' के ङित्वत् होने से *क्ङिति च* (१।१ निषेध हो गया, तथा तस् के ङित् होने से, ङित् धातुक के परे रहते *अत उत् सार्वधातुके* (६।४।१ 'क' के 'अ' को 'उ' हो गया।
कुरुतस्	पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर,
कुरुतः	बना॥

इसी प्रकार पूर्ववत् "कृ उ झि" = कर् उ अन्ति = कुर अन्ति यण्अचि (६।१।७४) से यणादेश होकर *कुर्वन्ति* बन गया। ङित् करने का प्रयोजन पूर्ववत् है॥ *चिनुतः चिन्वन्ति* की सिद्धि परि० में देखें॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पाद]

परि० असंयोगाल्लिट् कित् (१।२।५)

बिभिदतुः (उन दोनों ने तोड़ा)

भिदिर् विदारणे भ्वादयो० धातोः (३।१।९१) परोक्षे लिट् (३।२।११५)

भिदिर् लिट् = भिद् ल्, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

भिद् तस् परस्मैपदानां णलतुसुस्थ० (३।४।८२)

भिद् अतुस् पुगन्तलघूपधस्य च (७।३।८६) से अतुस् को मानकर गुण प्राप्त हुआ, पर प्रकृत सूत्र से अतुस् के कित्वत् होने से क्ङिति च (१।१।५) से गुण निषेध हो गया,

भिद् अतुस् लिटि धातोरन० (६।१।८) एकाचो द्वे प्रथमस्य (६।१।१)

भिद् भिद् अतुस्, पूर्वोऽभ्यासः (६।१।४) हलादिः शेषः (७।४।६०)

भि भिद् अतुस् अभ्यासे चर्च (८।४।५३) तथा पूर्ववत् विसर्जनीय होकर,

बिभिदतुः बना ॥

इसी प्रकार छिदिर् धातु से पूर्ववत् चिच्छिदतुः (उन दोनों ने काटा) बनेगा। यहाँ केवल 'चि छिद् अतुस्' इस अवस्था में छे च (६।१।७१) से छकार परे रहते तुक् आगम होकर, 'चि तुक् छिद् अतुस् = चित् छिद् अतुस्' रहा, स्तोः श्चुना श्चुः (८।४।३९) से श्चुत्व होकर, चिच्छिदतुः बनता है। बहुवचन में झि को ३।४।८२ से 'उस्' होकर बिभिदुः चिच्छिदुः पूर्ववत् बनेगा ॥

ईजतुः (उन दोनों ने यज्ञ किया)

यज

पूर्ववत् लिट् लकार में सब सूत्र लगकर,

यज् अतुस् अब असंयोगाल्लिट् कित् से अतुस् के कित् होने से कित् परे रहते वचिस्वपियजा० (६।१।१५) से 'यज्' को सम्प्रसारण हो गया। इग्यणः सम्प्रसारणम् (१।१।४४)

इ अ ज् अतुस्, सम्प्रसारणाच्च (६।१।१०४) तथा पूर्ववत् द्वित्व होकर,

इ इ ज् अतुस् = इ इज् अतुस्, अकः सवर्णे दीर्घः (६।१।९७)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ईजतुस् पूर्ववत् विसर्जनीय होकर,
ईजतुः बना ॥

इसी प्रकार 'झि' में ईजुः की सिद्धि भी जानें ॥

—:o:—

परि० इन्धिभवतिभ्यां च (१।२।६)

ईधे (वह प्रकाशित हुआ)

णिइन्धी दीप्तौ, लिट् लकार में पूर्ववत् सब सूत्र लगकर अनुवर्त
(१।३।१२) से आत्मनेपद होकर, 'त' आया,
इन्ध् त *लिटस्तझयोरेशिरेच्* (३।४।८१) अनेकाल्शित्सः (१
इन्ध् एश् = ए, अब *इन्धिभवतिभ्यां च* से 'एश्' के कित्वत् हो
अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति (६।४।२४) से न
लोप हो गया,
इध् ए पूर्ववत् द्वित्व तथा अभ्यास कार्य होकर,
इ इध् ए *अकः सवर्णे दीर्घः* (६।१।९७)
ईधे बना ॥

इसी प्रकार सम् ईधे = *समीधे* भी जानें ॥

———

बभूव (वह था)

भू पूर्ववत् लिट् लकार में सब सूत्र लगकर
भू णल् = अ, यहाँ णल् को मानकर *अचो ञ्णिति* (७।२।११५) से
अङ्ग को वृद्धि प्राप्त हुई, पर *इन्धिभवतिभ्यां च* से
कित्वत् होने से *क्ङिति च* (१।१।५) से निषेध हो
भू अ *भुवो वुग्लुङ्लिटोः* (६।४।८८) *आद्यन्तौ टकितौ* (१
भू वुक् अ पूर्ववत् द्वित्व होकर,
भू भूव् अ *ह्रस्वः* (७।४।५९) *अभ्यासे चर्च* (८।४।५३)
बुभूव *भवतेरः* (७।४।७३) से भू धातु के अभ्यास को
बभूव बन गया ॥

—:o:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० मृडमृदगुध० (१।२।७)

मृडित्वा (आनन्द देकर)

मृड् सुखने भूवादयो० धातोः (३।१।९१) समानकर्तृकः० (३।४।२१)
मृड् क्त्वा = त्वा, आर्धधातुकं० (३।४।११४) आर्धधातुकस्येड्० (७।२।३५)
मृड् इट् त्वा, न क्त्वा सेट् (१।२।१८) से सेट् क्त्वा कित्वत् नहीं माना गया; तब पुगन्तलघूपध० (७।३।८६) से मृड् अङ्ग को गुण प्राप्त हुआ, पर मृडमृद० सूत्र से पुनः क्त्वा को कित्वत् विधान करने से *क्ङिति च* से गुण का निषेध हो गया, यही कित् करने का प्रयोजन है। पूर्ववत् सु आकर, क्त्वातोसुन्कसुनः (१।१।३९) से अव्यय संज्ञा होकर
मृडित्वा सु अव्ययादाप्सुपः (२।४।८२) से लुक् हो गया।
मृडित्वा बना ॥

इसी प्रकार मृद धातु से *मृदित्वा* (पीस करके) गुध से *गुधित्वा* (लिप्त होकर) कुष से *कुषित्वा* (खींच करके) क्लिशू से *क्लिशित्वा* (क्लेश करके) की सिद्धियाँ भी जानें ॥ क्लिशित्वा में इट् आगम *क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः* (७।२।५०) से होगा। शेष में पूर्ववत् है। गुध, कुष क्लिश से उत्तर क्त्वा को *रलो व्युपधाद्०* (१।२।२६) से विकल्प से कित्वत् प्राप्त था, इस सूत्र से नित्य ही कित्वत् होने से पूर्ववत् गुण निषेध हो गया॥

———

उदित्वा (बोलकर)

वद पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
वद् इट् त्वा पूर्ववत् ही प्रकृत सूत्र से कित्वत् होने से *वचिस्वपियजादीनां किति* (६।१।१५) से सम्प्रसारण हुआ,
उ अ द् इ त्वा *सम्प्रसारणाच्च* (६।१।१०४)
उदित्वा सु पूर्ववत् ही सु का लुक् होकर
उदित्वा बना ॥

वस् धातु को भी 'क्त्वा' के कित् होने से पूर्ववत् सम्प्रसारण होकर 'उस् इ त्वा' रहा। *शासिवसिघसीनां च* (८।३।६०) से 'स्' को 'ष्' होकर उषित्वा (रह करके) बन गया ॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० रुदविदमुषग्रहि० (१।२।८)

क्त्वा प्रत्ययान्त *रुदित्वा* (रोकर) *विदित्वा* (जान करके) मुदित्वा करके) की सिद्धि पूर्ववत् ही जानें। ७।३।८६ से प्राप्त गुण का करना ही कित् करने का प्रयोजन है।

ग्रह से उत्तर क्त्वा को कित् करने से *ग्रहिज्यावयिव्यधि०* (६ से सम्प्रसारण होकर 'गृह इट्त्वा' रहा। *ग्रहोऽलिटि दीर्घः* (६ से 'इट्' को दीर्घ होकर *गृहीत्वा* (ग्रहण करके) बन गया॥

स्वप् तथा प्रच्छ से उत्तर भी क्त्वा के कित् होने से *वचिस्वपि* (६।१।१५) से सम्प्रसारण होकर *सुप्त्वा* (सो करके) पृष्ट्वा (पूछ बनता है। *एकाच उपदेश०* (७।२।१०) से यहाँ इट् निषेध हो जा पृष्ट्वा यहाँ इतना विशेष है, कि सम्प्रसारणादि सब कार्य होक्ष त्वा' इस अवस्था में *व्रश्चभ्रस्जसृजमृ०* (८।२।३६) से 'छ्' को 'ष् 'पृष्त्वा' बना। *ष्टुना ष्टुः* (८।४।४०) से 'त्' को 'ट्' होकर पृष्ट गया॥

रुरुदिषति (वह रोना चाहता है)

रुदिर् — *भूवादयो०* (१।३।१) *धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छा* (३।१।७) *प्रत्ययः, परश्च*, से इच्छा अर्थ में 'सन्' प्रत्यय

रुद् सन् — *आर्धधातुकं शेषः* (३।४।११४) *आर्धधातुकस्ये०* (७ *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५) पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा

रुद् इट् स — *पुगन्तलघूपधस्य च* (७।३।८६) से गुण प्राप्त हुआ, प *विदमुष०* से सन् को कित्वत् होने से *क्ङिति च* (१ से निषेध हो गया। *सन्यङोः* (६।१।६) एकाचो द्वे (६।१।१) से सन्नन्त शब्द का जो प्रथम एकाच् 'रुद्' उसे द्वित्व हुआ।

रुद् रुद् इ स — *पूर्वोऽभ्यासः* (६।१।४) *हलादिः शेषः* (७।४।६०)

रुरुदिस — *सनाद्यन्ता धातवः* (३।१।३२) से 'रुरुदिस' पूरे समुदा पुनः धातु संज्ञा होकर, पूर्ववत् शप्, तिप् हुये।

रुरुदिस शप् तिप् — *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९) से षत्व होकर,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

रुरुदिष अ ति अतो गुणे (६।१।९४) से पररूप होकर,
रुरुदिषति बना ॥

इसी प्रकार *विविदिषति* (जानने की इच्छा करता है) *मुमुषिषति* (चोरी करना चाहता है) की सिद्धि भी जानें। कित् होने से गुण निषेध हो जावे यही प्रयोजन है ॥

जिघृक्षति (ग्रहण करना चाहता है)

ह पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
ह् सन् यहाँ *आर्धधातुकस्ये०* (७।२।३५) से इट् आगम प्राप्त हुआ उसका *सनि ग्रहगुहोश्च* (७।२।१२) से सन् परे रहते निषेध होकर,
ह् सन् अब *रुदविदमुषग्रहि०* से सन् के कित्वत् होने से *ग्रहिज्यावयिव्यधि०* (६।१।१६) से सम्प्रसारण हो गया।
ऋ अ ह् स, *सम्प्रसारणाच्च* से पूर्वरूप तथा पूर्ववत् द्वित्व होकर,
ह् गृह् स, *उरत्* (७।४।६६). *उरण्रपरः* (१।१।५०)
र् ह् गृह् स, *कुहोश्चुः* (७।४।६२) *हलादिः शेषः* (७।४।६०)
गृह् स *सन्यतः* (७।४।७९) से अभ्यास को इत्व होकर
जिगृह् स *हो ढः* (८।२।३१) से ह् को 'ढ्' हो गया,
जिगृढ् स *एकाचो बशो भष् झषन्तस्य०* (८।२।३७)
जिघृढ् स *षढोः कः सि* (८।२।४१) से ढ् को 'क्' होकर,
जिघृक् स *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९)
जिघृक्ष *सनाद्यन्ता धातवः*, पूर्ववत् शप् तिप् आकर,
जिघृक्षति बन गया।

स्वप् धातु से इसी प्रकार *सुषुप्सति* तथा प्रछ् से *पिपृच्छिषति* बनेगा। कित् करने से ६।१।१५,१६ से सम्प्रसारण हो जाये यही प्रयोजन है ॥ पिपृच्छिषति में इट् आगम *किरश्च पञ्चभ्यः* (७।२।७५) से होता है, तथा च (६।१।७१) से तुक् आगम होकर पि पृ तुक् छ् इट् स अ ति = *स्तोः श्चुना श्चुः* (८।४।३९) से श्चुत्व होकर पिपृच्छिषति बनता है ॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० इको झल् (१।२।९)

चिचीषति (चुनना चाहता है)

चिञ् पूर्ववत् सन् प्रत्यय आकर,

चि सन् *एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्* (७।२।१०) से इट् आ हुआ, अब *सार्वधातुकार्ध०* (७।३।८४) से सन् के चि अङ्ग को गुण प्राप्त हुआ, तो इको झल् से सन् के कित्वत् होने से *क्ङिति च* (१।१।५) से हो गया।

चि स *अज्झनगमां सनि* (६।४।१६) से चि के इ को दीर्घ

ची स पूर्ववत् द्वित्व होकर, *पूर्वोऽभ्यासः* (६।१।४) ह्रस्व

चि ची स पूर्ववत् धातु संज्ञा होकर शप्, तिप् आकर

चिचीस शप् तिप् = चिचीषति, बना ॥

पक्ष में *विभाषा चेः* (७।३।५८) से कुत्व होकर *चिकीषति* भी बनता

तुष्टूषति (स्तुति करना चाहता है)

ष्टुञ् पूर्ववत् सब होकर, तथा *धात्वादेः षः सः* (६।१।६४)

स्तु स पूर्ववत् ही कित् होने से गुण निषेध एवं दीर्घ तथा द्वित्व सब हो गया।

स्तू स्तू स अब यहाँ *हलादिः शेषः* का अपवाद सूत्र *शरः* (७।४।६१) लगकर शर् प्रत्याहार का (स् का) और खय् शेष रह गया,

तु स्तू स *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९) से सन् के 'स' को षत्व

तुस्तूष पूर्ववत् शप् तिप् सब होकर, *स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्* से षत्व होकर

तुष्टूष शप् तिप् = तुष्टूष अति, *ष्टुना ष्टुः* (८।४।४०) से ष्टुत्व होकर

तुष्टूषति बना ॥

परि० १।१।५७ में *चिकीर्षकः, जिहीर्षकः* की सिद्धि की है, उसी प्रकार 'चिकीर्ष' 'जिहीर्ष' इतने तक सिद्धि करके आगे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

जिहीर्ष की सनाद्यन्ता० (३।१।३२) से नई धातु संज्ञा करके शप्, तिप् लकर चिकीर्षति (करना चाहता है) जिहीर्षति (हरण करना चाहता है) बन जावेगा ॥

—:०:—

परि० हलन्ताच्च (१।२।१०)

बिभित्सति (तोड़ना चाहता है)

भिदिर् भिद् सन् पूर्ववत् सन् आकर, एवं एकाच उप० (७।२।१०) से इट् निषेध होकर पुगन्तलघू० (७।३।८६) से भिद् अङ्ग को गुण प्राप्त हुआ पर भि के 'इ' के समीप यहाँ द् हल् है, उससे उत्तर झलादि सन् (जिसको इट् आगम न हो) है, सो हलन्ताच्च से कित्वत् होकर क्ङिति च से निषेध हो गया। पूर्ववत् द्वित्व होकर,

भिद् भिद् सन् = भि भिद् स, अभ्यासे चर्च (८।४।५३) से भ् को ब् तथा खरि च (८।४।५४) से द् को त् एवं पूर्ववत् शप् तिप् होकर बिभित् स शप् तिप् = बिभित्सति, बन गया ॥

इसी प्रकार बुभुत्सते (जानने की इच्छा करता है) यहाँ बुध अवगमने (भ्वा० आ०) धातु से पूर्ववत् ही सन् के परे रहते इट् निषेध, एवं हलन्ताच्च से कित्वत् होकर गुण निषेध, तथा द्वित्वादि होकर, बुध् बुध् स = बुबुध् स रहा। एकाचो बशो भष्० (८।२।३७) से 'ब्' को 'भ्' तथा खरि च (८।४।५४) से ध् को त् होकर 'बुभुत्स' रहा। पूर्ववत् शप् तथा आत्मनेपद का 'त' आकर, बुभुत्स शप् त रहा, टित आत्मनेप० (३।४।७९) से बुभुत्सते बन गया ॥

—:०:—

परि० लिङ्सिचावा० (१।२।११)

भित्सीष्ट (वह फोड़े)

भिदिर् भिद् लिङ् भूवादयो० धातोः (३।१।९१) आशिषि लिङ्लोटौ (३।३।१७३) लिङः सीयुट् (३।४।१०२) आर्धधातुकौ टकितौ (१।२।४५)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भिद् सीयुट् ल् पूर्ववत् स्वरितञितः० (१।३।७२) आदि सब सूत्र से आत्मनेपद का 'त' आया,
भिद् सीय् त, सुट् तिथोः (३।४।१०७) आद्यन्तौ टकितौ
भिद् सीय् सुट् त, लिङाशिषि (३।४।११६) से लिङ् की आर्धधातुक होकर, आर्धधातुक परे रहते पुगन्तलघू० (अङ्ग
भिद् अङ्ग को गुण प्राप्त हुआ, पर लिङ्सिचावात्म को कित्वत् होकर, क्ङिति च (१।१।५) से निषेध
भिद् सीय् स् त लोपो व्योर्वलि (६।१।६४) आदेशप्रत्यययोः (
भिद् सी ष् त, खरि च (८।४।५४) ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से
भित्सीष्ट बना ॥

इसी प्रकार बुध धातु से 'बुध् सी ष् ट' = बुध् सीष्ट = मष० (८।२।३७) से 'ब्' को 'भ्' होकर भुत्सीष्ट (वह जाने)

———

अभित्त (उसने फोड़ा)

भिदिर् पूर्ववत् लुङ् लकार में परि० १।२।१ के अध्यगीष्ट के सब होकर,
अ भिद् सिच् त, पूर्ववत् गुण प्राप्त होकर प्रकृत सूत्र से क्ङित् से निषेध हो गया। झलो झलि (८।२।२६) से लोप होकर,
अ भिद् त खरि च (८।४।५४) से 'द्' को 'त्' होकर
अभित् त = अभित्त, बन गया ॥

इसी प्रकार बुध धातु से अबुद्ध (उसने जाना) की सिद्धि
अ बुध् सिच् त = अबुध् त, यहाँ झषस्तथोर्धोऽधः (८।२।४०)
को 'ध' होकर, अबुध् ध रहा। झलां जश् झशि (८।४।५२) से
होकर अबुद्ध बन गया ॥

—:०:—

परि० वा गमः (१।२।१३)

संगसीष्ट (अच्छी प्रकार सङ्गत होवे)

गम्लृ पूर्ववत् आशीर्लिङ् में भित्सीष्ट के समान सब होकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

सम् गम् सीयुट् लिङ्, *समो गम्यृच्छिभ्याम्* (१।३।२९) से आत्मनेपद तथा पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

सम् गम् सीय् सुट् त, पूर्ववत् कित् होने से *अनुदात्तोपदेश वन०* (६।४।३७) से गम् के अनुनासिक का लोप होकर,

सम् ग सीष्ट *नश्चापदान्तस्य झलि* (८।३।२४) से

संगसीष्ट बना ॥

जिस पक्ष में कित्वत् नहीं हुआ, तब अनुनासिक का लोप भी नहीं हुआ, सो मकार को ८।३।२४ से अनुस्वार होकर '*संगंसीष्ट*' बन गया ॥

इसी प्रकार लुङ् लकार में भी "सम् अट् गम् सिच् त" पूर्ववत् होकर, कित् होने से अनुनासिक लोप, तथा *हस्वादङ्गात्* (८।२।२७) से सिच् लोप होकर *समगत* (वह अच्छी प्रकार मिला) बन गया। जब पक्ष में कित् नहीं होता, तो अनुनासिक लोप तथा (ह्रस्वान्त अङ्ग से उत्तर सिच् के न होने से) सिच् लोप भी न होकर *समगंस्त* बनता है ॥

—:o:—

परि० स्थाघ्वोरिच्च (१।२।१७)

उपास्थित (वह उपस्थित हुआ)

उप गतिनिवृत्तौ, *भूवादयो धातवः* (१।३।१) *धात्वादेः षः सः* (६।१।६२) पूर्ववत् लुङ् लकार में सब सूत्र लगकर,

उप स्था सिच् लुङ्, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर तथा *अकर्मकाच्च*(१।३।२६) से आत्मनेपद का 'त' आकर,

उप अ स्था स् त अब *स्थाघ्वोरिच्च* से स्था को इकारादेश प्राप्त हुआ, जो कि *अलोन्त्यस्य* (१।१।५१) से अन्तिम अल् 'आ' को

उप अ स्थि स् त हुआ, तथा सिच् को कित्वत् होने से, *सार्वधातुकार्ध०* (७।३।८४) से 'स्थि' के 'इ' को प्राप्त गुण का *क्ङिति च* (१।१।५) से निषेध हो गया। *हस्वादङ्गात्* (८।२।२७) *अकः सवर्णे दीर्घः* (६।१।९७) लगकर

उपास्थित बना ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इसी प्रकार आताम् में उपास्थिषाताम् तथा 'झ' में उपास्थि[illegible] सिद्धि जानें ॥

———

अदित (उसने दिया)

डुदाञ् लुङ् लकार में पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
दा सिच् लुङ्, स्वरितञितः कर्त्र० (१।३।७२) से आत्मनेपद होकर,
अ दा स् त दाधाघ्वदाप् (१।१।१९) से 'दा' की घु संज्ञा होकर [illegible] स्थाघ्वोरिच्च से इकारादेश तथा कित्वत् हो गया।
अ दि स् त कित् होने से पूववत् गुण निषेध हो गया। [illegible] (८।२।२७) से सिच् लोप होकर,
अदित बन गया।

इसी प्रकार डुधाञ् धातु से अधित (उसने धारण किया) सिद्धि जानें ॥

—:०:—

परि० ऊकालोऽज्झस्व० (१।२।२७)

दधिच्छत्रम्

दधिच्छत्रम् यहाँ दधि की 'इ' एकमात्रिक = उकाल वाली है। प्रकृत सूत्र से ह्रस्व संज्ञा होने से 'छत्रम्' परे रहते छे च (६।१।७[illegible]) ह्रस्व को तुक् का आगम होकर 'दधि तुक् छत्रम्' रहा। स्तोः श्चुना[illegible] (८।४।३९) से श्चुत्व होकर तुक् के 'त्' को 'च्' हो गया तब दधि[illegible] बन गया। मधुच्छत्रम् में भी इसी प्रकार मधु के 'उ' की ह्रस्व [illegible] होने से तुक् आगम हो गया है ॥

———

कुमारी

कुमारी पूर्ववत् सब सूत्र लगकर सु आया,
कुमारी सु यहाँ प्रकृत सूत्र से कुमारी के 'ई' की दीर्घ संज्ञा [illegible]

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्० (६।१।६६) से दीर्घ से उत्तर सु का लोप हो गया है।

कुमारी बना ॥

इसी प्रकार गौरी में भी जानें ॥

———

देवदत्त३अत्र न्वसि (हे देवदत्त ! क्या तुम यहाँ हो)

देवदत्त३अत्र न्वसि यहाँ देवदत्त ३ में *अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः* (८।२।१०५) से प्लुत होने लगा तो प्रकृत सूत्र ने बताया कि त्रिमात्रिक ही प्लुत संज्ञा होती है। तत्पश्चात् देवदत्त३ के आगे जो *सम्बोधने च* (२।३।४७) से 'सु' आया, उसे *ससजुषो रुः* (८।२।६६) से रु हो गया, पुनः 'रु' को *भोभगोअघोअपू०* (८।३।१७) से 'य्' होकर उस य् का *लोपः शाकल्यस्य* (८।३।१९) से लोप हो गया, तो देवदत्त ३ अत्र न्वसि बन गया ॥

—:०:—

परि० उच्चैरुदात्तः (१।२।२९)

औपगवः की सिद्धि परि० १।१।२० में देखें ॥

ये (जो सब)

यद् अर्थवदधातु० (१।२।४५) *फिषोऽन्तोदात्तः* (फिट् १) फिष् अर्थात् प्रातिपदिक अन्तोदात्त होता है, उच्चैरुदात्तः ने कहा कि ऊर्ध्वभाग निष्पन्न अच् की उदात्त संज्ञा हो। यद् में अन्तिम अच् 'य' का 'अ' है, सो उसी को उदात्त हो गया। पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, 'जस्' विभक्ति आई,

यद् जस् = अस्, *अनुदात्तौ सुप्पितौ* (३।१।४) से जस् अनुदात्त हुआ,
नीचैरनुदात्तः (१।२।३०) ने अनुदात्त संज्ञा बताई
यद् जस् *त्यदादीनामः* (७।२।१०२) *अलोऽन्त्यस्य* (१।१।५१)
य अ जस् *अतो गुणे* (६।१।९४) से पररूप होकर,
य जस् *जसः शी* (७।१।१७) *अनेकाल्शित् सर्वस्य* (१।१।५४)
य शी *स्थानिवदादेशो०* (१।१।५५) से स्थानिवत् होकर 'शी' जस्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

के समान माना गया, तब जस् का जो अनुदात्त
वही स्वर, शी का भी हो गया। अनुबन्ध लोप होकर

य ई आद् गुणः (६।१।८४) से गुण एकादेश हो गया।

ये एकादेश उदात्तेनोदात्तः (८।२।५) से उदात्त 'य' के
साथ जो अनुदात्त 'ई' का एकादेश हुआ है, वह
ही हुआ, उच्चैरुदात्तः से उदात्त संज्ञा हुई

ये बन गया ॥

इसी प्रकार तद् शब्द से 'ते' (वह सब) किम् शब्द से 'ते'
सब) की सिद्धि जानें ॥

—:०:—

परि० नीचैरनुदात्तः (१।२।३०)

नम॑स्ते॒ दे॒व॒द॒त्त॒

"नमस् तुभ्यम्" यहाँ तुभ्यं के स्थान में तेमयावेकवचनस्य
२२) से 'ते' आदेश हुआ, जो कि अनुदात्तं सर्वमपादादौ (८।१।
अनुदात्त हो गया। आगे देवदत्त यह भी सम्बोधनवाची पद है
इसकी सामन्त्रितम् (२।३।४८) से आमन्त्रित संज्ञा होकर आमन्त्रि
(८।१।१९) से 'देवदत्त' पद को सर्वानुदात्त होने लगा, तो नीचैरनु
ने नीचे भागों से बोले जाने वाले अच् की अनुदात्त संज्ञा की, तब
देवद॒त्त॒ बन गया ॥

———

त्व॒ स॒म॒ सि॒म॒

त्व॒ स॒म॒ सि॒म॒ यह निपात त्वसमसिमेत्यनुच्चानि (फिट् ७८) इस
सूत्र से अनुदात्त हैं ॥

—:०:—

परि० समाहारः स्वरितः (१।२।३१)

क्व॑ (कहाँ)

किम् ङि पूर्ववत् किम् शब्द से ङि आकर,
किमोऽत् (५।३।१२) प्रत्ययः, परश्च

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

किम् ङि अत्, अनुबन्ध लोप एवं सुपो धातु० (२।४।७१) लगकर,
किम् अ *तित्स्वरितम्* (६।१।१७९) से 'अ' प्रत्यय स्वरित होने लगा,
तो *समाहारः स्वरितः* ने बताया कि स्वरित क्या है।
किम् अ *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) पूर्ववत् 'सु' आकर,
क्वाति (७।२।१०५) से किम् को क्व आदेश हुआ।
स्व अ यहाँ *फिषोन्तोदात्तः* (फिट् १) से किम् का 'इ' उदात्त था
अतः किम् को हुआ 'क्व' आदेश भी स्थानिवत् से उदात्त
ही होगा।
स्व अ *यस्येति च* (६।४।१४८) से क्व के अ का लोप हुआ।
स्व् अ सु *तद्धितश्चा०* (१।१।३७) *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२) इस प्रकार
स्व 'क्व' में अत् का अ मिलकर 'क्व' स्वरित हुआ।

———

शिक्यम् (छिक्का) कन्या

शिक्यम् तथा कन्या शब्द *तित्स्वशिक्यकाश्मर्यधान्यकन्याराजन्य-मनुष्याणामन्तः* (फिट् ७६) इस फिट् सूत्र से अन्त स्वरित हैं, शेष को अनुदात्तं पद० (६।१।१५२) से अनुदात्त हो ही जायगा।

———

सामसु साधुः *सामन्यः* (सामवेद में जो कुशल) यहाँ 'सामन् सुप्' इस अवस्था में *तत्र साधुः* (४।४।९८) से यत् प्रत्यय होकर सामन् सुप् यत् = 'सामन् य' रहा। *तित्स्वरितम्* (६।१।१७९) से 'य' को स्वरित, तथा अनुदात्तं पद० (६।१।१५२) से शेष को निघात होकर सामन्यः बन गया॥

—:०:—

परि० विभाषा छन्दसि (१।२।३६)

(१) अग्निम् (अग्नि = ईश्वर को)

अगि गतौ *भूवादयो०* (१।३।१) *उपदेशे०* (१।३।२) *तस्य लोपः* (१।३।९)
क्नु *इदितो नुम्धातोः* (७।१।५८) *मिदचोऽन्त्यात् परः* (१।१।४६)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अनुम् ग् = अन्ग्, धातोः (६।१।१५६) से धातु को अन्त उदात्त 'अ' को उदात्त हुआ।

अन्ग् धातोः (३।१।९१) अङ्गेर्नलोपश्च (उणा० ४।५०) प्रत्यय तथा नुम् के 'न' का लोप होकर,

अग् नि आद्युदात्तश्च (३।१।३) से प्रत्यय उदात्त हुआ यहाँ 'अग्नि' में 'अ' तथा 'नि' दोनों उदात्त थे, तब सतिशिष्टस्वरो बलीयान् (महाभाष्य ६।१ इस भाष्य वचन से पीछे आने वाला 'नि' का गया 'अ' का स्वर हट गया, पुनः अनुदात्तं (६।१।१५२) से अनुदात्त हो गया,

अग्नि कृत्तद्धित० (१।२।४६) कर्मणि द्वितीया (२।३।२) सूत्र लगकर 'अम्' आया।

अग्नि अम् अनुदात्तौ सुप्पितौ (३।१।४) से 'सुप' होने से अनुदात्त हुआ।

अग्नि अम् अमि पूर्वः (६।१।१०३)

अग्निम् एकादेश उदात्तेनोदात्तः (८।२।५) से उदात्त 'इ' के अनुदात्त 'अम्' का एकादेश उदात्त ही हुआ।

अग्निम् बना।

ईडे (स्तुति करता हूँ)

ईड् धातु से उत्तमपुरुष के एकवचन, 'इट्' में ईडे की सिद्धि परि० १।१।२ के समान जानें। शेष स्वर सिद्धि निम्न प्रकार है-

ईड् को प्रथम धातोः (६।१।१५६) से धातु स्वर अन्तोदात्त हुआ, 'इट्' आने पर आद्युदात्तश्च (३।१।३) से प्रत्यय स्वर उदात्त हुआ। सतिशिष्टस्वरो बलीयान् (म० भा० ६।१।१५६) से पीछे वाला प्रत्यय स्वर रहा। परन्तु अग्निम् ईडे इस अवस्था में तिङन्त (८।१।२८) से अतिङ् अग्नि से उत्तर तिङन्त ईडे को सर्वनिघात नुदात्त हो गया। पीछे उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः (८।४।६५) से से उत्तर 'ईडे' के 'ई' को स्वरित हो गया, अनुदात्तं पदमेक० से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

'र्' को अनुदात्त होकर, *स्वरितात् संहि०* (१।२।३९) से उस अनुदात्त को एकश्रुति हो गयी ॥

पुरोहितम् (पुर एनंदधातीति, पुरोहित को)

पूर्वस्मिन् देशे ऐसा विग्रह मानकर,

पूर्व ङि — पूववत् रहा *पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्* (५।३।३९) से पूर्व को 'पुर्' आदेश तथा असि प्रत्यय हुआ,

पुर् ङि असि, *सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१) तथा पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति होकर,

पुर् अस् सु पुरस् — *तद्धितश्चासर्वविभक्तिः* (१।१।३७) *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२) यहाँ *आद्युदात्तश्च* (३।१।३) से प्रत्यय आद्युदात्त अर्थात् 'पुरस्' के 'र' का 'अ' उदात्त है।

जब पुरो दधाति ऐसा विग्रह करके डुधाञ् धातु से क्त प्रत्यय हुआ तब—

पुरस् धा क्त — *कृत्यल्युटो०* (३।३।११३) से क्त प्रत्यय यहाँ बाहुलक से हुआ है। *दधातेर्हिः* (७।४।४२)

पुरस् हित — अब प्रत्यय स्वर से 'क्त' भी यहाँ उदात्त हुआ। *पुरोऽव्ययम्* (१।४।६६) से पुरस् की गति संज्ञा होकर *कुगतिप्रादयः* (२।२।१८) से 'पुरस् हित' का समास हो गया।

पुरस्हित — अब यहाँ *समासस्य* (६।१।२१७) से अन्तोदात्त की प्राप्ति में *गतिरनन्तरः* (६।२।४९) से पूर्वपद 'पुरस्' को प्रकृति-स्वर अर्थात् 'र' के 'अ' को जैसा उदात्त था, वैसा ही रहा। *अनुदात्तं पदमेक०*(६।१।१५२)से शेष निघात हो गया।

पुरस्हित — *ससजुषो रुः* (८।२।६६) *हशि च* (६।१।११०)

पुर ः हित — *आद् गुणः* (६।१।८४) से गुण होकर,

पुरोहित — *उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः* (८।४।६५)

पुरोहित — पूर्ववत् 'अम्' विभक्ति आकर

पुरोहित अम्, *अनुदात्तौ सुप्पितौ, अमि पूर्वः* (६।१।१०३)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पुरोहितम् स्वरितात् संहिताया० (१।२।३९)

पुरोहितम् बना।

यज्ञस्य (यज्ञ का)

यज भूवादयो० (१।३।१) धातोः (३।१।९१) धातोः (
यज् यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् (३।३।९०) प्रत्यय,
यज् नङ् आद्युदात्तश्च सतिशिष्टस्वरो बलीयान् से प्रत्यय
उदात्त हुआ, धातु स्वर हट गया।
अनुदात्तं पदमेक० (६।१।१५२)
यज् न स्तोः श्चुना श्चुः (८।४।३९) से श्चुत्व हो गया,
यज्ञ पूर्ववत् 'ङस्' विभक्ति आकर टाङसिङसामिः (
से 'ङस्' को स्य आदेश हुआ।
यज्ञस्य अनुदात्तौ सुप्पितौ (३।१।४)
यज्ञस्य उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः से 'य' के 'अ' को स्वरित
यज्ञस्यं बना॥

देवम् (देव को)

दिवु पूर्ववत् सब सूत्र लगकर धातु स्वर हुआ,
दिव् नन्दिग्रहिपचादिभ्यो० (३।१।१३४) से अच् प्रत्यय होने
दिव् अच् चितः (६।१।१५७) अनुदात्तं पदमेक० (६।१।१५२)
दिव् अ पुगन्तलघूप० (७।३।८६) से पूर्ववत् गुण हुआ।
देव कृत्तद्धित० (१।२।४६) पूर्ववत् 'अम्' विभक्ति आकर
देव अम् दात्तौ सुप्पितौ, लगा।
देव अम् अमि पूर्वः (६।१।१०३) एकादेश उदात्तेनोदात्तः (
देवम् ऐसा स्वर रहा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ऋत्विजम् (ऋतौ यजतीति, ऋत्विक् को)

ऋतु यज — भूवादयो० धातोः (६।१।१५६) से धातु को अन्तोदात्त हुआ,

ऋतु यज् — ऋत्विग्दधृक्स्रग्दि० (३।२।५९) से क्विन् प्रत्ययान्त ऋत्विक् शब्द निपातन है।

ऋतु यज् क्विन्, वचिस्वपियजादीना० (६।१।१५) इग्यणः सम्प्रसारणम् (१।१।४४)

ऋतु इ अ ज् क्विन् = ऋतु इ ज् व्, उपपदमतिङ् (२।२।१९) इको यणचि (६।१।७४)

ऋत्विज् व — वेरपृक्तस्य (६।१।६५) अपृक्त एकाल्प्रत्ययः (१।२।४१)

ऋत्विज् — यहाँ अब समासस्य (६।१।२१७) के अन्तोदात्त को बाधकर गतिकारकोपपदात् कृत् (६।२।१३८) से उत्तरपद को प्रकृतिस्वर, अर्थात् 'इ' को उदात्त हुआ। अनुदात्तं पदमेक० (६।१।१५२) तथा पूर्ववत् 'अम्' विभक्ति आकर,

ऋत्विज् अम् — अनुदात्तौ सुप्पितौ,

ऋत्विजम् — उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः (८।४।६५)

ऋत्विजम् — ऐसा स्वर रहा।

———

होतारम् (होता को)

हु — भूवादयो० आकेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (३।२।१३४) तृन् (३।२।१३५) प्रत्ययः, परश्च,

हु तृन् होतृ — सार्वधातु० (७।३।८४) से पूर्ववत् गुण होकर, अब यहाँ प्रत्ययस्वर आद्युदात्तश्च का अपवाद, ञ्नित्यादि-र्नित्यम् (६।१।१९१) लगा, उससे नित् प्रत्यय 'तृ' के परे रहते 'हो' के 'ओ' को उदात्त हुआ, पूर्ववत् 'अम्' विभक्ति आकर, अनुदात्तं पद० (६।१।१५२) अनुदात्तौ सु० (३।१।४)

होतृ अम् — उदात्तादनुदा० (८।४।६५)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

होतृ अम् अब यहाँ ऋतो ङिसर्वना० (७।३।११०) से गु
अप्तृन्तृच्स्वसृ० (६।४।११) से दीर्घ होकर
होतार् अम् स्वरितात् संहितायाः० (१।२।३९)
होतारम् बना ॥

रत्नधातमम् (रत्नों को धारण करने वालों में सबसे श्रेष्ठ को

रत्नानि दधाति ऐसा विग्रह करके रत्नधा बना—

रत्न शस् धा पूर्ववत् सब सूत्र लगकर क्विप् च (३।२।७६)

रत्न शस् धा क्विप्, पूर्ववत् ही उपपद समासादि तथा क्विप् च
पहारी लोप हुआ,

रत्नधा अब गतिकारकोपपदात् कृत् (६।२।१३८) से उत्तर
प्रकृतिस्वर अर्थात् धातु स्वर ही रहा। अनुदात्तं
(६।१।१५२) कृत्तद्धित० (१।२।४६)

रत्नधा अतिशायने तमबिष्ठनौ (५।३।५५) से तमप् प्रत्यय हु

रत्नधा तमप्, अनुदात्तौ सु० (३।१।४)

रत्न धातम पूर्ववत् अम् विभक्ति आकर उसे भी अनुदात्त हो गय

रत्नधातम अम्, उदात्तादनुदात्तस्य० (८।४।६५) अमि पूर्वः

होतारं रत्नधातमम् स्वरितात् संहितायाः० (१।२।३९) से 'होतारम्' के
स्वरित से उत्तर अनुदात्त 'र' के 'अ' तथा अनुदात्त
के र के अकार को एकश्रुति हो गई, एवं 'तमम्' के
के अ को भी एकश्रुति हो गई। अब धा उदात्त के
रहते रत्न के न को उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः (१।
से एकश्रुति का निषेध होकर अनुदात्ततर स्वर हुआ।

होतारं रत्नधातमम् बना ॥

सर्वत्र उदाहरणों में विभाषा छन्दसि (१।२।३६) से एक पक्ष
ही स्वर तथा दूसरे पक्ष में एकश्रुति हो जाती है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(२) इ॒षे (अन्न और विज्ञान की प्राप्ति के लिये)

पूर्ववत् ही *क्विप् च* (३।२।७६) से क्विप् प्रत्यय हुआ, तथा पूर्ववत् ही क्विप् का सर्वापहारी लोप, तथा 'ङे' विभक्ति आकर,

अनुदात्तौ सुप्पितौ से 'ङे' को अनुदात्त प्राप्त हुआ, पर *सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः* (६।१।१६२) ने अनुदात्त को बाधकर विभक्ति को उदात्त कर दिया।

अनुदात्तं पदमेकवर्जम् (६।१।१५२)

बना॥

———

त्वा॒ (तुझको)

'त्वा॒' यहाँ 'त्वाम्' पद के स्थान में *त्वामौ द्वितीयायाः* (८।१।२३) से वा आदेश हुआ है, तथा उसे *अनुदात्तं सर्वमपादादौ* (८।१।१८) से अनुदात्त भी हुआ है॥

———

ऊ॒र्जे (बल के लिये)

पूर्ववत् ही ऊर्ज बलप्राणनयोः धातु से 'इषे' के समान ही क्विप्, तथा क्विप् का लोपादि होकर 'ङे' विभक्ति को *सावेकाचस्तृ०* से उदात्त हो गया, तथा शेष अनुदात्त हो गया, सो ऊ॒र्जे शब्द अन्तोदात्त रहा। अब आगे त्वा॒ ऊ॒र्जे को *आद्-गुणः* (६।१।८४) से गुण एकादेश हुआ, तो अनुदात्त 'आ' तथा अनुदात्त 'ऊ' का एकादेश अनुदात्त ही हुआ, त्वो॒र्जे बना। इषे त्वो॒र्जे यहाँ 'षे' उदात्त से परे त्वोर्जे के "त्वो॒" अनुदात्त को *उदात्तादनुदात्तस्य०* (८।४।६५) से स्वरित नहीं हुआ क्योंकि इसके बाधक *तोदात्तस्वरितोदय०* (८।४।६६) ने 'र्जे' उदात्त के परे रहते 'त्वो॒' अनुदात्त को स्वरित होने से निषेध कर दिया।

आगे 'त्वा' पूर्ववत् ही अनुदात्त था, पर *उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः* (८।४।६५) से उदात्त से उत्तर स्वरित होकर त्वो॒र्जे त्वा॒ बना॥

———

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वायवंः (बहुत प्रकार की वायु)

वा गतिगन्धनयोः भूवादयो० धातोः (३।१।९१) धातोः (३।१।९१)
कृवापाजिमि० (उणा० १।१) प्रत्ययः, परश्च,
वा उण् आतो युक्चिण्कृतोः (७।३।३३) से युक् आगम हुआ,
वा युक् उ = वा य् उ, आद्युदात्तश्च से प्रत्यय उदात्त हुआ, तो
हट गया। अनुदात्तं पदमेक०, तथा पूर्ववत् 'जस्'
वायु जस् जसि च (७।३।१०९) अनुदात्तौ सुप्पितौ (३।१।४)
वायो अस् उदात्तादनुदात्तस्य० (८।४।६५) एचोयवायावः (६।१।७
वायवंस् पूर्ववत् विसर्जनीय होकर,
वायवंः बना।

———

स्थ

'स्थ' यहाँ मध्यम पुरुष बहुवचन में अस् धातु से 'थ' प्रत्य
शप् का २।४।७१ से लुक् होकर 'अस् थ' रहा। श्नसोरल्लोपः (६।
लगकर 'स्थ' बना। यहाँ तिङ्ङतिङः (८।१।२८) से सारा निघा
पुनः उस अनुदात्त को स्वरितात् संहिताया० (१।२।३९) से
हो गई॥

———

शेष पूरे मन्त्र की स्वर सिद्धि हमारे बनाये 'यजुर्वेद भाष्य
यजु० १।१ में देखें। शेष अन्य मन्त्रों की स्वरसिद्धि भी विस्तार
हम यहाँ नहीं दे रहे हैं। सर्वत्र उदाहरणों में मन्त्र पाठ के समय
छन्दसि से एक पक्ष में एकश्रुति हुआ करेगी॥

—:०:—

परि० न सुब्रह्मण्यायां (१।२।३७)

सुब्रह्मण्योऽम् (सुब्रह्मणि साधुः)

सुब्रह्मन् ङि पूर्ववत् सब सूत्र लगकर रहा। समर्थानां प्रथमाद्वा (४।१
तत्र साधुः (४।४।९८) से साधु (कुशल) अर्थ में यत्
हुआ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

सुब्रह्मन् ङि यत्, सुपो धातुप्राति० (२।४।७१) तित्स्वरितम् (६।१।१७९)
सुब्रह्मन् यं अनुदात्तं पदमेक० (६।१।१५२) कृत्तद्धित० अजाद्यतष्टाप्
सुब्रह्मन्य टाप् (४।१।४) अनुदात्तौ सुप्पितौ, अकः सवर्णे दीर्घः (६।१।९७)

सुब्रह्मन्या यहाँ स्वरित और अनुदात्त के स्थान में हुआ एकादेश आन्तर्य से स्वरित ही हुआ।

सुब्रह्मन्या ओम् अब यहाँ ओम् निपात का ओमाङोश्च (६।१।९२) से पररूप एकादेश हुआ। निपाता आद्युदात्ताः (फिट् ८०)

सुब्रह्मन्योम् से ओम् उदात्त था, सो आन्तर्य से स्वरित और उदात्त का एकादेश स्वरित ही हुआ।

सुब्रह्मन्यो३म् न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य० से स्वरित के स्थान में उदात्त हो गया।

सुब्रह्मन्योम् अट् कुप्वाङ् नुम्व्यवायेऽपि (८।४।२)

सुब्रह्मण्योम् पूर्ववत् सु आकर 'सु' का अव्ययादाप्सुपः (२।४।८२) से लुक् हो गया।

सुब्रह्मण्योम् वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः (८।२।८२) दूरादूधूते च (८।२।८४)

सुब्रह्मण्यो३म् बना

इन्द्र

इन्द्र यह सम्बोधन पद है। सामन्त्रितम् (२।३।४८) से इसकी आमन्त्रित संज्ञा होकर, आमन्त्रितस्य च (६।१।१९२) से आद्युदात्त हुआ, पीछे अनुदात्तं पदं० (६।१।१५२) से 'द्र' अनुदात्त होकर, उदात्तादनुदात्तस्य० से स्वरित हुआ। अब इस स्वरित को न सुब्रह्मण्यायां० से उदात्त हो गया, सो इन्द्र में दोनों अच् उदात्त हुये॥

आगच्छ

'आगच्छ' यह आङ् पूर्वक गम्लृ धातु का लोट् मध्यमपुरुष एकवचन का रूप है। उपसर्गाश्चाभिवर्जम् (फिट्० ८१) इस फिट् सूत्र से आङ् का 'आ' उदात्त था। तिङ्ङतिङः (८।१।२८) से गच्छ को सर्वानु-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दात्त हुआ। *उदात्तादनुदात्तस्य०* (८।४।६५) से 'ग' का 'अ' स्वरित उस स्वरित को *न सुब्रह्मण्यायां०* से उदात्त हो गया, तो 'अ' दोनों उदात्त, तथा 'छ' को अनुदात्त होकर आगच्छ बना॥

हरिव आगच्छ

हरिवः यहाँ हरि शब्द से *तदस्यास्त्य०* (५।२।९४) से मतुप् हुआ *उगिदचां०* (७।१।७०) से नुम् आगम तथा सम्बुद्धि का सु आया म नुम् त् सु = हरि म न् त् स् रहा। हल्ङ्यादि लोप तथा संयो लोप होकर हरिमन् रहा। अब *मतुवसो रु सम्बुद्धौ०* (८।२।१) से र तथा *छन्दसीरः* (८।२।१५) से 'म' को 'व' होकर हरिवर् = हरिव हरिवः अब यह आमन्त्रित पद है, सो पूर्ववत् ही आमन्त्रित (६।१।१९२) से आद्युदात्त था, आगे उदात्त से उत्तर अनुदात्त को जो पूर्ववत् स्वरित हुआ उस स्वरित को प्रकृत सूत्र से विधान कर दिया तो हरिवः बना। 'व' अनुदात्त ही रहा। आगम पूर्ववत् ही स्वर जानें॥

मेधातिथेर्मेष

मेष यह आमन्त्रित पद है, मेधातिथेः यह षष्ठ्यन्त सुबन्त है *सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे* (२।१।२) से 'मेधातिथेः' को पराङ्गवत् (के अङ्ग के समान) अर्थात् 'मेष' के समान स्वर वाला माना गया। *आमन्त्रितस्य च* (६।१।१९२) से आद्युदात्त था, पराङ्गवद्भाव होने मेधातिथेः का 'मे' उदात्त हुआ, शेष सारे निघात हो गये। उस उदात्त से उत्तर जो 'धा' अनुदात्त को ८।४।६५ से स्वरित हुआ, उस स्वरित को प्रकृत सूत्र से उदात्त हो गया तो मेधातिथेर्मेष में आदि के दो उदात्त रहे॥

वृषणश्वस्य मेने

वृषाणो अश्वा यस्य स वृषणश्वस्तस्य "वृषणश्वस्यमेने" यहाँ भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[पदः]

आमन्त्रित पद था, अतः सारा स्वर पराङ्गवद्भाव होकर मेधातिथेर्मेष के समान ही है ॥

———

गौरावस्कन्दिन्

गौरावस्कन्दिन् यह भी आमन्त्रित पद है, सो पूर्ववत् ही गौ के 'औ' उदात्त होकर, उस उदात्त से उत्तर स्वरित को प्रकृत सूत्र से उदात्त समान हुआ।

———

अहल्यायै जार

अहल्यायै जार में मेधातिथेर्मेष के समान ही स्वर कार्य होंगे, क्योंकि 'जार' यह आमन्त्रित पद था, तो उसके परे रहते 'अहल्यायै' पराङ्गवद्भाव हो गया है ॥

———

कौशिकब्राह्मण, तथा गौतमब्रुवाण यह आमन्त्रित पद हैं, अतः गावस्कन्दिन् की तरह ही स्वर रहेगा ॥

———

स्वः शब्द *निपाता आद्युदात्ताः* (फिट् ८०) से उदात्त है ॥

———

सुत्या[1]

सुत्या यहाँ षुञ् धातु से *संज्ञायां समजनिषदनिपत०* (३।३।९९) से क्यप् प्रत्यय हुआ है। वहाँ उदात्त की अनुवृत्ति ३।३।९६ से आती है, यहाँ उदात्त क्यप् हुआ। *धात्वादेः षः सः* (६।१।६२) से 'ष्' को 'स्' होकर *हस्वस्य पिति०* (६।१।६९) से तुक् आगम एवं ४।१।४ से टाप् होकर सुत्या बना है। *अनुदात्तं पद०* (६।१।१५२) से सुत्या का सु अनुदात्त हो

१. स्वः सुत्यामागच्छ मघवन् यह पाठ शतपथ ब्राह्मण में सुब्रह्मण्यादि निगदों के अन्तर्गत प्राप्त नहीं है, वस्तुतः यह पाठ ऊहाकृत है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

गया, अब उदात्तादनुदात्त० (८।४।६५) से 'श्वः' उदात्त से परे का 'सु' स्वरित हो गया, तब उस स्वरित को प्रकृत सूत्र ने उदा दिया, सो 'सुत्या' में दोनों अच् उदात्त रहे।

आगच्छ का स्वर पूर्ववत् ही जानें।

———

मघवन्

मघवन् यह आमन्त्रित पद है, सो आगच्छ पद से उत्तर तस्य च (८।१।१६) से सर्वनिघात हो गया है॥

———

परि० देवब्रह्मणो० (१।२।३८)

देवा ब्रह्माण

देवा, ब्रह्माण ये दोनों पद आमन्त्रितसंज्ञक हैं सो आमन्त्रित (६।१।१९०) से दोनों को आद्युदात्त होने पर शेष अनुदात्त हो अब उदात्तादनुदात्तस्य० (८।४।६५) से उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ था, उसको पूर्व सूत्र से उदात्त प्राप्त था, पर प्रकृत अनुदात्त कर दिया, तो 'देवा ब्रह्माण' ऐसा स्वर रहा॥

—:०:—

परि० स्वरितात् संहिताया० (१।२।३९)

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि

इदम् शब्द प्रातिपदिक स्वर से अन्तोदात्त है, पूर्ववत् इदम् आगे 'अम्' विभक्ति आई, त्यदादीनामः (७।२।१०२) से इदम् के अकारादेश, तथा दश्च (७।२।१०६) से 'द' को 'म' होकर इमम् बना। अनुदात्तौ सुप्पितौ से विभक्ति अनुदात्त थी, सो से उदात्त 'म' के अ (प्रातिपदिक स्वर से उदात्त था) तथा अनु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[प्रथमा]

का एकादेश, *एकादेश उदात्तेनोदात्तः* (८।२।५) से उदात्त ही रहा। शेष निघात होकर इमम् ऐसा स्वर रहा।

'मे' यहाँ मम शब्द को *तेमयावेकवचनस्य* (८।१।२२) से अनुदात्त 'मे' आदेश हुआ। *उदात्तादनुदात्तस्य०* (८।४।६५) से 'मे' स्वरित हो गया। आगे गङ्गे, यमुने आदि सारे पद आमन्त्रितसंज्ञक थे, तो 'मे' पद से उत्तर सबको *आमन्त्रितस्य च* (८।१।१९) से निघात हो गया, तब उन अनुदात्तों को प्रकृत सूत्र से एकश्रुति हो गई॥

———

माणवक जटिलकाध्यापक

माणवक यह आमन्त्रित पद होने से ६।१।१९२ से आद्युदात्त था, शेष को निघात होकर, उदात्त से उत्तर स्वरित हो गया। शेष बचे पूर्ववत् अनुदात्तों को प्रकृत सूत्र से एकश्रुति हो गई। जटिलकाध्यापक भी *आमन्त्रितस्य च* (८।१।१९) से सर्वनिघात था, उसको भी प्रकृत सूत्र से एकश्रुति हुई है। *आमन्त्रितं पूर्वम०* (८।१।७२) से यहाँ पूर्व आमन्त्रित की अविद्यमानता प्राप्त थी, सो पद से उत्तर न मिलने से यहाँ निघात न हुआ, पर *नामन्त्रिते समाना०* (८।१।७३) से विद्यमानवत् ही माना गया निघात होकर एकश्रुति हो गई॥

———

कं गमिष्यसि

कं यह स्वरितान्त पद है, (देखो परि० १।२।३१) इस कं से उत्तर गमिष्यसि को *तिङ्ङतिङः* (८।१।२८) से निघात हुआ है, उस निघात को प्रकृत सूत्र से एकश्रुति हो गई है॥

—:०:—

परि० उदात्तस्वरित० (१।२।४०)

मातरोऽपः

मातृ जस् पूर्ववत् जस् विभक्ति आकर, *ऋतो ङिसर्वनाम०* (७।३।११०) से मातृ को गुण हुआ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

मातर् अस् अनुदात्तौ सुप्पितौ से विभक्ति अनुदात्त हुई।
मातर्स् अपः, 'अपः' शब्द यहाँ शस् विभक्त्यन्त है, जो कि [illegible] द्यप्पुम्रैद्युभ्यः (६।१।१६५) से अन्तोदात्त है शेष [illegible] दात्त है। अब यहाँ 'मातरस्' के स् को रुत्व होकर
मातरर् अपः अतो रोरप्लुताद० (६।१।१०९) से 'उ' तथा
मातर उ अपः आद् गुणः (६।१।८४) से गुण एकादेश हो गया।
मातरो अपः एङः पदान्तादति (६।१।१०५) से 'ओ' तथा 'अ' [illegible] एकादेश (ओकार) हो गया। यह ओकारादेश [illegible] के स्थान में हुआ है, अतः स्थानिवद्भाव से [illegible] माना गया, एवं यह ओकार उदात्तपरक = [illegible] वाला ('प' उदात्त परे है) भी है, अतः यहाँ प्रकृत [illegible] 'ओ' को सन्नतर आदेश हो गया।
मातरोऽपः

सरस्वति शुतुद्रि

शुतुद्रि यह आमन्त्रित पद पाद के आदि में है, सो इसे [illegible] च (८।१।१९) से निघात नहीं होता, क्योंकि वहाँ अनुदात्तं [illegible] (८।१।१८) का अधिकार आता है, अतः पाद के आदि में होने [illegible] तुद्रि' को निघात न होकर आमन्त्रितस्य च (६।१।१९२) से [illegible] (शुतुद्रि के शु को उदात्त) होता है। इस उदात्त के परे रहते [illegible] का इकार जो कि आमन्त्रितस्य च (८।१।१९) से निघात था, [illegible] सूत्र से सन्नतर = अनुदात्ततर आदेश हो जाता है॥

अध्यापक क्व

यहाँ क्व स्वरित के परे रहते, अध्यापक का 'क' जो कि [illegible] च (८।१।१९) से अनुदात्त था, उसको प्रकृत सूत्र से स्वरितपरक [illegible] अनुदात्ततर आदेश हो गया॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

परि० अपृक्त एकाल्प्रत्ययः (१।२।४१)

वाक् (वाणी)

पूर्ववत् सब सूत्र लगकर

वाच्

वाच् सु = स्, अपृक्त एकाल्प्रत्ययः से एक अल् 'स्' की अपृक्त संज्ञा होने से हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् (६।१।६६) से 'स्' का लोप हो गया।

वाच्

चोः कुः (८।२।३०) से कुत्व हुआ, झलां जशोऽन्ते (८।२।३९)

वाग्

वावसाने (८।४।५५) से पुनः चर्त्व होकर, क्, ग् दोनों रहे,

वाक्, पक्ष में—वाग् बना।

लता, कुमारी यहाँ भी अपृक्त 'स्' का लोप पूर्ववत् ही हल्ङ्याब्भ्यो० से हुआ है॥

———

घृतस्पृक् (घृतं स्पृशतीति, घी को छूने वाला)

घृत अम् स्पृश, भूवादयो० (१।३।१) तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् (३।१।९२) स्पृशोऽनुदके क्विन् (३।२।५८) प्रत्ययः परश्च

घृत अम् स्पृश् क्विन्[1], उपपदमतिङ् (२।२।१९) सुपो धातु० (२।४।७)

घृतस्पृश् व्

अपृक्त एकाल्प्रत्ययः से एक अल् 'व्' की अपृक्त संज्ञा हुई, तो वैरपृक्तस्य (६।१।६५) से उसका लोप हो गया। कृत्तद्धित० पूर्ववत् सु आकर

घृतस्पृश् सु

क्विन्प्रत्ययस्य कुः (८।२।६२) स्थानेऽन्तरतमः (१।१।४९)

घृतस्पृक् स्

अपृक्त एकाल० हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्० (६।१।६६)

घृतस्पृक्

बना।

———

अर्द्धभाक् (अर्धं भजतीति, आधे को प्राप्त करने वाला)

अर्द्ध अम् भज, सब पूर्ववत् ही होकर भजो ण्विः (३।२।६२) से ण्वि प्रत्यय हुआ।

---

१. क्विन् में इकार उच्चारणार्थ है, अनुबन्ध नहीं है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अर्द्ध अम् भज् ण्वि, पूर्ववत् ही समासादि सब होकर
अर्द्ध भज् व् *अत उपधायाः* (७।२।११६) से उपधा को वृद्धि हुई
पूर्ववत् ही अपृक्त 'व्' का लोप हुआ।
अर्द्धभाज् पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति होकर
अर्द्धभाज् सु = स्, *अपृक्त एकाल्० हल्ङ्याब्भ्यो०* (६।१।६६)
अर्द्धभाज् चोः कुः (८।२।३०)
अर्द्धभाग् *वावसाने* (८।४।५५)
अर्द्धभाग्, अर्धभाक् बना।

इसी प्रकार पादं भजतीति *पादभाक्* (चौथाई को प्राप्त करने वाला) में भी जानें॥

—:०:—

परि० तत्पुरुषः समा० (१।२।४२)

पाचकवृन्दारिका (अच्छी रोटी पकाने वाली)

पाचिका चासौ वृन्दारिका च—
पाचिका सु वृन्दारिका सु *समर्थः पदविधिः* (२।१।१) *तत्पुरुषः* (२।१।
वृन्दारकनागकुञ्जरैः० (२।१।६१) से तत्पुरुष समास
सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (२।४।७१)
पाचिकावृन्दारिका अब यहाँ पाचिकावृन्दारिका में वही पाचिका
वही वृन्दारिका है, अर्थात् समानाधिकरण तत्पुरुष
तत्पुरुषः समानाधिकरणः० से कर्मधारय संज्ञा हो
धारय संज्ञा होने से *पुंवत् कर्मधारयजातीयदेशीयेषु* से
से पुंवद्भाव अर्थात् पुलिङ्ग के समान रूप हो गया
पूर्ववत् सु आकर
पाचकवृन्दारिका सु = स्, *हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०* (६।१।६६)
पाचकवृन्दारिका बना।

परमञ्च तद् राज्यञ्च *परमराज्यम्* (बढ़िया राज्य) उत्तम
राज्यञ्च *उत्तमराज्यम्* (उत्तमराज्य) यहाँ पर भी समानाधिकरण है
वही राज्य है, तथा वही परम और उत्तम भी है सो विशेषण
(२।१।५६) से तत्पुरुष समास होकर प्रकृत सूत्र से कर्मधारय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[१ पाद:]

गई। कर्मधारय संज्ञा होने से *अकर्मधारये राज्यम्* (६।२।१२९) से उत्तरपद को आद्युदात्त नहीं होता, और *समासस्य* (६।१।२१७) से अन्तोदात्त हो जाता है। शेष सब पूर्ववत् ही जानें॥

———

परि० प्रथमानिर्दिष्टं० (१।२।४३)

कष्टश्रितः (कष्टम् श्रितः, कष्ट को प्राप्त हुआ)

कष्ट अम् ,श्रित सु *समर्थः पदविधिः* (२।१।१) *प्राक्कडारात् समासः* (२।१।३) *तत्पुरुषः* (२।१।२१) *द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्त०* (२।१।२३) से द्वितीया तत्पुरुष समास हुआ। *द्वितीया श्रितातीत०* यह सूत्र समास विधान करता है और यहाँ "द्वितीया" पद में प्रथमा विभक्ति है, सो प्रथमानिर्दिष्ट होने से द्वितीयान्त पद जो 'कष्टम्' उसकी उपसर्जन संज्ञा होकर *उपसर्जनं पूर्वम्* (२।२।३०) से 'कष्टम्' पद पूर्व में ही आता है।

कष्ट अम् श्रित सु *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) *सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१) पूर्ववत् सु आकर,

कष्टश्रित सु रुत्व विसर्जनीय होकर,

कष्टश्रितः बन गया।

———

शङ्कुलाखण्डः (शङ्कुलया खण्डः, सरौते के द्वारा काटा हुआ टुकड़ा)

शङ्कुला टा खण्ड सु, *तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन* (२।१।२९) से तृतीया-तत्पुरुष समास हुआ। यहाँ भी *तृतीया तत्कृतार्थेन०* सूत्र में 'तृतीया' पद में प्रथमा विभक्ति होने से प्रकृत सूत्र से तृतीयान्त की उपसर्जन संज्ञा होकर *उपसर्जनं पूर्वम्* से तृतीयान्त उपसर्जन संज्ञक 'शङ्कुलया' शब्द पूर्व में ही आता है। *कृत्तद्धित०*(१।२।४६) *सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शङ्कुलाखण्ड पूर्ववत् सु आकर रुत्व विसर्जनीय होकर,
शङ्कुलाखण्डः बना ॥

———

यूपदारु (यूपाय दारु=खम्भे के लिये लकड़ी)

यूप ङे दारु सु चतुर्थी तदर्थार्थबलि० (२।१।३५) से चतुर्थी तत्पुरुष
हुआ, यहाँ भी 'चतुर्थी' पद में प्रथमा विभक्ति
चतुर्थ्यन्त की प्रकृत सूत्र से उपसर्जन संज्ञा होने
'यूपाय' चतुर्थ्यन्त पद पूर्व में ही आता है।
यूप ङे दारु सु कृत्तद्धित० सुपो धातुप्रातिपदिकयोः
यूपदारु पूर्ववत् सु आकर स्वमोर्नपुंसकात् (७।१।२३) से
हो गया।
यूपदारु बना।

———

वृकभयम् (वृकेभ्यो भयम्, भेड़ियों से डर)

वृक भ्यस् भय सु, पञ्चमी भयेन (२।१।३६) यहाँ भी 'पञ्चमी'
होने से पञ्चम्यन्त की प्रकृत सूत्र से उपसर्जन
पूर्ववत् पञ्चम्यन्त पद पूर्व में ही आता है।
वृक भ्यस् भय सु कृत्तद्धित० सुपो धातुप्रा० (२।४।७१)
वृकभय पूर्ववत् सु आकर, अतोऽम् (७।१।२४) लगा,
वृकभयम् बना।

———

राजपुरुषः (राज्ञः पुरुषः, राजा का पुरुष)

राजन् ङस् पुरुष सु, षष्ठी (२।२।८) यहाँ भी षष्ठ्यन्त की उपसर्जन
होने से पूर्ववत् षष्ठ्यन्त पूर्व में ही आता है।
राजन् ङस् पुरुष सु, शेष पूर्ववत् होकर तथा नलोपः प्रातिः
से नकार लोप होकर,
राजपुरुषः बन गया।

———

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अक्षशौण्डः (अक्षेषु शौण्डः, पांसो में आसक्त = धूर्त्त)

अक्ष सुप्_शौण्ड सु, *सप्तमी शौण्डैः* (२।१।३९) यहाँ भी 'सप्तमी' में प्रथमा विभक्ति होने से, प्रकृत सूत्र से सप्तम्यन्त की उपसर्जन संज्ञा होकर सप्तम्यन्त पद पूर्व में ही आता है। *कृत्तद्धित० सुपो धातुप्रा०* (२।४।७१)

अक्षशौण्ड पूर्ववत् सु आकर विसर्जनीय हो गया।

अक्षशौण्डः बना।

—:०:—

परि० एकविभक्ति० (१।२।४४)

निष्कौशाम्बिः (कौशाम्बी से जो निकल गया, वह)

निर्_सु कौशाम्बी ङसि *निरादयःक्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या* (वा० २।२।१८) से समास होकर, *कृत्तद्धित० सुपो धातुप्रा०* (२।४।७१)

निर्कौशाम्बी *एकविभक्ति चापूर्वनिपाते* से यहाँ 'कौशाम्बी' की उपसर्जन संज्ञा हो गई, क्योंकि विग्रह करने पर निष्क्रान्त शब्द यद्यपि सब विभक्तियों से युक्त होता है, पर कौशाम्बी यह शब्द नियत पञ्चम्यन्त ही है, पूर्व निपात कार्य को छोड़कर उपसर्जन संज्ञा होती है, अतः कौशाम्बी का पूर्व निपात *उपसर्जनं पूर्वम्* (२।२।३०) से नहीं होता है। कौशाम्बी की उपसर्जन संज्ञा होने से *गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य* (१।२।४८) से उसको ह्रस्व हो जाता है।

निर्कौशाम्बि *खरवसानयो०* (८।३।१५) से र् को विसर्जनीय होकर,

निःकौशाम्बि *इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य* (८।३।४१) से उस विसर्जनीय को षत्व हो गया।

निष्कौशाम्बि पूर्ववत् सु आकर विसर्जनीय हो गया।

निष्कौशाम्बिः बना।

इसी प्रकार *निर्वाराणसिः* में भी जानें। केवल यहाँ खर् परे न होने से 'र्' को विसर्जनीय नहीं होता, यही विशेष है।

———

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० गोस्त्रियो० (१।२।४८)

चित्रगुः (चित्रा गावो यस्य स, चित्रित हैं गायें जिसकी)

चित्र जस् गो जस् *अनेकमन्यपदार्थे* (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास
कृत्तद्धित० (१।२।४६) सुपो धातुप्राति० (२।४।७१)
विशेषणे० (२।२।३५) से विशेषणवाची चित्र का पूर्व
हुआ।

चित्रगो — बहुव्रीहि समास में सारे ही पद उपसर्जन होते हैं
'चित्रगो' उपसर्जन गो शब्दान्त प्रातिपदिक है सो,
सूत्र से ह्रस्व प्राप्त हुआ, अब 'ओ' को क्या ह्रस्व
एच इग्घ्रस्वादेशे (१।१।४७) ने कहा कि एच् को 'इ'
हो। पूर्ववत् सब सूत्र लगकर सुँ आया।

चित्रगु सुँ — पूर्ववत् विसर्जनीय होकर,

चित्रगुः — बना॥

इसी प्रकार शबला गावो यस्य स *शबलगुः* (चितकबरी हैं
जिसकी, वह) की सिद्धि भी जानें॥ *निष्कौशाम्बिः निर्वाराणसिः*
सिद्धि भी परि० १।२।४४ में देखें। कौशाम्बी' वाराणसी स्त्री प्रत्यय
(ङीबन्त) शब्द हैं, १।२।४४ से उपसर्जन संज्ञक भी हैं अतः प्रकृत
से ह्रस्व हो गया है॥

खट्वामतिक्रान्तः, अतिखट्वः (जो खाट का अतिक्रमण=लांघ
हो) मालामतिक्रान्तः अतिमालः (जो माला का अतिक्रमण कर गया
यहाँ भी 'अति सु खट्वा अम्' 'अति सु माला अम्, इस अवस्था
अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया (वा० २।२।१८) इस वार्त्तिक से
तथा सब कार्य पूर्ववत् होकर अतिखट्वा, अतिमाला रहा। यहाँ
माला स्त्रीप्रत्ययान्त (टाबन्त) शब्द हैं, उपसर्जन संज्ञा भी इनकी
से हो जाती है, सो प्रकृत सूत्र से ह्रस्व तथा शेष पूर्ववत् होकर
खट्वः अतिमालः बन गया है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० लुक्तद्धितलुकि (१।२।४९)

इन्द्राणी

इन्द्र — *अर्थवदधातु०* (१।२।४५) *ङ्याप्प्रातिपदिकात्* (४।१।१) *स्त्रियाम्* (४।१।३) *इन्द्रवरुणभवशर्व०* (४।१।४९) से ङीष् प्रत्यय तथा आनुक् आगम इन्द्र शब्द को हुआ, *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५)

इन्द्र आनुक् ङीष् = इन्द्र आन् ई, *अकः सवर्णे दीर्घः* (६।१।९७)

इन्द्रानी — *अट्कुप्वाङ्नुम्व्य०* (८।४।२) से णत्व तथा पूर्ववत् प्रातिपदिक संज्ञादि होकर,

इन्द्राणी — बना।

अब यहाँ पञ्च इन्द्राण्यो देवता अस्य स्थालीपाकस्य, पञ्चेन्द्रः (पाँच इन्द्राणियाँ देवता हैं इस स्थालीपाक की) ऐसा विग्रह करके पञ्चेन्द्रः बना है।

पञ्चेन्द्रः

पञ्चन् जस् इन्द्राणी जस्, *तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च* (२।१।५०) से समास होकर, *कृत्तद्धित० सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१)

पञ्चन्इन्द्राणी — *नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य* (८।२।७) *आद् गुणः* (६।१।८४)

पञ्चेन्द्राणी — *तस्य देवता* (५।२।२३) से अण् प्रत्यय हुआ *तद्धिताः* (४।१।७६)

पञ्चेन्द्राणी अण्, *सङ्ख्यापूर्वो०* (२।१।५१) *द्विगोर्लुगनपत्ये* (४।१।८८) से द्विगु सम्बन्धी अण् प्रत्यय का लुक् हुआ,

पञ्चेन्द्राणी — लुक्तद्धितलुकि से तद्धित प्रत्यय अण् के लुक् हो जाने पर इन्द्रवरुणभव० से जो स्त्री प्रत्यय ङीष् आया था, उसका भी लुक् हो गया, तथा उस स्त्रीप्रत्यय के साथ जो आनुक् आगम हुआ था वह भी हट गया (इस विषय में देखो परिभाषा ७५)

पञ्चेन्द्र — पूर्ववत् सु आकर विसर्जनीय होकर

पञ्चेन्द्रः — बना।

इसी प्रकार दश इन्द्राण्यो देवता अस्य दशेन्द्रः की सिद्धि भी जानें॥

———

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पञ्चशष्कुलम् (पाँच पूरियों से खरीदी हुई वस्तु)

पञ्चभिः शष्कुलीभिः क्रीतम्—

पञ्चन् भिस् शष्कुली भिस्, पूर्ववत् ही समासादि सब कार्य होके

पञ्चशष्कुली *तेन क्रीतम्* (५।१।३६) प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः (प्रा

पञ्चशष्कुली ठक् *सङ्ख्यापूर्वो०* (२।१।५१) अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुङ्

(५।१।२८) से ठक् प्रत्यय का लुक् हो गया,

पञ्चशष्कुली *लुक्तद्धितलुकि* से ठक् के लुक् हो जाने पर, वो

कि शष्कुल शब्द से *षिद्गौरादिभ्यश्च* (४।१।४१) जो

था, उसका भी लुक् हो गया।

पञ्चशष्कुल पूर्ववत् सु आकर 'सु' को अम् ७।१।२४ से हो गया,

पञ्चशष्कुल अम् = पञ्चशष्कुलम्, बन गया॥

———

आमलकम् (आमलक्याः फलम्, आँवले वृक्ष का फल)

आमलक *अर्थवदधा०* (१।२।४५) *षिद्गौरादिभ्यश्च* (४।१।४१)

आमलक ङीष् = आमलक ई, *यस्येति च* (६।४।१४८)

आमलकी पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति होकर ङस् आया *वृद्धिर्यस्या*

आमलकी ङस्, *स्तद्०* (१।१।७२) *वृद्धिरादैच्* (१।१।१) *तित*

दिभ्यः (४।३।१४२) प्रत्ययः, परश्च, *सुपो धातु*

आमलकी मयट्, अब इस मयट् का, जो कि विकार अर्थ में

फले लुक् (४।३।१६१) से लुक् हो गया, तो

आमलकी से स्त्री प्रत्यय ङीष् का भी लुक् हो गया,

आमलक पूर्ववत् 'सु' आकर *अतोऽम्* लगकर,

आमलकम् बना॥

———

बकुल, कुवल, बदर शब्द भी गौरादियों में पढ़े हैं, सो पूर्ववत्

होकर बकुली, कुवली, बदरी शब्दों से *अनुदात्तादेश्च* (४।३।१३८) से

अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय आया, उसका पूर्ववत् ही फले लुक् (४।

से लुक् होकर, प्रकृत सूत्र से स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् हो गया,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

पूर्ववत् होकर बकुलम् (कटुकी वृक्ष का फल) कुवलम् (कुवल वृक्ष विशेष का फल) बदरम् (बदर वृक्ष का विकार, अर्थात् वेर) वन गया ॥

—:०:—

परि० लुपि युक्तवद्० (१।२।५१)

पञ्चालाः जनपदः (पञ्चाल नाम का जनपद)

पञ्चाल पूर्ववत् सब सूत्र लगकर 'ङस्' विभक्ति आई,

पञ्चाल ङस् *समर्थानां प्रथमाद्वा* (४।१।८२) *तस्यापत्यम्* (४।१।९२) जनपदशब्दात् *क्षत्रियादञ्* (४।१।१६६) *प्रत्ययः, परश्च*, से पञ्चालस्यापत्यानि बहूनि इस अर्थ में 'अञ्' हुआ।

पञ्चाल ङस् अञ् *सुपो धातुप्राति० ते तद्राजाः, तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्* (२।४।६२) से बहुत्व अर्थ में आये, तद्राज प्रत्यय का लुक् हो गया। अब यह पञ्चाल शब्द पुल्लिङ्ग तथा बहुवचन विषयक है, क्योंकि यह पञ्चाल नामक क्षत्रिय की बहुत सी सन्तानों (पुत्र पौत्रादि) को कहता है, सो इस पुल्लिङ्ग बहुवचन विषयक शब्द से आगे 'तेषां (पञ्चालानां) निवासो जनपदः' ऐसा विग्रह करके प्रत्यय लाना है, अतः पूर्ववत् सब सूत्र लगकर आम् विभक्ति आई,

पञ्चाल आम् *तस्य निवासः* (४।२।६८) से निवास अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ,

पञ्चाल आम् अण्, *सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१)

पञ्चाल अ *जनपदे लुप्* (४।२।८०) से अण् का लुप् हुआ,

पञ्चाल अब यह 'पञ्चाल' एक जनपद का वाचक शब्द है, सो, एकत्व का वाचक होने से एकवचन होना चाहिये, पर *लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने* ने कहा कि 'लुप् होने पर प्रकृतिवत् ही लिङ्ग वचन हों' तो यहाँ अण् का लुप् हुआ है, अतः प्रकृतिवत् लिङ्ग वचन प्राप्त हुये। अण् प्रत्यय की उत्पत्ति से पूर्व यह पञ्चाल शब्द, "पञ्चाल क्षत्रिय" के बहुत सारे अपत्यों को कहता था, अतः बहुवचनविषयक एवं पुलिङ्ग था, सो अब यद्यपि एक जनपद को कहता है, तो भी बहु-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वचन एवं पुलिङ्ग ही होगा। अब कृत्तद्धित० सूत्र लगकर बहुषु बहुवचनम् (१।४।२१) से बहुवचन में 'जस्' हुआ।

पञ्चाल जस् प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (६।१।९८) से पूर्वसवर्ण विसर्जनीय होकर,

पञ्चालाः जनपदः, बन गया॥

कुरवः (कुरु नाम का जनपद)

कुरोरपत्यानि बहूनि इस अर्थ में 'कुरु' शब्द से कुरुनादिभ्यो (४।१।१७०) ण्य प्रत्यय आया और उसका पूर्ववत् तद्राजस्य बहुषु ४।६२) से लुक् होकर 'कुरु' ही रहा। पूर्ववत् ही यह कुरु शब्द बहु वचन विषयक तथा पुलिङ्ग है, सो कुरूणाम् निवासो जनपदः विग्रह करके, पूर्ववत् अण् प्रत्यय आया तथा उसका लुप् यौ लुप् से हो गया। अब यह 'कुरु' शब्द जनपद का वाची है, एकवचन होना चाहिये, पर लुपि युक्तवद्० से पूर्ववत् लिङ्ग, वचन से पूर्व जैसे कि बहुवचन विषयक था वैसे ही हो गया, सो 'जस्' आकर जसि च (७।३।१०९) से गुण होकर कुरो अस्=कुरवस्=कुरवः जनपदः बन गया॥

मगधाः जनपदः, मत्स्याः, अङ्गाः, वङ्गाः, सुह्माः, पुण्ड्राः इन उदाहरणों में द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् (४।१।१६८) से बहुवचन कहने में अण् प्रत्यय होकर पूर्ववत् तद्राजस्य० से लुक् होकर पुनः उसी अर्थ में अण् प्रत्यय आया, सिद्धि पूर्ववत् ही जानें। प्रकृत पुत्र के वचन विषयक यह सारे शब्द हो गये। ऊपर की ही सारी बात लगा लेनी चाहिये।

गोदौ ग्रामः (गोदौ नाम का ग्राम)

गोदौ नाम ह्रदौ=गोदौ यह दो जलाशयों का नाम है, सो दोनों दूरभवो ग्रामः ऐसा विग्रह करके अदूरभवश्च (४।२।६९) से अण्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(निकट) अर्थ में अण् प्रत्यय होकर "गोद ओस् अण्" रहा। *वरणादि-* *भ्यश्च* (४।२।८१) से पूर्ववत् ही अण् का लुप् होकर 'गोद' रहा, अब यह गोद एकत्वाभिधायी है, क्योंकि एक ग्राम को कहता है, सो यहाँ एक-वचन का प्रत्यय होना चाहिये पर अण् प्रत्यय की उत्पत्ति से पूर्व यह 'गोद' शब्द द्विवचनान्त था, अतः प्रकृत सूत्र से अब भी द्विवचन ही होकर, द्विवचन का प्रत्यय 'औ' आकर *गोदौ ग्रामः* बन गया ॥

— ——

कटुकबदरी ग्रामः (कटुकबदरी नाम का ग्राम)

यहाँ भी कटुकबदर्याः अदूरभवो ग्रामः (कटुकबदरी के समीप वाला ग्राम) इस अर्थ में पूर्ववत् *अदूरभवश्च* से अण् प्रत्यय होकर *वरणादि-* *भ्यश्च* से पूर्ववत् अण् का लुप् हो गया तो 'कटुकबदरी' रहा। अब यह कटुकबदरी शब्द, पुल्लिङ्ग ग्राम शब्द का वाचक है, सो समानाधिकरण होने से कटुकबदरी में भी पुल्लिङ्ग होना चाहिये, पर *लुपि युक्तवद्०* सूत्र ने कहा कि पूर्ववत् लिङ्ग वचन हों सो यहाँ अण् प्रत्यय की उत्पत्ति से पूर्व कटुकबदरी में स्त्रीलिङ्ग था, अतः अब यद्यपि ग्राम पुल्लिङ्ग का वाचक है, तो भी स्त्रीलिङ्ग ही रहा। शेष पूर्ववत् ही सु आकर, *हल्ङ्याब्भ्यो०* (६।१।६६) से उसका लोप हो गया ॥

वस्तुतः यह उदाहरण 'पूर्ववत् व्यक्ति = लिङ्ग करने का है, तथा ऊपर के सब उदाहरण पूर्ववत् वचन = सङ्ख्या (एकत्व द्वित्व बहुत्वादि) करने के हैं ॥

— ——

प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः

परि० आदिर्ञिटुडवः (१।३।५)

मिन्नः (स्निग्ध हुआ २)

निमिदा भूवादयो० (१।३।१) *आदिर्ञिटुडवः*, *उपदेशेऽजनु०*, *तस्य लोपः* (१।३।९) *अदर्शनं लोपः*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

मिद् अब यहाँ 'मिद्'का 'ञि' इत् गया है, सो धातोः[illegible]
जीतः क्तः (३।२।१८७) से वर्त्तमान काल में 'क्त'
मिद् क्त हुआ। आर्धधातुकस्येड्० (७।२।३५) से इट् आगम
हुआ, पर आदितश्च (७।२।१६) से निषेध हो
रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः (८।२।४२) से
'त' को 'न' एवं पूर्व दकार को भी 'न' होकर,
मिन्न पूर्ववत् सु आकर विसर्जनीय हो गया सो
मिन्नः बना।

इसी प्रकार ञिधृषा धातु से पूर्ववत् ही सब होकर 'धृष् त'
ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से ष्टुत्व होकर धृष्टः (ढीठ) बन गया। निर्
धातु से क्विरणः (स्निग्ध हुआ २) भी इसी प्रकार बना है। [illegible]
अट्कुप्वाङ्० (८।४।२) से दोनों नकारों को णत्व हुआ है, यही किया

इद्धः (प्रकाशित हुआ) यहाँ भी पूर्ववत् ही णिजन्त धातु
'इन्ध् त' रहा। अनिदितां हल० (६।४।२४) से अनुनासिक लोप
झषस्तथोर्धो० (८।२।४०) से 'त' को 'ध' होकर 'इध् ध' रहा। खरि
झशि (८।४।५२) से ध् को द् होकर इद्धः बन गया॥

वेपथुः (कँपकँपी)

टुवेपृ भूवादयो० आदिर्ञिटुडवः उपदेशेऽज० तस्य लोपः, अन्
वेप् धातोः (३।१।९१) टित्वतोऽथुच् (३।३।८९) से थुच्
इत् संज्ञक होने से अथुच् प्रत्यय हुआ। पूर्ववत्
आकर,
वेप अथुच् सु = वेप् अथु स = वेपथुः, बन गया।

इसी प्रकार टुओश्वि धातु से पूर्ववत् सब होकर 'श्वि अथुच् सु'
सार्वधातु० (७।३।८४) से 'श्वि'को 'श्वे' गुण तथा एचोयवायावः (६।१।७८)
से अयादेश होकर श्वय् अथु स् = श्वयथुः (सूजन) बना है॥

पक्त्रिमम् (पाकेन निर्वृत्तम् = पाक से बनने वाला)

डुपचष् पाके, भूवादयो० आदिर्ञिटुडवः, उपदेशेऽज० हलन्त्यम् (१
तस्य लोपः अदर्शनं लोपः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पच्

अब यहाँ 'पच्' डु इत् वाला है, सो *ड्वितः क्त्रिः* (३।३।८८) से क्त्रि प्रत्यय हुआ।

पच् क्त्रि = त्रि, *चोः कुः स्थानेऽन्तरतमः* (१।१।४९)

पक्त्रि

कृत्तद्धित० (१।२।४६) सब सूत्र लगकर 'टा' विभक्ति आई,

पक्त्रि टा

क्त्रेर्मम्नित्यम् (४।४।२०) से 'पक्त्रि' से 'मप्' प्रत्यय हुआ,

पक्त्रि टा मप् = म, *कृत्तद्धित० सुपो धातुप्राति०* तथा पूर्ववत् सु आकर

पक्त्रिम सु

अतोऽम् (७।१।२४) से सु को अम् होकर *अमि पूर्वः* (६।१।१०३) लगा,

पक्त्रिमम्

बन गया।

इसी प्रकार डुकृञ् धातु से कृत्रिमम् (किया हुआ = बनावटी) तथा वपृ धातु से *उप्त्रिमम्* (बीज बोने से होने वाला) बनेगा। वप् को सम्प्रसारण भी *वचिस्वपि०* (६।१।१५) से 'क्त्रि' प्रत्यय परे रहते हो जाता है, यही यहाँ विशेष है॥

—:०:—

परि० षः प्रत्ययस्य (१।३।६)

नर्त्तकी (नृत्य करने वाली)

नृती नर्त्तने

भूवादयो०उपदेशेऽज०,तस्य लोपः धातोः,(३।१।९१) *शिल्पिनि ष्वुन्* (३।१।१४५) प्रत्ययः, *परश्च* से ष्वुन् प्रत्यय हुआ।

नृत् ष्वुन्

षः *प्रत्ययस्य*, से आदि षकार की इत् संज्ञा हुई *हलन्त्यम् तस्य लोपः* (१।३।९)

नृत् वु

पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर *युवोरनाकौ* (७।१।१) से 'वु' को

नृत् अक

'अक' हो गया। *पुगन्तलघू०* (७।३।८४) से 'नृत्' अङ्ग को गुण हुआ।

नर्त् अक

यहाँ 'वु' के षित् होने से *षिद्गौरादिभ्यश्च* (४।१।४१) से

नर्त् अक ङीष् = ई, *यचि भम्* (१।४।१८) *यस्येति च* (६।४।१४८)

नर्तक् ई

अचो रहाभ्यां० (८।४।४५)

नर्तक् ई

पूर्ववत् सु आकर *हल्ङ्याब्भ्यो०* (६।१।६६) लगकर

नर्तकी

बना।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

रजकी (धोबिन) यहाँ भी रञ्ज धातु से पूर्ववत् ही सिद्धि हुई, यहाँ 'रञ्ज' धातु के अनुनासिक का लोप रजकरजनरजःसृपसृजः (वा० ६।४।२४) इस वार्त्तिक से हुआ है ॥

—:०:—

परि० चुटू (१।३।७)

कौञ्जायन्यः (कुञ्ज नामक व्यक्ति का पौत्र)

कुञ्ज अर्थवद० (१।२।४५) पूर्ववत् ङस् विभक्ति आकर,
कुञ्ज ङस् समर्थानां प्रथमाद्वा (४।१।८२) गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च (४।१।९८) प्रत्ययः, परश्च
कुञ्ज ङस् च्फञ्, कृत्तद्धित० (१।२।४६) सुपो धातुप्राति० (२।४।७१)
कुञ्ज च्फञ् चुटू, हलन्त्यम्, तस्य लोपः (१।३।९)
कुञ्ज फ पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर आयनेयीनीयियः० (७।१।२)
कुञ्ज आयन् अ, तद्धितेष्वचामादेः (७।२।११७) यस्येति च (६।४।१४८)
कौञ्ज् आयन, कृत्तद्धित० व्रातच्फञोरस्त्रियाम् (५।३।११३)
कौञ्जायन ञ्य, चुटू, तस्य लोपः, यस्येति च लगकर पूर्ववत् सु विसर्जनीय हो गया।
कौञ्जायन्यः बना।

———

शाण्डिक्यः (शण्डिक देश है निवास = अभिजन जिसका, ...

शण्डिक पूर्ववत् प्रथमा विभक्ति का सु आकर
शण्डिक सु शण्डिकादिभ्यो ञ्यः (४।३।९२) से ञ्य प्रत्यय हुआ,
शण्डिक सु ञ्य, कृत्तद्धित० सुपो धातु० चुटू, तस्य लोपः
शण्डिक य पूर्ववत् वृद्धि एवं यस्येति लोप होकर
शाण्डिक्य सु = शाण्डिक्यः, बना।

ब्राह्मणाः (बहुत से ब्राह्मण) यहाँ पर भी जस् विभक्ति के ... प्रकृत सूत्र से इत् संज्ञा हुई है। आगे प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (६।१।१०२) पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर ब्राह्मणाः बना है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वाच् शब्द से 'टा' विभक्ति आकर टकार की प्रकृत सूत्र से इत् संज्ञा होकर वाच् आ = वाचा बना है ॥

———

कुरुचरी (कुरुषु चरति, कुरु देश में घूमने वाली)

कुसुप् चर, *भूवादयो० तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्* (३।१।९२) चरेष्टः (३।२।१६) प्रत्ययः, परश्च

कुसुप् चर् ट, *उपपदमतिङ्* (२।२।१९) से समास होकर *सुपो धातुप्रा०* (२।४।७१) लगा

कुचर् ट चुटू, *तस्य लोपः* (१।३।९)

कुचर् अ अब यहाँ टित् होने से *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से स्त्री-लिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हुआ, तथा पूर्ववत् सु आया,

कुचर ङीप् सु = कुरुचर् ई स्, *हल्ङ्याब्भ्यो०* (६।१।६६)

कुचरी बन गया ।

इसी प्रकार मद्रेषु चरति *मद्रचरी* (मद्रास देश में घूमने वाली) यहाँ जानें ॥

———

उपसरजः (उपसरे जातः, तालाब के समीप पैदा होने वाला)

उपसर ङि जन, पूर्ववत् ही सब होकर *सप्तम्यां जनेर्डः* (३।२।९७) से ड प्रत्यय, तथा समास इत्यादि पूर्ववत् ही होकर,

उपसर जन् ड, चुटू से 'ड्' की इत् संज्ञा हो गई, *तस्य लोपः*, डित्

उपसर जन् अ, होने से *डित्सामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः* (वा० ६।४।१४३) इस वार्त्तिक से टि भाग का लोप हो गया ।

उपसर ज् अ *कृत्तद्धित०* पूर्ववत् सु आकर विसर्जनीय होकर

उपसरजः बना ।

इसी प्रकार मन्दुरायां जातः *मन्दुरजः* (अश्व शाला में पैदा होने वाला) की सिद्धि जानें । केवल यहाँ मन्दुरा को ह्रस्व *ङ्याप्प्रातिपदिकात्* से हो गया है, यही विशेष है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

आन्नः (अन्नं लब्धाः, अन्न को प्राप्त हुआ २)

अन्न	पूर्ववत् अन्न शब्द से द्वितीया विभक्ति आन्न
अन्न अम्	*अन्नाण्णः* (४।४।८५) से ण प्रत्यय हुआ।
अन्न अम् ण	चुटू, *तस्य लोपः*, सुपो धातुप्रा०, तद्धितेष्व० (५१)
अन्न अ	*यस्येति च* (६।४।१४८) पूर्ववत् सु आन्न हो गया।
आन्नः	बना।

—:o:—

परि० लशक्वतद्धिते (१।३।८)

चयनम् (चुनना)

चिञ्	*भूवादयो० धातोः* (३।१।९१) *ल्युट् च* (३।३।११५) *परश्च*
चि ल्युट्	*लशकतद्धिते, हलन्त्यम्, तस्य लोपः*
चि यु	पूर्ववत् *युवोरनाकौ* (७।१।१) से यु को 'अन' तथा (७।३।८४) से अङ्ग को गुण एवं अयादेश होकर,
चयन	पूर्ववत् सु आकर, *अतोऽम्* (७।१।२४) (६।१।१०३) लगा
चयनम्	बना।

इसी प्रकार जि धातु से *जयनम्* (जीतना) की सिद्धि जानें।

भवति (होता है) *पचति* (पकाता है) की सिद्धि परि० पचन्ति के समान ही जानें। शप् के शकार की इत् संज्ञा लुक् होती है। भू शप् तिप्, भू को गुण तथा अवादेश होकर भो गया॥ *भुक्तः भुक्तवान्* की सिद्धि परि० १।१।५ में देखें॥

प्रियंवदः (प्रियं वदतीति, प्रिय बोलने वाला)

प्रिय अम् वद *प्रियवशे वदः खच्* (३।२।३८) से प्रिय उपपद प्रत्यय हुआ।

प्रिय अम् वद खच्, *उपपदमतिङ्* (२।२।१९) *सुपो धातुप्रा०* (२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[...]ादः]

प्रियवद् खच्, लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, तस्य लोपः,

प्रियवद् अ यहाँ 'ख्' की इत् संज्ञा होने से खिदन्त उत्तरपद 'वद' के परे रहते अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् (६।३।६९) से 'मुम्' का आगम प्राप्त हुआ, मिदचोऽन्त्यात् परः (१।१।४६)

प्रिय मुम् वद सु = प्रियम् वद स्, नश्चापदान्तस्य झलि (८।३।२४)

प्रियंवदः बना।

इसी प्रकार वशं वदति = वशंवदः (प्यारा वचन बोलने वाला) की सिद्धि भी जानें॥

———

भङ्गुरम् (नाशवान्)

भञ्ज भूवादयो० भञ्जभासमिदो घुरच् (३।२।१६१) से घुरच् प्रत्यय हुआ।

भञ्ज् घुरच् लशक्वतद्धिते से 'घ्' की इत् संज्ञा हुई, हलन्त्यम् तस्य लोपः

भञ्ज् उर चजोः कु घिण्ण्यतोः (७।३।५२) स्थानेऽन्तरतमः (१।१।४९)

भङ्ग् उर नश्चापदान्तस्य झलि (८।३।२४) अनुस्वारस्य० (८।४।५७)

भङ्ग् उर कृत्तद्धित० पूर्ववत् सु आकर अतोऽम् (७।१।२४) लगा।

भङ्गुर अम् = भङ्गुरम्, बन गया।

———

ग्लास्नुः (ग्लानि करने वाला) जिष्णुः, भूष्णुः की सिद्धि परि० १।१। में देखें। ग्स्नु प्रत्यय के 'ग्' की इत् संज्ञा प्रकृत सूत्र से हुई है, गित् होने से १।१।५ से गुण निषेध, एवं भूष्णुः में श्र्युकः किति (७।२।११) से इट् निषेध भी हुआ है। ग्लास्नुः में ग्लै धातु है, सो उसे आदेच उपदेशे० (६।१।४४) से आत्व हुआ है॥

वाच् शब्द से ङस् विभक्ति होकर उसके 'ङ्' की प्रकृत सूत्र से इत् संज्ञा होकर 'वाच् अस्' रहा। पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर वाचः बना है॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० अनुदात्तङित० (१।३।१२)

आस्ते (बैठता है)

आस	भूवादयो० उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१।३।२) तथा अदर्शनं लोपः
आस्	'आस' में पाणिनि जी ने 'स' में 'अ' अनुदात्त था, सो उसकी इत् संज्ञा हुई है, अतः यह अनुदात्तेत् है, अनुदात्तेत् धातु होने से पूर्ववत् सारे सूत्र प्रकृत सूत्र से आत्मनेपद का 'त' आया। कर्तरि १।६८) से शप् प्रत्यय भी होकर,
आस् शप् त	अदिप्रभृतिभ्यः शपः (२।४।७२) प्रत्ययस्य लुक् (१।१।६०)
आस् त	टित आत्मनेपदानां० (३।४।७९) अचोऽन्त्यादि टि (८
आस्ते	बना।

वस और एध में भी अनुदात्त अकार अनुबन्ध पाणिनि जी ने था, सो ये अनुदात्तेत् धातुएँ हैं, अतः प्रकृत सूत्र से आत्मनेप पूर्ववत् वस्ते (निवास करता है) एधते (बढ़ता है) बन गया। भ्वादिगण की है, अतः शप् का लुक् नहीं हुआ है। एध् धातु बना॥

———

सूते यहाँ षूङ् धातु है, सो ङित् होने से प्रकृत सूत्र से होकर आस्ते के समान ही सूते (पैदा करता है) बना है। षूङ् को 'स्' धात्वादेः षः सः (६।१।६२) से हो जाता है। शीङ् धातु (सोता है) की सिद्धि भी इसी प्रकार जानें॥

—:०:—

परि० भावकर्मणोः (१।३।१३)

आस्यते (बैठा जाता है)

आस	पूर्ववत् वर्त्तमान काल में लट् प्रत्यय आकर,
आस् लट्	लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः (३।४।६९) से ल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[पादः]

के अकर्मक होने से भाव में लकार आया है। पूर्ववत् सब सूत्र लादेश के लगकर, *भावकर्मणोः* से आत्मनेपद हुआ।

आस् त — *तिङ्शित् सार्वधातुकम्* (३।४।११३) *सार्वधातुके यक्* (३।१।६७) से भाववाची सार्वधातुक के परे रहते यक् प्रत्यय हुआ।

आस् यक् त — *टित आत्मनेपदानां टेरे* (३।४।७९) *अचोऽन्त्यादि टि* (१।१।६३)

आस् यक् ते = आस्यते, बन गया।

———

चिन्त्यते (चिन्ता की जाती है)

चिति — *भूवादयो० उपदेशेऽजनुनासिक इत्, तस्य लोपः*

चित् — *इदितो नुम्धातोः* (७।१।५८) से नुम् आगम प्राप्त हुआ *मिदचोऽन्त्यात् परः* (१।१।४६)

चि नुम् त् = चिन्त्, *सत्या···चुरादिभ्यो णिच्* (३।१।२५) से णिच् प्रत्यय हुआ।

चिन्त् णिच् = इ, *सनाद्यन्ता धातवः* (३।१।३२) से 'चिन्ति' की धातु संज्ञा होकर पूर्ववत् 'यक् त' आ गये।

चिन्ति यक् त — *णेरनिटि* (६।४।५१) से णिच् के 'इ' का लोप होकर,

चिन्त् य त — पूर्ववत् सब होकर,

चिन्त्यते — बना।

इसी प्रकार ग्लै धातु को *आदेच उपदेशे०* (६।१।४४) से आत्व होकर, 'ग्ला' रहा। पूर्ववत् 'यक् त' आकर *ग्लायते* (ग्लानि की जाती है) बना है। स्वप धातु से सुप्यते (सोया जाता है) यहाँ भी पूर्ववत् यक् त आकर, यक् के परे रहते *वचिस्वपियजादीनां०* (६।१।१५) से स्वप् को सम्प्रसारण हो गया। स् उ अ प् य क् त = *सम्प्रसारणाच्च* (६।१।१०४) लगकर सुप्यते बन गया है॥

खाद तथा पठ धातु के सकर्मक होने से कर्मवाच्य में पूर्ववत् ही खाद्यते, पठ्यते बनेगा॥

———

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

क्रियते (किया जाता है)

डुकृञ् पूर्ववत् ही सब होकर,
कृ य ते *रिङ् शयग्लिङ्क्षु* (७।४।२८) से ऋकारान्त धातु को रिङ् आदेश प्राप्त हुआ, *ङिच्च* (१।१।५२) से कृ को हुआ।
कृ रिङ् य ते = कृ रि य ते = क्रियते, बन गया।

इसी प्रकार हृञ् हरणे धातु से *ह्रियते* (हरण किया जाता है) भी जानें॥

—:०:—

परि० कर्त्तरि कर्म० (१।३।१४)

व्यतिलुनते (परस्पर एक दूसरे का काटते हैं)

लूञ् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर लट् प्रत्यय आया,
वि अति लू लट, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर तथा प्रकृत सूत्र से अर्थात् हार अर्थ में आत्मनेपद होकर बहुवचन का 'झ' हुआ।
वि अति लू शप् झ, *क्र्यादिभ्यः श्ना* (३।१।८१) से शप् के स्थान में हुआ।
वि अति लू श्ना झ, *इको यणचि* (६।१।७४) *तिङ्शित् सार्वधातुकम्* व्यति लू ना झ (३।४।११३) *सार्वधातुकमपित्* (१।२।४) *ङिच्चापित्* (६।४।११२)
व्यति लू न् झ, *आत्मनेपदेष्वनतः* (७।१।५) से 'झ' को 'अत' हुआ।
व्यतिलून् अत् अ, *प्वादीनां ह्रस्वः* (७।३।८०) से 'लू' को ह्रस्व हो गया।
व्यतिलुनत *टित आत्मने०* (३।४।७९)
व्यतिलुनते बना।

इसी प्रकार पूञ् पवने धातु से *व्यतिपुनते* (एक दूसरे का शोधन करते हैं) भी बनेगा॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० न गतिहिंसार्थेभ्यः (१।३।१५)

व्यतिगच्छन्ति (एक दूसरे के लिये जाते हैं)

वि अति गम्लृ, पूर्ववत् सारे सूत्र लगकर, पूर्व सूत्र से आत्मनेपद प्राप्त हुआ, सो प्रकृत सूत्र से निषेध होकर,

व्यति गम् शप् झि इषुगमियमां छः (७।३।७७) अलोऽन्त्यस्य (१।१।५१)

व्यतिगच्छ् अ झि, छे च (६।१।७१) से तुक् आगम प्राप्त हुआ, आद्यन्तौ टकितौ (१।१।४५)

व्यति ग तुक् छ् अ झि, स्तोः श्चुना श्चुः (८।४।३९) झोऽन्तः (७।१।३)

व्यतिगच्छ् अ अन्ति, अतो गुणे (६।१।९४)

व्यतिगच्छन्ति बना।

सृप्लृ धातु से इसी प्रकार 'व्यति सृप् अ अन्ति' होकर पुगन्तलघूपधस्य च (७।३।८६) से गुण हुआ, सो व्यतिसर्प अन्ति = व्यतिसर्पन्ति (एक दूसरे के लिये सरकते हैं) बना। हिसि धातु से व्यतिहिंसन्ति (एक दूसरे को मारते हैं) में भी सब पूर्ववत् है, केवल यहाँ यह विशेष है कि हिसि धातु के इ की इत्संज्ञा होकर इदितो नुम् धातोः (७।१।५८) से नुम् होकर हिन्स बना, तथा रुधादिभ्यः श्नम् (३।१।७८) से श्नम् प्रत्यय हुआ और वह मिदचोऽन्त्यात्० (१।१।४६) से अन्त्य अच् से परे बैठा, सो व्यति हि श्नम् न् स् अन्ति = व्यतिहिन न् स् अन्ति रहा। श्नसोरल्लोपः (६।४।१११) से 'न' के 'अ' का लोप होकर व्यतिहिन् न् स् अन्ति रहा अब श्नान्नलोपः (६।४।२३) से पर नकार का लोप हुआ तो व्यतिहिनसन्ति रहा। नश्चापदान्तस्य झलि (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार होकर व्यतिहिंसन्ति बन गया॥

व्यतिघ्नन्ति (एक दूसरे को मारते हैं)

हन्

पूर्ववत् ही सब होकर,

व्यति हन् शप् झि, अदिप्रभृतिभ्यः शपः (२।४।७२)

व्यतिहन् अन्ति सार्वधातुकमपित् (१।२।४) गमहनजनखन० (६।४।९८)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

व्यतिहन् अन्ति, *हो हन्तेर्ञिण्नेषु* (७।३।५४) से 'ह्' को कुत्व
स्थानेऽन्तरतमः (१।१।४९) से अन्तरतम 'ह्' को
व्यतिघ्नन्ति बना ॥

—:०:—

परि० परिव्यवेभ्यः क्रियः (१।३।१८)

परिक्रीणीते (सब प्रकार से खरीदता है)

परि डुक्रीञ् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, तथा प्रकृत सूत्र से
होकर, 'शप् त' आया।
परि क्री शप् त *क्र्यादिभ्यः श्ना* (३।१।८१) से शप् के स्थान में
परि क्री श्ना त, *ई हल्यघोः* (६।४।११३) *अलोन्त्यस्य* (१।१।५२)
परि क्री नी त *अट् कुप्वाङ् नुम्व्यवायेऽपि* (८।४।२)
परि क्री णी त, *टित आत्मनेपदानां टेरे* (३।४।७९)
परिक्रीणीते बना।

इसी प्रकार *विक्रीणीते* (बेचता है) *अवक्रीणीते* (खरीदता
समझें ॥

—:०:—

परि० आङो दोऽना० (१।३।२०)

आदत्ते (ग्रहण करता है)

डुदाञ् लट् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, तथा प्रकृत सूत्र से
होकर,
आङ् दा शप् त, *जुहोत्यादिभ्यः०* (२।४।७५) *प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुप्*
आ दा त *श्लौ* (६।१।१०) *एकाचो द्वे प्रथमस्य* (६।१।१)
आ दा दा त *पूर्वोऽभ्यासः* (६।१।४) *हस्वः* (७।४।५९)
आ द दा त *सार्वधातुकमपित्* (१।२।४) *श्नाभ्यस्तयोरातः* (६।४।११२)
आ द द् त *खरि च* (८।४।५४) से 'द्' को 'त्' तथा शेष पूर्ववत्
आदत्ते बना ॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० आङो यमहनः (१।३।२८)

आयच्छते (लम्बा होता है)

आङ् यम् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, तथा प्रकृत सूत्र से आत्मनेपद होकर, शप् त आया।

आ यम् शप् त = आ यम् अ त, *इषुगमियमां छः* (७।३।७७) *अलोऽन्त्यस्य*
आ य छ् अ त, (१।१।५१) *छे च* (६।१।७१) *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५)
आ य तुक् छ् अ त, *स्तोः श्चुना श्चुः* (८।४।३९)
आ यच्छ त *टित आत्मनेपदानां०* (३।४।७९)
आयच्छते बना।

———

आहते (चोट करता है)

आ हन् पूर्ववत् ही सब होकर,
आ हन् शप् त, *अदिप्रभृतिभ्यः शपः* (२।४।७२) *प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः* (१।१।६०)
आ हन् ते, *अनुदात्तोपदेश०* (६।४।३७) से 'हन्' के अनुनासिक का लोप होकर
आहते बना।

आघ्नाते यहाँ भी पूर्ववत् ही "आ हन् शप् आताम्" = आ हन् आताम् रहा। *गमहनजन०* (६।४।९८) से 'हन्' की उपधा का लोप होकर 'आहन् आताम्' रहा। *हो हन्तेर्ञि०* (७।३।५४) से हन् के 'ह्' को कुत्व तथा पूर्ववत् ही 'आताम्' की 'टि' को एत्व होकर आ घ्न् आत् ए = आघ्नाते बन गया॥

—:०:—

परि० गन्धनावक्षेपण० (१।३।३२)

उत्कुरुते (चुगली करता है)

उत्कृञ् प्रकृत सूत्र से आत्मनेपद, होकर एवं सब सूत्र लगकर,
उत् कृ शप् त, *तनादिकृञ्भ्य उः* (३।१।७९) से शप् के स्थान में 'उ' हो गया।
उत् कृ उ त *सार्वधातुकार्धधातुकयोः* (७।३।८४) *उरण्रपरः* (१।१।५०)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उत् कर् उ त अत उत्सार्वधातुके (६।४।११०) से 'त' सार्वधातुक रहते 'कर्' के 'अ' को 'उ' हो गया।
उत् कुर् उ ते = उत्कुरुते, बन गया।

———

एधोदकस्य उपस्कुरुते में दक कर्म में षष्ठी कृत्वः प्रतियत्ने (२।३ से हुई है। इसी प्रकार काण्डं गुडस्य उपस्कुरुते यहाँ गुडस्य में भी उपस्कुरुते यहाँ उप पूर्वक 'कृ' धातु से उपकुरुते पूर्ववत् ही होकर उ प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु (६।१।१३४) से 'उप' उपसर्ग से उत्त धातु को सुट् आगम होकर उप सुट् कुरुते = उपस्कुरुते बन गया है।

—:०:—

परि० सम्माननोत्० (१।३।३६)

उन्नयते (उछालता है)

णीञ् — भूवादयो० णो नः (६।१।६३) से 'ण्' को न् होकर
उत् नी — प्रकृत सूत्र से उत्सञ्जन अर्थ में आत्मनेपद तथा सब होकर
उत् नी शप् त, सार्वधातुकार्ध० (७।३।८४) से गुण होकर
उत् ने अ त — एचोऽयवायावः (६।१।७५)
उत्नयते — यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (८।४।४४) से त् को न् हो
उन्नयते — बना।

—:०:—

परि अपह्नवे ज्ञः (१।३।४४)

अपजानीते

अप ज्ञा — प्रकृत सूत्र से आत्मनेपद तथा पूर्ववत् सब
अप ज्ञा शप् त क्र्यादिभ्यः श्ना (३।१।८१)
अप ज्ञा श्ना त ज्ञाजनोर्जा (७।३।७९) से शित् परे रहते 'ज्ञा' को आदेश हुआ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अप जा ना ते *सार्वधातुकमपित्* (१।२।४) ई *हल्यघो:* (६।४।११३) से ईत्व होकर

अपजानीते बना।

—:०:—

परि० ज्ञाश्रुस्मृदृशां सन: (१।३।५७)

सन्नन्त धातुओं की सिद्धियाँ परि० १।३।६ में कर आये हैं, अत: उन कार्यों को छोड़कर विशेष२ यहाँ दिखाते हैं। ज्ञा धातु से *जिज्ञासते* (जानना चाहता है) की सिद्धि में तो कुछ भी विशेष नहीं है।

शुश्रूषते (सुनना चाहता है)

श्रु *भूवादयो० धातो: कर्मण: समानकर्तृकादिच्छायां वा* (३।१।७)

श्रु सन् *आर्धधातुकस्येड्०* (७।२।३५) से इट् आगम प्राप्त हुआ, पर *श्रुयुक: किति* (७।२।११) से निषेध हो गया। अब *सार्वधातु-कार्ध०* (७।३।८४) से 'श्रु' अङ्ग को गुण प्राप्त हुआ, पर उसका भी इको *झल्* (१।२।९) से झलादि सन् के कित्वत् हो जाने से *क्ङिति च* (१।१।५) से निषेध हो गया। *अज्झनगमां सनि* (६।४।१६) से दीर्घ होकर,

श्रूस पूर्ववत् द्वित्व हलादि शेष तथा *ह्रस्व:* (७।४।५९) से ह्रस्व होकर,

शुश्रूस पूर्ववत् *सनाद्यन्ता०* (३।१।३२) से धातु संज्ञा होकर, प्रकृत सूत्र से आत्मनेपद का विधान होकर 'शप् त' आया,

शुश्रूस शप् त पूर्ववत् ही सब होकर

शुश्रूषते बन गया।

———

सुस्मूर्षते (स्मरण करना चाहता है)

स्मृ सन् पूर्ववत् सब होकर, *अज्झनगमां सनि* (६।४।१६) से दीघ होकर,

स्मृ सन् *उदोष्ठ्यपूर्वस्य* (७।१।१०२) *उरण्रपर:* (१।१।५०)

स्मूर्_स *हलि च* (८।२।७७) से दीर्घ होकर,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

स्मूर्_स पूर्ववत् द्वित्व होकर
स्मूर्_स्मूर्_स, *शर्पूर्वाः खयः* (७।४।६१) से खय् शेष रहा शेष
हो गया
सुस्मूर्_स पूर्ववत् ही सब होकर, तथा आत्मनेपद प्रकृत सूत्र से
सुस्मूर्षते बन गया।

———

दिदृक्षते (देखना चाहता है)

दृशिर् पूर्ववत् सब होकर,
दृश् सन् पूर्ववत् गुण प्राप्त हुआ, पर *हलन्ताच्च* (१।२।१०) से
को कित्वत् होकर *क्ङिति च* से गुण निषेध हो गया।
दृश् स पूर्ववत् द्वित्वादि कार्य तथा *सन्यतः* (७।४।७९) से
दि दृश्_स *ब्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः* (८।२।३६)
दि दृष्_स *षढोः कः सि* (८।२।४१) *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९)
दि दृक्_ष शेष पूर्ववत् होकर, तथा आत्मनेपद प्रकृत सूत्र से
दिदृक्_ष शप् त = दिदृक्षते, बन गया।

—:o:—

परि० आम्प्रत्ययवत्० (१।३।६३)

ईक्षाञ्चक्रे (उसने देखा)

ईक्ष दर्शने *भूवादयो० परोक्षे लिट्* (३।२।११५) प्रत्ययः, परश्च
ईक्ष् लिट् *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति होकर,
ईक्ष् ल् सु *गुरु* (१।४।११) *इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः* (३।१।३६)
से लिट् परे रहते आम् प्रत्यय हुआ।
ईक्ष्_आम् ल् सु, *आमः* (२।४।८१) से आम् प्रत्यय से उत्तर लिट् का
हो गया, *प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः* (१।१।६०)
ईक्ष् आम् = ईक्षाम् सु, *कृन्मेजन्तः* (१।१।३८) *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२)
ईक्षाम् *कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि* (३।१।४०) से आम् प्रत्ययान्त पूर्व
से कृञ् का अनुप्रयोग तथा पुनः लिट् प्रत्यय हुआ।
ईक्षाम् कृ लिट्, अब पूर्ववत् सब सूत्र लगकर प्रकृत सूत्र से आ
नेपद का विधान हुआ, क्योंकि आम् प्रत्ययान्त ईक्ष

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

आत्मनेपदी है, सो उसके अनुप्रयोग 'कृञ्' धातु से भी आत्मनेपद होगा।

ईहाम् कृ त *लिटस्तझयोरेशिरेच्* (३।४।८१) *अनेकाल्शित्सर्वस्य* (१।१।५४)
ईहाम् कृ एश्, *इको यणचि* (६।१।७४) से यणादेश होकर,
ईहाम् क्र् ए *लिटि धातोरनभ्यासस्य* (६।१।८) *द्विर्वचनेऽचि* (१।१।५८)
ईहाम् कृ क्र् ए, *पूर्वोऽभ्यासः*(६।१।४) *उरत्*(७।४।६६) *उरण्रपरः* (१।१।५०)
ईहाम् कर् क्र् ए, *हलादिः शेषः* (७।४।६०) *कुहोश्चुः* (७।४।६२)
ईहाम् चक्रे *मोऽनुस्वारः* (८।३।२३) *अनुस्वारस्य ययि०* (८।४।५७)
ईहाञ्चक्रे बना।

इसी प्रकार ईह चेष्टायाम् धातु से ईहाञ्चक्रे (उसने चेष्टा की) की सिद्धि जानें, केवल यहाँ संयोग परे न होने से *दीर्घं च* (१।४।१२) से गुरु संज्ञा होकर आम् प्रत्यय आयेगा यही विशेष है।

—:o:—

परि० प्रोपाभ्यां युजेर० (१।३।६४)

प्रयुङ्क्ते (प्रयोग करता है)

प्र युजिर् पूर्ववत् ही सब सूत्र लगकर, तथा प्रकृत सूत्र से आत्मनेपद का विधान होकर,

प्र युज् त *रुधादिभ्यः श्नम्* (३।१।७८) *मिदचोन्त्यात् परः* (१।१।४६)
प्र यु श्नम् ज् त = प्र यु न ज् त, *श्नसोरल्लोपः* (६।४।१११) से 'श्न' के 'अ' का लोप हुआ,
प्र यु न् ज् त, *चोः कुः* (८।२।३०) *स्थानेऽन्तरतमः* (१।१।४९)
प्र यु न ग् त *खरि च* (८।४।५४) से चर्त्व होकर,
प्र यु न क् ते *नश्चापदान्तस्य झलि*(८।३।२४) *अनुस्वारस्य ययि०* (८।४।५७)
प्रयुङ्क्ते बना।

इसी प्रकार उपयुङ्क्ते (उपयोग करता है) की सिद्धि जानें॥

—:o:—

परि० न पादम्याङ्यमाङ्यस० (१।३।८९)

पाययते (पिलाता है)

भूवादयो० हेतुमति च (३।१।२६) *प्रत्ययः, परश्च*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पा णिच् शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् (७।३।३७) आद्यन्तौ टकितौ (१।१।४५)

पा युक् इ = पायि, सनाद्यन्ता धातवः (३।१।३२) आदि पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, तथा निगरणार्थ होने से परस्मैपद की प्राप्ति में सूत्र से परस्मैपद का प्रतिषेध होकर आत्मनेपद हुआ,

पायि शप् त पूर्ववत् गुण तथा अयादेशादि होकर,

पाययते बन गया ॥

———

आयामयते (फैलाता है)

आङ् यम पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

आ यम् णिच् = इ, अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि होकर,

आ याम् इ अब यहाँ घटादयो मितः धातुपाठ के सूत्र से 'यम्' के मित् होने से मितां ह्रस्वः (६।४।९२) से ह्रस्व प्राप्त हुआ, परन्तु धातु पाठ के सूत्र यमोऽपरिवेषणे से मित् का प्रतिषेध होने से ह्रस्व नहीं हुआ,

आयामि पूर्ववत् सब सूत्र लगकर तथा चलनार्थक होने से परस्मैपद का प्रतिषेध होकर,

आयामि शप् त = आयामे अ ते = आयामयते, बन गया।

दमयते में कुछ भी विशेष नहीं है केवल अत उपधायाः से जो वृद्धि हुई थी उसको जनीजृष्क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च से मित्संज्ञा होकर मितां ह्रस्वः से ह्रस्व हो गया है ॥ शेष सिद्धियाँ पूर्ववत् ही वृद्धि इत्यादि होते हैं समझें ॥

—:०:—

परि० वा क्यषः (१।३।९०)

लोहितायति (अलोहितो लोहितो भवति, जो लाल नहीं वह लाल होता है)

लोहित सु पूर्ववत् सब सूत्र लगकर लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् (३।१।१३) प्रत्ययः, परश्च

लोहित क्यष् = लोहित य, पूर्ववत् सनाद्यन्ता धातवः इत्यादि सब सूत्र लगकर, तथा वा क्यषः से परस्मैपद का विधान होकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लोहित य शप् तिप्, *अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः* (७।४।२५) से दीर्घ होकर, लोहिताय अ ति = लोहितायति, बना।

पक्ष में प्रकृत सूत्र से परस्मैपद न होकर *लोहितायते* भी इसी प्रकार बनेगा।

पटपटायति (पटत् पटत् करोति, पटपट शब्द करता है)

पटत् *अर्थवदधातु०* (१।२।४५) *डाचि द्वे भवतः* (वार्त्तिक ८।१।१२) इस वार्त्तिक से डाच् प्रत्यय के विषय में 'पटत्' शब्द को द्वित्व हुआ, 'डाचि' यहाँ विषय सप्तमी है अतः डाच् आने से पूर्व ही द्वित्व हो गया।

पटत्पटत् *अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्* (५।४।५७) *प्रत्ययः, परश्च*,

पटत्पटत् डाच्, *तस्य परमाम्रेडितम्* (८।१।२) से उस द्वित्व किये हुये पर वाले 'पटत्' की आम्रेडित संज्ञा हो गई। आम्रेडित संज्ञा होने से *नित्यमाम्रेडिते डाचि* (*महाभाष्य* वा० ६।१।९६) इस महाभाष्य की वार्त्तिक से जो डाच्परक आम्रेडित उसके परे रहते, उससे पूर्व वाले पटत् के त् को पररूप एकादेश हुआ।

पटत् डा = आ, *यचि भम्* (१।४।१८) *टेः* (६।४।१४३) से टि (अत्) भाग का लोप हुआ,

पट् आ *लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्* (३।१।१३) *प्रत्ययः, परश्च*

पट् आ क्यष् = पटपटाय, *सनाद्यन्ता धातवः* इत्यादि पूर्ववत् सब सूत्र लगाकर तथा *वा क्यषः* से परस्मैपद का विधान होकर,

पटपटाय शप् तिप् = पटपटाय अ ति, *अतो गुणे* (६।१।९४) लगकर,

पटपटायति बन गया।

पक्ष में प्रकृत सूत्र से परस्मैपद न होकर *पटपटायते* भी बनेगा॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० द्युद्भ्यो लुङि (१।३।९१)

व्यद्युतत् (विशेष रूप से प्रकाशित हुआ)

वि द्युत लुङ् पूर्ववत् लुङ्, लकार में परि० १।१।१ के अनुसार समान सब सूत्र लगकर

वि द्युत् च्लि लुङ्, प्रकृत सूत्र से परस्मैपद होकर, पूर्ववत् सब लगकर

वि अट् द्युत् च्लि तिप्, पुषादिद्युताद्यृलृदितः परस्मैपदेषुअंग-च्लि को अङ् आदेश, तथा क्ङिति च (१।१।५) से निषेध होकर,

वि अ द्युत् अङ् ति, इको यणचि (६।१।७४) से यणादेश तथा सूत्र लगकर,

व्यद्युत् अ त् = व्यद्युतत्, बना।

इसी प्रकार अलुठत् (उसने मारा) में भी समझें॥

———

व्यद्योतिष्ट

वि द्युत् पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

वि अट् द्युत् सिच् त, प्रकृत सूत्र से पक्ष में परस्मैपद न होने से लादेश के सूत्र लगे,

वि अ द्युत् स् त आर्धधातुकस्येड् वलादेः (७।२।३५) इको यणचि

व्यद्युत् इट् स् त पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर पुगन्तलघूपधस्य च (७।३।८६) से गुण हुआ

व्यद्योत् इ स् त आदेशप्रत्यययोः (८।३।५९) ष्टुना ष्टुः (८।४।४०)

व्यद्योतिष्ट बना।

इसी प्रकार अलोठिष्ट में भी समझें।

—:o:—

परि० वृद्भ्यः स्यसनोः (१।३।९२)

वर्त्स्यति (वह बरतेगा)

वृतु वर्त्तने भूवादयो० लृट् शेषे च (३।३।१३)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

वृत् लृट् — *स्यतासी लृलुटोः* (३।१।३३) से लृट् परे रहते स्य प्रत्यय हुआ।

वृत् स्य ल — अब *आर्धधातुकस्येड् वलादेः* (७।२।३५) से इट् आगम प्राप्त हुआ, पर न *वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः* (७।२।५९) से निषेध हो गया। पूर्ववत् लादेश के सूत्र लगकर, तथा प्रकृत सूत्र से परस्मैपद का विधान होकर,

वृत् स्य तिप् , पूर्ववत् अङ्गसंज्ञा होकर *पुगन्तलघूपधस्य च* (७।३।८६) से गुण हुआ।

वर्त् स्य ति = वर्त्स्यति, बना।

———

अवर्त्स्यत् (वह बरतता)

वृत् — पूर्ववत् सब सूत्र लगकर *लिङ्निमित्ते लृङ्०* (३।३।१३९) से लृङ् प्रत्यय हुआ,

वृत् लङ् — पूर्ववत् प्रकृत सूत्र से परस्मैपद का विधान होकर स्य प्रत्यय हुआ, तथा सब सूत्र लगकर,

वृत् स्य ति — पूर्ववत् अडागम गुण तथा *इतश्च* (३।४।१००) से 'ति' के 'इ' का लोप होकर

अवर्त्स्यत् — बना।

विवृत्सति (बरतना चाहता है) में सन्नन्त की सिद्धि की प्रक्रिया परि० ३।१।८ के रुरुदिषति के समान ही जानें॥ जब पक्ष में परस्मैपद प्रकृत सूत्र से नहीं होगा, तो लृट् लकार में *वर्त्तिष्यते* बनेगा, इस पक्ष में *वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः* से इट् आगम निषेध नहीं होगा सो 'वर्त् इट् स्य त', यहाँ पत्व होकर वर्त्तिष्यते बनेगा।

अवर्त्तिष्यत विवर्त्तिषते यहाँ भी इट् आगम हो जावेगा, और कुछ भी विशेष नहीं है॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः

परि० आकडारादेका संज्ञा (१।४।१)

भेत्ता (तोड़ने वाला)

भिदिर् परि० १।१।२ के चेता के समान यहाँ तृच् आया,
भिद् तृच् = भिद् तृ, अब यहाँ ह्रस्वं लघु (१।४।१०) से लघु संज्ञा
अर्थात् यहाँ लघु संज्ञा को अवकाश मिला। लघु संज्ञा
से पुगन्तलघू०(७।३।८६)से गुण हो गया। शेष विधि
भेद् तृ १।१।२ के चेता के समान जानें, केवल यहाँ
(८।४।५४) से 'द्' को 'त्' ही विशेष हुआ।
भेत्ता बना।

इसी प्रकार छेत्ता में जानें॥

शिक्षा (पठन, पाठन)

शिक्ष भूवादयो० यहाँ 'शिक्ष्' के 'इ' की संयोगे गुरु (१।
से गुरु संज्ञा हुई, अर्थात् गुरु संज्ञा को अवकाश
गुरु संज्ञा होने से गुरोश्च हलः (३।३।१०३)
प्रत्यय हुआ।
शिक्ष् अ कृत्तद्धित० (१।२।४६) अजाद्यतष्टाप् (४।१।४) अत
शिक्ष् अ टाप् सु = शिक्ष आ स्, हल्ङ्याब्भ्यो० (६।१।६८) से
लोप होकर
शिक्षा बना।

इसी प्रकार भिक्षा यहाँ भी जानें॥

अब यहाँ अततक्षत् इस उदाहरण में दोनों गुरु लघु संज्ञा
हुईं, जो कि अन्यत्र सावकाश भी हैं, सो कौन हो? इसका
प्रकृत सूत्र ने किया॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अततक्षत् (उसने छीला)

परि० १।१।५८ के आटिटत् के समान ही यहाँ सब कार्य हुआ, केवल *द्विर्वचनेऽचि* नहीं लगा।

तक्षू
अट् तक्ष् तक्ष् णिच् चङ् त् = अ त तक्ष् इ अ त्, अब यहाँ 'तक्ष्' के 'अ' की पूर्ववत् गुरु, लघु दोनों संज्ञाएँ प्राप्त हैं, सो प्रकृत सूत्र से एक ही संज्ञा होने का नियम हुआ, वह कौन सी हो तो परत्व से गुरु संज्ञा ही हुई। गुरु संज्ञा होने से *सन्वल्लघुनि चङ्परे०* (७।४।९३) से लघु धात्वक्षर न होने से सन्वद्भाव नहीं होता, यदि यहाँ लघु संज्ञा भी हो जाये, तो सन्वद्भाव होकर, *सन्यतः*(७।४।७९) लगकर 'अतीतक्षत्' ऐसा अनिष्ट रूप बनेगा, सो 'एक ही संज्ञा हो' इस नियम से नहीं होता और अततक्षत् ही बनता है।

अ त तक्ष् अ त् = अततक्षत्, बना।

—:०:—

परि० यू स्त्र्याख्यौ नदी (१।४।३)

कुमार्यै (कुमारी के लिए)

कुमारी
कुमारी ङे
अर्थवद० पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
कुमारी शब्द यहाँ ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग का वाचक है, अतः प्रकृत सूत्र से नदी संज्ञा हो गई, नदी संज्ञा होने से *आण्नद्याः* (७।३।११२) से आट् आगम हो गया। *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५)

कुमारी आट् ए, *इको यणचि* (६।१।७४)
कुमार्या ए
कुमार्यै
आटश्च (६।१।८७) से वृद्धि एकादेश होकर,
बना।

इसी प्रकार ङस्, ङसि, ङि विभक्तियों के परे रहते भी नदी संज्ञा होकर *आण्नद्याः* से आट् आगम होता है, यही नदी संज्ञा का फल है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इसी प्रकार गौर्यै (गौरी के लिए) शार्ङ्गरव्यै, ब्रह्मबन्ध्वै, यवाग्वै की सिद्धि भी जानें॥

—:०:—

परि० नेयङुवङ्० (१।४।४)

हे श्रीः (हे लक्ष्मी)

श्री	पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, सम्बोधने च (२।३।४९) से सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति आई।
श्री सु	अब यू स्त्र्याख्यौ नदी (१।४।३) से यहाँ श्री की नदी संज्ञा प्राप्त हुई, पर श्री शब्द इयङ् स्थानी है, अर्थात् इसको अचि श्नुधातु०(६।४।७७) से इयङ् आदेश होता है। श्रियः आदि रूप बनते हैं, अतः प्रकृत सूत्र से नदी संज्ञा का प्रतिषेध हो गया, यदि नदी संज्ञा हो जाती तो अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः (७।३।१०७) से 'श्री' को ह्रस्व हो जाता सो अब नहीं होता।
श्री स्	पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर
हे श्रीः	बना।

हे भ्रूः (हे भौंहो) यहाँ भी भ्रू शब्द उवङ् स्थानी है, अर्थात् इसको भ्रुवः आदि रूप बनते हैं सो पूर्ववत् ही नदी संज्ञा का प्रतिषेध होकर सिद्धि जानें॥

—:०:—

परि० डिति ह्रस्वश्च (१।४।६)

नदी संज्ञा पक्ष में कृति शब्द से कृत्यै (कृति के लिये) कृतये (कृति के लिये) की सिद्धि परि० १।४।३ के कुमार्यै के समान जानें॥

कृतये

कृति	पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
कृति ङे	जब पक्ष में प्रकृत सूत्र से नदी संज्ञा नहीं हुई तो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ध्यसखि (१।४।७) से घि संज्ञा होकर, घेर्ङिति (७।३।१११) से गुण हुआ।

एचोऽयवायावः (६।१।७५) से अयादेश होकर, बना।

इसी प्रकार घि संज्ञा पक्ष में धेनवै की सिद्धि जानें॥

श्रियै (लक्ष्मी के लिए)

इस अवस्था में प्रकृत सूत्र से नदी संज्ञा होकर आएनद्याः (७।३।११२) से आट् आगम हुआ।

अचि श्नुधातुभ्रुवां० (६।४।७७) से इयङ् आदेश होकर,

श्रियङ् आ ए = श्रिय् आ ए, आटश्च (६।१।८७) बना।

इसी प्रकार भ्रुवै में भी जानें॥

जब पक्ष में नदी संज्ञा नहीं हुई तो आट् आगम नहीं हुआ, शेष सब पूर्ववत् ही होकर श्रिय् ए = श्रिये भ्रुवै बन गया।

—:o:—

परि० ह्रस्वं लघु (१।४।१०)

मेत्ता, छेत्ता की सिद्धि परि० १।४।१ में देखें॥

अचीकरत् (उसने कराया)

परि० १।१।५८ के आटिटत् के समान सब कार्य होकर, अचो ञ्णिति (७।२।११५) से वृद्धि भी हो गई।

कारि चङ् तिप् = कारि अ त्, पूर्ववत् ही णि का लोप, एवं णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः (७।४।१) से उपधा ह्रस्वत्व होकर

कर् अ त् चङि (६।१।११) णौ कृतम् स्थानिवद् भवति (परिभाषा ७।४।८०) इस परिभाषा के अनुसार रूपातिदेश स्थानिवत् होकर

कर् अ त् पूर्वोऽभ्यासः (६।१।४) उरत् (७।४।६६) उरण्रपरः (१।१।५०)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कर् कर् अ त्, हलादिः शेषः (७।४।६०) कुहोश्चुः (७।४।६२) रतः (१।१।४६) सूत्र लगे तथा अडागम हुआ
अट् च कर त् ह्रस्वं लघु से 'च' के 'अ' की लघु संज्ञा होने से धुनि चङ्परेऽनग्लोपे (७।४।६३) से लघु धातुका ह्रास हुआ सो सन्यतः (७।४।७९) से अभ्यास को होकर,
अचि कर त् दीर्घो लघोः (७।४।९४) से अभ्यास को दीर्घ होकर,
अचीकरत् बना ॥

इसी प्रकार हृञ् धातु से अजीहरत् (उसने हरण कराया) सिद्धि जानें। केवल यहाँ कुहोश्चुः से 'ह्' को 'भ्' कर लेने पर झषस्तथो० चर्च (८।४।५३) से 'झ्' को 'ज्' होता है ॥

—:०:—

परि० संयोगे गुरु (१।४।११)

कुण्डा (जलाना)

कुडि दाहे भूवादयो० उपदेशेऽजनु० (१।३।२) तस्य लोपः (१।३।९)
कुड् इदितो नुम्धातोः (७।१।५८) मिदचोऽन्त्यात् परः (१।१।४७)
कु नुम् ड् = कुन्ड्, हलोऽनन्तराः संयोगः (१।१।७) संयोगे गुरु से इ के 'कु' की गुरु संज्ञा हुई, गुरोश्च हलः (३।३।१०३)
कुन्ड् अ कृत्तद्धित० ङ्याप्प्रातिपदिकात् अजाद्यतष्टाप् (४।१।४)
कुन्ड् अ टाप्, ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) लगकर, तथा पूर्ववत् सु हुआ
कुन्ड् अ आ सु अकः सवर्णे० (६।१।९७) हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्० (६।१।६८) नश्चापदा० (८।३।२४) अनुस्वारस्य ययि० (८।४।५७)
कुण्डा बना।

इसी प्रकार हुडि सङ्घाते धातु से हुण्डा (सङ्घात) की सिद्धि और शिक्षा भिक्षा की सिद्धि परि० १।४।१ में देखें ॥

—:०:—

परि० यस्मात् प्रत्ययविधि० (१।४।१३)

कर्त्ता हर्त्ता की सिद्धि परि० १।१।२ में देखें। अङ्ग संज्ञा होने से तृच् परे रहते गुण हो जाता है। औपगवः, कापटवः की सिद्धि परि० १।१।१ में देखें ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

करिष्यति (करेगा)

डुकृञ् कृ स्य ति — परि० १।३।९२ के वर्त्स्यति के समान सब कार्य होकर प्रकृत सूत्र से स्य प्रत्यय के परे रहते 'कृ' की अङ्ग संज्ञा हुई, तब 'कृ' अङ्ग को *सार्वधातुकार्ध०* (७।३।८४) से गुण हुआ।

कर् स्य ति — *आर्द्धधातुकस्येड्०* (७।२।३५) *एकाच उपदेशे०* (७।२।१०) *ऋद्धनोः स्ये* (७।२।७०) से इट् आगम हुआ।

कर् इट् स्य ति, *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९) से षत्व होकर,

करिष्यति, बना।

लृङ् लकार में *अकरिष्यत्* (वह करता) की सिद्धि पूर्ववत् ही जानें॥

करिष्यावः (हम दोनों करेंगे)

कृ इट् स्य वस्, पूर्ववत् होकर यहाँ स्य के परे रहते 'कृ' की अङ्ग संज्ञा होने से पूववत् गुण हुआ तथा 'तदादि' = उस धातु और

कर् इ स्य वस्, प्रातिपदिक का जो आदि अक्षर वह आदि में है जिसके, उसकी भी प्रत्यय के परे रहते अङ्ग संज्ञा होती है, सो 'करि स्य' की भी वस् परे रहते अङ्ग संज्ञा हो गयी। 'करि स्य' की अङ्ग संज्ञा होने से *अतो दीर्घो यञि* (७।३।१०१) से अदन्त अङ्ग को दीर्घ हो गया। पूववत् षत्व एवं रुत्व विसर्जनीय होकर,

करिष्यावः बन गया॥

इसी प्रकार 'मस्' में *करिष्यामः* बनेगा॥

—:०:—

परि० नः क्ये (१।४।१५)

राजीयति (आत्मनः राजानमिच्छति, अपने राजा को चाहता है)

राजन् — *अर्थवदधातु०* (१।२।४५) पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

राजन् अम्, सुप *आत्मनः क्यच्* (३।१।८) *प्रत्ययः, परश्च*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

राजन् अम् क्यच्, *सुपो धातुप्रातिपदि०* (२।४।७१)
राजन् य, *नः क्ये से क्यच्* परे रहते 'राजन्' की पद संज्ञा हो
तो *नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य* (८।२।७) से नकार का
हो गया।
राजय *क्यचि च* (७।४।३३) से ईत्व होकर,
राजीय *सनाद्यन्ता धातवः* पूर्ववत् शप् तिप् होकर
राजीय शप् तिप् = राजीयति, बना॥

———

राजा इवाचरति = *राजायते* (राजा के समान आचरण करता है)
'राजन् सु' इस सुबन्त से *कर्तुः क्यङ् सलोपश्च* (३।१।११) से
प्रत्यय तथा पूर्ववत् ही पद संज्ञा होकर नकार का लोप हो गया।
'राज य' इस अवस्था में *अकृत्सार्वधा तु०* (७।४।२५) से दीर्घ
'राजाय' रहा। क्यङ् के ङित् होने से *अनुदात्तङित०* (१।३।२
आत्मनेपद होकर राजाय शप् त = राजायते बन गया॥

———

चर्मायति (कवच के समान व्यवहार करता है) यहाँ चर्मन् सु
लोहितादि० (३।१।१३) से क्यष् प्रत्यय होकर पूर्ववत् ही पद संज्ञा
से नकार का लोप होकर 'चर्मय' रहा। पूर्ववत् ही सब होकर चर्म
बना। तथा *वा क्यषः* (१।३।९०) से पक्ष में परस्मैपद न होकर चर्म
बन गया॥

—:०:—

परि० सिति च (१।४।१६)

भवदीयः (आपका)

भवत् ङस् *समर्थानां प्रथमाद्वा* (४।१।८२) *त्यदादीनि च* (१।१।
'भवत्' की वृद्ध संज्ञा होकर *भवतष्ठक् छसौ* (अ
छस् प्रत्यय हुआ।
भवत् ङस् छस्, *हलन्त्यम्* (१।३।३) *तस्य लोपः* (१।३।९)
(१।२।४६) *सुपो धातुप्रा०* (२।४।७१) पूर्ववत् अङ्ग

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भवत् छ आयनेयीनीयियः० (७।१।२) से 'छ्' को 'ईय्' आदेश हुआ।

भवत् ईय् अ यहाँ यचि भम् (१।४।१८) से 'भवत्' की 'भ' संज्ञा प्राप्त थी, पर 'छ' के सित् होने से सिति च से पद संज्ञा हो गई, पद संज्ञा होने से झलां जशोऽन्ते (८।२।३९) से 'त्' को 'द्' हो गया।

भवद् ईय पूर्ववत् सु आकर रुत्व विसर्जनीय हो गया।

भवदीयः बना ॥

ऊर्णायुः (ऊर्णाऽस्य विद्यते, ऊन)

ऊर्णा पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

ऊर्णा सु ऊर्णाया युस् (५।२।१२३) से मत्वर्थ में युस् प्रत्यय होकर,

ऊर्णा सु युस्, सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (२।४।७१)

ऊर्णा युस् हलन्त्यम्, तस्य लोपः

ऊर्णा यु यहाँ सिति च से पद संज्ञा होने से भ संज्ञा का बाध हो गया, अतः भ संज्ञा होने से जो यस्येति लोप प्राप्त था, अब नहीं हुआ, यही पद संज्ञा का फल है।

ऊर्णायु पूर्ववत् सु आकर विसर्जनीय हो गया।

ऊर्णायुः बना ॥

परि० स्वादिष्वसर्व० (१।४।१७)

राजभ्याम् राजभिः में भ्याम्, भिस् के परे रहते राजन् की प्रकृत सूत्र से पद संज्ञा होने से नलोपः प्राति० (८।२।७) से नकार लोप हो गया है। सभी उदाहरणों में पद संज्ञा का नकार लोप ही प्रयोजन है॥ राजत्वम् (राजापन) राजता यहाँ 'राजन् ङस्' इस अवस्था में क्रम से तस्य भावस्त्वतलौ (५।१।११८) से त्व, तल् प्रत्यय हुये हैं, पूर्ववत् ही नकार लोप तथा सु आकर अतोऽम् (७।१।२४) लगकर राजत्वम् बना। राज तल्= यहाँ टाप् होकर सु का लोप ६।१।६६ से होकर राजता बन गया है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

राजतरः (अधिक प्रकाशमान) *राजतमः* (सबसे अधिक प्रकाशमान) में भी राजन् शब्द से तरप् तमप् प्रत्यय के परे रहते पद संज्ञा हो नकार लोप हो गया है। तरप् तमप् प्रत्ययों में सिद्धियाँ परि० में दिखाई हैं, उसी प्रकार जानें ॥

———

वाग्भिः (वाणियों के द्वारा)

वाच्	पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
वाच् भिस्	*चोः कुः* (८।२।३०) *स्थानेऽन्तरतमः* (१।१।४९)
वाक् भिस्	प्रकृत सूत्र से भिस् परे रहते 'वाक्' की पद संज्ञा हो
	झलां जशोऽन्ते (८।२।३९) से 'क्' को 'ग्' हो गया।
वाग् भिस्	पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर,
वाग्भिः	बना ॥

—:०:—

परि० तसौ मत्वर्थे (१।४।१९)

विद्युत्वान् (बिजली वाला)

विद्युत्	*अर्थवद्०* पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
विद्युत् सु	*तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्* (५।२।९४) *प्रत्ययः, परश्च*
विद्युत् सु मतुप्	*सुपो धातुप्रातिपदिकयोः* (२।४।७१)
विद्युत् मत्	*झयः* (८।२।१०) से मतुप् के मकार को वकार होकर,
विद्युत् वत्	यहाँ 'विद्युत्' तकारान्त शब्द है, सो उसकी प्रकृत
	से भ संज्ञा हो गई, *स्वादिष्वसर्वनामस्थाने* से पद संज्ञा
	प्राप्त थी भ संज्ञा होने से पद संज्ञा का बाध हो गया।
	झलां जशोऽन्ते (८।२।३९) से 'त्' को 'द्' नहीं हुआ।
	शेष सिद्धि चितवान् के समान परि० १।१।५ में देखें।
विद्युत्वान्	

इसी प्रकार उदश्वित् शब्द से *उदश्वित्वान्* (दही मट्ठे वाला) समझें ॥

———

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यशस्वी (बहुत यश वाला)

यशस् सु — यहाँ पूर्ववत् ही सब होकर, *अस्मायामेधास्रजो विनिः* (५।२।१२१) से मत्वर्थ में विनि प्रत्यय हुआ।

यशस् सु विनि = यशस् विन् , यहाँ भी 'यशस्' के सकारान्त होने से प्रकृत सूत्र से भ संज्ञा हो गई, सो पद संज्ञा का बाध हो गया, अतः पदाधिकार में वर्त्तमान *ससजुषो रुः* (८।२।६६) से 'स्' को रुत्व नहीं हुआ।

यशस् विन् — पूर्ववत् 'सु' आकर

यशस्विन् सु, *सौ च* (६।४।१३) से उपधा को दीर्घ होकर

यशस्वीन् स् *हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०* (६।१।६६)

यशस्वीन् — *नलोपः प्रातिपदि०* (८।२।७)

यशस्वी — बना।

इसी प्रकार तपस् , पयस् शब्द से तपस्वी (तप करने वाला) पयस्वी (बहुत दूध वाला) की सिद्धि जानें॥

—:०:—

परि० अयस्मयादीनि० (१।४।२०)

अयस्मयम् (लोहे का विकार)

अयस् — पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

अयस् ङस् — *द्रव्यचश्छन्दसि* (४।३।१४८) *प्रत्ययः, परश्च*

अयस् ङस् मयट् , *सुपो धातु०* (२।४।७१) यहाँ भी प्रकृत सूत्र से भ संज्ञा

अयस् मय — होने से पद संज्ञा का बाध हो गया, तो *ससजुषो रुः* से रुत्व नहीं हुआ। पूर्ववत् सु आकर *अतोऽम्* (७।१।२४) लगा।

अयस्मयम् — बना।

———

ऋक्तता

ऋक्तता यहाँ ऋच् शब्द से पूर्ववत् मतुप् प्रत्यय, तथा मतुप् के 'म' को 'व' एवं टा विभक्ति होकर 'ऋच् वत् टा = ऋच् वत् आ' रहा। अब

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ प्रकृत सूत्र से 'ऋच्' की पद संज्ञा होने से चोः कुः (८।२।३०) से कुत्व होकर 'ऋक् वता' बना, पुनः पदान्त मानकर जब झलां जशोऽन्ते (८।२।३९) से जश्त्व करने लगे, तो इसी सूत्र से 'ऋक्' की पद संज्ञा हो गई सो जश्त्व नहीं हुआ, अर्थात् कुत्व के प्रति ऋच् की पद संज्ञा है, जश्त्व के प्रति भ संज्ञा हो गई। तात्पर्य यह है कि वेद में जैसा पढ़ा जाता है, वैसा साधु समझा जाता है, सो यहाँ कुत्व तथा जश्त्व दोनों देखे गये तो भ, पद दोनों संज्ञायें माननी पड़ीं। इस प्रकार ही रहा॥

—:o:—

परि० गतिश्च (१।४।५९)

प्रकृत्य की सिद्धि परि० १।१।५५ में देखें। गति संज्ञा होकर कुगतिप्रादयः (२।२।१८) से समास होता है॥

प्रकृतम् (अच्छी प्रकार से किया हुआ)

डुकृञ्	पूर्ववत् परि० १।१।५ के चितः के समान सब कार्य होकर
प्र सु कृत	गतिश्च से गति संज्ञा होकर कुगतिप्रादयः (२।२।१८)
प्रकृत	समास हो गया। पूर्ववत् सुपो धातु० (२।४।७१) से सु का लुक् अतोऽम् (७।१।२४) लगा,
प्रकृतम्	अब पुनः प्रकृत सूत्र से 'प्र' की गति संज्ञा होकर गतिरनन्तरः (६।२।४९) से पूर्वपद प्रकृति स्वर हुआ अर्थात् उपसर्गाश्चाभिवर्ज्यम् (फिट् ८१) इस फिट् सूत्र से 'प्र' उदात्त हो गया। अनुदात्तं पदमेक० (६।१।१५९) से त्तादनुदात्तस्य० (८।४।६५)
प्रकृ॑तम्	स्वरितात् संहितायाम० (१।२।३९)
प्रकृ॑तम्	बना।

———

यत् प्रकरोति (जो प्रारम्भ करता है)

डुकृञ् धातु से परि० १।३।३२ के समान 'कृ उ तिप्' होकर 'कृ' को, 'उ' को मानकर गुण हुआ, सो 'कर उ ति' रहा। तिप् को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कर पुनः 'उ' को गुण होकर प्रकर ओ ति = प्रकरोति बन गया। यहाँ स्वर सिद्धि निम्न प्रकार है:—

यत् प्रकरोति, यहाँ *तिङ्ङतिङः* (८।१।२८) से अतिङ् 'प्र' से उत्तर 'करोति' को सर्वनिघात प्राप्त हुआ, पर *यद्वृत्तान्नित्यम्* (८।१।६६) से उसका निषेध हो गया, तब 'करोति' जो कि प्रत्यय स्वर (३।१।३) से मध्योदात्त, अर्थात् 'ओ' उदात्त था, वही रहा, तिप् तो *अनुदात्तौ सुप्पितौ* (३।१।४) से अनुदात्त ही था।

यहाँ 'प्र' को *उपसर्गाश्चाभिवर्ज्यम्* (*फिट्* ८१) से आद्युदात्त प्राप्त था, पर *गतिश्च* से 'प्र' की गति संज्ञा भी हो जाने से *उपसर्गाश्चा०* को बाधकर *तिङि चोदात्तवति* (८।१।७१) से उदात्तवान् तिङ् (करोति मध्योदात्त था ही) के परे रहते 'प्र' को अनुदात्त हो गया, शेष को *अनुदात्तं पदमेक०* (६।१।१५२) से अनुदात्त, एवं *उदात्तादनुदात्तस्य०* (८।४।६५) से उदात्त से उत्तर स्वरित होकर,

यत् प्रकरोति बना॥

—:०:—

परि० ऊर्यादिच्विडाचश्च (१।४।६०)

डाजन्त *पटपटाकृत्य* (पटत् पटत् ऐसा शब्द करके) की सिद्धि परि० १।३।९० के समान जानें। पटपटायते के समान ही 'पटपटा' ऐसा बनकर उसकी प्रकृत सूत्र से गति संज्ञा हो गई। गति संज्ञा करने का फल परि० १।४।५९ के समान ही जानें। *ऊरीकृत्य* (स्वीकार करके) में भी पूर्ववत् ही गति संज्ञा का प्रयोजन समझें॥

———

शुक्लीकृत्य (अशुक्लं शुक्लं कृत्वा, जो सफेद नहीं उसे सफेद करके)

शुक्ल *कृभ्वस्तियोगे संपद्य०* (५।४।५०)

शुक्ल च्वि = च्, पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर *अस्य च्वौ* (७।४।३२)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शुक्ली व् वेरपृक्तस्य (६।१।६५)

शुक्ली ड़ुकृञ्, यहाँ 'शुक्ली' च्व्यन्त शब्द है, सो उसकी [illegible] से गति संज्ञा होकर, ते प्राग्धातोः (१।४।८०) से [illegible] पूर्व में आया।

शेष सिद्धि परि० १।४।५६ के समान ही जानें। [illegible] का फल भी पूर्ववत् ही जानें॥

शुक्ली कृत्य

—१०:—

परि० विभाषा कृञि (१।४।७१)

गति संज्ञा पक्ष में *तिरस्कृत्य तिरःकृत्य तिरस्कृतम् तिरःकृतम् तिरस्करोति' यत् तिरःकरोति'* की सिद्धियाँ परि० १।४।५६ के [illegible] ही हैं, स्वर भी उसी प्रकार रहेगा। केवल यहाँ *तिरसोऽन्यत०* (८।३।४२) से 'तिरः' के विसर्जनीय को विकल्प से सकारादेश [illegible] दो रूप बनते हैं, जब पक्ष में गति संज्ञा नहीं होती, तो सकार विकल्प से नहीं होता क्योंकि *तिरसोऽन्यत०* में 'गति' की [illegible] अनुवृत्ति है।

अगतिसंज्ञा पक्ष में प्रकृत सूत्र से गति संज्ञा नहीं हुई, तो 'कृत्वा' बना, क्योंकि गति संज्ञा न होने से *कुगतिप्रादयः* (२।२।[illegible]) समास नहीं हुआ; समास न होने से ७।१।३७ से क्त्वा को [illegible] नहीं हो सका॥

तिरःकृतम् यहाँ भी गति संज्ञा न होने से समास नहीं हुआ [illegible] *गतिरनन्तरः* (६।२।४९) का स्वर नहीं लगा, तब *फिषोऽन्तोदात्तः* [illegible] से 'तिरः' अन्तोदात्त रहा, *अनुदात्तं पद०* (६।१।१५२) से शेष [illegible] हो गया। कृतम् का भी *आद्युदात्तश्च* (३।१।३) से 'क्त' उदात्त है [illegible] अनुदात्त रहा॥

'यत् तिरः करोति' यहाँ भी अगतिसंज्ञा पक्ष में परि० १।४।[illegible] समान स्वर न होकर तिरः तथा करोति का पृथक्-पृथक् [illegible] 'करोति' परि० १।४।५९ के समान ही मध्योदात्त हैं, तथा तिरः [illegible] प्रातिपदिक स्वर से अन्तोदात्त रहा।

—१०१—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० अधिपरी अनर्थकौ (१।४।९२)

अध्यागच्छति (आता है)

अधि आङ् पूर्वक "अध्यागच्छति' की सिद्धि परि० १।३।१५ के समान जानें। आगे *अधिपरी अनर्थकौ* से 'अधि' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो गई, तो गति और उपसर्ग संज्ञा का बाध हो गया अर्थात् 'अधि' की गति या उपसर्ग संज्ञा नहीं हुई। गति संज्ञा का बाध हो जाने से यहाँ *गतिर्गतौ* (८।१।७०) से आङ् गति के परे रहते 'अधि' को निघात नहीं हुआ, यही कर्मप्रवचनीय संज्ञा का फल है। अब *उपसर्गाश्चाभिवर्जम्* (फिट् ८१) से 'आङ्' को आद्युदात्त हो गया, तथा 'अधि' का 'अ' *निपाता आद्युदात्ताः* (फिट् ८०) से अलग उदात्त हो गया। आगे *तिङ्ङतिङः* (८।१।२८) से अतिङ् 'आङ्' से उत्तर 'गच्छति' को निघात हो गया। *उदात्तादनु०* (८।४।६५) से उदात्त 'आङ्' से उत्तर गच्छति के 'ग' को स्वरित हो गया तो अध्यागंच्छति ऐसा स्वर रहा। *स्वरितात् संहिता०* (१।२।३९) से अनुदात्तों को एकश्रुति होकर कुतो अध्यागंच्छति रहा, एङः *पदान्तादति* (६।१।१०५) लगकर *कुतोऽध्यागंच्छति* (कहाँ से आता है) बन गया॥

इसी प्रकार *कुतः पर्यागच्छति* (कहाँ से आता है) में भी जानें॥

—:०:—

परि० विभाषा कृञि (१।४।९७)

अधिकरिष्यति

अधिकरिष्यति की सिद्धि परि० १।४।१३ के करिष्यति के समान जानें। यहाँ स्वर सिद्धि निम्न प्रकार है:—

यदत्र मामधिकरिष्यति, यहाँ *तिङ्ङतिङः* (८।१।२८) से 'करिष्यति' को सर्वनिघात प्राप्त हुआ, पर उसका *निपातैर्यद्यदिहन्ति०* (८।१।३०) से निषेध हो गया। तब प्रकृत सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से गति उपसर्ग संज्ञा का बाध होकर, *तिङि चोदात्तवति* (८।१।७१) नहीं लग सका, यद्यपि कृरिष्यति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उदात्तवान् तिङ् परे था तब निपाता आद्युदात्ताः (८१) से अधि का 'अ' उदात्त हुआ तथा शेष [illegible] होकर, पूर्ववत् उदात्त से उत्तर स्वरित हो गया, तथा 'करिष्यति' का प्रत्यय स्वर से 'स्य' उदात्त वही रहा, इस प्रकार दोनों के पृथक् पृथक् स्वर हो

अधिं

यदत्र मामधिकरिष्यति

जब पक्ष में कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं हुई, तो गतिश्च [illegible] से 'अधि' की गति संज्ञा होकर तिङि चोदात्तवति लग गया, सो गति 'अधि' को निघात हो गया शेष करिष्यति का स्वर पूर्ववत् ही रहा मामधिकरिष्यति' ऐसा स्वर रहा ॥

॥ इति प्रथमोध्यायः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अथ द्वितीयाध्याय परिशिष्टम्

परि० सुबामन्त्रिते० (२।१।२)

कुण्डे'न अटन् (कुण्ड के द्वारा हे घूमते हुए)

उदाहरण में 'अटन्' सम्बोधनान्त पद है, अतः इसकी *सामन्त्रितम्* (२।३।४८) से आमन्त्रित संज्ञा हुई है। आमन्त्रित संज्ञा होने से *आमन्त्रितस्य च* (८।१।१९) से 'कुण्डेन' पद से उत्तर 'अटन्' को सर्वानुदात्त प्राप्त हुआ, तब प्रकृत सूत्र ने कहा कि "स्वर विषय में आमन्त्रित पद परे रहते पूर्व सुबन्त को पराङ्गवत् = पर अङ्ग के समान ही माना जाये" सो यहाँ 'अटन्' आमन्त्रित पद के परे रहते 'कुण्डेन' सुबन्त को अटन् के समान ही आमन्त्रित पद माना गया अर्थात् एक ही पद माना गया। ऐसी अवस्था में पद से उत्तर आमन्त्रित पद नहीं रहा, तो *आमन्त्रितस्य* (८।१।१९) से निघात न हो सका, तब षाष्ठिक = छठे अध्याय के *आमन्त्रितस्य च* (६।१।१९२) से आद्युदात्त हुआ, जो कि पराङ्गवद्भाव होने से 'कुण्डेन' के 'कु' को ही उदात्त हुआ। शेष को *अनुदात्तं पदमेक०* (६।१।१५२) से अनुदात्त होकर, *उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः* से उदात्त से उत्तर अनुदात्त 'डे' को स्वरित हो गया। पीछे 'डे' स्वरित से उत्तर, सब अनुदात्तों को *स्वरितात्संहितायाम०* (१।२।३९) से एकश्रुति हो गई है॥

इसी प्रकार *'परशुना वृश्चन्'* (कुल्हाड़ी के द्वारा काटते हुए, हे मनुष्य) में 'वृश्चन्' आमन्त्रित पद है, एवं 'परशुना' सुबन्त है तथा मद्राणां राजन्, कश्मीराणां राजन् (हे मद्र देश तथा कश्मीर देश के राजा) में राजन् आमन्त्रित पद, एवं मद्राणां कश्मीराणां सुबन्त हैं, सो प्रकृत सूत्र से पराङ्गवद्भाव हो जाने से पूर्ववत् सुबन्त पदों 'परशुना' आदियों को आद्युदात्त हो गया, यही पराङ्गवद्भाव का प्रयोजन है। शेष स्वर सिद्धि पूर्ववत् ही है॥

—:o:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० द्विगुश्च (२।१।२२)

पञ्चराजम् (पञ्चानां राज्ञां समाहारः, पाँच राजाओं का समुदाय)

पञ्चन् आम् राजन् आम्, *तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च*(२।१।५०) से समाहार गम्यमान होने से समास हुआ, *कृत्तद्धित०*(१।२।४६) *सुपो धातुप्रा०* (२।४।७१)

पञ्चन्राजन् *सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः* (२।१।५१) से सङ्ख्या पूर्व में होने से समास की द्विगु संज्ञा हुई, तब *द्विगुश्च* ने द्विगु की तत्पुरुष संज्ञा कर दी। तत्पुरुष संज्ञा होने से *सखिभ्यष्टच्* (५।४।९१) से राजन् अन्त वाले प्रातिपदिक तत्पुरुष समास में समासान्त टच् प्रत्यय हो गया,

पञ्चराजन् टच् = अ, *नस्तद्धिते* (६।४।१४४) *अचोऽन्त्यादि टि* (१।१।६३)

पञ्चराज् अ *कृत्तद्धितस०* आदि लगकर पूर्ववत् सु आया,

पञ्चराज सु *अतोऽम्* (७।१।२४)

पञ्चराज अम् *अमि पूर्वः* (६।१।१०३)

पञ्चराजम् बना।

इसी प्रकार *दशराजम्* की सिद्धि भी जानें॥

———

द्व्यहः (द्वे अहनी समाहृते, दो दिन का समुदाय)

द्वि औ अहन् औ, पूर्ववत् समासादि कार्य, एवं प्रकृत सूत्र से समास की तत्पुरुष संज्ञा होने से टच् प्रत्यय हुआ,

द्विअहन् टच् *नस्तद्धिते*, *अह्नष्टखोरेव*(६।४।१४५) *अचोऽन्त्यादि टि*(१।१।६३)

द्विअह् अ यहाँ *अह्नोऽह्न एतेभ्यः* (५।४।८८) से अहन् को 'अह्' आदेश भी पाता है जिसका *न सङ्ख्यादेः समाहारे* (५।४।८९) से निषेध हो जाता है॥ *रात्राह्नाहाः पुंसि* (२।४।२९) से यहाँ पुल्लिङ्ग भी होता है। इको *यणचि* (६।१।७७)

द्व्यह् अ पूर्ववत् 'सु' आकर,

द्व्यहः बना॥

इसी प्रकार त्रीणि अहानि समाहृते त्र्यहः की सिद्धि जानें॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पञ्चगवम् (पञ्चानाम् गवाम् समाहारः, पाँच गायों का समुदाय)
पञ्चन् आम् गो आम्, पूर्ववत् समासादि कार्य, एवं प्रकृत सूत्र से समास की तत्पुरुष संज्ञा होने से *गोरतद्धितलुकि* (५।४।९२) से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ।
पञ्च गो टच् = अ, *एचोऽयवायावः* (६।१।७५)
पञ्चगव् अ पूर्ववत् सब होकर
पञ्चगवम् बना।

इसी प्रकार *दशगवम्* की सिद्धि भी जानें॥

—:०:—

परि० स्वयं क्तेन (२।१।२४)

स्वयंधौतौ पादौ (स्वयं धुले हुए पैर)

धावु गतिशुद्ध्योः *भूवादयो०* (१।३।१) *उपदेशे०* (१।३।२) *तस्य लोपः*
धाव् *धातोः* (३।१।९१) *निष्ठा* (३।२।१०२) *क्तक्तवतू०* (१।१।२५)
धाव् क्त *आर्धधातुकस्येड्०* (७।२।३५) से इट् प्राप्त हुआ जिसका *यस्य विभाषा* (७।२।१५) से निषेध हो गया, क्योंकि *यस्य विभाषा* का अर्थ है "जिस धातु को विकल्प से इट् विधान कहीं पर भी किया हो, उस धातु को निष्ठा परे रहते इट् आगम नहीं होता"। यहाँ धावु धातु को उदित् होने से, *उदितो वा* (७।२।५६) से क्त्वा परे रहते विकल्प से इट् आगम प्राप्त था, अतः यहाँ निष्ठा परे रहते इट् निषेध हो गया।
धाव् त *च्छ्वोः शूडनुनासिके च* (६।४।१९) से वकार के स्थान में ऊठ् आदेश होकर,
धा ऊठ् त = धा ऊ त, अब *आद् गुणः* (६।४।८४) से यहाँ गुण एकादेश प्राप्त हुआ, पर *एत्येधत्यूठ्सु* (६।१।८६) ने गुण को बाध कर वृद्धि एकादेश विधान कर दिया,
धौत बना, अब—
स्वयं सु धौत सु, स्वयं क्तेन से स्वयं अव्यय का धौत क्तान्त सुबन्त के साथ समास होकर, *कृत्तद्धित० सुपो धातुप्रा०* लगा,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

स्वयंधौत पूर्ववत् 'औ' विभक्ति आकर,
स्वयंधौत औ, *वृद्धिरेचि* (६।१।८५)
स्वयंधौतौ, पादौ बना।

स्वयंभुक्तम् की सिद्धि में कोई विशेष नहीं है॥

—:०:—

परि० कालाः (२।१।२७)

अहरतिसृताः मुहूर्त्ताः

अति पूर्वक सृ गतौ धातु से क्त प्रत्यय आकर, 'अतिसृत' रूप शब्द बना है, सो इसी क्तान्त शब्द के साथ कालवाची 'अहन्' का समास हुआ है:—

अहन् अम् अतिसृत जस्, *कालाः* से समास होकर, पूर्ववत् सब कार्य हुए।

अहन्अतिसृत, *रोऽसुपि* (८।२।६९) अहन् के नकार को रेफ होकर अहरतिसृताः, बना।

इसी प्रकार रात्रिम्अतिसृताः = रात्र्यतिसृताः यणादेश होकर पूर्ववत् जानें॥

छः मुहूर्त्त होते हैं, जो कि क्रम से चलते हैं, जिनमें से कुछ अहः = दिन में अर्थात् उत्तरायण में चलते हैं, तथा कुछ रात्रि में अर्थात् दक्षिणायन में चलते हैं, सो उनका उत्तरायण में ही या दक्षिणायन में ही एक साथ चलना कभी नहीं हो पाता, अतः अनत्यन्त संयोग है। अहरतिसृताः का अर्थ 'दिन = उत्तरायण को उल्लङ्घन किया' ऐसा है। एवं रात्र्यतिसृताः का अर्थ रात्रि = दक्षिणायन को उल्लङ्घन किया' ऐसा है। अत्यन्तसंयोग होने पर तो अगले सूत्र *अत्यन्तसंयोगे च* से ही समास होता॥

———

रात्रिसंक्रान्ताः (दक्षिणायन को पार किया)

सम् पूर्वक क्रमु पादविक्षेपे धातु से क्त आकर 'सम् क्रम् त' रहा *यस्य विभाषा* (७।२।१५) से इट् प्रतिषेध, एवं *अनुनासिकस्य क्विझलो*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

झलि (६।४।१५) से अनुनासिकान्त अङ्ग क्रम को दीर्घ होकर 'संक्राम्' बना है। *नश्चापदान्तस्य झलि* (८।३।२४), एवं *अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः* (८।४।५७) से 'म्' को 'न्' होकर संक्रान्त बना। अब यह क्तान्त शब्द है, सो कालवाची 'रात्रि' शब्द का इसके साथ पूर्ववत् समास हो गया है। अनत्यन्तसंयोग भी पूर्ववत् ही समझें, कुछ भी विशेष नहीं॥

———

मासप्रमितः

प्र पूर्वक माङ् माने धातु से *आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च* (३।४।७१) से कर्त्ता में क्त प्रत्यय होकर 'प्र मा त' बना। *दाधर्तिदर्धर्तिसर्तिशर्तिप्रदर्तिदर्तिदिधिषतिदीधीवेवीटाम्* (७।४।४०) से 'मा के 'आ' को इत्व होकर प्रमित बन गया है। अब पूर्ववत् "मास अम् प्रमित सु" यहाँ प्रकृत सूत्र से समास होकर मासप्रमितश्चन्द्रमाः बन गया॥

मासप्रमितश्चन्द्रमाः का अर्थ है, प्रतिपद के चन्द्रमा ने मास को लाना (क्रम से बढ़ना) प्रारम्भ किया। इस प्रकार यहाँ मास के एक अंश प्रतिपद का चन्द्रमा के साथ योग दिखाया गया है, न कि पूरे मास का, सो अनत्यन्तसंयोग है॥

—:०:—

परि० तद्धितार्थोत्तरपद० (२।१।५०)

पौर्वशालः (पूर्वस्यां शालायां भवः, पूर्व की शाला में होने वाला)

वृत्ति ङि शाला ङि, *तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च, तत्पुरुषः समर्थः पदविधिः कृत्तद्धित०* (१।२।४६) *सुपो धातुप्रातिपदिकयोः*

---

१. उदाहरण में पहले समास प्रकृत सूत्र से हो, तो प्रातिपदिक संज्ञा होकर तद्धित प्रत्यय आवे, तथा तद्धितार्थ में समास कहा है, सो समास जब तक तद्धित विषय न आवे तब तक प्राप्त ही नहीं है, यहाँ इतरेतराश्रय दोष आता है, अतः 'तद्धितार्थे' में विषय सप्तमी मानकर, 'तद्धित का विषय आगे आयेगा, ऐसा अर्थ जोड़कर पहले समास करके, पश्चात् तद्धितोत्पत्ति करते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पूर्वाशाला (२।४।७१) स्त्रियाः पुंवद्भाषित० (६।३।३२) से 'पूर्वा' को पुंवद्भाव तथा पूर्ववत् ङि विभक्ति आकर

पूर्वशाला ङि = दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः (४।२।१०६) तत्र भवः (४।३।५३) तद्धिताः (४।१।७६) प्रत्ययः, परश्च (३।१।१,२)

पूर्वशाला ङि अ, सुपो धातु० (२।४।७१) तद्धितेष्वचामादेः (७।२।११७)

पौर्वशाला अ पूर्ववत् भ संज्ञा होकर यस्येति च (६।४।१४८) लोप,

पौर्वशाल् अ पूर्ववत् प्रातिपदिक संज्ञा एवं सब सूत्र लगाकर सु आकर

पौर्वशालः सु, तथा रुत्व विसर्जनीय होकर

पौर्वशालः बना।

इसी प्रकार आपरशालः (दूसरी शाला में होने वाला) में भी समझें

———

पाञ्चनापितिः (पञ्चानां नापितानामपत्यं, पाँच नाइयों की सन्तान)

पञ्चन् आम् नापित आम्, पूर्ववत् प्रकृत सूत्र से तद्धितार्थ में समास होकर, तथा नलोपः प्रातिः (८।२।७) लगकर

पञ्चनापित पूर्ववत् ङस् विभक्ति आकर, अत इञ् (४।१।९५) से अपत्यार्थ में इञ् प्रत्यय हुआ।

पञ्चनापित ङस् इञ्, सुपो धातु० पूर्ववत् वृद्धि एवं यस्येति लोप होकर

पाञ्चनापित् इ, रहा पूर्ववत् स्वादयुत्पत्ति एवं रुत्व विसर्जनीय होकर

पाञ्चनापितिः, बना।

———

पञ्चकपालः (पाँच कपालों पर रख के पकाया हुआ पुरोडाश)

पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः—

पञ्चन् सुप् कपाल सुप्, पूर्ववत् तद्धितार्थ में समास इत्यादि होकर

पञ्चकपाल पूर्ववत् 'सुप्' विभक्ति आकर,

पञ्चकपाल सुप्, संस्कृतं भक्षाः (४।२।१५) से अण् प्रत्यय हुआ।

पञ्चकपाल सुप् अण्, सुपो धातुप्रा० (२।४।७१)

पञ्चकपाल अ, सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः (२।१।५१) से द्विगु संज्ञा होकर द्विगोर्लुगनपत्ये (४।१।८८) से द्विगु सम्बन्धी 'अण्' प्रत्यय का लुक् हो गया,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पञ्चकपाल पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति एवं रुत्व विसर्जनीय होकर
पञ्चकपालः बना।

पूर्वशालाप्रियः (पूर्व का भवन जिसको प्रिय है)

पूर्वा शाला प्रिया यस्य—
पूर्वा सु शाला सु प्रिया सु, यहाँ *अनेकमन्यपदार्थे* (२।२।२४) से पहले पूर्वा शाला प्रिया इन तीनों पदों का बहुव्रीहि समास हुआ। *कृत्तद्धित० सुपो धातुप्रातिपदिकयोः* (२।४।७१)
पूर्वाशालाप्रिया अब *तद्धितार्थोत्तरपद०* से 'प्रिया' उत्तरपद के परे रहते पूर्वाशाला' का तत्पुरुष समास हुआ। तत्पुरुष समास होने से *बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्* (६।२।१) से पूर्वपद को प्रकृति-स्वर नहीं हुआ, किन्तु 'पूर्वशाला' के 'ला' के 'आ' को *समासस्य* (६।१।२१७) से उदात्त हुआ है, विभक्ति का लुक् तो बहुव्रीहि समास होने से ही हो जाता, सो यहाँ स्वर करना ही तत्पुरुष समास का फल है। यहाँ यह समझना चाहिये, कि तत्पुरुष संज्ञा 'पूर्वशाला' की है, सो 'ला' ही समास के अन्त में हुआ, न कि 'प्रिया' का 'या', अतः 'ला' को ही उदात्त हुआ है। *अनुदात्तं पदमेकवर्जम्* (६।१।१५२) *उदात्तादनुदा०* (८।४।६५)
पूर्वाशालाप्रिया, तत्पुरुष संज्ञा का द्वितीय प्रयोजन तत्पुरुष की कर्मधारय संज्ञा (१।२।४२) करके *स्त्रियाः पुंवद्भाषित०* (६।३।३२) से पुंवद्भाव करना है, सो पूर्वा को पुंवद्भाव होकर
पूर्वशालाप्रिया *गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य* (१।२।४८) से 'प्रिया' को ह्रस्व होकर
पूर्वशालाप्रिय पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति एवं रुत्व विसर्जनीय होकर,
पूर्वशालाप्रियः *स्वरितात् संहिताया०* (१।२।३९)

पूर्वशालाप्रियः बना।

इसी प्रकार अपरा शाला प्रिया यस्य स *अपरशालाप्रियः* (दूसरी शाला प्रिय है जिसको) की सिद्धि जानें॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पञ्चगवधनः (पाँच गायें हैं धन जिसका)

पञ्च गावो धनं यस्य—

पञ्चन् जस् गो जस् धन सु, पूर्ववत् ही पहले त्रिपद बहुव्रीहि होकर

पञ्चगोधन पश्चात् 'धन' शब्द के परे रहते प्रकृत सूत्र से 'पञ्चगो' की तत्पुरुष संज्ञा हो गई। तत्पुरुष संज्ञा होने से *गोरतद्धितलुकि* (५।४।९२) से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ

पञ्चगो टच् धन = पञ्चगो अ धन, *एचोयवायावः* (६।१।७५)

पञ्चगवधन पूर्ववत् सु आकर रुत्व विसर्जनीय हो गया।

पञ्चगवधनः बना।

पूर्व सिद्धि के समान यहाँ भी 'पञ्चगो' की तत्पुरुष संज्ञा होने से *समासस्य* (६।१।२१७) से अन्तोदात्त करना भी प्रयोजन है, सो पूर्ववत् समझ लें, यहाँ टच् का प्रयोजन ही दिखाया है।

इसी प्रकार *पञ्चनावप्रियः* (पाँच नौकायें प्रिय हैं जिसको) की सिद्धि भी जानें। केवल यहाँ *नावो द्विगोः* (५।४।९९) से समासान्त टच् प्रत्यय होता है, यही विशेष है, पर प्रक्रिया सब वही है॥

———

पञ्चपूली (पाँच पूलियों का समूह)

पञ्चानाम् पूलानाम् समाहारः—

पञ्चन् आम् पूल आम्, पूर्ववत् प्रकृत सूत्र से समाहार गम्यमान होने पर समास, एवं अन्य कार्य होकर

पञ्चपूल *सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः* (२।१।५१) से द्विगु संज्ञा होकर *अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियां भाष्यते* (वा० २।४।१७) इस वार्त्तिक से अकारान्त उत्तरपद वाले 'पञ्चपूल' से स्त्रीलिङ्ग होकर, *स्त्रियाम्* (४।१।३) *द्विगोः* (४।१।२१) से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो गया।

पञ्चपूल ङीप् = ई, *यस्येति च* (६।४।१४८) *द्विगुरेकवचनम्* (२।४।१) से

पञ्चपूल् ई पञ्चपूल् को एकवद्भाव अर्थात् एक अर्थ की वाचकता होकर, पूर्ववत् 'सु' आ गया, जिसका हल्ङ्याब्भ्यो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(६।१।६६) से लोप हो गया
पञ्चपूली बना।

इसी प्रकार अष्टानाम् अध्यायानां समाहारः = *अष्टाध्यायी* की सिद्धि भी समझें। अष्टन् आम् अध्याय आम् = 'अष्टअध्याय ङीप् = ई' रहा, सवर्ण दीर्घ होकर अष्टाध्यायी बन गया ॥

———

पञ्चकुमारि (पाँच कुमारियों का समूह) यहाँ "पञ्चन् आम् कुमारी आम्" इस अवस्था में पूर्ववत् समास इत्यादि होकर 'पञ्चकुमारी' रहा। *द्विगुरेकवचनम्* से एकवद्भाव तथा *स नपुंसकम्* (२।४।१७) से नपुंसक लिङ्ग होकर *ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य* (१।२।४७) से पञ्चकुमारी के 'ई' को ह्रस्व हो जाता है। पूर्ववत् 'सु' आकर *स्वमोर्नपुंसकात्* (७।१।२३) से 'सु' का लुक् होकर पञ्चकुमारि बना। इसी प्रकार *दशकुमारि* की सिद्धि भी जानें ॥

—:०:—

द्वितीयः पादः

परि० कर्त्तरि च (२।२।१६)

शायिका (सोने की बारी)

शीङ् *भूवादयो०* (१।३।१) *हलन्त्यम्* *तस्य लोपः*
शी *धातोः* (३।१।९१) *पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच्* (३।३।१११)
शी ण्वुच् = वु, *यस्मात् प्रत्ययवि०* (१।४।१३) *अङ्गस्य* (६।४।१) *युवोरनाकौ*
शी अक (७।१।१) *अचो ञ्णिति* (७।२।११५) *वृद्धिरादैच्* (१।१।१)
शै अक *एचोयवायावः* (६।१।७५) *कृत्तद्धित० अजाद्यतष्टाप्* (४।१।४)
शायक टाप् = आ, *प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः* (७।३।४४)
शाय् इ क आ = शायिका, बना।

अब यह 'शायिका' शब्द कृदन्त है, अतः शायिका का प्रयोग होने पर *कर्तृकर्मणोः कृति* (२।३।६५) से कर्त्ता में अर्थात् 'तव' 'मम' शब्दों में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

षष्ठी विभक्ति हुई है। युष्मद् ङस्, अस्मद् ङस् यहाँ षष्ठी विभक्ति परे रहते *तवममौ ङसि* (७।२।९६) से युष्मद् अस्मद् को क्रम से तव मम आदेश होकर तव ङस्, मम ङस् रहा। युष्मदस्मद्भ्यां ङोऽश् (७।१।२७) से ङस् के स्थान में अश् आदेश हो गया। पुनः अतो गुणे (६।१।९४) से दोनों अकारों को पररूप एकादेश होकर तव + अ = तव मम + अ = मम रहा।

अब 'तव शायिका' यहाँ षष्ठी (२।२।८) से समास प्राप्त था, पर 'तव' में कर्त्ता में षष्ठी है, और शायिका अकान्त शब्द है सो कर्तृकर्मणोः से समास का निषेध हो गया॥

जागरिका में जागृ धातु से पूर्ववत् ण्वुच् प्रत्यय होकर जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु (७।३।८५) से जागृ को गुण होकर 'जागर् वु' रहा शेष सब पूर्ववत् होकर जागरिका बन गया।

पूर्ववत् 'मम जागरिका' (मेरे सोने की बारी) में समास प्राप्त था, प्रकृत सूत्र से निषेध हो गया है॥

—:o:—

परि० नित्यं क्रीडाजीविकयोः (२।२।१७)

पुष्पभञ्जिका

भञ्ज धातु से *संज्ञायाम्* (३।३।१०९) से ण्वुल् प्रत्यय होकर अक ण्वुल् रहा। पूर्ववत् वु को अक, टाप् प्रत्यय एवं *प्रत्ययस्थात्०* (७।३।४४) से इत्व होकर भञ्जिका बना है। अब यहाँ 'पुष्प आम् भञ्जिका सु' इस अवस्था में प्रकृत सूत्र से समास होकर पुष्पभञ्जिका बना।

इसी प्रकार 'प्र' पूर्वक चिञ् धातु से पूर्ववत् ण्वुल् प्रत्यय एवं *ञ्नित्यादिर्नित्यम्* (७।२।११५) से वृद्धि, तथा सब कार्य पूर्ववत् होकर प्रचायिका बना। पश्चात् पूर्ववत् पुष्प के साथ इस सूत्र से षष्ठी समास हुआ।

यहाँ दोनों उदाहरणों में पहले पुष्प का भञ्जिका, प्रचायिका के साथ इस सूत्र से षष्ठी समास होकर पुनः उदालक एवं वारण का पुष्प भञ्जिका एवं पुष्पप्रचायिका के साथ षष्ठी (२।२।८) सूत्र से षष्ठी समास होता है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

उद्दालक लोगों के पुष्प तोड़ने का कोई खेल पुष्पभञ्जिका कहा जाता है। इसी प्रकार वारण लोगों के पुष्प चयन करने की किसी क्रीडा विशेष का नाम वारणपुष्पप्रचायिका है॥ जो कोई दाँत की कला विशेष से जीविका चलाये वह दन्तलेखक, एवं जो नाखून की कला विशेष से जीविका चलाये वह नखलेखक है। दन्त एवं नख षष्ठ्यन्त पद हैं सो प्रकृत सूत्र से नित्य ही समास हो जाता है॥

—:०:—

परि० सङ्ख्ययाव्यया० (२।२।२५)

उपदशाः (दशानां समीपे = दसों के जो समीप) आ

उप जस् दशन् आम्, *सङ्ख्याऽव्ययासन्ना०* से सङ्ख्या का उप अव्यय के साथ बहुव्रीहि समास हुआ। *सुपो धातु०* (२।४।७१)

उपदशन् बहुव्रीहि समास होने से *बहुव्रीहौ सङ्ख्येये डजबहुगणात्* (५।४।७३) से समासान्त डच् प्रत्यय हुआ।

उपदशन् डच् = अ, टेः (६।४।१४३) *अचोऽन्त्यादि टि* (१।१।६३)

उपदश् अ कृत्तद्धित० पूर्ववत् जस् विभक्ति आकर

उपदश जस् चुटू (१।३।७) *तस्य लोपः, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः* (६।१।९८)

उपदशास् पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर,

उपदशाः बना।

इसी प्रकार विंशतेः समीपम् = *उपविंशम्* (बीस के समीप) की सिद्धि जानें। भेद केवल इतना है, कि यहाँ *ति विंशतेर्डिति* (६।४।१४२) से विंशति के 'ति' का लोप होता है। शेष पूर्ववत् है।

दशानाम् आसन्नाः = आसन्नदशाः (दश के निकट) दशानाम् अदूरम् = अदूरदशाः, की सिद्धि भी पूर्ववत् ही है॥

द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः (दो या तीन) में भी पूर्ववत् डच् प्रत्यय, टि भाग का लोप होकर द्वित्र् अ जस् = द्वित्राः बना है॥

त्रयो वा चत्वारो वा त्रिचतुराः (तीन या चार) यहाँ इतना ही विशेष है कि समासान्त डच् प्रत्यय न होकर *चतुरोऽच् प्रकरणे त्र्युपाभ्यामुपसङ्ख्यानम्* (वा० ५।४।७७) इस वार्त्तिक से त्रि पूर्व में रहते चतुर् शब्द

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

से समासान्त अच् प्रत्यय होता है। अच् प्रत्यय होने से [illegible] (६।४।१४३) से टि भाग का लोप भी न हो सका, सो "त्रिचतुर [illegible] जस् = त्रिचतुराः बन गया ॥

—:०:—

चतुर्थः पादः

परि० रात्राह्नाहाः पुंसि (२।४।२९)

द्विरात्रः (द्वे रात्री समाहृते = दो रात्रियाँ)

द्वि औ रात्रि औ, *तद्धितार्थोत्तर०* (२।१।५०) कृत्तद्धित० सुपो धातु० (२।४।७१)
द्विरात्रि *अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः* (५।४।८७)
द्विरात्रि अच् *यस्येति च* (६।४।१४८) *रात्राह्नाहाः पुंसि* से पुल्लिङ्ग होकर
द्विरात्र् अ पूर्ववत् 'सु' विभक्ति आकर रुत्व विसर्जनीय हो गया।
द्विरात्रः बना।

इसी प्रकार *त्रिरात्रः* की सिद्धि जानें। *चतूरात्रः* की सिद्धि में केवल यह विशेष है कि 'चतुर्' के रेफ का लोप *रो रि* (८।३।१४) से हो जाता है, तत्पश्चात् *ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः* (६।३।१०९) से 'चतु' के 'उ' को दीर्घ होकर चतूरात्रः बना है ॥

———

पूर्वाह्णः (अह्नः पूर्वम्, दिन से पूर्व)

पूर्व सु अहन् ङस्, *पूर्वापराधरोत्तर०* (२।२।१) से समास होकर कृत्तद्धित० सुपो धातु० (२।४।७१)
पूर्वअहन् *राजाहःसखि०* (५।४।९१) *प्रत्ययः, परश्च*
पूर्वअहन् टच् *अह्नोऽह्न एतेभ्यः* (५।४।८८) से अहन् को अह्न आदेश होकर,
पूर्व अह्न अ = पूर्वाह्न, *अह्नोऽदन्तात्* (८।४।७) से णत्व होकर
पूर्वाह्ण पूर्ववत् प्रकृत सूत्र से पुल्लिङ्ग एवं 'सु' आकर विसर्जनीय हो गया
पूर्वाह्णः बना।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इसी प्रकार *अपराह्णः* (दिन का अपर भाग) *मध्याह्नः* (दिन का मध्य भाग) की सिद्धि जानें। केवल मध्याह्नः में रेफ से उत्तर न होने से णत्व नहीं होगा यही विशेष है॥

द्व्यहः ह्यहः की सिद्धि परि० २।१।२२ में देखें॥

—:०:—

परि० *अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति* (२।४।३६)

प्रजग्ध्य (अच्छी तरह खाकर)

प्र अद	पूर्ववत् परि० १।१।५५ के प्रकृत्य के समान सारी सिद्धि
प्र अद् ल्यप्	होकर, *अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति* से अद् को जग्धि आदेश होकर (जग्धि में इकार उच्चारणार्थ है वस्तुतः 'जग्ध्' आदेश होता है)
प्रजग्ध् य = प्रजग्ध्य, बना।	

इसी प्रकार *विजग्ध्य* (विशेष रूप से खाकर) की सिद्धि जानें॥

—:—:—

जग्धः (खाया हुआ)

अद	*भूवादयो० निष्ठा* (३।२।१०२) *क्तक्तवतू निष्ठा*
अद् क्त	पूर्ववत् प्रकृत सूत्र से 'जग्ध्' आदेश होकर
जग्ध् त	*झषस्तथोर्धोऽधः* (८।२।४०) से 'त' को ध होकर,
जग्ध् ध	*झलां जश् झशि* (८।४।५२) से पूर्व धकार को 'द' हुआ।
जग्द् ध	*झरो झरि सवर्णे* (८।४।६४) से 'द' का लोप होकर,
जग्ध	पूर्ववत् सु आकर रुत्व विसर्जनीय हो गया।
जग्धः	बना।

इसी प्रकार क्तवतु प्रत्यय में 'जग्ध् तवत्' होकर पूर्ववत् ही 'त्' को 'ध्' तथा पूर्व धकार को दकार एवं 'द्' का लोप होकर 'जग् धवत्' रहा। शेष सिद्धि परि० १।१।५ के चितवान् के समान होकर जग्धवान् बना है॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० लुङ्सनोर्घस्लृ (२।४।३७)

अघसत् (उसने खाया)

अद — *भूवादयो० धातोः* (३।१।९१) लुङ् (३।२।११०)
अद् लुङ् — *लुङ्सनोर्घस्लृ* से अद् को घस्लृ आदेश होकर,
घस्लृ ल् — शेष कार्य परि० १।१।१ के अचैषीत् के समान होकर
अट् घस् च्लि त् , *पुषादिद्युताद्यृदितः०* (३।१।५५) से घस् के ह
होने से च्लि के स्थान में अङ् होकर,
अ घस् अङ् त् = अघसत् , बन गया ।

जिघत्सति (भोजन करना चाहता है)

अद — यहाँ परि० १।२।८ के रुरुदिषति के समान सन् प्रत्यय
प्रकृत सूत्र से घस्लृ आदेश होकर द्वित्वादि कार्य हुवे।
घस् घस् सन्, *एकाच उपदेशे०* (७।२।१०) से इट् आगम का
घ घस् स — यहाँ होता है। *कुहोश्चुः* (७।४।६२) *सन्यतः* (७।४।७९)
जिघस् स — *सनाद्यन्ता०* (३।१।३२) पूर्ववत् शप् तिप् आकर
जिघस् स शप् तिप् , *सः स्यार्धधातुके* (७।४।४९) *अतो गुणे* (६।१।९७)
जिघत्सति — बना ।

—०:—

परि० वेञो वयिः (२।४।४१)

उवाय (उसने बुना)

वेञ् — *भूवादयो०*(१।३।१) *धातोः* (३।१।९१) *परोक्षे लिट्* (३।२।११५)
वेञ् लिट् — *आर्धधातुके* (२।४।३५) *वेञो वयिः* से वेञ् के स्थान
वय् आदेश होकर
वय् लिट् — पूर्ववत् लिट् के स्थान में तिप् आकर,
वय् तिप् — *परस्मैपदानां णलतु०* (३।४।८२) से तिप् के स्थान
होकर,
वय् णल् — *लिटि धातोरनभ्यासस्य* (६।१।८) से द्वित्व होकर,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वय् वय् अ — *लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्* (६।१।१७) से अभ्यास को सम्प्रसारण हुआ,

उ अ य् वय् अ — *सम्प्रसारणाच्च* (६।१।१०४) *हलादिः शेषः* (७।४।६०)

उवय्अ — *अत उपधायाः* (७।२।११६)

उवाय — बना।

———

ऊवतुः

वेञ् — पूर्ववत् ही वेञ् को 'वय्' आदेश तथा 'तस्' के स्थान में अतुस् आदेश होकर,

वय् अतुस् — *असंयोगाल्लिट् कित्* (१।२।५) *ग्रहिज्यावयिव्यधि०*(६।१।१६) से सम्प्रसारण प्राप्त हुआ, पर उसके अपवाद सूत्र *लिटि वयो यः* (६।१।३७) ने कहा कि लिट् परे रहते 'वय्' के यकार को सम्प्रसारण न हो, किन्तु *वश्चास्यान्यतरस्यां०* (६।१।३८) से 'य्' को 'व्' हो, सो य् को 'व्' एवं पूर्व व को सम्प्रसारण तथा *लिटि धातोरनभ्यासस्य* (६।१।८) से द्वित्व हुआ।

उव् उव् अतुस्, *हलादिः शेषः* (७।४।६०) *अकः सवर्णे०* (६।१।९७)

ऊवतुस् — पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर,

ऊवतुः — बना।

इसी प्रकार 'उस्' में ऊवुः बना है॥

वश्चास्यान्यत० में अन्यतरस्याम् कहने से पक्ष में जब 'य्' को 'व्' नहीं हुआ, तो पूर्ववत् ही ऊयतुः ऊयुः बन गया॥

—:०:—

परि० हनो वध० (२।४।४२)

वध्यात् (वह वध करे)

हन् लिङ् — *भूवादयो०धातोः*(३।१।९१) *आशिषि लिङ्लोटौ* (३।३।१७३) *यासुट् परस्मैपदेषू०*(३।४।१०३) से यासुट् आगम तथा प्रकृत सूत्र से 'हन्' को वध आदेश होकर,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वध यासुट् लिङ्, पूर्ववत् लादेश होकर,
वध यास् ति, *अतो लोपः* (६।४।४८) इतश्च (३।४।१००)
वध् यास् त् *सुट् तिथोः* (३।४।१०७)
वध् यास् सुट् त् = वध् यास् स्ँ त्, *स्कोः संयोगाद्योरन्ते च* (८
*हलोऽनन्तराः*० (१।१।७)
वध् या स् त्, पुनः *स्कोः संयोगाद्यो*० सूत्र लगकर
वध्यात् बना।

आगे द्विवचन में भी 'वध् यास् तस्' पूर्ववत् होकर *तान्तन्तामः* (३।४।१०१) से तस् को ताम् आदेश होकर वध्यास्ताम् है। बहुवचन में 'झि' को *झेर्जुस्* (३।४।१०८) से जुस् होकर स् जुस् = वध् यास् उस् रहा, रुत्व विसर्जनीय होकर वध्यासुः बना

—:०:—

परि० विभाषा लुङ्लृङोः (२।४।५०)

अध्यगीष्ट की सिद्धि परि० १।२।१ में देखें॥

अध्यैष्ट

अधि इङ् अध्यगीष्ट की सिद्धि के समान ही यहाँ आट् (
आगम लादेशादि होकर,
अधि आट् इ ष् ट, *इको यणचि* (६।१।७४)
अध्या इ ष्ट *आटश्च* (६।१।८७) से वृद्धि एकादेश होकर,
अध्यैष्ट बना।

द्विवचन में पूर्ववत् सब होकर 'आताम्' आकर अध्यैष् आ
अध्यैषाताम् बन गया।

—:—

अध्यगीष्यत (वह पढ़ेगा)

अधि इङ् *भूवादयो*०, *धातोः*, *लिङ्निमित्ते लृङ् क्रिया*० (अ
अधि इ लृङ् प्रकृत सूत्र से इङ् को गाङ् आदेश होकर,
अधि गाङ् ल्, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[पादः]

अधि अट् गा त स्यतासी लृलुटोः (३।१।३३) इको यणचि (६।१।७४)
अध्य गा स्य त गाङ् कुटादिभ्यो० (१।२।१) घुमास्थागापा० (६।४।६६)
अध्यगो स्य त आदेशप्रत्यययोः (८।३।५९)
अध्यगीष्यत बना।

पक्ष में जब गाङ् आदेश नहीं हुआ तो पूर्ववत् ही सब होकर "अधि आट् इङ् स्य त = अध्या इ ष्य त रहा, वृद्धि एकादेश होकर अध्यैष्यत बना। द्विवचन में अध्यै ष्य आताम् पूर्ववत् होकर आतो ङितः (७।२।८१) आताम् के 'आ' को 'इय्' होकर 'अध्यै ष्य इय् ताम्' बना आद् गुणः (६।१।८४) तथा लोपो व्योर्वलि (६।१।६४) लगकर अध्यैष्येताम् बन गया।

—:०:—

परि० णौ च संश्चङोः (२।४।५१)

अधिजिगापयिषति (पढ़ाने की इच्छा करता है)

अधि इङ् भूवादयो० (१।३।१) उपसर्गाः क्रियायोगे (१।४।५८) हेतुमति च (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय होकर
अधि इ णिच् = इ, सनाद्यन्ता धातवः (३।१।३२) धातोः कर्मणः समानक० (३।१।७) प्रत्ययः, परश्च
अधि इ इ सन्, अब यहाँ सन् परक णिच् परक इङ् धातु है, सो इङ् को णौ च संश्चङोः से गाङ् आदेश हुआ।
अधि गा इ स, अर्त्तिह्रीव्लीरी० (७।३।३६) आद्यन्तौ टकितौ (१।१।४५)
अधि गा पुक् इ स, आर्धधातुकस्येड् वलादेः (७।२।३५) से सन् को इट् आगम हुआ,
अधि गा प् इ इट् स, अब सन्यङोः (६।१।९) एकाचो द्वे प्रथमस्य (६।१।१) से प्रथम एकाच् 'गाप्' को द्वित्व हुआ।
अधि गाप् गाप् इ इ स, पूर्वोऽभ्यासः (६।१।४) हलादिः शेषः (७।४।६०)
अधि गा गाप् इ इ स, कुहोश्चुः (७।४।६२)
अधि जा गाप् इ इ स, ह्रस्वः (७।४।५९) सन्यतः (७।४।७९)
अधि जि गापि इ स, आर्धधातुकं शेषः (३।४।११४) सार्वधातुकार्ध० (७।३।८४)
अधि जि गापे इ स, एचोयवायावः (६।१।७५) आदेशप्रत्यययोः (८।३।५९)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अधिजिगापयिष *सनाद्यन्ता०* (३।१।३२) से 'जिगापयिष' की धातु
होकर पूर्ववत् 'शप्, तिप्' आकर,
अधिजिगापयिष शप् तिप् = अधिजिगापयिष अ ति, अतो गुणे (६।
अधिजिगापयिषति, बना।

जब इङ् को गाङ् आदेश नहीं हुआ, तब पूर्ववत् सब कार्य
'अधि इङ् णिच् सन्' बना। णिच् को मानकर इङ् को 'ए' सार्वधातु
(७।३।८४) से गुण हुआ, तब *क्रीङ्जीनां णौ* (६।१।४७) से 'ए' को
हुआ, सो 'अधि आ पुक् इ इट् स = अधि आ पि इ स, रहा।
गुण एवं अयादेश होकर 'अधि आपयिष' बना। *अजादेर्द्वितीयस्य* (
से द्वितीय एकाच् को *द्विर्वचनेऽचि* (१।१।५८) से रूपातिदेश हो
पि पय् ऐसा द्वित्व होकर 'अधि आ पि पय इ ष' रहा यणादेश
पूर्ववत् शप् तिप् होकर अध्यापिपयिषति बन गया॥

———

अध्यजीगपत् (उसने पढ़ाया)

अधि इङ् पूर्ववत् णिच् प्रत्यय आकर,
अधि इ णिच्, *सनाद्यन्ता धातवः* (३।१।३२) से 'इ इ' की धातु
हुई। लुङ् (३।२।११०) प्रत्ययः, परश्च
अधि इ इ लुङ्, *च्लि लुङि* (३।१।४३) *णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ्* (३।
अधि इ इ चङ् ल्, अब यहाँ चङ्परक णि होने से प्रकृत सूत्र से
गाङ् आदेश हुआ।
अधि गा इ अ ल् *अर्त्तिह्रीव्लीरीक्नूयी०* (७।३।३६) *आद्यन्तौ टकि*
अधि गा पुक् इ अ ल्, *णेरनिटि* (६।४।५१)
अधि गाप् अ ल्, *णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः* (७।४।१) से चङ्परक जो
अङ्ग उसकी उपधा को ह्रस्व हुआ।
अधि गप् अ ल्, *चङि* (६।१।११) *एकाचो द्वे प्रथमस्य* (६।१।१)
अधि गप् गप् अ ल्, पूर्ववत् अभ्यास कार्य होकर,
अधि ज गप् अ ल्, *सन्वल्लघुनि चङ्परे०* (७।४।९३) से अभ्यास
लघु धात्वक्षर परे रहते सन्वद्भाव हुआ, सन्वद्भाव
से *सन्यतः* (७।४।७९) से अभ्यास को इत्व हो गया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[प्रथमः

अधि जि गप् अ ल्, *दीर्घो लघोः* (७।४।९४) से अभ्यास को दीर्घ हुआ।

अधि जी गप् अ ल्, पूर्ववत् लादेश होकर तिप् आया।

अधि जी गप तिप्, पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर *लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः* (६।४।७१)

अधि अट् जी गप ति, *इको यणचि* (६।१।७४) *इतश्च* (३।४।१००)

अध्यजीगपत् बना।

जब पक्ष में गाङ् आदेश नहीं हुआ तो निम्न प्रकार से अध्यापिपत् बना—

अध्यापिपत्

अधि इङ् पूर्ववत् ही णिच् आकर तथा इङ् को गुण होकर,

अधि ए णिच्, *क्ङिति च* (१।१।५) से निषेध होकर, पूर्ववत् पुक् आगम हुआ

अधि आ पुक् इ = अधि आपि, *सनाद्यन्ता०* से 'आपि' की धातु संज्ञा होकर लुङ् प्रत्यय हुआ,

अधि आपि लुङ्, *च्लि लुङि, णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्* (३।१।४८)

अधि आपि चङ् ल्, पूर्ववत् ही णि लोप तथा उपधा ह्रस्वत्व होकर,

अधि अप् अ ल्, *चङि* (६।१।११) *अजादेर्द्वितीयस्य* (६।१।२) से अजादि के द्वितीय एकाच् को द्वित्व प्राप्त हुआ, पर द्वितीय वर्ण 'प्' के अच् वाला न होने से द्वित्व न हो सका, तब *द्विर्वचनेऽचि* (१।१।५८) से स्थानिवद्भाव होकर द्वित्व हुआ।

अधि अपि प् अ ल्, *पूर्वोऽभ्यासः* तथा पूर्ववत् लादेश होकर,

अधि अ पि प तिप्, पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर *आडजादीनाम्* (६।४।७२) लगा।

अधि आट् अ पि प त्, *इको यणचि* (६।१।७४) *अकः सवर्णे दीर्घः* (६।१।९७)

अध्यापिपत् बना।

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० ण्यक्षत्रियार्षञितो० (२।४।५८)

कौरव्यः पिता

कुरु	अर्थवदधातु० (१।२।४५) ङ्याप्प्रातिपदिकात् पूर्वक विभक्ति आकर
कुरु ङस्	तस्यापत्यम् (४।१।९२) कुर्वादिभ्यो ण्यः (४।१।१ गोत्रापत्य में ण्य प्रत्यय हुआ। अपत्यं पौत्रप्रभृति (४।१।१६२) से पौत्रप्रभृति अपत्य की गोत्र संज्ञा हो सो ण्य प्रत्यय गोत्र संज्ञक हुआ।
कुरु ङस् ण्य	सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (२।४।७१) यचि मप् (२
कुरु य	ओर्गुणः (६।४।१४६)
कुरो य	तद्धितेष्वचामादेः (७।२।११७) वृद्धिरादैच् (७।३।१)
कौरो य	वान्तो यि प्रत्यये (६।१।७६)
कौरव्य	पूर्ववत् सु आकर, रुत्व विसर्जनीय होकर
कौरव्यः	बना।

यह कौरव्य शब्द गोत्रापत्य में अर्थात् पौत्रादि को कहने में होता है, सो 'कौरव्य' युवापत्य की अपेक्षा से पिता हुआ अतः 'पिता' कहलाया ॥

कौरव्यः (पुत्रः)

कौरव्य	पूर्ववत् ही 'कौरव्य' बनकर कौरव्य शब्द से युवाप कहने में अत इञ् (४।१।९५) से इञ् प्रत्यय हुआ। तु वंश्ये युवा (४।१।१६३)
कौरव्य इञ्	यहाँ इञ् प्रत्यय युवापत्य में ण्य प्रत्ययान्त से अतः ण्यक्षत्रियार्षञितो० से इस इञ् का लुक् हो
कौरव्य	पूर्ववत् 'सु' आकर रुत्व विसर्जनीय होकर
कौरव्यः पुत्रः,	बना।

इस प्रकार युवापत्य को कहने में भी कौरव्यः ही बना। की अपेक्षा से युवापत्य (चौथा) पुत्र था, अतः कौरव्यः पु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वस्तुतः इस सूत्र का कौरव्यः पुत्रः ही उदाहरण है, पर कौरव्यः पिता (गोत्रापत्य का) यह उदाहरण, गोत्रापत्य तथा युवापत्य दोनों में एक जैसा प्रयोग बनता है, यह साम्य दिखाने के लिये है। इसी प्रकार और उदाहरणों में भी जानें॥

———

श्वाफल्कः पुत्रः

श्वाफल्क शब्द क्षत्रियवाची है, सो *ऋष्यन्धकवृ०* (४।१।११४) से गोत्रापत्य में अण् प्रत्यय हुआ, तो श्वाफल्कः पिता कहलाया। पुनः *अत इञ्* से युवापत्य में इञ् हुआ जिसका कि प्रकृत सूत्र से लुक् हो गया, तो श्वाफल्कः पुत्रः प्रयोग बना॥

वसिष्ठ ऋषिवाची शब्द से पूर्ववत् अण् आकर वासिष्ठः पिता बना। पश्चात् इञ् आकर तथा इञ् का लुक् होकर *वासिष्ठः* पुत्रः बन गया॥

———

बैदः पुत्रः

विद शब्द से गोत्रापत्य में *अनृष्यानन्तर्ये०* (४।१।१०४) से अञ् प्रत्यय आया सो वृद्धि आदि होकर बैदः पिता बना। पुनः पूर्ववत् युवापत्य में इञ् होकर बैद के ञित् प्रत्ययान्त होने से उसका लुक् प्रकृत सूत्र से हो गया सो बैदः पुत्रः बन गया॥

———

तैकायनिः पुत्रः

तिक शब्द से *तिकादिभ्यः फिञ्* (४।१।१५४) से फिञ् प्रत्यय गोत्रापत्य में हुआ। *आयनेयीनीयियः०* (७।१।२) से फ् को 'आयन्' होकर 'तिक आयन् इ' रहा। पूर्ववत् वृद्धि आदि होकर तैकायनिः पिता बना। पश्चात् इस ञित् गोत्रप्रत्ययान्त 'तैकायनि' शब्द से *प्राग्दीव्यतोऽण्* (४।१।८३) से अण् प्रत्यय हुआ जिसका कि प्रकृत सूत्र से लुक् होकर *तैकायनिः* पुत्रः बना॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० तद्राजस्य बहुषु० (२।४।६२)

अङ्गाः (अङ्ग के बहुत से पुत्र पुत्रियाँ)

अङ्गस्यापत्यानि बहूनि—

अङ्ग — अर्थवदधातु० पूर्ववत् सब सूत्र लगकर ङस् विभक्ति

अङ्ग ङस् — द्व्यच्मगधकलिङ्गसूर० (४।१।१६८) से द्व्यच् मानकर अ
अपत्यों को कहने में अण् प्रत्यय हुआ।

अङ्ग ङस् अण् , सुपो धातुप्राति० (२।४।७१)

अङ्ग अ — ते तद्राजाः (४।१।१७२) से अण् प्रत्यय की तद्राज
हो गई। तद्राज संज्ञा होने से तद्राजस्य बहुषु तेनैव
से बहुत्व अर्थ में (बहुत अपत्यों को कहने में अण्
आया था) आये अण् का लुक् हो गया। प्रत्ययस्य
लुपः (१।१।६०)

अङ्ग — कृत्तद्धित० (१।२।४६) पूर्ववत् सब सूत्र लगकर
बहुवचनम् लगकर बहुत्व विवक्षा में 'जस्' विभक्ति

अङ्ग जस् = अस् , प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (६।१।९८) आदि सूत्र लगकर

अङ्गाः — बना।

अङ्ग के एक या दो अपत्य को कहना होगा तो प्रकृत सूत्र से
प्रत्यय का लुक् नहीं होगा, सो आङ्गः आङ्गौ प्रयोग बनेंगे, अ
अपत्यों को कहने में पूर्ववत् अङ्गाः बनेगा॥

इसी प्रकार वङ्गाः, मगधाः, कलिङ्गाः की सिद्धि भी जानें॥

—:०:—

परि० आगस्त्यकौ० (२।४।७०)

अगस्तयः (अगस्त्य ऋषि के पौत्र प्रपौत्र)

अगस्त्यस्य गोत्रापत्यानि बहूनि—

अगस्त्य — अर्थवदधातु० (१।२।४५) पूर्ववत् ङस् विभक्ति आकर

अगस्त्य ङस् — तस्यापत्यम् (४।१।९२) ऋष्यन्धकवृष्णि० (४।१।११४)
ऋषिवाची अगस्त्य शब्द से बहुत अपत्यों को कहने
में अण् प्रत्यय हो गया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

शब्दः]

अगस्त्य ङस् अण्, *सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१)

अगस्त्य अ अब प्रकृत सूत्र से अण् का लुक् हुआ, पुनः इसी सूत्र से अगस्त्य प्रकृति को 'अगस्ति' आदेश भी हो गया।

अगस्ति पूर्ववत् बहुवचन में जस् आकर

अगस्ति जस् *जसि च* (७।३।१०९) से गुण तथा अयादेश एवं रुत्व विसर्जनीय होकर

अगस्तयः बना।

एक या दो अपत्य को कहने में अण् का लुक् एवं अगस्ति आदेश न होने से आगस्त्यः आगस्त्यौ ही बनेगा॥

इसी प्रकार कुण्डिनाः में कुण्डिनी शब्द से बहुत्व अपत्य विवक्षा में *गर्गादिभ्यो यञ्* (४।१।१०५) से यञ् प्रत्यय हुआ। प्रकृत सूत्र से यञ् का लुक् हो गया, पुनः प्रकृत सूत्र से ही 'कुण्डिनी' को कुण्डिनच् आदेश भी हो गया। पूर्ववत् ही जस् विभक्ति आकर कुण्डिनच् जस् = कुण्डिन अस्, *प्रथमयोः पूर्व०* (६।१।९८) आदि लगकर *कुण्डिनाः* बना॥

एकवचन द्विवचन में कौण्डिन्यः कौण्डिन्यौ ही बनेगा॥

—:०:—

परि० सुपो धातुप्रा० (२।४।७१)

पुत्रीयति (आत्मनः पुत्रमिच्छति, अपने पुत्र को चाहता है)

पुत्र अम् *सुप आत्मनः क्यच्* (३।१।८) *प्रत्ययः परश्च*

पुत्र अम् क्यच्, *सनाद्यन्ता धातवः* (३।१।३२) से धातु संज्ञा हुई।

पुत्र अम् य *सुपो धातुप्रातिपदिकयोः* से धातु के अन्तर्गत जो सुप् (अम्) उसका लुक् हो गया। *प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः*

पुत्रय *क्यचि च* (७।४।३३) से ईत्व होकर,

पुत्रीय पूर्ववत् शप् तिप् आकर

पुत्रीय शप् तिप् = पुत्रीय अ ति, *अतो गुणे* (६।१।९४)

पुत्रीयति बना।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इसी प्रकार घटमिवाचरति = घटीयति (किसी छोटे बर्तन के जैसा व्यवहार करता है) में उपमानादाचारे (३।१।१०) से क्यच् हुआ है, शेष सब पूर्ववत् ही जानें ॥

कष्टश्रितः आदि की सिद्धि परि० १।२।४३ में देखें ॥

—:०:—

परि० यङोऽचि च (२।४।७४)

लोलुवः, पोपुवः, मरीमृजः सरीसृपः की सिद्धि परि० [illegible] देखें ॥

पापठीति (बार बार पढ़ता है)

पठ — भूवादयो० धातोरेकाचो हलादेः० (३।१।२२) [illegible] परश्च (३।१।१,२)

पठ् यङ् — यङोऽचि च में बहुल की अनुवृत्ति होने से अजन्त विषय में भी यङ् का लुक् हो गया तब प्रत्यय जनित यङन्त मानकर सन्यङोः (६।१।९) से द्वित्व हुआ,

पठ् पठ् — पूर्वोऽभ्यासः (६।१।४) पूर्ववत् अभ्यास कार्य होकर,

प पठ् — दीर्घोऽकितः (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ होकर,

पापठ् — सनाद्यन्ता धातवः पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

पापठ् शप् तिप् , चर्करीतञ्च (धातुपाठ अज० सं० पृ० १८) इस [illegible] यङ्लुगन्त धातुओं से परस्मैपद, तथा अदादिभ्य [illegible] अर्थात् अदिप्रभृतिभ्यः शपः (२।४।७२) से शप् का लुक् जाता है ।

पापठ् तिप् — यङो वा (७।३।९४) से तिप् हलादि पित् सार्वधातुक ईट् का आगम हुआ ।

पापठ् ईट् ति = पापठीति, बना ।

इसी प्रकार लप धातु से लालपीति (बार २ बोलता है) की सिद्धि जानें ॥

—:०:—

परि० जुहोत्यादिभ्यः श्लुः (२।४।७५)

परि० १।१।६० में जुहोति की सिद्धि देखें ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

बिभर्त्ति (भरण पोषण करता है)

डुभृञ् धारणपोषणयोः, भूवादयो० *आदिर्ञिटुडवः*, *हलन्त्यम्*, *तस्य लोपः*
भृ पूर्ववत् ही सब सूत्र लगकर
भृ शप् तिप् *जुहोत्यादिभ्यः श्लुः*, *प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः* (१।१।६०)
भृ ति परि० १।१।६० के समान ही द्वित्व तथा *भृञामित्* (७।४।७६) से अभ्यास को इत्व होकर,
भिर् भृ ति *हलादिः शेषः* (७।४।६०) *अभ्यासे चर्च* (८।४।५३)
बि भृ ति *सार्वधातुकार्धधातुकयोः* (७।३।८४) *अदेङ् गुणः* (१।१।२)
बि भर् ति = बिभर्ति, बना।

———

नेनेक्ति (शुद्ध करता है)

णिजिर् भूवादयो० *णो नः* (६।१।६३) पूर्ववत् ही सब सूत्र लगकर
निज् निज् ति = नि निज् ति, *निजां त्रयाणां गुणः श्लौ* (७।४।७५) से अभ्यास को गुण होकर,
ने निज् ति *पुगन्तलघूपधस्य च* (७।३।८६) से उपधा को गुण होकर,
ने नेज् ति *चोः कुः* (८।२।३०) से कुत्व होकर
ने नेग् ति *खरि च* (८।४।५४) से चर्त्व होकर
नेनेक्ति बना।

—:०:—

परि० बहुलं छन्दसि (२।४।७६)

दाति, धाति

'डुदाञ् दाने, डुधाञ् धारणपोषणयोः' जुहोत्यादिगण की धातुएँ हैं, सो शप् को 'श्लु' प्राप्त था, पर यहाँ बहुल कहने से श्लु नहीं हुआ, पर शप् का लुक् हो गया। शप् को श्लु न होने से 'दा' 'धा' को श्लौ (६।१।१०) से द्वित्व भी नहीं हुआ, सो दाति धाति बन गया॥

———

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

विवष्टि

वश कान्तौ धातु अदादिगण की है सो शप् का लुक् (२।४।७२) होकर भाषा विषय में वष्टि प्रयोग बनता है, पर वेद विषय में प्रकृत सूत्र से बहुल कहने से अदादिगण की होते हुये भी शप् को स्लु हो गया है, तो श्लौ से द्वित्व भी होकर 'वश् वश् तिप्' रहा। अत्व आदि कार्य तथा बहुलं छन्दसि (७।४।७८) से अभ्यास को इत्व होकर विवष्टि रहा। व्रश्चभ्रस्जसृज० (८।२।३६) से 'श्' को 'ष्' तथा ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से ष्टुत्व होकर विवष्टि बन गया॥

———

विवक्ति

पूर्ववत् ही वच परिभाषणे धातु अदादि गण की है, सो भाषा विषय में वक्ति प्रयोग बनता है। पर वेद विषय में प्रकृत सूत्र से शप् को स्लु होकर पूर्ववत् ही कार्य हुये तो 'वि वच् ति' रहा। चोः कुः (८।२।३०) से कुत्व होकर विवक्ति बन गया॥

—:०:—

परि० मन्त्रे घसह्वरणश० (२।४।८०)

अक्षन् की सिद्धि परि० १।१।५७ में देखें॥

मा ह्वः

ह्वृ कौटिल्ये — भ्वादयो० (१।३।१) पूर्ववत् लुङ् लकार में सब सूत्र लगकर
ह्वृ च्लि तिप् — प्रकृत सूत्र से च्लि का लुक् होकर,
मा ह्वृ त्, — न माङ्योगे (६।४।७४) से अट् आगम का निषेध होकर सार्वधातुका० (७।३।८४) उरण्रपरः (१।१।५०) से गुण होकर रपरत्व हुआ,
मा ह्वर् त् — हल्ङ्याब्भ्यो० (६।१।६६) से 'त्' लोप तथा विसर्जनीय होकर,
मा ह्वः — बना॥

———

१. न्यास में विभक्ति पाठ है, सो वह भज सेवायां धातु से बन जायगा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

प्रणङ् मर्त्यस्य

णश अदर्शने भूवादयो० णो नः (६।१।६३) पूर्ववत् सब कार्य होकर,
प्र नश् च्लि तिप्, प्रकृत सूत्र से च्लि का लुक् तथा उपसर्गादसमा-
सेऽपि० (८।४।१४) से नश् के 'न' को णत्व होकर,
प्र णश् तृ, पूर्ववत् न माङ्योगे से अट् आगम का अभाव हुआ
क्योंकि मन्त्र "मा नः शंसो अरुरुषो धूत्तः प्रणङ् मर्त्यस्य"
यहाँ 'माङ्' का योग है। हल्ङ्याब्भ्यो० (६।१।६६)
प्र णश् नश्चेर्वा (८।२।६३) से कुत्व होकर
प्रणक् मर्त्यस्य यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (८।४।४४)
प्रणङ् मर्त्यस्य बना।

———

आवः

'द्रुः' के समान ही आङ् पूर्वक वृञ् धातु से आवः की सिद्धि जानें, केवल यहाँ अट् आगम का अभाव माङ् का योग न होने से नहीं होता सो अट् आगम होकर सवर्ण दीर्घ करके आवः बनता है॥

धक्

दह भस्मीकरणे, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
दह् च्लि सिप्, पूर्ववत् माङ् का योग होने से अट् आगम अभाव
एवं प्रकृत सूत्र से च्लि का लुक् होकर
दह् स् हल्ङ्याब्भ्यो० (६।१।६६) से 'स्' लोप होकर
दह् दादेर्धातोर्घः (८।२।३२) से 'ह्' को 'घ्' होकर,
दघ् एकाचो बशो भष्झषन्तस्य० (८।२।३७) से 'द्' को 'ध्' हुआ
धघ् झलां जशोऽन्ते (८।२।३९) से 'घ्' को 'ग्' एवं वावसाने
धग् (८।४।५५) से 'ग्' को क् होकर
धक् बना।

———

आप्राः

आङ् प्रा पूर्ववत् सब सूत्र लगकर
आ अट् प्रा च्लि सिप्, प्रकृत सूत्र से च्लि का लुक् होकर,
आ अ प्रा स् = आ अ प्रा स्, सवर्ण दीर्घ एवं रुत्व विसर्जनीय होकर,
आप्राः बना॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वर्क्

वृज	पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, तथा प्रकृत सूत्र से च्लि का
	लुक् होकर,
वृज् तिप्	पूर्ववत् अट् आगम का अभाव तथा पुगन्तलघू० (७।३।८६)
	से गुण होकर,
वर्ज् त्	हल्ङ्यादि लोप एवं चोः कुः (८।२।३०) से 'ज्' को
	होकर,
वर्ग्	*वावसाने* (८।४।५५) से चर्त्व होकर,
वर्क्	बन गया।

———

अक्रन्

डुकृञ्	पूर्ववत् सब लुङ् के कार्य होकर
अट् कृ च्लि झि,	प्रकृत सूत्र से च्लि का लुक् एवं झोऽन्तः (७।१।३)
	लगकर,
अ कृ अन्ति = अ कृ अन्त्,	*संयोगान्तस्य लोपः* (८।२।२३)
अ कृ अन्	*इको यणचि* (६।१।७४)
अक्रन्	बना।

———

अग्मन्

गम्लृ धातु से पूर्ववत् ही 'झि' में अग्मन् रूप जानें। केवल *गमहनजन०* (६।४।९८) से उपधा लोप ही विशेष होगा॥

———

अज्ञत

जन धातु से पूर्ववत् 'अट् जन् च्लि झ' रहा। प्रकृत सूत्र से च्लि का लुक् एवं *गमहनजन०* (६।४।९८) से उपधा लोप होकर 'अ ज् न्' रहा। *आत्मनेपदेष्वनतः* (७।१।५) से 'झ' को 'अत' आदेश, तथा *श्चुना श्चुः* (८।४।३९) से श्चुत्व होकर 'अज्ञत' बन गया॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अथ तृतीयाध्यायपरिशिष्टम्

परि० आद्युदात्तश्च (३।१।३)

कर्त्तव्यम् (करना चाहिये)

डुकृञ्	भूवादयो० (१।३।१) धातोः (३।१।९१) धातोः (६।१।१५६)
कृ	तव्यत्तव्यानीयरः (३।१।९६) से तव्य प्रत्यय हुआ। प्रत्ययः, परश्च।
कृ तव्य	आद्युदात्तश्च से तव्य के 'त' का 'अ' उदात्त हुआ, सो सतिशिष्टस्वरो बलीयान् (महाभाष्य ६।१।१५२) से धातु स्वर हट गया।
कृ तव्य	सार्वधातुकार्ध० (७।३।८४) उरण्रपरः (१।१।५०)
कर्तव्य	पूर्ववत् 'सु' विभक्ति आकर
कर्तव्य सु	अनुदात्तं पदमेकवर्जम् (६।१।१५२) उदात्तादनुदा० (८।४।६५)
कर्तव्यं सु	अतोऽम् (७।१।२४) से 'सु' को अम् होकर
कर्तव्यं अम्	अमि पूर्वः (६।१।१०३) अचो रहाभ्यां द्वे (८।४।४५)
कर्त्तव्यम्	बना।

तैत्तिरीयम् (तित्तिरि प्रोक्त ग्रन्थ)

तित्तिरि	अर्थवदधातु० (१।२।४५) फिषोऽन्तोदात्तः (फिट् १) पूर्ववत् सब सूत्र लगाकर,
तित्तिरि टा	तित्तिरिवरतन्तुखण्डि०(४।३।१०२)से तेन प्रोक्तम्(४।३।१०१) अर्थ में छण् प्रत्यय हुआ प्रत्ययः, परश्च
तित्तिरि टा छण्	सुपो धातुप्राति० (२।४।७१) पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर
तित्तिरि ईय् अ	आयनेयीनीयियः० (७।१।२) से छ् को 'ईय्' हुआ। स्थानिवदादेशो० (१।१।५५) से 'ईय्' आदेश प्रत्यय माना गया, तो आद्युदात्तश्च से ईय् का 'ई' उदात्त हुआ सतिशिष्ट स्वरोबलीयान् से प्रातिपदिक का उदात्त स्वर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

हट गया। तद्धितेष्वचामादेः (७।२।११७) से
(६।४।१४८)
तैत्तिर्_ईय अनुदात्तं पदमेकवर्जम् (६।१।१५२) उदात्तादनुदात्तः (८।
तै_त्तिरीय कृत्तद्धित० (१।२।४६) पूर्ववत् सु आकर सु को अम् हो
तैत्तिरीय अम् अमि पूर्वः (६।१।१०३) से पूर्वरूप हो गया।
तै_त्तिरीय_म् बना ॥

—:०:—

परि० अनुदात्तौ सुप्पितौ (३।१।४)

दृषदौ (दो सिल)

दृ विदारणे भूवादयो० धातोः (६।१।१५६) दृणातेः पुगन्तस्य (
१।१३१) से दृ धातु को ह्रस्व, पुक् आगम एवं
प्रत्यय हुआ,
द्र पुक् अदि = दृष् अद्, अब यहाँ आद्युदात्तश्च से 'अद्' का 'अ'
हुआ, सो सतिशिष्टस्वरो० से धातु स्वर हट गया।
पदमेक० (६।१।१५२)
दृषद् कृत्तद्धित० पूर्ववत् 'औ' विभक्ति आकर
दृषद् औ अनुदात्तौ सुप्पितौ से 'औ' के सुप् होने से अनुदात्त हो
दृषदौ उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः (८।४।६५)
दृषदौ बना।

इसी प्रकार जस् विभक्ति में दृषदः बनेगा ॥

———

पचंति (पकाता है)

डुपचष् पाके धातु से पूर्ववत् सब सूत्र लगकर 'पच् शप्
रहा। धातोः (६।१।१५६) से पच् के 'अ' को उदात्त हुआ।
आकर, शप्, तिप् के अनुदात्त होने से अनुदात्तौ सुप्पितौ से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अनुदात्त हो गया, सो 'पच् अ ति' यह स्वर रहा। पुनः उदात्तादनुदात्तस्य० (८।४।६५) से शप् के 'अ' को स्वरित होकर पचति बना॥

इसी प्रकार पठति की सिद्धि जानें॥

—:०:—

परि० मान्बधदा० (३।१।६)

मीमांसते (जिज्ञासा करता है)

मान	भूवादयो० मान्बधदान्शान्भ्यो० से सन् प्रत्यय हुआ।
मान् सन्	द्वित्व इत्यादि सारे काय परि० १।२।९ के अनुसार होकर
मा मान् स	ह्रस्वः (७।४।५९) सन्यतः (७।४।७९)
मि मान् स	अब पुनः प्रकृत सूत्र से अभ्यास को दीर्घ हो गया।
मीमान्स	यहाँ सिद्धि में यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि सन्यतः से इत्व करने के पश्चात् ही प्रकृत सूत्र से दीर्घ होगा, क्योंकि सूत्र में अभ्यासस्य विकारः (तस्य विकारः ४।३।१३२ से अण् हुआ है) 'आभ्यासस्य' अभ्यास के विकार को दीर्घ कहा है, न कि अभ्यास मात्र को, तत्पश्चात् दीर्घ विधान सामर्थ्य से ह्रस्वः से ह्रस्व नहीं होगा। पूर्ववत् सब सूत्र लगकर तथा पूर्ववत्सनः (१।३।६२) से आत्मनेपद होकर
मीमान्स शप् त,	टित आत्मनेपदानां० (३।४।७९) अतो गुणे (६।१।९४)
मीमान्सते	नश्चापदान्तस्य झलि (८।३।२४)
मीमांसते	बना॥

बीभत्सते (विपरीत आचरण करता है) यहाँ पूर्ववत् बध धातु से सन् प्रत्यय, द्वित्वादि कार्य तथा अभ्यास को दीर्घ होकर 'बी बध् स' रहा। एकाचो बशो० (८।२।३७) से ब को 'भ' तथा खरि च (८।४।५४) से 'द्' को त् होकर 'बीभत्स' रहा। पूर्ववत् सनाद्यन्ता० (३।१।३२) से धातु संज्ञा होकर 'शप् त' आकर बीभत्सते बन गया।

इसी प्रकार दान तथा शान धातु से दीदांसते (सरलता का व्यवहार करता है) शीशांसते (तेज करता है) की सिद्धि जानें॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० धातोरेकाचो० (३।१।२२)

पापच्यते (बार-बार पकाता है)

डुपचष्	भूवादयो० धातोरेकाचो हलादेः क्रिया० (३।१।२२)
पच् यङ्	शेष सारे कार्य परि० २।४।७४ के पापठीति के [illegible] जानें,
पा पच् य	पूर्ववत् सब सूत्र लगकर शप् तथा अनुदात्त [illegible] (१।३।१२) से आत्मनेपद होकर
पा पच् य शप् त,	अतो गुणे (६।१।९४) से पररूप हुआ।
पापच्यत	टित आत्मनेपदानां टेरे (३।४।७९)
पापच्यते	बना।

इसी प्रकार पठ धातु से *पापठ्यते* (बार-बार पढ़ता है) तथा [illegible] *जाज्वल्यते* (खूब जलता है) दीपी दीप्तौ से देदीप्यते (खूब प्रकाशित होता है) की सिद्धि जानें। देदीप्यते में अभ्यास को गुणो यर्ति [illegible] (७।४।८२) से गुण होता है॥

—:०:—

परि० नित्यं कौटिल्ये गतौ (३।१।२३)

चङ्क्रम्यते (टेढ़ी गति से जाता है)

क्रम	भूवादयो० नित्यं कौटिल्ये गतौ,
क्रम् यङ्	पूर्ववत् ही सब कार्य होकर, कुहोश्चुः (७।४।६२) [illegible] लगकर,
च क्रम् य	नुगतोऽनुनासिकान्तस्य (७।४।८५) से अभ्यास को [illegible] आगम तथा पूर्ववत् शप् त आकर
च नुक् क्रम् य शप् त = चन् क्रम् य शप् त,	नश्चापदान्तस्य [illegible] (८।३।२४)
चंक्रम्य शप् त,	अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः (८।४।५७)
चङ्क्रम्य त = चङ्क्रम्यते,	बन गया।

इसी प्रकार द्रम धातु से *दन्द्रम्यते* (कुटिल गति करता है) [illegible] सिद्धि जानें॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० लुपसदचर० (३।१।१४)

चन्चूर्यते (गन्दे ढङ्ग से चलता है)

भूवादयो० लुपसदचर० पूर्ववत् सब सूत्र लगकर

चर् य चरफलोश्च (७।४।८७) से अभ्यास को नुक् आगम हुआ,

नुक् चर् य = चन्चर् य, उत्परस्यातः (७।४।८८) से अभ्यास से उत्तर 'अ' को उकारादेश हुआ।

न् चुर् य हलि च (८।२।७७) से दीर्घ होकर, सनाद्यन्ता० (३।१।३२) पूर्ववत् शप् त आकर, तथा नश्चापदान्तस्य झलि (८।३।२४) अनुस्वारस्य ययि० (८।४।५७) ये सूत्र लगकर,

न्चूर्य बना।

———

जञ्जप्यते (ठीक जप नहीं करता है)

जञ्जप्यते यहाँ भी पूर्ववत् सब कार्य होकर 'ज जप् य' रहा। जपजभदहदशभञ्जपशां च (७।४।८६) से अभ्यास को नुक् आगम होकर शेष कार्य पूर्ववत् होकर जञ्जप्यते बन गया। पूर्ववत् जपजभदह० (७।४।८६) से नुक् आगम, एवं सब कार्य पूर्ववत् होकर जभ धातु से जम्भ्यते (बुरे ढङ्ग से शरीर को मरोड़ता हैं) दह से दन्दह्यते (बुरे ढङ्ग जलाता है) दंश से दन्दश्यते (बुरे ढङ्ग से काटता है) की सिद्धि भी जानें। दंश के अनुनासिक का लोप अनिदितां हल० (६।४।२४) से होगा, पश्चात् पूर्ववत् नुक् आगम हो जायेगा॥

———

निजेगिल्यते (बुरे ढंग से निगलता है)

भूवादयो० लुपसदचरजप०

यङ् यस्मात् प्रत्ययविधि० (१।४।१३) अङ्गस्य (६।४।१) ऋत इद्धातोः (७।१।१००) उरण्रपरः (१।१।५०)

र् य पूर्ववत् द्वित्व एवं अभ्यास कार्य कुहोश्चुः (७।४।६२) आदि होकर,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

जि गिर् य ग्रो यङि (८।२।२०) से गॄ धातु के रेफ को ... गया।

जि गिल् य गुणो यङ्लुकोः (७।४।८२) से अभ्यास को गुण हो...

जे गिल् य सनाद्यन्ता० पूर्ववत् सब सूत्र लगकर

निजेगिल्य शप् त, प्रादयः उपसर्गाः० (१।४।५८), पूर्ववत् ... होकर,

निजेगिल्यते बन गया ॥

—:०:—

परि० आयादय० (३।१।३१)

गोप्ता (वह रक्षा करेगा)

गुपू भूवादयो० अनद्यतने लुट् (३।३।१५)

गुप् लुट् गुपूधूपविच्छि० (३।१।२८) से 'आय' प्रत्यय प्राप्त हु... आयादय आर्धधातुके वा से आय प्रत्यय का पक्ष में ... हो गया। शेष सिद्धि परि० १।१।६ के समान आ... विशेष यही है कि गुप् धातु के ऊदित् होने से ... सूयतिधूञूदितो वा (७।२।४४) से पक्ष में इट् आगम नहीं होगा।

गोप्ता बना।

जिस पक्ष में इट् आगम होगा उस पक्ष में गोपिता रूप ... जिस पक्ष में आयादय आर्धधातुके वा से 'आय' प्रत्यय का निषे... हुआ, तो गुपूधूपविच्छि० से आय प्रत्यय होकर पूर्ववत् 'गोपाय... बन कर लुट् प्रत्यय आया, शेष कार्य परि० १।१।६ के समान ... गोपायिता बन गया। आर्धधातुकस्येड् वलादेः (७।२।३५) से इट् आगम हो ही जायेगा ॥

इसी प्रकार ऋति धातु से जिस पक्ष में प्रकृत सूत्र से ... (३।१।२९) से प्राप्त ईयङ् का निषेध हो गया उस पक्ष में अर्ति... घृणा करेगा), एवं जिस पक्ष में ईयङ् हो गया, उस पक्ष में ... बनेगा। कमु धातु से जब कमेर्णिङ् से प्राप्त णिङ् का निषेध हो...

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

कमिता (वह कामना करेगा) तथा जिस पक्ष में णिङ् हो गया तो पूर्ववत् *अत उपधायाः* (७।२।११६) से वृद्धि आदि होकर कामयिता बन गया॥

—:०:—

परि० सिब्बहुलं लेटि (३।१।३४)

भविषति

भूवादयो० लिङर्थे लेट् (३।४।७) से वेद विषय में लेट् प्रत्यय होकर,

भू लेट = भू ल्, पूर्ववत् सारे सूत्र लगकर 'ल्' के स्थान में तिप् हुआ,

भू तिप् *सिब्बहुलं लेटि* से लेट् स्थानिक तिप् के परे रहते सिप् प्रत्यय हुआ।

भू सिप् तिप् *आर्धधातुकं शेषः* (३।४।११४) *आर्धधातुकस्ये०* (७।२।३५)

भू इट् सिप् तिप् = भू इ स् ति, *सार्वधातुकार्ध०* (७।३।८४)

भू इ स् ति *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९) *एचोयवायावः* (६।१।७५)

भविष् ति *लेटोऽडाटौ* (३।४।९४) से लेट् को पर्याय से अट् और आट् का आगम होता है, सो यहाँ अट् आगम होकर *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५)

भविष् अट् ति = भविषति, बन गया॥

भविषाति यहाँ पूर्ववत् ही 'भविष् ति' बनकर *लेटोऽडाटौ* से आट् आगम होकर भविषाति बन गया॥ इसी प्रकार अट् आगम्, तथा पक्ष में *इतश्च लोपः परस्मैपदेषु* (३।४।९७) से तिप् के इकार का लोप एवं *झलां जशोऽन्ते* (८।२।३९) से त् को द् होकर *भविषद्*, बना। 'आट् आगम होकर *भविषाद्* बनेगा। *वावसाने* (८।४।५५) से पक्ष में 'द्' को 'त्' होकर *भविषत् भविषात्* रूप बनेगा॥

———

भाविषति

भू इ ष् अट् ति, पूर्ववत् ही होकर

सिब्बहुलं छन्दसि णित् (महा० वा० ३।१।३४) इस वार्त्तिक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

से सिप् प्रत्यय बहुल से णित्वत् माना गया, तो
ञ्णिति (७।२।११५) से 'भू'को वृद्धि होकर,
भौ इ ष् अ ति, एचोयवायावः (६।१।७५) से आवादेश होकर,
भाविषति बना।

आट् आगम पक्ष में *भाविषाति*, पूर्ववत् तिप् के इकार का लोप
भाविषत् भाविषात्, त् को द् होकर *भाविषद् भाविषाद्* रूप बन
बहुल कहने से जब णित्वत् नहीं होता, उस पक्ष के रूप भविषति
दर्शा चुके हैं ॥

सिब्बहुलं लेटि में बहुल कहने से जब पक्ष में सिप् प्रत्यय
हुआ, तो *कर्त्तरि शप्* (३।१।६८) से शप् प्रत्यय होकर भू शप् अट्
भो अ अ ति रहा। *अतो गुणे* (६।१।९४) तथा एचोयवायावः लगकर
बन गया। आट् पक्ष में सवर्ण दीर्घ होकर भवाति बना। तिप् के
का लोप होकर *भवद् भवाद्*, *भवत् भवात्* रूप बनेंगे। ये सब १८ रूप
प्रत्यय में बने हैं ॥

———

तस् में पूर्ववत् सब होकर, 'स्' को रुत्व विसर्जनीय होकर
भविषातः, णित् पक्ष में वृद्धि होकर *भाविषतः भाविषातः* शप्
भवतः भवातः ६ रूप बनेंगे ॥

झि में भविष् अट् झि = भविष अन्ति, यहाँ पूर्ववत् पक्ष में
के इकार का लोप होकर 'भविष अन्त्' रहा। *संयोगान्तस्य*
(८।२।२३) से 'त्' का लोप तथा *अतो गुणे* लगकर *भविषन्* बना।
लेट् लकार के रूप प्रकृत सूत्र की प्रथमावृत्ति में देख लें। कोई
नहीं है, पूर्ववत् ही कार्य हुए हैं।

सिप् में *भविषसि* आदि प्रयोग भी पूर्ववत् बनेंगे। जिस पक्ष
सिप् के इकार का लोप हो जायेगा, उस पक्ष में सिप् के 'स्' को
विसर्जनीय होकर *भविषः भविषाः* रूप बनेंगे। थस्, थ में कोई
नहीं है ॥

मिप् में भविषमि की सिद्धि पूर्ववत् होगी। केवल यहाँ यह
चाहिये कि *अतो दीर्घो यञि* (७।३।१०१) से दीर्घ यहाँ इसलिये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

होता कि अट् आगम मिप् को हुआ है, अतः मिप् का भाग है, सो 'भविष्' अदन्त अङ्ग नहीं रहता, एवं उधर मिप् को अट् का आगम होने से यञादि परे भी नहीं मिलता। इसी प्रकार वस् मस् में भी जानें। शेष रूप पूर्ववत् जानें। वस्, मस् के सकार का *स उत्तमस्य* (३।४।९८) से पक्ष में लोप होकर भविषव भविषाव, भाविषव भाविषाव, आदि प्रयोग भी बनेंगे। जब सकार लोप नहीं होगा तो 'स्' को रुत्व विसर्जनीय हो जायेगा॥

—:—

जोषिषत्

जुष धातु से जिस पक्ष में णित्वत् नहीं हुआ, एवं सिप् प्रत्यय हुआ, उस पक्ष में भी लघूपध गुण होकर जोषिषत् ही रूप बनेगा। तृ धातु से णित् पक्ष में वृद्धि होकर तारिषत् बना। मदि धातु को *इदितो नुम्धातोः* (७।१।५८) से नुम् होकर 'मन्द्' बना, पुनः पूर्ववत् सब कार्य होकर मन्दिषत् बना।

पत् धातु से जब प्रकृत सूत्र से सिप् प्रत्यय नहीं हुआ तो शप् प्रत्यय होकर आट् पक्ष में पतति बना। च्युङ् धातु से वृद्धि पक्ष में च्यावयति, तथा जीव धातु से पक्ष में शप् एवं आट् होकर जीवति की सिद्धि पूर्ववत् जानें॥

—:०:—

परि० उषविदजागृभ्यो० (३।१।३८)

ओषाञ्चकार (उसने जलाया) विदाञ्चकार (उसने जाना) जागराञ्चकार (वह जागा) इन सब की सिद्धि परि० १।३।६३ के समान जानें। यहाँ केवल यही विशेष है, कि उष, विद, जागृ धातुएँ परस्मैपदी हैं, अतः कृञ् का जो अनुप्रयोग हुआ है, वह भी परस्मैपद में हुआ है, सो कृञ् के अनुप्रयोग से *परस्मैपदानां णलतु०* (३।४।८२) से णल् होकर चकार बन गया है॥ *विदाञ्चकार* में इतना और विशेष है, कि इस सूत्र में विद को अकारान्त उच्चारण (निपातन) किया है, सो *अतो लोपः* (६।४।४८) से उस अकार का लोप हो जाता है, अतः जब विद् को आम् परे रहते लघूपध गुण होने लगता है तो वह अकार स्थानिवत् हो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

जाता है, इस प्रकार उपधा इक् नहीं मिलती, सो गुण नहीं हो
यही विशेष है। परि० १।१।५६ के अवधीत् के समान यह बात समझें

उवोष

उष — उषविदजागृ० से जब पक्ष में आम् नहीं हुआ तो द्वित्व
सब कार्य पूर्ववत् होकर,

उ उष् णल् — पुगन्तलघू० (७।३।८६) से गुण होकर

उ ओष् अ — अभ्यासस्यासवर्णे (६।४।७८) से असवर्ण 'ओ' के परे रहते
अभ्यास को उवङ् आदेश हुआ।

उवङ् ओष् अ = उव् ओष् अ = उवोष, बन गया॥

विवेद में कोई विशेष नहीं है। यहाँ अदन्त निपातन का अभाव
होने से गुण हो जाता है। जजागार में सब पूर्ववत् ही है, केवल
जागृ के 'गृ' को वृद्धि ह्म्यन्तक्षणश्वस० (७।२।५) से हुई है, यही
विशेष है॥

—:०:—

परि० कृञ्चानुप्रयु० (३।१।४०)

पाठयाञ्चकार (उसने पढ़ाया)

पठ — भूवादयो० हेतुमति च (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय होकर

पठ् णिच् = इ, अत उपधायाः (७।२।११६) सनाद्यन्ता धातवः (३।१।३२)

पाठि — परोक्षे लिट् (३।२।११५) प्रत्ययः, परश्च

पाठि लिट् — कास्प्रत्ययादाम० (३।१।३५) से पाठि प्रत्ययान्त धातु से
लिट् परे रहते 'आम्' प्रत्यय हुआ।

पाठि आम् ल्, णेरनिटि (६।४।५१) से णि का लोप प्राप्त हुआ, तो
अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु (६।४।५५) ने णि लोप को बाधकर
'णि' को अयादेश विधान कर दिया।

पाठय् आम् ल् = पाठयाम् ल्, शेष परि० १।३।६३ के समान जानें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

यहाँ केवल विशेष यह है कि 'पठ' धातु परस्मैपदी है, अतः कृञ् का अनुप्रयोग भी परस्मैपद में होगा।

पाठयाञ्चकार बना।

प्रकृत सूत्र से भू का अनुप्रयोग करने पर भू के अभ्यास को *भवतेरः* (७।४।७३) से अत्व तथा *अभ्यासे चर्च* (८।४।५३) से चर्त्व होकर पाठयाम्बभूव बना है। अस् का अनुप्रयोग करने पर अस् अस् द्वित्व एवं *अत आदेः* (७।४।७०) से अभ्यासदीर्घ, पश्चात् सवर्ण दीर्घ होकर आस् = पाठयामास बन गया॥

—:०:—

परि० अभ्युत्सादयाम्० (३।१।४२)

अभ्युदसीषदत् (उसने ज्ञान प्राप्त किया)

पद्लृ *भूवादयो० धात्वादेः षः सः* (६।१।६२) पूर्ववत् सब कार्य परि०
सद् १।१।५८ के आटिटत् के समान होकर,
अभि उत् साद् इ चङ् ल्, *णेरनिटि* (६।४।५१) लगकर,
अभ्युत् साद् अ ल्, *णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः* (७।४।१) से उपधा को ह्रस्व हुआ,
अभ्युत् सद् अ ल्, शेष सिद्धि परि० २।४।५१ के अध्यजीगपत् के समान जानें।
अभ्युत् अट् सी सद् अ त्, *झलां जशोऽन्ते* (८।२।३९) से त् को द् होकर,
अभ्युद् अ सी सदत्, *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९) से षत्व होकर,
अभ्युदसीषदत् बन गया।

प्र पूर्वक जन धातु से प्राजीजनत् की सिद्धि जानें। *प्रजनयामकः रमयामकः* में णिच् को मानकर जो जन् तथा रम् की उपधा को वृद्धि हुई थी, उसको *जनिजॄष्क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च* (धातुपाठ पृ० १२) इस धातुपाठ के सूत्र से जन् के मित् माने जाने के कारण *मितां ह्रस्वः* (६।४।९२) से ह्रस्व हो गया है। शेष निपातन कार्य प्रथमावृत्ति में देखें॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

रम धातु से अरीरमत् की सिद्धि भी णिच् चङ् आकर पूर्ववत् जानें ॥ अचैषीत् की सिद्धि परि० १।१।१ में देखें ॥

———

पाव्यात्

यहाँ पूङ् या पूञ् धातु से णिच् प्रत्यय आकर 'पू' को वृद्धि तथा आवादेश होकर 'पावि' रहा। सनाद्यन्ता० से धातु संज्ञा होकर आशिषि लिङ्लोटौ (३।३।१७३) से लिङ् आया। णेरनिटि (६।४।५१) से णिच् का लोप हो गया, तो 'पाव् 'ल्' रहा, शेष लिङ् लकार की सिद्धि के समान ही यासुट्, सुट् (३।४।१०३-१०७) होकर 'पाव् यासुट् सुट् तिप्'=पाव् यास् स् त् रहा। स्कोः संयोगाद्योरन्ते च (८।२।२९) से यासुट् के सकार का लोप हुआ तथा, पुनः यही सूत्र लगकर सुट् के सकार का भी लोप हो गया, तो पाव्यात् बन गया ॥

———

अवेदिषुः

लुङ् लकार में पूर्ववत् ही 'अट् विद् इट् सिच् झि' होकर सिजभ्यस्त विदिभ्यश्च (३।४।१०९) से झि को जुस् होकर 'अ विद् इ स् जुस्' रहा। लघूपध गुण, षत्व, एवं रुत्व विसर्जनीय होकर अवेदिषुः बन गया ॥

—:०:—

परि० शल इगुपधा० (३।१।४५)

अधुक्षत् (उसने दुहा)

दुह प्रपूरणे भूवादयो० पूर्ववत् ही सारे लुङ् लकार के कार्य परि० १।१।१ के अचैषीत् के समान होकर,

अट् दुह् च्लि त्, शल इगुपधादनिटः क्सः से दुह धातु के शलन्त, (शल् प्रत्याहार अन्त वाली) अनिट् एवं इक् उपधा वाली होने से च्लि के स्थान में क्स आदेश हुआ।

अ दुह् क्स त्, दादेर्धातोर्घः (८।२।३२) से 'ह्' को 'घ्' आदेश होकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अ दुघ् स त् *एकाचो बशो भष्०* (८।२।३७) से 'द्' को 'ध' होकर,
अ धुघ् स त् *खरि च* (८।४।५४) से घ् को क् होकर,
अ धुक् स त् *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९)
अ धुक् ष त् यहाँ दुह धातु को क्स को मानकर *पुगन्तलघूपधस्य च* (७।३।८६) से गुण प्राप्त था, पर *क्ङिति च* (१।१।५) से निषेध हो गया।
अधुक्षत् बन गया॥

इसी प्रकार लिह आस्वादने धातु से *अलिक्षत्* (उसने स्वाद लिया) की सिद्धि जानें। यहाँ केवल यही विशेष है कि, *हो ढः* (८।२।३१) से लिह् के ह् को ढ्, तथा *षढोः कः सि* (८।२।४१) से ढ् को 'क्' हो जाता है।

—:०:—

परि० न दृशः (३।१।४७)

अदर्शत् (उसने देखा)

दृशिर् *भूवादयो० हलन्त्यम्* (१।३।३) *उपदेशेऽज०* (१।३।२) *तस्य लोपः* (१।३।९) पूर्ववत् ही लुङ् लकार के सब कार्य होकर,
अट् दृश् च्लि त्, यहाँ दृश् धातु के शलन्त अनिट् एवं इगुपध होने से *शल इगुपधादनिटः०* (३।१।४५) से च्लि के स्थान में क्स आदेश प्राप्त हुआ, जिसका कि प्रकृत सूत्र से निषेध हो गया तब दृश् धातु के इरित् होने से *इरितो वा* (३।१।५७) से च्लि के स्थान में 'अङ्' आदेश हो गया।
अ दृश् अङ् त्, अब यहाँ *पुगन्तलघू०* (७।३।८६) से अङ् को मानकर दृश् की उपधा को गुण प्राप्त हुआ, जिसका *क्ङिति च* से निषेध हो गया, तब *ऋदृशोऽङि गुणः* (७।४।१६) ने अङ् परे रहते गुण कर दिया, *उरण्रपरः* (१।१।५०)
अदर्श् अ त् = अदर्शत्, बन गया।

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अद्राक्षीत्

दृशिर् पूर्ववत् लुङ् के कार्य होकर तथा प्रकृत सूत्र से क्स आदेश
अ दृश् च्लि त् , का निषेध होकर, *इरितो वा* (३।१।५७) से पक्ष में जि
के स्थान में यथाप्राप्त च्लेः सिच् (३।१।४४) से सि
आदेश होकर,

अ दृश् सिच् त् , *सृजिदृशोर्झल्यमकिति* (६।१।५७) *मिदचोऽन्त्यात् प*
(१।१।४६)

अ द्र अम् श् स् त् , *इको यणचि* (६।१।७४) से यणादेश हुआ। पूर्वरू
अ द्रश् स् त् , अङ्ग संज्ञा होकर, *वदव्रजहलन्तस्याचः* (७।२।३) से वृद्धि
हुई।

अ द्राश् स् त् , *व्रश्चभ्रस्जसृजमृ०* (८।२।३६) से श् को 'ष्' होकर
अ द्राष् स् त् , *षढोः कः सि* (८।२।४१) *अस्तिसिचोऽपृक्ते* (७।३।९६)
अ द्राक् स् ईट् त् = अ द्राक् स् ई त् , *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९)
अद्राक्षीत् बन गया।

—:०:—

परि० णिश्रिद्रुस्रुभ्यः० (३।१।४८)

परि० १।४।१० में अचीकरत् , अजीहरत् की सिद्धि देखें॥

श्रि, द्रु, स्रु से बिना णिच् आये ही च्लि को चङ् होगा। लि को
चङि(६।१।११) से द्वित्व तथा *हलादिः शेषः* (७।४।६०) लगकर अट् लि
श्रि अ त् रहा। *अचि श्नुधातु०* (६।४।७७) से श्रि को इयङ् होकर अ लि
श्रियङ् अ त् = अशिश्रियत् (उसने आश्रय लिया) बन गया। इसी प्रकार
द्रु, स्रु धातुओं को ६।४।७७ से उवङ् आदेश होकर, तथा शेष सब पूर्ववत्
ही होकर अदुद्रुवत् (वह गया) असुस्रुवत् (वह टपक पड़ा) बन गया है।

—:०:—

परि० विभाषा घेट्ख्योः (३।१।४९)

चङ् पक्ष में घेट् धातु से *आतो लोप इटि च* (६।४।६४) से धा
के 'आ' का लोप होकर तथा पूर्ववत् *द्विर्वचनेऽचि* (१।१।५८) लगकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

द्वित्वादि (६।१।११) कार्य हुये तो अट् धा ध् अ त् रहा। अभ्यासे चर्च (८।४।५३) हुस्वः (७।४।५९) से अभ्यास को जश्त्व तथा ह्रस्व होकर अ द ध् अ त् = अदधत् बन गया ॥

जिस पक्ष में प्रकृत सूत्र से चङ् नहीं होगा, तो यथाप्राप्त च्लेः सिच् (३।१।४४) से सिच् होगा, उस सिच् का भी *विभाषा घ्राधेट्-शाच्छासः* (२।४।७८) से पक्ष में लुक् हो गया तो अघात् रूप बना।

जिस पक्ष में *विभाषा घ्राधेट्०* से सिच् का लुक् नहीं हुआ, तो अघासीत् बना, जिसकी सिद्धि २।४।७८ सूत्र पर ही देख लें ॥

श्वि धातु से प्रकृत सूत्र से चङ् तथा पूर्ववत् द्वित्वादि होकर 'अ शि श्वि अ त्' रहा। *अचि श्नुधातुभ्रुवां०* (६।४।७७) से इयङ् होकर अ शि श्वियङ् अ त् = अशिश्वियत् बन गया।

जब प्रकृत सूत्र से पक्ष में चङ् नहीं हुआ, तो *जृस्तम्भुम्रुचु०* (३।१।५८) से च्लि के स्थान में अङ् होकर 'अट् श्वि अङ् त्' बना। *श्वयतेः* (७।४।१८) से श्वि अङ्ग के अन्तिम अल् 'इ' (१।१।५१) को 'अ' आदेश अङ् परे रहते होकर 'अ श्व अ त्' रहा। *अतो गुणे* (६।१।९४) से पररूप होकर अश्वत् बन गया ॥

—·—·—

अश्वयीत् (उसने भेजा)

जृस्तम्भु० (३।१।५८) से अङ् का भी विकल्प होता है अतः पक्ष में जब अङ् नहीं हुआ तो यथाप्राप्त सिच् हो गया। शेष कार्य परि० १।१।१ के अलावीत् के समान होकर 'अट् श्वि इट् सिच् ईट् त्' रहा। अब यहाँ *सिचि वृद्धिःपरस्मैपदेषु* (७।२।१) से वृद्धि प्राप्त हुई तो *ह्रयन्त-क्षणश्वस०* (७।२।५) से निषेध हो गया तब *सार्वधातुकार्ध०* (७।३।८४) से गुण तथा *एचोयवायावः* (६।१।७५) से अयादेश होकर 'अ श्वय् इ स् ई त्' रहा। इट ईटि (८।२।२८) से स् का लोप हो गया तो अश्वयीत् बन गया ॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० गुपेश्छन्दसि (३।१।५०)

अजूगुपतम्

गुपू रक्षणे धातु से चङ् पक्ष में पूर्ववत्, द्वित्व तथा अभ्यास कार्य होकर मध्यम पुरुष के द्विवचन में लुङादेश 'थस्' हुआ तो 'च्लि गुप् चङ् थस्' रहा। तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य (६।१।७) से अभ्यास दीर्घ होकर 'अ जु गुप् अ थस्', बना। तस्थस्थमिपां तांतंतामः (३।४।१०१) से थस् को 'तम्' होकर अजूगुपतम् बन गया।

अगौप्तम्

गुप् पूर्ववत् सब कार्य होकर,
अट् गुप् च्लि थस्, प्रकृत सूत्र से जब पक्ष में चङ् नहीं हुआ, तो यथाप्राप्त सिच् हो गया। आर्धधातु० (७।२।३५) से इट्
अ गुप् सिच् थस्, आगम प्राप्त हुआ जिसका स्वरतिसूतिसूयति० (७।२।४४) से पक्ष में निषेध हो गया। वदव्रजहलन्तस्याचः (७।२।३) से वृद्धि होकर
अ गौप् स् तम्, झलो झलि (८।२।२६)
अगौप्तम् बन गया।

जब स्वरतिसूति० से पक्ष में इट् आगम हो गया तो अगोपिष्ट बना। यहाँ वदव्रजहलन्तस्याचः से वृद्धि प्राप्त थी, पर नेटि (७।४।२) से उसका निषेध हो गया तब लघूपध गुण हो गया॥

अगोपायिष्टम्

गुप् धातु से जब गुपूधूपविच्छि० (३।१।२८) से प्राप्त आय प्रत्यय आयादय आर्धधातुके वा (३।१।३१) से पक्ष में हुआ, तो गुप् को लघूपधगुण होकर सनाद्यन्ता धातवः (३।१।३२) से 'गोपाय' नयी धातु बन गई। तत्पश्चात् पूर्ववत् सब कार्य होकर 'अट् गोपाय सिच् थस्' रहा। आर्धधातुकस्ये० (७।२।३५) से इट् आगम तथा अतो लोपः (६।४।४८)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

से 'थ' के अ का लोप होकर 'अ गोपाय् इ स् तम्' अगोपायिष्टम् बन गया ॥

—:०:—

परि० अस्यतिवक्ति० (३।१।५२)

पर्यास्थत (उसने फैंका)

असु क्षेपणे पूर्ववत् सारे लुङ् लकार के कार्य होकर, *आडजादीनाम्* (६।४।७२) से आट् आगम हुआ।

आट् अस् च्लि त, *अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्* से च्लि के स्थान में अङ् हुआ, पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर *अस्यतेस्थुक्* (७।४।१७)

आ अस् अङ् त, *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५)

परि आङ् अस् थुक् अङ् त, इको *यणचि* (६।१।७४)

पर्यास्थ् अ त = पर्यास्थत, बन गया।

पर्यास्थेताम् यहाँ पूर्ववत् सब होकर 'पर्यास्थ् अ आताम्' रहा। *आतो ङितः* (७।२।८१) से आताम् के आ को 'इय्' होकर पर्यास्थ इय् ताम् रहा। *लोपो व्योर्वलि* (६।१।६४) से यकार लोप, तथा *आद् गुणः* (६।१।८४) से पूर्व पर को गुण एकादेश होकर पर्यास्थेताम् बन गया ॥

—·—·—

अवोचत् (वह बोला)

वच परिभाषणे, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, तथा प्रकृत सूत्र से च्लि को अङ् होकर,

अट् वच् अङ् त्, पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर, वच उम् (७।४।२०) *मिदचोऽन्त्यात्परः* (१।१।४६)

अ व उम् च् अ त् = अ व उ च् अ त्, *आद् गुणः* (६।१।८४)

अवोचत् बन गया।

अवोचताम् में तस् को ताम् *तस्थस्थमिपां०* (३।४।१०१) से हो गया है। अवोचन् यहाँ पूर्ववत् सब होकर अवोच झि रहा। झि को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अन्ति आदेश, तथा *इतश्च* (३।४।१००) से इकार लोप होकर अन्त् रहा। *संयोगान्तस्य लोपः* (८।२।२३) से 'त्' का लोप होकर चन् बन गया॥

आख्यत् (उसने वर्णन किया) यहाँ आङ् पूर्वक ख्या धातु से सब होकर 'आङ् अट् ख्या अङ् त्' रहा। *आतो लोप इटि च* से 'ख्या' के आ का लोप होकर 'आ अ ख्य् अ त्' से सवर्ण दीर्घ होकर आख्यत् बन गया॥

—:०:—

परि० लिपिसिचिह्वश्च (३।१।५३)

अलिपत् (उसने लीपा) लिप धातु से पूर्ववत् सब कार्य होकर प्रकृत सूत्र से अङ् आदेश होकर 'अ लिप् अ त्' रहा। यहाँ पुगन्त (७।३।८६) से गुण प्राप्त था, जिसका *क्ङिति च* (१।१।५) से निषेध होकर अलिपत् बन गया॥

षिच धातु के 'ष्' को 'स्' *धात्वादेः षः सः* (६।१।६२) से होता है, शेष सब पूर्ववत् ही होकर *असिचत्* (उसने सींचा) बन गया॥

आह्वत् (उसने बुलाया) यहाँ ह्वेञ् धातु को आदेश जनसं (६।१।४४) से आत्व तथा शेष कार्य पूर्ववत् होकर, आङ् अट् ह्वा त् रहा। *आतो लोप०* (६।४।६४) से आकार लोप तथा आङ् एवं अ 'अ' को सवर्ण दीर्घ होकर आह्वत् बन गया॥

—:०:—

परि० आत्मनेपदेष्वन्य० (३।१।५४)

लिप तथा सिच धातुएँ स्वरितेत् हैं, अतः स्वरितेत् होने से कर्त्रभि प्राय क्रियाफल में *स्वरितञितः०* (१।३।७२) से आत्मनेपद होता है, इ ह्वेञ् धातु के भी ञित् होने से *स्वरितञितः०* से आत्मनेपद होगा। आत्म पद होने पर प्रकृत सूत्र से अङ् तथा पक्ष में यथाप्राप्त सिच् होता है। अङ् पक्ष में पूर्ववत् सब होकर *अलिपत असिचत* बन जायेगा। सिच् पक्ष में *झलो झलि* (८।२।२६) से सिच का लोप होकर अलिप अ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

बनेगा। यहाँ लघूपध गुण *लिङ्सिचावात्मने०* (१।२।११) से कित्वत् होने से नहीं हुआ है। सिच् के 'च्' को 'क्' भी चोः कुः (८।२।३०) से हो जाता है॥ ह्वेञ् धातु से अङ् पक्ष में पूर्ववत् ही आह्वत् के समान आत्मनेपद में अह्वत बनेगा। सिच् पक्ष में अह्वास्त पूर्ववत् ही बनेगा॥

—:०:—

परि० सर्त्तिशास्त्य० (३।१।५६)

असरत् (वह सरक गया)

सृ पूर्ववत् सब सूत्र लगकर तथा प्रकृत सूत्र से अङ् होकर
अट् स् अङ् त्, अब *सार्वधातु०* (७।३।८४) से गुण प्राप्त हुआ, जिसका *क्ङिति च* (१।१।५) से निषेध हो गया, तब *ऋदृशोऽङि गुणः* (७।४।१६) से गुण हो गया, *उरण्रपरः* (१।१।५०)
असरत् बन गया।

इसी प्रकार ऋ धातु से 'आरत्' (वह प्राप्त हुआ) बनेगा। केवल यहाँ अट् आगम न होकर *आडजादीनाम्* (६।४।७२) से आट् आगम होगा, यही विशेष है॥

अशिषत् यहाँ *शास इदङ्हलोः* (६।४।३४) से शास् की उपधा को इत्व तथा *शासिवसिघसीनां च* (८।३।६०) से शास् के 'स्' को 'ष्' होकर
अ शिष् अङ् त् = अशिषत् बन गया॥

—:०:—

परि० इरितो वा (३।१।५७)

रुधिर्, भिदिर्, छिदिर् धातुओं का रेफ *हलन्त्यम्* से तथा इकार *उपदेशेऽजनु०* (१।३।२) से इत्संज्ञक होता है, अतः ये इरित् धातुएँ हैं, सो प्रकृत सूत्र से अङ् होकर पूर्ववत् अरुधत्, (उसने रोका) अभिदत् (उसने फाड़ा) अच्छिदत् (उसने छेदा) बन जायगा। अच्छिदत् में छे च (६।१।७१) से तुक् आगम तथा श्चुत्व ही (८।४।३९) विशेष है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

जिस पक्ष में प्रकृत सूत्र से अङ् नहीं हुआ, तो यथाप्राप्त क्सि
तथा शेष कार्य पूर्ववत् होकर 'अ रुध् सिच् त्' रहा। अतिदेश
(७।३।९६) से ईट् आगम तथा वदव्रजहलन्तस्याचः (७।२।३) से
लक्षणा वृद्धि होकर 'अरौध् स् ईट् त्' रहा। खरि च (८।४।५४) से
होकर अरौत्सीत् बन गया। इसी प्रकार अमैत्सीत् अच्छैत्सीत् से
समझें ॥

—:०:—

परि० जृस्तम्भु० (३।१।५८)

अङ् पक्ष में अजरत् (वह जीर्ण हो गया) की सिद्धि परि०
के असरत् के समान जानें। शेष स्तम्भु तथा ग्लुञ्चु धातु से
रहते अनिदितां हल० (६।४।२४) से अनुनासिक लोप होकर
अस्तभत् (उसने रोका) अग्लुचत् (वह गया) बनेगा। अमुचत्
अग्लुचत् (वह गया) अमुचत् (उसने चुराया) अग्लुचत् (उसने
में कुछ भी विशेष नहीं है।

सिच् पक्ष में अजारीत्, अस्तम्भीत् की सिद्धि परि०
अलावीत् के समान जानें। यथा प्राप्त गुण एवं वृद्धि सर्वत्र जानें।
अध्यगीत्, अशिश्रियत् की सिद्धि परि० ३।१।४९ में देखें॥

—:०:—

परि० दुहश्च (३।१।६३)

अदोहि की सिद्धि ३।१।६० सूत्र के समान जानें॥

जिस पक्ष में प्रकृत सूत्र से चिण् नहीं हुआ तो शल
(३।१।४५) से च्लि के स्थान में क्स होकर 'अट् दुह् क्स त्'
दादेर्धातोर्धः (८।२।३२) से दुह् के 'ह' को 'घ्' तथा
(७।३।७३) से क्स का लुक् होकर अदुघ् त रहा।
(८।२।४०) से 'त्' को 'ध्' होकर 'अ दुघ् ध' रहा।
(८।४।५२) से 'घ्' को 'ग्' होकर 'अदुग्ध गौः स्वयमेव' (गौ स्वयं
गई) कर्मकर्त्ता में बन गया॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० कर्त्तरि शप् (३।१।६८)

भवति पठति की सिद्धि परि० १।१।२ के जयति के समान जानें ॥

भवतु पठतु में सब पूर्ववत् ही होगा, केवल यहाँ एरुः (३।४।८६) से तिप् के 'इ' को 'उ' हो जायेगा ॥

लङ् लकार में पूर्ववत् ही सब होकर तथा लुङ्लङ्लृङ्क्ष्व० (६।४।७१) से अट् आगम होकर' अट् भू शप् तिप्' रहा। भू को पूर्ववत् गुण तथा अवादेश एवं इतश्च (३।४।१००) से तिप् के इकार का लोप होकर अभवत् बना है। इसी प्रकार अपठत् में भी जानें ॥

———

भवेत् (होवे)

भू — भूवादयो० विधिनिमन्त्रणा० (३।३।१६१) प्रत्ययः, परश्च

भू तिप् — पूर्ववत् लादेश 'तिप्' होकर,

भू यासुट् ति — यासुट् परस्मैपदेषू० (३।४।१०३) आद्यन्तौ टकितौ (१।१।४५)

भू यास् ति, सुट् तिथोः (३।४।१०७) तिङ्शित् सार्व० (३।४।११३)

भू यास् सुट् त्, कर्त्तरि शप्

भू शप् यास् सुट् त् = भो अ यास् स् त्, एचोयवायावः (६।१।७५)

भव् अ यास् स् त्, लिङः सलोपोऽन० (७।२।७९) से दोनों सकारों का लोप होकर,

भव या त् — पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर, अतो येयः (७।२।८०) से 'या' को इय् हो गया।

भव इय् त् — लोपो व्योर्वलि (६।१।६४) आद् गुणः (६।१।८४)

भवेत् — बन गया।

इसी प्रकार पठेत् की सिद्धि जानें ॥

—:०:—

परि० दिवादिभ्यः श्यन् (३।१।६९)

दीव्यति (वह चमकता है)

दिवु — पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,

दिव् तिप् — तिङ्शित् सा० (३।४।११३) दिवादिभ्यः श्यन्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दिव् श्यन् ति = दिव् य ति, पुगन्तलघू० (७।३।८६) से श्यन् के कर दिव् की उपधा को गुण प्राप्त हुआ, पर क्र अपित् होने से सार्वधातुकमपित् (१।२।४) से ङित्वत् क्ङिति च (१।१।५) से निषेध हो गया।

दिव् य ति — हलि च (८।२।७७) से हल् परे रहते वकारान्त उपधा इक् को दीर्घ होकर

दीव्यति — बन गया ॥

षिवु धातु के 'ष्' को स् घात्वादेः षः सः (६।१।६२) से होकर सब पूर्ववत् ही होकर सीव्यति (वह सीता है) बना है॥

—:०:—

परि० स्वादिभ्यः श्नुः (३।१।७३)

सुनोति (सोम रस निकालता है) की सिद्धि० परि० १।१।५ के समान ही जानें, केवल यहाँ विशेष यह है, कि 'सु तिप्' अवस्था में तिप् को मानकर सार्वधातुका० (७।३।८४) से गुण हो है, किन्तु जब श्नु को मानकर 'सु' को गुण करने लगेंगे तो, अप मपित् (१।२।४) से 'श्नु' को ङित्वत् होकर क्ङिति च (१।१।५) से का निषेध हो जाता है। गुण करते समय 'सु' तथा 'नु' दोनों में 'सु' मात्र की कैसे अङ्ग संज्ञा है, यह बात परि० १।४।१३ के जान लें॥ षिञ् धातु से सिनोति (बाँधता है) की सिद्धि इसी प्रकार है।

:—०:—

परि० धिन्विकृण्व्योर च (३।१।८०)

धिनोति (तृप्त करता है)

धिवि — भूवादयो० उपदेशेऽज०(१।३।२) इदितो नुम्धातोः (अ

धि नुम् व् = धिन्व्, पूर्ववत् सब सूत्र लगाकर,

धिन्व् तिप् — अब धिन्विकृण्व्योर च से 'उ' प्रत्यय हुआ, तथा न्त्यस्य (१।१।५१) से 'व्' के स्थान में 'अ' अन्तादेश गया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

[...]दः]

...न् अ उ ति, अतो लोपः (६।४।४८) से उस 'अ' का लोप हो गया।

...न् उ ति सार्वधातुकार्ध० (७।३।८४)। अब यहाँ लघूपध गुण भी अचः

...न् ओ ति परस्मिन्० (१।१।५६) से अकार लोप के स्थानिवत् हो जाने से प्राप्त ही नहीं होता ऐसा जानें।

...नोति बन गया॥

इसी प्रकार कृवि धातु से कृणोति (हिंसा करता है) की सिद्धि ...नें। ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम् (वा० ८।४।१) इस वार्त्तिक से यहाँ णत्व ...ी हो जाता है॥

—:०:—

परि० लिङ्याशिष्यङ् (३।१।८६)

उपस्थेयम्

भूवादयो० धात्वादेः षः सः (६।१।६२) आशिषि लिङ्लोटौ (३।३।१७३) प्रत्ययः, परश्च

...प स्था लिङ्, परि० ३।१।६३ के समान यासुट् आगम तथा लादेश 'मिप्' होकर,

...प स्था यासुट् मिप्, तस्थस्थमिपां तां० (३।४।१०१) लिङ्याशिष्यङ्

...प स्था अङ् यास् अम्, लिङाशिषि (३।४।११६) से यहाँ लिङ् आर्धधातुक संज्ञक है, पर छन्दस्युभयथा (३।४।११७) से सार्वधातुक आर्धधातुक दोनों संज्ञायें होने से सार्वधातुक मानकर, लिङः सलोपो० (७।२।७९) से सकार लोप तथा अतो येयः (७।२।८०) से 'या' को इय् हुआ है,

...प स्था अ इय् अम्, आतो लोप इटि च (६।४।६४) से अङ् परे रहते 'था' के 'आ' का लोप होकर,

...प स्थ् अ इय् अम्, आद् गुणः (६।१।८४)

...पस्थेयम् बना।

गै धातु को आदेच उपदेशे० (६।१।४४) से आत्व होकर शेष कार्य पूर्ववत् होकर उपगेयम् की सिद्धि जानें॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

गमेम यहाँ पूर्ववत् सब होकर 'मस्' विभक्ति आई, तथा प्रकृ
से अङ् हो गया तो गम् अङ् यासुट् मस् = गम् अ यास् मस्
नित्यं ङितः (३।४।९९) से मस् के सकार का लोप, तथा शेष
पूर्ववत् होकर गमेम बना है ॥ वच धातु से वोचेम की सिद्धि
प्रकार जानें। केवल यहाँ विशेष यह है कि अङ् परे रहते
(७।४।२०) से 'उम्' आगम होता है, जो कि *मिदचोऽन्त्यात्*
से अन्त्य अच् से परे बैठता है, सो 'व उम् च् अङ् या
च् अ इय् मस्' रहा। *आद् गुणः* (६।१।८४) लगकर वोच् अ इ
पुनः *आद्गुणः* लगकर वोचेम बन गया है ॥

गमेम के समान ही शक्ल धातु से शकेम, रुह धातु से रो
सिद्धि जानें ॥ रुहेमा यहाँ आरुहेम होना चाहिए था, पर हल्ङ्या
(६।४।८०) से आङ् का 'आ' परे भी हो गया तो सवर्ण दीर्घ होक
बन गया है ॥

विद धातु से विदेयम् तथा शक्ल से शकेयम् की सिद्धि
के समान ही जानें ॥

—:o:—

परि० कर्मवत्० (३।१।८७)

भिदिर् धातु से भिद्यते की सिद्धि परि० १।३।१३ के
समान जानें। अभेदि की सिद्धि *चिण् ते पदः* (३।१।६०) सूत्र से
जानें ॥

'कारिष्यते' यहाँ लृट् लकार में प्रकृत से कर्मवद्भाव होने
कर्माश्रित कार्य *स्यसिच्सीयुट्०* (६।४।६२) से 'चिण्वद्भाव करने' होने
है, तथा इसी सूत्र से इट् आगम भी हो गया है। चिण्वत्सूत्र
अचो ञ्णिति (७।२।११५) से 'कृ' को वृद्धि करना ही है। शेष
सिद्धि परि १।४।१३ के करिष्यति के समान ही है। आत्मनेप
भावकर्मणोः से हो ही जायगा, सो यहाँ वृद्धि, *स्यसिच्०* से इट्
तथा आत्मनेपद करना ही विशेष है ॥

—:o:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० न दुहस्नुनमां० (३।१।८९)

दुग्धे

दुह् — *भूवादयो०* यहाँ कर्मकर्त्ता में *कर्मवत् कर्मणा०* से कर्मवद्भाव होने से कर्मवाच्य के सब कार्य प्राप्त हुये, पर प्रकृत सूत्र से यक् का प्रतिषेध हो जाने से, *कर्त्तरि शप्* (३।१।६८) से शप् हो गया। *भावकर्मणोः* (१।३।१३) से आत्मनेपद हो ही जायगा।

दुह् शप् त — *अदिप्रभृतिभ्यः शपः* (२।४।७२) *दादेर्धातोर्घः* (८।२।३२)
दुघ् त — *झषस्तथोर्धोऽधः* (८।२।४०) *टित आत्मने०* (३।४।७९)
दुघ् धे — *झलां जश् झशि* (८।४।५२)
दुग्धे — बना।

———

अदोहि की सिद्धि ३।१।६० सूत्र के समान जानें। जिस पक्ष में कर्मकर्त्ता में दुहश्च (३।१।६३) से चिण् हो गया, उस पक्ष का यह रूप है। जब पक्ष में चिण् नहीं हुआ तो सिच् हो गया तब अदुग्ध बना। सिद्धि इस पक्ष में परि० ३।१।६३ में ही देखें॥

प्र पूर्वक स्नु धातु से पूर्ववत् ही शप् का लुक् होकर प्रस्नुते बना है। लुङ् लकार में *कर्मवत् कर्मणा०* (३।१।८७) से चिण् प्राप्त था, जिसका प्रकृत सूत्र से निषेध हो गया तो *च्लेः सिच्* (३।१।४४) से सिच् तथा पूर्ववत् सब कार्य होकर 'प्र अट् स्नु सिच् त = प्र अ स्नु स् त' रहा। *आदेशप्र०* (८।३।५९) से षत्व, एवं ष्टुत्व तथा सवर्ण दीर्घ होकर *प्रास्नोष्ट* बना है॥

स्यसिच्सीयुट्० (६।४।६२) से पक्ष में चिण्वत् कार्य होने से इट् आगम तथा *अचो ञ्णिति* (७।२।११५) से वृद्धि होकर 'प्र अट् स्नौ इट् स् त' रहा। आवादेश होकर प्रास्नाविष्ट बन गया॥

नम धातु से प्रकृत सूत्र से यक् का प्रतिषेध होने पर शप् होकर नमते बना है। लुङ् में भी चिण् का प्रतिषेध होकर सिच् हो गया तो 'अट् नम् सिच् त' रहा। *नश्चापदान्तस्य झलि* (८।३।२४) से 'म्' को अनुस्वार होकर *अनंस्त* बना है॥

—:o:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० अचो यत् (३।१।९७)

गेयम् (गाने योग्य)

गै शब्दे	भूवादयो० आदेच उपदेशे० (६।१।४४) धातोः (३।१।९१)
	अचो यत्, प्रत्ययः, परश्च
गा यत्	यस्मात् प्रत्यय० (१।४।१३) अङ्गस्य, ईद्यति (६।४।६५)
	अलोऽन्त्यस्य (१।१।५१)
ग् ई य	सार्वधातुकार्धं० (७।३।८४) कृत्तद्धित० (१।२।४६)
ग् ए य	पूर्ववत् सु आकर, अतोऽम् अमि पूर्वः (६।१।१०७)
गेयम्	बना।

इसी प्रकार पा धातु से पेयम् (पीने योग्य) की सिद्धि जानें। जि यत्, जि यत्' यहाँ पूर्ववत् गुण होकर चेयम् (चुनने योग्य) बनेगा (जीतने योग्य) बनेगा॥ ये प्रत्यय कृत्यसंज्ञक (३।१।९५) हैं, अतः कर्तरि कृत्य० (३।४।७०) से भाव, कर्म में ही होंगे, न कि कर्तरि कृत् (३।४।६७) से कर्त्ता में॥

—:०:—

परि० पाघ्राध्मा० (३।१।१३७)

उत्पिबः (उठाकर पीने वाला)

पा	भूवादयो० धातोः (३।१।९१) पाघ्राध्मादृशः शः,
पा श	तिङ्शित् सार्व० (३।४।११३) कर्त्तरि शप् (३।१।६८)
पा शप् अ	पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्० (७।३।७८) से पा को 'पिब' आदेश
	होकर
उत् पिब अ अ,	अतो गुणे (६।१।९४) से पररूप होकर
उत्पिब अ	अतो गुणे पूर्ववत् सु आकर रुत्व विसर्जनीय होकर
उत्पिबः	बन गया।

इसी प्रकार पूर्ववत् सब कार्य तथा पाघ्राध्मास्थाम्ना० (७।३।७८) से घ्रा को जिघ्र, ध्मा को धम, तथा दृश् को 'पश्य' आदेश, श अनुबन्ध

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परे रहते होकर, *उज्जिघ्रः* (सूँघने वाला) *विजिघ्रः* (विशेष रूप से सूँघने वाला) *उद्धमः* (धौंकने वाला) *विधमः* (विपरीत धौंकने वाला) *उत्पश्यः* (ऊपर को देखने वाला) *विपश्यः* (विशेष देखने वाला) *पश्यः* (देखने वाला) बनेगा। धेट् धातु से पूर्ववत् सब कार्य होकर धे अ अ रहा। अयादेश होकर *उद्धयः* (पीने वाला) *विधयः* (विशेष पान करने वाला) बनेगा॥

—:o:—

परि० अनुपसर्गाल्लिम्प० (३।१।१३८)

लिप तथा विद्लृ धातुएँ तुदादि गण की हैं सो इनसे प्रकृत सूत्र से श प्रत्यय होकर *तुदादिभ्यः शः* (३।१।७७) से श विकरण भी हुआ। *शे मुचादीनाम्* (७।१।५९) से श प्रत्यय के परे रहते नुम् आगम होकर 'लि नुम् प् अ अ' रहा। पूर्ववत् दोनों अकारों को पररूप होकर *लिम्पः* (लीपने वाला) *विन्दः* (प्राप्त होने वाला) बनेगा॥ धृञ्, पॄ तथा उत् पूर्वक एजृ इन धातुओं से *हेतुमति च* (३।१।२६) से णिच्, तथा वृद्धि होकर धारि, पारि, उदेजि धातुएँ (३।१।३२) बनी हैं, तत्पश्चात् प्रकृत सूत्र से श प्रत्यय तथा शप् विकरण होकर धारि शप् श रहा। गुण तथा अयादेश होकर *धारयः* (धारण कराने वाला) *पारयः* (पालन कराने वाला) *उदेजयः* (कँपाने वाला) बनेगा॥ शेष 'विद' 'चिती संज्ञाने' 'षह मर्षणे' धातुएँ चुरादि की हैं, सो *चुरादिभ्यो णिच्* (३।१।२५) से णिच् होकर तथा शेष पूर्ववत् होकर *वेदयः* (जतलाने वाला) *चेतयः* (चेतना लाने वाला) *साहयः* (सहने वाला) बनेगा। साति सौत्र पाठ की धातु है, उससे पूर्ववत् सब होकर साति शप् श = सातयः बना है॥

—:o:—

परि० ददातिदधा० (३।१।१३९)

ददः (देने वाला)

डुदाञ् दा श	*भूवादयो० ददातिदधात्योर्विभाषा, प्रत्ययः, परश्च तिङशित् सार्व०* (३।४।११३) *जुहोत्यादिभ्यः श्लुः* (२।४।७५) *प्रत्ययस्य लुक०* (१।१।६०) *श्लौ* (६।१।१०) *पूर्वोऽभ्यासः*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दा दा अ (६।१।४) ह्रस्वः (७।४।५९) सार्वधातुकमपित् (१।२।४) [अकार
श्नाभ्यस्तयोरातः (६।४।११२)
द द् अ पूर्ववत् सु आकर रुत्व विसर्जनीय हो गया।
ददः बना।

इसी प्रकार डुधाञ् धातु से दधः (धारण करने वाला) की सिद्धि जानें। अभ्यासे चर्च (८।४।५३) से यहाँ अभ्यास के 'ध' को 'द' हो जाता है। आकारान्त धातु होने से पक्ष में श्याद्व्यधास्रु० (३।१।१४१) से ण प्रत्यय होकर दायः धायः बनेगा। आतो युक् चिण्कृतोः (७।३।३३) से यहाँ युक् आगम ही विशेष है॥

—:०:—

परि० श्याद्व्यधास्रु० (३।१।१४१)

श्यैङ् धातु को आदेच उपदेशे० (६।१।४४) से आत्व तथा प्रकृत सूत्र से ण प्रत्यय होकर 'अव श्या ण' रहा। आतो युक० (७।३।३३) से युक् आगम होकर अवश्यायः (पाला, ओस) प्रतिश्यायः (जुकाम) बना है। दायः धायः की सिद्धि परि० ३।२।१३६ में देखें॥

अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि होकर व्याघः (शिकारी) श्वासः (सांस लेने वाला) की सिद्धि जानें। स्रु धातु को ण परे रहते अचो ञ्णिति (७।२।११५) से वृद्धि तथा आवादेश होकर आस्रावः (पकाने वाला) संस्रावः (बहने वाला) बनेगा। अति पूर्वक इण् धातु से भी इसी प्रकार वृद्धि आयादेश करके अत्यायः (उल्लङ्घन करने वाला) तथा हृ धातु से अवहारः (लेजाने वाला) बनेगा। षो धातु को धात्वादेः षः सः (६।१।६४) से 'ष्' को 'स्' तथा पूर्ववत् आदेच उप० (६।१।४४) से आत्व एवं युक् आगम होकर अवसायः (समाप्त करने वाला) की सिद्धि जानें। लेहः (चाटने वाला) श्लेषः (संसर्ग करने वाला) में कुछ भी विशेष नहीं है केवल यहाँ पुगन्तलघू० (७।३।८६) से लघूपध गुण हुआ है॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः

परि० एजेः खश् (३।२।२८)

अङ्गमेजयः (अङ्गों को कंपा देने वाला)

एजृ भूवादयो० हेतुमति च (३।१।२६)
एज् णिच् = एजि, सनाद्यन्ता धातवः (३।१।३२)
अङ्ग अम् एजि, तत्रोपपदं सप्त० (३।१।९२) एजेः खश्
अङ्ग अम् एजि खश्, उपपदमतिङ् (२।२।१९) सुपो धातुप्रा० (२।४।७१)
अङ्ग एजि अ, तिङ्शित् सार्व० (३।४।११३) कर्त्तरि शप् (३।१।६८)
अङ्ग एजि शप् अ, सार्वधातुकार्धं०(७।३।८४) अरुर्द्विषदजन्तस्य (६।३।६५)
अङ्ग मुम् एजे अ अ = अङ्गम् एजे अ अ, एचोयवायावः (६।१।७५)
अतो गुणे (६।१।९४) कृत्तद्धित० पूर्ववत् सु आकर
अङ्गमेजयः बन गया।

इसी प्रकार जनमेजयः (हस्तिनापुर का प्रसिद्ध राजा) वृक्षमेजयः (वृक्षों को कंपा देने वाला = वायु) की सिद्धि जानें॥

—:o:—

परि० नासिकास्तनयो० (३।२।२९)

नासिकन्धमः (नासिका को धौंकने वाला)

नासिका कर्म उपपद रहते ध्मा धातु से प्रकृत सूत्र से खश् प्रत्यय होकर पूर्व सूत्र के अनुसार ही सिद्धि जानें। केवल यहाँ विशेष यह है कि क्ङित्यनव्ययस्य (६।३।६४) से नासिका के 'का' को ह्रस्व हो गया है, तथा पात्राध्मास्था० (७।३।७८) से ध्मा को धम आदेश हो गया है॥

स्तनन्धयः (स्तन को पीने वाला, बच्चा) नासिकन्धयः (नासिका को पीने वाला कोई बच्चा) यहाँ भी घेट् के घे को अयादेश होकर पूर्ववत् सिद्धि जानें। घेट् के टित् होने से स्तनन्धयी में टिड्ढाणञ्० (४।१।१५) से ङीप् भी होता है॥

—:o:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० कुमारशीर्ष० (३।२।५१)

कुमारघाती (कुमारं हन्तीति, कुमार को मारनेवाला)

कुमार अम् हन् , भूवादयो० तत्रोपपदं० (३।१।९२) कुमारशीर्षयोर्णिनिः
कुमार अम् हन् णिनि , उपपदमतिङ् (२।२।१९) सुपो धातु० (२।४।७१)
कुमारहन् इन् , हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु (७।४।५४) स्थानेऽन्तरतमः (१।१।५०)
कुमारघन् इन् , हनस्तोऽचिण्णलोः (७।३।३२) से 'न्' को 'त्' होकर
कुमारघत् इन् , अत उपधायाः (७।२।११६)
कुमारघातिन् कृत्तद्धित० पूर्ववत् 'सु' आकर
कुमारघातिन् सु, सौ च (६।४।१३) से दीर्घ होकर
कुमारघातीन् स् , अपृक्त एका० (१।२।४१) हल्ङ्याब्भ्यो० (६।१।६६)
कुमारघातीन्, नलोपः प्रातिपदि० (८।२।७) से 'न्' लोप होकर
कुमारघाती बना ॥

इसी प्रकार शिरस् कर्म उपपद रहते शीर्षघाती (सिर काटने वाला) की सिद्धि जानें। प्रकृत सूत्र के ही निपातन से शिरस् को शीर्ष भाव भी हो जायेगा ॥

—:०:—

परि० ऋत्विग्दधृक्० (३।२।५९)

प्राङ् (पूर्व)

अञ्चु भूवादयो० ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगु० प्रत्ययः, परश्च
प्र अञ्च् क्विन् = प्र अञ्च् व् , अनिदितां हल उपधायाः० (६।४।२४)
प्र अच् व् अपृक्त एकाल्० (१।२।४१) वेरपृक्तस्य (६।१।६५)
प्र अच् कृत्तद्धित० पूर्ववत् सु विभक्ति आकर
प्र अच् सु उगिदचां सर्वनाम० (७।१।७०) मिदचोन्त्यात् परः (१।१।४६)
प्र अ नुम् च् स् , अकः सवर्णे दीर्घः (६।१।९७) हल्ङ्याब्भ्यो० (६।१।६६)
प्रान् च् संयोगान्तस्य लोपः (८।२।२३) हलोऽनन्तराः० (१।१।७)
प्रान् क्विन्प्रत्ययस्य कुः (८।२।६२) स्थानेऽन्तरतमः (१।१।४९)
प्राङ् बना ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इसी प्रकार प्रति पूर्वक अञ्चु धातु से पूर्ववत् सब होकर 'प्रति अङ्' बना। यणादेश होकर प्रत्यङ् (पश्चिम) बन गया। उत् पूर्वक अञ्चु धातु से उदङ् (उत्तर)की सिद्धि जानें, केवल यहाँ उत् के त् को द् झलां जशोऽन्ते (८।२।३९) से हो जाता है॥

युज् धातु से युङ् (जोड़ने वाला) की सिद्धि में युजेरसमासे (७।१।७१) से नुम् होता है, शेष पूर्ववत् है।

क्रुञ्च धातु से क्रुङ् (एक प्रकार का बगला) की सिद्धि भी प्राङ् के समान ही पूर्ववत् जानें॥

—:०:—

परि० सत्सूद्विषद्रुह० (३।२।६१)

वेदि शुचि तथा अन्तरिक्ष उपपद रहते षद्लृ धातु से प्रकृत सूत्र से क्विप् प्रत्यय होकर, तथा क्विप् का सर्वापहारी लोप होकर वेदिषत् (होता) शुचिषत् अन्तरिक्षसत् बनेगा। षद्लृ के 'ष्' को 'स्' धात्वादेः षः सः (६।१।६२) से होता है। वेदिषत् शुचिषत् में 'स' को 'ष्' पूर्वपदात्० (८।३।१०६) से होता है। यह सब छान्दस प्रयोग हैं, वेद में इनका इस प्रकार पाठ है—

हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्॥
॥ऋ० ४।४०।५॥

प्रसत् (अच्छी तरह बैठने वाला) वत्ससूः गौः (बछड़ा देनेवाली गौ) अण्डसूः (अण्डे को पैदा करने वाली, मुर्गी) शतसूः (सौ को उत्पन्न करने वाली) प्रसूः (प्रसव करने वाली) की सिद्धियों में कुछ भी विशेष नहीं है। मित्रद्विट् (मित्र से द्वेष करने वाला) प्रद्विट् (शत्रु) यहाँ 'द्विष्' के ष् को ड् झलां जशोऽन्ते (८।२।३९) से तथा 'ड्' को ट् वावसाने (८।४।५५) से हुआ है॥

मित्रध्रुक् (मित्र से द्रोह करने वाला) प्रध्रुक् (द्रोही) यहाँ द्रुह धातु के ह् को घ् वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्(८।२।३३) से होकर, एकाचो बशो भष्० (८।२।३७) से भष्त्व तथा पूर्ववत् झलां जशोऽन्ते, वावसाने लगकर मित्रध्रुक् प्रध्रुक् बन गया॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

गोधुक् (ग्वाला) *अधुक्* (ग्वाला) यहाँ दुह् के 'ह्' को 'ध्' दादेर्धातोर्घः (८।२।३२) से हुआ है, शेष मित्रध्रुक् के समान जानें॥ *अश्वयुक्* (घोड़े को जोतने वाला) *अयुक्* (जोतने वाला) यहाँ युज् के ज् को चोः कुः (८।२।३०) से ग् तथा *वावसाने* से क् हुआ है, शेष पूर्ववत् है॥ *वेदवित्* (वेद को जानने वाला) *ब्रह्मवित्* (ब्रह्म को जानने वाला) *अवित्* (वेत्ता) *काष्ठभित्* (काष्ठ को फाड़ने वाला) *अभित्* (बढ़ई) *रज्जुच्छित्* (रस्सी को काटने वाला) *अच्छित्* (काटने वाला) यहाँ छे च (६।१।७१) से तुक् आगम तथा श्चुत्व ही विशेष हुआ है॥ *शत्रुजित्* (शत्रु को जीतने वाला) *अजित्* (जीतने वाला) यहाँ *हस्वस्य पितिः* (६।१।६९) से तुक् आगम होकर शत्रु जि तुक् = शत्रुजित् बना॥ णीञ् धातु के ण को *णो नः* (६।१।६३) से 'न' होकर *सेनानीः* (सेनापति) *प्रणीः* (नेता) *अग्रणीः* (नेता) *ग्रामणीः* (ग्राम का नायक) बना है। यहाँ णत्व स *एषां ग्रामणीः* (५।२।७८) के निपातन से होता है, अन्यथा *पूर्वपदात् संज्ञा०* (८।४।३) से संज्ञा विषय न होने से प्राप्त नहीं था॥ *विश्वराट्* (परमेश्वर) *विराट्* (परमेश्वर) *सम्राट्* यहाँ राज् धातु के 'ज्' को 'ष्' *व्रश्चभ्रस्जसृज०* (८।२।३६) से होकर, शेष जश्त्व चर्त्व *मित्रद्विट्* के समान जानें। सम्राट् यहाँ 'सम्' के मकार को *मोऽनुस्वारः* (८।३।२३) से अनुस्वार प्राप्त था, सो *मो राजि समः क्वौ* (८।३।२५) से मकार को मकारादेश ही विधान कर दिया है ताकि अनुस्वार न हो॥

—:०:—

परि० अन्येभ्योऽपि० (३।२।७५)

शोभनं शृणाति = सुशर्मा (अच्छे सुख वाला) यहाँ सु उपपद रहते शॄ हिंसायाम् धातु से प्रकृत सूत्र से मनिन् होकर पूर्व सूत्र के सुदास के समान सिद्धि जानें। प्रातरित्वा (प्रातःकाल जाने वाला) यहाँ प्रातर् शब्द उपपद रहते इण् गतौ धातु से क्वनिप् प्रत्यय होकर, प्रातर् इण् क्वनिप् = प्रातर् इ वन् रहा। *हस्वस्य पिति कृति०* (६।१।६९) से तुक् आगम होकर प्रातरि तुक् वन् बना। पूर्ववत् दीर्घ इत्यादि होकर प्रातरित्वा बन गया॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

जनी प्रादुर्भावे धातु से वनिप् प्रत्यय के परे रहते *विड्वनोरनुनासि०* (६।४।४१) से अन्त्य अल् (१।१।५१) न् को आत्व होकर 'प्र ज आ वनिप् = प्रजावन् सु' रहा। शेष पूर्ववत् होकर *प्रजावा* (पैदा होने वाला) बनेगा। *अग्रेगावा* (आगे जाने वाला) में भी अग्रे उपपद रहते गम् धातु से पूर्ववत् 'म्' को आत्व होकर सिद्धि जानें॥

रिष् धातु से विच् प्रत्यय होकर, तथा विच् का सर्वापहारी लोप होकर रिष् सु रहा। हल्ङ्यादि लोप तथा *झलां जशोऽन्ते* (८।२।३९) से जश्त्व होकर रेड् असि = रेडसि बन गया॥

—:०:—

परि० क्विप् च (३।२।७६)

उखास्रत् (उखायाः स्रंसति, बटलोई से गिरने वाला)

उखास्रत् यहाँ उखा उपपद रहते स्रंसु धातु से प्रकृत सूत्र से क्विप प्रत्यय हुआ है, *अनिदितां हल उप०* (६।४।२४) से अनुनासिक का लोप तथा क्विप् का सर्वापहारी पूर्ववत् लोप होकर उखास्रस् सु रहा। हल्ङ्यादि लोप तथा *वसुस्रंसु०* (८।२।७२) से 'स्रस्' के स् को द् होकर उखास्रद् बना, *वावसाने* (८।४।५५) से चर्त्व होकर उखास्रत् बन गया॥

इसी प्रकार पर्ण उपपद रहते ध्वंसु धातु से पर्णानि ध्वंसते = पर्णध्वत् (पत्ते गिराने वाला) बनेगा। वाह उपपद रहते भ्रन्शु अधःपतने धातु से पूर्ववत् सब होकर तथा *व्रश्चभ्रस्ज०* (८।२।३६) से श् को ष् एवं पूर्ववत् जश्त्व चर्त्व होकर वाहभ्रट् बना। *अन्येषामपि दृश्यते* (६।३।१३५) से दीर्घ होकर *वाहाभ्रट्* बन जायेगा॥

—:०:—

परि० लिटः कानज्वा (३।२।१०६)

चिक्यानः

चिञ् *भूवादयो० छन्दसि लिट्* से लिट् प्रत्यय होकर,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

चि लिट् — प्रकृत सूत्र से लिट् के स्थान में कानच् आदेश होकर, तथा *लिटि धातोरः* (६।१।८) से द्वित्व होकर,
चि चि कानच् = चि चि आन, *विभाषा चेः* (७।३।५८)
चि कि आन — *अचि श्नुधातु०* (६।४।७७) से इयङ् आदेश प्राप्त हुआ, तो *एरनेकाचोऽसं०* (६।४।८२) से इयङ् को यणादेश हो गया।
चिक्यान — कृत्तद्धित्त० पूर्ववत् 'सु' आकर रुत्व विसर्जनीय होकर,
चिक्यानः — बन गया।

———

षुञ् धातु से पूर्ववत् ही सुषुवाणः की सिद्धि जानें। *अचि श्नुधातु०* से उवङ् आदेश, *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९) से षत्व तथा *अट्कुप्वाङ्०* (८।४।२) से णत्व होना ही यहाँ विशेष है॥

जब पक्ष में कानच् आदेश नहीं हुआ, तो दृशिर् धातु से लिट् के स्थान में णल् होकर ददर्श बन गया॥

—:०:—

परि० भाषायां सद० (३।२।१०८)

उपसेदिवान् कौत्सः (कौत्स पहुँचा)

षद्लृ धातु से प्रकृत सूत्र से भूत सामान्य में लिट के स्थान में क्वसु विधान करने से लिट् प्रत्यय भी भूत सामान्य में इसी सूत्र से हो जाता है, ऐसा अनुमान किया गया। पुनः लिट् को क्वसु आदेश होकर, 'सद् क्वसु' रहा। क्वसु को स्थानिवत् से लिट् ही मानकर द्वित्वादि कार्य पूर्ववत् हो गये, तो 'सद् सद् वस्' रहा। वस्वेकाजाद्घसाम्० (७।२।६७) से इट् आगम होकर 'सद् सद् इट् वस्' बना। अत हलन्त्य० हल्मध्ये० (६।४।१२०) से अभ्यास लोप तथा एत्व होकर 'सेद् इ वस्' रहा। सान्तमहतः० (६।४।१०) से दीर्घ होकर 'उपसेदिवास्' रहा। शेष सिद्धि परि० १।१।५ के चितवान् के समान जानें॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लुङ् लकार में उपासदत् की सिद्धि परि० ३।१।५३ के अलिपत् के समान जानें। यहाँ *पुषादिद्युता०* (३।१।५५) से च्लि के स्थान में अङ् होता है॥ लुङ् लकार में सद् को *पाघ्राध्मास्था०* (७।३।७८) से शप् परे रहते सीद आदेश होकर 'अट् सीद् शप् तिप् = उप असीदत्' रहा। सवर्ण दीर्घ होकर *उपासीदत्* बन गया॥

परोक्षे लिट् से लिट् लकार होकर तिप् को णल् तथा पूर्ववत् द्वित्वादि होकर उपससाद बन गया। *अत उपधायाः* (७।२।११६) से वृद्धि हो ही जायेगी॥

———

अनूषिवान् (वह रहा) अनु पूर्वक वस धातु से पूर्ववत् क्वसु होकर तथा *वचिस्वपि०* (६।१।१५) से सम्प्रसारण होकर 'अनु उस् वस्' रहा। पूर्ववत् ही द्वित्वादि सारे कार्य तथा *शासिवसिघसीनां च* (८।३।६०) से षत्व होकर 'अनु उ उष् इट् वस्' रहा, सवर्ण दीर्घ तथा पूर्ववत् सब होकर *अनूषिवान्* बन गया॥

अन्ववात्सीत् की सिद्धि परि० १।१।१ के अलावीत् के समान ही है, केवल यहाँ *वदव्रजहल०* (७।२।३) से वृद्धि तथा *सः स्यार्धधातुके* (७।४।४९) से 'स्' को 'त्' करना ही यहाँ विशेष है। यहाँ इट् का *प्रतिषेध एकाच उपदे०* (७।२।१०) से हो जाता है॥

लङ् लकार अन्ववसत् में कुछ भी विशेष नहीं है, तथा लिट् लकार 'अनूवास' में पूर्ववत् सम्प्रसारण कार्य जानें॥

———

उपशुश्रुवान् की सिद्धि क्वसु परे रहते पूर्ववत् जानें॥ लुङ् लकार में उपाश्रौषीत् की सिद्धि भी परि० १।१।१ के अकार्षीत् के समान ही जान लें। लिट् लकार के *उपशुश्राव* में भी कोई विशेष नहीं है॥ लङ् लकार में *श्रुवः श्रृ च* (३।१।७४) से श्नु विकरण तथा श्रु धातु को 'श्रृ' भाव होकर 'अ श्रृ श्नु त्' रहा। गुण होकर अश्रृणोत् बना॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० उपेयिवान० (३।२।१०९)

उपागात् यहाँ इण् धातु को *इणो गा लुङि* (२।४।४५) से लुङ् परे रहते 'गा' आदेश हुआ है, *गातिस्थाघुपा०* (२।४।७७) से यहाँ सिच् का लुक् होता है। शेष कार्य लुङ् की सिद्धि के जानें॥

उपैत् यहाँ लङ् लकार के पूर्ववत् सब कार्य होकर 'उप आट् इ त्' तिप् = उपा इ अ त् रहा। *आटश्च* (६।१।८७) से वृद्धि एकादेश होकर *अदिप्रभृतिभ्यः शपः* (६।१।४४) से शप् का लुक् होकर उपैत् बन गया॥

उपेयाय

इण् गतौ	*भूवादयो०* पूर्ववत् ही यहाँ भी लिट् के स्थान में तिप् तथा तिप् को णल् (३।४।८२) आदेश होकर
इ णल्	*अचो ञ्णिति* (७।२।११५) से वृद्धि एवं आयादेश होकर
आय् अ	*लिटि धातो०* (६।१।८) *एकाचो द्वे०* *द्विर्वचनेऽचि* (१।१।५९)
इ आय् अ	*अभ्यासस्यासवर्णे* (६।४।७८) *ङिच्च* (१।१।५२)
उप इयङ् आय् अ = उप इय् आय,	*आद् गुणः* (६।१।८४)
उपेयाय	बन गया॥

आशीत् की सिद्धि पूर्ववत् आट् आगम, एवं सवर्ण दीर्घ होकर परि० १।१।१ के अलावीत् के समान जानें। न आशीत् = नाशीत् अ दीर्घ होकर बन गया॥

लङ् लकार में न आश्नात् = *नाश्नात्* बना है। *क्र्यादिभ्यः श्ना* (३।१।८१) से श्ना विकरण तथा आट् आगम हो ही जायेगा॥

नाश यहाँ लिट् लकार में पूर्ववत् द्वित्व तथा णल् आकर 'आ अ' रहा। *अत आदेः* (७।४।७०) से अभ्यास को दीर्घ होकर आश अ न आश = नाश बन गया॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

अनु पूर्वक ब्रूञ् धातु को *ब्रुवो वचिः* (२।४।५३) से वच् आदेश होकर अन्ववोचत् की सिद्धि परि० (३।१।५२) के अवोचत् के समान जानें। अनु अवोचत् = यणादेश होकर अन्ववोचत् बन गया ॥

लङ् लकार में पूर्ववत् सब कार्य होकर 'अनु अट् ब्रू शप् तिप्' रहा। *ब्रुव ईट्* (७।३।९३) से ईट् आगम तथा *अदिप्रभृतिभ्यः०* (२।४।७२) से शप् का लुक् होकर अनु अ ब्रू ईट् त् = अन्व ब्रो ई त् = अवादेश होकर अन्वब्रवीत् बन गया ॥ लिट् लकार में परि० २।४।४१ के उवाय की सिद्धि के समान ही यहाँ सब कार्य होकर वच् धातु से 'अनु उवाच = अनूवाच बन गया ॥

—:०:—

परि० विभाषा साकाङ्क्षे (३।२।११४)

वत्स्यामः की सिद्धि सूत्र ३।२।११२ में देखें, उसी प्रकार पास्यामः भी समझें ॥ भोक्ष्यामहे की सिद्धि में भी पूर्ववत् सब कार्य होकर भुज् ष्या महिङ् रहा। लघूपध गुण होकर 'भोज् ष्या महि' रहा। *चोः कुः* (८।२।३०) से ज् को ग् तथा *खरि च* (८।४।५४) से ग् को क् होकर भोक् ष्या महि रहा। *टित आत्मने०* (३।४।७९) से टि को एत्व होकर भोक्ष्यामहे बन गया ॥ अवसाम की सिद्धि सूत्र ३।२।११३ में देखें ॥

———

अभुञ्ज्महि

भुज धातु से भी पक्ष में प्रकृत सूत्र से लङ् होकर, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर 'अट् भुज् महिङ्' रहा। *रुधादिभ्यः श्नम्* (३।१।७८) तथा *मिदचोऽन्त्यात् परः* (१।१।४६) से अन्त्य अच् से परे श्नम् होकर 'अ भु श्नम् ज् महि = अ भु न ज् महि' रहा। *श्नसोरल्लोपः* (६।४।१११) से श्नम् के अ का लोप होकर अभुन्ज् महि रहा। *नश्चापदान्तस्य झलि* (८।३।२४) तथा *अनुस्वारस्य ययि०* (८।४।५७) लगकर अभुञ्ज्महि बन गया ॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० लटः शतृशा० (३।२।१२४)

पचन्तम् (पकाते हुये)

डुपचष् भूवादयो० वर्त्तमाने लट् (३।२।१२३) प्रत्ययः, परश्च
पच् लट् लटः शतृशानचावप्रथ० से लट् के स्थान में शतृ हुआ
पच् शतृ = पच् अत् , तिङशित्० (३।४।११३) कर्त्तरि शप् (३।१।६८)
पच् शप् अत् = पच् अ अत् , अतो गुणे (६।१।९४)
पचत् कृत्तद्धित० पूर्ववत् 'अम्' विभक्ति आकर,
पचत् अम् सुडनपुंसकस्य (१।१।४२) उगिदचां सर्व० (७।१।७०) विभक्ति (१।१।४६)
पच नुम् त् अम् = पचन्त् अम् = पचन्तम् , बन गया ॥

———

पचमानम् (पकाते हुये)

डुपचष् पूर्ववत् लट् के स्थान में शानच् आदेश होकर,
पच् शप् शानच् = पच आन, पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा होकर आने (७।२।८२) आद्यन्तौ टकितौ (१।१।४५) सूत्र लगे
पच मुक् आन = पच म् आन, पूर्ववत् 'अम्' विभक्ति आकर,
पचमान अम् अमि पूर्वः (६।१।१०३)
पचमानम् बन गया ॥

—:०:—

परि० लक्षणहेत्वोः० (३।२।१२६)

शीङ् धातु से प्रकृत सूत्र से शानच् होकर 'शी शानच्' रहा। पूर्ववत् शप् विकरण होकर उसका अदिप्रभृतिभ्यः० (२।४।७२) से लुक् हो गया। सार्वधातु० (७।३।८४) से गुण एवं अयादेश होकर शय् आनः शयानः बन गया।

शतृ परे रहते स्था को पाघ्राध्मास्थाम्ना० (७।३।७८) से तिष्ठ आदेश होकर 'तिष्ठ शप् अत्' रहा। नुम् आगम पूर्ववत् होकर तिष्ठ अ अ न् त् = तिष्ठ अ अ न् त् रहा। संयोगान्तस्य लोपः (८।२।२३) से त् का

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लोप तथा अतो गुणे (६।१।९४) से पररूप होकर तिष्ठन् बन गया।
उप पूर्वक दिश धातु से उपदिशन् पूर्ववत् ही समझें।

अधि पूर्वक इङ् अध्ययने धातु से 'अधि इ आन' रहा। अचि श्नुधातु० (६।४।७७) से इयङ् होकर 'अधि इयङ् शप् आन' रहा। अदिप्रभृतिभ्यः शपः से शप् का लुक् तथा सवर्ण दीर्घ होकर अधीय् आन = अधीयानः बन गया॥

—:०:—

परि० ताच्छील्य० (३।२।१२९)

मुण्डयमानाः (मुण्डं करोति मुण्डयति, मुण्डन किये हुये)

मुण्ड	अर्थवदधातु० (१।२।४५) तत्करोतीत्युपसङ्ख्यानं सूत्रयत्यादर्थम् (वा० ३।१।२६) इस वार्त्तिक से णिच् आकर
मुण्ड णिच्	णाविष्ठवत् प्रातिप० (वा० ६।४।१५५) से टि भाग का लोप हुआ, अचोन्त्यादि टि (१।१।६३)
मुण्ड् इ	सनाद्यन्ता धातवः (३।१।३२) धातोः (३।१।९१) अब मुण्डि
मुण्डि	धातु बनकर, ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु० से चानश प्रत्यय होकर, प्रत्ययः, परश्च,
मुण्डि चानश्	= आन, शेष परि० ३।२।१२४ के समान होकर
मुण्डि शप् मुक् आन	सार्वधातुकार्धधा० (७।३।८४)
मुण्डे अम् आन	एचोयवायावः (६।१।७५)
मुण्डय् अम् आन	कृत्तद्धित० (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर पूर्ववत् सब सूत्र लगकर 'जस्' विभक्ति आई
मुण्डयमान जस् = अस्	प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (६।१।९८) तथा रुत्व विसर्जनीय पूर्ववत् होकर
मुण्डयमानाः	बना।

इसी प्रकार भूष् धातु से हेतुमति च (३।१।२६) से णिच् आकर भूष् इ = भूषि धातु बनकर भूषयमाणाः (सजे हुए) पूर्ववत् समझें। अट् कुप्वाङ्० (८।४।२) से केवल यहाँ आन के न को ण हुआ है यही विशेष है॥

—:—:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पर्यस्यमानाः

परि असु भूवादयो०, प्रादयः उपसर्गाः क्रि० (१।४।५८)
परि अस् पूर्ववत् सारे सूत्र लगकर चानश् हुआ,
परि अस् चानश्, दिवादिभ्यः श्यन् (३।१।६९) से दिवादि गण में
से श्यन् विकरण होकर
परि अस् श्यन् आन, यणादेश होकर, तथा सब सूत्र पूर्ववत् लग
पर्यस्यमानाः बना ॥

इसी प्रकार वह् तथा पच धातु से बिना णिच् लाये सारे सूत्र
लगकर वहमानाः पचमानाः भी बन गया ॥

———

निघ्नानाः

नि हन भूवादयो०, प्रादय उपसर्गाः० (१।४।५८) ताच्छील्यवयो
चन० से चानश् प्रत्यय, तिङ्शित्सार्व० कर्त्तरि शप् (३।१।
नि हन् शप् चानश्, अदिप्रभृतिभ्यः शपः (२।४।७२) सार्वधातुक
नि हन् आन, (१।२।४) से अपित् सार्वधातुक चानश् के ङित्वत्
जाने से, गमहनजनखनघसां० (६।४।९८) से उपधा
लोप हो गया
निहन् आन हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु (७।३।५४) स्थानेन्तरतमः (१।१।५०)
निघ्न् आन पूर्ववत् प्रातिपदिक संज्ञा होकर जस् विभक्ति आई
निघ्नान जस्, पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीयादि होकर
निघ्नानाः बना ॥

—:०:—

परि० णेश्छन्दसि (३।२।१३७)

धृङ् अवस्थाने (तुदा० आ०) तथा पॄ पालनपूरणयोः (जुहो० प
से हेतुमति च (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय होकर, तथा अचो णि
(७।२।११५) से वृद्धि होकर धारि, पारि धातुएँ (३।१।३२) बनीं, तब
सूत्र से इषुणुच् प्रत्यय हुआ। णेरनिटि (६।४।५१) के अपवाद अपवाद

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

ल्याय्येत्० (६।४।५५) से णि को अयादेश होकर 'धारय् इष्णु पारय् इष्णु' बना। पूर्ववत् जस् विभक्ति आकर जसि च (७।३।१०९) से गुण एवं अवादेश होकर धारयिष्णवः पारयिष्णवः बन गया॥

—:०:—

परि० शमित्यष्टा० (३।२।१४१)

शमी (शान्त)

शमु उपशमे	भूवादयो० शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्, प्रत्ययः, परश्च
शम् घिनुण् =	शम् इन्, अब यहाँ अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि प्राप्त हुई पर नोदात्तोपदेश०(७।३।३४) से निषेध हो गया।
शमिन् सु	सौ च (६।४।१३) हल्ङ्याब्भ्यो० (६।१।६६)
शमीन्	नलोपः प्रा० (८।२।७)
शमी	बना।

इसी प्रकार तमु काङ्क्षायाम् दमु उपरमे श्रमु तपसि खेदे च, भ्रमु अनवस्थाने, क्षमूष् सहने, क्लमु ग्लानौ इन धातुओं से तमी (आकाङ्क्षा करने वाला) दमी (दमन करने वाला) श्रमी (श्रम करने वाला) भ्रमी (भ्रमण करने वाला) क्षमी (सहन करने वाला) क्लमी (ग्लानि करने वाला) की सिद्धियाँ जानें॥

मदी हर्षे धातु से वृद्धि आदि होकर, प्रमादी (प्रमाद करने वाला) उन्मादी (उन्माद करने वाला) बना है। उन्मादी में उत् के 'त्' को 'न्' यरोऽनुनासिके० (८।४।४४) से हो जाता है॥

—:०:—

परि० आदृगमहन० (३।२।१७१)

पपिः

पा	भूवादयो० धातोः (३।१।९१) आदृगमहनजनः किकिनौ०
पा कि	('कि' प्रत्यय करें वा 'किन्' एक ही रूप बनता है)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लिट्वत् ऐसा कार्यातिदेश करने से लिट् लकार के कार्य द्वित्वादि होते हैं। आतो लोप इटि च (६।४।६४)

पृ इ	*लिटि धातोरन०* (६।१।८) *द्विर्वचनेऽचि* (१।१।५८)
पा पृ इ	*पूर्वोऽभ्यासः* (६।१।४) *ह्रस्वः* (७।४।५९)
पपि	पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति एवं रुत्व विसर्जनीय होकर
पपिः	बना।

इसी प्रकार डुदाञ् धातु से *ददिः* बनेगा॥

———

ततुरिः

त	*भूवादयो० धातोः*, *आद्गमहनजनः किकिनौ०*,
तृ कि	*बहुलं छन्दसि* (७।१।१०३) से उत्वप्राप्त उरण् (१।१।५०)
तुर इ	लिट्वत् अतिदेश होने से *लिटि धातोरन०* (६।१।८) *द्विर्वचनेऽचि* (१।१।५८) लगकर द्वित्व हुआ
तृ तुर् इ	*पूर्वोऽभ्यासः* (६।१।४) *उरत्* (७।४।६६) *उरःपरः*
तर् तुर् इ	*हलादिः शेषः* (७।४।६०)
त तुर् इ	पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति तथा विसर्जनीय होकर,
ततुरिः	बना।

इसी प्रकार गॄ निगरणे धातु से *जगुरिः* बनेगा॥

———

जग्मिः

गम् कि	पूर्ववत् सब लगकर, *गमहनजनखनघसां०*(६।४।९८) *अनु*-
गम् इ	*न्त्यात् पूर्वः* (१।१।६४) *लिटि धातोरनभ्या०* (६।१।८) *द्विर्व*- *चनेऽचि* (१।१।५८)
गम् ग्म् इ	पूर्ववत् अभ्यासकार्य *कुहोश्चुः* (७।४।६२) आदि होकर
जग्मि	शेष पूर्ववत् *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) आदि लगकर
जग्मिः	बना।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इसी प्रकार हन् धातु से *जघ्निः* में सब पूर्ववत् ही जानें। ज्ञा धातु से *जज्ञिः* में भी पूर्ववत् द्वित्व, अभ्यास कार्य जानें॥

—:०:—

परि० भ्राजभास० (३।२।१७७)

विभ्राट् (प्रकाशवान्)

भ्राज दीप्तौ *भूवादयो० भ्राजभासधुर्वि०* से क्विप् होकर,

भ्राज् क्विप् = व्, *वेरपृक्तस्य* (६।१।६५) पूर्ववत् सु आकर
विभ्राज् सु *हल्ङ्याब्भ्यो०* (६।१।६६) *त्रश्चभ्रस्जसृजमृज०* (८।२।३६)
विभ्राज् *अलोऽन्त्यस्य* (१।१।५१)
विभ्राष् *झलां जशोऽन्ते* (८।२।३९) *वावसाने* (८।४।५५)
विभ्राट् बना।

'औ' विभक्ति में विभ्राजौ बनेगा। भास् धातु से पूर्ववत् सब होकर 'भास् क्विप् सु' रहा। पूर्ववत् ही क्विप् के व् तथा सु का लोप होकर भास् रहा। स् को रुत्व विसर्जनीय होकर *भाः* (प्रकाश) बन गया। *विद्युत्* (बिजली) में कुछ भी विशेष नहीं है॥

ऊर्ज् धातु से क्विप् तथा *चोः कुः* (८।२।३०) *वावसाने* से ज् को क् होकर ऊर्क् (बलवान्) बन गया॥

जु सौत्र पाठ की धातु है, उसको इसी सूत्र के निपातन से दीर्घ भी होकर जूः (गतिशील) बनता है॥ *प्रावस्तुत्* (ऋत्विग् विशेष) में प्राव उपपद रहते स्तु धातु से क्विप् हुआ है। *ह्रस्वस्य पिति०* (६।१।६९) से तुक् आगम हो ही जायगा॥

———

धूः (मारने वाला)

धुर्वीं *भूवादयो० भ्राजभास०*
धुर्व् क्विप् *राल्लोपः* (६।४।२१) से रेफ से उत्तर 'व्' का लोप होकर
धुर् व् सु *वेरपृक्तस्य हल्ङ्याब्भ्यो०* (६।१।६६)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

धुर् वौरुपधाया दीर्घ इकः (८।२।७६) खरवसानयो० (८।३।१५) [द्वित्वम्
धूः बना।

पॄ धातु को उदोष्ठ्यपूर्वस्य (७।१।१०२) उरण्रपरः (१।१।५०) से उ रपरत्व होकर 'पुर्' बना। पूर्ववत् दीर्घत्वादि होकर पूः (पालन करने वाला) बन गया॥

—:०:—

परि० दाम्नीशस० (३।२।१८२)

दा ष्ट्रन् यहाँ षः प्रत्ययस्य (१।३।६) से ष् की इत् संज्ञा हो जाने पर ष्टुत्व होकर जो त् को ट् हो गया था, वह भी 'त्' रह गया, तो दात्र सु= दात्रम् बन गया।

योक्त्रम् में चोः कुः (८।२।३०) से युज् के 'ज्' को ग् होकर खरि च से 'क्' हुआ है॥

—————

मेढ्रम् (बादल)

मिह भूवादयो० दाम्नीशस० से ष्ट्रन् प्रत्यय होकर,
मिह्_ष्ट्रन् = मिह्_त्र, पुगन्तलघू० (७।३।८६) हो ढः (८।२।३१)
मेढ्_त्र झषस्तथोर्धोऽधः (८।२।४०)
मेढ्_ध्र ष्टुना ष्टुः (८।४।४०)
मेढ्_ढ्र ढो ढे लोपः (८।३।१३) पूर्ववत् 'सु' आकर सु को अम् होकर
मेढ्रम् बना।

दंष्ट्रा में ष्ट्रन् के षित् होने से स्त्रीलिङ्ग में षिद्गौरा० (४।१।४१) से ङीष् की प्राप्ति थी, परन्तु दंष्ट्रा का अजादिगण में पाठ होने से अजाद्यतष्टाप् (४।१।४) से टाप् हो जाता है॥

—————

नद्ध्रम्

नह्_ष्ट्रन् = नह्_त्र, नहो धः (८।२।३४) झषस्त० (८।२।४०)
नध्_ध्र झलां जश् झशि (८।४।५२)
नद् ध्र सु = नद्ध्रम्, बन गया॥

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः

परि० कर्मव्यतिहारे णच्० (३।३।४३)

व्यावक्रोशी (आपस में चिल्लाना)

क्रुश भूवादयो० *कर्मव्यतिहारे णच्० प्रत्ययः, परश्च*

क्रुश् णच् *पुगन्तलघूपधस्य च* (७।३।८६)

वि अव क्रोश, *कुगतिप्रादयः* (२।२।१८) इको *यणचि* (६।१।७४)

व्यवक्रोश *णचः स्त्रियामञ्* (५।४।१४) से णजन्त व्यवक्रोश शब्द से अञ् प्रत्यय हुआ।

व्यवक्रोश अञ् , लगा

व्यवक्रोश् अ, अब *न य्वाभ्यां पदा०* (७।३।३) से यहाँ ऐच् आगम आदि अच् को प्राप्त हुआ पर *न कर्मव्यतिहारे* (७।३।६) से निषेध हो गया तब *तद्धितेष्वचामादेः* (७।२।११७)

व्यावक्रोश *कृत्तद्धितस०* (१।२।४६) *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५)

व्यावक्रोश ङीप् सु = व्यावक्रोश ई स्, *यस्येति च, हल्ङ्याब्भ्यो०* (६।१।६६)

व्यावक्रोशी बन गया।

इसी प्रकार लिख अक्षरविन्यासे धातु से *व्यावलेखी* (आपस में मिलकर लिखना) हसे हसने से *व्यावहासी* (आपस में मिलकर हँसना) की सिद्धि जानें॥

—:०:—

परि० अभिविधौ० (३।३।४४)

सांकूटिनम् (चारों ओर से जलाना)

कूट दाहे भूवादयो० *अभिविधौ भाव इनुण्*

कूट् इनुण् = कूट् इन् , *कुगतिप्रादयः* (२।२।१८) से सम् तथा कूटिन् का समास हुआ।

समकूटिन् *कृत्तद्धितसमा० अणिनुणः* (५।४।१५) *प्रत्ययः, परश्च*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

समकूटिन् अण्, *नस्तद्धिते* (६।४।१४४) से टि भाग (इन्) का लोप अण् परे रहते प्राप्त हुआ जिसका *इनण्यनपत्ये* (६।४।१६४) से प्रकृति भाव अर्थात् निषेध हो गया। *तद्धितेष्वचा०* (७।२।११७) *नश्चापदान्तस्य०* (८।३।२४)

सांकूटिन पूर्ववत् सु आकर सु को *अतोऽम्* (७।१।२४) से अम् हो गया,

सांकूटिनम् बन गया ॥

इसी प्रकार रु धातु को इनुण् परे रहते *अचो ञ्णिति* (७।२।११५) से वृद्धि होकर एवं आवादेश होकर, 'राविन्' बना। शेष सब पूर्ववत् होकर सांराविणम् (चारों ओर से शोर होना) की सिद्धि जानें *अट्-कुप्वाङ्नु०* (८।४।२) से यहाँ णत्व भी हो जायेगा ॥

—:०:—

परि० कृञः श च (३।३।१००)

क्रिया

डुकृञ् *भूवादयो० कृञः श* च से श प्रत्यय भाव में हुआ। भाव में

कृ श होने से *सार्वधातुके यक्* (३।१।६७) से यक् प्रत्यय हुआ है।

कृ यक् श = कृ य अ, *रिङ् शयग्लिङ्क्षु* (७।४।२८) *ङिच्च* (१।१।५२)

क् रिङ् य अ, *अजाद्यतष्टाप्* (४।१।४)

क् रि य अ टाप् = क्रिय अ आ, *अतो गुणे, अकः सवर्णे दीर्घः* (६।१।९७)

क्रिया, बना।

प्रकृत सूत्र में 'भावे' तथा 'अकर्त्तरि च कारके' दोनों का अधिकार है, सो भाव में यक् करके सिद्धि प्रदर्शित कर दी, जब अन्य कारकों में 'श' होगा, तब यक् न होकर निम्न प्रकार सिद्धि होगी।

कृ श पूर्ववत् रिङ् आदेश होकर

क्रि शप् श = क्रि अ अ, *अचि श्नुधातुभ्रुवां०* (६।४।७७) *ङिच्च*

क्रियङ् अ अ, *अतो गुणे* (६।१।९४) *अजाद्यतष्टाप्*

क्रिय् अ टाप् = क्रिया, बना ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

क्यप् पक्ष में *ह्रस्वस्य पिति०* (६।१।६९) से तुक् आगम होकर कृत्या बना है। योगविभाग से क्तिन् प्रत्यय करने पर *कृतिः* बन ही जायेगा॥

—:०:—

परि० रोगाख्यायां० (३।३।१०८)

प्र पूर्वक छर्द् वमने वि पूर्वक चच अध्ययने से *चुरादिभ्यो णिच्* (३।१।२५) से णिच् होकर, प्रकृत सूत्र से ण्वुल् होगा। *णेरनिटि* (६।४।५१) से णि का लोप हो ही जायगा। शेष सिद्धि परि० २।२।१६ के शायिका के समान होकर *प्रच्छर्दिका* (वमन रोग) *विचर्चिका* (खुजली) बना है। प्रच्छर्दिका में *छे च* (६।१।७१) से तुक् आगम एवं श्चुत्व भी हो जायेगा। वह प्रापणे से इसी प्रकार *प्रवाहिका* (ग्रहणी रोग) की सिद्धि जानें, केवल यहाँ *हेतुमति च* (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय होगा, यही विशेष है॥

—:—:—

शिरोर्त्तिः (सिर पीड़ा का रोग)

प्रकृत सूत्र में बहुल कहने से जब रोग की आख्या गम्यमान होने पर भी ण्वुल् नहीं हुआ तो अर्द् धातु से *स्त्रियां क्तिन्* (३।३।९४) से क्तिन् प्रत्यय, *तितुत्र०* (७।२।९) से इट् निषेध, तथा *खरि च* (८।४।५४) से द् को त् होकर अर्त्तिः बना। पश्चात् शिरस्, शब्द के साथ शिरसः अर्त्तिः = शिरोर्त्तिः ऐसा विग्रह करके षष्ठी समास हो गया। शिरस् के स् को *ससजुषो रुः* (८।२।६६) से र् तथा *अतो रोरप्लुतादप्लुते* (६।१।१०९) से उत्व, एवं *आद् गुणः* (६।१।८४) *एङः पदान्तादति* (६।१।१५०) लगाकर शिरोर्त्तिः बन गया॥

—:०:—

परि० पुंसि संज्ञायां० (३।३।११८)

दन्तच्छदः (होठ)

छद अपवारणे, *भूवादयो० चुरादिभ्यो णिच्* (३।१।२५)
छद् णिच् *अत उपधायाः* (७।२।११६) *सनाद्यन्ता धातवः*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

दन्त शस् छादि, *पुंसि संज्ञायां घः ०* उपपदमतिङ् (२।२।१९)
दन्तछादि घ *रोरनिटि* (६।४।५१) छे च (६।१।७१) स्तोः श्चुनाः (८।४।३९)
दन्तच्छाद् अ, *छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य* (६।४।९६) से छाद् अङ्ग को ह्रस्व होकर,
दन्तच्छद सु = दन्दच्छदः, बन गया ।

इसी प्रकार उरस् उपपद रहते स् को श्चुत्व होकर उरश्छदः (कवच) की सिद्धि जानें ॥ आङ् पूर्वक कृ धातु से आकरः (खान) तथा ली श्लेषणे धातु से *आलयः* (घर) की सिद्धि जानें ॥

—:०:—

परि० विभाषा कथमि० (३।३।१४३)

क्रोशेत् की सिद्धि परि० ३।१।६८ के पठेत् के समान तथा अक्रोशत् की अपठत् के समान जानें ॥

क्रोक्ष्यति

क्रुश आह्वाने रोदने च, यहाँ परि० १।३।९२ के वर्त्स्यति के समान सब कार्य होकर,
क्रुश् स्य ति *पुगन्तलघू०* (७।३।८६) *व्रश्चभ्रस्जसृजमृ०* (८।२।३६) अलोऽ
क्रोश् स्य ति *न्यस्य* (१।१।५१)
क्रोष् स्य ति *षढोः कः सि* (८।२।४१)
क्रोक् ष्य ति = क्रोक्ष्यति बना ॥

लुट् लकार में *क्रोष्टा* की सिद्धि परि० १।१।६ के समान ही जानें। केवल ८।२।३६ से षत्व तथा *ष्टुना ष्टुः* (८।४।४०) से ष्टुत्व करना ही यहाँ विशेष है ॥

लुङ् लकार अक्रुक्षत् में *शल इगुपधादनिटः क्सः* (३।१।४५) से च्लि के स्थान में 'क्स' होकर अट् क्रुष् क्स त् = अ क्रुष् स त् रहा। पूर्ववत् ही ष् को 'क्' होकर अक्रुक् स त् रहा। षत्व होकर अक्रुक्षत बन गया ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

लिट् लकार में णल् परे रहते चुक्रोश की सिद्धि परि० १।१।५८ के चक्रतुः के समान ही जानें। केवल यहाँ द्विर्वचनेऽचि की प्राप्ति नहीं, एवं लघूपध गुण होता है, यही विशेष है ॥

—:०:—

परि० अधीष्टे च (३।३।१६६)

अध्यापय

अधि इङ् परि० २।४।५१ के अध्यापिपत् के समान 'अध्यापि' धातु बनकर, प्रकृत सूत्र से लोट् प्रत्यय हुआ।
अध्यापि लोट् पूर्ववत् लोट् के स्थान में लादेश 'सिप्' तथा शप् होकर,
अध्यापि शप् सिप्, सेर्ह्यपिच्च (३।४।८७) सार्वधातुका० (७।३।८४)
अध्यापे अ हि, अतो हेः (६।४।१०५) एचोयवायावः (६।१।७५)
अध्यापय बना।

हु धातु से परि० १।१।६२ के जुहुतः के समान लोट् लकार में 'जु हु सि' बनकर पूर्ववत् सि को 'हि' हो गया। तत्पश्चात् हुझल्भ्यो हेर्धिः (६।४।१०१) से हि को धि होकर जुहुधि बन गया ॥

—:०:—

परि० क्तिच्क्तौ च० (३।३।१७४)

तन्तिः (लम्बी फैली हुई रस्सी)

तनु विस्तारे भूवादयो० क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्
तन् क्तिच् = तन् ति, अनुनासिकस्य किझलोः० (६।४।१५) से यहाँ 'तन्' अङ्ग को दीर्घ तथा अनुदात्तोपदेश० (६।४।३७) से अनुनासिक लोप प्राप्त हुआ, जिनका न क्तिचि दीर्घश्च (६।४।३९) से निषेध हो गया, तो पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति होकर,
तन्तिः बन गया।

षणु दाने धातु से धात्वादेः षः सः (६।१।६२) से ष् को स् तथा पूर्ववत् सब होकर 'सन् ति' बना। सनः क्तिचि लोपश्चा० (६।४।४५) से 'न्' के स्थान में आत्व होकर सातिः (दान) बन गया ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

इसी प्रकार *भूतिः* (अणिमादि आठ ऐश्वर्य) की सिद्धि भी जानें। डुदाञ् धातु से प्रकृत सूत्र से क्त प्रत्यय होकर दा क्त = दात रहा। दो दद् घोः (७।४।४६) से 'दा' को दद् आदेश, तथा खरि च (८।४।५५) से चर्त्व होकर दत्तः बना है।

—:०:—

तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः

परि० भव्यगेयप्रवच० (३।४।६८)

भू धातु से *अचो यत्* (३।१।९७) से यत् प्रत्यय तथा गुण होकर 'भो य' रहा। *धातोस्तन्निमि०* (६।१।७७) से अवादेश होकर भव्यः बना है॥

गेयम् की सिद्धि परि० ३।१।९७ में देखें॥ उप पूर्वक स्था धातु तथा प्र पूर्वक वच धातु से *तव्यत्तव्यानीयरः* (३।१।९६) से अनीयर् प्रत्यय होकर *उपस्थानीयः प्रवचनीयः* बना है॥

जन्यः में *तकिशसिचतियतिजनीनामुपसङ्ख्यानम्* (वा० ३।१।९७) इस वार्त्तिक से यत् प्रत्यय हुआ है॥ *आप्लाव्यः* में आङ् पूर्वक प्लु धातु से *ओरावश्यके* (३।१।१२५) से ण्यत् प्रत्यय हुआ है। प्लु को प्लौ वृद्धि होकर पूर्ववत् आवादेश (६।१।७७) भी हो गया॥

आङ् पूर्वक पत्लृ धातु से *ऋहलोर्ण्यत्* (३।१।१२४) से ण्यत् प्रत्यय होकर आपात्यः बना है॥ प्रकृत सूत्र से ये शब्द कर्त्ता में तथा पक्ष में भाव कर्म में होते हैं॥

—:०:—

परि० गत्यर्थाकर्म० (३।४।७२)

गतः में गम् के अनुनासिक का लोप *अनुदात्तोपदे०* (६।४।३७) से हो जाता है॥ व्रज् इट् क्त = व्रजितः बना है॥ ग्लै धातु को आदेश गा (६।१।४४) से आत्व होकर क्त प्रत्यय होता है। पुनः निष्ठा के त को *संयोगादेरातो०* (८।२।४३) से न होकर ग्लानः बना है॥ विसर्ग को *से उपश्लिष्टः* में ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से ष्टुत्व करना ही विशेष है॥

शीङ् धातु से परे निष्ठा प्रत्यय *निष्ठा शीङ्स्विदि०* (१।२।१९) से नि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

नहीं माना जाता, अतः 'शी' को *सार्वधातु०* (७।३।८४) से गुण एवं अयादेश होकर शयितः बना है ॥

उपास्थितः में स्था धातु के आ को *यतिस्यतिमास्था०* (७।४।४०) से इत्व होकर 'उप आङ् स्थित = उपास्थितः' बना है ॥

अनु पूर्वक वस धातु से *वचिस्वपि०* (६।१।१५) से सम्प्रसारण, तथा *वसतिक्षुधोरिट्* (७।२।५२) से इट् आगम होकर 'अनु उस् इट् त' रहा। *शासिवसिघसी०* (८।३।६०) से षत्व तथा सवर्ण दीर्घ होकर अनूषितः बना है ॥

अनुजातः में *जनसनखनां०* (६।४।४२) से जन् के 'न्' को आत्व हो जाता है ॥

आरूढः

रुह भूवादयो० *निष्ठा* (३।२।१०२)
आङ् रुह् क्त, *हो ढः* (८।२।३१) *झषस्तथोर्धो०* (८।२।४०)
आ रुढ् ध *ष्टुना ष्टुः* (८।४।४०)
आ रुढ् ढ, *ढो ढे लोपः* (८।३।१३) *ढ्रलोपे पूर्वस्य०* (६।३।१०९)
आरूढ सु = आरूढः, बन गया।

—:०:—

जॄ धातु को *ऋत इद्धातोः* (७।१।१००) से इत्व एवं *उरण्रपरः* (१।१।५०) से रपरत्व होकर 'जिर् त' रहा। *हलि च* (८।२।७७) से दीर्घ एवं *रदाभ्यां निष्ठातो०* (८।२।४२) से निष्ठा को नत्व होकर 'अनुजीर्न' बना। *रषाभ्यां नो०* (८।४।१) से णत्व होकर अनुजीर्णः बन गया ॥

सर्वत्र प्रकृत सूत्र से क्त प्रत्यय कर्त्ता एवं यथाप्राप्त भाव कर्म में हुआ है, यही प्रयोजन है ॥

—:०:—

परि० ब्रुवः पञ्चाना० (३।४।८४)

आत्थ (तुम बोलते हो)

ब्रू लट् = ब्रू शप् सिप्, प्रकृत सूत्र से सिप् को थल् तथा *अदिप्रभृ०* (२।४।७२) लगकर तथा ब्रू को 'आह्' आदेश होकर,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

आह्_ थल् आहस्थः (८।२।३५) से ह्_ को 'थ्' होकर,
आथ्_ थ खरि च (८।४।५४)
आत्थ बना।

—:—

ब्रवीति (बोलता है)

'ब्रू शप् तिप्' पूर्ववत् होकर अदिप्रभृतिभ्यः शपः (२।४।७२) से शप् का लुक् हो गया। ब्रुव ईट् (७।३।९३) से हलादि पित् सार्वधातुक 'तिप्' के परे रहते ईट् आगम होकर 'ब्रू ईट् ति' रहा। गुण एवं अवादेश होकर ब्रवीति बन गया॥

इसी प्रकार ब्रवीषि ब्रवीमि में भी जानें॥ ब्रुवन्ति में अचि श्नुधातु (६।४।७७) से उवङ् आदेश होता है॥

—:०:—

परि० सेर्ह्यपिच्च (३।४।८७)

लुनीहि (तुम काटो)

लूञ् भूवादयो० पूर्ववत् सब सूत्र लगकर,
लू सिप् क्र्यादिभ्यः श्ना (३।१।८१)
लू श्ना सि सेर्ह्यपिच्च से सि को हि आदेश तथा सिप् के पित् होने से स्थानिवत् से जो हि को पित् प्राप्त था, उसको यहाँ अपित् कर दिया। प्वादीनां ह्रस्वः (७।३।८०)
लु ना हि हि के अपित् माने जाने से सार्वधातुकमपित् (१।२।४) से 'हि' ङिद्वत् हो गया, तो ई हल्यघोः (६।४।११३) से 'ना' को ईत्व होकर
लुनीहि बन गया।

इसी प्रकार पुनीहि में भी जानें॥ राध धातु स्वादि गण की है, तो स्वादिभ्यः श्नुः (३।१।७३) से श्नु विकरण तथा शेष पूर्ववत् होकर राध्नुहि बना है। तनूकरणे तक्षः (३।१।७६) से तक्ष्णुहि में श्नु विकरण होता है। रषाभ्यां० (८।४।१) से णत्व भी यहाँ हो जायेगा॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Initiative

आडुत्तमस्य पिच्च (३।४।९२)

करवाणि

डुकृञ् भूवादयो० पूर्ववत् सब सूत्र लगाकर,
कृ मिप् तनादिकृञ्भ्य उः (३।१।७९) आडुत्तमस्य पिच्च
कृ उ आट् मि, सार्वधातुका० (७।३।८४), उरण्रपरः, मेर्निः (३।४।८९)
कर् उ आ नि, पुनः नि को मानकर 'उ' को गुण हुआ।
कर् ओ आ नि, एचोयवायावः (६।१।७५) अट् कुप्वाङ्० (८।४।२)
कर् अव् आ णि = करवाणि, बन गया।

वस् मस् में इसी प्रकार करवाव करवाम की सिद्धि जानें। केवल यहाँ प्रकृत सूत्र से आट् के पित् माने जाने से सार्वधातुकमपित् (१।२।४) नहीं लगता, अतः गुण हो जाता है॥

—:०:—

परि० आत ऐ (३।४।९५)

एधिषैते

एध भूवादयो० धातोः, लिङर्थे लेट् (३।४।७)
एध् लेट् लस्य तिप्तस्झि० आदि पूर्ववत् सब सूत्र लगाकर,
एध् आताम्, सिब्बहुलं लेटि (३।१।३४) आर्धधातुकं शेषः (३।४।११४)
एध् सिप् आताम्, आर्धधातुकस्येड्० (७।२।३५) आद्यन्तौ० (१।१।४५)
एध् इट् सिप् आताम्, लेटोऽडाटौ (३।४।९४)
एध् इ स् अट् आताम्, आत ऐ से आताम् के 'आ' को 'ऐ' होकर,
एधिस् अ ऐ ताम्, टित आत्मनेपदानां० (३।४।७९) आदेशप्र०(८।३।५९)
एधिष ऐ त् ए = एधिषै ते, वृद्धिरेचि (६।१।८५)
एधिषैते बना।

जिस पक्ष में लेटोऽडाटौ से आट् आगम हुआ, उस पक्ष में भी पूर्ववत् ही सब कार्य होकर आट् के 'आ' एवं 'ऐ' को वृद्धि एकादेश होकर एधिषैते ही रूप बनेगा॥ 'आथाम्' में भी इसी प्रकार सिद्धि होकर एधिषैथे रूप बनेगा॥ जिस पक्ष में सिप् नहीं होगा उस पक्ष

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

में शप् विकरण होकर पूर्ववत् सारे कार्य होकर 'एध् शप् अट् ऐ त् ए= एध अ ऐ ते' रहा, वृद्धि एकादेश होकर एधैते बन गया। आट् पक्ष में भी एधैते ही रूप बनेगा ॥

—:०:—

परि० वैतोऽन्यत्र (३।४।९६)

एधिषतै

एध् इट् सिप् अट् त, पूर्ववत् होकर
टित आत्मनेपदानां० (३।४।७९)
एधिस् अ ते *वैतोऽन्यत्र* से *टित आत्मनेपदा०* सूत्र से किये हुए। को 'ऐ' होकर
एधिस तै *आदेशप्रत्यययोः* (८।३।५९)
एधिष तै = एधिषतै, बना।

आट् पक्ष में एधिषातै बना ॥ जब सिप् नहीं हुआ तो शप् होकर 'एध् शप् अट् तै = एध् अ अ तै' रहा। *अतो गुणे* लगकर एधते बना। आट् पक्ष में एधातै बनेगा ॥ इसी प्रकार झि (अन्ति) सिप् आदि में समझें सर्वत्र *टित आत्म०* से किये हुए ए को ऐ होगा ॥

वैतोऽन्यत्र से जिस पक्ष में *टित आत्मने०* से किये हुए 'ए को 'ऐ' नहीं होता, उस पक्ष में एधिषते एधिषाते आदि रूप पूर्ववत् बने हैं। कोई विशेष नहीं है ॥

———

ईशै

ईश् पूर्ववत् शप् पक्ष में उत्तम पुरुष का इट् आकर
ईश् शप् अट् इट्, *टित आत्मनेपदानां०* (३।४।७९)
ईश अ ए *वैतोऽन्यत्र*
ईश अ ऐ *वृद्धिरेचि* (६।१।८५)
ईशै बना।

इसी प्रकार शीङ् धातु से गुण होकर शयै बनेगा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पादः]

गृह्यान्तै

ग्रह उपादाने, पूर्ववत् सब सूत्र लगकर कर्मवाच्य में *सार्वधातुके यक्* यक्
ग्रह् आट् अन्त, (३।१।६७) से यक् प्रत्यय हुआ।
ग्रह् यक् आट् अन्त, *टित आत्मनेपदानां०* से टि को एत्व होकर
ग्रह् य आ अन्ते, *वैतोऽन्यत्र*, *अकः सवर्णे दीर्घः* (६।१।९७)
ग्रह्य आन्तै यक् के कित् होने से *ग्रहिज्यावयि०* (६।१।१६) से सम्प्रसारण प्राप्त हुआ, *इग्यणः सम्प्रसारणम्* (१।१।४४)
ग् ऋ अ ह् य आन्तै, *सम्प्रसारणाच्च* (६।१।१०४) *अकः सवर्णे०* (६।१।९७)
गृह्यान्तै बना।

इसी प्रकार वच परिभाषणे धातु से उच्यान्तै में समझें॥

———

दधसे

धा पूर्ववत् सब सूत्र लगकर, जब सिप् नहीं हुआ तो शप्
धा शप् थास् हुआ, *लेटोऽडाटौ* (३।४।९४) *जुहोत्यादिभ्यः श्लुः* (२।४।७५)
धा अट् थास्, से श्लु अर्थात् अदर्शन होकर *श्लौ* (६।१।१०) से द्वित्व
धा धा अ थास्, तथा अभ्यास कार्यादि होकर,
द धा अ थास्, *थासः से* (३।४।८०)
द धा अ से अब यहाँ *वैतोऽन्यत्र* से 'से' के ए को ऐ होना चाहिए पर सूत्र में विकल्प कहने से नहीं हुआ। *घोर्लोपो लेटि वा* (७।३।७०) से 'धा' के 'आ' का लोप होकर

दध् अ से = दधसे, बना।
दधसे उत्तरम्, *एचोयवायावः* (६।१।७५)
दधसय् उत्तरम्, *लोपः शाकल्यस्य* (८।३।१९)
दधस उत्तरम्, रहा।

—:o:—

परि० सिजभ्यस्त० (३।४।१०९)

डुकृञ् तथा हृञ् धातुओं से लुङ् लकार में झि आकर, प्रकृत सूत्र से सिच् से उत्तर झि को जुस् एवं रुत्व विसर्जनीयादि होकर अकार्षुः अहार्षुः बना है। शेष सिद्धि परि० १।१।१ के अकार्षीत् के समान जानें॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

बिभी धातु से *अबिभयुः* तथा हु धातु से अजुहवुः की सिद्धि
लकार में जानें। परि० १।१।६२ के जुहुतः के समान यहाँ सब
कार्य होंगे। द्वित्व कर लेने पर उभे अभ्यस्तम् (६।१।५) से
हुये दोनों की अभ्यस्त संज्ञा हुई, सो प्रकृत सूत्र से अभ्यस्त से
'झि' को जुस् हो गया। जुसि च (७।३।८३) से गुण होकर 'अ
उस्' बना। अयादेश होकर अबिभयुः (वे डरे) बना। अवादेश
अजुहवुः (उन्होंने दिया) भी इसी प्रकार बना॥

जागृ धातु के शप् का लुक् *अदिप्रभृतिभ्यः०* (२।४।७२) से
अट् जागृ उस् रहा। *जक्षित्यादयः षट्* (६।१।६) से जागृ की
संज्ञा होती है, इस प्रकार अभ्यस्त से उत्तर 'झि' हो जाता है,
प्रकृत सूत्र से झि को जुस् हो गया शेष पूर्ववत् है। 'गृ' को गुण
हो ही जायेगा॥

'अट् विद् शप् झि' यहाँ भी पूर्ववत् शप् का लुक् होकर
बन गया॥

—:o:—

परि० लिट् च (३।४।११५)

डुपचष् धातु से *पेचिथ* तथा शक्ल धातु से *शेकिथ* में थल्
रहते परि० १।१।५८ के चक्रतुः के समान द्वित्वादि कार्य होकर प
थल्, श शक् थल् रहा। *ऋतो भारद्वाजस्य*(७।२।६३) से इट् आगम
थलि च सेटि (६।४।१२१) से थल् परे रहते अभ्यास लोप एवं
एत्व होकर पेचिथ शेकिथ बना है। प्रकृत सूत्र से आर्धधातुक
करने का यही प्रयोजन है कि ७।२।६३ से इट् आगम हो जाये॥

ग्लै म्लै धातु से जग्ले मम्ले की सिद्धि में द्वित्वादि कार्य पूर्ववत्
हैं। 'त' को *लिटस्तझयो०* (३।४।८१) से एश् होकर ज ग्ला एश्
एश् रहा। प्रकृत सूत्र से एश् के आर्धधातुक (स्थानिवत् होने से)
होने से *आतो लोप इटि च* (६।४।६४) से आकार लोप होकर
ए = जग्ले, मम्ल् ए = मम्ले बना है॥

—:o:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

परि० छन्दस्युभयथा (३।४।११७)

वर्धन्तु

वृधु धातु से वर्धन्तु में *हेतुमति च* (३।१।२६) से णिच् आकर एवं गुण होकर 'वर्धि लोट् = वर्धि झि रहा। *झोऽन्तः* (७।१।३) तथा *एरुः* (३।४।८६) लगकर 'वर्धि अन्तु' रहा। यहाँ प्रकृत सूत्र से अन्तु की आर्धधातुक संज्ञा होने से *णेरनिटि* (६।४।५१) से णि का लोप हो गया, तथा प्रकृत सूत्र से अन्तु की सार्वधातुक संज्ञा भी हो जाने से शप् विकरण हो गया तो वर्ध् अ अन्तु रहा। *अतो गुणे* (६।१।९४) लगकर वर्धन्तु बन गया॥

———

स्वस्ति

अस् धातु से *स्त्रियां क्तिन्* (३।३।९४) से क्तिन् प्रत्यय होकर 'सु अस् क्तिन्' रहा यणादेश होकर स्वस्ति बन गया। यहाँ क्तिन् की *आर्धधातुकं शेषः* (३।४।११४) से आर्धधातुक संज्ञा प्राप्त थी, पर छन्द में प्रकृत सूत्र से सार्वधातुक संज्ञा ही हुई, तो *अस्तेर्भूः* (२।४।५२) से अस् को भू आदेश नहीं हुआ॥

———

विभ्रृण्विरे

भृ धातु से लिट् लकार में विभ्रृण्विरे रूप बना है। लिट् की *लिट् च* (३।४।११५) से आर्धधातुक संज्ञा प्राप्त थी, पर प्रकृत सूत्र से सार्वधातुक संज्ञा हो जाने से *भ्रुवः भृ च* (३।१।७४) से भ्रु को भृ आदेश तथा श्नु विकरण हो गया तो 'वि भृ नु इरेच्' रहा, *हुश्नुवोः०* (६।४।८७) से यणादेश एवं णत्व होकर विभ्रृण्विरे बन गया॥ सुन्विरे में पूर्ववत् ही सार्वधातुक संज्ञा होने से श्नु विकरण हो गया है॥ यहाँ विकरण का व्यवधान होने से धातु से अव्यवहित लिट् परे नहीं है, अतः *लिटि धातोः०* (६।१।८) से द्वित्व नहीं होता॥

———

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भारती पुस्तकालय

उपस्थेयाम

पूर्ववत् लिङ् लकार में सब कार्य होकर 'उप स्था यासुट् मस्' रहा। प्रकृत सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा होने से *एर्लिङि* (६।४।६७) से स्था के आ को एत्व होकर 'उप स्थे यास् मस्' रहा। यहाँ छान्दस प्रयोग होने से *लिङ्याशिष्यङ्* (३।१।८६) से प्राप्त अङ् नहीं होता। *लिङर्थे* (३।४।११६) से यहाँ भी लिङ् की आर्धधातुक संज्ञा प्राप्त थी, पर प्रकृत सूत्र से सार्वधातुक संज्ञा होने से *लिङः सलोपो०* (७।२।७९) से सस् का लोप हो गया तो उपस्थेयाम बन गया॥

॥ *इति तृतीयाध्यायपरिशिष्टम्* ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट
का
सस्ता और सुन्दर प्रकाशन

१—यजुर्वेदभाष्य-विवरण—(प्रथम भाग)—इस ग्रन्थ में महर्षि दयानन्द प्रणीत यजुर्वेदभाष्य के प्रथम दस अध्यायों पर ऋषिभक्त, वेदमर्मज्ञ श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु कृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। मूल वेदभाष्य को ऋषि के हस्तलेखों से मिलान करके छापा गया है। विस्तृत भूमिका तथा टिप्पणियों में वेद विषयक विविध समस्याओं पर गंभीर एवं विद्वत्तापूर्ण विचार किया गया है। बढ़िया कागज, सुन्दर मुद्रण, सजिल्द। मूल्य १६.००

२—ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्वलिखित और स्वकथित आत्म-चरित्र—आलकाट महोदय की प्रेरणा से ऋषि दयानन्द ने अपना संक्षिप्त जीवन चरित लिखा था, जो अंग्रेजी में अनूदित होकर 'थियोसोफिकल' पत्रिका में छपा था। उसी लघुकाय ग्रन्थ का संपादन उद्भट आर्य विद्वान् श्री पं० भगवद्दत्त जी ने किया है। इसका द्वितीय संस्करण छप गया है। सुन्दर आर्ट पेपर तथा ऋषि के चित्र से अलंकृत। मूल्य ०.५०

३—ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—ऋषि दयानन्द के पत्रों एवं विज्ञापनों का अनुपम संग्रह। लगभग साढ़े आठ सौ पत्र-विज्ञापन संगृहीत। द्वितीय संस्करण। सं० पं० युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य ७.००

४—परिशिष्ट—(ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन का)—ले० पं० युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य ०.७५

५—उरुज्योति अर्थात् वैदिक अध्यात्मसुधा—वैदिक अध्यात्म विषयक उच्चकोटि के लेखों का अनुपम संग्रह। ले०—डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल। मूल्य ३.००

६—वैदिक वाङ्मय का इतिहास—(प्रथम भाग) वेदों की शाखायें—द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण। ले० पं० भगवद्दत्त जी बी० ए०, रिसर्च स्कालर। मूल्य १०.००

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भारती पुस्तकालय

७—ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास—ले० पं० युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य सजिल्द ४.००, अजिल्द ३.००

८—वैदिक छन्दोमीमांसा—वैदिक छन्दः सम्बन्धी सर्वोत्तम ग्रन्थ। उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत। ले० पं० युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य १.००

९—वैदिक स्वर मीमांसा—संशोधित-परिवर्धित तृतीय संस्करण। वैदिक स्वर विषयक अनुपम ग्रन्थ। उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत। ले० पं० युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य ५.००

१०—वैदिक ईश्वरोपासना—पातञ्जल योग सूत्रों की ऋषि दयानन्द कृत व्याख्या। द्वितीय संस्करण। आर्ट पेपर पर सुन्दर दुरङ्गी छपाई। मुख पृष्ठ पर आकर्षक ऋषि चित्र। मूल्य ०.५०

११—वाल्मीकिरामायण—हिन्दी अनुवाद सहित। प्रक्षिप्त वर्णनों पर मार्मिक टिप्पणियाँ। अनुवादक तथा परिशोधक—पं० अखिलानन्द, शास्त्री। अयोध्याकाण्ड मूल्य ३.५० अरण्य-किष्किन्धा काण्ड मूल्य ४.००

१२—ध्यानयोग-प्रकाश—ले० ऋषि दयानन्द से योग शिक्षण ग्रहण करने वाले विद्वान् महात्मा स्वा० लक्ष्मणानन्द जी। अपने विषय का अनूठा ग्रन्थ। मू० ३.०० द्वितीय संस्करण।

१३—प्यारा ऋषि—ऋषि दयानन्द के जीवन की विविध घटनाओं का संग्रह। ले० महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती। मू० ०.५०

१४—संस्कृत पठन पाठन की अनुभूत सरलतम विधि—संस्कृत के बोधार्थ अद्भुत ग्रन्थ। सरल स्पष्ट भाषा में ४४ दिन के पाठ। ले० पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु। तृतीय संस्करण। मूल्य १.००

१५—क्षीरतरङ्गिणी—पाणिनीय धातुपाठ की प्राचीनतम व्याख्या। ले० पं० युधिष्ठिर मीमांसक मूल्य १२.००

१६—वेदार्थ प्रक्रिया के मूलभूत सिद्धान्त—ले० पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। मूल्य ०.५०

१७—ऋषि प्रणाली—भारत के समस्त रोगों की अचूक औषधि; ले० पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। मूल्य ०.५०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

१८—ऋग्वेदभाषाभाष्य— मूल्य २.५०

१९—अष्टाध्यायीमूल—चतुर्थ सं० मूल्य ०.६२

२०—आर्याभिविनय —गुटका मूल्य १.००

२१—पञ्चमहायज्ञ विधि— मू० ०.२०

२२—व्यवहारभानु— मू० ०.२५

२३—आर्योद्देश्य रत्नमाला— मू० ०.०६

२४—हवन मंत्र— मूल्य ०.०६

२५—सन्ध्योपासन विधि— मूल्य ०.०६

२६—सन्ध्योपासन हवनमंत्र सहित— मूल्य ०.०९

रामलाल कपूर एण्ड संस लि० पेपर मर्चेण्ट

गुरुबाजार, अमृतसर। नई सड़क, देहली। विरहाना रोड, कानपुर।

५१ सुतारचाल, बम्बई।

वेदवाणी कार्यालय, पो० आजमतगढ़ पैलेस, वाराणसी—६।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

महर्षि पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान की
तिथि
पु०सं०
भारती पुस्तकालय

महर्षि यास्क कृत निरुक्त का हिन्दी भाष्य

[ले०—श्री पं० भगवद्दत्त जी, बी० ए०]

बड़े ही सौभाग्य एवं हर्ष का विषय है कि यास्क कृत निरुक्त का हिन्दी भाष्य श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से प्रकाशित हो चुका है। आर्य समाज के प्रौढ़ विद्वान् और अनुसन्धान विषय के अद्वितीय मर्मज्ञ श्री पं० भगवद्दत्त जी इस भाष्य के लेखक एवं सम्पादक हैं। इस भाष्य में निरुक्त की अनेक ग्रन्थियों को बड़े उत्तम ढंग से खोला गया है। राष्ट्र भाषा के माध्यम से निरुक्त के ऊपर यह अपूर्व कार्य हुआ है। इस ग्रन्थ का मुद्रण सुन्दर, स्पष्ट एवं शुद्ध है। यह ग्रन्थ रत्न सुन्दर तथा दृढ़ कागज, लगभग ८०० पृष्ठ में पूर्ण हुआ है और इसका मूल्य १५.०० रुपये मात्र रखा गया है।

प्राप्ति स्थान—पूर्ववत् ५ स्थान।

श्रीमद्वाल्मीकिरामायण
अयोध्या-अरण्य-किष्किन्धा काण्ड
हिन्दी अनुवाद सहित

श्रीमद्वाल्मीकिरामायण के अयोध्या-अरण्य-किष्किन्धाकाण्ड (हिन्दी अनुवाद सहित) जो क्रमशः वेदवाणी में प्रकाशित हो चुके हैं, अब वे पृथक् पुस्तकाकार में भी सुलभ हो गये हैं। ये पुस्तकें २८ पौण्ड के बढ़िया कागज पर बुल टाइप में मुद्रित हैं। वाल्मीकिरामायण के प्रक्षिप्त श्लोकों या श्लोकांशों को भिन्न टाइप में दिया गया है तथा उन पर प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० अखिलानन्द जी ने संक्षिप्त टिप्पणियां दी हैं। हिन्दी अनुवाद के पढ़ने से उपर्युक्त पण्डित जी के रामायण विषयक अगाध ज्ञान एवं व्यापक दृष्टि का पता सहज ही लग जाता है। ये पुस्तकें रामायण के विषय में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। एक बार अवश्य पढ़ें।

(१) अयोध्याकाण्ड —पृष्ठ संख्या ३६६—मूल्य ३.००

(२) अरण्य-किष्किन्धाकाण्ड—पृष्ठ संख्या ४२८—मूल्य ४.००

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

वैदिक स्वर मीमांसा

तृतीय संशोधित-परिवर्धित संस्करण

[ले०—श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक]

इस पुस्तक में वैदिक ग्रन्थों में प्रयुक्त होने वाले उदात्त अनुदात्त, स्वरित आदि
रों की विशद व्याख्या की गई है। स्वरों का शब्दार्थ तथा वाक्यार्थ पर क्या
ाव पड़ता है, इसका सप्रमाण विवेचन किया गया है। वेदार्थ में स्वर-ज्ञान
आवश्यकता और उसकी उपेक्षा से होने वाले दुष्परिणामों का विस्तार पूर्वक
न किया गया है। स्वर-ज्ञान के विना वेदार्थ का बोध असम्भव है, इसका
माण निरूपण इस ग्रन्थ में किया गया है।

वैदिक वाङ्मय में उदात्त आदि स्वरों के चिह्न सर्वत्र समान नहीं हैं। इन
ों में प्रयुक्त होने वाले इन सभी प्रकार के चिह्नों का सोदाहरण अङ्कन इस
क में प्रदर्शित किया गया है। संहिता से पदपाठ बनाने और उसके कारण
र विपर्यय के नियम अत्यन्त सरल एवं सुबोध भाषा में प्रस्तुत किये गये हैं।
ठकों की सुविधा के लिये पाणिनि के स्वर विषयक सूत्रों की स्वा० दयानन्द
लित व्याख्या भी परिशिष्ट में संगृहित कर दी गई है।

पुस्तक की उपादेयता इसी बात से प्रकट हो जाती है कि इसका प्रथम
रण दो वर्ष के अन्दर समाप्त हो गया। इस ग्रन्थ रत्न को उत्तर प्रदेश
कार पुरस्कृत कर चुकी है।

शुद्ध एवं सुन्दर मुद्रण, बढ़िया कागज तथा सुन्दर गेट अप। सजिल्द. मूल्य
त मात्र—केवल ४.००

—:०:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

भारती पुस्तकालय

योगविद्या का अपूर्व प्रामाणिक ग्रन्थ

ध्यानयोगप्रकाश

श्री० स्वामी लक्ष्मणानन्द योगीकृत

बड़े ही सौभाग्य एवं हर्ष का विषय है कि सच्चे योगी ऋषि स्व साक्षात् योगविद्या और योग की क्रियाओं को सीखे हुये श्री० स्वामी ल का बनाया हुआ यह ग्रन्थ जो बहुत वर्षों से अप्राप्य हो रहा था, नू छपकर तय्यार हो गया है।

यह ग्रन्थ २२ × ३६/१६ डबल डिमाई ३६ पौएड के बहुत सुन्दर सुन्दर छपाई सहित ३८० पृष्ठों में सचित्र छपकर तय्यार हुवा है।

योग के नामपर जनता की प्रवञ्चना आसान होने से बहुत की ऋषि दयानन्द जैसे योगी द्वारा ही इन मिथ्या धारणाओं का वास्तविक जाना जा सकता है। अन्त में विद्वान् योगी महात्मा स्वामी लक्ष्मणानन्द ऋषि दयानन्द से योग सीखने का अपना वृत्तान्त भी दिया है, जो बहुत ही एवं मननीय है। वेदों और शास्त्रों के प्रमाणों से यह ग्रन्थ भरा पड़ा है आधुनिक योगी कहे वा कहलाये जाने वाले व्यक्तियों के द्वारा योग के दि किये जाने वाले मिथ्या प्रचार का स्वरूप सामने आ जाता है। योगजिज्ञ यह ग्रन्थ बहुत ही प्रामाणिक है॥

धर्म प्रेमी एवं योग जिज्ञासुओं के लिये यह ग्रन्थ परम हितकारी है। छपने से एक भारी कमी की पूर्त्ति समझी जा रही है॥ प्रारम्भ में स्वर्गीय रामदेव जी का प्राक्कथन है। सुन्दर कागज-सुन्दर छपाई और सुन्दर विचारों से युक्त ग्रन्थ का दाम लागत मात्र। मूल्य—३.२५

मिलने का पता—पूर्ववत् ५ स्थान।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

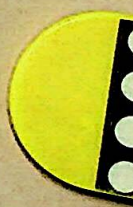

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative